कृष्णदास संस्कृत सीरीज
१३८

*****

महाकविबाणभट्टविरचितं

हर्षचरितम्

श्रीशङ्करकविरचित-'सङ्केत'-व्याख्यासहित-
'कमलेश्वरी'-हिन्दीव्याख्योपेतम्

हिन्दी-व्याख्याकारः
डॉ० बालगोविन्द झा
एम० ए० (लब्धस्वर्णपदक), पी-एच० डी०
व्याकरणाचार्य, साहित्यशास्त्री
रीडर एवम् अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
स० व० पटेल महाविद्यालय, भभुआ, (बिहार)



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
१९९४

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०५१
मूल्य

चौ. सं. सी. आफिस
Rs. 85/-

पो० बा० नं० ११११८
चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिङ्ग), वाराणसी–२२१००१
(भारत)
फोन : ३५२३३८

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : ३३३४५८

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
138

HARSHA-CHARITAM

OF

BANABHATTA

Edited with the

'SANKETA' SANSKRIT COMMENTARY

OF

SHANKARA KAVI

&

'KAMALESHWARI' HINDI TRANSLATION

By

Dr. Bal Govind Jha

M. A. (Gold-medalist); Ph. D.

Vyakaranacharya, Sahitya Shastri

Reader & Head, Deptt. of Sanskrit

S. V. P. College, Bhabhua, (Bihar).



KRISHNADAS Academy

1994

Publisher : Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi
Edition : First, 1994

Oriental Publishers & Distributors
Post Box No. 1118
Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001
(INDIA)
Phone : 352358

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1008, Varanasi-221001 (India)
Phone : 333458

समर्पण

पूज्यपितृचरण

पं० श्रीकालीकान्त झा, व्याकरणाचार्य

के

करकमलों

में

सादर समर्पित

पुरोवाक

संस्कृत के गद्य-कवियों की परम्परा के अन्तर्गत महाकवि बाणभट्ट अन्यतम स्थानापन्न हैं। वे दण्डी एवम् सुबन्धु जैसे अन्य प्रख्यात गद्य कवियों की तुलना में अत्यधिक प्रशस्य, प्रौढ, यशस्वी तथा नितान्त विश्रुत रहे हैं। बाणभट्ट की दो प्रसिद्ध गद्य-कृतियों में 'हर्षचरित' प्रथम कृति है जो आख्यायिका-कोटि में परिगणित है। दूसरी विश्वविश्रुत 'कादम्बरी' का काव्यगत वैशिष्ट्य समग्र संस्कृत गद्यसाहित्य के लिए गौरव का विषय है किन्तु प्रथम कृति होने पर भी 'हर्षचरित' में बाणभट्ट की जो अनितर-साधारण काव्यप्रतिभा व्यक्त हुई है वह भी कम प्रशस्य नहीं है। उत्कृष्ट गद्य के लिए अपेक्षित सभी तत्त्वों का समावेश 'हर्षचरित' में अत्यन्त प्रौढता के साथ किया गया है जिससे बाणभट्ट की यह प्रथम कृति भी विद्वानों की दृष्टि में नितान्त प्रशस्य तथा परम उपादेय सिद्ध हुई है। ऐतिहासिक कथावस्तु पर आश्रित यह आख्यायिका बाणभट्ट के उत्कृष्ट गद्यनिर्माण-नैपुण्य, लोकोत्तर काव्यप्रतिभा, असाधारण वैदुष्य तथा विविध-शास्त्रतत्त्वज्ञता की प्रथम परिचायिका है। यही कारण है कि अनेक विश्वविद्यालयों में यह काव्यग्रन्थ भिन्न-भिन्न कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित किया गया है।

"चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस" वाराणसी के माननीय व्यवस्थापक श्रीयुत् विट्ठलदास जी गुप्त तथा उनके अनुज माननीय श्रीयुत् व्रजमोहनदास जी गुप्त के अनुरोध पर इस काव्य के हिन्दी-अनुवाद के कार्य में मैं प्रवृत्त हुआ तथा अनेक कठिनाइयों एवम् विघ्नबाधाओं का सामना करते हुए अन्ततः इस गुरुतर कार्य को सम्पन्न करने में मैं सफल हो पाया। मेरी इस सफलता के मूल में मेरे पूज्य पितृचरण पं० श्री कालीकान्त झा, व्याकरणाचार्य, मेरे पूज्य अग्रज श्री शङ्कर झा प्रधानाध्यापक, उच्च विद्यालय, उरलाहा, जि० पूर्णिया (बिहार) तथा मेरी

भाभी हीरा देवी के प्रेरणाप्रद आशीर्वाद ही प्रधान तत्त्व के रूप में उपस्थित रहे हैं। मेरे पूज्य पैतृस्वस्रेय डा० श्रीयुत् श्रीनारायण मिश्र, आचार्य एवम् अध्यक्ष, संस्कृत बिभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने समय-समय पर मेरी कठिनाइयों का समाधान करते हुए मुझे निरन्तर प्रोत्साहित करने में तथा अपने आशीर्वचनों से मुझे कृतकृत्य करने में जो औदार्य प्रदर्शित किया है तदर्थ मैं उनका चिरऋणी हूँ।

बाणभट्ट की इस गद्यकृति को 'कमलेश्वरी' नामक हिन्दी टीका से संवलित करने में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा विरचित "हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन" नामक पुस्तक से पर्याप्त सहायता मुझे प्राप्त हुई है। अतः उक्त विद्वद्वरेण्य के प्रति मैं नतमस्तक होकर कृतज्ञता प्रकट करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। इसके साथ ही 'हर्षचरित' के अब तक प्रकाशित अनेक संस्करणों के सम्पादकों, व्याख्याकारों तथा अनुवादकों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिनकी कृतियों से मैंने समय-समय पर सहायता ली है। "चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी" के व्यवस्थापक दोनों गुप्त बन्धुओं को मैं साधुवाद देना नहीं भूलूंगा जिनके अनुरोध पर 'हर्षचरित' की यह "कमलेश्वरी" हिन्दी टीका तैयार की जा सकी तथा प्रकाशित हो पायी। आशा है, छात्रों के लिए यह संस्करण सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हो पायगा।

अन्त में, अपनी दिवंगता तथा परमपूज्या जननी 'कमलेश्वरी देवी' की पुण्यस्मृति में भाव-पुष्पों की श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए अपनी लेखनी को विराम देता हूँ जिनके परम पवित्र नाम के साथ 'हर्षचरित' की यह हिन्दी टीका जुड़ी हुई है।

विनयावनत

बालगोविन्द झा

भूमिका

१. संस्कृत-गद्य का क्रमिक विकास

संस्कृत-साहित्य का काव्यात्मक वैभव अनादि काल से विपुल एवम् समृद्ध रहा है। काव्य की प्रत्येक विधा में अति प्राचीन काल से काव्यात्मक सर्जनाएँ होती रही हैं। बाणभट्ट जैसे यशस्वी कवि द्वारा प्रणीत 'हर्षचरित' या 'कादम्बरी' जैसे उत्कृष्ट गद्य काव्यों का अवलोकन करने के पश्चात् संस्कृत-गद्यसाहित्य के विकासमान स्वरूप के प्रति जिज्ञासा एवम् कौतूहल का प्राकट्य चूँकि नितान्त स्वाभाविक है इसलिए सर्वप्रथम संस्कृत-गद्यसाहित्य के क्रमिक विकास का ही पर्यालोचन समुचित है।

संस्कृत गद्य का उद्भव वैदिक काल में ही हो चुका था। वैदिक संहिताओं से लेकर आज तक संस्कृत गद्य साहित्य विकास के अनेक सोपानों को तय कर चुका है। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में जिस गद्य के दर्शन होते हैं वही संस्कृत गद्य का प्रारम्भिक स्वरूप है। उसी संहिता में तथा उसी कृष्ण यजुर्वेद की काठक, मैत्रायणी आदि संहिताओं में भी गद्य का प्रयोग प्रायः उतने ही परिमाण में हुआ है जितने परिमाण में पद्य का प्रयोग हुआ है। गद्य एवम् पद्य मिश्रण के फलस्वरूप ही कृष्ण यजुर्वेद का कृष्णत्व अवगत होता है। इसी प्रकार अथर्ववेद का षष्ठ भाग भी गद्य में ही निबद्ध है। कालान्तर में ब्राह्मण, आरण्यक एवम् उपनिषद् आदि वैदिक वाङ्मय में गद्य का ही प्रचुरतया तथा प्रधानतया प्रयोग किया गया है। संहिता काल में गद्य का जो स्वरूप था वह ब्राह्मणकाल एवम् आरण्यक काल के आते-आते अत्यधिक परिष्कृत हो गया तथा उपनिषत्काल में तो उसके रमणीय उत्कर्ष का भी साक्षात्कार होने लगा। वस्तुतः संहिता काल में प्रयुक्त होने वाले गद्य का स्वरूप सामान्य था। दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होने वाली भाषा का ही उसमें प्रयोग किया जाता था किन्तु कालान्तर में गद्य के प्रति अपनी विशिष्ट रुचि का प्रदर्शन करते हुए विद्वानों ने अवान्तर काल में

गद्य को परिष्कृत करने का अभ्यर्हणीय एवं सफल प्रयास किया। यही कारण है कि संहिता काल में प्रयुक्त गद्य की अपेक्षा ब्राह्मण-आरण्यक कालीन गद्य तथा उसकी भी अपेक्षा उपनिषदों में प्रयुक्त गद्य के स्वरूप का अधिकाधिक परिष्कार अनुभवगम्य होता है।

यह सत्य है कि गद्य की अपेक्षा पद्य के प्रति प्रत्येक काल में विशेष रुचि प्रदर्शित की गयी है। पद्य चूंकि छन्दोबद्ध होने से अधिक सरलतापूर्वक कण्ठगत होता है तथा स्वर, लय, मात्रा आदि का समावेश होने से उसमें एक विशिष्ट गतिमयता होती है इसीलिए उसके प्रति विद्वानों एवम् रचयिताओं का सहज आकर्षण बना रहा है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि गद्य के प्रति सदा निरपेक्षता या विमुखता बरती गयी हो। वैदिक साहित्य के बाद विरचित अनेक प्रकार की कृतियों में गद्य के प्रयोग का प्राचुर्य ही इस तथ्य का प्रमापक है कि गद्य को भी पर्याप्त महत्त्व प्राप्त होता रहा है। यह दूसरी बात है कि इस प्रकार के गद्य को साहित्यिक कोटि में रखने पर भी काव्यात्मक कोटि में रखना सम्भव नहीं है। वैदिक साहित्य के पश्चात् वेदाङ्गों में जिस प्रकार के गद्य का प्रयोग हुआ है वह प्रयोग परिमाण की दृष्टि से निश्चय ही समृद्ध है। निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, आयुर्वेद आदि ग्रन्थों में तथा टीकाग्रन्थों में गद्य का प्रयोग प्रचुरतया जो हुआ है वह गद्य के प्रति रचयिताओं के महान् आकर्षण का ही सूचक है।

संस्कृत गद्य की विकास परम्परा नितान्त विपुल रही है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक गद्य का प्रयोग विभिन्न रूपों में होता रहा है। स्वरूप की दृष्टि से इसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—शास्त्रीय, पौराणिक तथा काव्यात्मक। महर्षि यास्क के निरुक्त में, पतञ्जलि के महाभाष्य में, दर्शन ग्रन्थों में तथा टीका-भाष्यादि ग्रन्थों में जिस गद्य का प्रयोग किया गया है वह शास्त्रीय गद्य की कोटि में परिगणनीय है जब कि विभिन्न पुराणों में प्रयुक्त होने वाले गद्य को पौराणिक गद्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। इन दोनों प्रकार के गद्यों में तथ्यात्मक कथन का ही प्राधान्य होने से काव्यात्मक सौन्दर्य का विशिष्ट समावेश नहीं किया जाता। शास्त्रीय गद्य में पाण्डित्यगत

एवम् भाषागत चमत्कार ही प्रधान प्रतिपाद्य होता है। इसकी तुलना में पौराणिक गद्य में काव्यात्मक सौन्दर्य भी पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध होता है। इन दोनों प्रकार के गद्यों के अतिरिक्त गद्य का जो अन्तिम काव्यात्मक प्रकार है वह एकान्ततः काव्यात्मक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के उद्देश्य से ही विनिर्मित होता है। सहृदय सामाजिकों का अधिकाधिक हृदयावर्जन ही उसका प्रधान लक्ष्य होता है। इस प्रकार के काव्यात्मक गद्य का भी अस्तित्व ईसा के द्वितीय शतक में ही उपलब्ध हो जाता है। रुद्रदामन् के गिरिनार शिलालेख तथा हरिषेण रचित प्रयाग-प्रशस्ति में गद्य का जो स्वरूप उपलब्ध होता है वह नितान्त प्रौढ, परिष्कृत, समलङ्कृत एवम् चारु होने के कारण काव्यात्मक गद्य प्रणयन के लिए अनेक पश्चात्-कालीन गद्य-कवियों का प्रेरणास्रोत भी रहा है। रुद्रदामन् के शिलालेख में जिस गद्य का प्रयोग हुआ है उसमें दीर्घसमास-बहुलता तथा श्रुतिसुखद-शब्दसमूह का प्रयोग नितान्त हृदयावर्जक होने के साथ-साथ उत्तरकालीन गद्य-कवियों के लिए आदर्श स्वरूप होने की क्षमता भी विद्यमान है यही कारण है कि सुबन्धु, दण्डी, बाण प्रभृति गद्यकारों की रचनाओं में अलङ्कारों, श्लेषों तथा दीर्घतर समासों से युक्त गद्यशैली का साक्षात्कार होता है।

इस प्रकार संस्कृत-गद्य के विकास में वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक सुदीर्घ कालखण्ड का योगदान रहा है। इस अवधि में संस्कृत-गद्य अपने विकास पथ पर निरन्तर अग्रसर होता हुआ विभिन्न स्थितियों, स्तरों तथा शैलियों से सम्बद्ध होता है तथा साम्प्रतिक-स्वरूप में अवस्थित होकर वह परम उत्कृष्ट एवम् श्लाघ्य बन गया है।

२. महाकवि बाणभट्ट का स्थितिकाल

संस्कृत-साहित्य अपनी समृद्धि के साथ-साथ अपनी प्राचीनता के लिए भी विश्वविश्रुत रहा है। वैदिक काल से लेकर अद्यावधि निरन्तर सर्जनाओं का क्रम इसमें बना रहा है। यही कारण है कि अनेक संस्कृत कवियों या आचार्यों के स्थितिकाल या उनके जीवन वृत्त के विषय में प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध न होने से निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहना असम्भव हो जाता है। प्राचीन

परिपाटी के अनुसार चूँकि व्यक्तित्व की तुलना में कर्त्तृत्व का महत्त्व अधिक दृष्टिगोचर होता है इसीलिए अनेक यशस्वी रचयिताओं को उनकी कृतियों के माध्यम से जाना तो जा सका किन्तु उनके स्थिति-काल या जीवन-वृत्त का विस्तृत एवम् प्रामाणिक ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सका। कालिदासादि जैसे अनेक महाकवि आज भी इस सन्दर्भ में विवादास्पद ही बने हुए हैं। केवल अनुमान का आश्रय लेकर इस सम्बन्ध में विचार किया जाता रहा है किन्तु सौभाग्य से महाकवि बाणभट्ट के विषय में जिज्ञासुओं को इस समस्या का सामना नहीं करना पड़ता।

बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक उच्छ्वासों में अपना सुविस्तृत परिचय प्रस्तुत कर डाला है। 'हर्षचरित' में बाणभट्ट के जीवन वृत्तादि के विषय में इतनी सामग्री उपलब्ध है कि जिज्ञासुओं को इस विषय में सन्देह की तनिक भी गुञ्जाइश नहीं रह पाती। 'हर्षचरित' के अध्ययन से तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसके अन्तर्गत 'हर्षचरित' के साथ-साथ 'बाणचरित' भी विशिष्ट रूप से निबद्ध है। सम्राट् हर्षवर्धन का स्थिति-काल चूँकि, निर्णीत है इसलिए बाणभट्ट के स्थिति-काल के विषय में निर्णय देना सरल हो गया है। बाणभट्ट चूँकि हर्षवर्धन के समकालीन थे तथा हर्षवर्धन का स्थिति-काल ईसा के सप्तम शतक का पूर्वार्ध (६०६—६४८ ई०) माना जाता है अतः बाणभट्ट का भी वही स्थितिकाल सिद्ध होता है। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में अपना विस्तृत परिचय देकर वस्तुतः संस्कृत-सेवियों पर महती कृपा की है अन्यथा जिस प्रकार कालिदास आदि अनेक कवियों के स्थिति-काल या जीवन-वृत्त के विषय में ऊहापोह होता रहा है तथा गवेषक समाज निर्णयात्मक स्थिति से आज तक वञ्चित रहा है उसी प्रकार बाणभट्ट के विषय में भी तर्क-वितर्क एवम् अनुमान का आडम्बर ही चलता रहता।

३. बाणभट्ट की वंश-परम्परा

महाकवि बाणभट्ट ने अपने जन्म-कुल के विषय में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। बाणभट्ट के जन्मकुल का तथा स्वयं बाणभट्ट के जीवन का परिचय प्राप्त करने में बाणभट्ट द्वारा वर्णित उनकी वंश-परम्परा नितान्त सहायिका सिद्ध

हुई है। बाण ने अपनी वंश-परम्परा का वर्णन पौराणिक शैली में किया है। एक बार इन्द्रादि देवताओं के बीच भगवान् ब्रह्मा अपने कमलासन पर विराजमान थे। देवताओं की उस गोष्ठी में मनु, दक्ष, चाक्षुष आदि प्रजापति तथा मुनिगण भी उपस्थित थे तथा वे सभी ब्रह्म के विषय में विचार कर रहे थे। उस समय ऋक्, यजुः तथा साम का पाठ भी चल रहा था तथा वेदार्थ के सम्बन्ध में परस्पर विवाद का भी प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता था। इसी क्रम में स्वभाव से ही अत्यन्त क्रोधी समझे जाने वाले महामुनि दुर्वासा तथा उपमन्यु नामक मुनि के बीच विवाद छिड़ गया। क्रोधाभिभूत दुर्वासा ने सामगान करते हुए विस्वर पाठ कर दिया। दुर्वासा के इस विस्वर सामगान को सुन कर गोष्ठी में उपस्थित सभी देवता एवम् मुनि लोग स्तब्ध हो गये तथा महाक्रोधी दुर्वासा शाप न दे दें इस भय से किसी ने कुछ बोलने का साहस न किया। भगवान् ब्रह्मा ने भी प्रयास किया कि यह भयावह प्रसङ्ग टल जाय किन्तु उनके पार्श्वभाग में चामर लेकर खड़ी देवी सरस्वती अपने चंचल स्वभाव के कारण महामुनि दुर्वासा के उस विस्वर सामगान पर हँस पड़ी। देवी सरस्वती का अपने पर हँसते हुए देखकर दुर्वासा क्रोध से तिलमिला उठे तथा शाप देने के लिए उन्होंने हाथ में जल उठा लिया। सरस्वती को शाप देने तत्पर हुए दुर्वासा को स्वयं ब्रह्माजी ने काफी फटकारा, अत्रि मुनि ने उन्हें रोकने का प्रयास किया तथा सरस्वती की सखी सावित्री ने भी उनसे शाप न देने के लिए प्रार्थना की किन्तु दुर्वासा ने उन सबों के अनुरोध एवम् प्रार्थना को ठुकराते हुए अन्ततः सरस्वती को शाप दे ही डाला कि सरस्वती को ब्रह्मलोक का परित्याग कर तब तक अन्यत्र निवास करना होगा जब तक कि वह अपने पुत्र का मुँह न देख ले। दुर्वासा द्वारा अभिशप्त होने पर सरस्वती ने किसी प्रकार अपनी सखी सावित्री के साथ मर्त्यलोक के लिए प्रस्थान किया। स्वर्गङ्गा के तट-मार्ग से होते हुए वह मर्त्यलोक के हिरण्यवाह शोणनद के समीप उतरी। सरस्वती ने शोणनद के तट पर ही निवास करने का आग्रह किया। दोनों शोणनद के तट पर एक लतामण्डप में निवास करने लगी। शोण में नित्य स्नान तथा देवपूजन करते हुए उन दोनों ने कुछ दिन बिताये।

एक समय, दिन जब एक पहर चढ़ गया था तो उत्तर दिशा की ओर घोड़ों की हिनहिनाहट सुन पड़ी। सरस्वती उत्सुकतावश लतामण्डप से निकली और उसने देखा कि धूल उड़ाता हुआ घोड़ों का समूह चला आ रहा था, जिसके साथ हजारों पैदल युवक चले आ रहे थे। अश्वारोहियों के बीच अट्ठारह वर्ष की आयु का एक युवक भी था जो अत्यन्त सुन्दर था। उसके साथ-साथ एक प्रौढ़ व्यक्ति भी चल रहा था। वह युवक दिव्य आकृतिवाली दोनों कन्याओं को देखता हुआ कुतूहल से लतामण्डप के समीप आ पहुँचा और घोड़े से उतर गया। अपने अन्य सहयोगियों को उसने दूर पर ही रोक दिया तथा उस दूसरे सज्जन के साथ पैदल ही वहाँ आ गया। सरस्वती के साथ साबित्री ने वनवासोचित सामग्री से उसका सत्कार किया तथा उस वृद्ध व्यक्ति से पूछा—"यह युवक कहाँ से आया है? इसे जाना कहाँ है? इसके पिता कौन हैं, माता का क्या नाम है और इसका क्या नाम है?" साबित्री के इस अनुरोध पर उस पुरुष ने कहा—"यह च्यवन का पुत्र दधीच है। इसकी माता का नाम सुकन्या है जो राजा शर्यात की पुत्री है। राजा शर्यात पुत्री को गर्भवती जानकर उसे पति के घर से अपने घर ले गये। वहीं उसने इसे जन्म दिया। इस प्रकार अपने ननिहाल में ही यह बढ़ा। जब इसकी माता अपने पति के घर जाने लगी तब इसके नाना ने स्नेहवश इसे अपने ही साथ रख लिया। वहीं पर इसने समस्त विद्याओं एवं कलाओं में निपुणता प्राप्त की तब किसी प्रकार नाना ने इसे पिता के पास जाने के लिए छोड़ा। मैं उन्हीं शर्यात का आज्ञाकारी भृत्य हूँ तथा मेरा नाम विकुक्षि है। मुझे इसे पिता के घर पहुँचाने के लिए भेजा गया है। शोण के उस पार भगवान् च्यवन का आश्रम है, हम वहीं जा रहे हैं।" यह कहकर उस पुरुष ने उन दोनों का भी परिचय पूछा। तब साबित्री ने कहा—"आर्य, हम दोनों का यहाँ बहुत दिनों तक रहने का विचार है अतः धीरे-धीरे सब कुछ ज्ञान हो जायगा।" फिर दधीच और वह पुरुष दोनों घोड़ों पर चढ़कर च्यवनाश्रम की ओर चल पड़े। इधर सरस्वती दधीच के चले जाने पर उस दिशा की ओर ही देर तक आखें फैलाये बैठी रही, फिर किसी प्रकार वह दिन बीता। रात में भी दधीच के दर्शन की चिन्ता में सरस्वती निमग्न रही। इस प्रकार जब कई रातें बीतीं तो अपने देश की ओर लौटते हुए विकुक्षि वहाँ पहुँचा। साबित्री

ने दधीच का कुशल पूछा। विकुक्षि ने दधीच की मालती नाम की दूती के आने का समाचार कहकर बिदा ली। विकुक्षि के जाने पर अश्वारूढ़ होकर मालती वहाँ पहुँची। दोनों ने उसका सम्मान किया। मालती कुछ देर तक ठहरी और फिर दधीच को लाने के लिए च्यवनाश्रम गयी और दधीच को साथ लेकर लौटी। प्रणय हो जाने पर दधीच सरस्वती के साथ एक वर्ष तक वहीं रह गये। दैवयोग से सरस्वती ने गर्भ धारण किया और समय पर पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के जन्म लेते ही सरस्वती ने उसे समस्त वेदों, शास्त्रों और कलाओं में निष्णात हो जाने का वर प्रदान किया। इसके बाद दधीच एवं पितामह के आदेश से वह सावित्री के साथ ब्रह्मलोक चली गयी क्योंकि दुर्वासा ने उसे जो शाप दिया था उसकी समाप्ति हो चुकी थी। सरस्वती के चले जाने पर दधीच ने भार्गव वंश में उत्पन्न अपने भाई की अक्षमाला नाम की पत्नी के पास उस सारस्वत पुत्र को पालने के लिए छोड़कर स्वयं तपस्या करने के लिए जंगल में प्रस्थान किया। जिस समय सरस्वती ने पुत्र को जन्म दिया था उसी अवसर पर अक्षमाला ने भी अपने गर्भ से एक पुत्र को जन्म दिया था। अक्षमाला ने दोनों पुत्रों का समुचित पालन-पोषण कर उन्हें बढ़ाया। उनमें से एक का नाम सारस्वत तथा दूसरे का नाम वत्स था। दोनों में सहोदर भाई जैसा स्नेह था। माता के वरदान से सारस्वत युवावस्था के प्रारम्भ में ही समग्र शास्त्रों का पारंगत विद्वान् बन गया। उसने वत्स को भी अपनी सारी विद्या दे दी तथा उसका विवाह करवाकर प्रीतिकूट नामक स्थान बनवा दिया। उसके बाद सारस्वत स्वयं दण्ड-चीवर धारण करके तपस्या करने के लिए वहीं चला गया जहाँ उसके पिता दधीच तपस्या कर रहे थे।

उसी वत्स से वंश-प्रवर्तन हुआ। उसी वंश की परम्परा में बाणभट्ट का जन्म हुआ। बाण ने वात्स्यायन-वंश की परम्परा भी प्रस्तुत की है। वत्स के पश्चात् अनेक वर्ष बीते तथा बहुत-से वात्स्यायन ब्राह्मण उस वंश में उत्पन्न हुए। उसी क्रम में कुबेर नामक ब्राह्मण उत्पन्न हुआ जिसके चार पुत्र हुए—अच्युत, ईशान, हर तथा पाशुपत। पाशुपत के अर्थपति नामक पुत्र हुआ जिसने—भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप नामक

ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया। चित्रभानु के ही पुत्र बाणभट्ट थे। बाण की माता का नाम राजदेवी था। बाण के दो पारशव (शूद्र स्त्री से उत्पन्न) भाई थे—चित्रसेन और मित्रसेन और चार चचेरे भाई थे—गणपति, अधिपति, तारापति तथा श्यामल।

इस प्रकार बाणभट्ट ने अपने वात्स्यायन वंश का उद्भव तथा उसमें उत्पन्न हुए अपने कुलपुरुषों की क्रमिक वंशावली का उल्लेख किया है। इसी प्रसंग में अपनी भी चर्चा उन्होंने की है।

४. बाणभट्ट का जीवनवृत्त

'हर्षचरित' के प्रारम्भिक दो-तीन उच्छ्वासों में बाणभट्ट ने अपनी जीवन-गाथा का सविस्तार उल्लेख किया है। बाणभट्ट के जीवनवृत्त से सुपरिचित होने के लिए प्रस्तुत की गयी यह सामग्री नितान्त सहायिका सिद्ध हुई है। बाणभट्ट का जीवन बाल्यावस्था से ही कितना संघर्षपूर्ण रहा तथा एक यशस्वी कवि के रूप में स्वयं को स्थापित करने में उन्हें कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा; इन सभी बातों का उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है। बाणभट्ट की यह आत्मकथा उनके जीवनवृत्त की परिचायिका होने के साथ-साथ जिज्ञासुओं के लिए नितान्त प्रेरणाप्रद भी है।

बाणभट्ट के पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था। बाल्यावस्था में ही बाणभट्ट को मातृवियोग का असह्य दुःख झेलना पड़ा तथा उनके पिता ने ही मातृस्नेह के साथ उनका पालन-पोषण किया। घर पर ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई तथा उनके उपनयन आदि संस्कार भी उनके पिता ने ही सम्पन्न कराये। बाण जब चौदह वर्ष के हुए तो उनके पिता भी उन्हें छोड़कर चल बसे। तब तक बाण का समावर्तन संस्कार एवं विवाह भी हो चुका था। पिता के आकस्मिक निधन ने बाण को अत्यन्त उद्वेलित कर दिया किन्तु इस अप्रत्याशित विपत्ति को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए उन्होंने अपना कुछ समय घर पर ही बिताया। कुछ दिनों के बाद बाण का पितृशोक जब कुछ कम हुआ तो उनकी स्वतन्त्र प्रकृति मचल उठी। उनकी विनम्रता में कमी आने

लगी तथा अपने अल्हड़ स्वभाव के कारण नित्य नूतन वस्तुओं के प्रति उनके मन में उत्सुकता जगने लगी। परिणामतः बाण युवावस्था के प्रारम्भ में ही घुमक्कड़ एवं आवारा बन गये। अपने पैतृक वैभव की उपेक्षा कर देश-देशान्तरों में वे भ्रमण करने लगे। इस अवधि में उनके साथ अनेक सहायक तथा मित्र भी थे जिनका विस्तृत उल्लेख उन्होंने 'हर्षचरित' में यथास्थान किया है।

अपने उच्छृङ्खल भ्रमण के क्रम में ही बाण ने तत्कालीन जीवन का गम्भीर अध्ययन किया। वे राजकुलों में पहुँचे जहाँ के व्यवहार अत्यन्त उदार होते थे, गुरुकुल या तत्कालीन शिक्षा संस्थानों में भी कुछ समय तक रहे, बहुमूल्य बात-चीत करने वाले गुणवान् व्यक्तियों की गोष्ठियों में भी बैठे तथा विदग्ध लोगों के बीच भी वे पहुँचे। इस प्रकार युवक बाण को जीवन के आरम्भ में ही अनुभव के चार स्रोत उपलब्ध हो गये। अनुभव प्राप्त होने पर बाण की चंचल प्रकृति परिवर्तित हो गयी। वे वात्स्यायन वंश के अनुरूप गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति बन गये। बहुत समय तक देश-देशान्तरों का चक्कर काटकर वे पुनः अपनी जन्मभूमि प्रीतिकूट लौट आये तथा अपने बाल-सखाओं से अत्यन्त स्नेह के साथ मिले।

प्रीतिकूट लौटने पर बाण अपने बन्धु-बान्धवों से मिलकर परम प्रसन्न हुए। दीर्घकाल तक वे प्रीतिकूट में ही सानन्द निवास करते रहे। एक दिन स्थाण्वीश्वर के महाराज श्रीहर्ष के भाई द्वारा प्रेषित मेखलक नाम का दीर्घाध्वग् गर्मी के दिनों में बाण से आकर मिला। उस समय बाण भोजन करने के बाद अपने घर में आराम कर रहे थे। उनके पारशव (शूद्रा जननी से उत्पन्न) भाई ने भीतर आकर उसके आगमन की सूचना दी। बाण ने कहा—"उसे शीघ्र अन्दर ले आओ।" तब वह दीर्घाध्वग् भीतर जाकर बाण के समीप कुछ हट कर बैठा। बाण के पूछने पर उसने श्रीहर्ष के भाई कृष्ण का कुशल-समाचार सुनाया तथा उनका पत्र बाण को दिया। बाण ने पत्र को स्वयं पढ़ा। फिर मेखलक ने मौखिक सन्देश के रूप में कृष्ण की ओर से कहा—"मैं तुमसे अकारण ही अपने बन्धु के समान प्रेम करता हूँ। तुम्हारी अनुपस्थिति में कुछ दुष्ट लोगों ने सम्राट् के कान भर दिये हैं किन्तु वह सत्य नहीं है। किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने तुम्हारी बाल-चपलताओं से चिढ़ कर कुछ ऐसी-वैसी बातें महाराज से कह दी

हैं। दूसरे लोगों ने भी ठीक वैसा ही समझा वे लोग भी महाराज से तुम्हारी शिकायत करने लगे। सम्राट् ने वैसे मूर्खों की एक-सी बात सुन कर अपना मत स्थिर कर लिया। तुम्हारे विषय में मैंने महाराज से निवेदन किया और उन्होंने मेरी बात मान ली। अब अपने घर पर व्यर्थ समय बिताना ठीक नहीं। तुम शीघ्र राजकुल आ जाओ।''

यह सुन कर बाण ने चन्द्रसेन को यह आज्ञा दी कि वह मेखलक को ले जाकर भोजन करावे तथा उसके विश्राम की व्यवस्था कर दे। उस समय दिन ढल चुका था। बाण सन्ध्योपासना से निवृत्त होकर पुनः अपने शयनीय पर आ गये तथा सम्राट् से मिलने के विषय में एकाकी सोचने लगे—''क्या करूँ? महाराज ने मुझे कुछ और ही समझ लिया है, मेरे अकारण-बन्धु कृष्ण ने ऐसा सन्देश भेजा है, सेवा बहुत कष्टदायिनी हुआ करती है, नौकरी करना मेरे अनुकूल नहीं, राजकुल अतिगम्भीर और विशाल है, न तो मेरे पूर्वजों का राजकुल से सम्बन्ध रहा है जिससे प्रेमभाव बना है, न तो मुझमें कुल क्रमागत क्षमता ही है, न तो पहले राजकुल के द्वारा किये हुए उपकार का स्मरण मुझे आता है, न तो बाल्यावस्था में मुझे राजकुल से ऐसी सहायता मिली है जिसका स्नेह मान कर चला जाय, न तो बड़े होने का अब तक गौरव मिला है, न पहली मेल-मुलाकात की अनुकूलता है, न तो बुद्धि सम्बन्धी आदान-प्रदान करने का प्रलोभन है, न तो अपनी विद्या के अतिशय प्रदर्शन का कुतूहल है, न तो अपनी सुन्दर आकृति से मिलने वाले आदर की आकांक्षा है, न सेवावृत्ति के अनुरूप चापलूसी करने की कला मुझे आती है, न तो मुझमें ऐसा चातुर्य है कि विद्वानों की गोष्ठियों में भाग ले सकूँ, न तो धन खर्च करके दूसरों को मुट्ठी में कर लेने की आदत है और न तो राजा के प्रियजनों से मेरा परिचय है किन्तु कृष्ण के सन्देशानुसार जाना भी आवश्यक ही है। त्रिभुवन गुरु भगवान् शंकर वहाँ जाने पर सब भला करेंगे।'' यह सोच कर बाण ने कृष्ण के सन्देशानुसार महाराज हर्ष की सेवा में उपस्थित होने का निश्चय कर लिया।

अगले दिन, बाण ने प्रातःकाल स्नान करने के बाद उज्ज्वल दुकूल धारण किया तथा हाथ में अक्षमाला लेकर प्रास्थानिक सूक्तों एवम् मन्त्रपदों को बार-

बार दुहराया। फिर देवों के देव भगवान् शङ्कर की साङ्गोपाङ्ग अर्चना की तथा तिल एवम् घृत की आहुतियों से हवन कार्य सम्पन्न किया। ब्राह्मणों को दक्षिणा में धन दिया। होमधेनु की परिक्रमा की। शुक्ल अङ्गराग, शुक्ल माल्य, शुक्ल वस्त्र एवम् रोचना चित्रित तथा दूर्वाग्र ग्रथित गिरि-कर्णिक नामक पुष्प का कर्णपूर और शिखा में सिद्धार्थक आदि माङ्गलिक द्रव्यों से परिष्कृत होकर बाण प्रस्थान के लिए तैयार हो गये। माता के समान स्नेह से आर्द्र हृदय वाली पिता की छोटी बहन मालती ने बाण के प्रस्थान की माङ्गलिक तैयारी की। गाँव की बान्धव-वृद्धाओं ने आशीर्वाद दिये, परिजनों की बूढ़ी स्त्रियों ने बाण का अभिनन्दन किया, पूजित-चरण गुरुओं ने बाण के प्रस्थान का समर्थन किया, कुलवृद्धों ने उनका मस्तक सूँघा, शुभ शकुनों से उनका उत्साह और भी बढ़ा, ज्योतिषियों ने नक्षत्र की गणना की, फिर शुभ मुहूर्त में जल से पूर्ण कलश की ओर दृष्टिपात करते हुए कुलदेवताओं को प्रणाम कर बाण प्रीतिकूट से निकल पड़े।

पहले दिन गर्मी में किसी प्रकार धीरे-धीरे चण्डिका वन-कानन पार कर वे मल्लकूट नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ बाण का भाई तथा उनका हार्दिक मित्र जगत्पत्ति रहता था जिसने समागत बाण का सत्कार किया। बाण उस दिन वहीं सुखपूर्वक ठहरे। दूसरे दिन उन्होंने गङ्गा को पार कर यष्टिगृहक नामक वनग्राम में रात बितायी। फिर राप्ती (अजिरवती) के किनारे मणितारा नामक गाँव के पास हर्ष के स्कन्धावार (छावनी) में वे पहुँचे जो राजभवन के सन्निकट ही था। वहाँ स्नान, भोजन एवम् विश्राम के बाद जब एक पहर दिन बाकी था, और जब सम्राट् हर्ष भी भोजनादि से निवृत्त हो चुके थे तब मेखलक के साथ वे राजद्वार के लिए चल पड़े। मार्ग में अनेक प्रसिद्ध राजाओं के शिविर सन्निवेश मिले। राजद्वार पर सम्राट् के दर्शनार्थ नाना देशों से सामन्त लोग पधारे हुए थे। झुण्ड के झुण्ड हाथी, घोड़े और ऊँट खड़े थे और हजारों आतपत्रों से वहाँ श्वेतद्वीप का सादृश्य था। सब लोग राजद्वार के राजकीय अनुयायियों से यह पूछते नहीं थकते थे कि बाह्य कक्ष में उपस्थित होकर सम्राट् कब दर्शन देंगे? एक ओर एकान्त में बौद्ध, जैन, पाशुपत, संन्यासी, वर्णी सम्प्रदायों के

साधु, सब देशों के लोग, समुद्रीतटों के निवासी, म्लेच्छ और समस्त द्वीपों से संवाद लेकर लौटे हुए दूत एकत्र थे। राजद्वार के उस दृश्य को देख कर बाण के मन में आश्चर्य हुआ। द्वारपालों ने मेखलक को दूर से ही पहचान लिया। मेखलक बाण से ''क्षण भर आप यहीं ठहरें'' यह कह कर बेरोक भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद वह महाप्रतीहारों के प्रधान दौवारिक पारियात्र के साथ वापस आया। मेखलक द्वारा परिचित होकर पारियात्र ने बाण को प्रणाम किया और विनम्रता पूर्वक कहा—''देव के दर्शन के लिए भीतर पधारिये, आप पर देव की प्रसन्नता है।'' बाण भी ''धन्य हूँ, जो देव मुझे इस प्रकार अपने अनुग्रह का पात्र समझते हैं'' कह कर उसके साथ भीतर प्रविष्ट हुए। तब बाण ने बनायु, आरट्ट, काम्बोज, भरद्वाज, सिन्ध और पारस देश के राजवल्लभ अश्वों से भरी हुई मन्दुरा देखी। कुछ दूर हट कर बायीं ओर इभधिष्ण्यागार का हाथियों का लम्बा-चौड़ा बाड़ा मिला। वहीं बाण ने सम्राट् के मुख्य हाथी दर्पशात को देखा। उसे देख कर बाण बहुत आश्चर्यित हुए और सोचने लगे—निश्चय ही इन महाराज के निर्माण में बड़े-बड़े पर्वत परमाणु बनाये गये होंगे, नहीं तो यह गौरव इनमें कहाँ से आता? इस प्रकार पुनः तीन कक्षाओं को पार कर बाण ने मुक्तास्थान मण्डप के सामने वाले आंगन में सम्राट् हर्ष के दर्शन किये।

सम्राट् हर्ष के समक्ष उपस्थित होकर बाण ने अपना दायां हाथ उठा कर 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण किया। हर्ष ने उसे देख कर दौवारिक से पूछा—'यह वही बाण है?' दौवारिक ने कहा—'देव का कथन सत्य है, वह यही बाण है।' इस पर हर्ष ने कहा—'मैं इसे तब तक नहीं देखना चाहता जब तक मेरी प्रसन्नता न प्राप्त कर ले।' यह कह कर उन्होंने अपने पीछे बैठे हुए मालवराज के पुत्र (माधव गुप्त?) से कहा—'यह भारी भुजङ्ग (आवारा) है।'

बाण राजा के अभिप्राय को नहीं समझ सके। समस्त राजमण्डली में सन्नाटा साधा गया। बाण कुछ देर तक मौन रहकर बोले—'आप इस प्रकार की बात कैसे कहते हैं? जैसे आपको मेरे विषय में वास्तविकता का ज्ञान न हो,

या मेरा विश्वास न हो, या आपकी बुद्धि दूसरों पर निर्भर रहती हो अथवा आप स्वयं लोक-वृत्तान्त से अनभिज्ञ हों। लोगों के स्वभाव और फैली हुई बात मनमानी और तरह-तरह की होती हैं किन्तु श्रेष्ठ लोगों को ठीक-ठीक देखना चाहिए। मुझे साधारण समझकर अनाप-शनाप कल्पना न करें। मैं सोमपान करने वाले वात्स्यायन ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। समय से मेरे यज्ञोपवीतादि संस्कार सम्पन्न हुए हैं। मैंने अङ्गों के साथ वेदों का सम्यक्तया स्वाध्याय किया है। अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रों का भी श्रवण मैंने किया है। विवाह के क्षण से लेकर मैं नियमित गृहस्थ हूँ। तो मुझमें आखिर कैसी भुजङ्गता (आवारगी) है ? मेरी नयी अवस्था की कुछ चपलताएँ अवश्य हैं किन्तु वे ऐसी नहीं हैं जिनसे इहलोक या परलोक का परस्पर कुछ विरोध हो; मैं इस बात को अस्वीकार नहीं करता। मुझे इसी बात का बहुत पश्चात्ताप है। हे देव ! आप भगवान् बुद्ध की भाँति समान शान्तचित्त, मनु के सदृश वर्णाश्रम मर्यादा के रक्षक तथा यम के समान दण्डधर हैं। सातों समुद्रों की करधनी और द्वीपों की माला से विराजित पृथिवी पर आपका एकच्छत्र शासन है, तो कौन ऐसा निर्भीक है जो सर्वथा दुःखद अभिनय करने की कल्पना मन से भी कर सके ? समय से आप स्वयं मेरे विषय में सब जान लेंगे क्योंकि बुद्धिमानों का यह स्वभाव होता है कि वे किसी विषय में विपरीत हठ नहीं करते।" इतना कहकर बाण चुप हो गये। सम्राट् ने भी "मैंने ऐसा ही सुना था" बस इतना ही कहा किन्तु बात-चीत तथा आसनदानादि के प्रसाद से बाण को अनुगृहीत नहीं किया। केवल स्नेहामृत की वर्षा करने वाले दृष्टिपात मात्र से बाण को स्नापित करते हुए उन्होने बाण के प्रति अपने हृदय में अवस्थित प्रेम को प्रकट किया। जब सूर्यास्त होने लगा तो सम्राट् राजसमूह से बिदा लेकर महल के अन्दर चले गये।

बाण वहाँ से निकल कर अपने निवास स्थान स्कन्धावार में लौट आये। तब वे अपने मन में सोचने लगे—'सचमुच देव हर्ष बड़े उदार हैं क्योंकि मेरे बाल्यकाल की चपलताओं से फैले हुए जनापवाद को सुनकर कुपित होने पर भी मन में मेरे प्रति स्नेह अवश्य रखते हैं। मैं उनकी आँखों पर चढ़ा हुआ

(अक्षिगत अर्थात् कोपभाजन) होता तो वे दर्शन देने की कृपा कैसे करते ? वे मुझे गुणी देखना चाहते हैं। बड़ों की यही रीति है कि छोटों को बिना मुख से कहे ही केवल व्यवहार से विनम्रता की शिक्षा दे डालते हैं। मुझे धिक्कार है; यदि अपने ही दोषों से अन्धा होकर और केवल अनादर से दुःखी होकर मैं ऐसे गुणवान् राजा के विषय में कुछ सोचने लगूं। अब मैं सर्वथा वही करूँगा जिससे समय से वे मुझे सही रूप में पहचान लें।" ऐसा निश्चय कर बाण दूसरे दिन स्कन्धावार से निकल पड़े तथा मित्रों एवं सम्बन्धियों के यहाँ जा ठहरे। तब तक सम्राट् हर्ष भी उनके स्वभाव से परिचित होकर उन पर प्रसन्न हो गये और फिर तो बाण राजभवन में आकर जम गये। थोड़े ही दिनों में सम्राट् उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें अपने प्रसादजनित सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन-सम्पत्ति, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिये।

सम्राट् हर्षवर्धन से पर्याप्त सम्मान प्राप्त कर लेने के बाद एक समय शरत्काल के प्रारम्भ में बाण अपने बन्धु-बान्धवों से मिलने की उत्कण्ठा से प्रीतिकूट आये। बाण के भाई-बन्धु उनकी प्रशंसा करते हुए उनके स्वागत में निकल पड़े। उन सबों से मिलकर बाण को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने सबसे पूछा—"आप लोग सुखपूर्वक तो रहे ? यज्ञ का कार्य तो चल रहा है ? प्रतिदिन वेदाभ्यास अविच्छिन्न है न ? व्याकरण के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ तो होते रहते हैं ? काव्य-चर्चा होती रहती है न ?" तब उन सबने बाण से कहा—"हम लोग सब प्रकार से सकुशल हैं। अपनी शक्ति और विभव के अनुसार समय से सब लोग ब्राह्मणोचित क्रियाकलाप करते हैं। जब तुम परमेश्वर महाराज हर्ष के पार्श्व भाग में वेत्रासन पर स्थित हो तो विशेषरूप से हम लोग प्रसन्न हैं।" इस प्रकार अनेक बातों से मन बहलाते हुए बाण उनके साथ देर तक ठहरे। मध्याह्न में उठकर वे स्नानादि से निवृत्त हुए। भोजन के बाद जब वे पुनः बैठे तो सबके सब उनके पास जुट गये और उन्हें घेर कर बैठ गये। इसी बीच सुदृष्टि नामक बाण का पुस्तकवाचक वहाँ आ गया तथा उनके कुछ दूर पर रखी वेत्र-पीठिका पर बैठ गया। क्षण भर रुककर तत्काल उसने सूत की बेठन खोल दी। पुस्तक को उसने सरकंडों के बने पीढ़े पर रख दिया। पीछे समीप में बैठे हुए मधुकर

और पारावत नामक वंशीवादक बाण के दो मित्रों ने जब अवकाश दिया, तब सुदृष्टि वायु पुराण का पाठ करने लगा।

सुदृष्टि जब वायु पुराण के पाठ में संलग्न था तभी सूचीबाण नामक बन्दी ने दो आर्या छन्दों का गान किया। उसने कहा कि वायु-पुराण हर्ष के चरित से अभिन्न प्रतीत होता है। आर्याओं को सुन कर बाण के चार चचेरे भाइयों—गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल ने एक दूसरे की ओर देखा। उसके बाद उन चारों में सबसे छोटा बाण का अत्यन्त प्रिय श्यामल बोला—"तात बाण, प्रातःस्मरणीय, पुण्यों के राशि देव हर्ष का चरित पूर्वपुरुषों को वंश-परम्परा के साथ हम सुनना चाहते हैं। बहुत दिनों से हम लोगों की यह इच्छा बनी हुई है। अतः आप कहें। यह भार्गव-वंश पुण्यवान् राजर्षि के पावन चरित को सुन कर और अधिक पावन बन जाय।" बाण ने हँस कर अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए दूसरे दिन हर्षचरित का वर्णन आरम्भ करने के लिए निश्चय किया तथा सन्ध्योपासना के लिए वे शोण के तट पर चले गये।

इस प्रकार बाण ने दूसरे दिन हर्ष के पूर्वपुरुषों की वंश-परम्परा के साथ हर्षचरित का वर्णन प्रारम्भ किया। बाण के जीवन के विषय में इसके अतिरिक्त कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होता।

बाण ने अपनी दूसरी विश्वविश्रुत कृति कादम्बरी के प्रारम्भ में भी संक्षेप में अपनी वंश-परम्परा का उल्लेख किया है। कादम्बरी में जो वंश-परम्परा दी गयी है तदनुसार कुबेर के बाद अर्थपति का उल्लेख आता है। बीच में पाशुपत का नाम छूट गया है। हर्ष की मृत्यु के बाद बाण प्रीतिकूट लौट आये। वहीं इन्होंने अपने दोनों ग्रन्थों को लिखा। 'हर्षचरित' में बाण के जीवनवृत्त से सम्बद्ध आकांक्षा की पर्याप्त मात्रा में पूर्ति नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में बाण ग्रन्थ को पूरा करने के प्रति उदासीन हो गये। कादम्बरी को भी वे अपूर्ण ही छोड़ गये। सौभाग्य से उनके सुयोग्य पुत्र ने उसे पूरा किया। कुछ लोगों के अनुसार बाण के पुत्र का नाम भूषणबाण या भूषणभट्ट था। कादम्बरी की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में 'पुलिन' या

'पुलिन्द' नाम मिलता है। धनपाल विरचित 'तिलकमंजरी' में पुलिन्द ही का उल्लेख है—

"केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानं पुलिन्दकृतसन्निधिः॥"

[ति० म० २६वाँ पद्य]

बाण के समकालीन कवियों में मातंगदिवाकर तथा मयूर का उल्लेख आता है। जनश्रुति के अनुसार मयूर कवि बाण के साले बताये गये हैं। बाण ने अपने विवाह का उल्लेख सम्राट् हर्ष से मिलने के प्रसंग में ही किया है— "दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि।" इसके अतिरिक्त बाण के वैवाहिक जीवन के विषय में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाती।

'हर्षचरित' में उपलब्ध बाण के जीवनवृत्त से यही ज्ञात होता है कि वे प्रारम्भ में अत्यन्त मनमोजी स्वभाव के थे किन्तु देश-देशान्तर का पर्याप्त भ्रमण करने के बाद उन्हें सांसारिक अनुभवों की ऐसी पूँजी हाथ लग गयी जिसने उन्हें पूर्ण गम्भीर बना दिया। प्रतिभाशाली तो वे थे ही; साथ ही सम्राट् हर्षवर्धन के कृपापूर्ण सान्निध्य में उनकी प्रतिभा को निखरने का पर्याप्त अवसर मिला और इस स्वर्णिम अवसर का पूरा लाभ बाण ने उठाया।

५. बाण की रचनाएँ

महाकवि बाणभट्ट की उपलब्ध एवं प्रामाणिक रचनाओं में हर्षचरित तथा कादम्बरी को ही परिगणित किया जा सकता है। वैसे बाणभट्ट के नाम से अन्य कई रचनाएँ संस्कृत साहित्य में उल्लिखित हैं जिनमें चण्डीशतक, पार्वती-परिणय तथा मुकुटताडितक प्रसिद्ध हैं। चण्डीशतक में १०० पद्यों में भगवती दुर्गा की स्तुति की गयी है। पार्वती-परिणय तथा मुकुटताडितक—ये दोनों नाटक हैं। इन सभी कृतियों का रचयिता बाण को ही बताया जाता है किन्तु डॉ० ए० बी० कीथ के अनुसार 'पार्वती-परिणय' नामक नाटक वस्तुतः ईसा की १५वीं शताब्दी में उत्पन्न तैलंगदेशीय तथा वत्सगोत्रीय कवि वामनभट्ट बाण की रचना है। नलचम्पू के टीकाकार चण्डपाल तथा गुणविजय गणि के अनुसार

महाभारतीय कथा पर आश्रित 'मुकुटताडितक' नामक नाटक की रचना बाणभट्ट ने ही की है किन्तु वह ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

यह भी अनुमान लगाया जाता है कि बाण ने अपनी कादम्बरी की रचना पद्य में भी की होगी। बाण की रचना शैली की प्रशंसा करते हुए भोज ने कहा है--

"यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः।"

[सरस्वतीकण्ठाभरण २।२०]

अर्थात् गद्यरचना में बाण को जैसी नैपुणी प्राप्त है वैसी पद्यरचना में नहीं। भोज के इस कथन का आधार पार्वती-परिणय आदि नाट्य ग्रन्थ नहीं हो सकते अतः निश्चय ही बाण द्वारा विरचित कोई पद्य ग्रन्थ अवश्य रहा होगा। क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' में पद्य-कादम्बरी का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त सुभाषित ग्रन्थों में उद्धृत पद्यों के साक्ष्य पर भी यह सिद्ध होता है कि बाण ने पद्यरचना में भी अपनी प्रतिभा एवं पाण्डित्य का उपयोग अवश्य किया होगा किन्तु प्रबल प्रमाणों के अभाव में तत्काल यही मान लेना उचित है कि हर्षचरित तथा कादम्बरी ये दो महनीय गद्य ग्रन्थ ही बाणभट्ट की वास्तविक रचनाएँ हैं। बाण की रचनाशैली एवं कल्पना के आधार पर भी ये दोनों ग्रन्थ ही प्रामाणिक सिद्ध होते हैं इसलिए इन्हीं दोनों काव्यग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है--

(क) हर्षचरित

'हर्षचरित' बाणभट्ट की प्रथम रचना है। सम्राट् हर्षवर्धन के जीवनवृत्त को आधार बनाकर यह ऐतिहासिक काव्य विनिर्मित किया गया है। गद्य के जो 'आख्यायिका' एवं 'कथा' ये दो भेद हैं उनमें से हर्षचरित 'आख्यायिका' के अन्तर्गत परिगणित होता है।

संस्कृत में ऐतिहासिक काव्य के प्रणयन की परिपाटी बाणभट्ट से ही प्रारम्भ हुई। इससे पूर्व इस प्रकार के काव्य का निर्माण नहीं हुआ था। प्राकृत नायक को अपने काव्य का नायक बनाना हेय समझा जाता था इसीलिए बाणभट्ट के

पूर्व किसी कवि ने ऐतिहासिक काव्य के निर्माण में अपनी रुचि नहीं प्रदर्शित की। संस्कृत साहित्य के इस खटकने वाले अभाव की पूर्ति सर्वप्रथम बाण द्वारा ही सम्भव हुई।

हर्षचरित आठ उच्छ्‌वासों में निबद्ध है। प्रारम्भ के समग्र दो उच्छ्‌वासों में तथा तृतीय उच्छ्‌वास के लगभग चतुर्थांश में बाण ने आत्मकथा प्रस्तुत की है। इसके बाद आने इस काव्य के नायक सम्राट् हर्षवर्धन के चरित का वर्णन उन्होंने किया है। हर्षवर्धन के वंश-प्रवर्तक पुष्पभूति के वर्णन से हर्षचरित का श्रीगणेश किया गया है। हर्ष के पिता का नाम प्रभाकरवर्धन तथा माता का नाम यशोवती था। उनके अग्रज का नाम राज्यवर्धन था। राज्यवर्धन का जन्म ५८८ ई० में हुआ। दो वर्ष के बाद हर्ष का जन्म हुआ तथा तीन वर्ष के बाद हर्ष की बहन राज्यश्री का जन्म हुआ। राज्यश्री का विवाह मौखरि क्षत्रिय अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ हुआ। राज्य के उत्तरी क्षेत्र पर जब हूणों ने आक्रमण कर दिया तो राज्यवर्धन उनका प्रतिकार करने हेतु गये। वहाँ से राज्यवर्धन लौटे न थे कि इधर उनके पिता प्रभाकरवर्धन का निधन हो गया। हर्ष की माता महारानी यशोवती पति की मृत्यु होने से पूर्व ही चिता में बैठकर सती हो गयीं। इधर मालवा के राजा ने कन्नौज पर आक्रमण कर दिया तथा ग्रहवर्मा को मार डाला। राज्यश्री मालवाधिप की कैद में आ गयी। राज्यवर्धन ने हर्ष के कन्धे पर राज्य-भार सौंप कर शत्रु के विरुद्ध प्रयाण किया। उन्होंने मालवाधिप को तो युद्ध में परास्त कर डाला किन्तु उसके सहायक गौडाधिप ने धोखे से उन्हें मार डाला। अपने अग्रज के असामयिक निधन से हर्ष अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे। अपने अग्रज की मृत्यु का बदला लेने के लिए वे चल पड़े। मार्ग में ही उन्हें दिवाकर मित्र नामक बौद्ध भिक्षु से यह जानकारी मिली कि हर्ष की बहन राज्यश्री बन्दीगृह से छूट कर विन्ध्याटवी में भाग निकली है। कालान्तर में हर्ष अपनी बहन राज्यश्री से मिलने में सफल होते हैं।

इस प्रकार बाणभट्ट ने एक ऐतिहासिक तथ्य को आधार बना कर उसे अलंकृत काव्यमय शैली में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। ऐतिहासिक

तथ्य अपनी यथार्थता के कारण प्रायः शुष्क ही होता है। ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बना कर काव्य प्रणयन करने वालों के समक्ष यह गुञ्जाइश भी नहीं रहती कि वे कथावस्तु में सरसता का आधान करने के उद्देश्य से उसमें मनमाना परिवर्तन कर सकें। घटनाक्रम में बिना किसी प्रकार का परिवर्तन किये ही उसे यदि इस रूप में प्रस्तुत कर दिया जाय कि पाठकों को उसमें इतिहास की यथार्थता के साथ-साथ काव्य की सरसता का आनन्द भी साथ-साथ ही उपलब्ध होने लगे तो निश्चय यह रचयिता का ही अप्रतिम कौशल है। बाणभट्ट ने अपने इसी काव्यकौशल का परिचय हर्षचरित में दिया है। यह सत्य है कि हर्षचरित में जिन ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन किया गया है उनकी तिथियों का उल्लेख नहीं किया गया है। यहाँ तक कि हर्ष के अग्रज राज्यवर्धन को धोखे से मारने वाले गौडाधिप का भी नामोल्लेख नहीं किया गया है किन्तु इससे प्रस्तुत कृति की इतिहास-परकता तनिक भी बाधित नहीं होती। सरसता, अलङ्कारमयता आदि विविध गुणों के कारण काव्य का आनन्द तो सहज ही प्राप्त होता है। कथावस्तु को रुचिकर बनाने के लिए कहीं-कहीं अलौकिक पात्रों तथा पौराणिक कथाओं का भी इसमें उपयोग किया गया है।

'हर्षचरित' में महाकवि बाणभट्ट ने हर्ष के समकालीन युग की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का नितान्त प्रभावशाली चित्रण किया है। यही कारण है कि 'हर्षचरित' को 'सभ्यता का विश्वकोश' माना जाता है। हर्षचरित की तुलना यदि अजन्ता के कलामण्डप से की जाय तो यह कुछ अनुचित न होगा। ह्वेनत्सांग के संस्मरणों तथा हर्षचरित के घटनाक्रमों का ठीक-ठीक मेल हो जाने से हर्षचरित का महत्त्व स्वतः सिद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य की दृष्टि से भी 'हर्षचरित' का असामान्य महत्त्व है। बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भ में महाभारत, वासवदत्ता एवम् बृहत्कथा नामक ग्रन्थों की तथा भास, कालिदास, प्रवरसेन, भट्टार हरिश्चन्द्र एवम् आढ्यराज नामक कवियों की प्रशंसा की है। बाण के स्थिति-काल का निश्चय हो जाने पर अन्य कवियों के स्थितिकाल के निर्णय में बड़ी सहायता मिलती है।

गद्य की जो प्रौढ़ता कादम्बरी में दृष्टिगोचर होती है वह यद्यपि 'हर्षचरित' में नहीं है फिर भी बाण की इस प्रथम कृति में उनकी अभिव्यक्ति-क्षमता की प्रौढ़ता तो परिलक्षित होती ही है। ऐतिहासिक तथ्यों की यथार्थता को काव्यात्मक सरसता के मनोरम परिधान में लपेट कर बाण ने 'हर्षचरित' को सर्वसामान्य के लिए रुचिकर बनाने का सफल प्रयास किया है।

(ख) कादम्बरी

संस्कृत के अनेक मूर्धन्य कवियों ने अपनी काव्यकृतियों के लिए जिन प्राचीन ग्रन्थों का आश्रय लिया है उनमें तीन प्रमुख हैं—रामायण, महाभारत, बृहत्कथा। यही कारण है अवान्तरकालीन काव्य-कृतियों के लिए इन तीन काव्यग्रन्थों को उपजीव्य होने का गौरव प्राप्त है। श्रीमद्भागवत भी यद्यपि इस दृष्टि से पीछे नहीं है तथापि प्रधान रूप से इन्हीं तीनों की उपजीव्यता प्रसिद्ध है। बाणभट्ट की प्रथम रचना 'हर्षचरित' तो इतिहासपरक है किन्तु कादम्बरी की कथावस्तु के लिए उन्होंने गुणाढ्यकृत बृहत्कथा को ही आधार बनाया है। गुणाढ्य द्वारा रचित 'बृहत्कथा' पैशाची भाषा में निबद्ध वह कथा-ग्रन्थ है जिसका संस्कृत-भाषा में अनूदित स्वरूप क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर' में उपलब्ध होता है। इन दोनों ही कथाग्रन्थों में कादम्बरी-कथा का मूलरूप उपलब्ध होता है।

'कादम्बरी' के प्रारम्भिक २० पद्यों में देवस्तुति, गुरुवन्दना, खलनिन्दा, सज्जनप्रशंसा तथा कवि के द्वारा अपने वंश का वर्णन किया गया है। इसके बाद कथामुख अर्थात् कादम्बरी-कथा की भूमिका उपन्यस्त की गयी है। कथामुख के बाद प्रधान कथा वर्णित है। संक्षेप में कादम्बरी की कथा इस प्रकार है—

विदिशा के राजा शूद्रक के पास एक चाण्डाल-कन्या पञ्जरबद्ध आश्चर्यजनक शुक को लेकर आती है तथा राजा को समर्पित करती है। वह शुक अपने जन्म से लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम में पहुँचने तक का अपना वृत्तान्त सुनाता है। महर्षि जाबालि शुक के पूर्वजन्म की कथा सुनाते हैं—उज्जयिनी के राजा

तारापीड थे। उनकी रानी का नाम विलासवती था। उनके महामन्त्री का नाम शुकनास था जो अत्यन्त नीतिकुशल तथा गुणवान् थे। बहुत प्रतीक्षा के बाद राजा को पुत्र-लाभ होता है। उसी समय मन्त्री शुकनास की पत्नी मनोरमा भी एक पुत्ररत्न को जन्म देती है। राजा तारापीड के पुत्र का नाम चन्द्रापीड तथा मन्त्री शुकनास के पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा जाता है। दोनों बालक साथ-साथ गुरुकुल में अध्ययन करते हैं तथा युवावस्था प्राप्त करने पर दोनों दिग्विजय के लिए सेना लेकर निकल पड़ते हैं। राजकुमार चन्द्रापीड़ एक बार किन्नर-मिथुन का पीछा करते हुए बहुत दूर अच्छोद सरोवर के पास पहुँच जाते हैं। वहाँ उन्हें महाश्वेता नाम की एक गन्धर्व-कन्या मिलती है जिससे उन्हें ज्ञात होता है कि पुण्डरीक नामक उसका प्रियतम मिलन से पूर्व ही दिवंगत हो गया था। अपने प्रियतम के भावी मिलन की आशा में ही वह अच्छोद सरोवर के तट पर निवास कर रही है। उसकी सखी कादम्बरी ने भी कौमार्यव्रत धारण कर रखा है। महाश्वेता चन्द्रापीड को कादम्बरी के पास ले जाती है जहाँ प्रथम दर्शन में ही चन्द्रापीड तथा कादम्बरी दोनों ही परस्पर अनुरक्त हो उठते हैं। चन्द्रापीड वहाँ से लौट कर अपने स्थान को आते हैं तथा वहाँ पिता का पत्र पाकर अकेले ही घर चले जाते हैं। घर से पुनः स्कन्धावार पहुँच कर तथा वहाँ वैशम्पायन को न देख कर वे दौड़े-दौड़े महाश्वेता के पास पहुँच जाते हैं। महाश्वेता से ही उन्हें यह ज्ञात होता है कि वैशम्पायन ने जब महाश्वेता से प्रणय-याचना की तो महाश्वेता ने उसे शुक बना दिया। अपने प्रिय मित्र की इस दारुण विपत्ति को न सहने के कारण राजकुमार चन्द्रापीड भी अपने प्राण त्याग देते हैं। चन्द्रापीड की प्रियतमा कादम्बरी वहाँ पहुँच जाती है तथा अपने प्रियतम के पुनः मिलन की आशा से राजकुमार चन्द्रापीड के मृत शरीर की सेवा में संलग्न हो जाती है। यहाँ जाबालि की कथा समाप्त हो जाती है।

तब शुक राजा शूद्रक से कहता है कि मैं अपनी प्रेयसी महाश्वेता के लिए उड़ चला तो बीच में चाण्डाल-कन्या ने मुझे पकड़ कर आपके पास पहुँचा दिया। तब चाण्डाल-कन्या ने रहस्योद्घाटन करते हुए बताया कि मैं लक्ष्मी हूँ, यह शुक

पुण्डरीक है और आप ही चन्द्रापीड हैं। चाण्डालकन्या के मुख से यह सुनते ही राजा शूद्रक को कादम्बरी का प्रेम स्मृत हो उठा। उनके प्राण निकल गये तथा इधर चन्द्रापीड जीवित हो उठा। शुक की आत्मा भी पुण्डरीक के मृत शरीर में आकर पुन: मिल गयी जो चन्द्रलोक में सुरक्षित था। तत्पश्चात् महाश्वेता और पुण्डरीक, कादम्बरी और चन्द्रापीड, सब एकत्र हो गये तथा बिवाहित होकर सुख-पूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार कादम्बरी की कथा-वस्तु आदि से अन्त तक अप्राकृतिक घटनाओं से भरी हुई तथा कुतूहल उत्पन्न करने में बिलक्षण सिद्ध हुई है। कादम्बरी की कथा में जो घटना-वैचित्र्य तथा कुतूहल-जनकता है उसी का यह परिणाम है कि कोई भी पाठक यदि कादम्बरी को हाथ में ले लेता है तो फिर उसे, आद्योपान्त पढ़े बिना नहीं रह सकता। मुख्य कथा के साथ-साथ अनेक उपकथाएँ भी इसमें प्रयुक्त हैं जो मुख्य कथा की ही पोशिका सिद्ध हुई हैं। कादम्बरी ही इस काव्य की नायिका है तथा उसी की प्रणयकथा मुख्यकथा है किन्तु महाश्वेता की प्रणयकथा भी महत्त्व की दृष्टि से न्यून नहीं है। कादम्बरी की प्रणयभावना के उत्कर्षण में महाश्वेता की प्रणयकथा नितान्त उपस्कारिका सिद्ध हुई है। कथावस्तु के बिन्यास की दृष्टि से बाणभट्ट ने जो निपुणता कादम्बरी में प्रदर्शित की है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में भी बाणभट्ट ने अपनी बिलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। महाराज तारापीड, राजकुमार चन्द्रापीड, महामन्त्री शुकनास, रानी विलासबती, महाश्वेता, कादम्बरी, पत्रलेखा, कपिजल आदि सभी प्रधान-अप्रधान पात्रों का इस निपुणता के साथ चित्रण किया गया है कि कादम्बरी का अध्ययन करते समय उसके सभी पात्र नेत्रों के समक्ष मानो सजीव होकर उपस्थित हो जाते हैं।

६. बाण की शैली

लोकोत्तर वर्णनानिपुण कवियों की शैली भी असामान्य एवम् बिलक्षण हुआ करती है। महाकवि बाणभट्ट की शैली उनकी काव्यविषयक मान्यता के

पुण्डरीक है और आप ही चन्द्रापीड हैं। चाण्डालकन्या के मुख से यह सुनते ही राजा शूद्रक को कादम्बरी का प्रेम स्मृत हो उठा। उनके प्राण निकल गये तथा उधर चन्द्रापीड जीवित हो उठा। शुक की आत्मा भी पुण्डरीक के मृत शरीर में आकर पुनः मिल गयी जो चन्द्रलोक में सुरक्षित था। तत्पश्चात् महाश्वेता और पुण्डरीक, कादम्बरी और चन्द्रापीड, सब एकत्र हो गये तथा विवाहित होकर सुख-पूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार कादम्बरी की कथा-वस्तु आदि से अन्त तक अप्राकृतिक घटनाओं से भरी हुई तथा कुतूहल उत्पन्न करने में विलक्षण सिद्ध हुई है। कादम्बरी की कथा में जो घटना-वैचित्र्य तथा कुतूहल-जनकता है उसी का यह परिणाम है कि कोई भी पाठक यदि कादम्बरी को हाथ में ले लेता है तो फिर उसे, आद्योपान्त पढ़े बिना नहीं रह सकता। मुख्य कथा के साथ-साथ अनेक उपकथाएँ भी इसमें प्रयुक्त हैं जो मुख्य कथा की ही पोशिका सिद्ध हुई हैं। कादम्बरी ही इस काव्य की नायिका है तथा उसी की प्रणयकथा मुख्यकथा है किन्तु महाश्वेता की प्रणयकथा भी महत्त्व की दृष्टि से न्यून नहीं है। कादम्बरी की प्रणयभावना के उत्कर्षण में महाश्वेता की प्रणयकथा नितान्त उपस्कारिका सिद्ध हुई है। कथावस्तु के विन्यास की दृष्टि से बाणभट्ट ने जो निपुणता कादम्बरी में प्रदर्शित की है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में भी बाणभट्ट ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। महाराज तारापीड, राजकुमार चन्द्रापीड, महामन्त्री शुकनास, रानी विलासवती, महाश्वेता, कादम्बरी, पत्रलेखा, कपिंजल आदि सभी प्रधान-अप्रधान पात्रों का इस निपुणता के साथ चित्रण किया गया है कि कादम्बरी का अध्ययन करते समय उसके सभी पात्र नेत्रों के समक्ष मानो सजीव होकर उपस्थित हो जाते हैं।

६. बाण की शैली

लोकोत्तर वर्णनानिपुण कवियों की शैली भी असामान्य एवम् विलक्षण हुआ करती है। महाकवि बाणभट्ट की शैली उनकी काव्यविषयक मान्यता के

अनुरूप ही है, परम हृद्य है। 'कादम्बरी' एवम् 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक कतिपय पद्यों में बाणभट्ट ने कवि, काव्य एवम् काव्यशैली से सम्बद्ध अपनी विशिष्ट अवधारणा का स्फुट प्रकाशन किया है। वे राग-द्वेष से युक्त कवियों को कामोद्दीपक कोकिल के समान वाचाल समझते हैं जो काव्य के व्याज से वस्तुतः असम्बद्ध प्रलाप ही करते हैं। काव्य में स्वरूप मात्र का वर्णन करने वाले कवियों की तुलना उन्होंने घर-घर में जन्म लेने वाले कुत्तों से की है जबकि सरस, चमत्कारपूर्ण एवम् विलक्षण काव्य की सृष्टि करने वाले कवियों की तुलना उन्होंने शरभों से की है—

"प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठतदृष्टयः।
कोकिला इव जायन्ते वाचालाः कामकारिणः॥ ४॥
सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे-गृहे।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव॥ ५॥

[हर्षचरित-प्रस्तावना]

अभिप्राय यह है कि बाणभट्ट सरल तथा नीरस गद्यशैली के पक्षपाती नहीं हैं। जिसमें मात्र तथ्य कथन हो तथा वैचित्र्य का सर्वथा अभाव हो ऐसा काव्य उनकी दृष्टि में हेय है। इसके साथ ही काव्य की मौलिकता के प्रति भी बाणभट्ट का पर्याप्त आग्रह है। दूसरे की कविता के कुछ वर्णों को बदल कर अपनी कविता घोषित करने वाले कवि को बाण ने चोर कहा है—

"अन्यवर्णपरावृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः।
अनाख्याताः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते॥"

[हर्षचरित-प्रस्तावना—६]

बाणभट्ट ने विभिन्न क्षेत्रों के कवियों द्वारा विनिर्मित काव्यों में पायी जाने वाली भिन्न-भिन्न विशेषताओं का उल्लेख अधोनिर्दिष्ट रूप में किया है—

"श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्॥"

[ह० च० प्र०—७]

अर्थात् उत्तरी क्षेत्र के कवियों के काव्यों में श्लेष की, पश्चिमी क्षेत्र के कवियों के काव्यों में अर्थमात्र की, दाक्षिणात्य कवियों के काव्यों में उत्प्रेक्षा की तथा गौडदेशीय अर्थात् पूर्वी कवियों के काव्यों में अक्षरमात्र का प्राधान्य रहता है।

उपर्युक्त विवेचन के मूल में बाण का यही उद्देश्य निहित है कि काव्य में उसके उत्कर्षाधायक सभी तत्त्वों का सम्यक् समावेश होना चाहिए न कि किसी एक तत्त्व का ही प्राधान्य होना चाहिए। एकाङ्गित का परिहार करते हुए समन्वय का आश्रय ही आदर्श कवि के लिए अपेक्षित होता है तभी उसका काव्य प्रशस्य एवं उत्कृष्ट हो सकता है। उत्कृष्ट काव्य के लिए बाणभट्ट ने जिन विशेषताओं को अपेक्ष्य एवं आश्रयणीय माना है उनका उल्लेख अधोनिर्दिष्ट पद्य में उन्होंने किया है—

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥"

(हर्ष० च० प्र० ८)

अर्थात् काव्य में नवीनता, स्वभावोक्ति की चमत्कारपूर्णता, श्लेष की अक्लिष्टता, रस की स्फुटता एवं आकर्षक शब्दों की योजना का होना बाण की दृष्टि में परमावश्यक है। कहना न होगा कि बाण के काव्य में ये सारी विशेषताएँ समवेत रूप में विद्यमान हैं।

बाण चूँकि सर्वोत्कृष्ट गद्य-कवि हैं अतः उन्होंने अपने गद्य-काव्यों में जिस शैली का प्रयोग किया है उसका स्वरूप भी एकाङ्गी नहीं अपितु समन्वयात्मक ही है। बाण के समय से ही चार प्रकार की गद्यशैलियाँ प्रचलित थीं जिनमें से बाण ने अपने गद्य काव्यों में तीन शैलियों का बहुत प्रयोग किया है। ये तीन गद्यशैलियाँ हैं—उत्कलिका, चूर्णक तथा आविद्ध। उत्कलिका नाम की गद्यशैली के अन्तर्गत दीर्घसामासिक पदावली का तथा चूर्णक शैली के अन्तर्गत अल्प-सामासिक पदावली का प्रयोग किया जाता है जब कि समासरहित शैली को आविद्ध कहा जाता है। गद्यकाव्य की उत्कृष्टता का मानदण्ड चूँकि 'समास-भूयस्त्व' को माना गया है अतः लम्बे-लम्बे समासों वाली उत्कलिका शैली के प्रति बाण का सर्वाधिक पक्षपात होना स्वाभाविक ही है। उत्कलिका शैली चूँकि चित्रात्मक प्रसंग के अनुकूल पड़ती है इसलिए 'हर्षचरित' के दधीच वर्णन, ग्रीष्मवर्णन आदि प्रसङ्गों में बाण ने इस शैली का भरपूर प्रयोग किया है। जहाँ कहीं भी चित्रात्मक वर्णन का प्रसङ्ग आया है वहाँ बाण ने लम्बे-लम्बे

समासों वाली इस शैली का प्रयोग कर वर्णनीय वस्तु के चित्र को पाठक के नेत्रों के समक्ष प्रत्यक्ष उपस्थापित करने में विलक्षण सफलता पायी है। इस प्रकार के वर्णनों के अन्त में पुनः बाण आविद्ध शैली का आश्रय ले लेते हैं। इसी प्रकार अल्पसमासों वाली चूर्णक शैली का भी प्रयोग इन्होंने पर्याप्तरूपेण किया है। तत्तत् स्थलों में इसका साक्षात्कार किया जा सकता है। अभिप्राय यह है कि समास-बहुलता एवं गाढबन्धता को ही उत्कृष्ट गद्य का मानदण्ड मानते हुए बाण ने यद्यपि उत्कलिका शैली का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है किन्तु अवसर एवं प्रसङ्ग को ध्यान में रखते हुए चूर्णक एवं आविद्ध शैली का भी यथास्थान प्रयोग किया है। सामान्य परिचर्चा या उपदेशात्मक कथन के प्रसङ्गों में चूर्णक एवं आविद्ध शैली का भव्य प्रयोग किया गया है। 'हर्षचरित' के चतुर्थ उच्छ्वास के अन्तर्गत राज्यश्री के विवाह-प्रसङ्ग में बाण की शैली का निखरा हुआ रूप उपलब्ध होता है।

बाण के गद्य में जो प्रौढता, प्राञ्जलता एवम् सरसता है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। इसीलिए कहा गया है—

"हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्॥"

गद्य की जो सर्वोत्कृष्ट शैली है उसी को सङ्केतित करते हुए बाण ने कादम्बरी में कहा है कि नाना प्रकार के वर्णों के द्वारा नये अर्थ-समूह का प्रतिपादन करने वाला गद्य ही उत्कृष्ट होता है अथवा ऐसा गद्य उत्कृष्ट कवि द्वारा ही विनिर्मित होता है—

"उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसञ्चयम्।"

बाण का शब्द-कोष अक्षय है। एक ही बात को अनेक रूपों में, नये-नये शब्दों में कहना बाण की अन्यतम विशिष्टता है। बाण के काव्य में पाञ्चाली रीति का ही प्राचुर्य है। इस रीति के अन्तर्गत अर्थों के अनुरूप ही शब्दयोजना की जाती है। अर्थानुरूप शब्दयोजना किसी भी कवि का उत्कृष्ट गुण होता है और बाण इस कला में निपुण हैं। इसीलिए 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में कहा गया है—

"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदा॥"

३ ह० च० भू०

अलङ्कार-प्रयोग एवम् रस-योजना की दृष्टि से भी बाण की शैली परम हृद्य है। शब्दालङ्कारों में अनुप्रास एवम् श्लेष का तथा अर्थालङ्कारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसंख्या आदि अनेक अलङ्कारों का रुचिकर प्रयोग बाण ने अपने काव्य में किया है। इसी प्रकार 'हर्षचरित' के अन्तर्गत यथास्थान विभिन्न रसों की योजना भी सफलता एवम् कुशलता के साथ की गयी है। दधीचि एवम् सरस्वती के पारस्परिक प्रणय-प्रसङ्ग में शृङ्गार रस का समुचित प्रयोग किया गया है। सम्राट् हर्षवर्धन के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन करते समय वीर रस की मनोज्ञ अभिव्यक्ति हुई है। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के प्रसङ्ग में करुण रस का मार्मिक परिपाक हुआ है।

इस प्रकार महाकवि बाणभट्ट की शैली के अन्तर्गत उत्कृष्टता की सृष्टि करने वाले सभी अपेक्षित तत्त्वों का मञ्जुल समावेश परिलक्षित होता है।

(७) 'हर्षचरित' के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

(क) प्रभाकरवर्धन

प्रभाकरवर्धन 'हर्षचरित' के प्रधान नायक सम्राट् हर्षवर्धन के पिता थे। 'हर्षचरित' के चतुर्थ उच्छ्वास में उनके गरिमा-मण्डित व्यक्तित्व का भव्य प्रकाशन हुआ है। वे अद्वितीय पराक्रमी एवम् महान् योद्धा थे। उन्होंने सिन्धु, गुर्जर, गान्धार, लाट, मालव आदि प्रान्तों के राजाओं को युद्ध में पराजित कर अपना अतिविस्तृत एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया था। वे हूणरूपी हरिणों के लिए सिंह के सदृश थे। विलक्षण पराक्रमी होने के कारण ही वे 'प्रतापशील' के नाम से भी सुविख्यात थे—

प्रतापशील इति प्रथितापरनामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः।"

वे अत्यन्त प्रजावत्सल तथा परोपकारी थे। पराक्रमी होने के साथ-साथ वे परम धार्मिक भी थे। उनके शासन-काल में निरन्तर यज्ञ हुआ करते थे तथा मन्दिरों में सतत देव-पूजन होता था। उनके यहाँ स्वर्णनिर्मित वस्तुओं की भरमार थी तथा वे ब्राह्मणों को दान में प्रचुर धन दिया करते थे जिससे उनकी ऐश्वर्यशालिता के साथ-साथ उनकी दानशीलता का भी परिचय प्राप्त होता है—

"काञ्चनमयसर्वोपकरणैर्विभवैर्विशीर्णमिव मेरुणा, द्विजदीयमानैरर्थ-कलशैः फलितमिव भाग्यसंपदा......।"

राज्यवर्धन एवम् हर्षवर्धन नामक अपने दोनों पुत्रों को उन्होंने जिस प्रकार उपदिष्ट किया है उससे पता चलता है कि वे व्यवहार, नीति एवम् राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित तथा मर्मज्ञ थे—

"वत्सौ ! प्रथमं राज्याङ्गं दुर्लभाः सद्भृत्याः............शल्यं हृदये निक्षिपन्त्यतिमार्गणाः ।"

मालवराज के कुमारगुप्त एवम् माधवगुप्त नामक दोनों पुत्रों के प्रति स्नेह, मृदुता, सहानुभूति एवम् उदारता से परिपूर्ण व्यवहार उनकी कृपालुता का ही द्योतक है। अपनी पुत्री राज्यश्री के युवावस्था में प्रवेश करते ही वे उसके विवाह को लेकर चिन्तित हो उठते हैं तथा ग्रहवर्मा जैसे सुयोग्य वर के साथ उसका विवाह सम्पन्न करवाते हैं जिससे अपने कर्त्तव्य के प्रति उनका सतत जागरूक रहना स्वतः परिलक्षित होता है।

स्वयम् मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए तथा जीवन की अन्तिम साँसे गिनते हुए वे अपने बिलखते पुत्र हर्षवर्धन को जिस प्रकार सान्त्वना देते हैं उससे उनके असीम धैर्य तथा लोकोत्तर की सहिष्णुता की स्फुट अभिव्यक्ति होती है।

इस प्रकार महापराक्रमी, अद्वितीय योद्धा, परम ऐश्वर्यशाली, महान् परोपकारी, नितान्त प्रजावत्सल एवम् पुत्रवत्सल, परमकर्त्तव्यपरायण राजाधिराज के रूप में चित्रित प्रभाकरवर्धन का चरित्र निश्चय ही परम अभ्यर्हणीय है।

(ख) राज्यवर्धन

राज्यवर्धन राजाधिराज प्रभाकरवर्धन एवम् महारानी यशोवती के ज्येष्ठ पुत्र तथा सम्राट् हर्षवर्धन के अग्रज थे। जन्म के समय से ही राज्यवर्धन में प्रचण्ड योद्धा के लक्षण दृश्यमान होने लगे थे। जन्म के समय उनका वर्णन करते हुए कहा गया है कि मानो वज्र के परमाणुओं से, शेषनाग के फणामण्डल की निर्माण-सामग्री से या दिग्गजों के शरीरावयवों से उनका निर्माण किया गया हो—

"सर्वोर्वीभृत्पक्षपाताय वज्रपरमाणुभिरिव निर्मितम्, त्रिभुवनभार-धारणसमर्थं शेषफणामण्डलोपकरणैरिव कल्पितम्,सकलभूभृत् कम्पकारिणं दिग्गजावयवैरिव विहितमसूत देवं राज्यवर्धनम् ।"

राज्यवर्धन परमपराक्रमी तथा अपने पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे। उपलब्ध वर्णन के अनुसार प्रभाकरवर्धन अपने इस वीर पुत्र का हूणों से युद्ध करने के लिए उसी प्रकार भेजते हैं जिस प्रकार सिंह हाथियों को मारने के लिए अपने बालसिंह को भेजता है—

"हूणान्हन्तुं हरिणानिव हरिर्हरिणेशकिशोरम्...... ...।"

राज्यवर्धन के व्यक्तित्व में प्रारम्भ से ही ओजस्विता का तत्त्व भरा हुआ दृष्टिगोचर होता है। उनके हृदय में अपने वंश की मान-मर्यादा को सुरक्षित रखने का दृढ़ निश्चय तो है ही साथ ही अपने पिता के प्रति अगाध भक्ति एवम् अपने सोदर भाई-बहनों के प्रति प्रगाढ़ स्नेहभाव से ओतप्रोत उनका अन्तः-करण भी परम श्लाघ्य है। जब वे हूणों से युद्ध करते जाते हैं तो उनका १४-१५ वर्ष का किशोर अनुज हर्ष भी उनके साथ हो लेता है तथा कुछ पड़ावों तक साथ चलता है किन्तु हिमालय की तराइयों में आखेट करने में हर्ष का मन रम जाता है और वह वहीं रुक कर अपने बड़े भैया के लौटने की प्रतीक्षा करने लगता है। इस सामान्य-सी लगने वाली घटना पर यद्यपि विस्तार से प्रकाश नहीं डाला है किन्तु राज्यवर्धन के व्यक्तित्व के दर्पण में झाँकने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपने छोटे भाई की कच्ची उम्र को ध्यान में रख कर ही वे उसे अपने साथ न ले गये हों तथा रास्ते में ही रोक कर अपने छोटे भाई को उन्होंने आखेट में उलझा दिया हो। अनुज के प्रति अत्यधिक स्नेहशील होने के कारण ऐसी सम्भावना की जा सकती है। आगे भी कुछ इसी प्रकार का प्रसङ्ग उस समय दृष्टिगोचर होता है जब मालवराज के द्वारा ग्रहवर्मा की हत्या का समाचार पाकर राज्यवर्धन उसका नाश करने के लिए स्वयम् ही चल पड़ते हैं। उस समय भी हर्ष उनसे निवेदन करते हैं कि वे उन्हें अपने साथ ले चलें किन्तु राज्यवर्धन अपने अनुज की इस प्रार्थना को अस्वीकार कर उसे वहीं रुकने का आदेश देते हैं तथा बिना छोटे भाई को साथ लिये ही वे युद्धार्थ चल पड़ते हैं। इस प्रकार स्वयम् बार-बार युद्धाग्नि में सोत्साह कूद पड़ना तथा अपने

अनुज को बार-बार युद्ध से रोकने के मूल में निश्चय ही राज्यवर्धन का अनुज के प्रति प्रगाढ स्नेहभाव ही परिलक्षित होता है।

राज्यवर्धन की पितृभक्ति भी स्तुत्य है। जब उन्हें अपने माता-पिता के दिवंगत होने का दुःखद समाचार मिलता है तो वे अपनी राजधानी लौट कर पितृशोक में इस प्रकार निमग्न हो जाते हैं कि उन्हें उस समय एकमात्र वैराग्य ही श्रेयस्कर प्रतीत होने लगता है। राज्यवर्धन के अधोनिर्दिष्ट कथन में उनका मार्मिक पितृशोक उमड़ता-सा प्रतीत होता है—

"तथापि किं करोमि। स्वभावस्य सेयं कापुरुषता वा स्त्रैणं वा यदेवमास्पदं पितृशोकहुतभुजो जातोऽस्मि। मम हि ··· ······इत्यादि।"

पितृशोक के कारण वे इतने आकुल हो जाते हैं कि उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो उठता है तथा स्थाणीश्वर के परम ऐश्वर्यसम्पन्न राज्यसिंहासन के अपने उत्तराधिकार का परित्याग कर उसे सहज ही अपने छोटे भाई को समर्पित करने को तत्पर हो उठते हैं। इसलिए वे हर्ष को समझाते हुए कहते हैं—

"व्यक्तसकलबालक्रीडनेन हरिणेव दीयतामुरोलक्ष्म्यै। परित्यक्तं मया शस्त्रम्।"

राज्यवर्धन के उक्त व्यवहार से जहाँ एक ओर उनकी पितृभक्ति प्रकाश में आती है वहीं दूसरी ओर अपने अनुज के प्रति स्नेह तथा उदारता से परिपूर्ण उनके अन्तःस्थल की झाँकी भी मिल जाती है।

राज्यवर्धन अपने कुटुम्ब तथा सगे-सम्बन्धियों के प्रति सदैव साकांक्ष एवम् अनुदासीन दृष्टिगोचर होते हैं। पितृशोक के कारण वे जब विरक्त होकर शस्त्र-त्याग करने को उद्यत हो जाते हैं तभी उन्हें सूचना मिलती है कि दुष्ट मालवराज द्वारा उनके बहनोई ग्रहवर्मा की निर्मम हत्या कर दी गयी है। बस, फिर क्या था! इस समाचार को सुनते ही उनका वीरोचित स्वाभिमान पुनः एक बार सर उठाने लगता है। शत्रु के द्वारा किये गये इस कुकृत्य के बारे में सुनकर वे क्रोध से तिलमिला उठते हैं तथा शस्त्र-त्याग एवम् वैराग्य-धारण करने के अपने पूर्व के निर्णय को वे तत्क्षण तिलाञ्जलि देकर मालवराज के समूलोच्छेदन के लिए

चल पड़ते हैं। राज्यवर्धन का इस प्रकार का आचरण उसके हृदय में सन्निहित संवेदनशीलता तथा भावुकता का ही परिचायक है।

इस प्रकार राज्यवर्धन का विशिष्ट चरित्र एक पराक्रमी योद्धा, आज्ञाकारी एवम् पितृभक्त पुत्र, उदार एवम् स्नेहशील भाई तथा वंश की मानमर्यादा की प्राणपण से रक्षा करने वाले स्वाभिमानी एवम् ओजस्वी पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है जो निश्चय ही परमश्लाघ्य है।

(ग) हर्षवर्धन

हर्षवर्धन 'हर्षचरित' नामक प्रस्तुत गद्यकाव्य के चरितनायक हैं। ये स्थाणीश्वर के महाराज प्रभाकर वर्धन के द्वितीय पुत्र तथा राज्यवर्धन के अनुज थे। वर्धन वंश के आदि संस्थापक राजा पुष्पभूति को लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर यह वरदान दिया था कि उनके वंश में हरिश्चन्द्र के समान सभी द्वीपों पर शासन करने वाला तथा मान्धाता के सदृश त्रिभुवन को जीत लेने की इच्छा रखने वाला हर्षनामक चक्रवर्ती उत्पन्न होगा।

"यस्मिन्नुत्पत्स्यते सर्वद्वीपानां भोक्ता हरिश्चन्द्र इव हर्षनामा चक्रवर्ती त्रिभुवनविजिगीषुर्द्वितीयो मान्धातेव······।"

लक्ष्मी द्वारा दिये गये वरदान के अनुसार ही हर्ष में जन्म से ही सारे गुण परिलक्षित होने लगे थे। जिस समय वे अपनी माता यशोवती के गर्भ में थे उस समय यशोवती का वर्णन करते हुए उनकी जिन इच्छाओं का वर्णन किया गया है उनसे यह सिद्ध होता है कि किसी अद्वितीय पराक्रमी एवम् भविष्य में समग्र भूमण्डल पर शासन करने वाले चक्रवर्ती पुत्र को वे जन्म देने वाली हैं—

"क्रीडायामपि नासहताज्ञाभङ्गम्। अपि च चतुर्णां महार्णवाना-मेकीकृताम्भसा स्नातुं वाञ्छा बभूव······।"

अर्थात् खेल-खेल में भी महारानी आज्ञाभङ्ग को नहीं सह पाती थी। चारों समुद्रों के एक में मिले हुए जल में स्नान करने की उनकी इच्छा हो रही थी। समुद्र-तटीय वन के लतागृहों की रेतों में घूमने का उनका मन होता। आवश्यक कार्यों में भी केवल विलास के साथ उनकी भौंह चलती थी। समीपस्थ मणिदर्पणों के होते हुए भी वह नंगी तलवार में ही अपना मुँह देखना चाहती

थी । वीणा-ध्वनि की अपेक्षा धनुष की टंकार ही उन्हें सुनने में अच्छी लगती थी । पिंजड़े के सिंहों को देखने में उनका मन रम जाता था । गुरुजनों को प्रणाम करते समय भी उनका सिर किसी-किसी प्रकार झुक पाता था।... इत्यादि ।

उपरिवर्णित तथ्य के अनुकूल ही हर्ष शैशवकाल से ही परम युद्धोत्साही एवम् चक्रवर्ती के समस्त लक्षणों को धारण करने वाले परिलक्षित हो रहे थे। पिता की आज्ञा से जब उनके अग्रज राज्यवर्धन हूणों से युद्ध करने हेतु प्रस्थान करते हैं तो उस समय १४–१५ वर्ष के किशोर हर्ष भी उनके साथ हो लेते हैं। इतनी कम आयु में युद्ध के प्रति ऐसा उत्साह किसी भावी चक्रवर्ती सम्राट् में ही सम्भव है ।

अपने अग्रज के साथ हर्ष युद्ध में उनका साथ देने के लिए निकलते तो हैं किन्तु हिमालय की तराइयों में वे आखेट-मग्न हो जाते हैं तथा अपने अग्रज के लौटने की प्रतीक्षा करते हैं। वहीं उन्हें अपने पिता की रुग्णता का समाचार मिलता है । वे तुरन्त अपने पिता के पास लौट आते हैं । पिता की रुग्णता के कारण वे इतने व्यग्र एवम् चिन्तित हो जाते हैं कि तीन दिनों तक वे अन्न-जल तक का त्याग कर बैठते हैं । पिता द्वारा पुत्र की शारीरिक दुर्बलता का कारण पूछने पर भण्डि का अधोनिर्दिष्ट कथन इसका प्रमाण है—

"देव ! तृतीयमहः कृताहारस्यास्याद्य ।"

इस प्रसङ्ग में हर्ष की असामान्य पितृभक्ति का बाण ने विस्तृत परिचय दिया है । स्वयम् प्रभाकरवर्धन ने हर्ष की प्रशंसा करते हुए कहा है कि तुम्हारे जैसे लोग अल्प पुण्य वालों के कुल में उत्पन्न नहीं होते । तुम अनेक जन्मान्तर में किये गये पुण्य-कर्मों के फल हो—

"न ह्यल्पपुण्यभाजां वंशमलंकुर्वन्ति भवादृशाः। फलमस्यानेक-जन्मान्तरोपार्जितस्याकलुषस्य कर्मणः ।"

हर्ष जैसे सुयोग्य पुत्र को पाकर प्रभाकरवर्धन स्वयम् को कृतकृत्य समझते हैं तथा उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष जैसे पुत्र को पाने के बाद अब जीवन में कोई भी अभिलाषा अधूरी नहीं रह गयी है—

"त्वज्जन्मनैव कृतार्थोऽस्मि । निरभिलाषोऽस्मि जीवितव्ये ।"

पिता की स्वस्थता के लिए समस्त वैद्यों को बुलाना तथा उन्हें चिकित्सा आदि का निर्देश देना आदि ऐसे प्रसङ्ग हैं जो हर्ष की पितृविषयक चिन्ता एवम् भक्ति का परिचायक हैं। पिता की मृत्यु एवं माता का उन्हीं के साथ सती हो जाने से हर्ष का शोकोद्विग्न हृदय हर्षरहित होकर सर्वथा भिन्न-भिन्न हो जाता है। अपने अग्रज राज्यवर्धन को वे सूचना भिजवा देते हैं किन्तु उनके विषय में भी तरह-तरह की कुशङ्काओं से उनका मन उद्विग्न होने लगता है। वे अपने अग्रज के विषय में ऐसी सम्भावना व्यक्त करते हैं कि कहीं माता-पिता की मृत्यु का समाचार पाकर बड़े भैया विरक्ति के कारण संन्यस्त न हो जायें। हर्ष की इस प्रकार की चिन्ताओं से उनकी भ्रातृ-भक्ति का ही परिचय प्राप्त होता है।

राज्यवर्धन जब लौटते हैं तो वे माता-पिता के मृत्युजन्य शोक के कारण हर्ष के अनुमानानुसार शस्त्र-त्याग कर संन्यस्त हो जाना चाहते हैं किन्तु इसी समय मालवराज के द्वारा राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा की निर्मम हत्या के समाचार से वे क्रोध से आग-बबूला हो उठते हैं तथा पितृशोक को भुला बैठते हैं। तत्क्षण वे मालवराज का संहार करने हेतु चल पड़ते हैं। उस समय भी हर्ष उनके साथ चलने हेतु तत्पर हो उठते हैं किन्तु उनके अग्रज उन्हें रोक देते है। कालान्तर में जब गौडाधिप द्वारा अपने अग्रज को धोखे से मार डालने का समाचार उन्हें मिलता है तो उस समय हर्ष का क्रोध अपनी सीमा को पार कर जाता है। उस समय हर्ष का शौर्य, ओजस्विता, साहस आदि फूट कर निकलने लगते हैं। वे गौडाधिप के संहार की प्रतिज्ञा अधोनिर्दिष्ट ओजस्वी शब्दों में करते हुए कहते हैं—

"शपाम्यार्यस्यैव पादपांसुस्पर्शेन, यदि परिगणितैरेव वासरैः सकल-चापचापलदुर्ललितनरपतिचरणरणरणायमाननिगडां निर्गौडं गां न करोमि ततस्तनूनपाति पीतसर्पिषि पतङ्ग इव पातकी पातयात्मानम्।"

अर्थात्—आर्य की ही चरण-धूलि लेकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि कुछ ही दिनों के अन्दर धनुष चलाने की चपलता के घमण्ड में भरे हुए समग्र उद्धत राजाओं के पैरों की बेड़ियों की झनकार से पूर्ण करके पृथ्वी को गौड़-रहित न बना दूँ तो घी से धधकती हुई आग में फतिङ्गे के समान पातकी स्वयम् को जला डालूँगा।"

इस प्रसङ्ग में हर्ष के द्वारा अभिव्यक्त उनके प्रचण्ड क्रोध से जहाँ एक ओर उनके भ्रातृ-भक्ति का परिचय मिलता है वहीं दूसरी ओर उनके प्रचण्ड शौर्य एवम् ओजस्वी व्यक्तित्व का भी संकेत प्राप्त होता है।

सप्तम उच्छ्वास के अन्तर्गत प्राग्जोतिषेश्वर कुमार द्वारा भेजे गये 'आभोग' नामक अद्भुत छत्र तथा अन्य वस्तुओं को उपहार में पाकर वे उनके प्रति कृत-कृत्य हो उठते हैं तथा उनके साथ आजीवन मैत्री बनाये रखने का निश्चय मन में कर लेते हैं। हर्ष की इस भावना से उनकी कृतज्ञता का ही साक्षात्कार होता है।

काव्य के पूर्वार्ध में किये गये वर्णन के अनुसार हर्ष के द्वारा बाण का जैसा स्वागत किया जाता है उससे उनकी गुणग्राहिता भी स्वतः प्रकाश में आ जाती है। पहले तो कुछ लोगों के बहकावे में आकर वे बाण का तिरस्कार करते हैं किन्तु जब बाण स्वयम् अपना विशिष्ट परिचय देते हैं तो हर्ष उनके प्रति श्रद्धाशील होकर उन्हें उचित सम्मान देते हैं। बाण ने स्वयम् ही हर्ष की गुणग्राहकता का विस्तृत वर्णन किया है।

इस प्रकार परम ऐश्वर्यशाली, महान् पराक्रमी, नितान्त रणोत्साही, विवेकशील तथा गुणग्राही चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में तो उनका चित्रण किया ही गया है, साथ ही, पितृभक्ति, भ्रातृभक्ति, प्रजावत्सलता, कृतज्ञता आदि अनेक सद्-गुणों से मण्डित हर्ष का चरित्र नितान्त स्पृहणीय एवम् परमश्लाघ्य भी है।

(घ) राज्यश्री

राज्यश्री महाराज प्रभाकर वर्धन एवम् महारानी यशोवती की सबसे छोटी सन्तान थी। वह परमलावण्यमयी एवम् कोमलाङ्गी थी। नृत्य-गीत आदि विभिन्न ललित-कलाओं में वह दक्षा थी। जब उसने युवावस्था में प्रवेश किया तो उससे विवाह करने के लिए अनेक राजाओं के प्रस्ताव आने लगे। उसके अप्रतिम सौन्दर्य एवम् सर्वगुण-सम्पन्नता के कारण ही सभी राजाओं के लिए वह काम्या बन गयी थी। जिस प्रकार बाण एक ही लक्ष्य पर गिरते हैं उसी प्रकार उसके ऊपर सभी राजाओं की दृष्टि पड़ गयी थी। अपने-अपने दूत भेज कर राजा लोग उसकी याचना करने लगे थे—

"निपेतुरेकस्यां तस्यां शरा इव लक्ष्यभुवि भूभुजां सर्वेषां दृष्टयः।
दूतसम्प्रेषणदादिभिश्च तां ययाचिरे राजानः।"

उचित समय पर पिता ने ग्रहवर्मा जैसे सुन्दर, योग्य एवम् वीर राजा के साथ राज्यश्री का पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न करवा कर उसे ससुराल भेज दिया। कालान्तर में राज्यश्री के ऊपर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। मालव-राज द्वारा उसके पति की निर्मम हत्या कर दी गयी तथा उसे भी बन्दी बना कर कारावास में डाल दिया गया। अपने सतीत्व की रक्षा करने हेतु वह किसी प्रकार मालवराज के कारावास से भाग निकली तथा विन्ध्य के भयानक जंगलों में भटकने लगी। राज्यश्री के इस आचरण से उसकी पति-परायणता तथा सहिष्णुता रूपी गुणों का स्पष्ट संकेत मिलता है। सम्राट् हर्षवर्धन को जब एक भिक्षु के द्वारा राज्यश्री का पता चलता है तो वे उसे ढूंढ निकालते हैं। वहीं पर भाई एवम् बहन के परस्पर मिलाप का दृश्य बड़ा ही कारुणिक सिद्ध हुआ है। राज्यश्री विधवा होने के कारण कषाय वस्त्र धारण कर भिक्षु दिवाकरमित्र के आश्रम में भिक्षुणी के रूप में रह जाती है और इस प्रकार वह एक भारतीय ललना के उच्चादर्श को प्रस्तुत करने में कृतकार्य सिद्ध होती है क्योंकि भारतीय नारी के लिए पति के अभाव में समस्त सांसारिक सुख हेय हुआ करता है।

इस प्रकार प्रारम्भ में जो सर्वगुण-सम्पन्ना, नितान्त सौन्दर्यमयी तथा परम सुकुमारी राजकुमारी के रूप में चित्रित की गयी थी वही राज्यश्री अन्ततः विरक्ता भिक्षुणी के रूप में पाठकों के मानस-पटल पर अपने उदात्त व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ती प्रतीत होती है। आदि से अन्त तक वह एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में ही चित्रित की गयी है इसलिए उसका चरित्र भी सुतरां प्रशस्य है।

उपसंहार

"चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस" के मान्य व्यवस्थापक सर्वश्री विट्ठलदास गुप्त जी तथा उनके अनुज श्री ब्रजमोहन दास गुप्त जी के अनुरोध पर 'हर्षचरित' का यह अनुवाद अपनी क्षमता के अनुसार मैंने प्रस्तुत किया है। बाणभट्ट जैसे गद्यकवि की किसी कृति का अनुवाद करना निश्चय ही महान् कष्टसाध्य कार्य है फिर भी विभिन्न विद्वानों की कृतियों की सहायता लेकर इस गुरुतर कार्य को सम्पन्न किया जा सका है। तत्तत् विद्वानों के प्रति मैं परम कृतज्ञ हूँ एवम् चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस के सञ्चालक-बन्धुओं को मैं साधुवाद देता हूँ क्योंकि उन्हीं की प्रेरणा से यह कार्य सम्पन्न हो सका है।

विदुषां वशंवदः

बालगोविन्द झा

बाण-प्रशस्तयः

१. श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरे-
ऽलङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवी चातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

[श्रीचन्द्रदेवस्य]

२. हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत् ।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किता कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ् मन्ये परिम्लानताम् ॥

[रुय्यककृतव्यक्तिविवेकव्याख्याने]

३. अर्थेश्वरं हन्त भजेऽभिनदं वागीश्वरं वाक्पतिराजमीडे ।
रसेश्वरं नौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ॥

[उदयसुन्दर्यां सोढ्वलस्य]

४. परिशीलितैव सरसं कविराजैर्बहुभिरत्र वाग्देवी ।
बाणेन तु वैजात्यात् कथयति नामैव वाणीति ॥

[विश्वेश्वरस्य]

५. शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ॥

[त्रिविक्रमस्य]

६. जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥

[गोवर्धनस्य]

७. सच्चित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीपतिः ।
श्रीहर्ष इव संघट्टं चक्रे बाणमयूरयोः ॥

[नवसाहसाङ्के]

८. प्रतिकविभेदनबाणः, कवितातरुगहनविहरणमयूरः ।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति, श्रीभट्टबाणकविराजः ॥

[वीरनारायणचरिते]

९. बाणं सत्कविगीर्वाणमनुबध्नाति कः कविः।
सिन्धुमन्धुः किमन्वेति द्युमणिः कतमो मणिः ॥

[रघुनाथचरिते]

१०. केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः ॥

[धनपालस्य]

११. हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥

[शार्ङ्गधरपद्धतौ]

१२. शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदा ॥

[शार्ङ्गधरपद्धतौ]

१३. रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत्किं तरुणी ? नहि नहि, वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥

[धर्मदासस्य]

१४. वाणी-पाणि-परामृष्ट-वीणा-निक्वाण-हारिणी ।
भावयन्ति कथं वान्ये भट्टबाणस्य भारतीम् ॥

[गङ्गादेवी]

१५. कादम्बरी सहोदर्यां सुधये वै बुधे हृदि।
हर्षाख्यायिकाख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान् ॥

१६. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥

१७. युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः ॥

१८. सहर्षचरिता शश्वत्कृतकादम्बरीकथा।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमति क्षितौ ॥

१९. दण्डीत्युपस्थिते सद्यः कवीनां कम्पतां मनः।
प्रविष्टे त्वन्तरं बाणे कण्ठे वागेव रुध्यति ॥

विषयानुक्रमणिका

द्वितीय उच्छ्वास (राजदर्शन)

तृतीय उच्छ्वास (राजवंशवर्णन)

षष्ठ उच्छ्वास (राजप्रतिज्ञावर्णन)

विषय पृष्ठ

अष्टम उच्छ्वास (विन्ध्याद्रिनिवेशन)



भाणोंविद्युदं प्रणमन्त्

॥ श्रीः ॥

हर्षचरितम्

'सङ्केत' संस्कृत-'कमलेश्वरी' हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथम उच्छ्वासः

[1]नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥ १ ॥

• सङ्केत •

श्च्योतन्मदाम्बुभरनिर्भरचण्डगण्डशुण्डाग्रशौण्डपरिमण्डितभूरिभृङ्गान् ।
विघ्नानिवानवरतं चलगण्डतालैरुत्सारयञ्जयति जातघृणो गणेशः ॥
शङ्करनामा कश्चिच्छ्रीमत्पुण्याकरात्मजो व्यलिखत् ।
शिष्टोपरोधवशतः सङ्केतं हर्षचरितस्य ॥

'सर्वकर्माणि कुर्वीत प्रणिपत्येष्टदेवताम्' इति शिष्टाचारमनुपालयन् 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः । यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥' इति काव्यलक्षणामपूर्वां सृष्टिं स्थिरां प्रवर्तयन्नेष कविः शिवं बहुशक्तियुतमपि नियतशक्त्यात्मकमेव स्तौति—नमस्तुङ्गेत्यादिना । न क्वचित्प्रणतो यो मूर्धा तत्स्पर्शी चन्द्र एव सितवालतुल्यप्रभाप्रसरतया स्वेदाविनाशाद्विशिष्टस्थानस्थितश्च चामरम् । त्रैलोक्यमेव नानाभङ्गिशोभित्वान्नगरं तदारम्भे मूलस्तम्भः । नगरारम्भे हि मूलस्तम्भो भवति ।

❀ कमलेश्वरी ❀

उन्नत मस्तक पर चन्द्रमारूपी चँवर से विभूषित तथा त्रिभुवनरूपी नगर की संरचना के मूलस्तम्भ भगवान् शङ्कर को नमस्कार है ॥१॥

टिप्पणी

१. जीवानन्द पाठानुसार प्रथम श्लोक निम्न है—

चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम । मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

अर्थात्—ब्रह्माजी के मुखरूपी कमलवन में विचरने करने वाली हंसी के समान सर्वथा शुभ्रवर्णा सरस्वती देवी मेरे मन में सदैव रमण करें ॥

तत्र च पट्टबन्धादिवदुत्प्रेक्षणानन्तरमुन्नते पृष्ठदेशे चन्द्रतुल्यं श्वेतं चामरं क्रियत इति स्थितिः। केचित्पुनः—त्रैलोक्यनगरस्यारम्भे मूलं मूलकारणं परमाणवस्तेषामुपाश्रयेण मूलकारणत्वात्स्तम्भ इव। ते हि तद्वशात्कार्यमारभन्ते। तस्य निमित्तकारणत्वादित्याहुः। 'स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः' इति नामसहस्रे दृष्टत्वाद्धरेः, 'शम्भू ब्रह्मत्रिलोचनौ' इत्यभिधानकोशदर्शनाच्च ब्रह्मणोऽपि नमस्कारोऽयमित्यन्ये वदन्ति। व्याकुर्वते च हरिपक्षे—त्रैलोक्याक्रमणकाले। यद्वा—'यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ मही' इत्यभिप्रायेण तुङ्गमुच्छ्रितं द्युलक्षणं यच्छिरस्तच्चुम्बिचन्द्र एव चामरं तेन चारवे। ब्रह्मपक्षे—चन्द्रः स्वर्णं तन्मयं चामरमिव चामरं केशकलापः हिरण्यकेशो हि ब्रह्मा त्रैलोक्यादीनि शेषं सर्वत्र तुल्यमिति ॥ १ ॥

नमस्तुङ्ग० ॥ महाकवि बाणभट्ट ने "सर्वकर्माणि कुर्वीत प्रणिपत्येष्टदेवताम्" इस शिष्टाचार का अनुपालन करते हुए ग्रन्थादि में 'नमस्तुङ्ग०' इस पद्य के द्वारा भगवान् शङ्कर की स्तुति की है। महाकवि के अनुसार भगवान् शङ्कर त्रिभुवन के निर्माण में मूलस्तम्भ-स्वरूप हैं तथा उनके उन्नत मस्तक पर सुशोभित चन्द्रमा मानो चँवर का कार्य सम्पादित कर रहा है। प्राचीन वास्तुकला के अनुसार मूलस्तम्भों पर चन्द्राकार चँवर बनाये जाते थे जो स्तम्भ के ऊपरी भाग में अवस्थित किये जाते थे। चन्द्र एवं चँवर—ये दोनों ही चूँकि उज्ज्वल वर्ण एवं श्रमनिवारक होते हैं इसीलिए इस क्षेत्र में दोनों की अभिन्नता सिद्ध होती है। विश्वसृष्टि के मूलकारण (उपादान करण) परमाणुओं का आधार होने से शङ्कर को त्रिलोकी-निर्माणारम्भ की मूलस्तम्भ कहना भी उपयुक्त ही है।

मेदिनी-कोश के अनुसार चन्द्रपद सुवर्णबोधक भी है और चूंकि ब्रह्मा जी भी हिरण्यकेश हैं अतः इस पद्य को ब्रह्मा जी की स्तुति के रूप में भी लिया जा सकता है। इसके साथ ही "स्वयंभू शम्भुरादित्यः" इस विष्णु-सहस्रनामान्तर्गत पद्यांश के अनुसार शम्भुपद के विष्णुवाचक होने के कारण प्रस्तुत पद्य विष्णुस्तुतिपरक भी सिद्ध होता है। "यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा" इस वचन के अनुसार अग्नि को विष्णु का मुख तथा स्वर्ग को उनका मस्तक बतलाया गया है। इस प्रकार विष्णु पक्ष में—उच्चस्थित स्वर्गलोक में वर्तमान चन्द्रमारूपी चंवर से विभूषित विष्णु को नमस्कार है—यह अर्थ भी किया जा

[1]हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षीं नमाम्युमाम् ।
कालकूटविषस्प[2]र्शजातमूर्च्छागमामिव ॥ २ ॥

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे ।

हरेत्यादिना । प्रियं प्रति गाढस्नेहादि सौकुमार्यं चोपमयोच्यते । कालकूटविषेति प्रशंसार्थः सामान्यपदप्रयोगो मेरुमहीधरचूतवृक्षादिवत् । आगमः प्रारम्भः ।।२।।

संप्रत्युत्कृष्टकवित्वाभिमानेन तादृशमेव कविवरं स्तौति—नमः सर्वेत्यादिना ।

शङ्कर के कण्ठालिङ्गनजन्य आनन्द के कारण मुंदी आँखों वाली तथा शङ्कर के कण्ठस्थित कालकूट-विष के सम्पर्क के कारण मूर्च्छा को प्राप्त हो गई-सी उमा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

सम्पूर्ण (वेदादि विद्याओं एवं गीतादि कलाओं) को जानने वाले तथा

सकता है । इस प्रकार भगवान् शङ्कर, ब्रह्मा तथा विष्णु—इन तीनों देवों के पक्षों में प्रस्तुत मङ्गल-श्लोक का अर्थ भिन्न-भिन्न विद्वानों ने किया है ।। १ ।।

हरकण्ठेति ।। पाठान्तर—१. हरकण्ठाग्रहानन्द, २. स्पर्शाजात । पूर्व श्लोक में शम्भु की स्तुति करने के बाद इस श्लोक में कवि ने शम्भु-प्रिया उमा की स्तुति की है । अपने प्रियतम शम्भु का कण्ठालिङ्गन करने के कारण उमा के नेत्र आनन्दातिरेक से बन्द हो गये हैं । आनन्दजन्य नेत्रनिमीलन को लक्षित कर शम्भु के कण्ठस्थित कालकूट विष के स्पर्श से उमा के मूर्च्छित हो जाने की उत्प्रेक्षा की गई है । प्रस्तुत पद्य द्वारा उमा का शम्भु के प्रति प्रगाढ स्नेह एवं सुकुमारता—दोनों ही की अभिव्यञ्जना हुई है । वस्तुतः कवि ने इस पद्य के द्वारा शक्ति एवं शक्तिमान् के पारस्परिक अभेद से सम्बद्ध "शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते" इस दार्शनिक सिद्धान्त को आलङ्कारिक भाषा में प्रस्तुत किया है । शिवाभिन्न शक्ति की दो अवस्थाएँ होती हैं—अन्तर्लीना एवं बहिर्मुखी । इनमें से प्रथमावस्था आनन्दनिमग्ना तथा दूसरी संसारचक्र-प्रवर्तिका होती है । इस पद्य में शिवाभिन्ना शक्ति की प्रथमा अर्थात् अन्तर्लीनावस्था; जो आनन्दनिमग्ना है; का ही वर्णन किया गया है ॥ २ ॥

नमः सर्वेति । इस पद्य में महाभारत-ग्रन्थप्रणेता महर्षि व्यास को कवि

चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥ ३ ॥

सर्वा वेदादिका विद्या गीतादिकलाश्च वेत्ति यस्तस्मै । तदुक्तम्—'नासौ शब्दो न तद्वाच्यं न सा विद्या न सा कला । जायते यत्र काव्याङ्गमहो भारो महाकवेः ॥' इति कविरेव वेधाः । उक्तं च—'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः' । कवीनां वेधाः । कविशब्दोऽत्रोपचारात्कविबुद्धिषु वर्तते । तेन कविबुद्धीनां श्रेष्ठ इत्यर्थः । तथा चाह मुनिः—'इतिहासोत्तमादस्माजायन्ते कविबुद्धयः' इति । यद्वा व्युत्पत्त्युत्पादनद्वारेण कवय एवंभूताः सन्तः क्रियन्ते । मुख्य एव कविशब्दस्यार्थः । यदुक्तम्—'इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते' इति । पुण्यं पावनम् । यदुक्तम्—'भारताध्ययनात्पुण्यादपि पादमधीयतः । श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापानि देहिनः ॥' इति । सरस्वती वाणी, तस्या लताया इव पुष्पादिहेतुत्वाद्वर्षं वृष्टिमिव । वर्षं वा स्थानविशेषः । यतोऽसौ तत्रास्ते । यदुक्तम्—'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' । भरतानधिकृत्य कृतो ग्रन्थो भारतस्तम् । यद्वा—भारतं वर्षमिव । भरतः कश्चिद्राजा तस्य निवासं भारतं वर्षं भूभागैकदेशस्तदिव । उक्तं च—'स्याद्वृष्ट्यां लोकधात्र्यंशे वत्सरे वर्षमस्त्रियाम्' इति । यद्वा—भारतवर्षान्तरस्था भावा मनुष्येषु सुलभास्तद्वन्महाभारतस्था सरस्वती । एतदपि सरस्वत्याख्यया पुण्यम् ॥ ३ ॥

कवियों के विधाता महर्षि वेदव्यास को नमस्कार है जिन्होंने सरस्वती (नदी) के द्वारा पावन (भारत) वर्ष के समान (अपनी) सरस्वती (वाणी) से भारत (महाभारत ग्रन्थ) की रचना की ॥ ३ ॥

ने अपना आदर्श मानते हुए उनके लिए "सर्ववित्" एवं "कविवेधस्" जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है। महाभारतकार के लिए ये दोनों विशेषण सर्वथा उपयुक्त ही हैं। "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्" का सडिण्डिमोद्घोष जिस महान् ग्रन्थ में किया गया है उसके रचयिता के लिए "सर्ववित्" विशेषण उचित ही है। साथ ही अवान्तर कालीन कतिपय कवियों के काव्यों का उपजीव्य महाभारत रहा है, अतः महर्षि व्यास को यदि "कविप्रजापति" की उपाधि से विभूषित किया गया है तो यह भी कुछ अनुचित नहीं ! जिस प्रकार व्यास के महाभारत में कोई भी ज्ञेय विषय अछूता नहीं है उसी प्रकार

प्राय: कुकवयो लोके रागाधिष्ठितदृष्टय:[1] ।
कोकिला इव जायन्ते वाचाला: कामकारिण:[2] ॥ ४ ॥
सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे-गृहे ।

एवं सर्वज्ञतागुणकथनेन कविप्रशंसां कृत्वा काव्यप्रशंसामाह—प्राय इत्यादिना । काव्यमेतं नाम स्वभावसुभगम् । येनेदृशा अपि कवय: प्राय: प्राचुर्येण कोकिला इव जायन्ते वल्गुवाच: सम्पद्यन्ते, किं पुन: संविशिष्टा न जायेरन् । केचित्पुनर्भूयसा कुत्सिता: कवयो जायन्त इति कुकविनिन्दैवेयमिति व्याख्यातवन्त: । रागो द्वेषपूर्वं-कोऽनर्थाभिनिवेशस्तेनाधिष्ठिता दृष्टिर्बुद्धिर्येषाम् । वाचाला असंबद्धप्रलापिन: । कामेन स्वेच्छया, न त्वलंकारकृद्दर्शितनीत्या कुर्वन्ति ये ते । कोकिलपक्षे—कुकन्ति गृह्णन्ति चेतांसीति कुका:, ते च ते वयो मयूरप्रवरा: पक्षिण:, रागो लौहित्यम् । दृष्टिश्चक्षु: । वाचा भारत्या । आला आ समन्ताल्लान्त्यावर्जयन्ति यतस्तादृशा: सन्त: । कामं व्यसनं कुर्वन्ति तच्छीला: । कामोद्दीपनविभावतां यान्तीत्यर्थ: । यद्वा—अवाचाला: । अकारप्रश्लेषोऽत्र ॥ ४ ॥

सन्तीत्यादि । असंख्या अगणनार्हा: । जातिं स्वरूपवर्णनामात्ररूपां वक्रोक्तिशून्यां

संसार में प्राय: कुकवि लोग कोकिल के समान रागयुक्त दृष्टि वाले वाचाल एवं स्वेच्छाचारी होते हैं । (अर्थात् जिस प्रकार कोकिल के नेत्रों में रक्तिमा होती है उसी प्रकार कुकवि भी द्वेषपूर्वक अनर्थाभिनिवेशरूप राग से युक्त होते हैं । कोकिल जिस प्रकार वाचाल एवं कामोद्दीपक होते हैं उसी प्रकार कुकवि भी क्रमश: असम्बद्ध प्रलाप करने वाले तथा स्वेच्छाचारी होते हैं । आलङ्कारिकों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर वे नहीं चलते) ॥ ४ ॥

कुत्तों के समान घर-घर में (अर्थात् प्रत्येक स्थान में) जन्म ग्रहण करने

अपनी काव्य-रचना-नैपुणी द्वारा सम्पूर्ण जगत् को उच्छिष्ट करने वाले बाणभट्ट जैसे महाकवि ने व्यास की स्तुति द्वारा उन्हें यदि अपना आदर्श बनाया है तो यह नितान्त स्वाभाविक ही है ॥ ३ ॥

प्राय इति ॥ पाठान्तर—१. रागाधिष्ठितमूर्तय:, २. कामचारिण: ॥ ४ ॥

सन्तीति ॥ जातिभाज:—यहाँ "जातिभाज:" शब्द से वैसे कवि अभिप्रेत

उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव ॥ ५ ॥
अन्यवर्णपरावृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः ।
अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते ॥ ६ ॥

भजन्ते । 'गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः' इत्यादिवत् । श्वानोऽप्यसंख्याः । नास्ति संख्यं संग्रामो येषां ते । जातिशब्देनात्र श्वजातिसमवेता अमेध्यभक्षणादयो गृहीताः । यद्वा–श्वत्वं नाम जातिस्तत्प्रतिपादनं प्रयोजनान्तरशून्यतामावेदयति । उत्पादना नवनिर्माणकारिणः, ऊर्ध्वपादाश्च । शरभा हि प्राणिभेदाः । अष्टपादा एते । श्वजातीया इति केचित् ॥ ५ ॥

अन्येति । कविश्चौरः सहृदयानां मध्येऽनाख्यातः न कथितोऽपि ज्ञायते । न आ समन्तात्ख्यातः, अपि तु किञ्चित्प्रथितो वा । अन्ये पूर्वकविनिबद्धविलक्षणा ये वर्णा अक्षराणि तेषां रचनेन बन्धचिह्नं श्रीलक्ष्मीप्रभृतिरचनालिङ्गम् । अन्ये तु भाषा-

---

वाले कवि असंख्य हैं जो स्वरूप मात्र का वर्णन करते हैं, किन्तु शरभ के समान नवीन काव्य का निर्माण करने वाले कवि बहुत नहीं हैं (अर्थात् अल्पसङ्ख्यक हैं) ॥ ५ ॥

अन्य कवियों के अक्षरों को बदल देने के कारण तथा (काव्य) निर्माण के चिह्नों को छिपाने के कारण (अप्रसिद्ध) कवि सहृदयजनों के बीच बिना कहे हुए ही चोर समझे जाते हैं, क्योंकि चोर भी लोगों के बीच आकृति-परिवर्त्तन (मुँह के फीके पड़ जाने) के कारण तथा बन्धनचिह्न (बेड़ियों के दाग) को छिपाने के कारण बिना कहे हुए भी लोगों द्वारा पहचान ही लिया जाता है ॥ ६ ॥

हैं जो "गतोऽस्तमर्कः", "इन्दुर्भाति" जैसी वक्रोक्तिशून्य उक्तियों द्वारा केवल जाति अर्थात् स्वरूप मात्र का वर्णन करते हैं। ऐसे कवियों का काव्य चमत्कारोत्पादक न होने से सहृदयों द्वारा श्लाघ्य नहीं होता। शरभाः—शरभ एक प्राणि-विशेष है जिसके आठ पैर होते हैं और सब-के-सब ऊपर की ओर उठे रहते हैं।

कुछ लोग इसे कुत्ते की जाति का मानते हैं।

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम् ।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्[1] ॥ ७ ॥
नवोऽर्थो जातिरग्राम्या[2] श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।

लंकारप्रभृतिबन्धचिह्नमाहुः । अथ च सतां साधूनां मध्ये चौरो लक्ष्यते । कीदृक् ? न ना अना कापुरुषः अख्यातोऽप्रसिद्धः । केन ? अन्यः प्राक्तनच्छायाव्यतिरिक्तस्त्रासकृतः पाण्डिमादिर्वर्णो मुखरागविशेषस्तत्परिवर्तनेन । यद्वा—शूद्रत्वे सति द्विजादिवर्णाश्रयेण । स्वजात्युचितस्य स्वभावस्य त्यक्तुमशक्यत्वाद्भावप्रकटनमवश्यमेव भवति । यतो बन्धः शृङ्खलादिकृतो ग्रन्थिस्तच्चिह्नं त्वग्दूषणादि ॥ ६ ॥

श्लेषेत्यादि । मात्रकपदेन श्लेषयमकाद्यलंकारशून्यत्वं दर्शयति । अक्षरेत्यादिनार्थविशेषाभावं प्रसादादिगुम्फनाभावं चाख्याति । एतदुक्तं भवति—क्वचित्कश्चिद् गुणोऽपि भवति । स च भवन्नपि न सहृदयजनावर्जक इति । अमुनैवाभिप्रायेण नव इत्यादीनि प्रत्येकं विशेषणपदानि वक्ष्यति ॥ ७ ॥

नव इत्यादि । नव आद्यैः कविभिरनिबद्धः, चमत्कारी च । जातिः स्वभावोक्तिः । अग्राम्येति । न तु 'गतोऽस्तमर्कः' इत्यादिरूपा । सधर्मेषु तन्त्रप्रयोगः श्लेषः । अक्लिष्टः सम्यगनेकार्थप्रतिपादनक्षमः । स्फुटो दुर्बोधभङ्ग्यादिभिरदूषितः ।

उत्तरक्षेत्रीय कवियों की रचना में श्लेषालङ्कार की प्रधानता रहती है। पश्चिमक्षेत्रीय कवियों की रचना में अर्थगाम्भीर्य रहता है। दाक्षिणात्य कवियों की रचना में उत्प्रेक्षा का बाहुल्य तथा गौडदेशीय (पूर्वक्षेत्रीय) कवियों की रचना में अक्षरमात्र की प्रचुरता होती है ॥ ७ ॥

अभिनव (पूर्वकवियों द्वारा अब तक नहीं प्रस्तुत किया गया) अर्थ अर्थात् बिल्कुल नई कल्पना, अग्राम्यजाति अर्थात् ग्राम्यदोष से रहित स्वभावोक्ति, अक्लिष्ट अर्थात् झट-से समझ में आ जाने वाला श्लेष, सुबोध

श्लेष प्रायमिति ॥ पाठान्तर—१. गौडेष्वक्षरडम्बरः ॥ ६ ॥
नवोऽर्थ इति ॥ ,, २. जातिरग्रास्याः ॥ ७ ॥

[1]विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥ ८ ॥
किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिनी ।
कथेव भारती यस्य न [2]व्याप्नोति जगत्त्रयम् ॥ ९ ॥
उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती ।

रसः शृङ्गारादिः । विकट उदारतालक्षणबन्धगुणयुक्तः । यत्र सति नृत्यन्तीव पदानि प्रतिभासन्ते ॥ ८ ॥

किमित्यादि । वृत्तानि वर्णमात्रागणसमार्धसमविषमरूपाणि तदन्तगमनं तद्विरचनक्षमत्वम् । भारती वाणी । व्याप्नोति । अदृष्टमपि दृष्टमिव जगत्त्रयं प्रतिभानवशाद्व्युत्पत्तेश्च तथात्वेन प्रकाशयति । यद्वा—जगत्त्रये प्रथिता भवतीति स्फुट एवार्थः । भारतानधिकृत्य प्रथिता भारती कथेव । सापि सर्वे ये वृत्तान्ताः सत्पुरुषचरितान्युपाख्यानानि च तान्गमयति बोधयति । तथा सर्वत्र ज्ञेया भवति । तथा च—'नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन् । गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः ॥' इत्युक्तम् ॥ ९ ॥

अधुना स्वगुरुतः स्वप्रभृतिभिः कृतानाख्यायिकादीन्काव्यभेदान्स्तुवन्नौद्धत्यार्थं सर्वत्र नमस्कारमाह—उच्छ्वासान्त इति । उच्छ्वास इवोच्छ्वासो विश्रान्तिस्थानं सर्गादिवत्कथासन्धिस्तस्यान्तेऽप्यखिन्ना उच्छ्वासान्तरकरणक्षमाः । अविच्छिन्नप्रतिभाना इति यावत् । गुरुत्वाद्बहुवचनम् । 'नान्दन्तो ह्यानुपूर्वं वक्त्रम्' इति वक्त्रलक्षणम् ।

(शृङ्गारादि) रस तथा आकर्षक शब्द योजना—ये सारी विशेषताएँ एक स्थान में अर्थात् किसी एक काव्य में दुष्प्राप्य हैं ॥ ८ ॥

जिस कवि की वाणी सब प्रकार के वृत्तान्तों वाली महाभारतीय कथा के समान तीनों लोकों में व्याप्त नहीं होती उस कवि के काव्य से क्या (लाभ)? (अर्थात् जो कवि सर्वविध आदर्श चरित्र चित्रण में समर्थ नहीं है वह कवि तथा उसका काव्य—दोनों ही व्यर्थ हैं ॥ ९ ॥

आख्यायिकाओं के रचयिता वैसे कवि (सहृदयजनों द्वारा) क्यों न

पाठान्तर—१. विकटोक्षरबन्धश्च ॥८॥
किमिति ॥ „ २. प्राप्नोति दिगन्तरम् ॥ ९ ॥

कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः ॥१०॥

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।
शक्त्येव [1]पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णमोचरम् ॥११॥
[2]पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः ।

वक्त्रे सरस्वती । वृत्तविशेषयोगिनीत्यर्थः । एतस्मिन्नाख्यायिकाकृद्भिर्भाविवस्तुसंसूचनाय वाग्विरच्यते । तथा चाह भामहः—'वक्त्रं चापरवक्त्रं च काव्ये काव्यार्थशंसिनि' इति । आख्यायिकाः कुर्वन्तीत्याख्यायिकाकाराः । यद्वा—आख्यायिकेवाकारो येषाम् । अथ 'कविं पुराणम्' इति न्यायेन कवयश्च त ईश्वरा हरिहरब्रह्माणः । उच्छ्वसन्ति भूतान्यस्मिन्नित्युच्छ्वासः कल्पस्तदन्ते संहारेऽपि तेऽखिन्नाः कल्पान्तरजननोद्योगिनस्तेषां मुखे वागीशी । उक्तं च—'सरस्वतीवाग्बलमुत्तमोऽनिलः' इत्यादि । आख्यायिकाभिराख्यानैराकारो येषाम् । सर्वस्य हि शास्त्रागमसमधिगम्याः, न पुनः प्रत्यक्षलक्ष्याः । ते च वन्द्याः सर्वस्य ॥ १० ॥

कवीनामिति । वासवदत्ता कथा, वासवेन शक्रेण दत्ता च । कर्णः श्रवणं, राधेयश्च । कवीनां काव्यकर्तृणां, द्रोणादीनां च ॥ ११ ॥

पदेत्यादि । पदानां सुप्तिङन्तानां बन्धः प्रकृष्टा रचना । रीतिरित्यर्थः । स्वमण्डलावष्टम्भश्च । हारी हृद्यः, हारयुक्तश्च । अहारीति वा । न कस्यचिदपि यो

वन्दनीय हों जो उच्छ्वासों के अन्त में भी नहीं श्रान्त होते तथा जिनके मुख में सरस्वती विराजती हो ॥ १० ॥

जिस प्रकार इन्द्र द्वारा कर्ण को प्रदत्त शक्ति (अस्त्रविशेष) से पाण्डवों का गर्व ढह गया था उसी प्रकार (सुबन्धु कवि बिरचित) "वासवदत्ता" के कानों तक पहुँचते ही (अन्य) कवियों का गर्व भी गल गया (अर्थात् समाप्त हो गया) ॥ ११ ॥

भट्टारक हरिश्चन्द्र का गद्यकाव्य राजा के समान (सर्वश्रेष्ठ) है, क्योंकि

कवीनामिति ॥ पाठान्तर—१. पाण्डुपुत्रस्य ॥ ११ ॥
पदेति ॥ ,, २. पदबद्धोज्ज्वलो हारिकृतकण्ठक्रमस्थितिः,

भट्टारहरिश्चन्द्रस्य　गद्यबन्धो[1]　नृपायते ॥१२॥

[2]अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः　।
विशुद्धजातिभिः　कोशं　रत्नैरिव　सुभाषितैः ॥१३॥

हरति । कृता वर्णानामक्षराणां क्रमेण भामहादिप्रदर्शितनीत्या निर्यासरवस्थानं यत्र, कृतयुगवद्वर्णानां द्विजादीनां क्रमेण मन्वादिस्मृतिकारप्रकाशितमार्गेण स्थितिः पालनं यस्मिन्सतीति च । भट्टारेति पूजावचनम् ॥ १२ ॥

अविनाशिनमित्यादि । अविनाशिनं प्रसिद्धम्, अनश्वरं । च अग्राम्यं वैदग्ध्ययुक्तम्, अग्रामभवं च । जातिः स्वभावोक्तिरूपोऽलङ्कारः । कोशः समुच्चयः, गञ्जश्च । सुभाषितैः सूक्तिभिः, शोभनं च भाषितं प्रभाववर्णनं येषां तैः ॥१३॥

(ललित) पदों के विन्यास के कारण वह उज्ज्वल है, वह चित्ताकर्षक है तथा (भामहादि आलङ्कारिकों द्वारा निर्दिष्ट) वर्णों की क्रमिक (यथोचित) स्थिति उसमें विद्यमान है। (राजा भी अपने पद से विभूषित रहता है, हार धारण करने के कारण हारी होता है या "अहारी" पाठ के अनुसार किसी का कुछ हरण नहीं करता तथा ब्राह्मणादि चारों वर्णों की क्रमानुसार स्थिति रखता है।) ॥ १२ ॥

(राजा) सातवाहन (शालिवाहन या हालकवि) ने जिस प्रकार विशुद्ध रत्नों से (अपने) खजाने को अक्षय बनाया उसी प्रकार (निर्दोष एवं गुणालङ्कारों से युक्त) सूक्तियों का कभी विनष्ट न होने वाला तथा वैदग्ध्यपूर्ण सङ्ग्रह ("गाथासप्तशती" भी उन्होंने) बनाया ॥ १३ ॥

पाठान्तर—१. पद्यबन्धो ॥ १२ ॥

अविनाशिनमिति ॥　,,　२. कुविनाशिनम् ।

सातवाहन—ये सातवाहन आन्ध्रभृत्यवंशीय राजा शालिवाहन ही हैं। ये ही हालकवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। "गाथासप्तशती" नामक इनका कोशकाव्य इतिहासप्रसिद्ध है ॥ १३ ॥

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य परं पारं कपिसेनैव सेतुना ॥१४॥
सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः[1] ।
सपताकैर्यशो लेभे [2]भासो देवकुलैरिव ॥१५॥

कीर्तिरित्यादि । प्रवरसेन कश्चित्कविः प्रवे प्लुते रसो येषां ते प्रवरसा वानरास्तेषामिनः स्वामी, प्रवरा च सेना यस्य स सुग्रीवश्च । कुमुदवत्कैरववत् । यद्वा—कुर्भूमिस्तस्या मुत् प्रहर्षस्तयेति, कुमुदेन वानरसेनापतिना च । सेतुः प्राकृतकाव्यग्रन्थः, सेतुश्च ॥ १४ ॥

सूत्रेत्यादि । सूत्रधारः पूर्वरङ्गस्य प्रवक्ता चाचिक्यः, स्थपतिश्च । भूमिकाः पात्राणि रामाद्यनुकार्यावस्थाभूमयः, उपभोगनिमित्तान्युत्पत्तिस्थानानि । पताका अर्थप्रकृतिः । उक्तं च—'बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च । अर्थप्रकृतयो ह्येताः पञ्च सर्वप्रयोगगाः ॥' इति । 'यद्वृत्तं तु परार्थं स्यात्प्रधानस्योपकारकम् । प्रधानवच्च कल्पेत सा पताकेति कीर्त्यते ॥' इति वैजयन्ती च पताका ॥ १५ ॥

जिस प्रकार कुमुद नामक वानर सेनापति से सुशोभित वानरसेना सेतु द्वारा समुद्र को पार कर गई थी उसी प्रकार (काश्मीरवासी महाराज) प्रवरसेन की कुमुद-सदृश धवल कीर्त्ति सेतु (सेतुबन्ध अर्थात् "रावणवध" नामक काव्य निर्माण) के द्वारा सागर के पार तक पहुँच गई ॥ १४ ॥

सूत्रधार द्वारा प्रारम्भ किये गये, विविध पात्रोचित भूमिकाओं वाले तथा नाट्योक्त पताकाओं (सहायक कथाओं) से युक्त नाटकों के द्वारा भास ने देवमन्दिरों के समान कीर्त्ति अर्जित की है । (जिस प्रकार अच्छे कारीगरों द्वारा विनिर्मित, विशालकाय तथा अनेक पताकाओं से सुसज्जित देवमन्दिरों के द्वारा कीर्त्ति व्याप्त रहती है उसी प्रकार भासरचित १३ नाटक मानों १३ मन्दिर हैं, जिनकी रचना से भास को पवित्र ख्याति प्राप्त हुई है ।) ॥ १५ ॥

सपताकैरिति ॥ पाठान्तर—१. बहुभूपिकैः, २. भासा ॥ १५ ॥

[1]निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥१६॥
समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।

निर्गतास्विति । निर्गता उच्चारितमात्राः । आस्तां तावदर्थावगतिः, आपात एव गीतध्वनिवत्किमपि श्रोत्रहारिण्यः । यदुक्तम्—'अपर्यालोचितेऽप्यर्थे बन्धसौन्दर्यसंपदा । गीतवद्धृदयाह्लादं तद्विदां विदधाति यत् ।। तत्काव्यम्' इत्यादि । तथा निर्गताः सर्वदेशप्रतीताः, अन्यत्र—निर्गता अभिनवोद्भिन्नाः न वा कस्येत्यनेनैतदुक्तम् । आस्तां तावत्काव्यतत्त्वविदः सहृदया विवेक्तारः येऽपि शास्त्रप्रहितबुद्धयो दुरूढमत्सरप्रायास्तेषामपि या हृदयमाह्लादयन्ति । तथा चोक्तम्—'असुणिअ परमंथाण वि हरेइ वाआमआणं कइम्माण । आणाणजकुवलअवणमलद्धगंधाण वि सुहाइ ।।' इति । मधुराश्च ताः सान्द्राः सरसाः । अन्यत्र—मधुना मकरन्देन किंजल्केन रसेन सान्द्राः सुगन्धयः ॥ १६ ॥

समुदित्यादि । बृहत्कथा कस्य न विस्मयाय । अपि तु सर्वस्यैव गर्वविनाशाय भवतीत्यर्थः । अद्भुतकथावर्णनाद्वाश्चर्याय । समुद्दीपितो वृद्धिं नीतः कंदर्पो यस्याम् । कामजनानां बहूनां वृत्तान्तानां वर्णनादुद्बोधितः स्मरो ययेति वा । काव्यसेवया हि

कालिदास की सूक्तियों के उच्चरित होते ही उनमें किसे आनन्द प्राप्त नहीं होगा, जो नवीन मञ्जरियों के समान मधुर एवं सरस होती हैं । (अर्थात् जिस प्रकार नवीन मञ्जरियाँ मीठी एवं सघन होती हैं उसी प्रकार कालिदास की सूक्तियाँ भी माधुर्यगुणयुक्त तथा शृङ्गाराभिव्यञ्जक वर्णों से युक्त होने के कारण सरस होती हैं । नई-नई मञ्जरियों के निकलने पर जिस प्रकार लोगों को आनन्द प्राप्त होता है उसी प्रकार कालिदास की सूक्तियों के निर्माण मात्र से लोगों को आनन्द प्राप्त होता है ।) ॥ १६ ॥

जिस प्रकार कामदेव को भस्मसात् करना एवं पार्वती का शृङ्गार करना आदि भगवान् शङ्कर की परस्पर विरुद्ध घटनाएँ किसे आश्चर्य में नहीं डालती

निर्गतास्विति ॥ पाठान्तर—१—निसर्गशूरवंशस्य ॥ १६ ॥

हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥१७॥

[1]आढ्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि ।
जिह्वान्तःकृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्तते ॥१८॥

शृङ्गाररसः समुद्भवति । तथा चोक्तम्—'ऋतुमाल्यालंकारप्रियजनगान्धर्वकाव्यसेवाभिः । उपवनगमनविहारैः शृङ्गाररसः समुद्भवति ॥' यद्वा समुद्दीपितः ख्याति नीतः कन्दर्पो नरवाहनदत्तो यस्यामिति । स हि कामांश इत्यागमः । कृतं गौर्या विद्याभेदस्याराधनं यस्याम् । सा हि नरवाहनदत्तेनेशारूपाराधितेति तत्रोक्तम् । यद्वा—गौरीं प्रति पूरयति गौरीप्रः । साधनपरिकरबन्धो यथा प्रस्तावो यस्याम् । गौरीप्रेरितेन हि हरेण तथा तस्यां परिकरबन्धः कृतो यथा सातीव पिप्रिये । हरलीलापि समुत्सहर्षा, दग्धकामा च । कृतं गौर्याः प्रसाधनं मण्डनं यस्याम् । क्व कामं प्रति तादृग्द्वेषः,क्व च कान्तां प्रति प्रसाधनमिति कृत्वा विस्मयमाश्चर्यम् ॥१७॥

आढ्येति । आढ्यराजः कश्चित्कविः । उत्साहो नृत्ते तालविशेषः । उदीर्यमाणऽगीत्याधारभूतपदोपचारात्काव्यमप्युत्साह इति केचित् । यत्र पूर्वं श्लोकेनार्थं उपक्षिप्यते, पश्चात्स एव गद्येन वितन्यते, मध्ये वृत्तानिबन्धश्च भवति, स परिसमाप्तार्थं उत्साह उच्यत इत्यन्ये । अपिः समुच्चये । यद्वा—आढ्यराजहृदयस्था अप्यन्तर्जिह्वां नाकर्षयन्ति, तत्कथा त एव स्मृता इत्यपि शब्दार्थः ॥ १८ ॥

(अर्थात् सबको आश्चर्य में डालती है) उसी प्रकार (वर्णनों के माध्यम से) कन्दर्प (कामदेव या नरवाहनदत्त) को प्रकाशित करने वाला तथा (नरवाहनदत्त द्वारा सम्पादित) पार्वती-परिचर्या से युक्त (गुणाढ्यकविकृत) बृहत्कथा किसे आश्चर्य में नहीं डालती (अर्थात् सबको आश्चर्यित करती है ?) ॥ १७ ॥

(कविवर) आढ्यराज द्वारा विनिर्मित जो उत्साह (नृत्त के लिए तालविशेष या नर्तन काव्यरूप महान् कार्य) हृदय में अवस्थित हैं उनका स्मरण करने पर (मेरी) जीभ मानों अन्दर की ओर ही खिंची जा रही है और (फलतः) कविता करने में प्रवृत्त नहीं हो पा रही है । (अर्थात् आढ्यराज-सदृश कवि के समक्ष मैं अपने को काव्यनिर्माण के लिए सर्वथा अयोग्य समझ रहा हूँ ।) ॥१८॥

आढ्यराजेति ॥ ,, १—आद्यराज० ॥ १८ ॥

तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुलः ।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ॥ १९ ॥

सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलैः[1] ।
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादकैः ॥ २० ॥

एवमनौद्धत्यमुक्त्वाह—तथेत्यादि । तथापीत्थं जानन्नपि जिह्वाप्लवनलक्षणं चापलं करोमि । यतो नृपतेर्भक्त्याहमपि इतः समन्तायुक्तः । निर्वहणे समाप्त्या-वाकुलः । जिह्वा चाल्पावकालबातस्तत्र वहन्त्यां कश्चिद्यथा प्लवनरूपं चापलं करोति । अत्र पक्षे—अभीतोऽत्रस्तः निर्वहणं पारप्राप्तिः । 'कृत्ये च' इति णत्वम् ॥ १९ ॥

सुखेत्यादि । सुखेन जायासम्मितत्वेन हृदयाह्लादनपूर्वम्, न तु वेदितहासादि-वत्, यः प्रबोधः प्रकृष्टं बोधनं धर्मादिसाधनव्युत्पत्तिः । उक्तं च—'कटुकौषधि-वत्काव्यमविद्याव्याधिभेषजम् । आह्लाद्यमृतवत्काव्यमविवेकगदापहम् ॥' इति । सुवर्णघटना शोभनाक्षररचना । प्रतिपादकैर्विवक्षिताभिधायकैः । शय्यापक्षे—सुखं यः प्रबोधः स्वापादुत्थानम् । सुवर्णघटना हेमयोजना । प्रतिपादकैः खट्वाया उत्थापकैः । तदा पादानां प्रतिच्छन्दाः प्रतिपादकाः पुरुषयत्नोत्थापिताः पाद-मुद्रास्तैः । अत्र च शोभनो वर्णोऽलक्तादिकृतः ॥ २० ॥

फिर भी राजा (हर्ष) के प्रति (अपनी) भक्ति (अत्यधिक प्रेम) होने के कारण आख्यायिकारूपी सागर का पार पाने में भय एवं व्याकुलता का अनुभव करता हुआ मैं अपनी जिह्वा (वाणी) द्वारा तैरने की चपलता कर रहा हूँ ॥ १९ ॥

आसानी से समझ में आ जाने के कारण सुन्दर लगने वाली, सुन्दर (या मधुर) अक्षरों की योजना के कारण आकर्षक तथा अभिप्रेत अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्दों से युक्त आख्यायिका उस शय्या (पर्यङ्क) के समान सुशोभित होती है जिस पर सुखपूर्वक नींद तोड़ी जाती है तथा जिसके पाँव सोने से मढ़े होते हैं ॥ २० ॥

सुखेति ॥ पाठान्तर—१—धरनोज्ज्वला, घटितोज्ज्वला ॥ २० ॥

जयति[1] ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकारकृतजगद्रक्षः[2] ।
सकलप्रणयिमनोरथसिद्धिश्रीपर्वतो हर्षः ॥२१॥

इदानीं यमुद्दिश्येयमाख्यायिका क्रियते तस्य 'तथापि नृपतेर्भक्त्या' इत्यनेन नृपतिशब्देन सामान्येन निर्देशं कृत्वा विशेषेणाह—जयतीत्यादि । ज्वलन्दीप्रतया प्रसरन् प्रताप एव ज्वलनस्तं प्रति पूरयति य आकारस्तेन कृता जगति रक्षा येन सः । सकलानां प्रणयिनां ये मनोरथास्तत्सिद्धौ श्रियां पर्वतो गिरिः । श्रियस्तत्र कटीभूता इव स्थिता इति यावत् । यद्वा—यथा पर्वतस्थः कश्चिद्दुरभिभवः, तद्वद्धर्षस्था श्रीरिति । अथ च श्रीपर्वताख्यो गिरिरीदृगेव । तथा च ज्वलत्प्रकृष्टतापो यो ज्वलनो जठराग्निः स एव निषेधकत्वात्प्राकारः सालस्तेन कृता मुक्तेर्विघ्नहेतुतया जगतो भूलोकस्य रक्षा येन सः । अन्यत्रोत्पादनं तद्यावत् । अन्ये तु—त्रिपुरदाहे यो विघ्नमकरोद्गणेशस्तदा हरेण ज्वलत्प्रकृष्टतापो ज्वलनप्रकारो निर्मितः । तेन तत्र रक्षा विधीयत इत्याहुः । ज्वलनप्राकारश्च द्वौ मुद्रारूपौ मन्त्रविशेषौ स्तः, ताभ्यां कृतजगद्रक्ष इति केचित् । प्रणयिनः सिद्धिकामाः । हर्षः कथानायकः । इतरत्र—हर्षकारितया हर्षः । सर्वत्र च परमार्थतो हर्ष एव जयति । तस्यैवाभिलषणीयत्वात्स एव काव्येन क्रियत इति ध्वनयति ॥ २१ ॥

प्रज्वलित प्रतापाग्नि के प्राकार (दीवार या आवरण) द्वारा संसार की रक्षा करने वाले तथा सम्पूर्ण प्रियजनों की मनोभिलाषाओं की पूर्ति में श्रीपर्वत के समान (महाराज) हर्ष की विजय हो ॥ २१ ॥

जयतीति ॥ „ १—जयत्युज्ज्वलत्प्रताप, जयज्ज्वलत्प्रताप, २—प्रकार ।

श्रीपर्वत—श्रीपर्वत के सम्बन्ध में महाभारत के वन पर्व में लिखा गया है कि इस पर महादेव ने पार्वती के साथ तथा ब्रह्माजी ने देवताओं के साथ निवास किया था—

"श्रीपर्वते महादेवो देव्या सह महाद्युतिः ।
न्यवसत्परमप्रीतो ब्रह्मा च त्रिदशैः सह ॥" (वनपर्व० ८५।१९-२० श्लो०)

एक अन्य विवरण के अनुसार श्रीपर्वत आन्ध्रप्रदेश के गुण्टूर जिले में अवस्थित एक पहाड़ है ६ठीं-७वीं शताब्दियों में मन्त्र-तन्त्र के लिए प्रसिद्ध था । मन्त्रयान का जन्मस्थान यहीं था । कादम्बरी एवं मालतीमाधव में भी इसका उल्लेख है । इसके विषय में उस समय ऐसी प्रसिद्धि थी कि श्रीपर्वत पर सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं ॥२१॥

एवमनुश्रूयते—पुरा किल भगवान्स्वलोकमधितिष्ठन्परमेष्ठी विकासिनि पद्मविष्टरे समुपविष्टः [1]सुनासीरप्रमुखैर्गीर्वाणैः[2] परिवृतो [3]ब्रह्मोद्याः कथाः कुर्वन्नन्याश्च निरवद्या विद्यागोष्ठीर्भावयन्कदाचिदासाञ्चक्रे। तथासीनं च तं त्रिभुवनप्रतीक्ष्यं मनुदक्षचाक्षुषप्रभृतयः प्रजापतयः सर्वे च सप्तर्षिपुरःसरा [4]महर्षयः सिषेविरे। केचिदृचः स्तुतिचतुराः समुदचारयन्। [5]केचिदपचितिभाञ्जि यजूंष्यपठन्।

एवमिति। अनुश्रूयते पारम्पर्येणाकर्ण्यते। किलेत्यत एवागमसूचनाय। भगवानिति केवलनिर्देश उल्लुण्ठनपरिहारार्थम्। ब्रह्मलोकमित्युक्ते सत्युत्कर्षदायिन्यात्मीयताप्रतिपत्तिर्न स्यादिति स्वग्रहणं साभिप्रायम्। अधितिष्ठन्बहुमानेन तद्योगक्षेमादिकमुद्वहन्। परमे पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी। विकासिनीति नित्ययोग इनिः। विष्टरमासनम्। सुनासीरः इन्द्रः। गिरः स्तुतिरूपा वर्णयन्ति भजन्तीति गीर्वाणा देवाः। गीरेव बाणः शरो येषामिति वा, परिवृतश्चतुर्दिक्कं वृतः परिवलितः। तस्य चतुर्मुखत्वात्। ब्रह्म वदन्तीति ब्रह्मोद्याः। 'वदः सुपि क्यप्च'। ब्राह्मणा वेदेन, ब्रह्मणि परमात्मनि वा वेदितव्या ब्रह्मोद्याः। उक्तं च—'ब्रह्मोद्या सा कथा यस्यामुच्यते ब्रह्म शाश्वतम्' इति। सामान्यविशेषभावेन 'उष्ट्रासिकामासते' इतिवत्। ब्रह्मवदनरूपा वा कथास्तासां वक्ष्यमाणगोष्ठ्यभिप्रायेण प्राधान्यात्स्वयं करणम्। निरवद्या दोषरहिताः। तथा च वात्स्यायनः—'या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी। परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद्बुधः॥ लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैककार्यया। गोष्ठ्या सह चरन्विद्वाँल्लोकसिद्धिं नियच्छति॥' समानविद्या-

---

ऐसा सुना जाता है—प्राचीन काल में अपने ब्रह्मलोक में शासन करते हुए, विकसित कमल के आसन पर आसीन, इन्द्र-प्रमुख देवताओं से घिरे हुए, ब्रह्मविषयक चर्चा करते हुए तथा अन्य अनिन्द्य विद्यागोष्ठियों में भाग लेते हुए भगवान् ब्रह्मा एक दिन विराजमान थे। उस प्रकार बैठे हुए उन त्रिलोकपूज्य (भगवान् ब्रह्मा) की सेवा में मनु, दक्ष, चाक्षुष आदि प्रजापति तथा सप्तर्षि प्रभृति महर्षि लोग संलग्न थे। स्तुति करने में निपुण (उनमें से) कुछ ने ऋचाओं का पाठ किया। कुछ ने पूजोपयोगी यजुर्वेदीय मन्त्र पढ़े। कुछ ने

---

१. शुनासीर। २. गीर्वाणगणैः। ३. ब्रह्मोदिताः।
४. महामुनयः। ५. अपि विभाञ्जि।

केचित्प्रशंसासामानि[1] सामानि जगुः। अपरे [2]विवृतक्रतुक्रियातन्त्रा-न्मन्त्रान्व्याचचक्षिरे। विद्याविसंवादकृताश्च तत्र तेषामन्योन्यस्य [3]विवादाः प्रादुरभवन्।

अथातिरोषणः प्रकृत्या महातपा मुनिरत्रेस्तनयस्तारापतेर्भ्राता नाम्ना दुर्वासा द्वितीयेन मन्दपालनाम्ना मुनिना सह कलहायमानः [4]सामगायन्क्रोधान्धो विस्वरमकरात्। सर्वेषु च तेषु [5]शापभयप्रति-पन्नमौनेषु मुनिष्वन्यालापलीलया चावधीरयति[6] कमलसम्भवे,

---

वित्तशीलबुद्धिवयसामनुरूपैरालापैरेकत्रासनबन्धो गोष्ठी। प्रतीक्ष्यः पूज्यः सम्यगु-दात्तादित्रैश्वर्यादिप्राधान्यादुदचारयञ्जगुः। अपचितिः पूजा। सामानि जगुरिति साम्नां गानमेवोचितम्। विद्याविसंवादकृता इति, न तु मात्सर्यादिना। प्रादुरभव-न्नित्यनौचित्यशङ्कया तत्कर्तृत्वपरिहारः।

प्रकृत्येति। अन्यथा ब्रह्मसन्निधानेन कथमीदृगाक्षेपः। कथमीदृशोऽवकाश इत्याह—**महातपा इति**। मुनिरित्यनेनास्य ज्ञानप्राधान्यात्तुल्यतोद्भासनमतीवोप-कारः। अत्रेस्तनय इति न केवलं महातपस्त्वेन यावदत्रितनयत्वेन ब्रह्मलोकप्राप्ति-रस्य। ततस्तारापतेरित्यादिना तथाभूतपरमप्रजापतिसम्बन्धयोग्यत्वमस्याख्यायते। द्वितीयेनेति तत्समत्वमुच्यते। कथं सामगानेऽप्यनवहित इत्याह—**क्रोधान्ध इति**। सर्वेष्वित्यादौ देवी सरस्वती श्रुत्वा जहासेति क्रियाप्रतिपत्तिरस्य मा भूदित्युत्तमप्रकृति-

---

प्रशंसापरक सामों का गान किया। अन्य लोगों ने यज्ञक्रियोपयोगी मन्त्रों की व्याख्या की। वहाँ उन लोगों के मध्य शास्त्रों के मतभेद को लेकर परस्पर विवाद उत्पन्न हो गये।

इसके बाद स्वभाव से ही अत्यन्त क्रोधी, महान् तपस्वी, अत्रिमुनि के पुत्र, चन्द्रमा के भाई दुर्वासा नामक मुनि ने मन्दपाल नामक दूसरे मुनि के साथ झगड़ते हुए सामगान करते समय क्रोधान्ध होकर स्वरभङ्ग कर दिया। शाप के भय से सारे मुनियों ने चुप्पी साध ली तथा ब्रह्माजी ने भी दूसरों से बात-चीत

पाठान्तर—१. सामानि। २. बिततक्रतु०। ३. विद्याविवादाः। ४. सामगायः, ५. शापभयात्प्र, ६. अवधीरयति।

भगवतो कुमारी किञ्चिदुन्मुक्तबालभावे भूषितनवयौवने वयसि[1] वर्तमाना, गृहीतचामरप्रचलद्भुजलता पितामहमुपवीजयन्ती, निर्भर्त्सनताडनजातरागाभ्यामिव [2]स्वभावारुणाभ्यां पादपल्लवाभ्यां समुद्भासमाना, शिष्यद्वयेनेव पदक्रममुखरेण नूपुरयुगलेन वाचालितचरणयुगला, धर्मनगरतोरणस्तम्भविभ्रमं बिभ्राणा जङ्घाद्वितयम्[3], सलीलमुत्कलहंस[4]कुलकलालापप्रलापिनि मेखलादाम्नि[5] विन्यस्तवामहस्तकिसलया, विद्धम्मानसनिवासलग्नेन गुणकलापेनेवांसाव[6]-

त्वादन्वेत्याद्युक्तम् । अन्येन सहालापलीलाकथाक्रीडया । कुमारीति । कुमारीत्वेनास्या हास्यादिकं नानुचितमिति दर्शयति । भूषितेत्यनेन दर्शनीयत्वमाह—पितामहमिति । सर्वप्राधान्यमनेनोक्तम् । निर्भर्त्सनं ताडनं तेन तदर्थं वा यत्ताडनं रोषाद्भूमिहननं तद्वशाद् जातरागाभ्यामिव पादपल्लवाभ्यामित्यनेनारुणत्वं सौकुमार्यं चाह । अत एव गाढताडनेन रक्तत्वमुत्प्रेक्षितम् । ताडितो वायं ताडितस्तत्तुल्यो रागो जातो ययोरिति व्याख्येयम् । पदक्रमं पादन्यासपरिपाटी । अन्यत्र च—पदानि च क्रमश्च तत्पदक्रमम्, चरणौ पादौ चरणाश्च विशिष्टशाखापाठकता वाचालिताः शोभिता ययेति । उत्का उत्सुकाः । मेखलादाम्नि रशनागुणे । मानसं चित्तं, सरोविशेषश्च ।

करने के बहाने (उस विस्वर गान के प्रति) अन्यमनस्कता दिखलाई, किन्तु कुछ-कुछ बालभाव को छोड़कर नवीन यौवन को अलङ्कृत करने वाली अवस्था में वर्त्तमान, चँवर पकड़ कर बाहुलता को हिलाती हुई तथा पितामह को हवा करती हुई, (दुर्वासा की) भर्त्सना में पैर पटकने के कारण मानों लाल हुए (अपने) स्वाभाविक लाल पैरों से सुशोभित, जिस प्रकार पद-पाठ एवं क्रम-पाठ के अभ्यास में मुखर दो शिष्य अपने चरण अर्थात् शाखा का स्वाध्याय करते हैं उसी प्रकार अपने चरणन्यास के कारण (बजते हुए) दोनों नूपुरों से युक्त शब्दायमान चरणों वाली, धर्मनगर के तोरण-स्तम्भों के भ्रम को पैदा कर रही दो जङ्घाओं को धारण करने वाली, उत्कण्ठित राजहंसों के समान मधुर-अस्फुट ध्वनि करती हुई, करधनी पर विलासपूर्वक वामहस्तरूपी किसलय को स्थापित

पाठान्तर—१. नवे वयसि । २. स्वभावारुणपाद । ३. द्वितीयम् । ४. कुलकल, कुलकलालापप्र । ५. धाम्नि । ६. नेवांशाव ।

लम्बिना [1]ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकाया, भास्वन्मध्यनायकमनेकमुक्तानुयातमपवर्गमार्गमिव [2]हारमुद्वहन्ती, वदनप्रविष्टसर्वविद्यालक्तकरसेनेव पाटलेन[3] स्फुरता दशनच्छदेन विराजमाना, संक्रान्तकमलासनकृष्णाजिनप्रतिमां [4]मधुरगीताकर्णनावतीर्णशशिहरिणामिव कपोलस्थलीं दधाना, तिर्यक्सा[5]वज्ञनुन्नमितैकभ्रूलता, श्रोत्रमेकं विस्वरश्रवणकलुषितं प्रक्षालयन्तीवा[6]पाङ्गनिर्गतेन लोचनाश्रुजलप्रवाहेणेतरश्रवणेन च विकसितसितसिन्धु[7]वारमञ्जरीजुषा हसतेव प्रकटितविद्यामदा,

---

गुण अपि भास्वान्दीप्तो मध्यनायकः पदकं यत्र तत् । अथ च भास्वतो मध्यं तेन नयति सः । यदुक्तम्—'परिव्राड्योगयुक्तश्च शूरश्चाभिमुखे हतः । द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ॥' इति । मुक्ता मौक्तिकानि, मोक्षगामिनश्च । हारं मुक्ताकलापं च, अपवर्गमपि । हारं हरसम्बन्धिनं तत्प्रसादप्राप्यत्वात् । 'अलक्तकरसेनेव पाटलेन' इति वा पाठः । स्फुरतेति रोषात् । भगवतीकपोले शशिहरिणस्यैवावतारः सम्भाव्यत इति शशिपदम् । अत्र हि कपोले ब्रह्मकृष्णाजिनसंक्रान्तिः, तत्र कामसम्भावना सामान्यहरिणस्यावतरणे । कलुषितं प्रक्षालयन्तीवेति । सलिलस्य क्षालन-

---

करने वाली, विद्वानों के मानस में निवास करने के कारण सङ्क्रान्त हुए गुणों (धागों या तन्तुओं) के समूह से ही मानों कन्धे पर अवस्थित यज्ञोपवीत से पवित्र किये गये शरीर वाली, सूर्य के मध्य से ले जाने वाले तथा अनेक मोक्षगामी प्राणियों द्वारा अनुसृत मोक्षमार्ग के समान चमकते हुए हारमध्यमणि से युक्त तथा अनेक मोतियों से गुँथे हुए हार को पहनी हुई, मुख में प्रविष्ट सब विद्यारूपी अलक्तकरस (लालरस) से ही मानों लाल हुए, (क्रोध के कारण) फड़कते हुए होठों से सुशोभित, ब्रह्माजी के काले मृगचर्म की छाया मानों मधुर गीतों को सुनने के लिए उतर आये चन्द्रस्थ हरिण की भाँति जहाँ पड़ रही थी, ऐसे कपोल प्रदेश को धारण करने वाली, तिरस्कार के कारण टेढ़ी एवं ऊपर की ओर उठी हुई एक भृकुटिलता से युक्त, स्वरभङ्गयुक्त पाठ को सुनने के कारण मलिन हुए एक कान को आँख के कोने से निकलती हुई अश्रुधारा से मानों धोती हुई तथा खिले हुए उजले सिन्दुवार की मञ्जरी से युक्त मानों हँसते हुए, दूसरे कान से विद्या

पाठान्तर— १. सहजब्रह्म, २. हारमुरसासमु । ३. पाटलेनेव च । ४. साममधुर; समम; प्रतिबिम्बां मधुर । ५. सावर्णमु । ६. तीवाङ्गविनि । ७. सिन्दु ।

श्रुतिप्रणयिभिः प्रणवैरिव कर्णावतंस[1]कुसुममधुकरकुलैरपास्यमाना सूक्ष्मविमलेन प्रज्ञाप्रतानेनेवांशुकेनाच्छादितशरीरा[2], वाङ्मयमिव निर्मलं दिक्षु दशनज्योत्स्नालोकं विकिरन्ती[3] देवी सरस्वती श्रुत्वा जहास।

दृष्ट्वा च तां तथा हसन्तीं स मुनिः 'आः पापकारिणि, दुर्गृहीतविद्यालवावलेपदुर्विदग्धे, मामुपहससि' इत्युक्त्वा शिरःकम्पशीर्यमाणबन्धविशरारोरुन्मिषत्पिङ्गलिम्नो जटाकलापस्य[4] रोचिषा[5] सिञ्चन्निव रोषदहनद्रवेण दश दिशः, कृतकालसान्निधानामिवान्धकारित-

---

मेव युक्तमिति समुचितेयमुक्तिः । श्रुतिप्रणयिभिरिति । श्रूयते इति श्रुतिर्ध्वनिस्तया प्रणवः प्रशंसातिशयो येषां तैः यद्वा—श्रुतौ श्रोत्रे तत्कर्तृकः प्रणवः प्रार्थना मधुरध्वनित्वाद्येषां तैः । कर्णसम्बन्धैरिति व्याख्याने तु कर्णावतंसेत्यादिना पौनरुक्त्यमपरिहार्यम् । श्रुतिर्वेदोऽपि । सूक्ष्मार्थदर्शित्वात्सूक्ष्मस्तीक्ष्णः विमलस्तत्त्वग्राही । अन्यत्र—सूक्ष्मं तनु, विमलं शुक्लम् । प्रतानः प्रसारः ।

दृष्ट्वेत्यादौ । स मुनिस्तां तथा हसन्तीं दृष्ट्वा शापजलं जग्राहेति सम्बन्धः । तथेति पादताडनभ्रूक्षेपादिपूर्वम् । स मुनिरिति प्राग्वर्णितस्वरूपः । आ इत्यक्षमायाम् । मामिति योऽहं त्रैलोक्यप्रख्यातरोषणस्तमेवेति । समीप एव विशीर्यते तच्छीलो विशरारुरितश्चामुतश्च । अत एवोन्मिषत्पिङ्गलिमा । रोचिषा दीप्त्या । रोषदहनो द्रवो

के गर्व को प्रकट करने वाली, श्रुति (वेद) के प्रेमी प्रणवों (ओङ्कारों) की भाँति कर्णफूलों पर छाये हुए भ्रमरों से सेवित, बुद्धि-विस्तार-सदृश अंशुक से ढँके हुए शरीर वाली, वाङ्मय के समान स्वच्छ, दन्तकिरणों के प्रकाश को दिशाओं में बिखेरती हुई भगवती कुमारी सरस्वती देवी (दुर्वासा के विस्वर पाठ को) सुनकर हँस पड़ी ।

उसे अर्थात् सरस्वती को उस प्रकार हँसते देख कर (दुर्वासा) मुनि ने—"अरी पाप करने वाली ! निम्न रूप से प्राप्त की गई विद्या के लेश पर गर्व से भरी हुई दुर्दिग्धे ! तू मेरा उपहास कर रही है ?" यह कह कर शिरःकम्पन के कारण बन्धन के ढीले पड़ जाने पर पीली कान्ति से युक्त जटा-जूट की कान्ति से एवं मानों क्रोधाग्नि के द्रव से दसों दिशाओं को सींचते हुए यमराज का सामीप्य

पाठान्तर—१. संसक्तमधु, वतंसमधु । २. तनुलता । ३. किरन्ती । ४. जटासञ्चयस्य । ५. शोचिषा ।

[1]ललाटपट्टाष्टापदाम[2]न्तकान्तःपुरमण्डनपत्रभङ्गमकरिकां भ्रुकुटिमाबध्नन्, अतिलोहितेन चक्षुषाऽमर्षदेवतायै स्वरुधिरोपहारमिव प्रयच्छन्, निर्दयदष्टदशनच्छदभयपलायमानामिव वाचं रुन्धन्दन्तांशुच्छलेन, [3]असावस्रंसिनः शापशासनपट्टस्येव ग्रथ्नन्ग्रन्थिमन्यथा कृष्णाजिनस्य, [4]स्वेदकणप्रतिबिम्बितैः [5]शापशङ्काशरणागतैरिव सुरासुरमुनिभिः प्रतिपन्नसर्वावयवः, कोपकम्पतरलिताङ्गुलिना करेण [6]प्रसादलग्नामक्षरमा-

रस इव, द्रवत्वं च यद्यपि विशिष्टस्यैव तेजसः सुवर्णादि सम्भवति, तथाप्यत्रोपचारात्सादृश्यम्। कालः कृष्णो गुणो यमश्च। अन्धकारितं संकुचितत्वाददर्शनीयमेव चकितं ललाटपट्टमेवाष्टापदम्। यथा प्रतिपङ्क्ति अष्टौ पदान्यस्येत्यष्टापदं चतुरङ्गफलकम्। अत एवानेन भ्रूसमुन्नमनमव्यक्तीकृतरेखवत्तया विस्पष्टव्यलीकमेतत्। 'ललाटमुपगीयते। भ्रुवोर्मूलसमुत्क्षेपाद्भ्रुकुटिः परिचक्षते'। सुशब्दः सुतरां नैरपेक्ष्यसूचनाय वा चोभयसम्बन्धः। अंसावस्रंसिन इति। संरम्भाच्छासनपट्टः शुक्लत्वाल्लिपिकाष्ण्याच्च सितासितवर्णसंवलितमध्यः पर्यन्तशुक्लश्च भवति। अत एव ते बिन्दुचित्रत्वादुपान्तशुक्लत्वाच्च कृष्णाजिनमुत्प्रेक्षते। यथा शासनपट्टे सति क्वचित्प्रामादावधिकारो भवति, तद्वच्च जनसमूहः प्रार्थनां करोति। स हस्तपादा-

प्राप्त की हुई, ललाटपट्टरूपी सुवर्ण को कलुषित करने वाली एवं यमराज के अन्तःपुर की पत्रभङ्गमकरिकाओं (पत्ररचना के लिए मत्स्यस्त्रियों) के समान भौंह को चढ़ाते हुए, अत्यन्त लाल आँखों द्वारा क्रोधरूपी देवता को अपने रक्त की भेंट प्रदान करते हुए-से, करुणाहीनता के साथ होंठ कट जाने से मानों भागती हुई वाणी को अपने दाँतों की चमक से रोकते हुए, कन्धे से गिरते हुए काले मृगचर्म को शाप देने के शासनपत्र के समान अन्य प्रकार से अर्थात् अस्वाभाविक रूप से बाँधते हुए, शापभय के कारण मानों शरण में आये हों ऐसे देव, दानव एवं मुनि लोग जिनके पसीने की बूंदों में प्रतिबिम्बित होते हुए समस्त अङ्गों में व्याप्त थे वैसे, क्रोधजन्य कम्पन के कारण चञ्चल अंगुलियों वाले हाथ से प्रसन्न करने में लगी हुई अक्षरमाला के समान (अपनी) अक्षमाला

पाठान्तर—१. ललाटाष्टापदां। २. अन्तकमण्डन। ३. अंसस्रंसिनः। ४. स्वेदं प्रति। ५. शापभयाच्छरण। ६. प्रसादलग्नामक्षमालां विक्षिप्य अक्षराबलिकामिवाक्षरमाला।

लामिवाक्षमालामाक्षिप्य कामण्डलवेन वारिणा [1]समुपस्पृश्य शापजलं जग्राह।

अत्रान्तरे स्वयम्भुवोऽभ्याशे [2]समुपविष्टा देवी मूर्तिमती पीयूषफेनपटलपाण्डुरं कल्पद्रुमदुकूलवल्कलं[3] वसाना, [4]बिसतन्तुमयेनांशुकेनोन्नतस्तनमध्यबद्धगात्रिकाग्रन्थिः, [5]तपोबलनिर्जितत्रिभुवनजयपताकाभिरिव तिसृभिर्भस्मपुण्ड्रकराजिभिर्विराजितललाटाजिरा, स्कन्धावलम्बिना [6]सुधाफेनधवलेन तपःप्रभावकुण्डलीकृतेन गङ्गास्रोतसेव[7] योगपट्टकेन विरचितवैकक्ष्यका,[8] सव्येन ब्रह्मोत्पत्तिपुण्डरीकमुकुलमिव

दिके सर्वस्मिन्नङ्गे गलति। कोपेन्यादौ कम्पग्रहणम्। रोषः शरीरं बाधत इति यावत्। सन्निवेशसाधर्म्यादुक्तम्—अक्षरमालामिवेति। सरस्वतीसम्बन्धितया चोक्तम्—प्रसादलग्नामिति। विक्षिप्यन्ते। यश्च विरुद्धपक्षः प्रसादयति स विक्षिप्यते निरस्क्रियते। कामण्डलवेन मुनिकरकभवेन। समुपस्पृश्याचम्य।

अत्रान्तर इत्यादौ मूर्तैश्चतुर्भिर्वेदैः सह सावित्री समुत्तस्थाविति सम्बन्धः। अभ्याशे समीपे। गात्रिकाग्रन्थिर्ग्रन्थिविशेषः स्वस्तिकाकारः स्त्रीणामुत्तरीयस्य स्तनोद्देशे भवति। तिलकं पुण्ड्रकं स्कन्धावंसौ वायुस्थानानि च स्कन्धाः। फेनैस्तद्धवलेन। 'तिर्यग्वक्षसि विक्षिप्तं वैकक्ष्यकमुदाहृतम्' सव्येन वामेन। पुंडरीकमुकुलं

को फेंक कर कमण्डलु के जल से आचमन करके शाप देने के लिए जल ग्रहण किया।

उस समय ब्रह्मा जी के समीप सदेह बैठी हुई देवी सावित्री, अमृत के फेनपटल के समान श्वेत, कल्पवृक्ष से प्राप्त दुपट्टे के आकार के वल्कल को पहनी हुई, कमलतन्तुओं से विनिर्मित अंशुक से ऊँचे स्तनों के बीच स्वस्तिकाकार में गाँठ बाँधी हुई, तपोबल से जीते गये तीनों लोकों की विजय-पताकाओं के समान भस्म की तीन रेखाओं से सुशोभित ललाट-प्राङ्गणवाली, कन्धे से लटकते हुए, अमृत के फेन के सदृश उजले तथा तपस्या के प्रभाव से कुण्डलाकार किये गये गङ्गाप्रवाह के समान योगपट्ट (वस्त्रविशेष) से वैकक्ष्यक बनाई हुई अर्थात् वक्र रूप से स्थापित की हुई, ब्रह्मा जी के उत्पादक कमल के मुकुल सदृश

पाठान्तर—१. स समुप। २. अभ्यासे। ३. दुकूल। ४. विश। ५. तपोनिर्जित। ६. फेनध। ७. शगाप। ८. वैकक्षा।

[1]स्फटिककमण्डलुं करेण कलयन्ती, दक्षिणमक्षमालाकृतपरिक्षेपं कम्बुनिर्मितोर्मिकादन्तुरितं[2] तर्जनतरङ्गिततर्जनीकमुत्क्षिपन्ती करम्, 'आः पाप, क्रोधोपहत, दुरात्मन्, अज्ञ, अनात्मज्ञ, ब्रह्मबन्धो, मुनिखेट[3], अपसद, [4]निराकृत, कथमात्मस्खलितविलक्षः सुरासुरमुनि-[5]मनुजवृन्दवन्दनीयां त्रिभुवनमातरं भगवतीं सरस्वतीं शप्तुमभिलषसि' इत्यभिदधाना, रोषविमुक्तवेत्रासनैरोङ्कारमुखरित[6]मुखैरुत्क्षेप[7]दोलायमान-जटाभारभरितदिग्भिः[8] परिकरबन्धभ्रमित[9]कृष्णाजिनाटोपच्छायाश्यामा-

---

मुकुलितं पद्मम् । कलयन्ती क्षिपन्ती, धारयन्ती वा । परिक्षेपः परिवलनम् । कम्बुः शङ्खः । ऊर्मिका बालिका । दन्तुर इव दन्तुरो व्याप्तस्तम् । तर्जनं निभर्त्सनम् । तरङ्गिता तर्जिता चलिता । तर्जनी प्रदेशिन्यङ्गुष्ठनिकटाङ्गुलिः क्रोधोपहतेत्यात्मविनाशायैव ते क्रोध इत्युक्तं, भवति । ब्रह्मबन्धो निकृष्टब्राह्मण । अपसदो नीचः । निराकृतोऽस्वाध्यायः विलक्षो लज्जितः । सुरासुरमनुजाश्च परस्परविरुद्धानुष्ठानाः । अत्र पुनरीदृशामपि न विप्रतिपत्तिरिति भावः अभिलषसीति । इच्छामात्रकमपीदं महत्साहसमित्यर्थः । ओंकार एव मुखरितं मुखं येषां तैः । परिकरबन्धः पर्यङ्क-

---

स्फटिकमणि के कमण्डलु को बाँये हाथ में धारण करती हुई अक्षमाला से परिवेष्टित, शङ्खनिर्मित अँगूठी से व्याप्त तथा (दुर्वासा को) डाँटने के लिए चञ्चल तर्जनी वाले दाँये हाथ को ऊपर उठाती हुई, "अरे पापी क्रोध का मारा, दुष्ट मूर्ख, अपने आपको न जानने वाला ब्राह्मणाधम, मुनियों में नीच से भी नीच, स्वाध्याय-विहीन ! अपनी भूल से लज्जित हुआ तू देवताओं, दानवों, मुनियों एवं मनुष्यों के समूहों द्वारा वन्दनीय, तीनों लोकों की माता, भगवती सरस्वती को शाप देना चाहता है ?" ऐसा कहती हुई क्रोध के कारण बेंत के आसन को छोड़ने वाले, ओङ्कार का उच्चारण करते हुए मुखों वाले, वेग से ऊपर की ओर फेंकने के कारण चञ्चल जटाओं के भार से दिशाओं को व्याप्त करने वाले, कमर कसने के कारण हिलते हुए कृष्ण-मृगचर्म की छाया से दिन में ही अन्धकार

पाठान्तर—१. स्फुरि । २. दन्तुरं । ३. खेटापसदनिराकृत । ४. निराकृते । ५. मनुजमाननीयां । ६. मुखर । ७. आक्षेप । ८. भरितशिरोभिः । ९. कृष्णाजिनपटच्छटा,

यमानदिवसैरमर्षनिःश्वासदोलाप्रेङ्खोलितब्रह्मलोकैः सोमरसमिव स्वेदविसरव्याजेन स्रवद्भिरग्निहोत्रपवित्रभस्मस्मेरललाटैः [1]कुशतन्तुचामरचीरचीवरिभिराषाढिभिः प्रहरणीकृतकमण्डलुमण्डलैर्मूर्तैश्चतुर्भिर्वेदैः सह बृसीमपहाय सावित्री समुत्तस्थौ।

ततो 'मर्षय भगवन्, अभूमिरेषा शापस्य' इत्यनुनाथ्यमानोऽपि विबुधैः, 'उपाध्याय! स्खलितमेकं क्षमस्व' इति बद्धाञ्जलिपुटैः प्रसाद्यमानोऽपि स्वशिष्यैः, 'पुत्र, मा कृथास्तपसः प्रत्यूहम्' इति निवार्यमाणोऽप्यत्रिणा, रोषावेशविवशो दुर्वासाः 'दुर्विनीते! व्यपनयामि ते विद्याजनितामुन्नतिमिमाम्, अधस्ताद्गच्छ मर्त्यलोकम्' इत्युक्त्वा तच्छा-

बन्धः। स चोत्थितस्यापि संरम्भभाजो भवति। आटोपो वक्षःप्रदेशे श्यामायमानो रात्रिरिवाचरद्दिवसा यैर्हेतुभिरित्यर्थः। अमर्षनिःश्वासैर्दोलावत्प्रेङ्खोलितश्चलितो ब्रह्मलोको यः। कुशतन्तूनां चामरमिव चामरं गुच्छः। कुशतन्तुचामरं दर्भपिञ्जूलम्, चीरचीवरं वृक्षत्वग्वस्त्रं ते विद्येते येषां तैः। 'आषाढस्तु दण्डस्तु पालाशो व्रतचारिणाम्'।

तत इत्यादौ शापोदकं जग्राहेति विससर्जेति सम्बन्धः। मर्षय क्षमस्व। अनुनाथ्यमानः प्राथ्यमानः। प्रत्यूहं विघ्नम्। उन्नतिमिति। उच्चदेशस्थश्चाधस्तान्नीयत

फैलाने वाले, क्रोधजन्य निःश्वास से ब्रह्मलोक को हिलाने वाले, पसीने के बहाने सोमरस को चुआने वाले, अग्निहोत्र के पवित्र भस्म से भूषित ललाट वाले, कुश के तन्तुओं से बने सुन्दर चामर, वस्त्रखण्ड तथा पलाशदण्ड को धारण करने वाले, कमण्डल को ही आयुध बनाने वाले मूर्त्तिमान् चारों वेदों के साथ आसन को छोड़ कर उठ खड़ी हुई।

इसके बाद "क्षमा करें भगवन्! यह शाप देने योग्य नहीं है।" इस प्रकार देवताओं द्वारा प्रार्थ्यमान होने पर भी "उपाध्याय! इसकी एक भूल को क्षमा करें', इस प्रकार अपने शिष्यों द्वारा प्रसन्न किये जाने पर भी "पुत्र! तपस्या में विघ्न मत करो।" इस प्रकार अत्रिमुनि द्वारा रोके जाने पर भी क्रोधावेग के कारण विवश दुर्वासा ने "दुर्विनीते! तेरे इस विद्याजन्य उत्कर्ष को (अभी)

पाठान्तर—१. कुशतन्तुचारुचामर।

पोदकं विससर्ज । [1]प्रतिशापदानोद्यतां सावित्रीम् 'सखि, संहर रोषम्,[2] असंस्कृतमतयोऽपि जात्यैव द्विजन्मानो माननीयाः' इत्यभिदधाना[3] सरस्वत्येव न्यवारयत् ।

अथ तां तथा शप्तां सरस्वतीं दृष्ट्वा पितामहो भगवान्कमलोत्पत्तिलग्नमृणालसूत्रमिव धवलयज्ञोपवीतिनीं तनुमुद्वहन्, उद्गच्छदच्छाङ्गुलीयमरकतमयूखलताकलापेन त्रिभुवनोपप्लवप्रशमकुशापीडधारिणेव दक्षिणेन करेण निवार्य शापकलकलम्, अतिविमलदीर्घैर्भाविकृतयुगारम्भसूत्रपातमिव दिक्षु पातयन् दशनकिरणैः सरस्वतीप्रस्थानमङ्गलपटहेनेव पूरयन्नाशाः, स्वरेण सुधीरमुवाच—'ब्रह्मन्, न खलु साधु-

---

इति समुचितेयमुक्तिः । असंस्कृतमतयः संस्काररहिताः ।

अथेत्यादौ भगवान्पितामहः सुधीरमुवाचेति सम्बन्धः । तथेति । तेन प्रकारेण। निरपराधां सरस्वतीमित्यर्थः । धवलयज्ञोपवीतिनीमिति । प्रशंसायां नित्ययोगे वा मत्वर्थीयः । 'बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः' इतिवत् । अन्यथा कर्मधारये कृते मत्वर्थीय एकबुद्ध्यनुमितौ बहुव्रीहौ प्रतिपत्तिर्भवतीति । इतरत्र तु बुद्धिद्वयमिति लघुत्वात्प्रक्रमस्तेत्युक्तम् । उद्गच्छन्नच्छाङ्गुलीयमरकतस्य मयूखलताकलापो यस्य तेन करेण आपीडः समूहः । पातं विन्यासम् । पातयन्कुर्वन् । अत्र हि धात्वर्थमनानुष्ठानमात्र-

---

दूर करता हूँ, नीचे मर्त्यलोक में जा'' यह कर उस शापजल को छोड़ दिया । शाप के बदले शाप देने के लिए तत्पर सावित्री को सरस्वती ने ही "हे सखि ! क्रोध को समेट ले । संस्कारहीन बुद्धि वाले ब्राह्मण भी जातिमात्र से सम्मानभाजन हुआ करते हैं ।'' ऐसा कहती हुई रोक दिया ।

इसके बाद उस प्रकार शाप को प्राप्त हुई सरस्वती को देख कर, कमलोत्पत्ति से लगे हुए मृणालसूत्र के सदृश उज्ज्वल यज्ञोपवीत को शरीर पर धारण करने वाले, उज्ज्वल नीलमणि की अँगूठी को तीनों लोकों के उपद्रव की शान्ति के लिए कुशासमूह को ही मानों धारण करने वाले, दाँये हाथ से शाप के कोलाहल को शान्त करके अत्यन्त निर्मल एवं दीर्घ दन्तकिरणों से भविष्य में होने वाले सत्ययुग का सूत्रपात करते हुए-से, सरस्वती के प्रस्थान के समय मङ्गलपटह की तरह अपनी आवाज से दिशाओं को भरते हुए ब्रह्मा जी ने गम्भीरता के साथ कहा—"हे

पाठान्तर—१. प्रतिशापोद्यतां सावित्री, २. रुषाम्, ३. इत्यभिदधती ।

सेवितोऽयं पन्थाः येनासि प्रवृत्तः। निहन्त्येष परस्तात्। उद्दाम-प्रसृतेन्द्रियाश्वसमुत्थापितं हि रजः कलुषयति दृष्टिमनक्षजिताम्। कियद्दूरं वा चक्षुरीक्षते। विशुद्धया हि धिया पश्यन्ति कृतबुद्धयः सर्वानर्थानसतः सतो वा। निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः। आलोकमपहाय कथं तमसि निमज्जसि! क्षमा हि मूलं सर्वतपसाम्। परदोषदर्शनदक्षा दृष्टिरिव कुपिता बुद्धिर्न ते आत्मरागदोषं पश्यति। क्व महातपोभारवैवधिकता, क्व पुरो-भागित्वम्? अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः। न हि कोपकलुषिता

वृत्तिः क्रिया। यथा—'संवस्ते क्षालिनि वस्त्रे' इति। पन्था व्यवहारः, मार्गश्च। निहन्ति पातयति। प्रसृतानि गन्तुं प्रवृत्तानि, प्रसृता च जड़ता। रजो रागः, धूलिश्च। कलुषयति कार्याकार्यदर्शनासमर्थां करोति। दृष्टिं बुद्धिम्, नेत्रं च। अक्षाणी-न्द्रियाणि, रथाङ्गं चाक्षः। तेन च रथो लक्ष्यते। कृतबुद्धयः संस्कृतमतयः। असदविद्यमानम्। निसर्गः स्वभावः। आलोको विवेकः, प्रकाशश्च। तमः अन्धकारम्, अज्ञानमपि। दोषाः, सव्यमण्डलत्वादीनि च। कुपिता क्रुद्धा, धातुवैषम्यदूषिता च। आत्मरागदोषमिति। आत्मभूतगुणदर्शनम्, लौहित्यलक्षणं च विकारम्, वीवा

भगवन्! जिस मार्ग को आपने अपनाया है वह सज्जनों द्वारा सेवित नहीं है। आगे चल कर यह (मार्ग से) गिरा देता है। अजितेन्द्रिय लोगों की दृष्टि को उत्कट रूप से विषयलिप्त इन्द्रियरूपी घोड़ों द्वारा ऊपर उड़ाई गई धूल (रजोगुण) मलिन कर देती है। (इस धूल से व्याप्त) चक्षु कितनी दूर तक देख सकता है? बुद्धिमान् लोग सभी अच्छे-बुरे कार्यों को (अपनी) विशुद्ध बुद्धि से देखते हैं।

पानी एवं आग की तरह धर्म एवं क्रोध का एकत्र रहना स्वभाव-विरुद्ध है। प्रकाश को छोड़कर क्यों अन्धकार में डूब रहे हो? क्षमा ही तपस्याओं का मूल है। दूसरों की बुराइयों को देखने में निपुण दृष्टि के समान क्रुद्ध बुद्धि अपने अन्दर उत्पन्न हुए रागजन्य दोष को नहीं देख पाती। कहाँ तो महान् तपस्या-भार को वहन करने की क्षमता और कहाँ (यह) परदोष-दर्शन! अत्यन्त क्रोधी व्यक्ति आँखों वाला होते हुए भी अन्धा ही होता है। क्रोध से

विमृशति मतिः कर्तव्यमकर्तव्यं वा । कुपितस्य प्रथममन्धकारीभवति विद्या, ततो भ्रुकुटिः । आदाविन्द्रियाणि रागः समास्कन्दति, चरमं चक्षुः । आरम्भे तपो गलति, पश्चात्स्वेदसलिलम् । पूर्वमयशः स्फुरति, अनन्तरमधरः । कथं लोकविनाशाय ते विषपादपस्येव जटावल्कलानि जातानि । अनुचिता खल्वस्य मुनिवेषस्य हारयष्टिरिव वृत्तमुक्ता चित्तवृत्तिः । शैलूष इव वृथा वहसि कृत्रिममुपशमशून्येन चेतसा तापसाकल्पम् । अल्पमपि न ते पश्यामि कुशलजातम् । अनेनातिलघिम्नाऽद्याप्युपर्येव प्लवसे ज्ञानोदन्वतः । न खल्वेनडमूका एडा जडा वा सर्वं एते महर्षयः । रोषदोषनिषद्ये स्वहृदये निग्राह्ये किमर्थं-

भारस्य धीमद्भिर्जनैर्वैवधिकः स्मृतः । दोषैकग्राहिहृदयः पुरोभागी निगद्यते ॥' रागोऽभूतगुणाभिनन्दनम्, रक्तता च । जटाः शिखाः, मूलानि वल्कलानि मुनिवस्त्राणि, त्वचश्च । वृत्तमुक्ता शीलेन त्यक्ता, परिवर्तुलमौक्तिका च । 'जायोपजीवो हि जनः शैलूषः कथितो बुधैः' । आकल्पो वेषः । जातं प्रकारः । अतिलघिमानुपादेयता तुच्छत्वात् । उपर्येवेत्यन्तःप्रवेशाभावाद् । लघुश्च जलोपरि प्लवते । 'कथिता अनेडमूकाः श्रोतुं वक्तुं च खलु न ये शक्ताः । एडास्तु श्रुतिहीना जडास्तु मूर्खा बुधैः प्रोक्ताः'॥ रोष एव दोषस्तस्य निषद्या नियमेनावस्थितिर्यत्र तस्मिन्स्व-

मलिन बुद्धि कार्याकार्य का विचार नहीं करती । क्रुद्ध व्यक्ति की विद्या ही सर्वप्रथम अन्धकार में पड़ती है, उसके बाद उसकी भ्रुकुटि । प्रारम्भ में राग ही इन्द्रियों को दबाता है बाद में नेत्र को (अर्थात् नेत्र में बाद में लाली उत्पन्न होती है) । शुरु में तपस्या ही क्षीण होती है बाद में पसीना गिरता है । पहले अकीर्त्ति ही फैलती है बाद में अधरोष्ठ काँपता है । तुम्हारे ये जटा-वल्कल लोक-संहार के लिए विषवृक्ष कैसे हो गये ? तुम्हारी शीलरहित चित्तवृत्ति वर्तुल मोतियों की हारयष्टि के समान इस मुनिवेष के लिए उचित नहीं है । शान्ति-रहित चित्त वाला तू नट के समान तपस्वी के इस बनावटी वेष को बेकार ही धारण करता है । (इसमें) तेरा थोड़ा भी मङ्गल मैं नहीं देखता हूँ । (तेरे) इस अत्यन्त नीच कार्य से ज्ञात होता है कि आज भी तू ज्ञान-सागर के ऊपर-ऊपर ही तैर रहा है । ये सब महर्षि लोग शाप देने या सुनने में असमर्थ

मसि निगृहीतवाननागसां सरस्वतीम्। एतानि तान्यात्मप्रमादस्खलितवैलक्ष्याणि, यैर्याप्यतां यात्यविदग्धो जनः' इत्युक्त्वा पुनराह—'वत्से सरस्वति, विषादं मा गाः। एषा त्वामनुयास्यति सावित्री। विनोदयिष्यति चास्मद्विरहदुःखिताम्। आत्मजमुखकमलावलोकनावधिश्च ते शापोऽयं भविष्यति' इति। एतावदभिधाय विसर्जितसुरासुरमुनिमनुजमण्डलः ससंभ्रमोपगतनारदस्कन्धविन्यस्तहस्तः समुचिताह्निककरणायोदतिष्ठत्। सरस्वत्यपि शप्ता किञ्चिदधोमुखी धवलकृष्णशारां कृष्णाजिनलेखामिव दृष्टिमुरसि पातयन्ती सुरभिनिः-

हृदये ते। यद्वा-रोषदोषस्य निषण्णा आपणत्वं तस्यामन्त्रणम् हे रोषदोषनिषण्ण इति व्याख्येयम्। निगृहीतवान्प्राप्तवान्। 'आगः पापापराधयोः'। वैलक्ष्यं लज्जितम्। याप्यो गर्ह्यः। पुनराहेति। अविश्रान्तेऽप्युक्तिक्रमे पुनरित्युपादानं वाच्यतापरिहाराय। वत्से इति प्रसादाविष्करणार्थम्। एषेति। या तवैव स्निग्धा। विनोदयिष्यति सुखयिष्यति। सरस्वतीति। सरस्वत्यपि शप्ता गृहमगादिति सम्बन्धः। शारां शबलाम् धवलकृष्णामित्येव वक्तव्ये शारग्रहणं संवलितवर्णद्वयप्रतीत्यर्थम्।

या बहरे या मूर्ख नहीं हैं। क्रोधरूपी दोष के वासस्थान रूप अपने हृदय को न नियन्त्रित कर निरपराध सरस्वती को तूने कैसे शाप दे डाला? ये सब अपनी असावधानी से की गई भूलों के कारण लज्जित कार्य हैं, जिनसे मूर्ख व्यक्ति निन्दा को प्राप्त होता है।" यह कहकर पुनः (सरस्वती से ब्रह्मा जी ने) कहा—"वत्से सरस्वति! दुःखी मत हो। यह सावित्री तुम्हारे साथ जायेगी। हम लोगों से बिछुड़ने के कारण दुःखित हुई तुम्हारा मनोरञ्जन करेगी। पुत्र के मुखारबिन्द को देखने तक (अर्थात् जब तेरे पुत्र उत्पन्न होगा तब तक) यह शाप समाप्त हो जायेगा।" इतना कहकर देवताओं, दानवों, मुनियों एवं मानवों की सभा को विसर्जित कर, शीघ्र आये हुए नारद के कन्धे पर हाथ रखकर, समुचित दैनिक (सन्ध्यावन्दनादि) कृत्य के सम्पादनार्थ पितामह भी उठ खड़े हुए।

सरस्वती भी शप्त होने के कारण कुछ सिर झुकाकर काले मृगचर्म की रेखा की भाँति उज्ज्वल एवं काले नेत्रों को अपने वक्ष पर डालती हुई, सुगन्धित

श्वासपरिमललग्नैर्मूर्तैः शापाक्षरैरिव षट्चरणचक्रैराकृष्यमाणा शापशोकशिथिलतहस्ताऽधोमुखीभूतेनोपदिश्यमानमर्त्यलोकावतरणमार्गेव-नखमयूखजालकेन नूपुरव्याहाराहूतैर्भवनकलहंसकुलैर्ब्रह्मलोकनिवासिहृद-यैरिवानुगम्यमाना समं सावित्र्या गृहमगात्।

अत्रान्तरे सरस्वत्यवतरणवार्तामिव कथयितुं मध्यमं लोकमवततारां-शुमाली। क्रमेण च मन्दायमाने मुकुलितबिसिनीविसरव्यसनविषण्ण-सरसि वासरे, मधुमदमुदितकामिनीकोपकुटिलकटाक्षक्षिप्यमाण इव क्षेपीयः क्षितिधरशिखरमवतरति तरुणतरकपिलपनलोहिते लोकैक-चक्षुषि भगवति प्रस्नुतमुखमाहेयीयूथक्षरत्क्षीरधाराधवलिते-

---

अधोमुखीभूतेनेति। योऽधिकरणवशादनिष्टमुपदिशति स लज्जादिनावश्यमधोमुखी-भवति। जालकं समूहः। व्याहार उक्तिः।

मध्यमं लोकं भूमिम्। अंशुमाली रविः। क्रमेणेत्यादावस्मिन्सति सावित्री सरस्वतीमवादीदिति सम्बन्धः। विसरशब्द औणादिकः षण्डपर्यायः। मुदिताः सञ्जातमन्मथाः। कामिन्यः शृङ्गारिण्यः। सम्भोगान्तरायकारी कथमयमद्यापि नास्तमेतीत्यतः कोपः क्षिप्यमाणश्चातित्वरितं पतति। क्षेपीयस्तूर्णतरम्। लपनं वदनम्। लोकेत्यादिना सम्भोगविघ्नकारित्वमेव प्रकाश्यते। माहेयी गौः।

निःश्वास की गन्ध से आगत मूर्तिमान् शापाक्षरों की तरह भ्रमर-समूहों से व्याप्त, शापजन्य शोक से शिथिल पड़ गये हाथों की नम्रीभूतनखकिरणों से मर्त्यलोक के मार्ग की सूचना को प्राप्त हुई, ब्रह्मलोक में निवास करने वाले लोगों के हृदय की भाँति भवन के कलहंस उसके नूपुरों की ध्वनि से बुलाये जाने पर मानों उसका पीछा कर रहे हों इस प्रकार लगती हुई, सावित्री के साथ घर चली।

इसी समय मानों सरस्वती के अवतरणवृत्तान्त को कहने के लिए भगवान् सूर्य भूलोक में उतरे। मुँदी हुई कमलिनियों के समूह के दुःख से दुःखित सरोवर वाले दिन के क्रमशः मन्द पड़ जाने पर, मदिरा के नशे से हर्षित कामिनियों के क्रोध के कारण वक्र कटाक्षों द्वारा मानों फेंके जाने पर बहुत शीघ्रता से युवा वानर के मुख की भाँति लाल रंग वाले संसार के एकमात्र नयन-

त्वासन्नचन्द्रोदयोद्दामक्षीरोदलहरीक्षालितेष्विव दिव्याश्रमोपशल्येषु अपराह्णप्रचारचलिते चामरिणि चामीकरतटताडनरणितरदने रदति सुरस्रवन्तीरोधांसि स्वैरमैरावते, प्रसृतानेकविद्याधराभिसारिकासहस्रचरणालक्तकरसानुलिप्त इव प्रकटयति च तारापथे पाटलताम्, तारापथप्रस्थितसिद्धदत्तदिनकरास्तमयार्घ्यावर्जिते रक्षित ककुभि, कुसुम्भभासि स्रवति पिनाकिप्रणतिमुदितसंध्यास्वेदसलिल इव रक्तचन्दनद्रवे वन्दारुमुनिवृन्दारकवृन्दबध्यमानसंध्याञ्जलिवने ब्रह्मोत्पत्तिकमलसेवागतसकलकमलाकर इव राजति ब्रह्मलोके; समुच्चा

उद्दामः प्रवृद्धिं गतः । उपशल्यं समीपम् । चामीकरं सुवर्णम् । रदना दन्ताः । रदति विलिखति । सुरस्रवन्ती गङ्गा । रोधस्तटम् । स्वैरं स्वेच्छम् । 'या दूतिका गमनकालमपाहरन्ती सोढुं स्मरज्वरभरार्तिपिपासितेव । निर्याति वल्लभजनाधरपानलोभात्सा कथ्यते कविवरैरभिसारिकेति ॥' तारापथो नभः । आवर्जिते प्रकीर्णे । ककुभो दिशः । कुसुम्भं पद्मकम् । रक्तचन्दनद्रवे स्रवति सतीति योजना । वन्दारु वन्दनशीलम् । वृन्दारकशब्दः प्रशंसायाम् । सवनं प्रातर्मध्याह्ने सायं च सोम-

---

भूत भगवान् सूर्य के अस्ताचल पर आरूढ़ हो जाने पर, निकटस्थ चन्द्रोदय के कारण वृद्धिङ्गत क्षीरसमुद्र की लहरों से धोये गये के सदृश दिव्य आश्रमों के निकटवर्ती प्रदेश आर्द्रस्तनों वाली गायों के झुण्ड से झरती हुई दुग्धधारा से जहाँ धवलित हो रहे थे, वहीं सायंकालीन भ्रमण के लिए निकल जाने पर, चँवर धारण किये हुए एवं सुवर्ण के तटों पर अपने दाँतों को पीट कर बजाते हुए (इन्द्र के हाथी) ऐरावत के द्वारा स्वच्छन्द रूप से देवनदी (गङ्गा) के तट-प्रदेशों को खोदने पर, इधर-उधर घूमती हुई हजारों विद्याधरी अभिसारिकाओं के पैरों में लगे हुए महावर से ही मानों आकाशमार्ग के लाल हो जाने पर, आकाशमार्ग में जाने वाले सिद्धों द्वारा समर्पित किये गये सूर्यास्त के अर्घ्यों से व्याप्त दिशाओं के लाल हो जाने पर, भगवान् शङ्कर को प्रणाम करने के कारण प्रसन्न हुई सन्ध्या के स्वेदजल (पसीना) के सदृश स्थित कुसुम्भ पुष्प के सदृश कान्ति से युक्त रक्तचन्दन को चुलाने वाले, वन्दनरत मुनियों एवं देवताओं द्वारा सन्ध्योपासना में अञ्जलि बाँधने पर, ब्रह्मा जी के उत्पादक कमल की सेवा के लिए ही मानों पधारे हुए अनेक कमलों से ब्रह्मलोक के सुशोभित होने पर,

रितत्ततीयसवनब्रह्मणि ब्रह्मणि, ज्वलितवैतानज्वलनज्वालाजटालाजिरेष्वारब्धधर्मसाधनशिबिरनीराजनेष्विव सप्तर्षिमन्दिरेषु, अघमर्षणमुषितकिल्बिषविषगदोल्लाघलघुषु यतिषु संध्योपासनासीनतपस्विपङ्क्तिपूतपुलिने प्लवमाननलिनयोनियानहंसहासदन्तुरितोर्मिणि मन्दाकिनीजले, जलदेवतातपत्रे पत्ररथकुलकलत्रान्तःपुरसौधे निजमधुमधुरामोदिनि कृतमधुपमुदि मुमुदिषमाणे कुमुदवने, दिवसावसानताम्यत्तामरसमधुरमधुसपीति-

---

यार्गैकदेशस्नानमित्यन्ये । ब्रह्म वेदः । वैतानो यज्ञभवः । जटालानि व्याप्तानि । अजिराण्यङ्गणानि । आरब्धे धर्मसाधने शिबिरे पुण्योपकरणस्कन्धावारे नीराजनाख्यं शान्तिकर्म येषु । धर्मोपकरणविषये मा दोषः प्रादुरभवन्निति । 'शमनं सर्वपापानां जप्यं त्रिष्वघमर्षणम्' । गदो रोगः । उल्लाघं स्वस्थताकरम् । यतयश्चतुर्थाश्रमिणः । सद्यो जलत्यक्तं तटं पुलिनम् । नलिनयोनिर्ब्रह्मा । हंसानां हासः शौक्ल्यं, हंसा एव वा शुक्लतया हासः । दन्तुरा एव दन्तुरिताः । ये च सहासास्ते लक्ष्यमाणदन्ततया दन्तुरा इव दृश्यन्ते । आतपत्रं छत्रम् । पत्ररथाः पक्षिणः । कलत्रं दाराः । मधु मकरन्दः, मद्यं च । मधुपा भ्रमराः, मद्यपाश्च । मुमुदिषमाणे विचिकित्सिषति । अन्यत्र—मोदितुमिच्छति । प्रारिप्स्यमानगीतादिगोष्ठीबन्ध इति यावत् । 'मञ्चाः क्रोशन्ति' इति सत् । ताम्यदिति । ताम्यन्ति, न तु तान्तानि, प्रदोषस्य न तावत्प्रवृत्तत्वात् । मधु, मद्यमपि । सपीतिस्तु सहपानम् । अनेन तु प्रेमातिशय

ब्रह्मा जी द्वारा सन्ध्याकालीन हवन-मन्त्रों को पढ़ लेने पर, धर्म के साधनभूत शिविरों में नीराजन के समान प्रदीप्त यज्ञाग्नि की ज्वाला से जटायुक्त सप्तर्षियों के मन्दिरों में अघमर्षण मन्त्र के उच्चारण से पापरूपी वृक्ष से उत्पन्न हुए रोगों के दूर हो जाने से यति के स्वस्थ हो जाने पर, सन्ध्योपासना के लिए बैठे हुए तपस्वियों के समूह द्वारा पवित्रीकृत तट वाले तथा ब्रह्मा जी के वाहनभूत एवं तैरते हुए हंस की हँसी से निम्नोन्नत बनाई गई तरङ्गों से युक्त गङ्गाजल के होने पर, जलदेवता का छत्रभूत तथा पक्षी एवं पक्षिस्त्रियों के अन्तःपुर का प्रासाद (महल) अपने पुष्परस से सुगन्धित भ्रमरों को प्रसन्न करने वाले कुमुदवन (रात्रि में विकसित होने वाले कमलों के समूह) के विकसित होने पर, दिन की समाप्ति के कारण क्लिश्यमान अर्थात् संकुचित

प्रीते सुपुप्सति मृदुमृणालकाण्डकण्डूयनकुण्डलितकंधरे धुतपत्रराजिवीजितराजीवसरसि राजहंसयूथे, तटलताकुसुमधूलिधूसरितसरिति सिद्धपुरपुरंध्रिधम्मिल्लमल्लिकागन्धग्राहिणि सायंतने तनीयसि निशानिश्वासनिभे नभस्वति, संकोचोदञ्चदुच्चकेसरकोटिसंकटकुशेशयकोशकोटरकुटीशायिनि षट्चरणचक्रे, नृत्योद्धूतधूर्जटिजटाटवीकुटजकुड्मलनिकरनिभे नभस्तलं स्तबकयति तारागणे, संध्यानुबन्धताम्रे परिणमत्तालफलत्वक्त्विषि कालमेघमेदुरे, मेदिनीं मीलयति नववयसि तमसि तरुणतरतिमिरपटलपाटनपटीयसि समुन्मिषति यामिनीकामिनीकर्णपूरचम्पककलिकाकद-

---

आवेद्यते । सुषुप्सति निद्रासति । मृद्विति । कण्डूयनं त्विक्रियाविशेषम् । कुण्डलिता चक्रीकृता । राजीवं पद्मम् । राजहंसा इत्यत्रैकशेषः । तटशब्दः प्रत्यासत्त्युपलक्षणार्थः । पुरंध्रिरुत्तममहिला । धम्मिल्लाः संयताः कचाः । मल्लिका भूपदी । एषा च सायमेवोन्मिषति । सायंतने दिनान्तभवे । कोषः कुड्मलम् । कोटरमभ्यन्तरम् । कुटी गेहम् । शयनमत्र विश्रमणम्, न तु स्वापः, पौनरुक्त्यापत्तेः । अटवीति । विवक्षितम् । तत्रैवाकृत्रिमकुसुमसंबन्धात् । कुटजं गिरिमल्लिका । कुड्मलं कलिका । निकरः समूहः । अनुबन्धः संस्कारः । परिणमज्जरठीभवत् । तालस्तृणराजः । मेदुरं घनम् । मीलयति स्थगयति । नववयसि प्रत्यग्रे । चम्पको हेमपुष्पकः ।

कमलों के मधुर पुष्परस के सहपान से हर्षित तथा कोमल मृणालनाल द्वारा शरीर खुजलाने के लिए टेढ़ी गर्दन वाले एवं काँपते हुए पंखों द्वारा सरोवर के कमलों को हिलाने वाले राजहंस-समूह के ऊँघने पर तट स्थित लताओं के फूलों के पराग से नदी को धूसरित करने वाले तथा सिद्धों के नगर की उत्तम स्त्रियों के बँधे हुए केशपाश की मल्लिका की गंध लेकर रात की साँस के सदृश प्रदोषकाल में हवा के मन्द-मन्द चलने पर, संकोच के कारण ऊपर की ओर एकत्रित केसरों के अग्रभाग से निरवकाश कमल के मध्यभाग रूपी कुटी में भ्रमरों के शयन करने पर, नृत्य के कारण भगवान् शङ्कर का बिखरी हुई जटाटवी में स्थित कुटज फूल जैसे ताराओं के आकाश में व्याप्त हो जाने पर, सन्ध्या के कारण रक्तिम होने से पकते हुए तालफल की त्वचा के सदृश कान्तिवाले प्रलयकालीन मेघों के समान घने अन्धकार के पृथ्वी पर व्याप्त हो जाने पर, नवीन अंधकार के भेदन में निपुण तथा रात्रिरूपी कामिनी के कानों में अवस्थित

म्बके प्रदीपप्रकरे, प्रतनुतुहिनकिरणकिरणलावण्यालोकपाण्डुन्याश्यान-नीलनीरमुक्तकालिन्दीकुलबालपुलिनायमाने शातक्रतवे क्रशयति तिमिरमाशामुखे, खमुचि मेचकितविकचितकुवलयसरसि शशधरकर-निकरकचग्रहाविले विलीयमाने मानिनीमनसीव शर्वरीशवरचिकुरचये चाषपक्षत्विषि तमसि, उदिते भगवत्युदयगिरिशिखरकटककुहरहरि-खरनखरनिवहहेतिनिहतनिजहरिणगलितरुधिरनिचयनिचितमिव लोहितं वपुरुदयरागधरमधरमिव विभावरीवध्वा धारयति श्वेतभानौ,

---

आश्यानमीषच्छुष्कम् । नीरं जलम् । कालिन्दी यमुना । नीलमाभिप्रायेणैतत्पदम् । यस्तटभागो वारिणा त्यक्तस्तत्पुलिनम् । कूलं ततोऽन्यत् । क्रशयति । तनूकुर्वति । खमुचि त्यक्ताकाशे । भूभागमवलम्बमान इत्यर्थः । मेचकितं निर्विभागतां नीतम् । शशधरकरैः स्वीकारेण करम्बितेऽत एव क्षयं गच्छन्ति । अन्यत्र चन्द्ररश्मीनां धारणेन सेवनेन किंकर्तव्यतामूढ एवमधिगलत्यार्द्रतां भज-माने केशपाशपक्षे तु विस्रंसमाने । चाषः किकीदिविः पक्षी । हरिः सिंहः । नखरा नखाः । हेतिरायुधम् । विभावरी रात्रिः श्वेतभानुश्चन्द्रः । अचलः, अर्था-

---

चम्पावती कलियों के सदृश दीपक-समूहों के प्रकाशित होने पर, चन्द्रमा की कुछ-कुछ किरणों के लावण्य-भरे प्रकाश से पीला होने के कारण कुछ-कुछ सूखे और नीलजल से शून्य यमुना के तट के समान शोभित इन्द्र की दिशा (पूर्वदिशा) में अन्धकार के क्षीण होने पर, आकाश को छोड़ कर भूमि में व्याप्त विकसित नीलकमलों के सरोवरों को अधिक नीले करने वाले, चन्द्रमा की किरणों द्वारा केशाकर्षण से मलिन तथा मानिनी स्त्रियों के हृदय में मानों रात्रि में भ्रमण करने वाली भीलनियों के केशपाश में विलीन होने वाले चाषपक्ष के समान कान्ति वाले अन्धकार के उदय होने पर, उदयाचल के शिखररूपी शिविरों की कन्दराओं में स्थित सिंहों के तीखे नखायुधों से निहत अपने हरिणों के गिरते हुए रक्त से ही मानों व्याप्त तथा रात्रि रूपी वधू के अधरोष्ठ के समान स्थित उदयकालिक रक्तिमा को धारण करने वाले भगवान् चन्द्रमा के उदित होने पर,

अचलच्च्युतचन्द्रकान्तजलधाराधौत इव ध्वस्ते ध्वान्ते, गोलोकगलितदुग्धविसरवाहिनि दन्तमयकरमुखमहाप्रणाल इवापूरयितुं प्रकृते पयोधिमिन्दुमण्डले, स्पष्टे प्रदोषसमये सावित्री शून्यहृदयामिव किमपि ध्यायन्तीं सास्रां सरस्वतीमवादीत्—'सखि, त्रिभुवनोपदेशदानदक्षायास्तव पुरो जिह्वा जिह्वेति मे जल्पन्ती। जानास्येव यादृश्यो विसंस्थुला गुणवत्यपि जने दुर्जनवन्निर्दाक्षिण्याः क्षणभङ्गिन्यो दुरतिक्रमणीया न रमणीया दैवस्य वामा वृत्तयः। निष्कारणा च निकारकणिकापि कलुषयति मनस्विनोऽपि मानसमसदृशजनादापतन्ती। अनवरतनयनजलसिच्यमानश्च तरुरिव विपल्लवोऽपि सहस्रधा प्ररोहति। अतिसुकु-

---

दुदयाचलः, गोलोको रश्मिसमूहो वा। मकरमुखमिव मुखमग्रमस्येति समासः। विसंस्थुला निर्मर्यादाः। दुर्जनवन्निर्दाक्षिण्याः क्रूराः। क्षणभङ्गिन्य इत्याश्वासनगर्भेयमुक्तिः। वामाश्च स्त्रिय ईदृश्य एव। निकारः परिभवः। कणिका लेशः, शर्करिका च। कलुषयति दूषयति, कालुष्यं नयति च। मानसं चेतः सरश्च। अनवरतमश्रुणा सिच्यमानः। अनवरतं घटसारणीप्रणालादिना नयनं प्रापणं यस्य तादृशो जलेनोक्ष्यमाणश्च। विपल्लव आपल्लेशः, विगतपल्लवश्च। प्ररोहति स्थिरीभवति।

उदयाचल से गिरती हुई चन्द्रकान्तमणि की जलधारा से धुले हुए के समान अन्धकार के नष्ट हो जाने पर, गोलोक (धेनु या किरण) से गिरे हुए दुग्धसमूह को धारण करने वाले तथा हाथी-दाँत के बने हुए मकरमुख के जलनिर्गम मार्ग के समान स्थित चन्द्रमण्डल द्वारा समुद्र के भरे जाने पर स्पष्ट प्रदोष काल में सावित्री ने मानों शून्यहृदय होकर कुछ सोचती हुई तथा अश्रुमुखी सरस्वती से कहा—"हे सखि ! तीनों लोकों को उपदेश देने में निपुण तेरे समक्ष बोलती हुई मेरी जीभ लजा रही है। तू जानती ही है कि गुणवान् व्यक्ति के विषय में भी जैसी दैवी प्रवृत्तियाँ, मर्यादारहित, दुष्टों के समान क्रूर, क्षणभङ्गुर, अमिट तथा अरमणीय हुआ करती हैं। बिना कारण के अयोग्य (नीच) व्यक्ति द्वारा की गई थोड़ी अवमानना भी मनस्वी व्यक्तियों के मन को उसी प्रकार मलिन कर देती है जिस प्रकार विषादि से व्याप्त जल की बूँद मानससरोवर को गन्दा कर देती है जिस प्रकार लगातार पानी के सिञ्चन से पत्रहीन वृक्ष भी हजारों

मारं च जनं संतापपरमाणवो मालतीकुसुममिव म्लानिमानयन्ति। महतां चोपरि निपतन्नणुरपि सृणिरिव करिणां क्लेशः कदर्थनायालम्। सहजस्नेहपाशग्रन्थिबन्धनाश्च बान्धवभूता दुस्त्यजा जन्मभूमयः। दारयति दारुणः क्रकचपात इव हृदयं संस्तुतजनविरहः, सा नार्हस्येवं भवितुम्। अभूमिः खल्वसि दुःखक्ष्वेडाङ्कुरप्रसवानाम्। अपि च पुराकृते कर्मणि बलवति शुभेऽशुभे वा फलकृति तिष्ठत्यधिष्ठातरि प्रष्ठे पृष्ठतश्च कोऽवसरो विदुषि शुचाम्। इदं च ते त्रिभुवनमङ्गलैककमलम-

---

तरुपक्षे प्ररोहा विद्यन्ते यस्य स प्ररोहः, स इवाचरति प्ररोहतीति व्याख्या। संतापः खेदः ऊष्मा च। मालतीकुसुमं सुमनःपुष्पमतिसुकुमारम्। महान्त उत्तमाः द्राघीयांसश्च। सृणिरङ्कुशः। मातरोऽपि जन्मभूमयः। दारुणो विषमः, काष्ठस्य च। क्रकचः करपत्रम्, हृदयं चित्तम्, मध्यं च। संस्तुतः परिचितः। सेति। सर्वनामपदं जानासीत्यादिपूर्वोक्तार्थगर्भीकारेण। अभूमिरस्थानम्, अक्षेत्रं च। क्ष्वेडो विषम्। शुभेऽशुभे वेत्यादि। सप्रतिपक्षा लोकोक्तिरियम्। 'अव्युत्पन्नमतिः कृतेन न सता नैवासता व्याकुलः' 'गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः' इत्यादिवत्। अधिष्ठातरि स्वामिनि। प्रष्ठेऽग्रगामिनि। अपवित्रतां नयन्ति, न तु शोभां त्याज-

---

शाखा-प्रशाखाओं में बढ़ता जाता है उसी प्रकार निरन्तर अश्रुप्रवाह से थोड़ी-सी विपत्ति भी बहुत बढ़ जाती है। अत्यन्त सुकुमार व्यक्ति को सन्ताप के परमाणु (अर्थात् थोड़ा-सा सन्ताप भी) मालती के फूल के समान मुरझा डालते हैं। महान् व्यक्तियों के ऊपर आया हुआ थोड़ा-सा क्लेश भी हाथी के ऊपर गिरे हुए अंकुश के समान कष्टकारक हो जाता है। बन्धु-बान्धव के समान अपनी जन्मभूमियाँ, जिनके साथ स्वाभाविक स्नेहपाश का गठबन्धन हो चुका है, कठिनाई से छोड़ने योग्य होती है। परिचित लोगों का विरह तीव्र आरे के समान हृदय को चीर डालता है। दुःखरूपी विष के पौधे की उत्पत्ति के लिए तू उचित स्थान नहीं है (अर्थात् तुझे दुःख नहीं करना चाहिए।) और भी, जब कि पूर्वजन्म के बलवान् शुभ या अशुभ कर्म आगे और पीछे फल देने वाले हैं ही तो विद्वान् व्यक्ति को शोक करने का क्या अवसर है? त्रिभुवन के मङ्गलकारक तेरे मुख

मङ्गलभूताः कथमिव मुखमपवित्रयन्त्यश्रुबिन्दवः। तदलम्। अधुना कथय कतमं भुवो भागमलङ्कर्तुमिच्छसि। कस्मिन्नवतितीर्षति ते पुण्यभाजि प्रदेशे हृदयम्। कानि वा तीर्थान्यनुग्रहीतुमभिलषसि। केषु वा धन्येषु तपोवनधामसु तपस्यन्ती स्थातुमिच्छसि। सज्जोऽयमुपचरणचतुरः सहपांशुक्रीडापरिचयपेशलः प्रयान्सखीजनः क्षितितलावतरणाय। अनन्यशरणा चाद्यैव प्रभृति प्रतिपद्यस्व मनसा वाचा क्रियया च सर्वविद्याविधातारं दातारं च श्वःश्रेयसस्य चरणरजःपवित्रितत्रिदशासुरं सुधासूतिकलिकाकल्पितकर्णावतंसं देवदेवं त्रिभुवनगुरुं त्र्यम्बकम्। अल्पीयसैव कालेन स ते शापशोकविरतिं वितरिष्यति' इति।

यन्ति। धामसु स्थानेषु। तपस्यन्ती तपश्चरन्ती। सज्जः प्रगुणः। आशाकार्यामति दृष्टस्वरूपः। निःसामान्यविस्रम्भभाजनतामभिव्यनक्ति सखीजनशब्दः। श्वःश्रेयसस्य कल्याणस्य दातारम्। सुधासूतिश्चन्द्रः। कलिका तारिका शापविरतिर्ब्रह्मणैवोक्ता। अतस्तत्र किमन्यापेक्षयेत्याशङ्क्याह—अल्पीयसैव कालेनेति।

को अमङ्गलसूचक अश्रुबिन्दु क्यों अपवित्र कर रहे हैं? बस रहने दे! अब बता कि पृथ्वी के किस भाग को (अपने अवतरण से) अलङ्कृत करना चाहती है? किस पवित्र प्रदेश में तेरा हृदय उतरना चाहता है? किन तीर्थों पर तू अनुग्रह करना चाहती है? तपोवन के किन धन्य स्थानों में तपस्या करती हुई रहना चाहती हैं? सेवा में निपुण तथा बाल्यकालीन क्रीडा की बन्धु तेरी यह प्रिय सहेली भूलोक पर (तेरे साथ) उतरने के लिए तैयार है। अनन्यशरण तू आज से ही मन, वचन एवं कर्म से सभी विद्याओं के विधाता, कल्याण के दाता, अपनी चरणधूलि से देवताओं और दानवों को पवित्र करने वाले तथा चन्द्रमा की कला को अपना कर्णभूषण बनाने वाले, देवाधिदेव, त्रिभुवनगुरु भगवान् शङ्कर की सेवा कर। थोड़े ही समय में वे (भगवान् शङ्कर) तेरे शापजन्य शोक को दूर कर देंगे।''

एवमुक्ता मुक्तमुक्ताफलधवललोचनजललवा सरस्वती प्रत्यवादीत्—'प्रियसखि, त्वया सह विचरन्त्या न मे कांचिदपि पीडामुत्पादयिष्यति ब्रह्मलोकविरहः शापशोको वा। केवलं कमलासनसेवासुखमार्द्रयति मे हृदयम्। अपि च त्वमेव वेत्सि मे भुवि धर्मधामानि समाधिसाधनानि योगयोग्यानि च स्थानानि स्थातुम्' इत्येवमभिधाय विरराम। रणरणकोपनीतप्रजागरा चानिमीलितलोचनैव तां निशामनयत्।

अन्येद्युरुदिते भगवति त्रिभुवनशेखरे खणखणायमानस्खलत्खलीनक्षतनिजतुरगमुखक्षिप्तेन क्षतजेनेव पाटलितवपुष्युदयाचलचूडामणौ जरत्कृकवाकुचूडारुणारुणपुरःसरे विरोचने नातिदूरवर्ती विविच्य पितामहविमान-

आर्द्रयति स्नेहयति। धर्मधामानि। मध्यदेशादीनि समाधिश्चित्तैकाग्रचम्। योगे हि तदुक्तम्—'आदौ समाधिमासीत पश्चाद्योगमुपाचरेत्' इति। रणरणको दुःखमरतिकृतम्।

अन्येद्युरन्यस्मिन्नहनि। एते च कालाः संध्यादयो व्यवहारा इहत्या ब्रह्मलोक उपचारिताः। शेखर इव। शेखरो मुण्डमालकः। खलीनं कविका। क्षतजं रक्तम्। कृकवाकुः। कुक्कुटः। चूडा मांसमयी शेखरिका। विविच्य

इस प्रकार सावित्री के कहने पर मोती-जैसे उजले अश्रुबिन्दुओं को नेत्रों से टपकाती हुई सरस्वती बोली—"हे प्रियसखि! तेरे साथ विचरण करती हुई मुझे ब्रह्मलोक का विरह या शापजन्य शोक कोई भी पीड़ा नहीं उत्पन्न करेंगे। केवल ब्रह्माजी की सेवा का सुख ही मुझे पिघला रहा है। और पृथ्वी पर मेरे लिए योग के योग्य एवं समाधि के योग्य जो धर्मस्थान है उन्हें तू ही जानती है।" इस प्रकार कहकर चुप हो गई। रणरणक (मानसिक उथल-पुथल) के कारण (सरस्वती की) नींद उचट गई तथा आँखें बिना बन्द किये ही उसने उस रात को बिताया।

दूसरे दिन त्रिभुवन के मस्तक स्वरूप, खन-खन की आवाज करने वाली लगाम की क्षति (घायल करने वाले प्रहार) से अपने घोड़ों के मुखरुधिर के फव्वारे से लाल हुए शरीर वाले, उदयाचल के चूड़ामणि, बूढ़े मुर्गे की चोटी के समान लाल वर्ण के अरुण नामक सारथि वाले भगवान् सूर्य के उदित होने पर,

हंसकुलपालः पर्यटन्नपरवक्त्रमुच्चैरगायत्—

'तरलयसि दृशं किमुत्सुकामकलुषमानसवासलालिते।
अवतर कलहंसि वापिकां पुनरपि यास्यसि पङ्कजालयम् ॥२२॥'

तच्छ्रुत्वा सरस्वती पुनरचिन्तयत्–'अहमिवानेन पर्यनुयुक्ता। भवतु। मानयामि मुनेर्वचनम्' इत्युक्त्वोत्थाय कृतमहीतलावतरणसंकल्पा परित्यज्य वियोगविक्लवं स्वपरिजनं ज्ञातिवर्गमविगणय्यावगणा त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य

विचार्य। विमानपालः स्वप्रस्तावे हंसी यदाह तेन सरस्वती पर्यनुयोजितेवाभूत्। अपरवक्त्राख्यं वृत्तमाख्यायिकासु प्रयोज्यम्। तथा चाह भामरः—'वक्त्रं चापर-वक्त्रं च काव्ये काव्यार्थशंसिनि' इति। तरलयसीत्यादि। अकलुषं मानसं यस्य स निर्मलचेता ब्रह्मा, मानसाख्यं सरः। लालिता शीलिता। वापिका पुष्करिणी, उप्यन्तेऽस्यां तानि कर्माणीति वापिका, मर्त्यभूमिरपि। पङ्कजमालयो यस्य स ब्रह्मा, सरश्च। पर्यनुयुक्ता उपपत्त्या बोधिता। अवगणा केवला

समीप में ही स्थित पितामह के विमानभूत हंस के पालक व्यक्ति ने घूमते हुए ऊँचे स्वर से अपरवक्त्र का गान किया—"स्वच्छ मानस-सरोवर में निवास करने वाली हे कलहंसी ! अपनी उत्कण्ठित दृष्टि को क्यों व्यर्थ ही (तू) चञ्चल बना रही है ? तू (अभी) बावली में उतर जा, फिर (बाद में) पङ्कजालय में चली जाना" ॥ २२ ॥

(सरस्वती के पक्ष में इस पद्य का अर्थ है—"अकलुषमानस ब्रह्माजी के सहवास से प्रसन्न हे सरस्वति ! तू व्यर्थ ही उत्कण्ठा से दृष्टि को चञ्चल बना रही है। तू सम्प्रति शुभाशुभ कर्म के उत्पादक (वापिका) भूलोक में चली जा। पुनः तू पङ्कजालय (ब्रह्माजी) को प्राप्त करेगी ॥ २२ ॥)

उसे सुनकर सरस्वती ने फिर विचार किया—"इसने मानों मुझसे ही कहा है। अच्छा ! मैं मुनि के वचन को मान लेती हूँ।" यह कहकर पृथ्वी पर उतरने के लिए सङ्कल्प करके उठी और विरह से व्याकुल अपने परिजनों को छोड़कर, अपने बन्धुवर्ग की उपेक्षा करके, ब्रह्माजी की तीन बार परिक्रमा

चतुर्मुखं कथमप्यनुनयनिवर्तितानुयायिव्रतिव्राता ब्रह्मलोकतः सावित्रीद्वितीया निर्जगाम ।

ततः क्रमेण ध्रुवप्रवृत्तां धर्मधेनुमिवाधोधावमानधवलपयोधराम्, उद्धुरध्वनिम् अन्धकमथनमौलिमालतीमालिकाम्, आलीयमानबालखिल्यरुद्धरोधसम्, अरुन्धतीधौततारवत्वचम् त्वङ्गत्तुङ्गतरङ्गतरस्तरलतरतारतारकाम्, तापसवितीर्णतरलतिलोदकपुलकितपुलिनाम् आप्लवनपूतपितामहपातितपितृपिण्डपाण्डुरितपाराम्, पर्यन्तसुप्तसप्तर्षि-

---

सावित्रीव्यतिरेकेण नान्यपरिवारा । कथमपीति । न भृत्यादिवत् । व्रतव्रातस्तपस्विसमूहः ।

तत इत्यादावीदृशं मन्दाकिनीमनुसरन्ती सरस्वती मर्त्यलोकमवतारेति संबंधः । ध्रुवं नित्यं वियत् । तस्मात्प्रवृत्ताम् । ध्रुवस्तारकाविशेषो ध्रुवान्नित्यस्थानाद्वा विष्णोर्वा,ध्रुवावूरू पश्चाद्भागौ सक्थिनी ध्रुवे वा,तयोः प्रकर्षेण वृत्तां परिवर्तुलां वा अध इति पदेन धावनक्रियासहत्वाज्जलस्य ग्रहणं सूच्यते । अत एव धवलाः शुक्लाः पयोधरा मेघा यस्यास्ताम् । इतरत्राधो धावमानाः पयःपूर्णत्वाल्लम्बमानाः क्षीरस्रुतेश्च धवलाः स्तना यस्याः । अधो धावमानं वेगेन प्रसरद्धवलं पयो धारयति या ताम्, अयो धावमानो धावलो यः पयोधो वत्सस्तं राति ददाति या ताम्, धवली वृषस्तस्मै पयो धारयति या तां वेत्यादिकाः कुव्याख्या एव । उद्धुर उद्भटः । अन्धकमथनः शिवः । आलीयमानाः श्लिष्यन्तः । बालखिल्या । मुनिभेदाः । रोधस्तटम् । त्वङ्गच्चरत् । आप्लवनं स्नानम् । पितरो देवविशेषाः, आज्यपाः,सोमपाः, बर्हिषा-

---

करके, पीछे-पीछे आते हुए तपस्वियों को किसी प्रकार अनुनय-विनय द्वारा लौटाकर अकेले सावित्री को साथ लेकर ब्रह्मलोक से निकल पड़ी ।

उसके बाद क्रम से आकाश से निकली हुई धर्मधेनु (कामधेनु) के समान नीचे वर्त्तमान उज्ज्वल मेघों (कामधेनु पक्ष में स्तनों) को धारण करती हुई, कलकल करती हुई, अन्धकारि भगवान् शङ्कर के मस्तक की मालती-माला के समान, बालखिल्यमुनियों से युक्त तटवाली, अपने वस्त्रों से धोती हुई अरुन्धती से युक्त, दौड़ती हुई ऊँची लहरों में प्रतिबिम्बित होने के कारण चञ्चल तारों से युक्त, तपस्वियों द्वारा दी गई तिलाञ्जलियों से पुलकित तटप्रदेशवाली, स्नान से पवित्र, ब्रह्माजी द्वारा पितरों के लिए लुढ़काये गये पिण्डों से उज्ज्वल तटवाली,

कुशशयनसूचितसूर्यग्रहसूतकोपवासाम्, आचमनशुचिशचीपतिमुच्यमानार्चनकुसुमनिकरशाराम्, शिवपुरपतितनिर्माल्यमन्दारदामकाम्, अनादरदारितमन्दरदरोदृषदशाम्, अनेकनाकनायकनिकायकामिनीकुचकलशविलुलितविग्रहाम्, ग्राहग्रावग्रामस्खलनमुखरितस्रोतसम्, सुषुम्णास्रुतशशिसुधाशीकरस्तबकतारकितनीराम्, धिषणाग्निकार्यधूमधूसरितसैकताम्, सिद्धविरचितवालुकालिङ्गलङ्घनत्रासविद्रुतविद्याधराम्, निर्मोकमुक्तिमिव गगनोरगस्य, लीलाललाटिकामिव त्रिविष्टपविटस्य, विक्रयवीथीमिव पुण्यपण्यस्य, दत्तार्गलामिव नरकनगरद्वारस्य,

---

दयश्च । आचमनेत्यादिना । पितामहवत् स्नानादिनिष्ठात्वमस्योच्यते । अत एव शचीपदेन संभोगसक्तत्वमिव पोषितम् । निकायः समूहः सुषुम्णाख्योऽमृतमयो रविरश्मिः । धिषणो बृहस्पतिः । सिद्धकृतत्वेन लिङ्गेषु भगवत्संनिधानमावेद्यते । निर्मोकः सर्पकञ्चुकः । विस्रंसनया शुक्लत्वेन लहरिकावलित्वेन निर्मोकमुक्तिरिवेत्युत्प्रेक्षा । गगनमिवोरगः कृष्णतया । ललाटिका ललाटालंकारः विटो भुजङ्गः । उष्णीषं

पास में सोये सप्तर्षियों की कुशशय्या से उनके सूर्यग्रहण-जन्य अशौच के उपवास को सूचित करने वाली, आचमन से शुद्ध इन्द्र द्वारा छोड़े गये पूजा-पुष्पों से विचित्र, शिवपुर (अर्थात् भगवान् शङ्कर की नगरी कैलाश) से गिरी हुई निर्माल्य (शिव को चढ़ाई गई) मन्दारमाला वाली, अवहेलना के साथ मन्दराचल की गुहाओं की चट्टानों को तोड़ने वाली, अनेक स्वर्गनायकों (देवताओं) की स्त्रियों के स्तनकलशों से (आहत होकर) डोलते हुए शरीर वाली, घड़ियालों एवं पत्थरों पर गिरने के कारण शब्दायमान प्रवाहवाली, सूर्य की सुषुम्णा नामक किरण से निकली हुई चन्द्र-सुधा के फुहारें तारों के समान जहाँ प्रतीत हो रहे थे ऐसे तटों वाली, बृहस्पति के द्वारा किये गये हवन से उत्पन्न धुएँ से धुँधली रेतों वाली, सिद्धों द्वारा बनाये गये बालुकामय शिवलिङ्गों को लाँघने के भय से इधर-उधर भागने वाले विद्याधरों से युक्त, आकाशरूपी सर्प के केंचुल-त्याग के समान, स्वर्गरूपी विट (धूर्त) के ललाट-भूषण के समान, पुण्यरूप सौदे की बाजार-गली के समान, नरक के नगर द्वार को बन्द करने वाली अर्गला (साँकल)

अंशुकोष्णीषपट्टिकामिव सुमेरुनृपस्य, दुगूलकदलिकामिव कैलासकुञ्जरस्य, पद्धतिमिवापवर्गस्य, नेमिमिव कृतयुगस्य सप्तसागरराजमहिषीं मन्दाकिनीमनुसरन्ती मर्त्यलोकमवततार। अपश्यच्चाम्बरतलस्थितैव हारमिव वरुणस्य, अमृतनिर्झरमिव चन्द्राचलस्य, शशिमणिनिष्यन्दमिव विन्ध्यस्य, कर्पूरद्रुमद्रवप्रवाहमिव दण्डकारण्यस्य, लावण्यरसप्रस्रवणमिव दिशाम्, स्फाटिकशिलापट्टशयनमिवाम्बरश्रियाः स्वच्छशिशिरसुरस-वारिपूर्णं भगवतः पितामहस्यापत्यं हिरण्यवाहनामानं महानदम्, यं जनाः शोण इति कथयन्ति। दृष्ट्वा च तं रामणीयकहृतहृदया तस्यैव तीरे वासमरचयत्। उवाच च सावित्री—'सखि, मधुरमयूरविरुतयः

शिरोवेष्टनं दिक्षु प्रसिद्धम्। दुगूलशब्दो दुकूलसमानार्थः। पद्धतिर्मार्गः। अपवर्गो मोक्षः। कृतयुगस्य रचितयुगकाष्ठस्य रथस्येत्यर्थः। यथा नेमिवशाद्रथग्रहणं तथा तद्वशात्कृताख्यस्य युगस्य। सप्तसागरराजः। क्षीरसमुद्रः। चन्द्राख्यः पर्वत इति केचित्। शशिमणिश्चन्द्रकान्तः। पितामहस्येति। तद्भवतया तदाश्रयणम्। सिकता

के समान, सुमेरु पर्वत रूपी राजा की सूक्ष्मवस्त्र निर्मित पगड़ी की पट्टी के समान, कैलासरूपी हाथी की रेशमी पताका के समान, मोक्ष के मार्ग के समान, सत्ययुग रूपी रथ की धुरी के समान, सप्तसागर रूपी राजा की पटरानी आकाशगङ्गा का अनुसरण करती हुई (सरस्वती) मर्त्यलोक में उतरी। आकाशतल में अवस्थित हो सरस्वती ने वरुण के हार के समान, चन्द्र-पर्वत के अमृत-निर्झर के समान, विन्ध्याचल के चन्द्रकान्तमणि के प्रवाह के समान, दण्डकवन के कपूर के वृक्षों के रस-प्रवाह के समान, दिशाओं के लावण्यरस के सोते के समान, आकाशलक्ष्मी के स्फटिक-निर्मित शिलापट्ट की शय्या के समान, निर्मल, शीतल और सुरस (स्वादिष्ट) जल से भरे हुए, भगवान् पितामह की सन्तान, हिरण्यवाह नामक महानद को; जिसे लोग शोण (सोन) कहते हैं; देखा। उसे (अर्थात् शोण महानद को) देखकर उसकी मनोहरता द्वारा चुराये गये (अर्थात् आकृष्ट किये गये) हृदय वाली सरस्वती ने उसी के तट पर अपना डेरा डाल दिया और सावित्री से कहा—"हे सखि! मयूरों के मधुर शब्दों से युक्त, वृक्षों के नीचे

कुसुमपांशुपटलसिकतिलतरुतलाः परिमलमत्तमधुपवेणीवीणारणितरमणीया रमयन्ति मां मन्दीकृतमन्दाकिनीद्युतेरस्य महानदस्योपकण्ठभूमयः। पक्षपाति च हृदयमत्रैव स्थातुं मे' इति। अभिनन्दितवचना च तथेति तया तस्य पश्चिमे तीरे समवातरत्। एकस्मिंश्च शुचौ शिलातलसनाथे तटलतामण्डपे गृहबुद्धिं बबन्ध। विश्रान्ता च नातिचिरादुत्थाय सावित्र्या सार्धमुच्चिनार्चनकुसुमा सस्नौ। पुलिनपृष्ठप्रतिष्ठितशिवलिङ्गा च भक्त्या परमया परब्रह्मपुरःसरां सम्यङ्मुद्राबन्धविहितपरिकरां ध्रुवागीतिगर्भामवनिपवनवनगगनदहनतपनतुहिनकिरणयजमानमयीर्मूर्तिरष्टावपि ध्यायन्ती सुचिरमष्टपुष्पिकामदात्। अयत्नोपनतेन फलमूलेनामृतरसमभ्य-

---

विद्यन्ते यस्य स सिकतिलः। मत्तशब्देन सशब्दत्वम्, वेणीपदेन स तन्त्रीसन्निवेशसादृश्यमाह। वेणी पंक्तिः। लिङ्ग्यतेऽनेनेति लिङ्गमाकारः। पञ्च ब्रह्माणि सद्योजातः, वामदेवः, अघोरः, तत्पुरुषः। ईशानश्चेति। मुद्राबन्धो विशिष्टकराङ्गुलिसन्निवेशः। ध्रुवाख्या विशिष्टा गीतिः। वनं तोयम्। यजमान उग्रः। अष्टौ पुष्पाण्येवाष्टपुष्पिका। तत्र गन्धप्रधानं पार्थिवम्, अर्घस्नानादिकं रसप्रधानमाप्यम्, प्रदीपाभरणप्रभादिरूपप्रधानं तैजसम्, अनुलेपनप्रभृति स्पर्शप्रधानं वायवीयम्, सुषिरा-

---

फूलों की धूलि से व्याप्त, फूलों की सुगन्ध से मत्त हुए भौरों की पंक्तिरूपी वीणा के निनाद से मनोरम, मन्दाकिनी की छवि को भी मात करने वाले इस महानद के (तट) प्रान्त हैं। मेरा हृदय भी इसी स्थान में रहने के पक्ष में है।" सावित्री द्वारा "तथा" (अर्थात् वैसा ही करो) कहकर सरस्वती की बात का समर्थन किया गया और तब सरस्वती शोण महानद के पश्चिमी तट पर उस (सावित्री) के साथ उतर गई। वहीं एक पवित्र शिलातल से युक्त लतामण्डप को घर मानकर ठहर गई। थोड़ी देर विश्राम करके उठ कर सावित्री के साथ पुष्प चुन कर स्नान किया। तटप्रदेश पर पार्थिव शिवलिङ्ग को प्रतिष्ठित कर परम भक्ति के साथ परब्रह्म की पूजा के साथ-साथ सम्यक् प्रकार से कई मुद्राबन्ध किये और ध्रुवीगीति के साथ पृथ्वी, वायु, जल, आकाश, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और यजमान रूपी शिव की आठों मूर्त्तियों का ध्यान करती हुई आठ फूल अर्पित किये। बिना प्रयास के ही प्राप्त फल मूल से तथा अमृतरस को भी मात

तिशिशयिषमाणेन च स्वादिम्ना शिशिरेण शोणवारिणा शरीरस्थिति-मकरोत्। अतिवाहितदिवसा च तस्मिल्लतामण्डपशिलातले कल्पितपल्लव-शयना सुष्वाप। अन्येद्युरप्यनेनैव क्रमेण नक्तंदिनमत्यवाहयत्।

एवमतिक्रामत्सु दिवसेषु गच्छति च काले याममात्रोद्गते च रवावुत्तरस्यां ककुभि प्रतिशब्दपूरितवनगह्वरं गम्भीरतारतरं तुरङ्गहेषित-ह्लादमश्रृणोत्। उपजातकुतूहला च निर्गत्य लतामण्डपाद्विलोकयन्ती विकचकेतकीगर्भपत्रपाण्डुरं रजःसङ्घातं नातिदवीयसि सम्मुखमपित-न्तमपश्यत्। क्रमेण च सामीप्योपजायमानाभिव्यक्ति तस्मिन्महति शफरोदरधूसरे रजसि पयसीव मकरचक्रं प्लवमानं पुरः प्रधावमा-

---

तोद्यगीतादिकं शब्दप्रधानमाकाशीयम्, अनुध्यानं मानसम्, अस्ति सर्वत्रैवेश्वर इति निश्चयो बौद्धम्, अहमेवेश्वर इत्याहंकारिकम्। यद्वा आसनवर्गप्रवृत्तिष्वष्टसु प्रत्येकमष्टपुष्पिका। अतिशेतुमभिभवितुमिच्छतातिशिशियिषमाणेन। स्वादिम्ना मृष्टत्वेन। **शरीरस्थितिमिति**। न त्वातृप्तिभोजनम्। अन्येद्युरन्यस्मिन्नहनि।

यामः प्रहरः। नक्तंदिवशब्देन तत्कालनिर्वर्तनीयं कर्मैव लक्ष्यते। गम्भीरश्चिर-कालस्थितः। तारतरो दूरदेशश्रूयमाणः। हेषितमश्वशब्दः। तद्रूपो ह्लादो ध्वनि-स्तम्। क्रमेणेत्यादावश्ववृन्दं संददर्शेति संबन्धः। शफरा मत्स्याः। तदुदरवर्तैश्च

करने वाले, स्वादिष्ट तथा ठण्डे शोण-जल से अपने शरीर का निर्वाह किया (अर्थात् शरीर रक्षा के लिए थोड़ा भोजन एवं जल-ग्रहण किया।) इस प्रकार दिन को बिताकर उसी लतामण्डप के शिलातल पर पत्तों का बिछौना बनाकर सो गई। दूसरे दिन भी इसी प्रकार उस (सरस्वती) ने रात-दिन बिताये।

इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर तथा बहुत समय गुजर जाने पर (एकदिन) एक पहर दिन चढ़ जाने पर उत्तर दिशा में वन की धाँवियों को प्रतिध्वनि से भरने वाली गम्भीर और तीखी आवाज, जो घोड़ों की हिन-हिनाहट थी; सुन पड़ी। उत्सुकतापूर्वक लतामण्डप से बाहर निकल कर सरस्वती ने नजर दौड़ाते हुए थोड़ी ही दूर पर विकसित केतकी के पत्तेदार गर्भ की भाँति उजली तथा सामने उड़ती हुई धूलराशि को देखा। क्रमशः जब वह और निकट आ गई तो मछली के पेट के समान धूसर वर्ण वाली उस

नेन, प्रलम्बकुटिलकचपल्लवघटितललाटजजूटकेन, धवलदन्तपत्रिकाद्युतिहसितकपोलभित्तिना, पिनद्धकृष्णागुरुपङ्ककल्कचन्द्रुरणकृष्णशबलकषायकञ्चुकेन, उत्तरीयकृतशिरोवेष्टनेन, वामप्रकोष्ठनिविष्टस्पष्टहाटककटकेन, द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रथितासिधेनुना, अनवरतव्यायामकृतकर्कशशरीरे, वातहरिणयूथेनेव मुहुर्मुहुः समुड्डीयमानेन, लङ्घितसमविषमावटविटपेन, कोणधारिणा, कृपाणपाणिना, सेवागृहीतविविधवनकुसुमफलमूलपर्णेन, 'चल चल, याहि याहि, अपसर्पापसर्प, पुरः प्रयच्छ पन्थानम्' इत्यनवरतकृतकलकलेन युवप्रायेण,

धूसरे। प्रलम्बेत्यादिना सङ्गच्छमानाम्। कचाः केशाः। सौकुमार्यात्पल्लवानीव घटितललाटजूटता दक्षिणात्येषु वेषः। दन्तपत्रिका कर्णाभरणभेदः। पिनद्धो बद्धः। कृष्णागुरुणः पङ्को निघृष्टं कृष्णागुरुः, तस्य शुष्कस्य सतः कल्कचूर्णः तच्छुरणात्कृष्णेन गुणेन शबलं कषायं साधिवासितं कञ्चुकं वारबाणं यस्य। उत्तरीयेत्यादिना सन्नद्धतां वर्मादिप्रसङ्गं चाह। वामेत्यनेनाश्रमित्वभाववर्णना शृङ्गारिता चोक्ता। 'प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः'। हाटकं स्वर्णम्। यदेव द्विगुणास्त एव गाढग्रन्थिसहत्वम्। ग्रथिता विस्रंसिनो। असिधेनुश्छुरिका। वातहरिणो यो वाताभिमुखं धावति। अवट उन्मार्गः। कोणो लगुडः।

धूलिराशि में—जल में तैर रहे मगरों के समान, आगे की ओर दौड़ने वाले, लम्बे-लम्बे घुंघराले केशरूपी पल्लवों के जटाजूट से युक्त, उजले हाथी-दाँत की पत्रिका से विभूषित कपोल वाले, काले अगर की बुकनियों से काले, विचित्र एवं लाल रंग के कञ्चुक को धारण किये हुए, उत्तरीय से सिर को ढँके हुए, बाँये हाथ में सोने के कंगन को धारण किये हुए, कपड़े की दोहरी कमर-पेटी की गाँठ में खोंसी गई छुरी वाले, लगातार व्यायाम करने के कारण कड़े शरीर वाले, हवा से बात करने वाले हरिणों के समान मानों आकाश में उड़ते हुए, ऊबड़-खाबड़ जमीन एवं झाड़ियों को लाँघते चलने वाले लगुड (लाठी या डण्डे) को धारण किये हुए, हाथ में कृपाण लिये हुए, पूजा के लिए अनेक प्रकार के जंगली फूल, फल, मूल और पत्तों को लिये हुए, "चलो, चलो" "जाओ, जाओ", "हटो-हटो", "रास्ता छोड़ो" इस प्रकार निरन्तर शोरगुल

सहस्रमात्रेण पदातिजनेन सनाथमश्ववृन्दं सा ददर्श ।

मध्ये च तस्य सार्धचन्द्रेण मुक्ताफलजालमालिना विविधरत्नखण्डखचितेन शङ्खक्षीरफेनपाण्डुरेण क्षीरोदेनेव स्वयं लक्ष्मीं दातुमागतेन गगनगतेनातपत्रेण कृतच्छायम्, अच्छाच्छेनाभरणद्युतीनां निवहेन दिशामिव दर्शनानुरागलग्नेन चक्रवालेनानुगम्यमानम्, आनितम्बविलम्बिन्या मालतीशेखरस्रजा सकलभुवनविजयार्जितया रूपपताकयेव विराजमानम्, उत्सर्पिभिः शिखण्डखण्डिकापद्मरागमणेररुणैरंशुजालैरदृश्यमानवनदेवताविधृतैर्बालपल्लवैरिव प्रमृज्यमानमार्गरेणुपरुषवपुषम्, बकुलकुड्मलमण्डलीमुण्डमालामण्डनमनोहरेण कुटिल-

---

मध्य इत्यादौ । तस्य च मध्येऽष्टादशवर्षदेशीयं युवानमद्राक्षीदिति सम्बन्धः । क्षीरोदस्याप्यर्धचन्द्रादि सर्वं योज्यम् । छाया कान्तिरपि । चक्रवालेन समूहेन । नितम्बशब्दो मुख्यार्थः । 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः' इत्यमरः । शिखण्डखण्डिका चूडाभरणम् । प्रयुज्यमानेति । वर्तमानकालोऽत्र विवक्षितः । बकुलेत्यादिना निपीय-

---

करने वाले एक हजार प्रायः युवकों की पैदल सेना के साथ दौड़ रहे घोड़ों के समूह को (सरस्वती ने) देखा ।

घोड़ों की उस टुकड़ी के बीच में अर्धचन्द्र की भाँति मोतियों की माला धारण किये हुए, अनेक प्रकार के रत्नों से जड़े हुए, शङ्ख एवं दूध के फेन के सदृश उजले, लक्ष्मी को देने के लिए स्वयं आये हुए क्षीरसागर के समान स्थित, आकाश में व्याप्त उजले छाते से विभूषित, आभूषणों की स्वच्छ किरणों से इस प्रकार अनुगत मानो दर्शनानुराग के कारण दिशाओं का समूह पीछा कर रहा हो, नितम्ब भाग तक लटकती हुई मालती माला से इस प्रकार विभूषित मानों सम्पूर्ण भुवनों पर प्राप्त किये गये विजयरूपी रूप की पताका से विभूषित हो, शिखण्डि-खण्डिका नामक शिरोभूषण से खचित पद्मराग मणि की फैलने वाली रक्तकिरणों से इस प्रकार सुशोभित मानों अदृश्यमान वनदेवता धारण किये गये नवीन पत्तों से मार्ग की धूल पड़ जाने के कारण रूखे शरीर को झाड़ रही हो, मौलसिरी के कुड्मलों से बनी हुई मुण्डमाला से मनोहर एवं घुंघराले

कुन्तलस्तबकमालिना मौलिना मीलितातपं पिबन्तमिव दिवसम् पशुपतिजटामुकुटमृगाङ्कद्वितीयशकलघटितस्येव सहजलक्ष्मीसमालिङ्गितस्य ललाटपट्टस्य मनःशिलापङ्कपिङ्गलेन लावण्येन लिम्पन्तमिवान्तरिक्षम्, अभिनवयौवनारम्भावष्टम्भप्रगल्भदृष्टिपाततृणाकृतत्रिभुवनस्य चक्षुषः प्रथिम्ना विकचकुमुदकुवलयकमलसरःसहस्रसञ्छादितदशदिशं शरदमिव प्रवर्तयन्तम्, आयतनयननदीसीमान्तसेतुबन्धेन ललाटतटशशिमणिशिलातलगलितेन कान्तिसलिलस्रोतसेव द्राघीयसा नासावंशेन शोभमानम्, अतिसुरभिसहकारकर्पूरकक्कोललवङ्गपारिजातकपरिमलमुचा मत्तमधुकरकुलकोलाहलमुखरेण मुखेन सनन्दनवनं वसन्तमिवावतारयन्तम्, आसन्नसुहृत्परिहास-

---

मानातपतुल्यवस्तुनिर्देशः। कुन्तलः केशहस्तः, स एव स्तबकः। पुष्पस्तबकः पुष्पसंघात सहजाऽकृत्रिमा, सहोत्पन्ना च। लक्ष्मीः शोभना, श्रीश्च। लावण्यमत्र कान्तिः। अवष्टम्भो गर्वः। द्राघीयसा दीर्घतरेण। सहकारः सुगन्धद्रव्यभेदः सहकारफलेनैव क्रियते। पारिजातकोऽनेकद्रव्यसंस्कृतो मुखवासविशेषः, देववृक्षश्च।

बालों के गुच्छों से भरे हुए अपने सिर से दिन की गर्मी को कम करते हुए मानों दिन को पी रहा हो ऐसे, भगवान् शङ्कर के जटारूपी मुकुट में स्थित चन्द्रमा के दूसरे टुकड़े से मानों विरचित एवं स्वाभाविक सौन्दर्य से युक्त ललाट-पट्ट के लावण्य से; जो मनःशिला के पङ्क के समान लाल-पीला था; अन्तरिक्ष को मानों लीपते हुए, नवीन युवावस्था के प्रारम्भ होने के कारण गर्व से गम्भीर दृष्टि द्वारा तीनों लोकों को तिनके समान समझने वाले, नेत्र की विशालता से प्रफुल्लित कुमुदों, नीलकमलों एवं कमलों से भरे हुए हजारों सरोवरों से दसों दिशाओं को ढँकने वाली शरद् ऋतु का मानों प्रवर्त्तन करने वाले, दीर्घनेत्र रूपी नदियों का विभाजन करने वाले सेतुबन्ध के समान लम्बी नाक; जो ललाट प्रदेशरूपी चन्द्रकान्त मणि से चूते हुए सौन्दर्य जल के सोते के समान थी; से सुशोभित, अत्यन्त सुगन्धित आम, कपूर, बनकपूर, लवङ्ग और पारिजात की गन्ध से युक्त तथा मत्त भौंरों के गुञ्जार से युक्त मुख से मानों नन्दनकानन के साथ बसन्त ऋतु को उगलने वाले, निकटस्थ मित्रों के साथ हँसी-मजाक करने के कारण

भावनोत्तानितमुखमुग्धहसितैर्दशनज्योत्स्नास्नपितदिङ्मुखैः पुनः पुनर्नभसि संचारिणं चन्द्रालोकमिव कल्पयन्तम्, कदम्बमुकुलस्थल-मुक्ताफलयुगलमध्याध्यासितमरकतस्य त्रिकण्टककर्णाभरणस्य प्रेङ्खतः प्रभया समुत्सर्पन्त्या कृतसकुसुमहरितकुन्दपल्लवकर्णावतंस-मिवोपलक्ष्यमाणम्, आमोदितमृगमदपङ्कलिखितपत्रभङ्गभास्वरम्, भुजयुगलमुद्दाममकराक्रान्तशिखरमिव मकरकेतुकेतोः दण्डद्वयं दधानम्, धवलब्रह्मसूत्रसीमन्तितं सागरमथनसामर्षगङ्गास्रोतःसंदा-नितमिव मन्दरं देहमुद्वहन्तम्, कर्पूरक्षोदमुष्टिच्छुरणपांशुलेनेव कान्तोच्चकुचचक्रवाकयुगलविपुलपुलिनेनारःस्थलेन स्थूलभुजायाम-पुञ्जितम्, पुरो विस्तारयन्तमिव दिक्चक्रम्, पुरस्तादीषदधोनाभि-

---

वसन्तश्चैवंविधेनैव मुखेन प्रारम्भेणोपलक्षितो भवति। रत्नत्रितयेन कृतं त्रिकोण-कण्टकाख्यं कर्णाभरणम्। मृगमदः कस्तूरिका। संदानितं बद्धम्। वेष्टितमित्यर्थः। कुचावत्र कान्तासंबन्धिनादेय चक्रवाकयुगलं तस्य कृते पुलिनसदृशम्। कोणः

ऊपर की ओर किये गये (अपने) मुख की हँसी के कारण दाँतों की चमक से स्नान कराई गई दिशाओं से बार-बार आकाश में सञ्चारित होने वाले चन्द्रालोक का मानों निर्माण करने वाले, कदम्ब के मुकुल के समान स्थूल दो मोतियों के बीच स्थित नीलमणि वाले हिलते त्रिकण्टक नामक कर्णभूषण की फैलती हुई चमक से मानों फूल सहित कुन्दपल्लव के कर्णाभूषण को प्रदर्शित करने वाले, सुगन्धित कस्तूरी के तिलक एवं पत्ररचना से चमकते हुए, विकट मगरों द्वारा आक्रान्त शिखर वाले कामदेव के दो ध्वजदण्डों के समान दो भुजाओं को धारण करने वाले, समुद्रमन्थन से क्रुद्ध हुई गंगा की धाराओं द्वारा जकड़े गये मन्दराचल के समान उज्ज्वल यज्ञोपवीत से वेष्टित शरीर को धारणा करने वाले, कपूर की मुट्ठी भर बुकनी के लेप से धूसरित तथा कान्ता के ऊँचे स्तनरूपी चक्रवाक युगल के लिए चौड़े तटप्रदेश के समान (अपनी) छाती से (अपनी) मोटी भुजाओं के बीच की दीर्घता में इकट्ठे हुए दिङ्मण्डलों को आगे फैलाने वाले, अग्रभाग में नाभि के नीचे स्थित एक कोने से सुन्दर तथा पिछले भाग

निहितककोणकमनीयेन पृष्ठतः कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लवेनोभयतःसंवलनप्रकटितोरुत्रिभागेन हारीतहरिता निबिडनिपीडितेनाधरवाससा विभज्यमानतनुतरमध्यभागम्, अनवरतश्रमोपचितमांसकठिनविकटमकरमुखसंलग्नजानुभ्यामतिविशालवक्षःस्थलोपलवेदिकोत्तम्भनाशिलास्तम्भाभ्यां चारुचन्दनस्थासकस्थूलतरकान्तिभ्यामुरुदण्डाभ्यामुपहसन्तमिवैरावतकरायामम्, [1]अतिभारितोरुभारवहनखेदेनेव तनुतरजङ्घाकाण्डम्, कल्पपादपपल्लवद्वयस्येव पाटलस्योभयपार्श्वविलम्बिनः पादद्वयस्य दोलायमानैर्नखमयूखैरश्वमण्डनचामरमालामिव-

पल्लवः। पृष्ठतः पश्चाद्भागे कक्ष्यायाः परिवलनादधिकस्तुतिरित्युक्तः। क्षिप्तो लम्बमानः पल्लवो यस्य तत्। संवलनं संकोचनम्। हारीतः पक्षिभेदः। हरिता नीलेन। मकरमुखं जानुनोरुपरिभाग। उत्तम्भनं धारणम्। स्थासकश्चन्द्रकः। आयामो दैर्घ्यम्। न केवलमायामं शुक्लत्वमप्युपहसन्तम्। धर्मयोरेकनिर्देशोऽन्यासंवित्साहचर्यात्। 'अतिभरितोरुभारवहनेन' इति पाठः। ऊरू एव भारः। प्रशस्ता जङ्घा जङ्घाकाण्डम्। कल्पपादपसम्बन्धितया न केवलं लौहित्यं सौकुमार्यादिमुच्यते। यावत्सकलसंपत्फलप्रदत्वादिप्रकर्षान्तरम्। अविचिरमित्यादिनानाकुलत्वमुच्यते। यदुक्तम्—'आवृताः कुञ्चिताः स्थूलदलपाल्यग्रसंस्थिताः। विवर्ज्याश्चाकुलपदन्यासेन गम-

में कक्षप्रदेश में लम्बमान वस्त्र-प्रान्तभाग से युक्त एवं दोनों पार्श्वभागों में सङ्कोचन के कारण जङ्घाओं के तृतीय भाग को प्रदर्शित करने वाले, हारीत पक्षी के समान हरे रंगवाले, कसकर बँधे हुए अधोवस्त्र से दुबले-पतले शरीर के मँझले भाग को विभक्त करने वाले, लगातार परिश्रम करने के कारण बढ़े हुए मांस के कारण विकट मकरमुख (घुटने का ऊपरी भाग) में घुटनों से सम्बद्ध तथा विशाल वक्षःस्थलरूपी प्रस्तरशिला के धारण के लिए स्तम्भभूत एवं मनोहर चन्दन के थप्पों से चर्चित जघनदण्डों से ऐरावत के शुण्डादण्ड की विशालता का उपहास करने वाले, अत्यन्त भारी जङ्घाओं के भार को ढोने से उत्पन्न परिश्रम के कारण ही मानो दुबली पड़ गई टांगों से युक्त, कल्पवृक्ष के दो पल्लवों के समान श्वेत-रक्तवर्ण के तथा (घोड़े के) दोनों ओर लटकते हुए,

१. अतिभरितोरभागभर।

रचयन्तम्, अभिमुखमुच्चैरुदञ्चद्भिरतिचिरमुपरिविश्राम्यद्भिरिव वलितविकटं पतद्भिः खुरैः खण्डितभुवि प्रतिक्षणदशनविमुक्तखणखणायितखरखलीने दीर्घघ्राणलीनलालिके ललाटलुलितचारुचामीकरचक्रमे शिञ्जानशातकौम्भायानशोभिनि मनारंहसि गोलांगूलकपोलकालकायलोम्नि नीलसिन्धुवारवर्णे वाजिनि महति समारूढम्, उभयतः पर्याणपट्टश्लिष्टहस्ताभ्यामासन्नपरिचारकाभ्यां दोधूयमानधवलचामरिकायुगलम्, अग्रतः पठतो वन्दिनः सुभाषितमुत्कण्टकितकपोलफलकेन लग्नकर्णोत्पलकेसरपक्ष्मशकलेनेव मुखशशिना भावयन्तम् । अनङ्ग-

---

नेन च ॥' इति विकटं चित्रम् । खुरैरिति । तद्व्यापारवैचित्र्याद्बहुत्वमग्रिमयोरेव । एवंविधसंनिवेशसंभवात् । खलीनं कविका । लालिका कविकाशेखरम् । आयानं हयमण्डनमाला । गोलांगूलः कृष्णमुखो वानरः । नीलेत्यादौ कुमुदकुन्दमृणालगौर इत्यादिवन्न पौनरुक्त्यम् । महतीति । उक्तं च—सर्वलक्षणहीनोऽपि महाकायः प्रशस्यते' इति । आसन्नेत्यनेन विश्वसनीयत्वमुक्तम् । अनङ्गयुगेति । अनङ्गजन्मना यदुपलक्षितं युगं कालविशेषस्तस्य नूतनमदसादृश्यात् । यद्वा—अनङ्गयोर्युगं तद-

---

दोनों पैरों की चञ्चल नख-किरणों से घोड़े को सजाने के लिए मानों चामर-माला की रचना करने वाले, आगे की ओर उठने वाले तथा ऊपरी भाग में अधिक देर तक रहने से ही मानों वेगपूर्वक गिरने वाले खुरों से पृथ्वी को विदीर्ण करने वाले, प्रतिक्षण लगाम के खन-खन शब्द से युक्त, विशाल नाक में लगाम को और ललाट-प्रदेश पर सुवर्ण को धारण करने वाले, आवाज करती हुई सुवर्णमाला से सुशोभित, मन के समान वेगवाले, काले मुख वाले बन्दर (लंगूर) के कपालस्थ रोमराजि के सदृश काले केश वाले, नीले सिन्धुवार के फूल जैसे रंग वाले, बहुत बड़े घोड़े पर चढ़े हुए, दोनों ओर पलान पर हाथ रखे हुए दो निकटस्थ सेवकों द्वारा हिलाते हुए दो उजले चामरों से युक्त, आगे-आगे (चल रहे) वन्दीजनों द्वारा पढ़े जाने वाले सुभाषितों को सुन कर मानों कर्णभूषणरूप कमल से झरने वाले पराग से युक्त हो, इसी प्रकार पुलकित कपोलों से युक्त अपने मुखचन्द्र से विवेचना करने वाले (अर्थात् बन्दीजनों द्वारा पढ़ी जाने वाली बिरुदावली को ध्यानपूर्वक सुनने

युगावतारमिव दर्शयन्तम्, चन्द्रमयीमिव सृष्टिमुत्पादयन्तम्, विलासप्रायमिव जीवलोकं जनयन्तम्, अनुरागमयमिव सर्गान्तमारचयन्तम्, शृङ्गारमयमिव दिवसमापादयन्तम्, रागराज्यमिव प्रवर्तयन्तम्, आकर्षणाञ्जनमिव चक्षुषोः, वशीकरणमन्त्रमिव मनसः, स्वस्थावेशचूर्णमिवेन्द्रियाणाम्, असंतोषमिव कौतुकस्य, सिद्धयोगमिव सौभाग्यस्य, पुनर्जन्मदिवसमिव मन्मथस्य, रसायनमिव यौवनस्य, एकराज्यमिव रामणीयकस्य, कीर्तिस्तम्भमिव रूपस्य, मूलकोशमिव लावण्यस्य, पुण्यकर्मपरिणाममिव संसारस्य, प्रथमांकुरमिव कान्तिलतायाः, सर्गाभ्यासफलमिव प्रजापतेः, प्रतापमिव विभ्रमस्य, यशःप्रवाहमिव वैदग्ध्यस्य, अष्टादशवर्षदेशीयं युवानमद्राक्षीत् ।

वतारमिव । द्वित्वासख्यापूर्वकत्वात् । चन्द्रमयीमिवेति कान्तिमयत्वेन । आकर्षणाञ्जनं वशीकरणार्थं कज्जलम् । असंतोषमिवेति । यस्यैनं प्राप्य कौतुकं न निवर्तते, तस्य संतोष एव नास्ति । केषांचिदेव द्रव्याणां संबन्धो यो न कदाचित्कार्ये व्यभिचरति स सिद्धयोगः । सौभाग्यं तावत्सर्वं किंचन वशीकुरुते; एवं चास्य तदेव सिद्धयोग इव तदाश्रयणेन निःशेषलोकवशीकरणक्षमत्वम् जन्मदिवसमिति । तद्गोचरपतितानां कामोत्पत्तेः । रसायनमिवेति । यथा रसायनवशात्कश्चित्परिपूर्णश्च स्थिरश्च भवति, तद्वदेतदाश्रयेण यौवनम् । ईषदसमाप्तोऽष्टादशवर्षोऽष्टा-

---

वाले), मानों कामदेव के युगावतार को दिखलाने वाले, मानों सृष्टि को चन्द्रमयी बनाने वाले, मानों प्राणिलोक को विलासलीन करने वाले, प्रेममय मार्ग का उपस्थापन करने वाले, दिवस को शृङ्गारयुक्त बनाने वाले, राग के राज्य का प्रवर्त्तन करने वाले, नेत्रों को आकृष्ट करने वाले अञ्जन के समान, मन के लिए वशीकरण मन्त्र के समान, इन्द्रियों को निश्चल करने वाले चूर्ण के समान, कुतूहल के असन्तोष के समान, सौभाग्य के सिद्धियोग के समान, कामदेव के पुनर्जन्मदिन के समान, युवावस्था को अक्षुण्ण रखने वाली ओषधि के समान, सौन्दर्य के एकछत्र राज्य के समान, सुरूप के कीर्त्तिस्तम्भ के समान, लावण्य के मूलकोश के समान, संसार के पुण्यकर्मजन्य फल के समान, कान्तिरूपी लतिका के नवीन अङ्कुर के समान, ब्रह्मा जी के सर्जनाभ्यास के परिणाम के

युगावतारमिव दर्शयन्तम्, चन्द्रमयीमिव सृष्टिमुत्पादयन्तम्, विलासप्रायमिव जीवलोकं जनयन्तम्, अनुरागमयमिव सर्गान्तमारचयन्तम्, शृङ्गारमयमिव दिवसमापादयन्तम्, रागराज्यमिव प्रवर्तयन्तम्, आकर्षणाञ्जनमिव चक्षुषोः, वशीकरणमन्त्रमिव मनसः, स्वस्थावेशचूर्णमिवेन्द्रियाणाम्, असंतोषमिव कौतुकस्य, सिद्धयोगमिव सौभाग्यस्य, पुनर्जन्मदिवसमिव मन्मथस्य, रसायनमिव यौवनस्य, एकराज्यमिव रामणीयकस्य, कीर्तिस्तम्भमिव रूपस्य, मूलकोशमिव लावण्यस्य, पुण्यकर्मपरिणाममिव संसारस्य, प्रथमांकुरमिव कान्तिलतायाः, सर्गाभ्यासफलमिव प्रजापतेः, प्रतापमिव विभ्रमस्य, यशःप्रवाहमिव वैदग्ध्यस्य, अष्टादशवर्षदेशीयं युवानमद्राक्षीत् ।

वतारमिव । द्वित्वासंख्यापूर्वकत्वात् । चन्द्रमयीमिवेति कान्तिमयत्वेन । आकर्षणाञ्जनं वशीकरणार्थं कज्जलम् । असंतोषमिवेति । यस्यैनं प्राप्य कौतुकं न निर्वर्तते, तस्य संतोष एव नास्ति । केषांचिदेव द्रव्याणां संबन्धो यो न कदाचित्कार्ये व्यभिचरति स सिद्धयोगः । सौभाग्यं तावत्सर्वं किंचन वशीकुरुते; एवं चास्य तदेव सिद्धयोग इव तदाश्रयणेन निःशेषलोकवशीकरणक्षमत्वम् जन्मदिवसमिति । तद्गोचरपतितानां कामोत्पत्तेः । रसायनमिवेति । यथा रसायनवशात्कश्चित्परिपूर्णश्च स्थिरश्च भवति, तद्वदेतदाश्रयेण यौवनम् । ईषदसमाप्तोऽष्टादशवर्षोऽष्टा-

---

वाले), मानों कामदेव के युगावतार को दिखलाने वाले, मानों सृष्टि को चन्द्रमयी बनाने वाले, मानों प्राणिलोक को विलासलीन करने वाले, प्रेममय मार्ग का उपस्थापन करने वाले, दिवस को शृङ्गारयुक्त बनाने वाले, राग के राज्य का प्रवर्त्तन करने वाले, नेत्रों को आकृष्ट करने वाले अञ्जन के समान, मन के लिए वशीकरण मन्त्र के समान, इन्द्रियों को निश्चल करने वाले चूर्ण के समान, कुतूहल के असन्तोष के समान, सौभाग्य के सिद्धियोग के समान, कामदेव के पुनर्जन्मदिन के समान, युवावस्था को अक्षुण्ण रखने वाली औषधि के समान, सौन्दर्य के एकछत्र राज्य के समान, सुरूप के कीर्त्तिस्तम्भ के समान, लावण्य के मूलकोश के समान, संसार के पुण्यकर्मजन्य फल के समान, कान्तिरूपी लतिका के नवीन अङ्कुर के समान, ब्रह्मा जी के सर्जनाभ्यास के परिणाम के

पार्श्वे च तस्य द्वितीयमपरसंश्लिष्टतुरङ्गम्, प्रांशुमुत्तप्ततपनीयस्तम्भाकारम्, परिणतवयसमपि व्यायामकठिनकायम्, नीचनखश्मश्रुकेशम्, शुक्तिखलितम्, ईषत्तुन्दिलम्, रोमशोरःस्थलम्, अनुल्वणोदारवेषतया जरामपि विनयमिव शिक्षयन्तम्, गुणानपि गरिमाणमिवानयन्तम्, महानुभावतामपि शिष्यतामिवानयन्तम्, आचारस्याप्याचार्यमिव कुर्वाणम्, वलक्षवारबाणधारिणम्, धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टितमौलिं पुरुषम् ।

दशवर्षदेशीयस्तम् । न परेण संश्लिष्टस्तुरङ्गो यस्य तम् । दधीचस्य तु पर्याणश्लिष्टाद्युक्तम् । परिणतवयस्त्वेन सत्यवादिना सावित्रीसरस्वत्यौ प्रति च विस्रम्भकारित्वमुच्यते । अन्यथोपक्रम एव संभाषणमाशं न प्रवर्तते ।

शुक्तिखलतिं शुक्लाकारखल्वाटम् । तुन्दिलं लम्बोदरम् । अत एवास्य विकुक्षिरिति नाम । अनुल्वणोऽनुद्धतः । उदारः श्रेष्ठः । जरामिति । जरा किल सर्वविनयं शिक्षयति । महानुभावता महाशयता । अनुभावयति कार्यमकार्यं वा बोधयतीत्यनुभावः । शिष्यतामिति । परशासनदक्षकर्म महानुभावतया तत एवाक्सीयत इत्युक्तं भवति । आचारः शास्त्रकारप्रदर्शिता विशिष्टा नीतिः । स च सर्वस्मिन्नाचार्यकमवलम्बते । संस्कारातिशयमासादयतीत्यर्थः । बलक्षः शुक्लः । वारबाणः कञ्चुकः । मौलयः केशाः ।

समान, विलास के प्रताप के समान, चातुर्य के कीर्तिप्रसार के समान, अठारह वर्ष के एक युवक को देखा ।

उस युवक के बगल में, दूसरे घोड़े पर बैठे हुए, ऊँचे (अर्थात् लम्बे कद के) तपे हुए सोने के खम्भे के समान आकृति वाले, आयु से प्रौढ होने पर भी व्यायाम के कारण मजबूत शरीर वाले, साफ-सुथरी एवं कटी हुई दाढ़ी, मूँछ एवं नाखूनों वाले, बाल झड़ जाने के कारण सित्तू जैसे खल्वाट, जरा-सी निकल आई तोंद वाले, रोएँदार छाती वाले, प्रशान्त वेषविन्यास के कारण मानों बुढ़ापे को भी नम्रता की शिक्षा देने वाले, गुणों को भी मानों गरिमा-मण्डित करने वाले, महानुभावता को भी मानों शिष्य बनाने वाले, सदाचार के भी मानों गुरु बनने वाले, उजले कञ्चुक को पहने हुए, धुले हुए दुपट्टे से सिर को बाँधे हुए, दूसरे पुरुष को देखा ।

अथ स युवा पुरोमायिना यथादर्शनं प्रतिनिवृत्यातिविस्मितमनसां कथयतां पदातीनां सकाशादुपलभ्य दिव्याकृति तत्कन्यायुगलमुपजातकुतूहलः प्रतूर्णतुरगो दिदृक्षुस्तं लतामण्डपोद्देशमाजगाम। दूरादेव च तुरगादवततार। निवारितपरिजनश्च तेन द्वितीयेन साधुना सह चरणाभ्यामेव सविनयमुपससर्प। कृतोपसंग्रहणौ तौ सावित्री समं सरस्वत्या किसलयासनदानादिना सकुसुमफलार्घ्यावसानेन वनवासोचितेनातिथ्येन यथाक्रममुपजग्राह। आसीनयोश्च तयोरासीनं नातिचिरमिव स्थित्वा तं द्वितीयं प्रवयसमुद्दिश्यावादीत्—'आर्य, सहजलज्जाधनस्य प्रमदाजनस्य प्रथमाभिभाषणमशालीनता, विशेषतो वनमृगीमुग्धस्य कुलकुमारीजनस्य। केवलमियमालोकनकृतार्थायि चक्षुषे स्पृहयन्ती प्रेरयत्युदन्तश्रवणकुतूहलिनी श्रोत्रवृत्तिः। प्रथम-

अथेति। न तु गतागतिकतया सर्वचेतनाभिप्रायेण सौन्दर्यमेतयोरभिव्यज्यते। प्रतिनिवृत्य न पुनः प्रसक्त उपेत्य। कन्यकात्वादेतत्प्रानुचितम्। प्रतूर्णो वेगगामी। साधुना विनीतेन। 'उपसंग्रहणं धीराः कथयन्त्यभिवादनम्।' आतिथ्यमेवोपजग्राहापूजयत्। 'प्रवयाः स्यात्परिणतः' अशालीनता धृष्टता। वनशब्देन मृगी-

इसके बाद वह युवक, देख कर लौटे तथा विस्मित हुए पैदल सैनिकों से दिव्य आकृति वाली दो कन्याओं के सम्बन्ध में सुनते ही उत्सुकता से भर गया तथा (उन कन्याओं को) देखने की इच्छा से घोड़े को तेज कर लता मण्डप के समीप आ पहुँचा। (वह) दूर से ही घोड़े से उतर गया। अपने (अन्य) परिजनों को उसने रोक दिया तथा उस दूसरे सज्जन (अर्थात् बगल में चलने वाले अधेड़ पुरुष) के साथ पैदल ही नम्रतापूर्वक वहाँ गया। सावित्री ने सरस्वती के साथ उन दोनों पुरुषों का अभिवादन किया तथा उन्हें पल्लव का आसन देकर फूल, फल, अर्घ्य आदि वस्तुओं से क्रमशः (उनका) वनवास के योग्य अतिथि-सत्कार किया। उन दोनों के बैठ जाने पर (वह भी स्वयं) बैठ गई और उनमें से उस दूसरे अधेड़ पुरुष को लक्ष्य कर बोली—"आर्य! स्वभाव से ही लज्जाशील स्त्रीजन का पहले-पहल बोल बैठना शालीनता नहीं है; विशेषकर उसकी जो वन्य मृगी के समान मुग्ध कुलीन कुमारी है। केवल (आपके) दर्शन से कृतार्थ हुई आँखों के प्रति स्पृहा करती हुई कर्णेन्द्रिय की

दर्शने चोपायनमिवोपनयति सज्जनः प्रणयम् । अप्रगल्भमपि जनं प्रभवता प्रश्रयेणार्पितं मनो मध्विव वाचालयति । अयत्नेनैवातिनम्रे साधौ धनुषीव गुणः परां कोटिमारोपयति विस्रम्भः । जनयन्ति च विस्मयमतिधीरधियामप्यदृष्टपूर्वा दृश्यमाना जगति स्रष्टुः सृष्टयतिशयाः । यतस्त्रिभुवनाभिभावि रूपमिदमस्य महानुभावस्य । सौजन्यपरतन्त्रा चेयं देवानांप्रियस्यातिभद्रता कारयति कथां न तु युवतिजनसहोत्था तरलता । तत्कथयागमनेनापुण्यभाक्कतमो विजृम्भित-

---

सामान्येऽपि जनसंपर्काद्यभावमाह । उपायनं ढौकनिका । उपनयति ढौकयति । प्रगल्भमित्यादि । मनःकर्तृ अप्रगल्भमपि जनं वाचालयति । कीदृशम् ? प्रभवता स्वामिना प्रश्रयेण प्रत्यर्पितं दत्तमेवंविधमस्मदीयं युष्मासु मन इति बहिः प्रकाशितं यश्च परतश्च केनापि प्रभावशीलेन ढौकितं मध्वप्रगल्भमपि जनं कुलयोषित्प्रायं वाचालयति किंचन जल्पयति । अत्रापि प्रश्रयेणेति साभिप्रायम् । तथा च—'अन्यं यान्यवनितागतचित्तं चित्तनाथमभिशङ्कितवत्या । पीतभूरिसुरयापि न मोदे निर्वृतिर्हि मनसो मदहेतोः ॥' इत्युक्तम् । नम्रे प्रह्वे, कुब्जे च । गुणो विनयादिः, ज्या च । कोटिः प्रकर्षः, धनुःशिखा च । देवानांप्रियस्येति पूजावचनम् । षष्ठ्या अलुक् । अत्रागमनेत्यादिना ब्रह्मोक्तशापबुद्ध्या दधीचस्य तद्भर्तृयोग्यतया कतम इति ।

यह वृत्ति वृत्तान्त सुनने को उत्सुक होकर (मुझे बोलने के लिए) प्रेरित कर रही है । (अर्थात् आँखें तो आपको देख कर धन्य हो गई किन्तु कान आपका परिचयादि जानने को उत्सुक हैं । इसीलिए मुझे बोलना पड़ रहा है) । सज्जन पुरुष प्रथम साक्षात्कार में ही प्रणय को उपहार के रूप में समर्पित करता है । प्रभावशाली विनय से अर्पित किया गया मन मद्य के समान अप्रौढ़ व्यक्ति को भी वाचाल बना देता है । बिना प्रयास के ही अत्यन्त विनीत सज्जन पुरुष के प्रति विश्वास अधिक बढ़ जाता है, जिस प्रकार प्रत्यञ्चा विनम्र धनुष के कोने को प्राप्त हो जाती है । विधाता की दिखाई पड़ने वाली तथा पहले नहीं देखी गई उत्कृष्ट रचना अत्यन्त धीरबुद्धि वालों के भी आश्चर्य की सृष्टि करती है । क्योंकि इन महानुभाव का रूप तीनों लोकों को अभिभूत करने वाला है । देवानांप्रिय की यह सौजन्यपूर्ण अतिभद्रता ही मुझे भाषण के लिए प्रवृत्त कर

विरहव्यथः शून्यतां नीतो देशः ? क्व वा गन्तव्यम् ? को वायमपहृतहर-हुंकाराहंकारोऽपर इवानन्यजो युवा ? किंनाम्नो वा समृद्धतपसः पितुर-यममृतवर्षी कौस्तुभमणिरिव हृतेर्हृदयमाह्लादयति ? का चास्य त्रिभुवननमस्या विभातसंध्येव महतस्तेजसो जननी ? कानि वास्य पुण्यभाञ्जि भजन्त्यभिख्यामक्षराणि ? आर्यं परिज्ञानेऽप्ययमेव क्रमः कौतुकानुरोधिनो हृदयस्य' इत्युक्तवत्यां तस्यां प्रकटितश्रेयोऽसौ प्रतिव्याजहार—'आयुष्मति, सतां हि प्रियंवदना कुलविद्या। न केवलमाननं हृदयमपि च ते चन्द्रमयमिव सुधाशीकरशीतलैराह्लादयति वचोभिः। सौजन्यजन्मभूमयो भूयसा शुभेन सज्जननिर्माणशिल्पकला

देशोत्कर्षकुलादिकं पृच्छति। कस्येति। देवस्य। सिद्धा देवाः। अनन्यजः कामः। महतस्तेजस इति। महच्च तेजः सूर्याख्यम्। अभिख्या नाम। अयमेव क्रम इति। यथास्योत्पत्त्यादिकं तद्वद्भवतोऽपीत्यर्थः। कला उपायः। भूरिति रेफान्तो भुवानी।

रही है, युवति-सुलभ स्वाभाविक चञ्चलता नहीं। तो कहें कि कौन-सा वह पुण्यहीन देश है जो इनके विरह से उत्पन्न व्यथा से सूना हो चुका है ? कहाँ जाना है ? भगवान् शङ्कर के हुङ्कारजन्य गर्व को न मान कर उत्पन्न हुए दूसरे कामदेव के समान ये युवा पुरुष कौन है ? जिस प्रकार कौस्तुभमणि भगवान् विष्णु के हृदय को आह्लादित करती है उसी प्रकार किस समृद्ध तपस्या वाले पिता के हृदय को अमृत बरसाने वाले ये (युवा पुरुष) आह्लादित करते हैं। कौन इनकी माँ है जो महान् तेज को उत्पन्न करने वाली प्रातःकालीन सन्ध्या की भाँति तीनों लोकों के लिए प्रणम्य है। वे कौन-से पुण्यशाली अक्षर हैं जो इनके नाम के साथ जुड़ते हैं ? आर्य के विषय में जानने के लिए कुतूहल से युक्त इस हृदय का यही क्रम है।'' इस प्रकार सावित्री के कहने पर विनम्रता प्रकट करते हुए उस (अधेड़ पुरुष) ने उत्तर दिया—"हे आयुष्मति ! प्रिय बोलना सज्जनों की कुलविद्या है। न केवल तुम्हारा मुख ही अपितु तुम्हारा हृदय भी चन्द्रमय जैसा है क्योंकि वह अमृत-बिन्दुओं के समान शीतल वचनों से आह्लादित कर रहा है। बहुत पुण्य से सौजन्य के निर्माण की शिल्पकला

इव भावद्दृश्यो दृश्यन्ते। दूरे तावदन्योऽन्यस्याभिलपनमभिजातैः सह दृशोऽपि मिश्रीभूता महतीं भूमिमारोपयन्ति। श्रूयताम्—अयं खलु भूषणं भार्गववंशस्य भगवतो भूर्भुवःस्वस्त्रितयतिलकस्य, अदभ्रप्रभावस्तम्भितजम्भारिभुजस्तम्भस्य, सुरासुरमुकुटमणिशिलाशयनदुर्ललितपादपङ्केरुहस्य, निजतेजःप्रसरप्लुष्टपुलोम्नश्च्यवनस्य बहिर्वृत्तिजीवितं दधीचो नाम तनयः। जनयन्यस्य जितजगतोऽनेकपार्थिवसहस्रानुयातस्य शर्यातस्य सुता राजपुत्री त्रिभुवनकन्यारत्नं सुकन्या नाम। तां खलु देवीमन्तर्वत्नीं विदित्वा वैजनने मासि प्रसवाय पिता

भुव इति रेफान्तः पातालवाची। भूश्च भुवश्च स्वश्च भूर्भुवःस्वः, एषां त्रयमिति समासः। अदभ्रोऽनल्पः। जम्भारिरिन्द्रः। स ह्यश्विभ्यां यज्ञभागभुजौ कुर्वावामिति चिरं प्रार्थितः। तथेति प्रतिपद्य ताभ्यां भागं दददिन्द्रेणोद्यतवज्रेण रोषितः। ततस्तेनास्य सवज्रः स्तम्भितो भुज इति। दुर्ललितोऽलब्धविषयः। प्लुष्टपुलोम्न इति। अनवरतं रुदत्यां दुहितरि कोपान्मात्रा गृहाणेमामित पुलोम्नो राक्षसस्योक्तम्। ततस्तां प्रतिगृह्य तत्रैव स्थापयित्वा क्वापि गते रक्षसि सा भृगुणा विवाहिता। ततः सगर्भा सती पुलोम्नागत्यापह्रियमाणतया च्यवनं गर्भमत्याक्षीत्। तेन चान्वर्थंनाम्ना तद्रक्षो दृष्ट्वैवादह्यत। अन्तर्वत्नी गर्भिणीम्। वैजनने मासि प्रसवमासे।

के समान आप-जैसे सौजन्य के निवास-स्थान-भूत लोग दिखाई पड़ते हैं। पारस्परिक सम्भाषण की बात तो दूर रही, कुलीनों के साथ मिश्रित होने वाले नेत्र ही परम उत्कर्ष को प्राप्त करा देते हैं (अर्थात् सज्जनों से आँखें मिलाते ही व्यक्ति धन्य हो जाता है।) सुना जाय—यह भार्गववंश का भूषण है। भूः भुवः एवं स्वः—इन तीनों लोकों के तिलकभूत, अनल्प प्रभाव से इन्द्र के बाहुस्तम्भ को अवरुद्ध करने वाले, देवताओं एवं दानवों के मुकुटमणिरूप प्रस्तर-खण्डों पर शयन करने के शौकीन चरणकमल वाले, अपने तेज के प्रभाव से (इन्द्रपत्नी शची के पिता) पुलोमा का विनाश करने वाले, भगवान् च्यवन ऋषि का बहिश्चर प्राणरूप दधीच नामक पुत्र है। अनेक हजार राजाओं द्वारा अनुगत तथा संसार पर विजय प्राप्त करने वाले राजा शर्यात की राजकुमारी पुत्री, जो तीनों लोकों की कन्याओं में रत्न के समान है तथा जिसका नाम सुकन्या है; वही इनकी माता है। उस देवी (सुकन्या) को गर्भवती जानकर

पत्युः पार्श्वात्स्वगृहमानाययत। असूत च सा तत्र देवी दीर्घायुषमेनम्। अवर्धतानेहसा च तत्रैवायमानन्दितज्ञातिवर्गो बालस्तारकराज इव राजीवलोचनो राजगृहे। भर्तृभवनमागच्छन्त्यामपि दुहितरि नासेचनकदर्शनमिममनुमुञ्चन्मातामहो मनोविनोदनं नप्तारम्। अशिक्षतायं तत्रैव, सर्वा विद्याः सकलाश्च कलाः। कालेन चोपारूढयौवनमिममालोक्याहमिवासावप्यनुभवतु मुखकमलावलोकनानन्दमस्येति मातामहः कथंकथमप्येनं पितुरन्तिकमधुना व्यसर्जयत्। मामपि तस्यैव देवस्य सगृहीतनाम्नः शर्यातस्याज्ञाकारिणं विकुक्षिनामानं भृत्यपरमाणुमवधारयतु भवती। पितुः पादमूलमायान्तं मया साभिसारमकरोत्स्वामी। तद्धि नः कुलक्रमागतं राजकुलम्। उत्तमानां च चिरंतनता जनयत्यनुजीविष्वपि जने कियन्मात्रमपि मन्दाक्षम्। अक्षीणः खलु दाक्षिण्यकोशो महताम्। एतच्च गव्यूतिमात्रमिव

दीर्घायुषमिति साभिप्रायम्। कल्पकल्पायुत्कर्षं वर्णिते अनन्तदेव नरगुणवर्णनमवशिष्यते। अनेहसा परिपूर्णेन कालेन। 'न जायते यत्र तृप्तिस्तदासेचनकं विदुः'। नप्तारं पौत्रम्। साभिसारं ससहायम्। मन्दाक्षमपत्रपम्। गव्यूतिः क्रोशद्वयम्।

उसके पिता (राजा शर्यात) प्रसवमास में प्रसव के लिए पति के पास से अपने घर ले आये। वहीं उस देवी ने इस दीर्घजीवी (दधीच) को जन्म दिया। अपने बन्धुवर्ग को आनन्दित करने वाला तथा कमल-सदृश नेत्रों वाला यह बालक चन्द्रमा के समान (धीरे-धीरे) राजा (अर्थात् अपने नाना) के घर में समय के साथ बढ़ा (अर्थात् बड़ा हुआ)। पुत्री के अपने पति के घर जाने के समय भी नाना ने नेत्रों को तृप्त करने वाले तथा मन को बहलाने वाले (अपने इस) नाती को नहीं छोड़ा (अर्थात् इसे अपने पास ही रख लिया)। समय पाकर जवानी को प्राप्त हुए इस (नाती) को देख कर "मेरी तरह ही इसके पिता भी इसके मुख-कमल के अवलोकनजन्य आनन्द को प्राप्त करें" यह सोच कर किसी प्रकार (अर्थात् बहुत कठिनाई से) इनके नाना ने इन्हें सम्प्रति इनके पिता के पास भेजने के लिए छोड़ा है। मुझे भी उन्हीं सुगृहीत नामा राजा शर्यात का विकुक्षि नामक एक आज्ञाकारी मामूली सेवक आप समझें। पिता के पास जाते हुए इसके साथ-साथ जाने के लिए मालिक ने मुझे

पारेशोणं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मितव्यपदेशं च्यावनं नाम चैत्ररथकल्पं काननं निवासः। तदवधिरेवेयं नौ यात्रा। यदि च वो गृहीतक्षणं दाक्षिण्यमनवहेलं वा हृदयमस्माकमुपरि भूमिर्वा प्रसादानामयं जनः श्रवणार्हो वा, ततो न विमाननीयोऽयं नः प्रथमः प्रणयः कुतूहलस्य। वयमपि शुश्रूषवो वृत्तान्तमायुष्मत्योः। नेयमाकृतिर्दिव्यतां व्यभिचरति। गोत्रनामनी तु श्रोतुमभिलषति नौ हृदयम्। तत्कथय कतमो वंशः स्पृहणीयतां जन्मना नीतः। का चेयमत्रभवती भवत्याः समीपे समवाय इव विरोधिनां पदार्थानाम्। तथा हि, सन्निहितबालान्धकारा भास्वन्मूर्तिश्च, पुण्डरीकमुखी हरिण-

---

यात्रा प्रस्थानम्। गोत्रं वंशः। समवाय एकत्रस्थितिः। बालेषु केशेष्वन्धकारं तम इति यस्या बालं प्रत्यग्रम्। भास्वती मूर्तिमती, भास्वत आदित्यस्य च मूर्तिः। न कदाचित्सन्निहितबालान्धकारा भवतीति विरोधः। पुण्डरीकं पद्मम्, सिंहश्च

लगा दिया है। इस प्रकार वह राजवंश मेरी वंशपरम्परा द्वारा सेवित है। (सम्बन्ध की) प्राचीनता के कारण श्रेष्ठ व्यक्ति अपने सेवकों के प्रति कुछ-कुछ लज्जायुक्त होते हैं। महान् लोगों की उदारता का खजाना क्षीण नहीं होता। यहाँ से दो कोस की दूरी पर सोन के उस पार उन भगवान् च्यवन ऋषि का अपने ही नाम का निवास स्थान (च्यवनाश्रम) है, जो कुबेर के उद्यान की भाँति ही उद्यान है। हम दोनों की यात्रा वहीं तक है। यदि समय हो, अनुकूलता हो, (आपके) हृदय में (हमारे प्रति) अवज्ञान हो या यह व्यक्ति (अर्थात् हम) यदि (आपकी) कृपा को प्राप्त करने के योग्य हों तथा यदि सुनने योग्य हों तो हमारी उत्सुकता की इस प्रथम प्रार्थना की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। हम भी आप दोनों के वृत्तान्त को सुनने के इच्छुक हैं। यह (आप दोनों की) आकृति दैवी लगती है। हमारा हृदय आपके गोत्र एवं नाम को सुनने की अभिलाषा रखता है। तो कहिए, किस वंश को (आपने अपने) जन्म से स्पृहणीय बनाया है? आपके समीप परस्पर विरोधी पदार्थों के समूह के समान ये दूसरी (युवती) कौन है?" जैसा कि—ये (केशरूपी) नवीन अन्धकार से युक्त हैं (फिर भी) देदीप्यमान मूर्त्ति हैं। पुण्डरीक (व्याघ्र

लोचना च, बालातपप्रभाधारा कुमुदहासिनी च, कलहंसस्वना समुन्नतपयोधरा च, कमलकोमलकरा हिमगिरिशिलापृथुनितम्बा च, करभोरुर्विलम्बितगमना च, अमुक्तकुमारभावा स्निग्धतारका च' इति ।

सा त्ववादीत्—'आर्य, श्रोष्यसि कालेन । भयसो दिवसानत्र

यस्या मुखं तत्र कथं हरिणस्य लोचने स्त इति विरोधः । पयोधरौ स्तनौ, मेघाश्च पयोधराः । कलहंसानां स्वनो यस्यां सा । सरित्कथं प्रावृड् भवतीति विरोधः । करो हस्तः, रश्मिश्च । शिला वातवज्रीभूतं हिमम् । यत्र च हिमगिरिशिलाभिः पृथुर्मध्यभागस्तत्र कथं पद्मकोमलकान्तिः । हिमस्पर्शे पद्मनाशात् । 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' करभश्चोष्ट्रः । विलम्बितं सविलासम्, लम्बितश्च करभो यस्याः । करभोरुः कथं विगतकरभगमनेति विरोधः । कुमारभावो बाल्यम्, कुमारे च भावो भक्तिः । स्निग्धो रम्यः, प्रतीतश्च । तारकाख्याः कनीनिका, दैत्यभेदश्च तारकः स्कन्देन यो हतः ।

या उज्ज्वल कमल) के सदृश मुख वाली हैं (फिर भी) हरिण के सदृश नेत्र धारण कर रही हैं । बालसूर्य (अर्थात् उगते हुए सूर्य) की चमक के समान इनका अधर है, (फिर भी) कुमुद के समान इनकी हँसी है । कलहंस के सदृश इनकी आवाज है, (फिर भी) ऊँचे पयोधरों (स्तनों या मेघों) से युक्त हैं । कमल के समान कोमल हाथ वाली हैं (फिर भी) हिमालय की चट्टान के समान मोटे नितम्ब वाली है । कुमारभाव (बचपन या कार्तिकेय का भाव) इन्होंने नहीं छोड़ा है (फिर भी) उनकी आँखों के तारक (पुतलियाँ या तारकासुर) स्नेहयुक्त हैं ।''

वह (सावित्री) बोली—"आर्य समय पाकर सब जान लेंगे । हम दोनों

१. प्रस्तुत प्रसङ्ग में कवि ने व्यङ्ग्य विरोधाभास का प्रयोग किया है । तात्पर्य यह है कि जब बाल अन्धकार समीप में रहे तो सूर्य की मूर्ति कैसे हो सकती है ? जब मुख में पुण्डरीक (व्याघ्र) है तो हरिण भला कैसे रह सकता है ? आतप है तो कुमुद का हास कहाँ सम्भव है ? पयोधर (मेघ) के उमड़ने पर जब कि कलहंस मानसरोवर को चले जाते हैं तो फिर उनका शब्द कैसे सुनाई पड़ सकता है । हिमशिखा के पास कमल नहीं खिलते ।

स्थातुमभिलषति नो हृदयम्। अल्पीयांश्चायमध्वा। परिचय एव प्रकटीकरिष्यति। आर्येण न विस्मरणीयोऽयमनुषङ्गदृष्टो जनः' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्। दधीचस्तु नवाम्भोभरगभीराम्भोधरध्वाननिभया भारत्या नर्तयन्वनलताभवनभाजो भुजंगभुजः सुधीरमुवाच—'आर्ये, करिष्यति प्रसादमार्याराध्यमाना। पश्यामस्तावत्तातम्। उत्तिष्ठ। व्रजामः' इति। तथेति च तेनाभ्यनुज्ञातः शनकैरुत्थाय कृतनमस्कृतिरुच्चचाल। तुरगारूढं च तं प्रयान्तं सरस्वती सुचिरमुत्तम्भितपक्ष्मणा निश्चलतारकेण लिखितेनेव चक्षुषा व्यलोकयत्। उत्तीर्य च शोणमचिरेणैव कालेन दधीचः पितुराश्रमपदं जगाम। गते च तस्मिन्सा तामेव दिशमालोकयन्ती सुचिरमतिष्ठत्। कृच्छ्रादिव च संजहार दृशम्।

परिचयः संस्तवः। अनुषङ्गः प्रसङ्गः। विकुक्षिप्रार्थितयापि सावित्र्या कौतुकनिवृत्तिर्मा भूदित्यात्मस्वरूपं नोक्तम्। अत एवोत्तरत्र तदनुबन्ध एवोक्तः—भूयसो दिवसानित्यादिना। स्वरूपोक्तौ च ज्ञातसरस्वतीकत्वेनापत्यजननकार्यभङ्गो भवेत्। भारती वाक्। भुजङ्गभुजो मयूरान्, भुजग इव भुजावस्येति च। उच्चचाल गन्तुं प्रवृत्तः। उत्तम्भितान्युत्क्षिप्तानि।

का हृदय यहाँ बहुत दिनों तक ठहरने का अभिलाषी है। (आपके निवास स्थान का) यह रास्ता बहुत थोड़ा है। परिचय ही (सारी बातें) खोल देगा। इस बहाने मिले हुए इस जन को आर्य न भूलेंगे" यह कह कर वह चुप हो गई। जल भर जाने के कारण भारी आवाज याने नवीन मेघों के समान लता-भवन के मयूरों को नचाते हुए धीर स्वर में दधीच बोला—"आर्ये! आराधना करने पर आर्या अनुग्रह करेंगी ही। तब तक हम लोग पिता जी के दर्शन कर लें। उठो, चलते हैं।" पार्श्वचर के द्वारा "वैसा ही" कहने पर धीरे से उठ कर तथा नमस्कार करके (दधीच) चल पड़ा। घोड़े पर चढ़ कर जाते हुए उस दधीच को सरस्वती बहुत देर तक निर्निमेष दृष्टि से चित्रलिखित-सी देखती रही। सोन को पार कर शीघ्र ही दधीच पिता के आश्रम में पहुँच गया। उस (दधीच) के चले जाने पर भी वह (सरस्वती) उसी दिशा की ओर देर तक देखती रही। बड़ी कठिनाई से वह अपनी दृष्टि को मोड़ सकी।

अथ मुहूर्तमात्रमिव स्थित्वा स्मृत्वा च तां तस्य रूपसंपदं पुनःपुनर्व्यस्मयताऽस्या हृदयम्। भूयोऽपि चक्षुराकाङ्क्ष तद्दर्शनम्। अवशेव केनाप्यनीयत तामेव दिशं दृष्टिः। अप्रहितमपि मनस्तेनैव सार्धमगात्। अजायत च नवपल्लव इव बालवनलतायाः कुतोऽप्यस्या अनुरागश्चेतसि। ततः प्रभृति च सालस्येव शून्येव सनिद्रेव दिवसमनयत्। अस्तमुपयाति च प्रत्यक्पर्यस्तमण्डले लाङ्गलिकास्तबकताम्रत्विषि कमलिनीकामुके कठोरसारसशिरःशोणशोचिषि सावित्रे त्रयीमये तेजसि, तरुणतरतमालश्यामले च मलिनयति व्योम व्योम-

कुतोऽपि कस्मादपि न ज्ञायत इत्यर्थः। मनुष्यतस्तथाविधस्ताहृश्या कथमनुराग इति। कथमेतदस्या उपपद्यत इति न वाच्यम्। यदाह मुनिः—'शापभ्रंशात्तु दिव्यानां तथा चापत्यलिप्सया। कार्यो मानुषसंयोगः शृङ्गाररससंश्रयः॥' इति। अन्यत्र—कुतः क्षितेर्नवपल्लवोऽनुरागहसो लतायां जायत इत्येवमभिलापरूपं प्रथमं दशान्तरमालस्येत्यादिना द्वितीयचिन्तनरूपमाह। अनयत् अष्टैनात्यवाहयत्। अस्तमित्यादौ पल्लवशयने तस्याविति संबन्धः। प्रतीच्यां पश्चिमायाम्। लाङ्गलिका फलिनी। मयूरशिखीपर्णीरित्यपरे, रक्तकेत्यन्ये। कमलिनीकामुक इति सरस्वतीदयिताभिप्रायेणोक्तम्। कठोरो जरठः। सारसो लक्ष्मणः। शोणो लोहितः। शोचिर्दीप्तिः। 'ऋग्यजुःसामनामानि त्रयो वेदास्त्रयी स्मृता। वेदे च पठ्यते सैषा'।

इसके बाद कुछ देर तक उस (दधीच) की सौन्दर्य-सम्पत्ति का स्मरण करने के कारण उस (सरस्वती) का हृदय बार-बार आश्चर्य से भरने लगा। बार-बार उसके नेत्र दधीच के दर्शनों के लिए इच्छुक होने लगे। मानों उसकी विवश दृष्टि को कोई उसी दिशा की ओर फेर लेता था। बिना भेजा हुआ भी मन मानों उसी (दधीच) के साथ चला गया हो। उसके हृदय में किसी कारणवश (दधीच के प्रति) नवीन लता के पल्लव के समान अनुराग उत्पन्न हो गया, तभी से अलसाई-सी सूनी-सी एवं निद्रित-सी उसने दिन को बिताया। लाङ्गलिका नामक फूलों के गुच्छों के समान ताम्बे जैसी कान्ति वाले, कमलिनियों को चाहने वाले, वृद्ध सारस के मस्तक के समान लाल कान्ति वाले, सूर्य के वेदमय तेज के अस्ताचल की ओर जाने पर तरुण तमाल वृक्ष के समान श्याम

व्यापिनि तिमिरसंचये संचरत्सिद्धसुन्दरीनूपुररवानुसारिणि च मन्दं मन्दं मन्दाकिनीहंस इव समुत्सर्पति शशिनि गगनतलम् कृत-संध्याप्रणामा निशामुख एव निपत्य विमुक्ताङ्गी पल्लवशयने तस्थौ। सावित्र्यपि कृत्वा यथाक्रियमाणं सायंतन क्रियाकलापमुचिते शयन-काले किसलयशयनमभजत जातनिद्रा च सुष्वाप।

इतरा तु मुहुर्मुहुरङ्गवलनैर्विलुलिताकिसलयशयनतला निमीलित-नयनापि नालभत निद्राम्। आचिन्तयच्च—'मर्त्यलोकः खलु सर्व-लोकानामुपरि, यस्मिन्नेवंविधानि भवति त्रिभुवनभूषणानि सकलगुण-

---

त्र्य्येव विद्या तपतीति। 'कृत—' इत्यादिना 'तस्थौ' इत्यन्तेन क्रियान्तरत्यागेन वैमनस्यमावेद्यते। 'वेपते श्वसते चैव मनोरथविचिन्तनैः। प्रद्वेषेणान्यकार्याणामनु-स्मृतिरपीष्यते॥' निशामुख एवेति। न पुनरुचिते शयनकाले विमुक्ताङ्गीत्यनेन निःसहाङ्गत्वमस्या दर्श्यते। तस्थाविति। न पुनर्निद्रामलभत। यथाक्रियमाणमित्य-नेन च सरस्वतीतोऽस्या व्यतिरेकं दर्शयन्सरस्वत्या एवानङ्गावस्थामाह।

विलुलितं विपर्यासितम्। मर्त्यलोक इत्यादिना गुणकीर्तनम्। चतुर्थमवस्था-विशेषमाह। तदुक्तम्—'अङ्गप्रत्यङ्गलीलाभिर्वाक्चेष्टासहितेक्षणैः। नास्त्यन्यः सदृ-शस्तेन तदेतद्गुणकीर्तनम्॥' इति। गुणा वैदग्ध्यादयः, सूत्राणि च। तद्दर्शने गुरूणि बहुमानभाञ्जि इतरत्र तु तिष्ठतु तावदेकः। गुणग्रामस्यापि गुणिरूपित-

---

वर्ण तथा आकाश को व्याप्त करने वाले अन्धकार-समूह से आकाश के मलिन हो जाने पर, सञ्चरण करने वाली सिद्ध-सुन्दरियों के नूपुरों की आवाज के पीछे-पीछे चलने वाले मन्दाकिनी के हंस के समान स्थित चन्द्रमा के आकाश में उदित होने पर, सन्ध्यावन्दन सम्पादित कर प्रदोषकाल में ही सरस्वती (अपने) अङ्गों की सुध-बुध खोकर पल्लवों की सेज पर पड़ गई। सावित्री भी यथायोग्य सायङ्कृत्य सम्पादित करके सोने के समय पल्लवों की शय्या पर पहुँची और नींद आते ही सो गई।

(परन्तु) बार-बार करवटें बदलने के कारण पल्लव की शय्या को मसलने वाली दूसरी (सरस्वती) आँखें मूँद लेने पर भी नहीं सो पाई। (वह) सोचने लगी—"वस्तुतः मनुष्यलोक सब लोकों से ,बढ़ा-चढ़ा-सा है जहाँ तीनों लोकों के

ग्रामगुरूणि रत्नानि । तथा हि—तस्य मुखलावण्यप्रवाहस्य निष्यन्द-बिन्दुरिन्दुः । तस्य च चक्षुषो विक्षेपाः कुमुदकुवलयकमलाकाराः । तस्य चाधरमणेर्दीधितयो विकसितबन्धूकवनराजयः । तस्य चाङ्गस्य परभागोपकरणमनङ्गः । पुण्यभाञ्जि तानि चक्षूंषि चेतांसि यौवनानि वा स्त्रैणानि, येषामसावविषयो दर्शनस्य । क्षणं नु दर्शयता च तमन्यजन्मनितेनेव मे फलितमधर्मेण । का प्रतिपत्तिरिदानीम् ?' इति चिन्तयन्त्येव कथंकथमप्युपजातनिद्रा चिरात्क्षणमशेत । सुप्तापि च तमेव दीर्घलोचनं ददर्श । स्वप्नासादितद्वितीयदर्शना चाकर्णाकृष्टकार्मुकेण मनसि निर्दयमताड्यत मकरकेतुना । प्रतिबुद्धाया

नापि दुर्वहानीति यावत् । तस्येति । पूर्वानुभूतस्य बिन्दुरिति न केवलं लावण्यप्रवाहाभिप्रायेण यावत्संनिवेशसादृश्यात् । विक्षेपाः परतः प्रेरणानि । कुमुदेत्याद्युक्तम् शुक्लकृष्णरक्तरुचित्वाच्चक्षुषो दीधितय इति मणिशब्दाभिप्रायेण । विकसितशब्देन लौहित्यातिशयमाह । अङ्गानि विद्यन्ते यस्य तदङ्गं शरीरम् । परभागो वर्ण्यस्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः । स्त्रैणानि स्त्रीसंबन्धीनि । का प्रतिपत्तिः किमनुष्ठेयम् ? मदन—इत्यादिनोद्वेगरूपं पञ्चममवस्थाभेदमाह । यदुक्तम्—'आसने शयने वापि न हृष्यति न तुष्यति । नित्यमेवोत्सुका च स्यादुद्वेगस्थानमाश्रिता ॥ चिन्तानिःश्वास-

---

अलङ्करण स्वरूप तथा सम्पूर्ण गुणों के गौरव से भरे हुए रत्न पड़े हैं । जैसा कि—चन्द्रमा उसके लावण्य-प्रवाह की चुई हुई एक बूंद ही तो है । उसकी आँखों के विक्षेप ही तो उजले काले एवं लाल कमलों की आकृतियाँ हैं । उसके अधर रूपी मणि की कान्ति ही तो खिले हुए बन्धूक पुष्पों की वनपंक्ति है । कामदेव उसके अङ्ग के शोभातिशय का साधन है । उन्हीं स्त्रियों के नेत्र, हृदय तथा यौवन पुण्यशाली हैं जिन्होंने इसके दर्शन किये हैं । मेरे पूर्वजन्म का यह पाप ही मानों फलित हो गया जो मात्र क्षण भर के लिए मुझे इसके दर्शन हुए । अब क्या करूँ ?" इस प्रकार सरस्वती को किसी-किसी प्रकार बहुत देर बाद नींद आ गई और क्षण भर वह सोई रही । सोने पर भी उसने उसी दीर्घलोचन (दधीच) को देखा । स्वप्न में उसके पुनर्दर्शन पाकर उसे ऐसा लगा मानों कान तक धनुष को खींचकर कामदेव ने निर्दयतापूर्वक उसके हृदय पर (बाणों से) प्रहार किया हो । कामदेव के बाणों से आहत हुई सरस्वती के जागने पर

मदनशराहतायाश्च तस्या वार्तामिवोपलब्धुमरतिराजगाम। तथा हि—ततः प्रभृति कुसुमधूलिधवलाभिर्वनलताभिस्ताडितापि वेदनामधत्त। मन्दमन्दमारुतविधुतैः कुसुमरजोभिरदूषितलोचनाप्यश्रुजलं मुमोच। हंसपक्षतालवृन्तवातव्रातवितत्तैः शोणशीकरैरसिक्ताप्यार्द्रतामगात्। प्रेङ्खत्कादम्बमिथुनाभिरनूढाप्यघूर्णत वनकमलिनीकल्लोलदोलाभिः। विघटमानचक्रवाकयुगलविसृष्टैरस्पृष्टापि श्यामतामाससाद विरहनिःश्वासधूमैः। पुष्पधूलिधूसरैरदष्टापि व्यचेष्टत मधुकरकुलैः।

खेदेन हृद्दाहाभिनयेन च। कुर्यात्तदेवमत्यन्तमुद्योगाभिनयेन च ॥' इति। दश किल कामावस्थाः। तदुक्तम्—'प्रथमे त्वभिलाषः स्याद् द्वितीये चिन्तनं भवेत्। अनुस्मृतिस्तृतीये तु चतुर्थं गुणकीर्तनम् ॥ उद्वेगः पञ्चमे प्रोक्तः प्रलापः षष्ठ उच्यते। उन्मादः सप्तमे चैव भवेद्व्याधिस्तथाष्टमे ॥ नवमे जडता प्रोक्ता दशमे मरणं भवेत् ॥ इति। अरतिर्दुःखासिका हि कामवधूप्रतिपक्षभूतेति तदागमनाभिधानम्। हंसपक्षा इव तालवृन्तं व्यजनम्। आर्द्रतां सस्नेहताम्, क्लिन्नतां च। प्रेङ्खद्दोलायमानम्। कादम्बाः कृष्णहंसाः। श्यामता शृङ्गाररसाविष्कारिवैवर्ण्यम्। यदुक्तम्—'शृङ्गारदेवो भगवान्मुरारिः संगीयते श्यामवपुर्मुरारिः। श्यामो मनाक्स्निग्धतरश्च तेन शृङ्गारशंसी मुखराग उक्तः ॥' अथ श्यामता सधूमता। श्यामत्वेऽपि सधूमता इति विरोधाभासः।

मानों कुशलवार्ता पूछने के लिए वैराग्य आ गया। तब से वह फूलों के पराग से उज्ज्वल वर्णवाली वनलताओं द्वारा ताडित न होने पर भी पीडा का अनुभव करने लगी। धीरे-धीरे बहने वाली हवा से कम्पित होने वाले फूलों की धूलि उसके नेत्रों में न पड़ती तो भी वह आँसू बहाती। हंसों के पङ्ख रूपी व्यजनों से उड़ायी गयी शोणनद की जलबिन्दुओं द्वारा सिक्त न होने पर भी (पसीने से) गीली होने लगी। कलहंसों के जोड़ों से युक्त वन की कमलिनी रूपी दोलाओं पर आरूढ न होने पर भी काँपने लगी। वियुक्त हुए चकवों के जोड़ों द्वारा छोड़े गये वियोगजन्य निःश्वासरूपी धुएँ से स्पृष्ट न होती हुई भी साँवलेपन को प्राप्त करने लगी। फूलों की धूलि से धूसरित भौंरों द्वारा न काटे जाने पर भी वह बेचैन होने लगी।

अथ गणरात्रापगमे निवर्तमानस्तेनैव वर्त्मना तं देशं समागत्य तथैव निवारितपरिजनश्छत्रधारद्वितीयो विकुक्षिर्ढौके। सरस्वती तु तं दूरादेव संमुखमासच्छन्तं प्रीत्या ससंभ्रममुत्थाय वनमृगीवोद्ग्रीवा विलोकयन्ती मार्गपरिश्रान्तमस्नपयदिव धवलितदशदिशा दृशा। कृतासनपरिग्रहं तु तं प्रीत्या सावित्री पप्रच्छ—'आर्य, कच्चित् कुशली कुमारः?' इति। सोऽब्रवीत्—'आयुष्मति, कुशली। स्मरति च भवत्योः। केवलममीषु दिवसेषु तनीयसीमिव तनु बिभर्ति। अविज्ञायमाननिमित्तां च शून्यतामिवाधत्ते। अपि च। वन्वक्षमागमिष्यत्येव मालतीति नाम्ना वाणिनी वार्तां वो विज्ञातुम्। उच्छ्वासित हि सा

गणरात्रं निशाबहुत्वम्। तेनैव वर्त्मनेति। अनेन तस्य यदृच्छया तत्राश्रयमागमनमिति दर्शयति। प्रधानप्रकृतेः स्थवीयसस्तथाविधव्यापारविनियोगानौचित्यात्। अत एव वक्ष्यति—'यथाभिलषितं देशमयासीत्'। ढौके इत्यनेन निमित्तपरतन्त्रतया संनिकृष्टमेवैनमालुलोकेति प्रदर्शितम्। यदुक्तम्—'पटुता धाष्ट्यंता इङ्गिताकारज्ञानं प्रतारणं देशकालज्ञता कार्येषु विपक्षबुद्धित्वं लब्धा प्रतिपत्तिः सापाया च इति दूतीगुणाः'। भरतमुनिरपि—'विज्ञानगुणसंपन्ना कथिनी लिङ्गिनी तथा। रङ्गोपजीविना चापि प्रतिपत्तिविचक्षणा॥ प्रोत्साहनैककुशलेत्यादिदूतीगुणैर्युता॥' इति। अत एवागृह्णाच्चाकारतः प्रभृतीत्यादि वक्ष्यते। अन्वक्षं प्रत्यक्षम्। वाणिनी

इस प्रकार कई रातों के बीत जाने पर उसी मार्ग से लौटता हुआ विकुक्षि अपने सेवकों को बाहर रोक कर छत्रधारी पुरुष के साथ वहाँ पहुँचा। सरस्वती ने दूर से ही सम्मुख आते हुए उसे प्रेम से देखा, घबड़ा कर उठ खड़ी हुई तथा वन की हिरनी के समान गर्दन उठा कर उसे इस प्रकार देखने लगी मानों मार्ग में (चलते रहने के कारण) थके हुए विकुक्षि को दिशाओं को धवलित करने वाली दृष्टि से स्नान करा रही हो। (विकुक्षि के) आसन पर बैठ जाने के बाद सावित्री ने उससे प्रेमपूर्वक पूछा—"आर्य! कुमार (दधीच) सकुशल तो हैं?" वह बोला—"आयुष्मति! (वह) सकुशल है। आप दोनों का स्मरण करता है। केवल इन दिनों उसका शरीर दुबला होता जा रहा है। किस कारण से वह (इन दिनों) सूना-सूना-सा रहता है, वह ज्ञात नहीं है। और भी, आप लोगों का समाचार जानने के लिए मालती नाम की दूती (आप लोगों के) समक्ष

कुमारस्य' इति। तच्छ्रुत्वा पुनरपि। सावित्री समभाषत—'अतिमहानुभावः खलु कुमारो येनैवनमविज्ञायमाने क्षणदृष्टेऽपि जने परिचितिमनुबध्नाति। तस्य हि गच्छतो यदृच्छया कथमप्यंशुकमिव मार्गलतासु मानसमस्मासु मुहूर्तमासक्तमासीत्। अशून्यं हि सौजन्यमाभिजात्येन वः स्वामिसूनोः। अलसः खलु लोको यदेवं सुलभसौहार्दानि येन केनचिन्न क्रीणाति महतां मनांसि। सोऽयमौदार्यातिशयः कोऽपि महात्मनामितरजनदुर्लभो येनोपकरणीकुर्वन्ति त्रिभुवनम्' इति। विकुक्षिस्तूच्चावचैरालापैः सुचिरमिव स्थित्वा यथाभिलषितं देशमयासीत्।

अपरेद्युरुद्यति भगवति द्युमणावुद्दामद्युतावभिद्रुततारके तिरस्कृत-

---

दूती। उच्छ्वसितमित्यनेनातिविस्रम्भवत्ता ख्याता। उच्छ्वसितं प्राण इति वा। यदृच्छया यथाकथञ्चित्। यश्च तथा गच्छति यस्य निरवधानतया क्वचिदंशुकामि गलति। अभिजात्येन महाकुलीनत्वेनोपकरणीकुर्वन्त्यायततां नयन्ति। उच्चावचैः प्रकृतवस्त्वसंस्पर्शिभिः, विचित्रैरिति वा।

अपरेद्युरित्यादावीदृशी मालती समदृश्यतेति संबन्धः। दिवि मणिरिव द्युमणिः।

आयेगी। वह कुमार की साँस (अर्थात् अत्यधिक विश्वासपात्र) ही है।" यह सुनकर फिर सावित्री बोली—"कुमार निश्चय ही बड़े महानुभाव हैं जो अजनबी तथा क्षण भर के लिए दिखाई पड़े व्यक्ति के साथ भी परिचय-सम्बन्ध जोड़ रहे हैं। (पितृगृह को) जाते हुए उन (कुमार दधीच) का मन मार्ग की लताओं में फँसे हुए वस्त्र के समान हम लोगों में उलझ गया है। आपके स्वामि-पुत्र (दधीच) में कुलीनता के साथ-साथ सज्जनता भी है। वह व्यक्ति निश्चय ही आलसी है जो महान् लोगों के आसानी से प्राप्त होने वाले सौहार्द से युक्त मन को जिस किसी चीज से नहीं खरीद लेता। दूसरे व्यक्तियों में नहीं पाई जाने वाली यह महात्माओं की अत्यधिक उदारता ही है जिससे वे तीनों लोकों को अपने वश में कर लेते हैं। इस प्रकार विकुक्षि बहुत देर तक तरह-तरह की बातें करके अपने अभीष्ट देश को चला गया।

अगले दिन, आकाश के रत्न, प्रखर कान्तिवाले, तारों को भगा देने और

तमसि तामरसव्यासव्यसनिनि सहस्ररश्मौ शोणमुत्तीर्यायान्ती, तरलदेहप्रभावितानच्छलेनात्यच्छं सकलं शोणसलिलमिवानयन्ती, स्फुटितातिमुक्तककुसुमस्तबकसदृशत्विषि सटाले महति मृगपताविव गौरी तुरंगमे स्थिता, सलीलमुरोबन्धारोपितस्य तिर्यग्वृत्तकर्णतुरगाकर्ण्यमाननूपुरक्वणितस्यातिबहलेन पिण्डालक्तकेन पल्लवितस्य कुङ्कुमपिञ्जरितपृष्ठस्य चरणयुगलस्य प्रसरद्भिरतिलोहितैः प्रभाप्रवाहैरुभयतस्ताडनदोहदलोभागतानि किसलयितानि रक्ताशोकवनानीवाकर्षयन्ती, सकलजीवलोकहृदयहठहरणाघोषणयेव रशनया शिञ्जानजघनस्थला, धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेणाप्रपदीनेन कञ्चुकेन तिरोहित-

वियद्भूषणं सूर्यः । आविष्कृता न्यक्कृता । तामरसं रक्तम् । व्यासो विकासः । अतिमुक्तकं पुष्पभेदः । केचिन्माधवीलताकुसुममाहुः । सटास्ति यस्येति । 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' । गौरी गौराङ्गी, पार्वती च । सालम्बमुपरि स्थापितं चरणं हीपर्ययोरावन्धेत्याद्युक्तम् । प्रियमधुरशब्दत्वादश्वानामाकर्ण्यमानेत्युक्तम् । पिण्डालक्तकः क्वथितोऽलक्तकरसः । दोहदोऽभिलाषः । बाधाविशेषानुगता घोषणा । रशना मेखला । शिञ्जानं शब्दायमानम् । निर्मोकः सर्पत्वक् । आप्रपदं प्राप्नोत्याप्रपदीनः,

अन्धकार की अवहेलना करने वाले तथा कमलों को विकसित करने के शौकीन भगवान् सूर्य के उदित होने पर सोन को पार करके आती हुई, चञ्चल शरीर की चमक के विस्तार रूपी बहाने से सम्पूर्ण शोण-जल को स्वच्छ बना कर मानों लाती हुई, खिले हुए अतिमुक्तक (मालती) फूलों के गुच्छों के सदृश कान्तिवाले घोड़े पर जटाओं से युक्त सिंह पर विराजमान पार्वती के समान बैठी हुई, विलासपूर्वक अपने पैरों को रकाबों पर स्थापित की हुई, नूपुरों की आवाज सुन कर कान खड़े करके एवं गर्दन टेढ़ी करके सुनने वाले, बहुत अधिक आलता से पल्लवित कुङ्कुम से ऊपरी भाग में पीले रंग के दोनों पाँवों के फैलने वाली चमक के प्रवाह से दोनों पार्श्वभागों में पाद प्रहार रूप दोहद के लोभ से आये हुए पल्लवित रक्ताशोक वृक्षों के समूहों को मानों खींचती हुई, सम्पूर्ण प्राणिलोक के हृदयों को बलपूर्वक हरण करने की मानों घोषणा करने वाली करधनी के शब्द से अलङ्कृत जघन-स्थल वाली, उजले वस्त्र से बने हुए सर्प की केंचुली के समान बारीक तथा पाँवों तक लटकने वाले कञ्चुक से

तनुलता, छातकञ्चुकान्तरदृश्यमानैराश्यानचन्दनधवलैरवयवैः स्वच्छ-सलिलाभ्यन्तरविभाव्यमानमृणालकाण्डेव सरसी, कुसुम्भरागपाटलं पुलकबन्धचित्रं चण्डातकमन्तःस्फुटं स्फटिकभूमिरिव रत्ननिधानमादधाना, हारेणामलकीफलनिस्तुलमुक्ताफलेन स्फुरितस्थूलग्रहगणशारा शारदीव श्वेतविरलजलधरपटलावृता द्यौः, कुचपूर्णकलशयोरुपरि रत्नप्रालम्बमालिकामरुणहरितकिरणकिसलयिनीं कस्यापि पुण्यवतो हृदयप्रवेशवनमालिकामिव बद्धां धारयन्ती, प्रकोष्ठनिविष्टस्यैकस्य हाटककटकस्य मरकतमकरवेदिकासनाथस्य हरितीकृतदिगन्तैर्मयूखसंततिभिः स्थलकमलिनीभिरिव लक्ष्मीशङ्कयानुगम्यमाना, अति-

---

पादं यावत्। छातस्तनुः। कुसुम्भं पद्मकम्। नानावर्णबिन्दुन्यासः पुलकबन्धः, मणिविशेषाश्च पुलकाः। चण्डातकमर्धोरुकम्। कुचावेव कस्यापि पुण्यवत इवेति वक्ष्यमाणाभिप्रायेण पूर्णकलशौ कस्यापीत्यलौकिकस्य। वनमाला पत्त्रपुष्पयोजिता स्रक्। सापि पूर्णकलशयोरुपरि बध्यते। प्रकोष्ठः प्रकुञ्चनकः। वेदिका रत्न-

---

शरीर-लता को ढँकने वाली, बारीक कञ्चुक के अन्दर से दिखाई पड़ने वाले तथा कुछ-कुछ सूखे चन्दन की भाँति उज्ज्वल अपने शरीर के अङ्गों से निर्मल जल के अन्दर से दिखाई पड़ने वाली मृणाल-लता से अलङ्कृत सरसी (सरोवर) के समान शोभायमान होने वाली, कुसुम्भी रंग के लाल लंहगे को, जिस पर स्फटिक की जड़ाव में जड़े हुए मोतियों के समान रंग-बिरंगी बूँदकियाँ पड़ी थीं; को धारण करने वाली, कहीं-कहीं उजले मेघों के टुकड़ों से युक्त शरत्कालीन आकाश की भाँति आँवले जैसे बड़े-बड़े मोतियों के हार को धारण करने वाली, स्तनरूपी भरे हुए घड़ों के ऊपर लाल एवं हरे रंगों की किरणों से किसलय युक्त रत्नों की माला को किसी भाग्यशाली के हृदय में प्रवेश करने हेतु बाँधी गई वनमाला की भाँति धारण करने वाली, मरकत मणियों की मछली के आकार की वेदियों से खचित तथा कलाइयों में पहने गये सोने के कंगनों की दिशाओं को हरित करने वाली रश्मियों से लक्ष्मी की आशंका से मानों स्थल-कमलिनियों द्वारा पीछा की जाती हुई, अत्यधिक पान

बहलताम्बूलकृष्णिकान्धकारितेनाधरसंपुटेन मुखशशिपीतं ससंध्यारागं तिमिरमिव वमन्ती विकचनयनकुवलयकुतूहलालीनयाऽलिकुलसंहत्या नीलांशुकजालिकयेव निरुद्धाधवदना, नीलीरागनिहितनीलिम्ना शिखिद्योतमाना, बकुलफलानुकारिणीभिस्तिसृभिर्मुक्ताभिः कल्पितेन बालिकायुगलेनाधोमुखेनालोकजलवर्षिणा सिञ्चन्तीवातिकोमले भुजलते, दक्षिणकर्णावतंसितया केतकीगर्भपलाशलेखया रजनिकराजह्वालतयेव लावण्यलोभेन लिह्यमानकपोलतला, तमालश्यामलेन मृगमदामोदनिष्यन्दिना तिलकबिन्दुना मुद्रितमिव मनोभवसर्वस्वं वदनमुद्वहन्ती, ललाटलासकस्य सीमन्तचुम्बिनश्चटुलातिलकमणेरुदञ्चता चटुलेनांशु-

प्रतिष्ठापीठिका। बहलं पीनःपुन्येन कृतम्। कृष्णिका कृष्णलेखा। मुखमेव तमःपान्प्रतिपिपादयिषया शशी। ताम्बूलकारणत्वेन लौहित्यमेव सम्भवतीति ससन्ध्यारागमित्युक्तम्। नीलयोपधिभेदः। शिखिर्नीलः। पल्लवः पिण्डः। बालिका कर्णापवेधेऽलंकारः। अधोमुखेन घटादिना जलवर्षिणा लता सिच्यते। मृगमदः कस्तूरिका। तिलकबिन्दुः परिवर्तुलस्तिलकः। लासको नर्तकः। 'सुवर्णश्रृङ्खला-

खाने के कारण काले पड़ गये अधरोष्ठ द्वारा मुखरूपी चन्द्रमा के द्वारा दिया गया तथा सन्ध्या राग से युक्त अन्धकार को ही मानों उगलती हुई, खिले हुए नेत्ररूपी कमलों के प्रति उत्कण्ठावश आने वाली भ्रमरपङ्क्ति से नीले वस्त्र से ही मानों अपने आधे मुख को नकाब से ढँकने वाली, नीले रंग से नीले वर्ण वाले तथा भगवान् शङ्कर के कण्ठ की भाँति सुन्दर बाएँ कान में स्थित कर्णाभूषण से कालमेघ से सुशोभित बिजली के समान शोभायमान मौलसिरी के फल के समान तीनों मोतियों से बनी हुई नीचे की ओर झूलती हुई दो बालियों के प्रकाशरूपी जल से मानों अत्यन्त कोमल भुजलताओं को सींचती हुई, लावण्य के लोभ से चन्द्रमा मानों उसके कपोल को चाट रहा था, इस प्रकार दायें कान में लटकते हुए केतकी के नुकीले टौंसे से अलङ्कृत, तमाल सदृश श्यामल कस्तूरी की सुगन्ध चुआने वाली तिलक-बिन्दु से मुद्रित (मुहर की गई) कामदेव के सर्वस्वभूत मुख को धारण करने वाली ललाट में नृत्य करने वाली तथा मांग से लटकने वाली चटुला-तिलक नामक मणि से निकलती हुई चञ्चल

जालेनेव रक्तांशुकेनेव कृतशिरोवगुण्ठना, पृष्ठप्रेङ्खदनादरसंयमनशिथिलजूटिकाबन्धा नीलचामरावकूलिनीध, चूडामणिकरिकासनाथा मकरकेतुपताकेव कुलदेवतेव चन्द्रमसः, पुनः सञ्जीवनौषधिरिव पुष्पधनुषः, वेलेव रागसागरस्य, ज्योत्स्नेव यौवनचन्द्रोदयस्य, महानदीव रतिरसामृतस्य, कुसुमोद्गतिरिव सुरततरोः, बालविद्येव वैदग्ध्यस्य, कौमुदीव कान्तेः, धृतिरिव धैर्यस्य, गुरुशालेव गौरवस्य, बीजभूमिरिव विनयस्य, गोष्ठीव गुणानाम्, मनस्वितेव महानुभाव-

बद्धो नानारत्नौघमण्डितः। ललाटलम्ब्यलङ्कारश्चटुलातिलको मतः॥' अवचूलं विल्लम्। मकारिका मकाराकारं रूपम्। वेला यथा सागरं क्षोभयति तद्वदेवैनं रागम्। क्षोभेन यथा सागरो दुरुत्तर एवमेतयापि रागः। यथा ज्योत्स्नया विना चन्द्रोदयो भवन्नपि क्वापि विलसन्विभाव्यते तथैतया विना यौवनं सविलासमन्यत्र न दृश्यते। रतिप्रधानो रसः शृङ्गार एव। माधुर्यातिशययोगित्वात्प्रकृष्टत्वाच्च। ह्लादनममृतम्। यदुक्तम्—'शृङ्गार एव परमः परः प्रह्लादनो रसः' इति संप्रयोगो रतं रहःशयनं मोहनमिति पर्यायाः। बालविद्या न कञ्चन मुञ्चति, तद्वदेव वैदग्ध्यम्। कौमुदीति। तथाविधकान्त्यतिशयसम्भवात्। ध्रियते तेन धृतिः। अस्यां सत्यां धैर्यमपि यद्वा—धृतिः प्रवेशरक्षणम्। यथा प्रविशन्कश्चिद्राजनिकटं ध्रियते केनचित्तथा धैर्यं तावत्प्रसरति। यावदेषा न दृष्टा एतस्यां दृष्टायां सर्वे धैर्यशून्या इति। 'समानविद्यावित्तशीलबुद्धिवयसामनुरूपैरालापैरेकत्रासनबन्धो गोष्ठीमनस्विता' इत्यनेनैतस्या महानुभावताया व्यभिचारित्वमुच्यते। यस्माद्यत्र मनस्विता

किरणों से मानों लाल कपड़े से ही माथे पर घूँघट ओढ़ने वाली, पीठ पर नील चामर के सदृश उपेक्षापूर्वक गूँथे गये तथा लटकते हुए जूड़े से युक्त, चूड़ामणि में स्थित मकरिका (सुवर्ण की मछली) से विभूषित, कामदेव की पताका के समान, चन्द्रमा की कुलदेवता के समान, काम को फिर से जीवित कर देने वाली औषधि के समान, प्रेमरूप समुद्र की तट-भूमि के समान, यौवनरूपी चन्द्रोदय की चन्द्रिका के समान, रति-रसरूपी अमृत की महानदी के समान, सुरतवृक्ष की पुष्पोत्पत्ति के समान, चातुर्य की नवीन विद्या के समान, कान्ति की कौमुदी के समान, धैर्य की धृति (सन्ताप) के समान, गौरव के गुरुगृह के समान, विनम्रता की बीजभूमि के समान, गुणों की गोष्ठी (सभा) के

तायाः, तृप्तिरिव तारुण्यस्य, कुवलयदलदामदीर्घलोचनया पाटलाधरया कुन्दकुड्मलस्फुटदशनया शिरीषमालासुकुमारभुजयुगलया कमलकोमलकरया बकुलसुरभिनिःश्वसितया चम्पकावदातदेहया कुसुममय्येव ताम्बूलकरण्डवाहिन्या महाप्रमाणाश्वतरारूढयानुगम्यमाना, कतिपयपरिचारकपरिकरा मालती समदृश्यत। दूरादेव च दधीचप्रेम्णा सरस्वत्या लुण्ठितेव मनोरथैः, आकृष्टेव कुतूहलेन, प्रत्युद्गतेवोत्कलिकाभिः, आलिङ्गितेवोत्कण्ठया, अन्तःप्रवेशितेव हृदयेन, स्नपितेवानन्दाश्रुभिः, विलिप्तेव स्मितेन, वीजितेवोच्छ्वसितैः, आच्छादितेव चक्षुषा, अभ्यर्चितेव वदनपुण्डरीकेण, सख्याकृतेवाशया

तत्र महाशयत्वमेवावश्यं सम्भावयतीति स्थितमेव। तृप्तिरिवेति। यथा कोऽप्यत्यन्तं गततृप्तिर्नान्यत्किंचित्पुनरपेक्षते तद्वदासादितमालतीकं तारुण्यम्। एतदाश्रयणेन परिपूर्णवैषयिकोपभोगप्राप्तिस्तारुण्यस्येत्यर्थः। कुसुममय्येवेति। कुवलयादिभिर्नयनादीनां विधानम्। तरुणोऽश्वोऽश्वतरः। 'वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे' इति तनुत्वे तरप्। तत्र च व्याख्यातम्—'तनुत्वं द्वितीयवयःप्राप्तिः'। अश्वतरो वा गर्दभेनाश्वायां जातः। मालतीति। एवं दधीचपरिवारभूतया मालत्या गुणवर्णनद्वारेण सरस्वत्या एव निःसामान्यगुणातिशयो ध्वन्यते। लुण्ठितेवेति। वक्ष्यमाणं प्रार्थनादि। तथा मनोरथैरुत्प्रेक्ष्य स्वीकृतमित्यतस्तैर्लुण्ठितेवेत्युक्तम्। लुण्ठनं च पाश्याभि-

---

समान, महानुभावता की मनस्विता के समान, यौवन की तृप्ति के समान, कुवलय के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाली से, लाल अधरोष्ठवाली-सी, कुन्द के मुकुल सदृश दाँतों वाली-सी, शिरीष फूलों की माला के समान दोनों भुजाओं तथा कमल सदृश हाथों वाली-सी, मौलसिरी के समान सुगन्धित निःश्वास छोड़ने वाली-सी, चम्पाफूल जैसे उज्ज्वल शरीर-सी पुष्पमयी जैसी-सी, बड़े घोड़े पर बैठी हुई ताम्बूल पात्र को ढोने वाली-सी अनुगता तथा इर्द-गिर्द अनेक सेवकों से घिरी हुई मालती दिखाई दी। दधीच के प्रेमवश दूर से ही मानों सरस्वती के मनोरथों द्वारा लुटी गई, मानों कुतूहल से खिंची गई, मानों (सरस्वती के) मन की तरङ्गों से अगवानी की गई, मानों उत्कण्ठा से आलिङ्गित की गई, मानों हृदय से अन्तःप्रविष्ट हुई, मानों आनन्दाश्रुओं से नहाई गई, मानों मुस्कुराहट से लिपटी हुई, मानों उसाँसों से हवा की गई, मानों आँखों से

सविधमुपययौ। अवतीर्य च दूरादेवानतेन मूर्ध्ना प्रणाममकरोत्। आलिङ्गिता च ताभ्यां सविनयमुपाविशत्। सप्रश्रयं ताभ्यां संभाषिता च पुण्यभाजनमात्मानममन्यत। अकथयच्च दधीचसंदिष्टं शिरसि निहितेनाञ्जलिना नमस्कारम्। अगृह्णाच्चाकरतः प्रभृत्यग्राम्यतया तैस्तैरतिपेशलैरालापैः सावित्रीसरस्वत्योर्मनसी।

क्रमेण चातीते मध्यंदिनसमये शोणमवतीर्णायां सावित्र्यां स्नातुमुत्सारितपरिजना साकूतेव मालती कुसुमस्रस्तशायिनीं समुपसृत्य सरस्वतीमाबभाषे—'देवि, विज्ञाप्यं नः किञ्चिदस्ति रहसि। यतो मुहूर्तमवधानदानेन प्रसादं क्रियमाणमिच्छामि' इति। सरस्वती तु दधीचसंदेशाशङ्किनी किं वक्ष्यतीति स्तननिहितवामकरनखरकिरण-

---

वितरणमेवमन्यत्। उत्कलिका रुहरुहिका। सविधं समीपम्। अपि च यः स्निग्धो दूरात्सविधमायाति, तस्य लुण्ठनादिसर्वमर्चनावसानं क्रियत इति ध्वनिः। पेशलैर्हृद्यैः।

आकूतमभिप्रायः। रहस्येकान्ते सरस्वतीत्यादौ। सरस्वती कुसुमशयनीयादु-

---

ढँकी गई, मानों मुखरूपी कमल से पूजित की गई, मानों आशा से सहेली बनाई गई मालती सरस्वती के समीप पहुँची। (घोड़े से) उतर कर दूर से सिर झुका कर (उसने) प्रणाम किया। उन दोनों (सरस्वती एवं सावित्री) के द्वारा मालती विनम्रता के साथ बैठ गई। उन दोनों के द्वारा विनम्रतापूर्वक किये गये सम्भाषण से उसने अपने को पुण्यभागिनी समझा। मालती ने माथे पर अञ्जली टेक कर दधीच द्वारा सन्दिष्ट 'नमस्कार' कहा। सावित्री एवं सरस्वती के मन को उसने अपनी आकृति एवं अतिकोमल भिन्न-भिन्न बातों से हर लिया।

क्रमशः दोपहर के बीत जाने पर तथा स्नान करने के लिए सावित्री के शोणनद में उतर जाने पर सेवकों को हटा कर पुष्पशय्या पर लेटी हुई सरस्वती के नजदीक जाकर अभिप्राय-युक्त-सी मालती ने उससे कहा—"देवि! मुझे एकान्त में कुछ निवेदन करना है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि थोड़ी देर के लिए आप ध्यान देने की कृपा करें। दधीच के सन्देश की आशंका से युक्त सरस्वती "पता नहीं क्या कहेगी" यह सोच कर

दन्तुरितमुद्भिद्यमानकुतूहलाङ्कुरनिकरमिव हृदयमुत्तरीयकूलवल्कलैकदेशेन संछादयन्ती, गलतावतंसपल्लवेन श्रोतुं श्रवणेनेव कुतूहलाद्धावमानेनाविरतश्वाससंदोहदोलायितां जीविताशामिव समासन्नतरुणतरुलतामवलम्बमाना, समुत्फुल्लस्य मुखशशिनो लावण्यप्रवाहेण शृङ्गाररसेनेवाप्लावयन्ती सकलं जीवलोकम्, शयनकुसुमपरिमलग्नैर्मधुकरकदम्बकैर्मदनानलदाहश्यामलैर्मनोरथैरिव निर्गत्य मूर्तैरुत्क्षिप्यमाणा, कुसुमशयनीयात्स्मरशरसंज्वरिणी, मन्दं मन्दमुदगात्। 'उपांशु कथय' इति कपोलतलप्रतिबिम्बितां लज्जया कर्णमूलमिव मालतीं प्रवेशयन्ती मधुरया गिरा सुधीरमुवाच—'सखि मालति, किमर्थमेवमभिदधासि? काहमवधानदानस्य शरीरस्य प्राणानां वा? सर्वस्याप्रार्थितोऽपि प्रभवत्येवातिवेलं चक्षुष्यो जनः। का न काचिद्या न भवति मे स्वसा

दशादुदतिष्ठदिति सम्बन्धः। अवतंसपल्लवेन गलतेत्यर्थः श्रवणलक्षणे तृतीया। संदोहः समूहः। संज्वरः संतापः। उपांश्वनुल्बणम्। अतिवेलमतिमात्रम्। 'अतिपेशलः' इति

स्तन पर रखे गये बायें हाथ के नाखूनों की किरणों से व्याप्त तथा मानों उत्पन्न हुए कुतूहल के अङ्कुरों से व्याप्त अपने हृदय को अपने दुपट्टे की एक छोर से ढँकती हुई, बात सुनने के लिए मानों दौड़ते हुए कान से गिरते हुए कान के आभूषण रूप पल्लवों से लगातार साँस के झूले पर बैठी हुई (चलायमान) जीविताशा के समान निकटस्थ तरुणवृक्ष से लिपटी लता का सहारा लेती हुई, प्रफुल्लित मुखचन्द्र के लावण्यप्रवाह से शृङ्गार रस के समान सम्पूर्ण प्राणिलोक को मानों आप्लावित करती हुई शय्या के फूलों के पराग में संलग्न भौरों से मानों कामाग्नि की ज्वाला से जलने के कारण काले दिखाई पड़ने वाले (अपने) हृदय से निकलने वाले साकार मनोरथों के रूप उठाई गई, मदन-ज्वर से त्रस्त होकर पुष्प-शय्या से धीरे-धीरे उठी। "गुप्त रूप से कह" यह कहती हुई सरस्वती कपोलतल में प्रतिबिम्बित होती हुई मालती को मानों लज्जा से कर्णमूल में प्रविष्ट कराती हुई आवाज में धीरता के साथ बोली—'सखी मालती! (तू) क्यों ऐसा कहती है? मैं अवधान देने वाली कौन हूँ? शरीर और प्राण पर मेरा वश नहीं है। प्रार्थना

पाठान्तर—१. तुरगाद् दूरादेवावनतेन।

सखी प्रणयिनी प्राणसमा च। नियुज्यतां यावतः कार्यस्य क्षमं क्षोदीयसी गरीयसी वा शरीरकमिदम्। अनवस्करमाश्रवं त्वयि हृदयम प्रीत्या प्रतिसरा विधेयास्मि ते। व्यावृणु वरवर्णिनि, विवक्षितम्' इति। सा त्वबादीत्—'देवि, जानास्येव माधुर्यं विषयाणाम्, लालुपतां चेन्द्रियग्रामस्य, उन्मादितां च नवयौवनस्य, पारिप्लवतां च मनसः। प्रख्यातैव मन्मथस्य दुर्निवारता। अतो न मामुपालम्भेनोपस्थातुमर्हसि। न च बालिशता चपलता चारणता वा वाचालतायाः कारणम्। न किंचिन्न कारयत्यसाधारणा स्वामिभक्तिः। सा त्वं देवि, यदैव दृष्टासि देवेन तत एवारभ्यास्य कामो गुरुः, चन्द्रमा जीवितेशः,

---

पाठे पेशलः। सुन्दरः। चक्षुष्योऽनुकूलः। त्वमिव व्यक्तम्। चक्षुष्य इति भङ्ग्या दधीच इति ध्वनति। स्वसा भगिनी। प्रणयिनी विश्वस्ता। अतिशयेन क्षुद्रमल्पं क्षोदीयः। 'ज्ञेयं गुह्यमवस्करम्'। आश्रवं वचसि स्थितम्। प्रतिसरानुकूला। विधेया-वश्या। व्यावृणु प्रकटय। वरवर्णिनि वरारोहे। लोलुपतां साभिलाषत्वम्। 'चलार्थकौ निगद्येते पारिप्लवपरिप्लवौ'। बालिशोऽज्ञः। चारणता धूर्तता। असाधारणानन्यसदृशी। देवी देवेनेति च परस्परसमगुणयोगित्वमभिव्यनक्ति। गुरुर्गं-

---

के बिना ही बन्धुजन का सच पर प्रभुत्व छाया रहता है? ऐसा कोई नहीं जो तू नहीं है। तू ही मेरी बहन, सखी, प्रेमपात्र और प्राण-सदृश है। अत्यन्त छोटे या अत्यन्त बड़े, किसी भी कार्य के योग्य इस शरीर को नियुक्त कर, मेरा निर्मल हृदय तेरी बातों में स्थिन है (अर्थात् तेरी हर बात मानने को मैं तैयार हूँ)। प्रीति से मैं तेरी वशवर्तिनी एवं नियोज्या हूँ। अरी वरवर्णिनी! जो कहना है उसे कह!" वह (मालती) बोली—"देवि! तू विषयों की मिठास को, इन्द्रियों की लोलुपता को, नवीन यौवन के मतवालेपन को तथा मन की चञ्चलता को जानती है। काम का निवारण दुष्कर है, यह बात प्रसिद्ध ही है। इसलिए मुझे तू उलाहना मत देना। मेरी इस वाचलता का कारण न तो मूर्खता है, न चपलता है और न ही चापलूसी है। असामान्य स्वामिभक्ति क्या नहीं कराती? हे देवि! जब से तुझे हमारे मालिक ने देखा है तभी से कामदेव उनका गुरु, चन्द्रमा उनके जीवन का

मलयमरुदुच्छ्वासहेतुः, आधयोऽन्तरङ्गस्थानेषु, संतापः, परमसुहृत्, प्रजागर आप्तः, मनोरथाः सर्वगताः, निःश्वासा विग्रहाग्रेसराः, मृत्युः पार्श्ववर्ती, रणरणकः संचारकः संकल्पा बुद्ध्युपदेशवृद्धाः। किंच विज्ञापयामि। अनुरूपो देव इत्यात्मसंभावना, शीलवानिति प्रक्रमविरुद्धम्, धीर इत्यवस्थाविपरीतम्, सुभग इति त्वदायत्तम्, स्थिरप्रीतिरिति निपुणोपक्षेपः, जानाति सेवितुमित्यस्वामिभावोचितम्,

---

रीयान्, उपदेष्टा वा। तद्वशवर्तित्वात्। यश्च देवस्तस्य गुरुरानार्यः कश्चिदपरश्च सम्भवति। जीवितस्येश्वरः स्वामी जीवितेशः। शिशिरतया मदनदाहप्रशमनहेतुत्वात्। अमृतमयत्वेन च जीवितसन्धारणशक्तत्वात्। अथ च जीवितेशो मृत्युः। चन्द्रादयो ह्यापातत एव तापं शमयन्ति, अनवरतं सेव्यमानाः पुनः कामोद्दीपकत्वेन मृत्युं दिशन्ति। राजपक्षे जीवितेशः कश्चित्पुरोहितप्रायः। उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तत्र हेतुः। अथ च श्वासोत्क्रान्तौ कारणम्, इतरत्र सचिवप्राया विश्वसनीयाः। आधयश्चित्तपीडाः। अत एवान्तरङ्गमन्तःशरीरं यानि स्थानानि तेषु, इतरत्रान्तरङ्गान्तर्वंशिकस्तत्स्थानेषु विश्वसनीयजनाधिकारेषु। परं प्रकृष्टम्। असुहृदरिऽमित्रो वा। अन्यत्र—परमसुहृन्मित्रं च। आप्तं प्राप्तो बान्धवप्रायः कश्चित्। सर्वगताश्चारा अपि संस्थाख्याः। विग्रहो विरोधः, देहश्च। मृत्युरिति। त्वदनङ्गीकारेण निश्चितं म्रियते। राज्ञोऽपि पार्श्वे मृत्युस्तिष्ठत्येव। रणरणको दुःखमरतिकृतम्। अत एव संचारक एकत्र नरे सम्भवदितरत्र संचारयति, चरितं वस्तु यः प्रापयते सः। द्विविधा हि चाराः—संस्थाः, संचारकाश्च। वृद्धा महान्तः स्थविराश्च। अनुरूप इत्यादिनेदमिदं तत्रास्तीति वक्रोक्त्या सातिशयं मालती वैदग्ध्येनाह। प्रक्रम

स्वामी, मलयानिल उनकी उसाँसों का कारण, मनोव्यथाएँ अन्तरङ्ग स्थानीय, सन्ताप परम मित्र, जागरण आप्तव्यक्ति, मनोरथ अव्यवस्थित, निःश्वास शरीर के आगे-आगे चलने वाले, मौत बगलगीर, उत्कण्ठा प्रेरक और सङ्कल्प (मानसिक विचार) बुद्धि के उपदेशक बन बैठे हैं। मैं क्या बताऊँ ? (मेरे) मालिक दधीच "आपके योग्य हैं" यह कहना आत्मप्रशंसा होगा, "शीलवान् हैं" यह कहना प्रसङ्गविरुद्ध होगा, "धैर्यशाली हैं" यह कहना अवस्था के विरुद्ध होगा, "सुन्दर हैं" यह कहना तो तेरे अधीन है, "स्थिर प्रीति वाले हैं" यह कहना तो चतुराई की बात है, "वे सेवा करना जानते हैं" यह

इच्छति दासभावमामरणात्कर्तुमिति धूर्तालापः, भवनस्वामिनी भवेत्युप-प्रलोभनम्, पुण्यभागिनी भजति भर्तारं तादृशमिति स्वामिपक्षपातः, त्वं तस्य मृत्युरित्यप्रियम्, अगुणज्ञासीत्यधिक्षेपः, स्वप्नेऽप्यस्य बहुशः कृतप्रसादासीत्यसाक्षिकम्, प्राणरक्षार्थमर्थयत इति कातरता, तत्र गम्यतामित्याज्ञा, वारितोऽपि बलादागच्छतीति परिभवः। तदेवमगोचरे गिरामसीति श्रुत्वा देवी प्रमाणम्' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत।

अथ सरस्वती प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा प्रत्यवादीत्—'अयि, न शक्नोमि बहु भाषितुम्। एषास्मि ते स्मितवादिनि वचसि स्थिता। गृह्यन्ताममी प्राणाः' इति। मालती तु देवि, यदाज्ञापयसि, अति-प्रसादाय' इति व्याहृत्य प्रहर्षपरवशा प्रणम्य प्रजविना तुरगेण

आरम्भः। निपुणोपक्षेपो बुद्धिमत्प्रक्रमः। धूर्तालापः प्रतारणावचनम्। वारित इति। भवत्येवेत्यर्थात्।

प्रजविनेति साभिप्रायम्। अस्तमित्यादौ सरस्वती प्रतिपालयामासेति संबन्धः।

कथन स्वामिभाव के लिए अनुचित है, "वे मृत्यु पर्यन्त (अर्थात् आजीवन) आपकी दासता करना चाहते हैं" यह कथन धूर्ततापूर्ण है, "तू गृहस्वामिनी बन जा" यह कथन लोभ दिलाने वाला है, "पुण्यभागिनी स्त्री ही वैसे पति को प्राप्त करती है" यह कहना स्वामी के प्रति पक्षपात करना है, "तू उसकी मौत है" यह कथन अप्रिय है, "तू अगुणज्ञ है" यह कहना तिरस्कार है, "स्वप्नावस्था में भी तू बार-बार उनके द्वारा प्रसन्न की जाती है" "अपने प्राणों की रक्षा के लिए (वे) प्रार्थना करते हैं" यह कहना कायरता है, "वहां चलें" यह कथन वस्तुतः आज्ञा है, "रोके जाने पर भी आते हैं" यह कथन उनका तिरस्कार है। इस प्रकार यह विषयवाणी के परे हैं। तू ही इसका निश्चय कर सकती है।" यह कह कर चुप हो गईं।

इसके बाद प्रीति के कारण फैले नेत्रों से (मालती को देखती हुई) सरस्वती बोली—"अरी (मालती) ! मैं अधिक नहीं कह सकती। हे स्मित-वादिनि ! मैं तेरी बातों को मान लेती हूँ। मेरे (इन) प्राणों को स्वीकार कर। मालती—"देवि ! अत्यन्त कृपा के लिए जो आज्ञा" यह कह कर

ततार शोणम्। अगाच्च दधीचमानेतुं च्यवनाश्रमपदम्। इतरा तु सखीस्नेहेन सावित्रीमपि विदितवृत्तान्तामकरोत्। उत्कण्ठाभारभृता च ताम्यता चेतसा कल्पायितं कथंकथमपि दिवसशेषमनैषीत्। अस्तमुपनते च भगवति गभस्तिमति, स्तिमिततरमवतरति तमसि, प्रहसितामिव सितां दिशं पौरंदरीं दरीमिव केसरिणि मुञ्चति चन्द्रमसि सरस्वती शुचिनि चीनांशुकसुकुमारतरे तरङ्गिणि दुकूलकोमलशयन इव शोणसैकते समुपविष्टा स्वप्नकृतप्रार्थना पादपतनलग्नां दधीचचरणनखचन्द्रिकामिव ललाटिकां दधाना, गण्डस्थलादर्शप्रतिबिम्बितेन 'चारुहासिनि, अयमसावाहृतो हृदयदयितो जनः' 'इति श्रवणसमीपवर्तिना निवेद्यमानमदनसंदेशेवेन्दुना, विकीर्यमाण-

गभस्तिमान् रविः। पौरंदर्यैन्द्री। दरी गुहा चीनेत्यादि सैकतविशेषणम्। उपमानस्य तु दुकूलकोमल इत्युक्तम्। तरङ्गिणी प्रतिदिनं क्षीयमाणेन वारिणा कृतलेखे भङ्गियुक्ते च। चन्द्रिका कान्तिरत्र। ललाटालंकारो ललाटिका। चक्रवालं समूहः।

अत्यन्त हर्षित होती हुई प्रणाम करके अत्यन्त वेगशाली घोड़े से शोणनद को तैर कर पार कर गई तथा दधीच के लाने के लिए च्यवनाश्रम जा पहुँची। सरस्वती ने सखी-प्रेम के कारण सावित्री को भी इस वृत्तान्त से अवगत कराया। उत्सुकता से बोझिल एवं व्यथित मन से किसी-किसी प्रकार दिन के शेषभाग को उसने बिताया। भगवान् सूर्य के अस्त होने पर, अन्धकार के धीरे-धीरे उतरने पर और जिस प्रकार सिंह गुफा का परित्याग करता है उसी प्रकार चन्द्रमा के हँसती हुई उज्ज्वल वर्णवाली पूर्व दिशा को छोड़ने पर चीनांशुक के समान कोमल एवं तरङ्गों के चिह्नवाली मानों चादर से युक्त कोमल शय्या के समान शोणनद की बालुकामयी भूमि पर बैठ कर, मानों स्वप्न में प्रार्थना करते समय पाँव पर गिरने के कारण संलग्न दधीच के पैरों के नाखूनों की चन्द्रिका के रूप में ललाट-भूषण को धारण करती हुई, कपोलों के दर्पण में प्रतिबिम्बित हो रहे अतएव कान के समीपवर्ती चन्द्रमा द्वारा "हे सुन्दर हँसी हँसने वाली! यह तेरे हृदयदयित को मैंने ला दिया है" इस प्रकार निवेदित किये गये काम-सन्देश को मानों प्राप्त करती हुई, मानों चन्द्रमा

नखकिरणचक्रवालेन बालव्यजनीकृतचन्द्रकलाकलापेनेव करेण वीजयन्ती स्वेदिनं कपोलपट्टम्, 'अत्र दधीचादृते न केनचित्प्रवेष्टव्यम्' इति तिरश्चीनं चित्तभुवा पातितां विलासवेत्रलतामिव बालमृणालिकामधिस्तनं स्तनयन्ती कथमपि हृदयेन वहन्ती प्रतिपालयामास। आसीच्चास्या मनसि—'अहमपि नाम सरस्वती यत्रामुना मनोजन्मना जानत्येव परवशीकृता। तत्र का गणनेतरासु तपस्विनीष्वतितरलासु तरुणीषु' इति।

आजगाम च मधुमास इव सुरभिगन्धवाहः, हंस इव कृतमृणालधृतिः, शिखण्डीव घनप्रीत्युन्मुखः, मलयानिल इवाहितसरसचन्दन-

---

बालव्यजनं चामरम्। स्तनमध्ये प्रवेशाभावात्तिरश्चीनमित्युक्तम्। यश्च वेत्री प्रवेशनिषेधननिमित्तं वेत्रलतां पातयति स तिरश्चीनः। स्तनयोरधिस्तनम्। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। कुचपृष्ठ इत्यर्थः। स्तनयन्ती कलयन्ती। स्तनिः शब्दार्थश्चौरादिकः। 'स्तनन्ती' इति वा पाठः। तपस्विनीषु वराकीषु।

आजगामेत्यादौ आजगामेति सम्बन्धः। सुरभिगन्धवाहो वातः सुरभिगन्धं च यो वहति। धृतिर्धारणम्, प्राणयात्रा च। घनः। सारसं सान्द्रं यच्चन्दनं तेन

की किरणों के चामर के समान स्थित नाखूनों की किरणों द्वारा सुशोभित हाथ से गालों के पसीने को हवा करती हुई, "यहाँ दधीच से अतिरिक्त कोई दूसरा प्रवेश न करे" इसलिए कामदेव द्वारा स्थापित की गई वे त्रियष्टि के समान बाल मृणालों को स्तनों पर रख कर हृदय से किसी प्रकार से धारण करती हुई सरस्वती (दधीच) की प्रतीक्षा करने लगी। उसके मन में यह था कि—"मैं सरस्वती होकर भी इस काम के द्वारा जब परवश कर दी गई तो अन्य बेचारी अत्यन्त चञ्चल स्वभाव वाली युवतियों की क्या गिनती ?"

तब (सुगन्धित वायु से युक्त) वसन्त के सदृश सुगन्ध से युक्त, (मृणाल खाकर जीवन धारण करने वाले) हंस के सदृश मृणाल को धारण करने वाली, (बाद्लों के प्रति प्रेम के कारण उत्कण्ठित) मयूर के समान घन (प्रगाढ़) प्रेम के कारण उत्कण्ठित, (सरस चन्दन के वृक्ष पर आश्रित होने के कारण उजले वर्ण वाली पतली लता में कम्पन उत्पन्न करने वाले) मलय-वायु के सदृश

धवलतनुलतोत्कम्पः, कृष्यमाण इव कृतकरकचग्रहेण ग्रहपतिना, प्रेर्यमाण इव कन्दर्पोद्दीपनदक्षेण दक्षिणानिलेन, उह्यमान इवोत्कलिकाबहुलेन रतिसरसेन, परिमलसंपातिना मधुपपटलेन पटेनेव नीलेनाच्छादिताङ्गयष्टिः, अन्तःस्फुरता मत्तमदनकरिकर्णशङ्खायमानेन प्रतिमेन्दुना प्रथमसमागमविलासविलक्षस्मितेनेव धवलीक्रियमाणैककपोलोदरो मालतीद्वितीयो दधीचः। आगत्य च हृदयगतदयितानूपुररवविमिश्रयेव हंसगद्गदया गिरा कृतसंभाषणो यथा मन्मथः समाज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति, यथा विदग्धताध्यापयति, यथानु-

धवलया तनुलतयाहितस्तत्र उत्कम्पः कामधर्मो यस्य। अन्यत्र—चन्दनांश्च धवांश्च लान्ति श्रयन्ति यास्तन्व्यो लतास्तासामाहित उत्कम्पः कम्पनं येनेति। कृष्यमाण इत्युद्दीपनकारणत्वात्। करा रश्मयः, हस्तश्च करः। हस्तस्य कर्षणं समुचितम्। ग्रहपतिश्चन्द्रः। प्रेर्यमाण इति। अनिलस्योचितमेतत्कर्म। उह्यमान इति। जलस्योचितमेतत्। उत्कलिका, रुहरुहिका, ऊर्मयश्च। रसोऽभिलापः, जलं च। परिमल आमोदः। पटलं समूहः। प्रतिमा प्रतिच्छन्दकम्। यथा मन्मथ इति। मन्मथस्य प्रभवनशीलत्वेनाज्ञादानमुचितम्। एवं सर्वत्रोपदिशतीति। इत्थमित्थं वर्तस्वेत्युपदेशः। देवताविषयं सम्भोगशृङ्गारवर्णनमनुचितमिति न तत्र विस्तरः प्रवर्तते।

सरस चन्दन के लेप से उजले शरीर में कम्पन से युक्त, चन्द्रमा द्वारा किरण रूपी हाथों से केश पकड़ कर खींचे गये के समान, कामदेव को उद्दीपित करने में निपुण दक्षिण दिशा के पवन द्वारा ही मानों प्रेरित किया गया, उत्कण्ठापूर्ण रतिरस द्वारा ही मानों ढोया जाता हुआ, सुगन्ध पर गिरते (मड़राते) हुए भ्रमर-समूह रूपी नीले वस्त्र से अपनी अङ्गयष्टि को ढँका हुआ, मतवाले कामदेव रूपी हाथी के कान में विभूषित शङ्ख के समान एक कपोल में प्रतिबिम्बित हो रहे चन्द्रमा से मानों प्रथम मिलन के विलास स्वरूप मुस्कुराहट से उजले किये गये कपोल के मध्यभाग से युक्त कुमार दधीच मालती के साथ आया। वहाँ आकर हृदय में विराजमान प्रेयसी के नूपुर-शब्द से मिश्रित हुई हंस के समान गद्गद वाणी से बातचीत करके, काम जैसी आज्ञा देता, यौवन जैसा उपदेश देता, चतुरता जिस प्रकार पढ़ाती, अनुराग

रागः शिक्षयति, तथा तामभिरामां रामामरमयत्। उपजातविस्रम्भा चात्मानमकथयदस्य सरस्वती। तेन तु सार्धमेकदिवसमिव संवत्सरमधिकमनयत्।

अथ दैवयोगात्सरस्वती बभार गर्भम्। असूत चानेहसा सर्वलक्षणाभिरामं तनयम्। तस्मै च जातमात्रायैव 'सम्यक्सरहस्याः सर्वे वेदाः सर्वाणि च शास्त्राणि सकलाश्च कला मत्प्रभावात् स्वयमाविर्भविष्यन्ति' इति वरमदात्। सद्भर्तृश्लाघया दर्शयितुमिव हृदयेनादाय दधीचं पितामहादेशात्सम् सावित्र्या पुनरपि ब्रह्मलोकमारुरोह। गतायां च तस्यां दधीचोऽपि हृदये ह्लादिन्येवाभिहतो भार्गववंशसंभूतस्य भ्रातुर्ब्राह्मणस्य जायामक्षमालाभिधानां मुनिकन्यकामात्मसूनोः संवर्ध-

---

कुमारीत्वे च गान्धर्वविवाहो विस्तरेण न तथा वर्णितः शापनिर्वाहणमात्रपरत्वादिति। वृत्तस्यान्यथा निजभर्तृत्यागो दोषावहः किमर्थं कृत इत्यादिकाः कुविकल्पा उत्पद्येरन्निति।

अनेहसा कालेन। रहस्यं ज्ञानभागः। ह्लादिनी वज्रम्।

जिस प्रकार शिक्षा देता उसी प्रकार दधीच उस सुन्दरी रमणी के साथ विहार करने लगा। (कुछ दिनों बाद) विश्वास उत्पन्न हो जाने पर सरस्वती ने उसे अपने बारे में (सब) बता दिया। सरस्वती ने उस (दधीच) के साथ एक वर्ष से अधिक समय एक दिन की तरह बिता दिया।

तदनन्तर दैवयोग से सरस्वती ने गर्भ धारण किया। और समय पर सभी लक्षणों से युक्त सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। उत्पन्न होते ही उस (अपने पुत्र) को "रहस्यों के साथ सभी वेद, सभी शास्त्र एवं सभी कलाएँ सम्यक् प्रकार से (तुझ में) आविर्भूत हो जायेंगी" यह वरदान दिया। अच्छे पति की प्रशंसा से मानों दिखाने के लिए हृदय में दधीच को स्थापित करके पितामह के आदेश से सावित्री के साथ सरस्वती ब्रह्मलोक चली गई। उसके चले जाने पर दधीच भी मानों वज्र से आहत हृदय वाला होकर भार्गव वंश में उत्पन्न हुए किसी ब्राह्मण भाई की पत्नी अक्षमाला नामक मुनिकन्या को अपने पुत्र

नाय नियुज्य विरहातुरस्तपसे वनमगात्। यस्मिन्नेवावसरे सरस्वत्यसूत तनयं तस्मिन्नेवाक्षमालापि सुतं प्रसूतवती। तौ तु सा निर्विशेषं सामान्यस्तन्यादिना शनैः शनैः शिशू समवर्धयत्। एकस्तयोः सारस्वताख्य एवाभवत्, अपरोऽपि वत्सनामासीत्। आसीच्च तयोः सोदर्ययोरिव स्पृहणीया प्रीतिः।

अथ सारस्वतो मातुर्महिम्ना यौवनारम्भ एवाविर्भूताशेषविद्यासंभारस्तस्मिन्सवयसि भ्रातरि प्रेयसि प्राणसमे सुहृदि वत्से वाङ्मय समस्तमेव संचारयामास। चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासम्। आत्मनाप्याषाढी, कृष्णाजिनी, अक्षवलयी, वल्कली, मेखली, जटी च भूत्वा तपस्यतो जनयितुरेव जगामान्तिकम्।

वाक्प्रस्तुता यत्र तद्वाङ्मयम्। 'आषाढसंज्ञो दण्डः स्यात्पलाशो व्रतचारिणाम्। वृक्षत्वङ्निर्मितं वस्त्रं वल्कलं समुदाहृतम्॥' मेखला मुञ्जतृणादिरचितं कटिसूत्रम्। जटा रूक्षसंहतकेशाः।

के पालन-पोषण के लिए नियुक्त कर वियोग से व्याकुल होकर तपस्या के लिए वन चला गया। जिस समय सरस्वती ने पुत्र को जन्म दिया था उसी समय अक्षमाला को भी पुत्र उत्पन्न हुआ था। उन दोनों (बच्चों) को उसने समान भाव से दूध पिला कर पाला-पोसा और धीरे-धीरे बड़ा किया। उनमें से एक का नाम सारस्वत तथा दूसरे का नाम वत्स था। उन दोनों में (परस्पर) सहोदर भाइयों के समान स्पृहणीय प्रेम था।

इसके बाद माता के प्रभाव से सारस्वत ने युवावस्था के प्रारम्भ में ही (अपने में) प्रकट हुई समस्त विद्याओं को अपने समवयस्क भाई तथा प्राण-सदृश मित्र वत्स में सम्पूर्ण रूप से सञ्चरित करवा दिया (अर्थात् उसे भी सारी विद्याओं की शिक्षा दे दी) और उसका विवाह कराकर उसी प्रदेश में प्रीति के कारण "प्रीतिकूट" नामक निवास बनवाया। (सारस्वत) स्वयं पलाश-दण्ड, कृष्णमृगचर्म, अक्षवलय, वल्कल, मेखला तथा जटाओं को धारण करके तपस्या में संलग्न अपने पिता (दधीच) के पास चला गया।

अथ वत्सात्प्रवर्धमानादिपुरुषजनितात्मचरणोन्नतिः, निर्गतप्रघोषः, परमेश्वरशिरोधृतः, सकलकलागमगम्भीरः महामुनिमान्यः, विपक्षक्षोभक्षमः, क्षितितललब्धायतिः, अस्खलितप्रवृत्ता भागीरथीप्रवाह इव पावनः प्रावर्तत विमलो वंशः। यस्मादजायन्त वात्स्यायनो नाम

अथेत्यादौ। वत्सात्प्रावर्तत विमलो वश इति संबन्धः। प्रवर्धमानाः संतानादिना वृद्धिं गच्छन्तो य आदिपुरुषाः पूर्वबान्धवाः शुक्राद्यास्तैः कृताः स्वेषां चरणानां कठादिशाखाध्यायिनामुन्नतिरुत्कर्षो यस्य सः। अन्यत्र—प्रवर्धमानस्तु वामनरूपो य आदिपुरुषो हरिस्तेन जनिता स्वपदोन्नतिर्माहात्म्यं यस्य स इति। किल त्रैलोक्याक्रान्तिकाले ब्रह्मलोकप्राप्ताद्विष्णुपदाद् ब्राह्मणा कमण्डलुजलक्षालिता गङ्गा समभवदिति वार्ता। प्रदोषो यशः, शब्दश्च। परमेश्वरो राजा, हरश्च। सकलानां कलानां वृत्ताद्यानामागमस्तेन सहकलकलेन च सकलकलं यदागमनं तेन च। महामुनिर्जह्नुरपि। विपक्षाः शत्रवः, शैलाश्च। वीनां पक्षिणां वा पक्षच्छेदेषु सहिष्णुः। आयतिः प्रतापः, विस्तारश्च। स्खलितं स्वाचारच्युतिः। प्रवृत्तः प्रकृष्टवृत्तः। अस्ख-

इसके बाद उस वत्स मुनि से गङ्गा-प्रवाह के समान विमलवंश का प्रवर्त्तन हुआ जिसमें बढ़ते जाते हुए पूर्व पुरुषों ने अपने चरणों—कठादि वैदिक शाखाओं के अध्ययन करने वालों—की उन्नति की (गङ्गा प्रवाह पक्ष में—बढ़ते जाते हुए वामन रूप आदि पुरुष ने जिसकी पदोन्नति या महत्त्व उत्पन्न किया), जिसकी ध्वनि (कीर्त्ति) फैली (गङ्गा पक्ष में—जो ध्वनि से युक्त है), जिसे राजाओं ने अपने-अपने मस्तकों पर धारण किया (पक्ष में—परमेश्वर अर्थात् भगवान् शङ्कर ने जिसे अपने मस्तक पर धारण किया है), जो सम्पूर्ण कलाओं के आगम से गम्भीर था (पक्ष में—कलकल ध्वनियुक्त आगमन से जो गम्भीर है), बड़े-बड़े मुनियों द्वारा जो समादृत था (पक्ष में—महामुनि जह्नु ने जिसका सम्मान किया था), जो शत्रुओं के क्षोभ को उत्पन्न करने में समर्थ था (पक्ष में—जो पर्वतों को क्षुब्ध करने अर्थात् भेदने में समर्थ है), भूतल में जिसका प्रताप व्याप्त था (पक्ष में—जिसकी दीर्घता भूतल को प्राप्त हुई है), जो कभी स्खलित अर्थात् सदाचार से च्युत नहीं हुआ तथा प्रवृत्त अर्थात् प्रकृष्ट वृत्त अर्थात् आचरण वाला बना रहा (पक्ष में—जो बिना

गृहमुनय:, आश्रितश्रौता अप्यनालम्बितालीकबककाकवः, कृत-कुक्कुटव्रता अप्यवैडालवृत्तयः, विवर्जितजनपङ्क्तयः परिहृतकपटकौह-कुचीकूर्चाकूता:, अगृहीतगह्वरा:, न्यक्कृतनिकृतयः, प्रसन्नप्रकृतयः, विहतविकृतयः, परपरीवादपराचीनचेतोवृत्तयः वर्णत्रयव्यावृत्ति-विशुद्धान्धसः, धीरधिषणा, विधूताध्येषणा:, असङ्कुसुकस्वभावा:,

लितं असरुद्धं कृत्वा गतश्च । श्रौतं वेदभवम्, निरवृत्तं च । 'भिन्नो भयाद्वा शोकाद्वा ध्वनिः काकुरुदाहृता' । अत्र च छद्म लक्ष्यते । बकस्य काकुः । बकच्छद्म यैश्च निरवृत्तमाश्रितं ते छद्मचारित्वादाश्रितबककाकवो भवन्त्येव । अमी तु न तथेति विरोधः । कुक्कुटव्रतं नियमविशेषः । यत्र कुक्कुटाण्डप्रमाणग्रासभोजनम् । न वैडाली हिंसावृत्तिर्येषां तैः विरोधे तु कुक्कुटानां व्रतं भक्षणं येन कृतं स कथं विडालवृत्तिर्न स्यात्? पङ्क्तिर्लोकप्रसिद्धो व्यवहार:,पाको वा । कपटो व्याजवृत्तिः । कूर्चा: स्फुटाः । आत्ममहिम्ना व्यवहारः, समूह इत्यन्ये । एतेष्वाकूतं परिहृतं यैः । गह्वरं पापम् । निकृतिः शाठ्यम् । प्रकृतिः स्वभावः । पराचीनं पराङ्मुखम् । अन्धोऽन्नम् । धीरा

रुकावट के बहुता है)। जिस वंश से वात्स्यायन नाम के बहुत से ब्राह्मण उत्पन्न हुए जो घर में भी मुनियों के समान आचरण करते थे, श्रौत या निरवृत्त (अर्थात् किंवदन्ती) का आश्रय लेने पर अर्थात् उसे सुनने पर भी वे मिथ्या बगुले-जैसे छल-छद्म से (अर्थात् बगुला-भगत वाली वृत्ति से) अलग रहते थे, कुक्कुट का भक्षण करने पर भी विडालवृत्ति (अर्थात् मार्जार की हिंसावृत्ति) से अलग रहते थे। (यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जो कुक्कुट का भक्षण करते हों वे मार्जार के समान हिंसाशील कैसे न हों ? परिहार यह है कि कुक्कुटव्रत एक विशेषशास्त्रीय नियम है जिसके अनुसार कुक्कुटाण्ड के बराबर ग्रास लिया जाता है), उन्होंने सामान्यजनों के लोकप्रसिद्ध व्यवहारों (अथवा दूसरों द्वारा बनाये गये भोजन) का परिहार कर रखा था। कपट-व्यवहार करने, तोते के समान फालतू बातें करने तथा अपनी बड़ाई करने से वे दूर रहते थे। पापों से दूर, धूर्त्तता से रहित, प्रसन्न स्वभाव वाले, विकाररहित, दूसरों की निन्दा के प्रति पराङ्मुख रहनेवाली मनोवृत्ति से युक्त, ब्राह्मण से भिन्न तीनों वर्णों (क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) को अलग करके अन्न ग्रहण करने वाले, स्थिर बुद्धि

प्रणतप्रणयिनः, शमितसमस्तशाखान्तरसंशीतयः उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थग्रन्थयः, कवयः, वाग्मिनः, विमत्सराः परसुभाषितव्यसनिनः, विदग्धपरिहासवेदिनः, परिचयपेशलाः नृत्यगीतवादित्रेष्वबाह्याः, ऐतिह्यस्यावितृष्णाः, सानुक्रोशाः, सर्वातिथयः, सर्वसाधुसंमताः, सर्वसत्त्वसाधारणसौहार्द्रद्रवार्द्रीकृतहृदयाः, तथा सर्वगुणोपेता राजसेनानभिभूताः, क्षमाभाज आश्रितनन्दनाः, अनिर्स्त्रिशा विद्याधराः,

---

स्थिरा। धिषणा बुद्धिः। अध्येषणा याच्ञा। असङ्कसुकः स्थिरः, मृदुर्वा। शाखाः कठाद्याः। संशीति संशयः। ग्रन्थिर्दुर्बोधः प्रदेशः। परिहासं विदन्ति, न तु स्वयं कुर्वन्ति। परिचयः संस्तवः। सुकुमाराः, अद्वन्द्वकूटा इत्यर्थः। अबाह्याः, न तु तदेकनिष्ठाः। ऐतिह्यमागमः। अनुक्रोशो दया। संमता इष्टाः। सौहार्दं प्रीतिः। सर्वे गुणा धैर्याद्याः। राज्ञां सेनया चानभिभूता ये च सर्वैर्गुणैः सत्त्वरजस्तमोभिर्युक्तास्ते कथं राजसेन गुणेनानाभिभूता भवन्तीति विरोधः। एवमुत्तरत्र विरोध उद्भावनीयः। क्षमा क्षान्तिः भूश्च। आश्रितानां नन्दना नन्दयितारः, देवोद्यानं नन्दनं च। न निस्त्रिंशा अक्रूराः। विद्यां धारयन्तीति विद्याधराः पण्डिताः, निस्त्रिंशाश्च

वाले, याचना वृत्ति का तिरस्कार करने वाले, कोमल स्वभाव वाले, विनम्र लोगों के प्रति प्रेम रखने वाले, वेद की समस्त अन्य शाखाओं के सन्देश को दूर करने वाले, सभी ग्रन्थों के तात्पर्य रूपी गाँठों को खोलने वाले, कवि, वक्ता, मात्सर्यशून्य, दूसरों की सदुक्तियों को सुनने के शौकीन, विदग्ध लोगों के परिहासों को समझने वाले, परिचय करने में निपुण, नृत्य, गीत तथा वादनकला से बाहर नहीं रहने वाले (अर्थात् इन तीनों में रुचि रखने वाले); इतिहास के प्रति तृष्णारहित नहीं रहनेवाले (अर्थात् इतिहास को जानने के इच्छुक), दयावान्, सबों के पूज्य, सभी सज्जनों के इष्ट, समस्त प्राणियों के प्रति समान सौहार्द होने के कारण आर्द्रचित्त वाले, सभी गुणों से युक्त होने पर भी राजस गुण से अभिभूत नहीं होने वाले, (परिहार पक्ष में—राजसेना से अभिभूत नहीं होने वाले), पृथ्वी पर रहते हुए भी नन्दन (देवताओं के नन्दन नामक वन का आश्रय लेने वाले (परिहार पक्ष में—क्षमावान् तथा आश्रितों को प्रसन्न रखने वाले), खड्गरहित (विद्याधर एक देवयोनि विशेष है जो हमेशा खड्ग

अजडाः कलावन्तः; अदोषास्तारकाः, अपरोपतापिनो भास्वन्तः, अनुष्माणो हुतभुजः, अकुसृतयो भोगिनः, अस्तम्भाः पुण्यालयाः, अलुप्तक्रतुक्रिया दक्षाः, अव्यालाः कामजितः, असाधारणा द्विजातयः ।

खड्गा एव । ये च विद्याधरा देवभूतास्ते सखड्गा एव । न त्वनिस्त्रिंशा इति माला-खड्गगुलिकाञ्जनादिना भेदेन भिन्नानामपि विद्याधराणां खड्गहस्तत्वं न व्यभिचरति । अजडा अमन्दधियः, अशीताश्च । कलावन्तो गीताभिज्ञाः, कलावांश्चन्द्रः स चाजडोऽशीत इति विरोधः । दोषा द्वेषाद्याः, रात्रिश्च । तारयन्तीति तारका आचार्याः, नक्षत्राणि च । उपतापः पीडा, उष्णत्वं च । भास्वन्तस्तेजस्विनः, आदित्याश्च । ते परांस्तापयन्ति । उष्मा स्मयः, दाहिकाशक्तिश्च । हुताशशब्देन हुतमिष्टमुच्यते । हुतं भुञ्जते हुतभुजः, आहिताग्न्यो वह्नयश्च । कुसृतिः शाठ्यम्, कौ भूमौ सृतिः सरणम् । भोगिनः सुखिनः, सर्पाश्च । स्तम्भः स्तब्धता, सात्त्विको भावभेदश्च, अप्रणतिर्वा, गृहधारणकाष्ठं च । पुण्यालयाः सुकृतिनः, मठादिस्थानानि च । दक्षाश्चतुराः, प्रजापतिभेदश्च दक्षः । स च लुप्तक्रतुक्रियो हररोषजेन वीरभद्रेण । व्यालाः शठाः, सर्पाश्च । कामजितः संतुष्टाः हरश्च कामजित् । असाधारणः सर्वोत्कृष्टाः । द्विजातयो विप्राः । येषां च द्वे जाती तेषां कथं नासादृश्यम् ।

धारण किये रहता है; परिहार पक्ष में—क्रूरता से शून्य तथा विद्याओं को धारण करने वाले), उष्ण होते हुए भी चन्द्रमा के सदृश (परिहार पक्ष में—अजड अर्थात् पण्डित तथा कलाओं से युक्त, रात्रिशून्य होते हुए भी नक्षत्र रूप (परिहार पक्ष में—दोषरहित तथा तारक अर्थात् उद्धार करने वाले), सूर्य रूप होते हुए भी तापकारक नहीं (परिहार पक्ष में—तेजस्वी होते हुए भी दूसरों को कष्ट नहीं देने वाले), अग्नि रूप होते हुए भी गर्म नहीं (परिहार पक्ष में—अहङ्कार रहित तथा यज्ञशेष के भोजी), भूमि पर नहीं सरकते हुए भी सर्प (परिहार पक्ष में—कुसृति अर्थात् शठता नहीं करने वाले तथा भोगी अर्थात् सुखी), स्तम्भों से रहित होने पर भी पवित्रगृह (परिहार पक्ष में—स्तब्धता से रहित तथा पुण्यवान्), यज्ञक्रिया का विध्वंस नहीं करने वाले दक्ष (प्रजापति), (परिहारपक्ष में—यज्ञक्रिया को सम्पन्न करने में निपुण), सर्पहीन कामजित अर्थात् भगवान् शङ्कर थे (परिहार पक्ष में—सर्प के समान हिंसक नहीं थे तथा काम को जीतने वाले थे) ।

तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु, संसरति च संसारे, यात्सु युगेषु, अवतीर्णे कलौ, वहत्सु वत्सरेषु, व्रजत्सु वासरेषु, अतिक्रामति च काले प्रसव-परम्पराभिरनवरतमापतति विकाशिनि वात्स्यायनकुले, क्रमेण कुबेर-नामा वैनतेय इव गुरुपक्षपाती द्विजो जन्म लेभे। तस्याभवन्नच्युत ईशानो हरः पाशुपतश्चेति चत्वारो युगारम्भा इव ब्राह्मतेजोजन्यमान-प्रजाविस्तारा नारायणबाहुदण्डा इव सच्चक्रनन्दकास्तनयाः। तत्र पाशुपतस्यैक एवाभवद् भूभार इवाचलकुलस्थितिः स्थिरश्चतुरुदधि-गम्भीरोऽर्थपतिरिति नाम्ना समग्राग्रजन्मचक्रचूडामणिर्महात्मा सूनुः।

काल इति पूर्वोक्ते। अन्यथैतत्पुनरुक्तं स्यात्। पक्षपातो भक्तिर्यस्यास्ति सः, पक्षैश्च यो याति सः। द्विजो विप्रः, विधुः, पक्षी च। युगारम्भा अपि चत्वारः। ब्रह्म वेदादि, स्रष्टा च ब्रह्मा। सच्चक्रस्य साधुवृन्दस्य नन्दकास्तोषयितारः। चक्रं सुदर्शनं च। नन्दकः खड्गश्च। बाहवोऽपि चत्वारः। अचलकुलस्थितिरभिन्नवर्ष-मर्यादः। अचलानां गिरीणां कुलैर्वृन्दैः स्थितिर्यस्य। चतुरुदधिवत्तैश्च गम्भीरः।

इस प्रकार (उस वंश में) उन (वत्सगोत्रीय ब्राह्मणों) के उत्पन्न होने पर, संसारचक्र के सरकने पर, युगों के बीत जाने पर, कलियुग के अवतीर्ण होने पर, वर्षों के बीत जाने पर, दिनों के गुजर जाने पर, समय के चले जाने पर, जन्म-परम्परा से वात्स्यायन कुल के निरन्तर विकासशील होने पर क्रम से कुबेर नाम के वैनतेय (गरुड) के समान गुरुपक्षपाती (ब्राह्मण पक्ष के—गुरु का पक्ष लेने वाला अर्थात् गुरुभक्त तथा गरुड पक्ष में—दीर्घ पंखों वाला) ब्राह्मण ने जन्म लिया। उस (कुबेर) के अच्युत, ईशान, हर तथा पाशुपत नाम के चार पुत्र हुए जो युगारम्भ के समान, ब्रह्म तेज से प्रजा का विस्तार करने वाले, तथा भगवान् विष्णु के भुजदण्ड के समान सज्जन-समूह को प्रसन्न करने वाले थे। (यहाँ पर "सच्चक्रनन्दन" का अर्थ सज्जन-समूह को प्रसन्न करने वाला है तथा चूँकि भगवान् नारायण के हाथ में सुदर्शन नामक चक्र तथा नन्दक नामक खड्ग है अतएव नारायण के बाहुदण्ड के समान वाले अर्थ की सङ्गति बैठती है।) उनमें से पाशुपत के पर्वतों से अवस्थित पृथ्वी के बोझ के समान वंश को स्थिर करने वाला तथा सागरों के सदृश गम्भीर सब ब्राह्मणों में

सोऽजनयद् भृगुं हंसं शुचिं कविं महीदत्तं धर्मं जातवेदसं चित्रभानुं त्र्यक्षं महीदत्तं विश्वरूपं चेत्येकादश रुद्रानिव सोमामृतरसशीकरच्छुरितमुखान्पवित्रान्पुत्रान्। अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्। स बाल एव बलवतो विधेर्वशादुपसंपन्नया व्ययुज्यत जनन्या। जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत्। अवर्धत च तेनाधिकतरमाधीयमानधृतिर्धाम्नि निजे।

कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चास्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्य पितापि श्रुतिस्मृतिविहितं कृत्वा द्विजजनोचितं निखिलं पुण्यजातं कालेनादशमीस्थ एवास्तमगमत्। संस्थिते च पितरि महता

अग्रजन्मानो द्विजाः। सोमस्तृणभेदः, इन्दुश्च। उपसंपन्ना मृता। निजे धाम्नि स्वे गृहे।

उपनयनं मेखलादानम्। समावृत्तो निष्पादितवृत्तः। स्नातक इत्यर्थः। वेदवेदाङ्गपाठक इत्यन्ये। ईषदसमाप्तश्चतुर्दशवर्षश्चतुर्दशवर्षदेशीयः। 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः'। दशामुपेतो दशमीस्थ उदाहृतः, न दशमीस्थः।

श्रेष्ठ अर्थपति नामक महात्मा पुत्र हुआ। उस अर्थपति ने एकादश रुद्रों के समान—भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, महिदत्त, विश्वरूप—ये ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये जो सोम (तृणविशेष अथवा चन्द्रमा) के अमृतमय रसबिन्दुओं से सिक्त मुखवाले तथा पवित्र थे। उनमें से चित्रभानु ने राजदेवी नाम की ब्राह्मणी में बाण नामक पुत्र को प्राप्त किया। वह (बाणभट्ट) बचपन में ही बलवान् दैवयोग से माता के मर जाने के कारण मातृहीन हो गया। पिता ने ही स्नेह के कारण उसकी माता के स्थान को पूरा किया अर्थात् माता के समान उसे पाला पोसा। उनके द्वारा अत्यधिक धैर्य धारण करता हुआ (वह बाणभट्ट) अपने घर पर (कालक्रमानुसार) बढ़ा।

बाण के उपनयन आदि क्रियाकलाप तथा समावर्त्तन संस्कार सम्पन्न किये गये। उसकी आयु चौदह वर्ष की पूरी भी नहीं हो पाई थी कि उसके पिता भी श्रुति-स्मृति विहित एवं ब्राह्मणोचित समस्त पुण्यकर्मों को सम्पन्न करके बिना वृद्धावस्था को प्राप्त हुए ही चल बसे। पिता के मर जाने पर उसने महान्

शोकेनाभीलमनुप्राप्तो दिवानिशं दह्यमानहृदयः कथंकथमपि कतिपया-न्दिवसानात्मगृह एवानैषीत्। गते च विरलतां शोके शनैः शनैर-विनयनिदानतया स्वातन्त्र्यस्य, कुतूहलबहुलतया च बालभावस्य, धैर्यप्रतिपक्षतया च यौवनारम्भस्य, शैशवोचितान्यनेकानि चापलान्या-चरन्नित्वरो बभूव। अभवंश्चास्य सवयसः समानाः सुहृदः सहा-याश्च। तथा च। भ्रातरौ पारशवौ चन्द्रसेनमातृषेणौ, भाषाकविरी-शानः परं मित्रम्, प्रणयिनौ रुद्रनारायणौ, विद्वांसौ वारबाणवास-बाणौ, वर्णकविर्वेणीभारतः प्राकृतकृत्कुलपुत्रो वायुविकारः, बन्दिनावन-नङ्गबाणसूचीबाणौ, कात्यायनिका चक्रवाकिका, जाङ्गुलिको मयूरकः,

---

अपूर्णायुरित्यर्थः। संस्थितो मृतः। आभीलं कष्टम्। इत्वरो गमनशीलः। 'अभवंश्च' इत्यादिनात्मनस्तथाभूतकलावित्संपर्कमैश्वर्यातिशयं दर्शयति। पारशवो द्विजः शूद्रायां जातः। 'परस्त्री परश्वम्' इति विदाद्यञ् परश्वादेशश्च। भाषागेयवस्तु-वाचस्तेषु वर्णकविः। गाथादिषु गीतिद इत्यर्थः। अपभ्रष्टगीतविद्यः। 'पञ्चाश-द्वर्षदेशीयां वीरां संस्थितभर्तृकाम्। वदन्ति कात्यायनिकां धृतकाषायवाससम्'॥

शोक के कारण कष्ट को प्राप्त किया तथा दिन-रात जलते हुए हृदय से कुछ दिन अपने घर पर ही बिताये। उसके बाद शोक के धीरे-धीरे कम होने पर वह अविनय मूल स्वातन्त्र्य के कारण, बाल्यावस्था में अधिक कौतुक होने के कारण तथा यौवन के प्रारम्भ में धैर्य के नहीं रहने के कारण बाल्यावस्था के अनुकूल अनेक चपलताओं को करता हुआ आवारा (इत्वर) हो गया। अब तो उसके बहुत-से मित्र और सहायक हो गये, जो उसके समवयस्क तथा उसी के समान (आवारा) थे। जैसे कि—चन्द्रसेन और मातृषेण ये दोनों इसके भाई थे जो, ब्राह्मण से शूद्र स्त्री में उत्पन्न हुए (पारशव) थे। संस्कृत आदि भाषाओं का कवि ईशान इसका परम मित्र था। रुद्र और नारायण इसके प्रेमी थे। इसी प्रकार विद्वान् वारबाण एवं वासबाण, वर्णन-निपुण कवि वेणीभारत, प्राकृत-कवि कुलीन वायुविकार, स्तुतिपाठ करने वाले अनङ्गबाण एवं सूचीबाण, चक्रवाकिका नाम की विधवा संन्यासिनी (कात्यायनिक), मयूर नामक विषवैद्य,

ताम्बूलदायकश्चण्डकः, भिषक्पुत्रो मन्दारकः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः, कलादश्चामीकरः हैरिकः सिन्धुषेणः, लेखको गोविन्दकः, चित्रकृद्वीरवर्मा, पुस्तकृत्कुमारदत्तः, मार्दङ्गिको जीमूतः, गायनौ सोमिलग्रहादित्यौ, सैरन्ध्री कुरङ्गिका, वांशिकौ मधुकरपारावतौ, गान्धर्वोपाध्यायो दर्दुरकः, संवाहिका, केरलिका लासकयुवा ताण्डविकः, आक्षिक आखण्डलः, कितवो भीमकः, शैलालियुवा शिखण्डकः, नर्तकी हरिणिका, पाराशरी सुमतिः, क्षपणको वीरदेवः, कथको जयसेनः, शैवो वक्रघोणः, मन्त्रसाधकः करालः असुरविवरव्यसनी लोहिताक्षः, धातुवादविद्विहंगमः, दार्दुरिको दामोदरः, ऐन्द्रजालिकश्चकोराक्षः, मस्करी ताम्रचूडकः। स एभिरन्यैश्चानुगम्यमानो बालतया निघ्नतामुपगतो देशान्तरावलोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः सत्स्वपि पितृपिता-

जाङ्गुलिको गारुडिकः। भिषग्वैद्यः। 'स्वर्णकारः कलादः स्यात्तदध्यक्षस्तु हैरिकः'। पुस्तकृल्लेप्यकारः। 'प्रसाधनोपचारज्ञा सैरन्ध्री स्ववशा स्मृता'। संवाहिका या पादादिमर्दनं विधत्ते। लासको नर्तयति यः। युवेत्यादिना वयसः समानत्वमुच्यते। अक्षैर्दीव्यतीत्याक्षिको द्यूतकारः। कितवो धूर्तः। शैलाली स्वयं यो नृत्यति नटः। पाराशरी भिक्षुः। असुरविवरव्यसनी पातालाभिलाषी। धातुवादविद्रसवादज्ञः। मस्करी परिव्राट्। निघ्नतामस्वातन्त्र्यम्। कौतुकेति। न पुनरर्थाभिलिप्सया।

चण्ड नामक तमोली, वैद्यपुत्र मन्दारक, पुस्तकवाचक सुदृष्टि, स्वर्णकार चामीकर, हीरे बेचने वाला सिन्धुषेण, लेखक गोविन्द, चित्रकार वीर वर्मा, लिपिकर्त्ता कुमारदत्त, मृदङ्ग बजाने वाला जीमूत, गायक सोमिल एवं ग्रहादित्य, सैरन्ध्री (प्रसाधिका—बनाव-सिंगार करने वाली) कुरङ्गिका, वंशी बजाने वाले मधुकर एवं पारावत, गान्धर्वोपाध्याय (सङ्गीतगुरु) दर्दुरक, संवाहिका (पाँव दबाने वाली) केरलिका, नर्त्तक ताण्डविक, पासा खेलनेवाला आखण्डल, धूर्त्त भीमक, युवानट शिखण्डक, नाचने वाली हरिणिका, भिक्षुक सुमति, जैनसाधु वीरदेव, कथावाचक जयसेन, शैववक्रघोण, मन्त्रसिद्ध करने वाला कराल, पातालज्ञान में निपुण लोहिताक्ष, रसायन का ज्ञाता विहंगम, दर्दुरवाद्यवादक दामोदर, चकोराक्ष नाम का जादूगर तथा ताम्रचूड नामक परिव्राजक आदि बाणभट्ट के मित्र एवं सहायक थे। ये लोग तथा अन्य कुछ लोग उस (बाणभट्ट) के अनुयायी थे तथा लड़कपन के कारण विवश होकर देश-देशान्तर को देखने

महोपात्तेषु ब्राह्मजनोचितेषु विभवेषु सति चाविच्छिन्ने विद्याप्रसङ्गे गृहान्निरगात् । अगाच्च निरवग्रहो ग्रहवानिव नवयौवनेन स्वैरिणा मनसा महतामुपहास्यताम् ।

अथ शनैः शनैरत्युदारव्यवहृतिमनोहृन्ति बृहन्ति राजकुलानि वीक्षमाणः, निरवद्यविद्याविद्योतितानि गुरुकुलानि च सेवमानः, महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीश्चोपतिष्ठमानः, स्वभावगम्भीरधीधनानि विदग्धमण्डलानि च गाहमानः, पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवंशोचितां प्रकृतिमभजत् । महतश्च कालात्तमेव भूयो वात्स्यायनवंशाश्रममात्मनो जन्मभुवं ब्राह्मणाधिवासमगमत् । तत्र च चिरदर्शनादभिनवीभूतस्नेहसद्भावैः

एतदेव सत्स्वपीत्यादिना प्रकाशयति । निरवग्रहः स्वतन्त्रः । ग्रहवान्भूतगृहीतः । स्वैरिणा स्वतन्त्रेण ।

अत्युदारेत्यादिः प्रकृतोपयोगी, यस्मात्कविना तथाविधवस्तुवेदिनावश्यमेव भवितव्यम् । वीक्षमाण इत्यनेनात्मनः किमपि प्रकृष्टमुत्कर्षातिशययोगित्वमाह । अथ च वीक्षमाणो न तु गुरुकुलवत्सेवमानः । गाहमान इत्यनेन तेजस्वित्वमाहा-

---

की उत्सुकता से भरा हुआ हृदय वाला वह (बाणभट्ट) बाप-दादों की अर्जित की हुई ब्राह्मणजनोचित संपत्तियों के होते हुए भी तथा विद्या-प्रसंग के अविच्छिन्न होते हुए भी घर से निकल पड़ा । स्वच्छन्द बाणभट्ट ग्रहग्रस्त व्यक्ति के सदृश नवीन यौवन तथा स्वेच्छाचारी मन से महापुरुषों के लिए उपहास का पात्र बन गया ।

इसके बाद धीरे-धीरे उदार व्यवहारों के कारण मन को खींचने वाले बड़े-बड़े राजघरानों को देखता हुआ, अनिन्द्य विद्याओं से उद्भासित गुरुकुलों का सेवन करता हुआ, उत्कृष्ट सम्भाषणों से गम्भीर गुणवानों की गोष्ठी में भाग लेता हुआ, स्वभाव से ही गम्भीर बुद्धिमान् चतुर पुरुषों की मण्डली में निवास करता हुआ फिर से अपनी उसी वैदुष्यपूर्ण वंशोचित प्रकृति को प्राप्त हुआ । बहुत समय के बाद पुनः उसने अपनी जन्मभूमि और वात्स्यायन वंशी ब्राह्मणों के गाँव (प्रीतिकूट) में पहुँचा । वहाँ चिरकाल के दर्शन से नवीन प्रेम वाले

ससंस्तवप्रकटितज्ञातेयैराप्तैरुत्सवदिवस इवानन्दितागमनो बालमित्रमण्डल-मध्यगतो मोक्षसुखमिवान्वभवत् ।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते वात्स्यायनवंशवर्णनं नाम प्रथम उच्छ्वासः ।

त्मनः । वैपश्चितीं विद्वज्जनोचिताम् । संस्तव आदरः । ज्ञातीनां कर्म ज्ञातेयं बन्धुत्वम् । 'कपिज्ञात्योर्ढक्' । आप्तैरिति । बन्धुभिर्योगिभिश्च । योगिपक्षे बाल इव बालो मित्रो रविर्निस्तेजस्त्वात् । उक्तं च—'तपस्यन्तं रविं दृष्ट्वा निस्तेजा जायते रविः । मोक्षमार्गप्रयत्ने तु तेजो नैवास्य विद्यते ॥' इति । मित्रं सखा, सूर्यश्च मित्रः । मण्डलं समूहः । बिम्बम् । मोक्षसुखमपि सूर्यबिम्बगतैरनुभूयत इति । आख्यायिकासु कविभिर्निजवंशवर्णनं कानने तथा वंशः ख्यापितः स्यादिति । आत्मनश्च विटवर्णनम् । सकलकलाकौशलं ममास्तीति हर्षस्य चरिते च वर्णयितव्ये नाप्रस्तुतं चैतदिति शिवम् ॥

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते प्रथम उच्छ्वासः ।

परिचय से बन्धुत्व को प्रकट करने वाले आप्त पुरुषों के द्वारा उत्सव दिवस के सदृश उसके आगमन का अभिनन्दन किया गया तथा बचपन के मित्रों की मण्डली के बीच अपने को पाकर उसने (योगी के समान) मोक्ष-सुख-जैसा अनुभव प्राप्त किया ।●

श्रीमहाकवि बाणभट्ट विरचित हर्षचरित में "वात्स्यायनवंश वर्णन" नामक प्रथम उच्छ्वास समाप्त ।

● बालमित्रमण्डलमध्यगतः—यहाँ पर मित्र शब्द का सूर्य अर्थ भी किया जाता है। योगी लोग निस्तेज सूर्यमण्डल के बीच पहुँच कर जिस प्रकार मोक्ष-सुख का अनुभव करते हैं उसी प्रकार बचपन के मित्रों के बीच पहुँच कर बाणभट्ट ने भी मोक्ष-सुख-जैसा अनुभव किया; यही अभिप्रेत अर्थ है।

द्वितीय उच्छ्वासः

अतिगम्भीरे भूपे कूप इव जनस्य निरवतारस्य ।
दधति समीहितसिद्धि गुणवन्तः पार्थिवा घटकाः ॥ १ ॥
रागिणि नलिने लक्ष्मीं दिवसो निदधाति दिनकरप्रभवाम् ।
अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतां व्यसनम् ॥ २ ॥

अतीत्यादि । यस्य क्रोधादिभावगण इङ्गितादिना परेण न चेत्यते स गम्भीरः । उक्तं च—'यस्य प्रसादादाकारात्क्रोधहर्षभयादयः । भावस्था नोपलभ्यन्ते तद्गाम्भीर्यमुदाहृतम् ॥' इति । अगाधश्च । अवतरणमवतारः, प्रवेशनम् । अवतरन्ति येनेत्यवतारः, सोपानादिश्च । समीहितसिद्धि राजगृह आत्मनः प्रवेशलक्षणम् जलग्रहलक्षणं च । गुणा औदार्यादयः, आकर्षणरज्जवश्च । पार्थिवा राजानः, पृथ्वीविकाराश्च । घटयन्ति वाञ्छितेन प्रयोजयन्तीति घटकाः, कुम्भाश्च । अनेन तादृशे राज्ञि बाणस्य कृष्ण एव समीहितसिद्धिरध्यास्यत इति सूचितम् ॥ १ ॥

रागिणि रक्ते, विषयाभिषङ्गिणि च । लक्ष्मीं शोभाम्, समृद्धिं च । अत्र नलिनादिकमप्रस्तुतम् बाणाद्यास्तु प्रस्तुताः । अनेन कृष्ण ईदृशे बाणे राजप्रभवां श्रियं निधास्यतीत्युक्तम् ॥ १ ॥

जिस प्रकार किसी गहरे कुएँ से पानी लेने के लिए सीढ़ी आदि जैसे उतरने के साधनों के अभाव में रस्सी के साथ घड़े का आश्रय लिया जाता है उसी प्रकार अत्यन्त गम्भीर स्वभाव वाले राजा तक पहुँच पाने में असमर्थ व्यक्ति की अभीष्ट-सिद्धि गुणवान् पार्थिव संयोजक लोग ही करते हैं ॥ १ ॥[1]

रागयुक्त कमल में सूर्य से उत्पन्न होने वाली सुषमा को दिन समाहित कर देता है । गुणों एवं दोषों की ओर ध्यान दिये बिना दूसरों का उपकार करना सज्जनों का सहज व्यसन होता है ॥ २ ॥[2]

---

१. कृष्णवर्द्धन ने ही बाण को हर्षवर्द्धन से मिला कर उसकी अभीष्ट सिद्धि की थी । द्वितीय उच्छ्वास में इसी प्रसङ्ग का वर्णन है अतः यहाँ पर गुणवान् पार्थिव घटक के रूप में कृष्णवर्द्धन की ओर ही सङ्केत किया गया है ।

२. यहाँ पर सूर्य सम्राट् हर्षवर्द्धन का तथा दिवस कृष्णवर्द्धन के तात्पर्यावबोधक हैं । नलिन शब्द बाण का तात्पर्यावबोधक है ।

अथ तत्रानवरताध्ययनध्वनिमुखराणि, भस्मपुण्ड्रकपाण्डुरललाटैः कपिलशिखाजालजटिलैः कृशानुभिरिव क्रतुलोभागतैर्बटुभिरध्यास्यमानानि, सेकसुकुमारसोमकेदारिकाहरिनायमानप्रघनानि कृष्णाजिनविकीर्णशुष्यत्पुरोडाशीयश्यामाकतण्डुलानि बालिकाविकीर्यमाणनीवारबलीनि, शुचिशिष्यशतानीयमानहरितकुशपूलीपलाशसमिन्धि, इन्धनगोमयपिण्डकूटसंकटानि आमिक्षीयक्षीरक्षारिणीनामग्निहोत्रधेनूनां खुरवल-

अथेत्यादिना। बाणो बान्धवानां भवनानि भ्रमन्सुखमतिष्ठदिति संबन्धः। शिखा चूडा, ज्वाला च। सोमो यज्ञियं द्रव्यम्। केदारिका स्वल्पं क्षेत्रम्। प्रघटनेषु तथोचितत्वात्। अहरिता हरिताः संपद्यमाना हरितायमानाः लोहितादित्वात्क्यष्। प्रघनान्यङ्गनानि। 'उशन्ति प्रघनाभिख्यामेकदेशे तु वेश्मनः'। पुरोडाशीयेत्यादि सहितेत्यर्थ ईर्यः। बालिका कुमार्यः। नीवारा अकृष्टपच्या व्रीहयः। कूटो राशिः। आमिक्षीयमिति। तप्ते पयसि दध्यानयति सा वैश्वदेवामिक्षा। 'आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद्दधियोगतः' इति। तस्यै हितमामिक्षीयम्। अमिक्षाप्रकृतित्वमस्य च योग्यत्वात्। अग्निहोत्रेषु तस्या अनाम्नातत्वात्, यद्वा,—यदन्नस्य जुहुयादिति। यस्या अपि हवनं भवत्येव।

इसके बाद निरन्तर अध्ययन की ध्वनि से मुखरित होने वाले, कपिल वर्ण वाली ज्वाला की जटाओं से युक्त अग्नि के समान त्रिपुण्ड्र भस्म से उज्ज्वल ललाट वाले तथा यज्ञ के लोभ से आये हुए बटु लोग जहाँ उपस्थित थे ऐसे, सींचे जाने के कारण सुकोमल सोम की क्यारियों से हरे-भरे आंगनों वाले, पुरोडाश बनाने के लिए कृष्ण मृग चर्म पर बिखेर कर सुखाये जा रहे सावां से युक्त, कुआँरी कन्याओं द्वारा बिना जोत के पके हुए नीवारों की बलि जहाँ बिखेरी गई थी ऐसे सैकड़ों पवित्र शिष्यों द्वारा जुटाई जा रही कुशा की हरी आंटियों तथा पलाश की लकड़ियों से युक्त जलावन के लिए गोबर के कण्डों के ढेर से युक्त, आभिक्षा[1] के लिए उपयुक्त दूध देने में समर्थ तथा अग्नि-

१. अभिक्षा—गर्म दूध में दही डालकर अभिक्षा बनाई जाती है और उसे वैश्वदेव को अर्पित किया जाता है। यह एक यज्ञीय पदार्थ है।

र्यैर्विलिखिताजिरवितर्दिकानि कमण्डलव्यमृत्पिण्डमर्दनव्यग्रयतिजनानि, वैतानवेदीशङ्कव्यानामौदुम्बरीणां शाखानां राशिभिः पवित्रिपर्यन्तानि वैश्वदेवपिण्डपाण्डुरितप्रदेशानि हविर्धूमधूसरिताङ्गणावटपिकिसलयानि, वत्सीयबालकलालितललत्तरलतर्णकानि क्रीडत्कृष्णसारच्छागशावक-प्रकटितपशुबन्धप्रबन्धानि, शुकसारिकारब्धाध्ययनदीयमानोपाध्यायविश्रा-न्तिसुखानि, साक्षात्त्रयीतपोवनानीव चिरदृष्टानां बान्धवानां प्रीयमाणो भ्रमन्भवनानि, बाणः सुखमतिष्ठत् ।

वलयैः समूहैः । वितर्दिका वेदिका । कमण्डलुर्मुनिकरकस्तस्मै हिताः कमण्ड-लव्याः । 'उगवादिभ्यो यत्' । यतीनां निष्किंचनत्वादादरत्वाच्च स्वयंकरणम् । वितानो यज्ञः, तत्र भवा वैतानी यज्ञाग्निकार्यभूः । शंकुः कीलकः, तस्मै हितः शङ्कव्यः । औदुम्बराणामिति । तासां याज्ञयत्वात् । वत्सेभ्यो हिता वत्सीयाः वत्सपरिचर्यातुराः तर्णकाः सद्योजाता वत्साः । कृष्णसारेति छागविशेषणम् । तदुक्तम्—'लोहितसारङ्गः कृष्णसारङ्गो वा' इति; सारङ्गशब्दः शबले वर्तते । कृष्णसारा मृगा इति केचित् । तत्तु न । तेषां तदानुपयुक्तत्वात् । पशुबन्धा यज्ञाः ।

होत्र के लिए उपस्थित गायों के खुरों से जिनके आंगन की वेदियाँ कोड़ी जा रहीं थीं ऐसे, (अपने-अपने कमण्डलों को मिट्टी से मलने में व्यग्र यति लोग से युक्त, वैतान अग्नियों की वेदी में लगाये जाने वाले शङ्कुओं के लिए गूलर की टहनियों का ढेर रखे जाने के कारण पवित्र किनारे वाले वैश्व देवों के लिए पिण्ड रखने के कारण उजले स्थानों वाले, यज्ञ के धुएँ से आङ्गन में अवस्थित वृक्ष के पत्ते जहाँ मैले हो रहे थे ऐसे, बछड़ों की परिचर्या में आतुर लड़कों द्वारा दुलराये जा रहे चञ्चल तथा सुकोमल नवजात बछड़ों से युक्त, खेलते हुए काले-छाग-शिशुओं से जहाँ पशुबन्ध (यज्ञ) की व्यवस्था सूचित होती थी ऐसे, शुकसारिकाएँ स्वयं अध्ययन करा कर गुरुओं को विश्राम का सुख जहाँ दे रहीं थीं ऐसे, तथा त्रयी विद्या के साक्षात् तपोवनों की भाँति—बहुत दिनों के बाद देखे गये बन्धु-बान्धवों के घरों में प्रेमपूर्वक घूमता हुआ बाण सुखपूर्वक रहने लगा ।

तत्रस्थस्य चास्य कदाचित्कुसुमसमययुगमुपसंहरन्नजृम्भत ग्रीष्माभिधानः समुत्फुल्लमल्लिकाधवलाट्टहासो महाकालः । प्रतपन्निर्जितस्यास्तमुपगतवतो वसन्तसामन्तस्य बालापत्येष्विव पयःपायिषु नवोद्यानेषु दर्शितस्नेहो मृदुरभूत् । अभिनवोदितश्च सर्वस्यां पृथिव्यां सकलकुसुमबन्धनमोक्षमकरोत्प्रतपन्नुष्णसमयः । स्वयमृतुराजस्याभिषेकार्द्राश्रामरक-

कुसुमसमयो वसन्तः, स एव युगं कल्पस्तल्लक्षणं वा युगं मासद्वयम् । समुत्फुल्लमल्लिकाभिर्धवला अट्टा विक्रयस्थानानि विकासो यत्र, अन्यत्र—तद्वदट्टहास उद्धतं हसितं यस्य । शब्दशक्तिमूलानुरणनव्यङ्ग्यरूपो ध्वनिश्च । प्रकृतवर्णने ह्यन्यदप्यत्र प्रतीयते । न वाच्यतया । तथा च—महाकालः, साट्टहासः कल्पमुपसंहरञ्जृम्भते मुखं च विदारयति । महान्कालो ग्रीष्माख्यः भैरवश्च । पयो जलम्, क्षीरं च । बालापत्यपक्षे— नवमुद्यानमुद्गमनं येषां तेषु । इदम्प्रथमतयागमनप्रवृत्तेष्वित्यर्थः । दर्शितस्नेह इत्यनेनास्य विजिगीषु व्यवहार आरोपितः । निर्जितस्य च पुनः प्रतिष्ठापनमेव युक्तम् । स्नेहः आर्द्रता, प्रीतिश्च । मृदुरकठोरः सदयश्च । अभिनवोदित इति साधारणं विशेषणम् । वासन्तिकतृष्णाभिप्रायेण सकलपद्मबन्धनं वृन्तकारी च । प्रतपन्प्रकर्षेण तपन्; अन्यत्र,— शत्रुहृदयेषु प्रतापं जनयन् । अभिनवोदितश्च राजा बन्धनमोक्षं करोति । उक्तं हि—'युवराजाभिषेके वा परचक्रावरापणे । पुत्रजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते ॥' इति । आदरप्रतिपादनाय स्वयं शब्दः । अभिषेकः स्नानम् । अन्यत्र—मङ्गलजलपातनं

वहाँ बाण के रहते हुए वसन्त के दो महीनों का उपसंहार करता हुआ ग्रीष्म नामक महाकाल खिली हुए चमेली के अट्टहास के साथ जँभाई लेने लगा । तत्क्षण हारे हुए तथा अस्त को प्राप्त हुए वसन्तरूपी सामन्त के दुधमुँहे नवजात बाल-बच्चों के सदृश जल से सींचे जाने वाले नये-नये उद्यानों के प्रति (ग्रीष्म ऋतु) स्नेह प्रकट करता हुआ कोमल हो उठा । (जिस प्रकार नवोदित राजा कैदियों के बन्धन खोल कर उन्हें मुक्त करा देता है उसी प्रकार) तपते हुए नवोदित ग्रीष्म काल ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर सभी फूलों के बन्धन खोल दिये । ऋतु राज वसन्त के अभिषेक के कारण आर्द्र में हुए

लापा इवागृह्यन्त कामिनीचिकुरचयाः कुसुमायुधेन, हिमदग्धसकलकमलिनीकोपेनेव हिमालयाभिमुखीं यात्रामदादंशुमाली ।

अथ ललाटंतपे तपति तपने चन्दनलिखितललाटिकापुण्ड्रकैरलकचीरचीवरसंवीतैः स्वेदोदबिन्दुमुक्ताक्षवलयवाहिभिर्दिनकराराधननियमा इवागृह्यन्त ललनाललाटेन्दुद्युतिभिः । चन्दनधूसराभिरसूर्यम्पश्याभिः कुमुदिनीभिरिव दिवसमसुप्यत सुन्दरीभिः। निद्रालसा रत्नालोकमपि

तत्सम्पर्कवशाच्चार्द्रत्वम् । चिकुराः केशाः । ते हि तदा स्नानार्द्रतया संयमनात्सुन्दरतया विशेषतः शृङ्गारमुद्दीपयन्ति । तथा च महाकवेः कालिदासस्य—'स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु । कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे रतिमङ्गनानाम्' ॥ यथा वा राजशेखरस्य—'तदा ते स्नातानां दरदलितमल्लीमुकुरिणाम्' इत्यादि । हिमाभिप्राये च हिमालयग्रहणम् । अंशूनलति धारयतीत्यनेन हिमं प्रतिभवनशीतलत्वमस्योच्यते ।

ललाटं तपतीति ललाटं तपः इति खश् । खरतर इत्यर्थः । ललाटेऽलंकारो ललाटिका । 'कर्णललाटात्कनलंकारे' । ललाटिकेव पुण्ड्रकं तिलकमिति सर्वत्र रूपकम् । संवीतैः प्रावृतैः । चन्दनेन च तद्वद्धूसराः । असूर्यम्पश्याभिरिति । आतपासहिष्णुतया । अन्यत्र,—स्वभावात् । दिवसं सुप्यत इति द्रव्यकर्मणि लादिविधानात्कर्मणि द्वितीयैव । भावे लः । यदा तु कर्माप्याख्याततया विवक्ष्यते तदा दिवसः सुप्यत इति भाव्यमिति निर्णीतम् । स्वापो निद्रा, मुकुलता च ।

कामिनियों के चामर कलाप सदृश केशपास में मानों पुष्पधन्वा कामदेव ने स्वयं निवास किया । मानो हिम से जली हुई सभी कमलिनियों के क्रोध के कारण सूर्य ने हिमालय की ओर यात्रा की ।

अब ललाट को तपाने वाले सूर्य के तपने पर कमलिनियों के ललाटरूपी चन्द्रमा चन्दन के तिलक लगा, केशों के वस्त्र खण्ड पहन और पसीने की बूंदों को मोती की अक्षमालिका के समान धारण कर सूर्य की नियमित आराधना करने लगे । चन्दन लगाने के कारण मटमैली सुन्दरियां कुमुदिनियों के सदृश सूर्य की गर्मी को न सहन करने में असमर्थ होकर दिन में ही सोने लगीं । नींद से अलसाई आँखें रत्नों के प्रकाश को भी नहीं सह पातीं थीं फिर तीव्र

नासहन्त दृशः, किमुत जरठमातपम् । अशिशिरसमयेन चक्रवाकमिथुनाभिनन्दिताः सरित इव तानिमानमानीयन्त सोडुपाः शर्वर्यः । अभिनवपटुपाटलामोदसुरभिपरिमलं न केवलं जलम्, जनस्य पवनमपि पातुमभूदभिलाषा दिवसकरसन्तापात् ।

क्रमेण च खरखगमयूख खाण्डतशैशवे, शुष्यत्सरसि, सीदत्स्रोतसि, मन्दनिर्झरे झिल्लिकाझांकारिणि, कातरकपोतकूजितानुबन्धबाधारतविश्वे, श्वसत्पतत्रिणि, करीषंकषमरुति, विरलवीरुधि, रुधिरकुतूहलिकसरि-

जरठं कठोरम् । यतो ग्रीष्मेण तनूकृता अत आह—चक्रवाकेत्यादि । रात्रौ किल चक्रवाकानां वियोगो भवतीत्यल्पतया तैस्ता अभिनन्द्यन्ते । सरितश्च वृत्तिकारिकास्तपामिति तदभिनन्दनम् । उडुपः शशी, प्लवश्च ।

क्रमेण चेत्यादौ । एवं विधे निदाघकाले कठोरीभवति सत्युन्मत्ता मातरिश्वानः प्रावर्तन्तेति सम्बन्धः । खगो रविः । शुष्यदिति साभिप्रायम् । स्रोतसश्च प्रसरणधर्मत्वादाह—सीदादिति । समन्तादावेगगामिनः । झिल्लिका चीरीनामकः प्राणी यो वर्षासु तरुषु सीत्कारमुच्चैः करोति । कातरेति । कपोता हि मेदोमयत्वान्नितान्तं घर्मासहाः । अत एव पतत्रित्वेऽपि पृथगुपादानम् । पतत्रित्वाभिप्रायेण श्वासमित्येतावदेव समुचितम् । एषां तथाभूतरुजाभावात् । करीषो

आतप का तो कहना ही क्या । ग्रीष्म काल के कारण चक्रवाक पक्षियों के जोड़ों द्वारा अभिनन्दित चन्द्रमा सहित रातें नदियों के समान क्षीण होने लगीं । सूर्य की गर्मी के कारण लोग न केवल नवविकसित पटल पुष्पों से सुगन्धित जल को पीने की अपितु इस प्रकार की सुगन्ध से पूरित वायु को भी पीने की इच्छा करने लगे ।

क्रमशः प्रचण्ड सूर्य-किरणों के कारण (सूर्य के) बचपन के घट जाने पर, सरोवरों के सूख जाने पर नदियों के प्रवाहों के धीमे पड़ जाने पर, झरनों के शिथिल पड़ जाने पर, झिल्लियों के झंकारने पर, कबूतरों के आर्त्त स्वर से संसार के भर जाने पर, पक्षियों के हाँफने पर गोबर बटोरने वाली हवा के चलने पर, लताओं के छिटपुट रूप से बच जाने पर, कड़े धान की के लाल-लाल

किशोरकलिह्यमानकठोरधातकीस्तबके, ताम्यत्स्तम्बेरमयूथवमथुतिम्यन्म-
हामहीधरनितम्बे, दिनकरदूयमानद्विरददीनदानाश्यानदानश्यामिकालीन-
मूकमधुलिहि, लोहितायमानमन्दारसिन्दूरितसीम्नि, सलिलस्यन्दसंदोह-
संदेहमुह्यन्महामहिषविषाणकोटिविलिख्यमानस्फुटस्फाटिकदृषदि, घर्म-
मर्मरितगर्मुति, तप्तपांशुकुकूलकातरविकिरे, विवरशरणश्वाविधे, तटार्जुन-
कुररकूजाज्वरविवर्तमानोत्तानशफरशारपङ्कशेषपल्वलाम्भसि, दावजनित-

गोमयम् । वीरुत्सपर्णशाखाजटिलं कुप्यकादि । किशोरकेति । बालत्वेन तृष्णा-द्यसहिष्णुता, मुग्धतातिशयश्च द्योत्यते । धातकी लताभेदः । स्तबकः पुष्पगुच्छः । स्तम्बेरमो हस्ती । वमथुः करिकरशीकरः । तिम्यन्त आर्द्रीभवन्तः । नितम्बाः सानवः । द्विरदाः करिणः । दीनं क्षीणम् । आश्याना अप्रसरणधर्मकत्वादीषच्छुष्कम्य।मिका मदलेखासम्बन्धिनी । लीना अतितर्षाच्छ्लिष्टाः । मूका गुञ्जितहीनाः । अलोहिता लोहिता भवन्तो लोहितायमानाः । मन्दाराः पारिभद्रद्रुमाः । सिन्दूरिता अर्हितसिन्दूरा इव । लोहितत्वात् । ग्रामस्य ग्रामान्तरेण मर्यादा सीमा । स्यन्दः स्रुतिः । विलिख्यमाना विपाट्यमानाः । मर्मरिताः शुष्कत्वेन शब्दायमानाः । गर्मुतो लताः । कुकूलं तुषाग्निः । विकिराः कुक्कुटाद्याः । श्वाविधः शल्लाः सेहिकाख्या हिस्राः प्राणिनः । तटशब्देन नैकट्यमाह । अर्जुनाः ककुभवृक्षाः । कुरराः क्रौञ्चपक्षिणः । कूजा शब्द एव सन्तापकारित्वाज्ज्वरस्तेन स्फुरन्तः शफरा मत्स्यास्तैः । शारं सितोदरत्वात् । पल्वले नड्वले । कुररास्तटस्था यदा

गुच्छों को रक्त के भ्रम से सिंह शावकों द्वारा चाटे जाने पर, धाम की गर्मी से उफते हुए हाथी द्वारा सूँड़ से गात्र उछाल कर पहाड़ के मॅझले भाग को गीले किये जाने पर, सूर्य द्वारा क्लिश्यमान हाथियों के क्षीणमद की श्याम-लेखाओं पर मूक भ्रमरों के बैठ जाने पर, लाल-लाल मन्दार के फूलों से सीमाओं के सिन्दूरी रंग के हो जाने पर, जल के भ्रम से भैसों द्वारा सींग के अग्रभाग से स्फटिक-प्रस्तरों के उखाड़े जाने पर, घाम के कारण लताओं के सूख कर खर-खरा जाने पर, भूसे की आग के सदृश गर्म धूल से मुर्गों के व्याकुल हो जाने पर, सेही आदि हिंस्र प्राणियों द्वारा बिलों का आश्रय ले लेने पर अर्थात् बिलों में घुस जाने पर, किनारे में अवस्थित अर्जुन वृक्षों पर बैठे हुए क्रौञ्च पक्षियों द्वारा कड़ी आवाज किये जाने के कारण सूखते हुए तालाबों

जगन्नीराजने, रजनीराजयक्ष्मणि, कठोरीभवति निदाघकाले प्रतिदिशमाटीकमाना इवोषरेषु प्रपावाटकुटीपटलप्रकटलुण्ठकाः, प्रपक्वकपिकच्छूगुच्छच्छटाच्छोटनचापलैरकाण्डकण्डूला इव कर्षन्तः शर्करिलाः कर्करस्थलीः, स्थूलदृषच्चूर्णमुचः, मुचुकुन्दकन्दलदलनदन्तुराः, संततपनतापमुखर-

---

कूजन्ति तदा मत्स्याः पीडिताः सन्त उत्प्लवन्तीति वस्तुधर्मोऽयम् । नीराजनमिति । नीराजनं शान्तिकर्म । राजयक्ष्मा क्षयव्याधिः । शनैः शनैरपचयकारित्वात् । मातरिश्वानः कीदृशाः प्रावर्तन्तेत्याह—प्रतिदिशमित्यादि । आटीकमाना उच्चैर्भ्रमन्तः । साभिप्रायमेतत् । रजोवशादेतेषां तथाविधसन्निवेशात् । ग्रीष्म ह्येवंविधा मारुताः प्रावर्तन्तेति कालधर्मः । उन्मत्तपक्षे—आटीकमाना इत्यादि सर्वं वक्ष्यमाणयोग्यतया योजनीयम् । उद्धतभ्रमणाद्या ह्युन्मादस्यानुभावाः । तदुक्तम्—'अनिमित्तहसितरुदितोत्क्रुष्टाबद्धप्रलापशयनोत्थितप्रधावितनृत्तगीतपठितस्मितपांस्ववधूननिर्माल्यचीरघटवस्त्रशरावाभरणस्पर्शनोपभोगैरन्यैश्चाव्यवस्थितचेष्टानुकरणादिभिरनुभावैरभिनयेत्' इति । ऊषरं सिकताबहुलो रूक्षो देशः । प्रपा सत्रम् । वाटः कुनालम् । पटलं छदिः । कपिकच्छूः कण्डूदायको द्रव्यभेदः । अत एवाह—कर्षन्त इति । शर्कराः पाषाणकणिका विद्यन्ते यासु ताः शर्करिलाः । पिच्छादित्वादिलच् । कर्कस्थली ऊषरभूः पाषाणभूः । अत एवाह—स्थूलेत्यादिना । मुचुकुन्दं पुष्पभेदः । कन्दलं नवनालम् । दन्तुरा इति । कपिकच्छूस्पर्शचालनेन

की मछलियों के तड़फड़ा उठने पर, दावानल के संसार की आरती जैसे लगने पर, रात्रि के लिए क्षय रोग जैसे बन जाने वाले निदाघ काल के कठोर हो जाने पर, प्रत्येक दिशा में बलुहट सीवानी में ऊपर की ओर उड़ती हुई, रास्ते की कुटियों की खपड़ैल छाहों के सामने लुटेरों के समान, पके किवाचक के गुच्छों के साथ छेड़छाड़ करने की चपलता करने के कारण उत्पन्न हुई खुजली की बेचैनी से जमीन को छूती हुई मानो कंकरीली भूमि में अपने शरीर को रगड़ती हुई, पत्थरों के मोटे-मोटे चूरे बरसाने वाली, मुचुकुन्द और कन्दल की कलियाँ छाँट-छाँट कर गिराने वाली, निरन्तर सूर्य के ताप से व्याकुल

चीरीगणमुखशीकरशीक्यमानननवः, तरुणतरतरणितापतरले तरन्त इव तरङ्गिणि मृगतृष्णिकातरङ्गिणीनाममलोकवारिणि, शुष्यच्छमीमर्मरमारव-मार्गलङ्घनलाघवजवजङ्घालाः, रैणवावर्तमण्डलीरेचकरासरसरभसारब्ध-नर्तनारम्भारभटीनटाः, दावदग्धस्थलीमषीमिलनमलिनाः शिक्षितक्षपणक-

च ये कण्डूलास्तादृशाश्चूर्णमुचः प्रकटदन्ताः परुषं कर्षन्ति। शीक्यमानाः सिच्य-मानाः। तरुणतरः प्रौढः। तरणिरादित्यः। तरन्त इवेति। बालुकावशात्तथा लक्ष्यमाणत्वात्। मृगतृष्णिका मरीचिका। तृषितमृगाणां रविरश्मिखचितासु सिकतासु नीलत्वदर्शनाज्जलबुद्धिः। वारिणीति। सतरङ्गे वारिणि ये समी-कास्ते सतापं देशं तरन्ति। उन्मत्तपक्षेऽपि विचित्तत्वेनैवंकारित्वम्। शम्योऽ-ग्निगर्भा वल्लीभेदाः। लाघवं नैपुणम्। सव्यायामाश्च विषमं मार्गं लाघवेन तरन्ति। जङ्घाला वेगवन्तः। रैणवावर्ताः पांसुसम्बन्धिन आवर्तनरूपाः सन्नि-वेशास्तेषां मण्डली समूहः। रेचयति पृथक्करोतीति रेचकम्। रेणवावर्तमण्डल्या रेचकं तथा रासे रसिते यो रसस्तेन यो रभसस्तद्वशेनारब्धं यन्नर्तनमिव नर्तनं तदारम्भे विषय आरभटीनटा इव आरभटीनटाः। ईरयन्तीति अराः। अराश्च ते भटा अरभटाः। तेषामियमारभटी नटजातिविशेषो वीररसप्रधानः। उक्तं च—'प्लुष्टावपात-प्लुतगर्जितानि च्छेद्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम्। चित्राणि यूथानि च यत्र नित्यं तां तादृशीमारभटीं वदन्ति॥' इति; नृत्तपक्षे—आवर्ता आवृत्तयः। येनाह मुनिः—'यदा नृत्तवशादङ्गं भूयोभूयो निवर्तते। तत्राद्यमभिनेयं स्याच्छेषं नृत्ते नियोजयेत्॥' इति। मण्डलीनृत्तं हल्लीशकम्। यदाह—'मण्डलेन तु यन्नृत्तं हल्लीशकमिति स्मृतम्। एकस्तत्र तु नेता स्याद्गोपस्त्रीणां तथा हरिः॥' इति। रेचकास्त्रयः—कटीरेचकः, हस्तरेचकः, ग्रीवारेचकश्चेति। रासलक्षणम्—'अष्टौ षोडशद्वात्रिंशद्यत्र नृत्यन्ति नायकाः। पिण्डीबन्धानुसारेण तन्नृत्तं रासकं स्मृतम्॥'

होकर चील पक्षी के मुँह से गाज गिराने वाली, प्रौढ़ सूर्य की गर्मी के कारण पिघले हुए मृगतृष्णिका रूपी नदियों के झूठे प्रवाह में मानों बहती हुई, मरुभूमि के मार्गों पर बिछे हुए शमी के सूखे पत्तों पर मर्मर ध्वनि करती हुई दौड़ लगाने वाली, धूल के वैसे बवण्डरों से युक्त जो वैसे प्रतीत हो रहे थे मानों रास के समय आनन्दातिरेक के कारण आरभटी नृत्य शैली में नर नाच रहे हों, दावानल से जली हुई भूमि में रगड़ मारने के कारण स्याह पड़ी

वृत्तय इव वनमयूरपिच्छचयानुच्चिन्वन्तः, सप्रयाणगुञ्जा इव शिञ्जान-जरत्करञ्जमञ्जरीबीजजालकैः सप्ररोहा इवातपातुरवनमहिषनासानिकुञ्ज-स्थूलनिःश्वासैः, सापत्या इवोड्डीयमानजवनवातहरिणपरिपाटीभिः, सभ्रूकुटय इव दह्यमानखलधानवृषकूटकुटिलधूमकोटिभिः, सावीचिवीचय इव महोष्ममुक्तिभिः, लोमशा इव शीर्यमाणशाल्मलिफलतूलतन्तुभिः, दद्रुणा इव शुष्कपत्रप्रकराकृष्टिभिः, शिराला इव तृणवेणीविकरणैः उच्छ-

इति। अस्यैव तु हलोमकाया विशेषाः। क्षपणकवृत्तय इवेति। क्षपणकाश्च मषीमलिना बर्हपिच्छानि शास्त्रचोदनया वहन्ति। उन्मत्तपक्षे—निर्विवेकतया मयूरपिच्छचय उत्युक्तं प्राक्। गुञ्जन्तीति गुञ्जा ढक्काभेदाः। उन्मत्तानां नृत्ता-वसरे सर्व एव करतलादि वादयन्ति। शिञ्जानाः शब्दायमानाः। करञ्जो वृक्षभेदः। प्ररोहोऽङ्कुरः। उन्मत्ता अपि खेदान्निःश्वसन्ति। सापत्या इवेति। उन्मत्ता अपि श्वभ्रादिपतनभयादपत्यानि न त्यजन्ति। पेटकैर्यूथैः। सभ्रूकुटय इवेति। दह्यमाना-भिप्रायेणोक्तम्। उन्मत्ता अपि क्रोधप्राया एव। क्रोधस्य भ्रूकुटयादयोऽनुभावाः। खलधानं क्षोदादिदेशः। क्षुद्यमानं धान्यमित्यन्ये। सस्यस्य ज्वालाभावाद् धूमवर्णनं समुचितम्। कुटिलपदेन च भ्रूकुटीसादृश्यमाह। अवीचिर्नरकभेदस्तस्य वीचय-इव वीचयो ज्वालाः। महोष्मेति। उन्मत्ता अपि खेदादिवशादूष्मायन्ते। लोमशा इवेति। उन्मत्ता अपि क्षुरकर्म विना लोमशाः। तूलं कार्पासः। दद्रू कुष्ठविकारः। साऽस्यास्तीति दद्रुणः। 'दद्रूवा ह्रस्वत्वं च' इति नः। उन्मत्ता अप्युद्वर्तनं विना दद्रूयुक्ता भवन्ति। शिरालाः प्रकटस्नायवः। उन्मत्ता अपि कृशत्वाच्छिराला

हुई मानो जैन साधुओं का आचार सीख कर वन-मयूरों के पंखों का ग्रहण करना प्रारम्भ करने वाली, बजते हुए करञ्ज की मंजरियों के बीजों के कारण मानो प्रस्थान-वाद्य की आवाज से युक्त गर्मी से व्याकुल जंगली भैंसों की नाकों से निकलने वाले मोटे श्वासों से मानो अङ्कुर युक्त हुई, उड़ते हुए तीव्र गति वाले वात हरिणों के समूहों से मानो सन्तानयुक्त, भूसे की जलती हुई ढेर की टेढ़ी धूमरेखा से मानों कुटिल भौंहों से युक्त, अत्यधिक गर्मी पड़ने के कारण मानो अवीचि नामक नरक की ज्वाला से युक्त, सेमर के फलों से रुई की तन्तुओं के झड़ने के कारण मानो रोंओं से युक्त, सूखे पत्तों को बटोरने के कारण उनसे खुजली मिटाने वाले दाद के रोगी के समान, तिनकों से बिखरने

मश्रव इव धूयमाननवयशूकशकलशङ्कुभिः, दंष्ट्राला इव चलितशलल-सूचीशतैः, जिह्वाला इव वैश्वानरशिखाभिः, उत्सर्पत्सर्पकञ्चुकैश्चूडाला इव ब्रह्मस्तम्भरसाभ्यवहरणाय कवलग्रहमिवोष्णैः कमलवनमधुभिरभ्यस्यन्तः सकलसलिलोच्छोषणधर्मघोषणाघोरपटहैरिव शुष्कवेणुवनास्फोटनपटरवैस्त्रिभुवनबिभीषिकामुद्भावयन्तः, च्युतचपलचाषपक्षश्रेणीशारितसृतयः, त्विषिमन्मयूखलतालातप्लोषकल्माषवपुष इव स्फुटितगुञ्जाफल-

भवन्ति। वेणी पङ्क्तिः। शिरासादृश्यप्रतिपादनाय वेणीपदम्। श्मश्रुः कूर्चः। शुकाः किशारवः। उन्मत्ता अपि केशवपनाभावाद्दीर्घश्मश्रवः। दंष्ट्रा बहिर्निर्गता दत्ताः। शललः श्वावित्। सूची दीर्घकण्टकरूपाणि रोमाणि, अन्ये तु—दंष्ट्रालाः शललाः, श्वाविधः पक्षाश्च शलला उच्यन्ते। तथा च—'श्वाविधः शललैरिव' इति महाभारते दृश्यत इत्याहुः। उन्मत्ता अप्येवमादिविकारेण सर्वं भीषयन्ते। एवं जिह्वाला अपि। एवमेव स्नानादिना विनोन्मुक्तचूडत्यादुत्सर्पदित्यादि। कञ्चुकं त्वक्। ब्रह्मस्तम्भो ब्रह्माण्डः। रसाभ्यवहरणं शोषणम्, रसानां च मधुरादीनां भोजनम्। 'असंचार्यो मुखे पूर्णे गण्डूषः केवलोऽन्यथा'। अभ्यस्यन्त इति। एवमिदं शोषयिष्याम इति। घर्मो ग्रीष्मः। घोषणा श्रवणा। **विभीषिकामिति**। ये सगर्वा जगद्ग्रसनशीलास्ते त्रिभुवनेऽपि भयमुत्पादयन्ति। चाषः किकीदिविः पक्षिभेदः। उन्मत्तपक्षे—विस्मरणशीलत्वाच्युतेत्यादि योज्यम्। सृतिर्मार्गः। त्विषिमान् रविः। अलातमुल्मुकम्। कल्माषं रक्तकृष्णम्। गुञ्जा रक्तिका। उपलानि

के कारण मानों शिराओं वाली, हिलती हुई नुकीली शिखाओं के कारण मानो बढ़ी हुई दाढ़ी वाली उड़ते हुए शलल के सैकड़ों काँटेदार रोंगटे से मानो बाहर को निकले हुए दाँतों वाली, आग की लपटों के कारण मानों जीभ वाली, सर्पों की उड़ती हुई केंचुलियों से मानो बिखरे बालों वाली, मानों ब्रह्माण्ड के समस्त रसों को चाट जाने के लिए कमलवन के गर्म-गर्म मधु का कौर बनाकर अभ्यास करती हुई, समस्त जल को सोख लेने वाली गर्मी के घोषणा-पटह की भाँति सूखे बाँसों के फटने की भयंकर आवाजों से तीनों लोकों के लिए भय का उत्पादन करती हुई, चंचल चाष नामक पक्षियों के गिरे हुए पंखों से ढँके हुए मार्गों वाली, सूर्य-किरणों से झुलस कर कुछ-कुछ काले तथा कुछ-कुछ लाल

स्फुलिङ्गाङ्गाराङ्किताङ्गाः, गिरिगुहागम्भीरझांकारभीषणभ्रान्तयः, भुवनभस्मीकरणाभिचारचरुपचनचतुराः, रुधिराहुतिभिरिव पारिभद्रद्रुमस्तबकवृष्टिभिस्तर्पयन्तस्तारवाम्वनविभावसून्, अशिशिरसिकतातारकितरंहसः, तप्तशैलविलीयमानशिलाजतुरसलवलिप्तदिशः, दावदहनपच्यमानचटकाण्डखण्डखचिततरुकोटरकीटपटलपुटपाकगन्धकटवः, प्रावर्तन्तान्मत्ता मातरिश्वानः।

लोहितकृष्णानि भवन्ति। स्फुलिङ्गा अग्निकणाः। अङ्गाराङ्कितानीवाङ्गाराङ्कितानि दग्धान्यङ्गानि। ये च साङ्गरास्ते मलिनशरीरा भवन्ति। उन्मत्ता अप्यग्निशस्त्रश्वभ्रादिषु बलादतिपतन्ति। झांकारभीषणा भ्रमन्ति च॥ अभिचार उच्चाटनम्। अभिचारिणश्चोच्चाटनमारणाद्यर्थं चरुपचनं कुर्वन्ति, रक्तेन चाग्नीन्प्रीणयन्ति। पारिभद्रा निम्बाः। मदना इत्यन्ये। उन्मत्ता अपि निर्विवेकतया रक्तादि यत्किंचिदशुचिप्रायमग्निषु निक्षिपन्ति, तत एव विश्वस्य दोषाय पर्यवस्यन्ति। तारकितमिव रंहो वेगो येषां ते। शिलाजतु अश्मसारः। दावदहनेन पच्यमानानि यानि चटकाण्डानि तेषां विदारणवशात्स्फुटिता ये खण्डाः कपालानि तैः। दोलावदुपरिपतितैः खचितानि कचायमानानि यानि तरुकोटरेषु कीटपटलानि क्रिमिसमूहास्तेषामतिपेशलत्वेन यत एव तप्तैः खण्डैरुपर्याच्छादकतया स्थितैः पुटपाकैः प्रसवधूमोऽभ्यन्तरपाकस्तद्गन्धेन कटव उद्वेजकाः। अत्राग्निपाकेन खण्डत्वं

(कल्माष) शरीर वाली के समान फटे हुए गुञ्जाफलों से निकले हुए अग्निकण युक्त अङ्गारों से अङ्कित अङ्गों वाली, पहाड़ों की गुफाओं में प्रविष्ट होने के कारण गम्भीर झंकार द्वारा भयानक भ्रम को उत्पन्न करने वाली, संसार को भस्मीभूत करने के उद्देश्य से किये गये अभिचार वेदोक्त हिंसात्मक कर्म = उच्चाटन) में चरु पकाने में निपुण मानो रुधिर की आहुति दे रही हो इस प्रकार नीम के वृक्षों के गुच्छों की वर्षा द्वारा वृक्षों में लगी हुई वनाग्नि को तृप्त करती हुई, चमकते हुए बालू रूपी तारों से युक्त वेग वाली, गर्म चट्टानों से बहने वाले शिलाजीत के रस से दिशाओं को लिप्त करने वाली, वनाग्नि द्वारा पक्षियों के अण्डों से भरे हुए वृक्षों के कोटरों में कीड़ों के मिल कर जलने के कारण पुटपाक की गन्ध की कटुता से युक्त होकर उन्मत्त (पागल) हवा चलने लगी।

सर्वतश्च भूरिभस्त्रासहस्रसंधुक्षणक्षुभिता इव जरठाजगरगम्भीरगलगुहावाहिवायवः, क्वचित्स्वच्छन्दतृणचारिणो हरिणाः, क्वचित्तरुतलविवरविवर्तिनो बभ्रवः, क्वचिज्जटावलम्बिनः कपिलाः क्वचिच्छकुनिकुलकुलायपातिनः श्येनाः, क्वचिद्विलीनलाक्षारसलोहितवच्छवयोऽधराः क्वचिदासादितशकुनिपक्षकृतपटुगतयो विशिखाः, क्वचिद्दग्धनिःशेषजन्म-

---

खण्डेभ्यो रसनिःसरणात्खचितरवं कीटानाम् । उन्मत्ता इति । ये चोन्मत्तास्ते सिकताव्याप्ताः कर्दमविलिप्तदिशो गन्धकटवः शाटीकराद्याः पूर्वोक्ताः क्रियाः प्रायेण कुर्वंत इति । सर्वत्रात्र महावाक्ये ध्वनिच्छायान्वेष्या । मातरिश्वानो वायवः ।

सर्वतश्चेत्यादौ । दावाग्नयः प्रत्यदृश्यन्तेति सम्बन्धः । भस्त्रा इति सन्धुक्षणमुद्दीपनम् । जरठाजगरा वृद्धसर्पाः । गला एव गुहा गलगुहाः । स्वच्छन्दमपविघ्नम् यथारुचि । चरणं भक्षणम्, गमनं च । हरिणाः शुक्लाः, मृगाश्च । बभ्रवः कपिलाः, नकुलाश्च । इतरत्र,—जटा मूलानि च । कपिलाः पिङ्गलाः: कपिलाख्यमुनिव्रतग्रहणान्मनुष्या एवाभेदोपचारेण कपिलाः । एते च जटावल्कलधारिणः । कुलाया नीडाः । श्येनाः शुक्लाः, पक्षिकाश्च । अधरा धर्तुमशक्याः, अधोभवा वा । लाक्षाया विलीनतया पीतत्वात् । ओष्ठाश्चाधराः । आ समन्तात्सादिता आहताः, स्वीकृताश्च। स्निग्धतया नीरसतया च। शकुनीनां पक्षेषु कृतपटुगतयः, निःसारतया कालस्थापितत्वात् । विगता शिखा ज्वाला येषां ते, विविधशिखाः शराश्च ।

चारों ओर, मानो हजारों धौंकनियों के चलाने से क्षुभित होकर उद्दीपित हुई, पुराने अजगरों के गलों की गम्भीर गुफाओं से निकली हुई हवा से युक्त होकर, कहीं स्वच्छन्द रूप से घास में विचरण करने वाले हरिणों के समान, कहीं पेड़ों तले बिलों में घुस पड़ने वाले नेवलों के समान, कहीं तपस्वियों के समान विशाखों की पीली जटाएँ धारण की हुई, कहीं पक्षियों के घोंसलों पर टूट पड़ने वाले बाजों के समान, कहीं बहते हुए लाक्षारस के समान लाल वर्ण के अधर वाली (अथवा अधरा अर्थात् पकड़ी जाने में अशक्य), कहीं झुलसे हुए पक्षियों के पंखों से की गई तीव्र गति वाली विविध ज्वालाओं से युक्त, (जिस प्रकार निर्वाण अर्थात् मोक्ष की अवस्था में जन्म के सम्पूर्ण हेतु समाप्त हो जाते है उसी प्रकार) कहीं जन्म के सम्पूर्ण कारणों को जला कर शान्त

हेतवो निर्वाणाः, क्वचित्कुसुमवासिताम्बरसुरभयो रागिणः, क्वचित्सधूमोद्गारा मन्दरुचयः, क्वचित्सकलजगद्ग्रासघस्मराः भस्मकाः, क्वचिद्वेणुशिखरलग्नमूर्तयोऽत्यन्तवृद्धाः, क्वचिदनल्पोपयुक्तशिलाजतवः, क्षयिणः क्वचित्सर्वरसभुजः पीवानः, क्वचिद्दग्धगुग्गुलवो रौद्राः, क्वचिज्ज्वलित-

---

निःशेषाः समस्ताः, प्राक्तनजन्मान्तरसंचिता अपि । जन्महेतवस्तृष्णाद्याः, कर्माणि च । निर्वाणाः शान्ताः, मोक्षगामिनश्च । कुसुमं धूमः पुष्पं च । अम्बरं नभः, वस्त्रं च । रागिणो लोहिताः, शृङ्गारिणश्च । अजीर्णकृतोऽपि धूमोद्गारः । रुचिर्दीप्तिः, भोजनाभिलाषश्च । जगदेव ग्रासः कवलं तद्भक्षणशीलाः । भस्मकश्चात्यशनव्याधिः । वृद्धा वृद्धिं गताः, स्थविराश्च । ते वेणुशिखरमवलम्बन्ते यष्टिं गृह्णन्ति । अनल्पाः पर्वताः । अन्यत्र,—क्षयस्य दीर्घकालपर्यवसायित्वादनल्पमविच्छिन्नं भक्षितशिलाजतुकाः । उक्तं च—'शिलाधातुप्रयोगाद्वा अजाक्षीराद्वा शांकरात् । अजामूत्रप्रयोगाद्वा क्षयः क्षीयेत नान्यथा ॥' इति । क्षयो विनाशः, व्याधिभेदश्च यक्ष्माख्यः । रसः सलिलादिः । अत एव पीवानः । अन्यथा कथं सलिलादिभक्षणशीलत्वमपीषां प्रसज्येत । ये च मधुरादिसर्वरसानुपभुञ्जते ते स्थूला भवन्ति । रौद्रा भीषणाः, रुद्र-

---

होती हुई, (जिस प्रकार रागी लोग पुष्प की सुगन्ध से भरे हुए वस्त्र पहनते हैं उसी प्रकार) रागियों की भाँति धुएँ की गन्ध से आकाश को भरती हुई, (जिस प्रकार धूमोद्गार या डकार के रोगियों की भोजन विषयक रुचि मन्द पड जाती है उसी प्रकार) धुँआ उड़ाने के कारण शोभा को मन्द कर देने वाली, (जिस प्रकार भस्मक रोग वाले बहुत खाया करते हैं उसी प्रकार) भस्मक रोग वाले के समान सम्पूर्ण संसार को अपना कौर बना लेने की प्रवृत्ति रखने वाली, (जिस प्रकार वृद्ध व्यक्ति बाँस की लाठी का सहारा लेता है उसी प्रकार) कहीं अत्यन्त बढ़ कर बाँस की फुनगियों तक जा पहुँचने वाली, (जिस प्रकार क्षय रोग से ग्रस्त व्यक्ति शिलाजीत का सेवन करता है उसी प्रकार) उसी प्रकार कहीं क्षययुक्त (धीमी) होकर पर्वतों के शिलाजीत के उपयुक्त बन जाने वाली; (जिस प्रकार मोटे तगड़े लोग सभी रसों का उपयोग करते हैं उसी प्रकार) कहीं मोटी होकर सभी रसों को खाने वाली, (जिस प्रकार रुद्र के भक्त गुग्गुल जलाते हैं उसी प्रकार) कहीं

नेत्रदहनदग्धसकुसुमशरमदनाः कृतस्थाणुस्थितयः, चटुलशिखानर्तनारम्भारभटीनटाः क्वचिच्छुष्ककासारसृतिभिः स्फुटन्नीरसनीवारबीजलाजवर्षिभिर्ज्वालाञ्जलिभिरर्चयन्त इव घर्मघृणिम्, अघृणा इव हठहूयमानकठोरस्थलकमठवसाविस्रगन्धगृध्नवः, स्वमपि धूममम्भोदसमुद्भूतिभियेव भक्षयन्तः, सलिलाहुतय इव स्फुरद् बहलबालकीटपटलाः कक्षेषु, श्विश्विण

भक्ताश्च । नेत्राणां मूलानां दहनेन दग्धाः । सकुसुमाः काण्डानि मदना वृक्षभेदाश्च यैः । स्थाणुश्छिन्नशाखो वृक्षः, शिवश्च । स्थितिः स्थानम् व्यवहारश्च । स्थाणुनापि नयनाग्निना सकुसुमशरः कामो दग्धः । चटुलत्वेन नर्तनारम्भः, रवश्च । शुष्कत्वाच्चटुलादेरारभटीग्रहणम् । कासाराणि नड्वलास्तेषु याः सृतयः । क्वचित् 'स्मृतयः' इति पाठः । इतरत्र तु—शुष्कक' शुष्कगीतं मुण्ठमादि । आसार्यन्त इत्यसाराः । आसारितानि यद्यपि गीयन्त एव, तथापि 'वर्धमानमथापीह ताण्डवं यत्र योज्यते' इति । ताण्डवं ह्यारभटीप्रधानम् । अर्चयन्त इवेति । तेषां तदभिमुखत्वात् । धर्मघृणिः सूर्यः । अघृणा अजुगुप्साः । कमठः कूर्मः । विस्रं स्यादामगन्धि यत्' गृध्नवो लम्पटाः । समुद्भूतिः संभारः । धूमात्किल मेघोत्पत्तिर्मेघाः शमयन्ति । कीटाः

रौद्र रूप धारण कर गुग्गुलुओं को जलाती हुई (जिस प्रकार स्थाणु अर्थात् भगवान् शङ्कर ने प्रज्वलित नेत्राग्नि से फूलों के बाणों वाले कामदेव को जला डाला था उसी प्रकार) कहीं स्थाणुओं (ठूँठ वृक्षों) पर अवस्थित होकर मूल को जला कर फूलों के साथ-साथ मदन वृक्ष की टहनियों को भी जलाती हुई, (जिस प्रकार नट लोग चटुल शिखा नर्तन करते हैं उसी प्रकार) कहीं नट के समान चञ्चल ज्वालाओं द्वारा नृत्य प्रारम्भ करके आरभटी नृत्य करने वाली, कहीं सूखे जलाशयों में फैले हुए नीरस नीवार नामक धान के लावे के समान अपनी ज्वालाओं रूपी अञ्जलियों से मानो भगवान् सूर्य की अर्चना करती हुई, मानो घृणा रहित होकर पकते हुए कठोर स्थलीय कछुओं के हृदय-मांस के प्रति लालायित होती हुई, मानो मेघों के उठ जाने के भय से अपने धुएँ को खाने वाली, घासों में आग लगने के कारण छोटे-छोटे कीड़ों के जल कर फूटने से अग्नि में पड़ी जल की आहुतियों के समान, सूखे सरोवरों में

इव प्लोषविचटद्धवलकलधवलशम्बूकशुक्तयः, शुष्केषु सरःसु, स्वेदिन इव विलीयमानमधुपटलगोलगलितमधूच्छिष्टवृष्टयः काननेषु, खलतय इव परिशीर्यमाणसिखासंहतया महोषरेषु, गृहीतशिलाकवला इव ज्वलित-सूर्यमणिशकलेषु शिलोच्चयेषु, प्रत्यदृश्यन्त दारुणा दावाग्नयः।

तथाभूते च तस्मिन्नत्युग्रे ग्रीष्मसमये कदाचिदस्य स्वगृहावस्थितस्य भुक्तवतोऽपराह्णसमये भ्राता पारशवश्चन्द्रसेननामा प्रविश्याकथयत्—'एष खलु देवस्य चतुःसमुद्राधिपते सकलराजचक्रचूडामणिश्रेणीशाणकोण-कषणनिर्मलीकृतचरणनखमणेः सर्वचक्रवर्तिनां धौरेयस्य महाराजाधिरा-

क्रमयः। प्लोषो दाहः। वल्कलशब्दस्त्वगुपलक्षणार्थः। शम्बूकाः शक्तिमन्तः प्राणि-भेदाः। मधुपटलगोलो माक्षिककरण्डः। मधूच्छिष्टं सिक्थकम्। खलतयः खल्वाटाः। शिखा ज्वाला, चूडा च। ऊषरं सिकताबहुलो रूक्षो देशः। शिलोच्चयो गिरिः। दावो वनगतो वह्निर्दावश्च वनमुच्यते'।

तथाभूतदेश इत्यादिनात्मानं प्रतितेपाषादशातिशयं दर्शयति। आकुर्वत इति। न त्वप्रस्तावे। एतेन स्वस्य किमपि माहात्म्यमाह। स्वयवसरमन्तरेण वा तस्य तदा प्रवेशाभावात्। एतदेव देवस्येत्यादिविशेषणसंदर्भमुखेन द्वारमध्यास्त

अग्निदाह के कारण जल कर चटकते हुए उजले-उजले घोंघे एवं सीपियों के कारण श्वेत कुष्ठ के रोगियों की भाँति, जंगलों में मधु मक्खियों के छत्तों के जलने के कारण उनसे बहते हुए मधु से लिप्त होने से मानो पसीना युक्त होकर, विस्तृत बलुहट स्थानों में शिखाओं (ज्वालाओं या चोटियों) के झड़ने के कारण खल्वाट के समान, जलती हुई सूर्यकान्त मणियों के खण्डों वाले पर्वतों पर मानो चट्टानों के कौर ग्रहण करने वाली भयङ्कर दावाग्नियाँ दिखाई पड़ने लगीं।

ग्रीष्म काल के इस प्रकार अत्यन्त प्रखर हो उठने पर एक दिन अपने घर में खा-पीकर बैठे हुए बाण से दोपहर के समय पारशव (शूद्रा माता से उत्पन्न) भाई चन्द्रसेन ने वहाँ प्रवेश कर निवेदन किया—"चारों समुद्रों के स्वामी, सम्पूर्ण राजाओं के समूह की चूड़ामणियों के शाण के घर्षण से निर्मल की गई नखमणि से युक्त, सभी चक्रवर्ती राजाओं में प्रमुख, महाराजाधिराज

जपरमेश्वरश्रीहर्षदेवस्य भ्रात्रा कृष्णनाम्ना भवतामन्तिकं प्रज्ञाततमो दीर्घाध्वगः प्रहितो द्वारमध्यास्ते' इति। सोऽब्रवीत्—'आयुष्मन्! अविलम्बितं प्रवेशयैनम्' इति।

अथ तेनानीयमानम्, अतिदूरगमनगुरुजडजङ्घाकाण्डम्, कार्दमिकचेलचीरिकानियमितोच्चण्डचण्डातकम्, पृष्ठप्रेङ्खत्पच्चरकर्पटघटितगलग्रन्थिम्, आतिनिबिडसूत्रबन्धनिम्नितान्तरालकृतलेखव्यवच्छेदया लेखमालिकया परिकलितमूर्धानम्, प्रविशन्तं लेखहारकमद्राक्षीत्। अप्राक्षीच्च दूरादेव—'भद्र, भद्रमशेषभुवननिष्कारणबन्धोस्तत्रभवतः कृष्णस्य? इति। स 'भद्रम्' इत्युक्त्वा प्रणम्य नातिदूरे समुपाविशत्। विश्रान्तश्चा-

---

इत्यनेन पोषयिष्यते। पारशवः शूद्रापुत्रः। शाणो मणिकषणम्। कोणोऽश्रिः। चक्रवर्तिनः सार्वभौमाः। धौरेयो मुख्यः। प्रज्ञाततमोऽतिप्रतीतः। एतेन च बाणं प्रति बहुमान एव गम्यते।

जडा गमनाशक्ताः। कर्दमेन रक्तं कार्दमिकम्। चेलं वस्त्रम्। चीरिका खण्डिका। उच्चण्डमुच्चम्। गाढमित्यन्ये। चण्डातकमर्धोरुकं वासः। पटच्चरं जीर्णवस्त्रम्। निम्नितं नमितम्। लेखमालिकेति। अन्यैरपि तद्धस्ते लेखः प्रहित इति परागतः सबन्धः। 'परिकरित–' इति पाठे वेष्टित इत्यर्थः। तत्रभवतः पूज्यस्य नातिदूर

परमेश्वर श्री हर्षदेव के कृष्ण नामक भाई द्वारा आपके पास भेजा गया अत्यन्त विश्वासपात्र तथा लम्बा रास्ता तय करने वाला दूत दरवाजे पर उपस्थित है।" उस (बाण) ने कहा—"आयुष्मन्! उसे शीघ्र भीतर ले आओ।"

उसके बाद बाण ने चन्द्रसेन द्वारा लाये गये, अत्यधिक दूर चलने के कारण भारी जांघों वाले, कीचड़ से रंगी हुई (या मटियाले रंग की) पेटी से कसे हुए ऊँचे चण्डा तक (पाजामा) वाले, पीठ पर फहरते हुए तथा गले में बँधे हुए फटे कपड़े के अंगोछे से युक्त, अत्यन्त मोटे डोरे से बीचोबीच दो भागों में बाँधी गई लेखमालिका (पत्र) को माथे पर लटकाये हुए, प्रवेश करते हुए लेखहारक (पत्रवाहक) को देखा और दूर से ही पूछा—"भद्र! समस्त संसार के अकारण (निःस्वार्थ) बन्धु श्रीमान् कृष्ण का कुशल तो है? वह (दूत) "कुशल है" यह कह कर प्रणाम करके समीप में ही बैठ गया।

ब्रवीत् —'एष खलु स्वामिना माननीयस्य लेखः प्रहितः' इति विमुच्यार्पयत्। बाणस्तु सादरं गृहीत्वा स्वयमेवावाचयत्—'मेखलकात्संदिष्टमवधार्य फलप्रतिबन्धी धीमता परिहरणीयः कालातिपात इत्येतावदत्रार्थजातम्। इतरद्वार्तासंवादनमात्रकम्' । अवधृतलेखार्थश्च समुत्सारितपरिजनः संदेशं पृष्टवान्। मेखलकस्त्वब्रवीत् 'एवमाह मेधाविनं स्वामी—जानात्येव मान्यो यथैकगोत्रता वा, समानज्ञानता वा, समानजातिता वा, सहसंवर्धनं वा, एकदेशनिवासो वा, दर्शनाभ्यासो वा, परस्परानुरागश्रवणं वा, परोक्षोपकारकरणं वा, समानशीलता वा, स्नेहस्य हेतवः। त्वयि तु विना कारणेनादृष्टेऽपि प्रत्यासन्ने बन्धाविव बद्धपक्षपातं किमपि स्निह्यति मे हृदयं दूरस्थेऽपीन्दाविव कुमुदाकरे। यतो भवन्तमन्तरेणा-

---

इति। अपि तु दूर एवेति सर्वत्रैव स्वस्य प्रभावातिशयं प्रतिपादयति। फलं प्रतिबध्नाति रुणद्धीति फलप्रतिबन्धी। कालातिपातः कालात्ययः। अर्थजातमभिधेयप्रकारः। अवधृतो ज्ञातः। एकेत्यादि कारणमनुरागान्तरमप्रधानम्।

विश्राम कर लेने के बाद वह बोला—"मालिक ने यह लेख (पत्र) आदरणीय (आपके) पास भेजा है।" यह कहकर उसने खोल कर उसे दिया। बाण आदरपूर्वक उसे लेकर स्वयं पढ़ने लगा—"मेखलक से प्राप्त होने वाले सन्देश पर विचार करके आप बुद्धिमान् काम को चौपट करने वाला विलम्ब न करें। इस पत्र में इतना ही लिखा गया है बाकी बातें मौखिक सन्देश मात्र होंगी।" पत्र के उद्देश्य को समझ कर बाण ने परिजनों को वहाँ से हटा दिया तथा मेखलक से सन्देश पूछा। मेखलक बोला—"मालिक ने आप मेधावी से ऐसा कहा है—"माननीय आप जानते ही हैं कि एक वंश होना, बराबर ज्ञान होना, एक जाति होना, साथ में रह कर बढ़ना, एक स्थान में निवास करना, बार-बार साक्षात्कार होना, एक दूसरे के अनुराग को सुनना, पीठ पीछे हित साधन करना, समान शील का होना—ये सब स्नेह के कारण हैं। किन्तु तुम्हारे प्रति अकारण ही मेरा हृदय पक्षपात करता हुआ स्नेहयुक्त हुआ जाता है जबकि तुझे मैंने नहीं देखा है फिर भी निकटवर्ती बन्धु के समान तुम प्रतीत होते हो जिस प्रकार कि चन्द्रमा दूर रहने वाले भी कुमुद

न्यथा चान्यथा चायं चक्रवर्ती दुर्जनैर्ग्राहित आसीत्। न च तत्तथा न सन्त्येव ते येषां सतामपि सतां न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रवः। शिशुचापलापराचीनचेतोवृत्तितया च भवतः केनचिदसहिष्णुना यत्किंचिदसदृशमुदीरितम्, इतरो लोकस्तथैव तद्गृह्णाति वक्ति च। सलिलानीव गतानुगतिकानि लोलानि खलु भवन्त्यविवेकिनां मनांसि। बहुमुखश्रवणनिश्चलीकृतनिश्चयश्च किं करोतु पृथिवीपतिः। तत्त्वान्वेषिभिश्चास्माभिर्दूरस्थितोऽपि प्रत्यक्षीकृतोऽसि। विज्ञप्तश्चक्रवर्ती त्वदर्थम्—यथा प्रायेण प्रथमे वयसि सर्वस्यैव चापलैः शैशवमपराधीति। तथेति च स्वामिना प्रतिपन्नम्। अतो भवता राजकुलमकृतकालक्षेपमागन्तव्यम्। अवकेशी-

अन्यथा चान्यथा चेति। एतेन किंचिदेव संभवतीति दर्शयति। अत एवाह—न च तत्तथेति। तथात्वे तु बाणस्य दुर्वृत्तता प्रसज्येत। कृष्णस्यापि तादृशः पक्षपातः स्वामिप्रतारणादि च दोषायैव भवेत्। अत एव वक्ष्यति—तत्त्वान्वेषिभिरित्यादि। ग्राहित इत्येतावति वक्तव्य आसीदित्यनेन दुर्जनाः सम्प्रतिनिरवकाशा इति प्रतिपादितम्। अत एव वक्ष्यति—तथेति च प्रतिपन्नं स्वामिनेति। सतां साधूनामपि। सतां भवताम्। उदासीनो मध्यस्थः। अपराचीनापराङ्मुखो चेतो-

के प्रति स्नेहशील रहता है। तुम्हारी अनुपस्थिति में (कुछ) दुष्ट लोगों ने अनाप-शनाप कह कर इस चक्रवर्ती (महाराज हर्षवर्धन) के कान भर दिये हैं। परन्तु वह वैसा (अर्थात् सत्य) नहीं है। सज्जनों में भी कोई वैसे नहीं हैं जिनके मित्र, उदासीन या शत्रु न हों। किसी असहिष्णु (ईर्ष्यालु) व्यक्ति ने तुम्हारी बाल चपलतापूर्ण चित्तवृत्तियों के कारण कुछ उल्टा-सीधा कह दिया है। दूसरे लोग वैसा ही समझते और कहते हैं। विवेकहीन लोगों के हृदय पानी के समान चञ्चल तथा दूसरों के कहे के अनुसार चलने वाले होते हैं। बहुत से लोगों के मुँह से (तुम्हारी शिकायत) सुन कर अपना निश्चय स्थिर कर लेने वाले भूपति (महाराज) आखिर क्या करते? असलियत की खोज करने वाले हम लोग तुम्हारे दूर रहने पर भी तुम्हें प्रत्यक्ष जान गये हैं। तुम्हारे लिए महाराज को बताया गया है कि प्रायः सभी का बचपन आयु की आरम्भिक अवस्था में अपराधी ही बना रहता है। महाराज ने इसे मान लिया है। इसलिए आप बिना समय नष्ट किये राजकुल में आ जाइए।

वाद्दृष्टपरमेश्वरो बन्धुमध्यमधिवसन्नपि न मे बहुमतः। न च सेवावैषम्यविषादिना परमेश्वरोपसर्पणभीरुणा वा भवता भवितव्यम्। यतो यद्यपि-

स्वेच्छोपजातविषयोऽपि न याति वक्तुं
देहीति मार्गणशतैश्च ददाति दुःखम्।
मोहात्समाक्षिपति जीवनमप्यकाण्डे
कष्टं मनोभव इवेश्वरदुर्विदग्धः॥

तथाप्यन्ये ते भूपतयः, अन्य एवायम्। न्यक्कृतनृगनलनिषधनहुषाम्बरीषदशरथदिलीपनाभागभरतभगीरथययातिरमृतमयः स्वामी। नास्याहङ्कार-

---

वृत्तिर्यस्याः। अवकेशी निष्फलतरुः। स चाद्दृष्टपरिस्तरमध्यगो न कस्यचित्प्रियः। स्वेच्छोपजाता विषया मण्डलानि यस्मात्तादृगपि देहि प्रयच्छेति वक्तुं न पार्यते। इतरत्र—स्वेच्छया स्वसंकल्पेनोपजातः उत्पन्नः विषयो गोचरो यस्य। तथा चोच्यते—'काम जानामि ते मूलं संकल्पात्किल जायसे' इति। अथ च स्वेच्छया उपजाता विषया यस्यायं देही च शरीरवानिति वक्तुं न याति। न शक्यत इति विरोधः। कामश्चानङ्गत्वाद् देही शरीरवानिति वक्तुं न युज्यत इत्यन्यार्थः। मार्गणा याचकाः, शराश्च मार्गणाः। जीव्यतेऽनेनेति जीवनम्, ग्रामादि जीवितं च, ईश्वरो राजा हरश्च। दुर्विदग्धो दुरुढः दुष्टत्वाद्विशेषेण दग्धश्च।

फलहीन वृक्ष के समान आपका बन्धुओं के बीच (व्यर्थ) निवास करना मुझे पसन्द नहीं है। आपको सेवाकार्य कि विषमताओं से विषण्ण नहीं होना चाहिए तथा महाराज के समीप आने से डरना नहीं चाहिए। यद्यपि—मूर्ख राजा कामदेव के समान कष्टकारक होता है, उसे अपनी इच्छा के अनुसार मण्डल (विषय) प्राप्त होते रहते हैं, वह किसी से "दे दो" कहने नहीं जाता, सैकड़ों बार याचना करने पर दुःख ही देता है, मोह के कारण (ग्रामादि) जीवन-सामग्री को अनुपयुक्त स्थान में पहुँचा देता है।" (कामदेव पक्ष में—कामदेव भी स्वेच्छा से उत्पन्न होकर अनुभव गम्य होता है, वह "देही" अर्थात् शरीर धारी नहीं कहलाता, सैकड़ों बाणों (मार्गणों) से दुःख देता है, मोह द्वारा जीवन (प्राण) को अकाण्ड (दुःस्थिति में डाल देता है।) फिर भी ऐसे दूसरे राजा लोग होते हैं, (किन्तु) ये उनसे भिन्न हैं। हमारे मालिक अमृतमय हैं तथा नृग, नल, निषध, नहुष, अम्बरीष, दशरथ, दिलीप, नाभाग, भरत, भगीरथ,

कालकूटविषदिग्धदुष्टा दृष्टयः, न गर्वगरगुरुगलग्रहगदगद्गदा गिरः, नातिस्मयोष्मापस्मारविस्मृतस्थैर्याणि स्थानकानि, नोद्दामदर्पदाहज्वरवेगविक्लवा विकाराः, नाभिमानमहासन्निपातनिर्मिताङ्गभङ्गानि गतानि, न मदार्दितवक्रीकृतौष्ठनिष्ठ्यूतनिष्ठुराक्षराणि जल्पितानि। तथा च—अस्य विमलेषु साधुषु रत्नबुद्धिः, न शिलाशकलेषु। मुक्ताधवलेषु गुणेषु प्रसाधनधीः, नाभरणभारेषु। दानवत्सु कर्मसु साधनश्रद्धा, न करिकीटेषु।

अमृतेत्यादि साभिप्रायम्। यस्मादहङ्कारादि कालकूटादिना रूपयति, अतश्चाहङ्कारादीनामत्यन्ताभावप्रकाशनेच्छयाऽमृतमयत्वमस्य दर्शयति। अमृतमयस्य च कालकूटादिभिर्न योगः। गरं विषम्। स्मयो गर्वः। स्थानकानि स्थितयः। अर्दितं वातव्याधिभेदः। तस्मिन्सति मुखं वक्रं भवति। तथा चोक्तम्—'वायुः प्रवृद्धस्तैस्तैश्च वातलैरूर्ध्वमाश्रितः। वक्रीकरोति वक्त्रारमुक्तं हसितमीक्षितम्॥' इति। निष्ठ्यूतानि निर्गतानि। विमलेष्वपापेषु; अन्यत्र,—सुच्छायेषु। पद्मरागादिष्विति वक्तव्ये शिलेत्यादिपदमादरार्थम्। एवमुत्तरत्रापि वाच्यम्। मुक्तवत्ताभिश्च धवलास्तेषु गुणेष्वौदार्यादिषु, सूत्रेषु च। प्रसाधनं प्रकृष्टं साधनम्, अर्जनम्, भूषणं च। दानं धनत्यागः, मदश्च। साधनं सम्पादनम्; सैन्यं

ययाति जैसे राजाओं को इन्होंने पीछे छोड़ दिया है। न तो इनकी दृष्टि अहङ्काररूपी कालकूट-विष से भीगी हुई दुष्ट है, न इनकी वाणी गर्व रोग से गला चकड़ जाने के कारण भराई हुई है, घमण्ड रूपी अपस्मार रोग से धैर्य के समाप्त हो जाने वाली इनकी स्थिति नही है (१) दर्परूपी तीव्रदाह ज्वर के वेग के कारण व्यग्र होने वाले विकार इनमें नहीं हैं, अभिमानरूपी महासन्निपात के कारण हो जाने वाले अङ्गभङ्ग के अनुकूल लड़खड़ाने वाली इनकी चाल नहीं है और इनकी बोली ऐसी नहीं है कि जिसमें गर्व के वातरोग के कारण सिकोड़े गये होठों से कठोर अक्षर निकलते हों। इसी प्रकार—ये शुद्ध हृदय वाले सज्जनों को ही रत्न समझते हैं, पत्थर के टुकड़ों को नहीं। मोती जैसे उजले गुणों को ही अलङ्कार-सामग्री समझते हैं, आभूषणों को नहीं। दानयुक्त कार्यों को सम्पादित करने में ही इनकी श्रद्धा है, (दान जल बहाने वाले)

सर्वाग्रेसरे यशसि महाप्रीतिः, न जीवितजरत्तृणे। गृहीतकराश्वाशासु प्रसाधनाभियोगः न निजकलत्रधर्मपुत्रिकासु। गुणवति धनुषि सहायबुद्धिः, न पिण्डोपजीविनि सेवकजने। अपि च अस्य मित्रोपकरणमात्मा, भृत्योपकरणं प्रभुत्वम्, पण्डितोपकरणं वैदग्ध्यम्, बान्धवोपकरणं लक्ष्मीः, कृपणोपकरणमैश्वर्यम्, द्विजोपकरणं सर्वस्वम्, सुकृतसंस्मरणोपकरणं हृदयम्, धर्मोपकरणमायुः, साहसोपकरणं शरीरम्

च। साध्यतेऽनेनेति कृत्वा। करो दण्डः, पाणिश्च। आशा दिशः, चेतः, वाञ्छा च। प्रसाधनं सम्पादनम्, दण्डश्च। गुणो ज्या, शौर्यादयश्च गुणाः। उपक्रियन्तेऽनेनेत्युपकरणमुपयोगः। आत्मेति। न हि मित्राणि मित्रव्यतिरेकेण बान्धवादिव लक्ष्म्यादि किंचिदपेक्ष्यन्ते। प्रभुत्वमिति। तस्य प्रभुत्वं सेवकादीनां दानसंपादनादि। यथाह—'यथाकालं प्रवर्तन्ते पण्डिताः' इत्यादिवैदग्ध्यमात्रापेक्षया पण्डितानां क्षपणादिवदर्थादिनपेक्षितया हि तेषामौचित्यं न प्रतीयते। अनेन पण्डितसामान्यात्तदभिप्रायेण स्वस्य समुचितमेव। हेवाकमभिव्यनक्ति। वैदग्ध्यापेक्षित्वं दर्शयतीति यावत्। बान्धवाः कुल्याः। लक्ष्मीश्छत्रचामरादिप्रतिपत्तिरूपा छत्रादिवत्तुल्या एव लभन्तेऽन्येषामनर्हत्वात्। कृपणेत्यादि। कृपणानां पोषणमेव समुचितम्। तत्र चैश्वर्यमेव हेतुः। ऐश्वर्यमर्थवत्ता। न तु द्विजातिवदेते सर्वस्वमर्हन्ति। सर्वशब्देन

हाथी रूपी कीड़ों (के संग्रह) में नहीं। सबसे आगे चलने वाली कीर्ति में ही इनका अत्यधिक प्रेम है, जीवन (या प्राण) रूपी जलते हुए तिनके में नहीं। जिन दिशाओं से कर (दण्ड) ग्रहण करते हैं वहीं प्रसाधन (दण्ड) का अभियोग करते हैं, अपनी पत्नी रूपी धर्म पुत्तलिकाओं का प्रसाधन (शृङ्गार) नहीं करते। गुण (डोरी) वाले धनुष को ही अपना सहायक मानते हैं, पेट पर पलने वाले सेवकों को नहीं।

और भी—ये स्वयं को मित्रों का उपकरण (अपने) प्रभाव (अर्थात् स्वामित्व) को सेवकों का उपकरण, (अपनी) विदग्धता को विद्वानों का उपकरण, (अपनी) लक्ष्मी को बान्धवजनों का उपकरण, (अपने) ऐश्वर्य को दीन-दुखियों का उपकरण, (अपने) सर्वस्व को ब्राह्मणों का उपकरण, (अपने) हृदय को पुण्य-स्मरण का उपकरण, (अपनी) आयु को धर्म का

असिलतोपकरणं पृथिवी, विनोदोपकरणं राजकम्, प्रतापोपकरणं प्रतिपक्षः। नात्याल्पपुण्यैरवाप्यते सर्वातिशायिसुखरसप्रसूतिः पादपल्लवच्छाया' इति। श्रुत्वा च तमेव चन्द्रसेनं समादिशत्—'कृतकशिपुं विश्रान्तसुखिनमेनं कारय' इति।

अथ गते तस्मिन्, पर्यस्ते च वासरे संघट्टमानरक्तपङ्कजसंपुटपीयमान एव क्षयिणि क्षामतां व्रजति बालवायसास्यारुणेऽपराह्णातपे, शिथिलितनिजवाजिजवे जपापीडपाटलिम्न्यस्ताचलशिखरस्खलिते खञ्जतीव

दारा अप्युच्यन्ते। एवमादि तु द्विजा एव लभन्ते। तद्व्यतिरेकेणान्येषामनर्हत्वात्। एवं हृदयादि। तत्तदभिप्रायेण विचारणीयम्। सुखमेवास्वाद्यतया रस इव रसः सुखरसः। छाया कान्तिः। यद्वा,—छायावत्त्वमेषां सर्वस्य कस्यचिदाश्रयणीयत्यादुपचर्यते। अल्पेत्यादि। अभिप्रायेण पादयोः कल्पवृक्षतुल्यत्वमभिव्यज्यते। पुण्यवशात्तदवाप्तेः। एतत्पक्षे छायाऽऽतपप्रतिपक्षजातिः। 'भोजनाच्छादने सद्भिरुभे कशिपुरुच्यते'।

वायसः काकः। जपा रविप्रियं पुष्पम्। आपीडः स्तबकः। कोऽत्रास्तेत्यादिस्वरूपकथनं क्षतपादपल्लवत्वादुत्प्रेक्षणम्। खञ्जतीवेति। यश्च खञ्जति स शिखरप्राये विषमे पथि। ये पुनरस्ताचले शिखरस्खलनकारणकं खञ्जनमित्युत्प्रेक्षयन्ते

उपकरण, (अपने) शरीर को साहसिक कार्यों को सम्पादित करने का उपकरण पृथ्वी को शृङ्खलता का उपकरण, राजाओं के समूह का विनोद का उपकरण तथा शत्रु को प्रताप का उपकरण मानते हैं। अल्प पुण्यवान् व्यक्ति इनके चरणरूपी पल्लव की सर्वाधिक सुखरूपी रस को जन्म देने वाली छाया को नहीं प्राप्त करते। इतना सुनकर बाण ने उसी चन्द्रसेन को आदेश दिया—"इसे (मेखलक को) भोजन-आच्छादन की व्यवस्था करके आराम से ठहराओ।"

उसके बाद मेखलक के चले जाने पर तथा दिन के ढल जाने पर बच्चे कौवे के मुख के समान लाल दिखने वाले अपराह्ण कालीन आतप के मुकुलित हुए लाल कमलों द्वारा पी लिये गये के समान क्षीण होने पर, सूर्य द्वारा अपने घोड़ों के वेग को मन्द कर दिये जाने पर तथा पुष्प के गुच्छे के समान पाटल होकर अस्ताचल की चोटी पर सूर्य के इस प्रकार गिर जाने पर मानों कम-

कमलिनीकण्टकक्षतपादपल्लवे पतङ्गे, पुरः परापतति प्रेङ्खदन्धकारलेश-लम्बालके शशिविरहशोकश्याम इव श्यामामुखे, कृतसंध्योपासनः शयनी-यमगात्। अचिन्तयच्चैकाकी—किं करोमि। अन्यथा सम्भावितोऽस्मि राज्ञा। निर्निमित्तबन्धुना च संदिष्टमेवं कृष्णेन। कष्टा च सेवा। विषमं भृत्यत्वम्। अतिगम्भीरं महद्राजकुलम्। न च मे तत्र पूर्वजपुरुषप्रवर्तिता प्रीतिः, न कुलक्रमागता गतिः, नोपकारस्मरणानुरोधः, न बालसेवास्नेहः न गोत्रगौरवम्, न पूर्वदर्शनदाक्षिण्यम्, न प्रज्ञासंविभागोपप्रलोभनम्;, न विद्यातिशयकुतूहलम्, नकारसौन्दर्यादरः, न सेवाकाकुकौशलम्, न विद्वद्गोष्ठीबन्धवैदग्ध्यम्, न वित्तव्ययवशीकरणम्, न राजवल्लभपरिचयः।

तान्प्रति कमलिनीत्यादि निरर्थकम्। खञ्जतीव स्खलतीव। पुरः पूर्वस्यां दिशि। श्यामा रात्रिः, योषिच्च। मुखमारम्भः, वदनं च। निर्निमित्तेत्याद्यभिप्रायेण

लिनी के काटों से उसके चरण पल्लव घायल हो गये हों और वह लड़खड़ा रहा हो, लहराते हुए अन्धकाररूपी लम्बे-लम्बे बालों से युक्त तथा मानों चन्द्रमा के विरहजन्य शोक के कारण नीली पड़ जाने वाली सन्ध्या के प्रारम्भ होने पर सन्ध्योपासना सम्पन्न करके बाण शय्या पर पहुँच गया और एकान्त में सोचने लगा—(मैं) क्या करूँ ? महाराज ने मुझे कुछ दूसरा ही समझ लिया है। मेरे अकारण-बन्धु बने हुए कृष्ण ने ऐसा सन्देश भेजा है। (राजाओं की) सेवा करना कष्टकारक है। नौकरी करना आसान नहीं है। महान् राजकुल अत्यन्त गम्भीर होता है। उस (राजकुल) के प्रति मुझे पूर्व पुरुषों द्वारा प्रवर्तित प्रेम नहीं है। न उस राजकुल से मेरा कोई पुश्तैनी सम्बन्ध रहा है। न राजकुल के द्वारा किये गये किसी उपकार का स्मरण हो रहा है। बचपन में राजकुल द्वारा मेरी कुछ भी मदद नहीं की गई है जिसके प्रति प्रेम भी नहीं है। न कुल का ही ऐसा गौरव है, न पहले के साक्षात्कारों से उत्पन्न होने वाली अनुकूलता ही है, न बौद्धिक आदान-प्रदान का कुछ लोभ है, न ही ऐसा है कि अत्यधिक विद्या वहाँ हो जिसके प्रति होने वाली उत्सुकता मुझमें हो, न हो सुन्दर आकृति के कारण प्राप्त होने वाले सम्मान की चाहतो (मुझ में) है, न सेवकों जैसी चापलूसी करने की कला ही (मुझ में) है, न ही (मुझ में) वैसी विदग्धता (चातुर्य) है कि विद्वानों की गोष्ठी में भाग ले सकूं, न धन

अवश्यं गन्तव्यञ्च। सर्वथा भगवान्भवानीपतिर्भुवनपतिर्गतस्य मे शरणम्, सर्वं साम्प्रतमाचरिष्यति, इत्यवधार्य गमनाय मतिमकरोत्।

अथान्यस्मिन्नहन्युत्थाय, प्रातरेव स्नात्वा धृतधवलदुकूलवासाः, गृहीताक्षमालः, प्रास्थानिकानि सूक्तानि मन्त्रपदानि च बहुशः समावर्त्य देवदेवस्य विरूपाक्षस्य क्षीरस्नपनपुरःसरां सुरभिकुसुमधूपगन्धध्वजबलिविलेपनप्रदीपकबहुलां विधाय परमया भक्त्या पूजाम्, प्रथमहुततरलतिलत्वग्विघटनचटुलमुखरशिखाशेखरं प्राज्याज्याहुतिप्रवर्धितदक्षिणार्चिषं भगवन्तमाशुशुक्षणिं हुत्वा दत्त्वा द्युम्नं यथाविद्यमानं द्विजेभ्यः प्रदक्षिणीकृत्य प्राङ्मुखीं नैचिकीम्, शुक्लाङ्गरागः, शुक्लमाल्यः, शुक्लवासाः,

वक्ष्यति। अवश्यं गन्तव्यं चेत्यादि। 'काकुः स्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः'। इह च लक्षणया वक्रोक्तिः। सांप्रतं युक्तम्।

अथेत्यादौ। अन्यस्मिन्नहनि प्रीतिकूटान्निरगादिति सम्बन्धः। प्रस्थानं प्रयोजनं येषां तानि प्रास्थानिकानि सूक्तानि, वेदोक्ता मन्त्रविशेषाः। विरूपाक्षस्त्र्यक्षः। प्राज्यं भूरि। आज्यं घृतम्। द्युम्नं धनम्। यथाविद्यमानमित्यनेन निर्लोभतोक्ता।

खर्च करके दूसरों को अपने वश में कर लेने की (मेरी) आदत है और न राजा के प्रेमीजनों से (मेरा) कुछ परिचय ही है। (फिर भी) अवश्य जाना चाहिए। भुवनपति भगवान् गौरीपति (शङ्कर) सब प्रकार से मेरे आश्रयभूत हैं, वे सब कुछ ठीक ही करेंगे। यह विचार कर बाण ने (सम्राट हर्षवर्धन के पास) जाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन उठकर, सुबह ही नहाकर, उजले दुपट्टे को धारण कर अक्षमाला को हाथ में लेकर, प्रस्थानोपयुक्त सूक्तों (यात्राश्लोकों) तथा मन्त्रों को बार-बार दुहराकर, देवाधिदेव त्रिनेत्र भगवान् शङ्कर की दुग्धस्नान सहित सुगन्धित फूल, धूप, गन्ध, ध्वज, भोग, चन्दन, दीपक आदि पूजोपकरणों द्वारा अत्यन्त भक्ति के साथ पूजा करके, पहली बार आहुति में डाले गये तिलों के कारण चटखती हुई ज्वालाओं वाले तथा अत्यधिक आज्याहुति (घी की आहुति) पड़ने के कारण दक्षिण की ओर उठती हुई लपटों वाले भगवान् अग्निदेव को आहुति डालकर, ब्राह्मणों को यथाशक्ति धन देकर, पूर्व दिशा की ओर मुँह करके खड़ी हुई उत्तम धेनु की प्रदक्षिणा करके, श्वेतचन्दन, श्वेतमाला तथा श्वेतवस्त्र पहनकर,

रोचनाचित्रदूर्वापल्लवग्रथितगिरिकर्णिकाकुसुमकृतकर्णपूरः, शिखासक्तसिद्धार्थकः, पितुः कनीयस्या स्वस्रा मात्रेव स्नेहार्द्रहृदयया श्वेतवाससा साक्षादिव भगवत्या महाश्वेतया मालत्याख्यया कृतसकलगमनमङ्गलः, दत्ताशीर्वादो बान्धववृद्धाभिः, अभिनन्दितः परिजनजरतीभिः वन्दितचरणैरभ्यनुज्ञातो गुरुभिः, अभिवादितैराघ्रातः शिरसि कुलवृद्धैः, वर्धितगमनोत्साहः शकुनैः मौहूर्तिकमतेन कृतनक्षत्रदोहदः शोभने मुहूर्ते हरितगोमयोपलिप्ताजिरस्थण्डिलस्थापितमसितेतरकुसुममालापरिक्षिप्तकण्ठं दत्तपिष्टपञ्चाङ्गुलपाण्डुरं मुखनिहितनवचूतपल्लवं पूर्णकलशमीक्षमाणः,

---

नैचिकी वराङ्गीम्, होमधेनुं वा, शुक्लां वा गिरिकर्णिकाश्वखुरी माङ्गल्यौषधिः। सिद्धार्थकाः सर्षपाः। स्वस्रा भगिन्या। महाश्वेता देवताविशेषः। रविस्थदेवतेत्यन्ये। दत्तेत्यादिभागो बान्धववृद्धाभिप्रायेण समुचित एव। अभिनन्दित इति। प्रतिपदं द्वयमूह्यम्। जरत्यो वृद्धाः। आघ्रातः शिरसि चुम्बितः। मौहूर्तिका गणकाः। नक्षत्रदोहदं प्रतिनक्षत्रप्राशनम्, नक्षत्रविषयोऽभिलाषो वा। अजिरमङ्गनम्। स्थण्डिलं भूः। परिक्षिप्तो वेष्टितः। पिष्टपञ्चाङ्गुलमाजकोवताभिः।

गोरोचननिर्मितचित्र से युक्त दूर्वा के अग्रपल्लव में गुँथे हुए श्वेत अपराजिता फूलों के कर्णफूल कानों में लगाकर, शिखा में पीली सरसों डालकर, पिता की छोटी बहन की भाँति माता के समान स्नेहसिक्त हृदयवाली उज्ज्वल वस्त्रों वाली साक्षात् भगवती महाश्वेता के समान मालती ने जिसके प्रस्थान काल में सारे माङ्गलिक कार्य सम्पादित किये हों ऐसे, बन्धुजनों में जो बूढ़ी औरतें थीं उनसे आशीर्वाद प्राप्त करके तथा परिवार की बूढ़ी औरतों द्वारा अभिनन्दित होकर, जिनके चरणों की पूजा की गई ऐसे गुरुओं से (जाने की) अनुमति प्राप्त करके, अभिवादित कुलवृद्धों ने (प्रेम से) जिसका माथा सूँघा ऐसे, शकुनों द्वारा बढ़ाये गये गमनोत्साह से युक्त होकर, ज्योतिषी के कथनानुसार नक्षत्र देवताओं को प्रसन्न करके, शुभ मुहूर्त में, हरे गोबर से लीपे गये आँङ्गन के चौतरे पर स्थापित पूर्णकलश—जिसके गले में उजले फूलों की माला लपेट दी गई थी, जो पिठार (चावल के पिसे हुए चूरे) से पाँचो अंगुलियों की थाप देने के कारण उजला था तथा जिसके मुँह में आम्रवृक्ष के नये पल्लव डाल दिये गये थे—को देखता

प्रणम्य कुलदेवताभ्यः कुसुमफलपाणिभिरप्रतिरथं जपद्भिर्निजद्विजैरनुगम्यमानः, प्रथमचलितदक्षिणचरणः, प्रीतिकूटान्निरगात् ।

प्रथमेऽहनि तु घर्मकालकष्टं निरुदकं निष्पत्रपादपविषमं पथिकजननमस्क्रियमाणप्रवेशपादपोत्कीर्णकात्यायनीप्रतियातनं शुष्कमपि पल्लवितमिव तृषितश्वापदकुललम्बितलोलजिह्वालतासहस्रैः पुलकितमिवाच्छभल्लगोलाङ्गूललिह्यमानमधुगोलचलितसरघासंघातैः, रोमाञ्चितमिव दग्धस्थलोरूगूढस्थूलाभीरुकन्दलशतैः, शनैश्चण्डिकायतनकाननमतिक्रम्य मल्लकूटनामानं ग्राममगात् । तत्र च हृदयनिर्विशेषेण भ्रात्रा सुहृदा च जग-

पञ्चभिरङ्गुलीभिर्मङ्गलाय दीयते । अप्रतिरथं प्रास्थानिकं मन्त्रम् । निजेत्यादिना स्वस्य दातृत्वमुक्तम् ।

उत्कीर्णा निखाता । कात्यायनी दुर्गा । प्रतियातना प्रतिमा । काननत्वात्पल्लवितमिवेत्युत्प्रेक्षा । जिह्वैव लता, दीर्घत्वात् । गोलाङ्गूलः कृष्णमुखो वानरः । मधुगोलं माक्षिककरण्डः । सरघा मधुमक्षिकाः । अभीरुः शतावरी । कन्दलानि

हुआ, कुल देवताओं को प्रणाम करके, हाथ में फल-फूल लिये हुए तथा अप्रतिरथ (प्रस्थान कालिक मन्त्रों) को पढ़ते हुए अपने पुरोहितों द्वारा अनुगत होकर, पहले अपने दायें पाँव को आगे की ओर बढ़ाकर बाण प्रीतिकूट नगर से निकल गया ।

पहले दिन, गर्मी के समय के कारण कष्टकारक, जलहीन, पत्रहीन वृक्षों के कारण कठिन, प्रवेशवृक्षों पर खुदी हुई कात्यायनी की प्रतिमाओं से युक्त जिन्हें पथिकजन प्रणाम कर रहे थे, प्यासे श्वापद जन्तुओं की हजारों लम्बी-एवं चञ्चल जिह्वाओं के कारण सूखे होने पर भी जो पल्लवयुक्त प्रतीत हो रहा था, भालुओं एवं लंगूरों द्वारा मधुमक्खियों के छत्तों के चाटे जाने से भनभनाकर उड़ने वाली मधुमक्खियों के समूहों के कारण जो पुलकित हुआ सा प्रतीत हो रहा था, दावानल से जली हुई वनभूमि में सतावर के मोटे पौधों के निकल आने के कारण जो रोमाञ्चित हुआ सा प्रतीत हो रहा था, उस चण्डिकायतन वन को धीरे-धीरे पार कर बाण मल्लकूट नामक गाँव पहुँचा । वहाँ बाण के अभिन्न

त्पतिनाम्ना संपादितसपर्यः सुखमवसत्। अथापरेद्युरुत्तीर्य भगवतीं भागीरथीं यष्टिगृहकनाम्नि वनग्रामके निशामनयत्। अन्यस्मिन्दिवसे स्कन्धावारमुपमणिपुरमन्वजिरवति कृतसन्निवेशं समाससाद। अतिष्ठच्च नातिदूरे राजभवनस्य।

निर्वर्तितस्नानाशनव्यतिकारो विश्रान्तश्च मेखलकेन सह याममात्रावशेषे दिवसे भुक्तवति भूभुजि प्रख्यातानां क्षितिभुजां बहून्शिबिरसंनिवेशान्वीक्षमाणः शनैः शनैः पट्टबन्धार्थमुपस्थापितैश्च डिण्डिमाधिरोहणायाहृतैश्चाभिनवबद्धैश्च विक्षेपोपार्जितैश्च कौशलिकागतैश्च प्रथमदर्शनकुतूहलोपनीतैश्च नागवीथीपालप्रेषितैश्च पल्लीपरिवृढढौकितैश्च स्वेच्छायुद्ध-

नवनालानि। भ्रात्रेति चन्द्रसेनेन। हृदयेत्याद्यभिप्रायेण सुखमित्युक्तम्। उपमणिपुरं पत्तनभेदम्। अन्वजिरवति नदीभेदनिकटे। संनिवेशो गृहादिरचना।

निर्वर्तितेत्यादौ राजद्वारमीदृशमगमदिति संबन्धः। निर्वर्तितेत्यादि। राजदर्शनेऽकातरत्वमात्मनः प्रतिपादयति। वारणेन्द्रैः श्यामायमानमिति राजद्वारविशेषणम्। डिण्डिमः पटहः। विक्षेपः करः। नागवीथी हस्तिभूः। पल्ली शबरवसतिः।

हृदय भाई एवं मित्र जगत्पति ने उसका स्वागत-सत्कार किया तथा वह आराम से वहाँ ठहरा फिर दूसरे दिन भगवती गङ्गा को पार कर यष्टिगृहक नामक वन प्रदेशीय गाँव में बाण ने रात गुजारी। अन्य दिन (अर्थात् तीसरे दिन) अजिरवती (राप्ती) के किनारे मणिपुर नामक गाँव के नजदीक पड़ी हुई छावनी में वह पहुँचा तथा राजभवन के पास ही ठहरा।

स्नान-भोजन आदि से निवृत्त होकर तथा विश्राम कर लेने के बाद बाण मेखलक के साथ दिन के प्रहर मात्र अवशिष्ट रहने पर तथा राजा के भोजन कर लेने पर प्रसिद्ध राजाओं के बहुत से शिविरों को देखता हुआ धीरे-धीरे कुछ पट्टबंध के लिए लाये गये, कुछ धौंसे (नगाड़े) चढ़ाने के लिए लाये गये कुछ पकड़े गये, कुछ करके रूप में प्राप्त हुए, कुछ उपहार में मिले हुए, कुछ (राजा के) प्रथम दर्शन की उत्सुकता में लाये गये, कुछ नागवीथी या नागवन के मालिकों के द्वारा भेजे गये, कुछ शबर बस्तियों के सरदारों द्वारा भेजे गये, कुछ गजयुद्ध या

क्रीडाकौतुकाकारितैश्च दूतसंप्रेषणप्रेषितैश्च दीयमानैश्चाच्छिद्यमानैश्च मुच्यमानैश्च यामावस्थापितैश्च सर्वद्वीपविजिगीषया गिरिभिरिव सागरसेतुबन्धनार्थमेकीकृतैर्ध्वजपटपटुपटहशङ्खचामराङ्गरागरमणीयैः पुण्याभिषेकदिवसैरिव कल्पितैर्वारणेन्द्रैः श्यामायमानम्, अनवरतचलितखरपुटप्रहतमृदङ्गैश्च नर्तयद्भिरिव राजलक्ष्मीमुपहसद्भिरिव सृक्विपुटप्रसृतफेनाट्टहासेन जवजडजङ्घां हरिणजातिमाकारयद्भिरिव संघट्टहेतोर्हर्षहेषितेनोच्चैरुच्चैः श्रवसमुत्पतद्भिरिव दिवसकररथतुरगरुषा यक्षायमाणमण्डनचामरमालैर्गगनतलं तुरङ्गैस्तरङ्गायमाणम्, अन्यत्र प्रेषितैश्च प्रेष्यमाणैश्च प्रेषितप्रतिनिवृत्तैश्च बहुयोजनगमनगणनसंख्याक्षरावलीभिरिव वराटिकावलीभिर्घ-

---

परिवृढः स्वामी। आकारितैराह्वानैः। 'आच्छिद्यमानैरपह्रियमाणैः। यत्र दिने पुष्यनक्षत्रे राजा स्नाति तद्दिनं पुष्याभिषेकाख्यम्। श्यामायमानं कालत्वमापद्यमानम्। अथ च दिवसः श्यामायति। रात्रिवदाचरतीति वक्रोक्तिः। अभिषेकदिनानि च ध्वजादिरम्याणि। अनवरतेत्यादौ। तुरङ्गैस्तरङ्गायमाणमिति संबन्धः। मृदोऽङ्ग मृदङ्गश्च मुरजः। सृक्विण्योष्ठपर्यन्तौ। अन्यत्रेत्यादौ—क्रमेलककुलैः कपि-

---

खेल तमाशे के लिए बुलवाये गये या स्वेच्छा से दिये गये, कुछ दूत भेजने के कारण भेजे गये, कुछ बलपूर्वक छीने गये, कुछ बन्धन से मुक्त हुए, कुछ पहरे पर रखे हुए, सभी द्वीपों को जीत लेने की इच्छा से मानो समुद्र पर पुल बाँधने के लिए पहाड़ों के समान, इकट्ठे किये गये ध्वज, वस्त्र, पटह, शङ्ख, चामर एवं अङ्गरागों से सजे हुए मानो पुण्याभिषेक के दिन हों ऐसे बड़े-बड़े हाथियों से श्यामवर्ण वाले, निरन्तर चंचल खुरों की टाप रूपी मृदङ्गध्वनि से राजलक्ष्मी को मानो नचाते हुए, थूथन तक बहते हुए मुख-फेन (गाज) के अट्टहास से मानो वेग के कारण जड़ हो गई जङ्घाओं वाले हरिणों का उपहास करते हुए, हर्ष के कारण इस प्रकार हिनहिनाते हुए मानो इन्द्र के उच्चैःश्रवा नामक अश्व से टकराने के लिए उसे ललकार रहे हों ऐसे, सूर्य के रथ के घोड़ों के प्रति मानों क्रोध होने के कारण अपनी चामर माला को पंख बनाकर आकाश में उड़ जाना चाहते हों ऐसे घोड़ों से लहराते हुए, कहीं, कुछ भेजे गये, कुछ भेजे जाने वाले, कुछ भेजे जाकर लौटे हुए मानों बहुतो योजनों की यात्रा करने के कारण उनकी

टितमुग्धमण्डनकैस्तारकितैरिव सन्ध्यातपच्छेदैररुणचामरिकारचितकर्णपूरैः सरक्तोत्पलैरिव रक्तशालिशालेयैरनवरतझणझणायमानचारुचामीकरघुरुघुरुकमालिकैर्जरत्करञ्जवनैरिव रणितशुष्कबीजकोशीशतैः श्रवणोपान्तप्रेङ्खत्पञ्चरागवर्णोर्णाचित्रसूत्रजूटजटाजालैः कपिकपोलकपिलैः क्रमेलककुलैः कपिलायमानम्, अन्यत्र शरज्जलधरैरिव सद्यःस्रुतपयःपटलधवलतनुभिः कल्पपादपैरिव मुक्ताफलजालकजायमानालोकलुप्तच्छायामण्डलैर्नारायणनाभिपुण्डरीकैरिवाश्लिष्टगरुडपक्षैः क्षीरोदोद्देशैरिव द्योतमानविकटविद्रुमदण्डैः शेषफणाफलकैरिवोपरिस्फुरत्स्फीतमाणिक्यखण्डैः श्वेतगङ्गापुलिनैरिव राजहंसोपसेवितैरभिभवद्भिरिव निदाघसमयमुपहसद्भिरिव

लायमानमित्यन्वयः। वराटिकाः श्वेतिकाः। शालीनां भवनं क्षेत्रं शालेयम्। 'व्रीहिशाल्योर्ढक्'। बीजकोशी शिम्बिका। क्रमेलका उष्ट्राः। अन्यत्रेत्यादिनाऽऽतपत्रखण्डैः श्वेतायमानमित्यन्वयः। सद्य इत्यादावभिप्रायेण शरद्ग्रहणम्। स्रुतं निर्गतम्। पयः क्षीरम्, जलं च। पटलवत्तेन च धवला तनुराकारो येषाम्। अन्यत्र—धवलाश्च ते तनवः, क्षीणाश्च ते। पुण्डरीकग्रहणेनाकारसदृशत्वमप्युच्यते। गरुडपक्षा रत्नभेदाः,गरुडस्य चाङ्गरुहाः। क्षीरोदेति। शुक्लतया राजहंसाः मुख्यनृपाः

गणना के लिए अक्षर-समूह हों तथा सन्ध्याकालीन आतप के टुकड़े हों इस प्रकार की कौड़ियों की मालारूपी मुखालङ्करण से युक्त, लालवर्ण के धान वाले खेतों में मानों लाल कमल के फूल खिले हों इसी प्रकार लाल चँवरियों से बने कनक फूलों से युक्त, सूखे हुए करञ्ज वनों में उनकी गुठलियाँ जिस प्रकार झन-झन बजती हैं उसी प्रकार झन-झन बजते हुए स्वर्णनिर्मित घुंघरूओं की माला से युक्त कानों के पास लटकते हुए पंचरंगी उनके फुँदनी से युक्त जो बन्दरों के कपालों की भाँति कपिलवर्ण के लग रहे थे वैसे ऊँटों से कपिल वर्ण वाले, कहीं तत्काल पानी बरस जाने के बाद उजले वर्ण वाले शरत् कालीन मेघों की भाँति, कल्प वृक्षों के समान मोतियों की लगी हुई झालरों से उत्पन्न होने वाले प्रकाश से छाया को मिटाने वाले, भगवान् विष्णु के नाभिकमल (में जिस प्रकार गरुड पँख लगा रहता है उसी) के समान गरुड पक्षी नामक रत्नों से जड़े हुए, क्षीर-सागर के एक भाग के समान विद्रुम के दण्डों से युक्त, मानों शेषनाग के फन पर माणिक्य के टुकड़े चमक रहे हों ऐसे, गङ्गा के उजले तटों की भाँति राज-

विवस्वतः प्रतापमापिबद्भिरिवातपं चन्द्रलोकमयमिव जीवलोकं जनयद्भिः कुमुदमयमिव कालं कुर्वद्भिर्ज्योत्स्नामयमिववासरं विरचयद्भिः फेनमयीमिव दिवं दर्शयद्भिरकालकौमुदीसहस्राणीव सृजद्भिरुपहसद्भिरिव शातक्रतवीं श्रियं श्वेतायमानैरातपत्रखण्डैः श्वेतद्वीपायमानम्, क्षणदृष्टनष्टाष्टदिङ्मुखं च मुष्णद्भिरिव भुवनमाक्षेपोत्क्षेपदोलायितं दिनं गतागतानीव कारयद्भिरुत्सारयद्भिरिव कुनृपतिसम्पर्ककलङ्ककालीं कालेयीं स्थितिं

रक्तचञ्चुचरणा राजहंसाः। निदाघस्य तिरस्करणादभिभवद्भिरिवेत्युक्तम्——उपहसद्भिरिवेति। प्रतापस्योपह्रास एव समुचितो वैयर्थ्यात्। अथ च प्रतापपदेन शङ्कया विवस्वत आरोपितविजिगीषुव्यवहारत्वाच्छत्रुमनःसन्तापकारि यश उक्तम्। आतपं प्रकाशम्। आपिबद्भिरिति। तस्य सर्वत एवातिदर्शनात्। जीवलोकमिति। यत्र जीवानां लोकस्तत्र कथं चन्द्रलोक इति विरोधः। कुमुदमयमिवेति। कुमुदमयत्वाच्छुक्लं भवति न तु कालम्। कुमुदमयं च समयं कार्तिकादि। ज्योत्स्नेति। वासरे ज्योत्स्ना न सम्भवतीति विरोधः। एवं च दिवः फेनमयीत्वम्। जलदे हि फेनानामभावः। कौमुदी कुमुदिनी, कार्तिकी च ज्योत्स्ना। पूर्वं सामान्येनोक्ता इति। विशेषेण श्वेता इवाचरन्तः श्वेतायमानाः। तैस्तत्र तेषां स्वत एव श्वेतत्वाच्छ्वेतपदेन कथमुपमानतेत्युच्यते। श्वेतगुणा इवाचरन्तः श्वेतायमानाः। तेन यथा श्वेतगुणयोगात्स्फटिकश्चिच्छ्वेतते तद्वदेतद्योगात् राजद्वारमिति। श्वेताः स्फटिका इत्यन्ये। केचित्तु 'श्वेतमानैः' इति पठन्ति। क्षणेत्यादौ चामराणां सहस्रै-

---

हंसों की कढ़ी हुई आकृतियों से युक्त मानो ग्रीष्मकाल को पराजित करते हुए, मानो सूर्य के प्रताप का उपहास करते हुए, मानो गर्मी को पीते हुए, मानो जीवलोक को चन्द्रलोक बनाते हुए, मानो समय को कुमुदमय बनाते हुए, मानो असमय में हजारों चाँदनियों को दिखाते हुए मानो इन्द्र की लक्ष्मी का उपहास करते हुए उजले-उजले छातों द्वारा उजले द्वीप की भाँति बनाये गये, आठो दिशाएँ जिसमें क्षण भर के लिए दिख जातीं तथा पुनः ढँक जाती इस प्रकार मानो त्रिभुवन को चुराते हुए, ऊपर-नीचे डोलते रहने के कारण सूर्य-किरणों को रोकते-छोड़ते हुए मानों दिन का आना-जाना लगा देते हुए, कुत्सित राजाओं

विकचविशदकाशवनपाण्डुरदशदिशं शरत्समयमिवोपपादयद्भिर्बिसतन्तुमयमिवान्तरिक्षमाविर्भावयद्भिः शशिकररुचीनां चलतां चामराणां सहस्रैर्दोलायमानम्, अपि च हंसयूथायमानं करिकर्णशङ्खैः, कल्पलतावनायमानं कदलिकाभिः, माणिक्यवृक्षकवनायमानं मायूरातपत्रैः, मन्दाकिनीप्रवाहायमाणमंशुकैः, क्षीरोदायमानं क्षौमैः, कदलीवनायमानं मरकतमयूखैः, जन्यमानान्यदिवसमिव पद्मरागबालातपैः, उत्पद्यमानापराम्बरमिवेन्द्रनीलप्रभापटलैः, आरभ्यमाणापूर्वनिशमिव महानीलमयूखान्धकारैः स्यन्दमानानेककालिन्दीसहस्रमिव गारुडमणिप्रभाप्रतानैः अङ्गारकितमिव पुष्परागरश्मिभिः, कैश्चित्प्रवेशमलभमानैरधोमुखैश्चरण-

दोलायमानमित्यन्वयः। कलेरियं कालेयी। सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक्। पद्मरागा इव बालातपास्तैः। महानीला गरुडमणयः। पुष्परागाश्च मणिभेदाः। कैश्चिदि-

द्वारा कलङ्कित कलियुग के आचारों को मानों दूर हटाते हुए खिले हुए उजले काशपुष्पों के कारण उजली हो गई दसों दिशाओं वाले शरत्काल को मानों उत्पन्न करते हुए, मानो मृणाल सूत्रमय आकाश का आविष्कार करते हुए, चन्द्रकिरणों के समान कान्ति वाले (उजले) चलाते हुए हजारों चाँवरों से से दोलायित हो रहे, और भी हाथियों के कानों में लगे शङ्खाभरणों के कारण हंस समूह के समान, केले के खम्भों के कारण कल्पलता के वन की भाँति, नृत्य करते हुए मयूरों के फैले हुए पंखों के समान आकृति वाले मयूरी छातों से माणिक्य के वृक्षों के वन के समान, फहरते हुए अंशुकों के कारण आकाश गङ्गा की भाँति, क्षौम वस्त्रों के कारण क्षीर-सागर के समान, मरकत मणियों की चमक से केले के वन के समान, पद्मराग की सूर्योदयकालीन लाली के समान छिटकने वाली लाल-लाल किरणों के समान के कारण मानो उत्पन्न होते हुए दूसरे दिन के इन्द्र नीलमणियों की नीली कान्ति के कारण मानों दूसरा आकाश निकल आया हो, इस प्रकार के महानील मणियों से घनी नीली किरणों के फैलने के कारण मानो कोई अनोखी रात प्रारम्भ हो रही हो, ऐसे गारुड मणियों की प्रभा के फैलने के कारण बहती हुई हजारों यमुना नदियों के समान, पुष्पराग की किरणों के फैलने से अङ्गारों से युक्त हुए के समान, (सम्राट्) के दर्शन की आशा से दिन

नखपतितवदनप्रतिबिम्बनिभेन लज्जया स्वाङ्गानीव विशद्भिः कैश्चिदङ्गुलीलिखितायाः क्षितेर्विकीर्यमाणकरनखकिरणकदम्बव्याजेन सेवाचामराणीवार्पयद्भिः कैश्चिदुरःस्थलदोलायमानेन्द्रनीलतरलप्रभापट्टैः स्वामिकोपप्रशमनाय कण्ठबद्धकृपाणपट्टैरिव कैश्चिदुच्छ्वाससौरभभ्राम्यद्भ्रमरपटलान्धकारितमुखैरपहृतलक्ष्मीशोकधृतलम्बश्मश्रुभिरिवान्यैः शेखरोड्डीयमानमधुपमण्डलैः प्रणामविडम्बनाभयपलायमानमौलिभिरिव निर्जितैरपि सुसंमानितैरिवानन्यशरणैरन्तरान्तरा निष्पतता प्रविशतां चान्तरप्रतीहाराणामनुमार्गंप्रधावितानेकार्थिजनसहस्राणामनुयायिलः पुरुषा नश्रा-

---

त्यादौ शत्रुमहासामन्तैः समन्तादासेव्यमानमित्यन्वयः। सेवेत्यादि। त्वयेदानीं चामरग्रहणेन सेवनीय इति तेषां हि क्षितिः कलत्रमतस्तद्द्वारेण सेवनेच्छा। 'हारस्य यो मध्यमणिस्तरलः स प्रकीर्तितः'। चपलो वा। शेखरं मुण्डमालिकम्। मौलयः केशाः। निर्जितैः पुरस्कृतन्यक्कृतैः, राजसेवाप्राप्तैः, संमानितैः पूजितै-

---

को बिताने वाले भुज निर्मित कुछ-कुछ वैसे शत्रु महासामन्तों द्वारा चारों ओर से सेवित होते हुए जिनमें से कुछ प्रवेश नहीं पाने के कारण सिर नीचा किये हुए, पैरों के नाखूनों पर अपने मुखों के पड़ने वाले प्रतिबिम्बों को निहारते हुए मानो लज्जा से अपने-अपने अङ्गों में सिमटते जा रहे थे, कुछ बैठे-बैठे अपनी अँगुलियों से जमीन पर इस प्रकार लिख रहे थे मानो अपने नाखूनों के फैलने वाले किरणों के बहाने महाराज की सेवा के लिए चँवर अर्पित कर रहे हों, कुछ के वक्षःस्थल पर डोलते हुए इन्द्र नील की प्रभा इस प्रकार तरल हो रही थी मानो उन्होंने महाराज के क्रोध को शान्त करने के लिए अपने-अपने गले में कृपाण बाँध लिये हों, कुछ के मुखों से निकलने वाली उसासों के सौरभ पर मँडराते हुए भौंरों के कारण उनके मुख इस प्रकार अन्धकारयुक्त हो रहे थे मानों लक्ष्मी के अपहृत हो जाने के शोक के कारण उन्होंने लम्बी दाढ़ी बढ़ा रखी हो, कुछ के मस्तकों के ऊपर भौंरे मँडरा रहे थे मानो प्रणाम करने के लिए झुकने के अपमान-भय के कारण उनके धम्मिल उड़ते जा रहे हों, वे पराजित होते हुए भी सुसम्मानित के समान थे, उनका कोई अन्य आश्रय नहीं था बीच-बीच में बाहर निकलते हुए अन्दर जाते हुए अन्तःपुर के पहरेदारों के पीछे-पीछे दौड़ जाने वाले अनेक याचकजनों के अनुयायी लोगों से बिना थके हुए—बार-बार

न्तैः पुनः पुनः पृच्छद्भिः 'भद्र ! अद्य भविष्यति भुक्त्वा स्थाने दास्यति दर्शनं परमेश्वरः, निष्पतिष्यति वा बाह्यां कक्षाम्' इति दर्शनाशया दिवसं नयद्भिर्भुजनिर्जितैः शत्रुमहासामन्तैः समन्तादासेव्यमानम्, अन्यैश्च प्रतापानुरागागतैर्नानादेशजैर्महामहीपालैः प्रतिपालयद्भिर्नरपतिदर्शनकाल-मध्यास्यमानम्, एकान्तोपविष्टैश्च जैनैरार्हतैः पाशुपतैः पाराशरिभिर्वर्णिभिः सर्वदेशजन्मभिश्च जनपदैः सर्वाम्भोधिवेलावनवलयवासिभिश्च म्लेच्छ-जातिभिः सर्वदेशान्तरागतैश्च दूतमण्डलैरुपास्यमानम् सर्वप्रजानिर्माण-भूमिमिव प्रजापतीनां, लोकत्रयसारोच्चयरचितं चतुर्थमिव लोकम्, महा-भारतशतैरप्यकथनीयसमृद्धिसंभारम्, कृतयुगसहस्रैरिव कल्पितसन्निवेशम् स्वर्गार्बुदैरिव विहितरामणीयकम्, राजलक्ष्मीकोटिभिरिव कृतपरिग्रहं राजद्वारमगमत् ।

रिव । अनुयायिन इति । तेषां स्वयं सुलभत्वात् । जैनैः शाक्यैः । आर्हतैर्नग्नक्ष-पणकैः । पाशुपतैः शैवभेदैः । पराशरेण प्रोक्तमधीयते पाराशरिणो यतयस्तैः । वर्णिभिर्ब्रह्मचारिभिः । सर्वप्रजेति । अत्र हि स्थित्वा यदि प्रजापतयो न सृज्येयुः तत्कथं सर्वे भावाः कारणभूता इव तत्र स्थिताः । अर्बुदं दशकोटयः । कोटिर्लक्ष-शतम् । इह तु बहुसंख्योपलक्षणार्थावर्बुदकोटिशब्दौ ।

पूछ रहे थे—"भद्र ! आज महाराज सजाये गये मुक्ता स्थान मण्डप में दर्शन देंगे या वे बाहरी आस्थान मण्डप में निकल कर आयेंगे।" महाराज के प्रताप के प्रति अनुराग होने के कारण आये हुए भिन्न-भिन्न देशों के राजा लोग महाराज के दर्शन के समय की प्रतीक्षा करते हुए जहाँ बैठे थे ऐसे, जहाँ एक ओर जैन, बौद्ध, शैव, सन्यासी, ब्रह्मचारी, सभी देशों के लोग, सभी समुद्रों के तटवर्ती जंगलों के वासी, म्लेच्छ, सभी देश-देशान्तर से आये हुए राजदूत विराजमान थे ऐसे, प्रजापतियों की सब प्रकार की प्रजाओं का निर्माण करने योग्य भूमि के समान, तीनों लोकों के सारतत्त्व को सञ्चित कर निर्मित किये गये चौथे लोक के समान, जिसका वर्णन सैकड़ों महाभारत महाकाव्य भी न कर सकें, ऐसे वैभव से युक्त, मानों हजारों सतयुगों ने वहाँ अपने रहने का स्थान बना लिया हो, ऐसे मानों करोड़ों स्वर्गों द्वारा बढ़ाई गई रमणीयता से युक्त मानों करोड़ों राज लक्ष्मियों ने वहाँ आकर आश्रय ग्रहण किया हो ऐसे राज दरबार में बाण पहुँचा ।

अभवच्चास्य जातिविस्मयस्य मनसि—'कथमिवेदमियत्प्रमाणं प्राणिजातं जनयतां प्रजासृजां नासीत्परिश्रमः, महाभूतानां वा परिक्षयः, परमाणूनां वा विच्छेदः, कालस्य वान्तः, आयुषो वा व्युपरमः, आकृतीनां वा परिसमाप्तिः' इति। मेखलकस्तु दूरादेव द्वारपाललोकेन प्रत्यभिज्ञायमानः तिष्ठतु तावत्क्षणमात्रमत्रैव पुण्यभागी' इति तमभिधायाप्रतिहतः पुरः प्राविशत्।

अथ स मुहूर्तादिव प्रांशुना, कर्णिकारगौरेण, वोध्रकञ्चुकच्छन्नवपुषा, समुन्मिषन्माणिक्यपदकबन्धबन्धुरवस्तबन्धकृशावलग्नेन, हिमशैलशिलाविशालवक्षसा, हरवृषककुदकूटविकटांसतटेन, उरसा चपलहृषीक-

---

परिसमाप्तिरनारम्भः। तिष्ठत्विति। विद्यायुक्ते कदाचिदनादरशङ्केत्येतदर्शमाह—पुण्यभागीति।

अथेत्यादौ। ईदृशपुरुषेणानुगम्यमानो निर्गत्यावोचदिति संबन्धः। अन्तराले स्वत्वन्तरादिवर्णनाभावादथेत्यादिना समनन्तरमेव निर्गमनेन पुनरादर एव प्रतीयते। अत आह—मुहूर्तादिवेति। पुरुषानुगतत्वेन चादर एव पोष्यते। वोध्रं निर्मलम्। बन्धुरं शोभनम्। वस्तं सुवर्णपट्टिकाकटिसूत्रम्। तस्य बन्धेन निवेशनेन कृशमवलग्नं मध्यं यस्य तेन। हिमशैले। हिमग्रहणं राज्ञो धवलत्वात्। हरग्रहणं

(राज वैभव को देखने के कारण) विस्मय युक्त हुए बाण के मन में हुआ—"इतने प्राणियों को उत्पन्न करने में प्रजापतियों को कैसे नहीं थकावट हुई? अथवा पाँचों महाभूतों की समाप्ति क्यों न हुई, अथवा परमाणुओं का विच्छेद क्यों न हुआ, अथवा समय का अन्त क्यों न हुआ, अथवा आयु की समाप्ति क्यों न हुई, अथवा आकृतियों की परिसमाप्ति क्यों न हुई?" इधर मेखलक को दूर से ही द्वारपालों ने पहचान लिया तथा उसने बाण से "पुण्यभागी आप क्षण भर के लिए यहीं ठहरें" ऐसा कह कर बेरोकटोक अन्दर प्रविष्ट हो गया।

इसके बाद कुछ ही क्षण में एक लम्बे, कर्णिकार के समान गोरे रंग के, निर्मल कञ्चुक से ढँके हुए शरीर वाले, चमकते हुए माणिक्य के पदकों वाली सुन्दर पेटी से बँधे होने के कारण पतली कमर वाले, हिमालय की चट्टान के समान (मजबूत) छाती वाले शङ्कर बैल की पीठ के टाट के समान (चौड़े)

हरिणकुलसंयमनपाशमिव हारं बिभ्रता, 'कथयतं यदि सोमवंशसंभवः सूर्यवंशसंभवो वा भूपतिरभूदेवंविधः' इति प्रष्टुमानीताभ्यां सोमसूर्याभ्यामिव श्रवणगताभ्यां मणिकुण्डलाभ्यां समुद्भासमानेन, बृहद्वदनलावण्यविसरवेणिकाक्षिप्यमाणैरधिकारगौरवाद्दीयमानमार्गेणेव दिनकृतः किरणैः प्रसादलब्धया विकचपुण्डरीकमुण्डमालयेव दीर्घया दृष्ट्या दूरादेवानन्दयता, नैष्ठुर्याधिष्ठानेऽपि प्रतिष्ठितेन पदे पदे प्रश्रयमिवावनम्रेण, मौलिना पाण्डुरमुष्णीषमुद्वहता, वामेन स्थूलमुक्ताफलच्छुरणदन्तुरत्सरुं करकिसलयेन कलयता कृपाणम्, इतरेणापनीततरलतां लादिनीमिव लतां शातकौम्भीं वेत्रयष्टिमुन्मृष्टां धारयता पुरुषेणानुगम्यमानो निर्गत्याबोचत्— 'एष खलु महाप्रतीहाराणामनन्तरश्चक्षुष्यो देवस्य पारियात्रनामा दौवा-

---

जराशोकलयप्रतिपादनाय पूर्ववत्। हृषीकाणीन्द्रियाणि। आनीताभ्यामिति। आनयने तस्य प्रभविष्णुता ध्वन्यते। यश्च प्रष्टुमानीयते स श्रवणं गच्छति। वेणिका प्रवाहः। वामेनेति। तदा तस्य व्यापारानुपपत्तेः अपनीतेत्यादिनास्य नियमविधायित्वं पोष्यते। उन्मृष्टामुत्तंसिताम्। अनेन भास्वरतैव पोष्यते। अनन्तरः

कन्धे वाले, मानो इन्द्रिय रूपी चञ्चल हरिणों को काबू में रखने के लिए पाश हो ऐसे हार को वक्षःस्थल पर धारण किये हुए, "चन्द्रवंश वा सूर्यवंश में ऐसा (हर्षवर्धन के समान) सम्राट् यदि उत्पन्न हुआ हो तो बताओ" इस प्रकार पूछने के लिए मानो बुलाये गये चन्द्रमा एवं सूर्य के समान कान में लगे हुए मणि कुण्डलों के कारण चमकते हुए, मुख के लावण्य प्रवाह से पहले तिरस्कृत होकर तथा पुनः सूर्य के अधिकार गौरव के कारण मानों मार्ग प्राप्त कर सूर्य की किरणों की कृपा को प्राप्त किये हुए खिले कमलों की मुण्डमाला के समान बड़ी-बड़ी आँखों से दूर से ही आनन्दित करते हुए, निष्ठुरतापूर्ण पद पर रहने के बाद भी झुके हुए मस्तक से विनम्रता के समान उजली पगड़ी को धारण किये हुए, बायें कर पल्लव में मोटे मोतियों की जड़ाऊ मूठ वाली तलवार लिये हुए तथा दूसरे (अर्थात् दायें) हाथ में तरलता रहित विद्युल्लता के समान चमकने वाली सोने की वेत्रयष्टि लिये हुए पुरुष से अनुगत होता हुआ मेखलक बाहर निकला और बोला—"यह महाप्रतीहारों का प्रधान, महाराज का प्रिय, पारियात्र नामक दौवारिक है। कल्याण में अभिनिवेश रखने वाले आप इसका

रिकः। समनुगृह्णात्वेनमनुरूपया प्रतिपत्त्या कल्याणाभिनिवेशी' इति। दौवारिकस्तु समुपसृत्य कृतप्रणामो मधुरया गिरा सविनयमभाषत—'आगच्छत। प्रविशत देवदर्शनाय। कृतप्रसादो देवः' इति। बाणस्तु 'धन्योऽस्मि, यदेवमनुग्राह्यं मां देवो मन्यते' इत्युक्त्वा तेनोपदिश्यमानमार्गः प्राविशदभ्यन्तरम्।

अथ वनायुजैः, आरट्टजैः, काम्बोजैः, भारद्वाजैः, सिन्धुदेशजैः, पारसीकैश्च, शोणैश्च, श्यामैश्च, श्वेतैश्च, पिञ्जरैश्च, हरिद्भिश्च, तित्तिरिकल्माषैश्च, पञ्चभद्रैश्च, मल्लिकाक्षैश्च, कृत्तिकापिञ्जरैश्च, आयतनिर्मांसमुखैः, अनुत्क-

---

प्रधानम्। चक्षुष्यः प्रियः। आगच्छतेत्यादौ बहुत्वनिर्देशेनादर एवास्यापद्यते।

अथेत्यादौ एवंविधैस्तुरङ्गैरारचितां मन्दुरां विलोकयन्दूरादिभधिष्ण्यागारमपश्यदिति सम्बन्धः। वनायुजादीनि देशविशेषेणाश्वानां नामानि। शोणैरित्यादिवर्णविशेषवर्णनम्। 'शोणः पद्मारुणः स्मृतः'। पिञ्जरैरीषत्कपिलैः। हरिच्छुकनिभो वर्णः। तित्तिरिः पक्षिभेदस्तद्वच्चित्रैः। 'सिताश्च यस्यवाजिनः शफाः समस्तकं मुखम्। स पञ्चभद्रनामको नृपस्य राज्यसौख्यदः'॥ शुक्लपर्यन्ते असिततारके नयने

उचित सत्कार करें।" दौवारिक पारियात्र ने बाण के पास जाकर उसे प्रणाम कर मधुर-स्वर में उससे कहा—"आप आइए। महाराज के दर्शन के लिए चलिए। महाराज आप पर प्रसन्न हैं।" बाण ने "मैं धन्य हूँ जो मुझे महाराज इस प्रकार अनुग्रह के योग्य समझते हैं" यह कह कर उस (दौवारिक) के द्वारा बताये गये मार्ग द्वारा भीतर प्रवेश किया।

भीतर प्रवेश करने के बाद बाण ने अनेक वनायुज (वाना घाटी या वजीरिस्तान में पैदा हुए), अनेक आरट्टज (वाहीक या पंजाब में उत्पन्न हुए), अनेक काम्बोज (मध्य एशिया ने बन्धु नदी के पामीर प्रदेश में उत्पन्न हुए), अनेक भारद्वाज (उत्तरी गढ़वाल में पैदा हुए), अनेक सिन्धु देशज (सिन्ध प्रान्त या थल दो आब में उत्पन्न हुए), अनेक पारसीक (सासानी ईरान में पैदा हुए), अनेक लाल रंग के, अनेक साँवले रंग के, अनेक उजले रंग के, अनेक चितकबरे रंग के, अनेक तीतरपंखी रंग के अनेक पञ्चभद्र (अर्थात् पञ्चकल्याण—छाती, पीठ मुख तथा दोनों पार्श्वों में भौंरी वाले), अनेक मल्लिकाक्ष (अर्थात् उजले अपाङ्ग वाले) और अनेक कृत्तिकापञ्जर (अर्थात् तारों जैसी उजली चित्तियों वाले), लम्बे तथा मांस रहित मुख वाले, छोटे-छोटे

टकर्णकोशैः, सुवृत्तश्लक्ष्णसुघटितघण्टिकाबन्धैः, यूपानुपूर्वीवक्रायतोदग्रग्रीवैः, उपचयश्वसत्स्कन्धसन्धिभिः, निर्भुग्नोरःस्थलैः अस्थूलप्रगुणप्रसृतैर्लोहपीठकाठिनखुरमण्डलैः, अतिजवत्रुटनभयादनिर्मितान्त्राणीवोदराणि

येषां ते मल्लिकाक्षाः । उक्तं च—'पृथुस्निग्धा समा यस्य मल्लिकाकुसुमप्रभा । राजी यस्य तु पर्यन्ते परिक्षिप्येव लोचने ॥ स तु वा मल्लिकाक्षस्तु दीप्तपर्यन्ततारकः ॥' इति । तारकाः कदम्बकल्यानकबिन्दुकल्माषितत्वचः क्वचिन्नागपुरा यतः । आयतेत्यादि । तदुक्तम्—'मुखं तन्वायतं नतं ... समाहितम् । ऋजु चैवोपदिष्टं च परिपूर्णं च शस्यते ॥' इति । कृष्णेनाप्युक्तम्—'उज्जा अतुंगअत्थ णिम्मं संवाहिराण टाच्च अणं' इति । अनुत्कटा ह्रस्वः । कोशी भक्तम् । शिरसो ग्रीवायाश्च यन्मध्यं स घण्टिकाबन्धः । यो निगाल इत्युच्यते तस्य सुवृत्तादि शस्यते । यदाह—'ग्रीवाशिरोऽन्तरश्लिष्टो दीर्घवृत्तः समाहितः । नात्युच्चो नातिनीचो नातिदुर्नोहाजातविधानतः ॥ मृदिम्नाऽनुपादग्धश्च निगालो गदितः शुभः ॥' इति । यूपो यज्ञचिह्नं तस्यैवानुपूर्वी यस्याः । तथा वक्रा आयता उदग्रा उद्गुरा ग्रीवा येषाम् । तदुक्तम्—'ग्रीवा मूलाम्बिनी वृत्ता दीर्घा च सुसमाहिता । गले वद्धा विदीर्णा तथा शिरसि चायता । निगाले स्याच्च निर्मांसा वक्रा साकुञ्चिता भृशम् । श्लिष्टमांसाग्रबद्धा च तुरगस्य प्रशस्यते ॥' इति । उपचयेत्यादि । तदुक्तम्—'स्कन्धः सुपरिपूर्णः स्याद्घनस्तमांसः पृथुश्चकः । बहुमांसानुगाश्लिष्टः स्थिरमांसपूरितः ॥' इति । निर्भग्नं स्थूलत्वाद्बहिर्निःसृतम् । उक्तं च—'स्थूलास्थि महदच्छिद्रं पृथुलं यच्च निर्वलि । उर ईदृक्प्रशंसन्ति स्थूलक्रोडं महत्तरम् ॥ इति निर्भुग्नमुत्पन्नद्रोणिकमिति केचित् । अस्थूलप्रगुणप्रसृतिनिर्मांसऋजुजङ्घैः । उक्तं च—'जङ्घे वृत्ते दीर्घे निर्मांसे पूजिते निगूढसिरे' इति । मण्डलशब्देन वृत्तत्वमुच्यते । तदुक्तम्—'खुरास्तुरङ्गे वृत्ताश्च ह्रस्वाश्च सुदृढा घनाः' इति । तथा शिलातलनिर्भैः खुरैरिति । उदराणीति । तदुक्तम्—'उदरं

कानों वाले, गोल, चिकने एवं सुडौल घण्टिकाबन्ध (सिर एवं गले के बीच का भाग) वाले, यूप के समान टेढ़ी तथा लम्बी गर्दन को ऊपर की ओर उठाये हुए, मांस से फूली स्कन्ध-सन्धि (कन्धे की जोड़) वाले, मोटापे के कारण बाहर की ओर निकली हुई छाती वाले, पतली एवं सीधी जङ्घाओं वाले, लोहे के समान कड़े खुरों वाले, अत्यधिक वेग के कारण टूटने के भय से मानों अँतड़ियों से रहित तथा गोल पेट को धारण किये हुए, (पीठ, छाती, कटि प्रदेश के मांस

वृत्तानि धारयद्भिः, उद्यद्द्रोणीविभज्यमानपृथूजघनैः, जगतीदोलायमान-बालपल्लवैः, कथमप्युभयतो निखातदृढभूरिपाशसंयमननियन्त्रितैः, आयतैरपि पश्चात्पाशबन्धपरवशप्रसारितैकाङ्घ्रिभिरायततरैरिवोपलक्ष्यमाणैः, बहुगुणसूत्रग्रथितग्रीवागण्डकैः, आमीलितलोचनैः, दुर्वारसश्यामलफेनल-वशबलान् दशनगृहीतमुक्तान् फरफरितत्वचः कण्डूजुषः प्रदेशान् प्रचाल-यद्भिः, सालसवलितबालधिभिः, एकशफविश्रान्तिश्रमस्रस्तशिथिलित-जघनार्धैः, निद्रया प्रध्यायद्भिश्च, स्खलितहुंकारमन्दशब्दायमानैश्च, ताडितखुरधरणीरणितमुखरशिखरखरलिखितक्ष्मातलैर्घासमभिलषद्भिश्च, प्रकीर्यमाणयवसग्रासरसमत्सरसमुद्भूतक्षोभैश्च, प्रकुपितचण्डचण्डालहुङ्कार-

---

वृत्तमगुरु ऌगस्योपचितं तथा । अच्छिद्रह्रस्ववृत्ताल्पसमकुक्षि च पूजितम् ॥' इति । द्रोणी शोभाविशेषः । यदाह—'पृष्ठोरःकटिपार्श्वस्थमांसोत्कर्षणनिर्मिता । द्रोणिकेति प्रशंसन्ति शोभा वाजिनि ॥' इति । बाला एव पल्लवाः । उभयत इति । अत्युद्दामवेगवत्त्वादुभयत्र पाशबन्धः । गण्डको भूषणभेदः । फरफरिता पुनः पुनरीषत्कम्पिताः । बालधिः पुच्छः । शफः समुद्गयुक्तः पादः । खुरधरणी

के खिच जाने से) प्रकट होते हुए शोभा-विशेष द्वारा विभक्त होते हुए पुट्ठों वाले, जमीन तक लटकने वाले बालोरूपी पल्लवों से युक्त, किसी प्रकार दोनों ओर (अगाड़ी एवं पिछाड़ी के लिए) गड़ी हुई मजबूत रस्सियों से नियन्त्रित किये गये लम्बे होने पर भी पिछाड़ी की रस्सी में बंधे होने से एक पाँव के फैल जाने के कारण और अधिक लम्बे से दिखने वाले, अनेक गुने धागों में गूँथे गये ग्रीवा गण्डकों (गले में पहने जाने वाले गण्डक नामक आभूषणों) को धारण किये हुए, मुँदी हुई आँखों वाले, दूब के रस से उत्पन्न साँवले फेन से रंगे हुए तथा दाँतों से पकड़ कर छोड़ दिये गये फरफराने वाले खुजलाहट युक्त अङ्गों को चलाते हुए, आलस्य के साथ पूछों को टेढ़ा करते हुए, एक ही खुर का सहारा लेकर विश्राम करने की थकान से जिनकी जाँघों का आधा भाग दुखने लगता था ऐसे, नींद में कुछ ध्यान करते हुए, हूँफ कर धीरे-धीरे हिनहिनाते हुए, जमीन पर खुर के प्रहार के कारण मुखरित खुरों के अग्रभाग से पृथ्वी पर लिखते हुए तथा घास की अभिलाषा करते हुए, बिखेरी गई घासों के कौर के रस के प्रति मात्सर्य होने से क्षोभ-युक्त हुए, अश्व पालों (सईसों) की प्रचण्ड डाँट

कातरतरतरलतारकैरिव, कुङ्कुमप्रगृष्टपृष्ठैः सततसंनिहितनीराजनानलरक्ष्यमाणैरिवोपरिविततवितानैः, पुरःपूजिताभिमतदेवतैः भूपालवल्लभैस्तुरङ्गैराचितां मन्दुरां विलोकयन्, कुतूहलाक्षिप्तहृदयः किंचिदन्तरमतिक्रान्तो हस्तेन वामेनातितुङ्गतया निरवकाशमिवाकाशं कुर्वाणम्, महता कदलीवनेन परिवृतपर्यन्तं मधुकरमयीभिर्मदजलनिर्झरिणीभिः स्रोतस्वतीभिरापूर्यमाणम्, आशामुखविसर्पिणा बकुलवनानामिव विकसितानामामोदेन लिम्पन्तं घ्राणेन्द्रियं दूरादव्यक्तमिभधिष्ण्यागारमपश्यत् । अपृच्छच्च 'अत्र देवः किं करोति ?' इति । असावकथयत् —'एष खलु देवस्य बाह्यो

तुराङ्गाः राजवल्लभाः प्रियाः । मन्दुरा अश्वशाला । प्रगृष्टिः समार्जनम् । वितानकं रक्तमकम् । देवताश्च गोविन्दः गारोविनां श्रोतारम् । हस्तेन वामेनेत्यत्र वामहस्तमार्गे इत्यर्थे धृतः । बकुलेत्यादिना प्राशस्त्यमेव योतयति । तदुक्तम् —'मालतीमुक्तपुंनागबकुलामोदगन्धिरम् । दानं विप्रान्नसदृशं गन्धच्छेदं तु शोभनम् ॥' इति । श्लोकमिका दानलक्षणम् । एवं च धर्मलक्षणे तु श्लेष्मसमर्थोऽपि तथाविधमदवर्णनया श्लेष्मप्रकृतित्वं प्रकाशयति—'श्लेष्मप्रकृतिकः श्रेष्ठः भद्रजातिः तथैव च' इति च शास्त्रकृता वर्णितम् । धिष्ण्यं मण्डपम् । बाह्यः क्रीडा हस्ती ।

सुनने के कारण दीनभाव से फिरती हुई पुतलियों वाले, कुङ्कुम से अङ्गों के मले जाने के कारण मानों समीप में सदा जलने वाली आरती की आग रखी गई हो ऐसे, जिनके ऊपर चंदोवे तने हुए थे ऐसे, जिनके सामने अभीष्ट देवता पूजे गये थे ऐसे, राजवल्लभ (सम्राट् के प्रिय) घोड़ों से सजी हुई अश्वशाला (घोड़साल) को देखा तथा कुतूहल से भरे हुए हृदय वाले उस (बाण) ने कुछ और आगे बढ़ने पर बाँयी ओर अपनी अत्यधिक ऊँचाई के कारण आकाश को मानों निरवकाश करती हुई, केलों के बहुत बड़े बन से चारों ओर घिरी हुई, भौरों से युक्त तथा नदियों के समान बहते हुए मद-प्रवाहों से चारों ओर से भरी हुई; मौलसिरी के फूलने की गन्ध के समान सभी दिशाओं में फैलने वाली सुगन्ध से घ्राणेन्द्रिय (अर्थात् नाक) को लीपती हुई (अर्थात् सुगन्ध से नाक को भरती हुई) तथा दूर होने के कारण अस्पष्ट सी गजशाला (हाथी साल) को देखा । बाण ने मेखलक से पूछा—"यहाँ महाराज क्या करते हैं ?" उसने

बाह्यं हृदयं जात्यन्तरित आत्मा बहिश्चराः प्राणा विक्रमक्रीडासुहृद्दर्पशात इति यथार्थनामा वारणपतिः तस्यावस्थानमण्डपोऽयं महान् दृश्यते' इति। स तमवादीत्—'भद्र ! श्रूयते दर्पशातः। यद्येवमदोषो वा पश्यामि तावद्वारणेन्द्रमेव। अतोऽर्हसि मामत्र प्रापयितुम्। अतिपरवानस्मि कूतूहलेन' इति। सोऽभाषत—'भवत्वेवम्। आगच्छतु भवान्। को दोषः। पश्यतु तावद्वारणेन्द्रम्' इति।

गत्वा च तं प्रदेशं दूरादेव गम्भीरगलगर्जितैर्वियति चातक-कदम्बकैर्भुवि च भवननीलकण्ठकुलैः कलकेकाकलकलमुखरमुखैः

यस्मात्केचन सांनाह्याः केचिद्भद्रजातीया उभयस्वभावा भवन्ति करिणः। अस्य च यद्यपि विक्रमक्रीडासुहृदित्यनेन दर्पशात इति यथार्थनामा वारणपतिरित्यनेन च सांनाह्यत्वमेवोक्तम्, तथाप्यौपवाह्य इति कथनेऽर्धद्वयेऽपि योग्यत्वाद्भद्रजातीयत्वं चास्य निश्चीयते। जात्यन्तरितो द्वितीयां जातिं हस्तिरूपां प्राप्तः। यद्येवमिति। यदि सत्यं दर्पशातोऽयमदोषो वेति। वाशब्दश्चार्थे। यदि च न दोष इत्यर्थः। यतो रसदानादिभयेन केनचिद् द्रष्टुं न लभ्यते। कुतूहलेन परवान्कुतूहलायितः।

गत्वेत्यादौ। दूरादेव दर्पशातमपश्यदिति सम्बन्धः। गर्जितं बृंहितम्। चातकाः

कहा—"यह महाराज का क्रीडाहस्ती यथार्थ नामक दर्पशात है, जिसे वे युद्ध में साथ ले जाते हैं। यह महाराज का बाहरी हृदय, दूसरे रूप में आत्मा तथा बाहर में विचरण करने वाले प्राणों की तरह है। उसी का यह बड़ा सा अवस्थान-मण्डप दिखाई पड़ रहा है। बाण ने उससे कहा—"भद्र ! दर्पशात के बारे में सुना जाता है। यदि ऐसा है और कोई हर्ज न हो तो मैं उस गजराज को देख लूं। इसलिए मुझे वहाँ ले चलो। मैं अपनी उत्सुकता से लाचार हूँ।" वह बोला—"ऐसा ही हो। आप चलिए। (इसमें) हर्ज क्या है ? तब तक (आप) गजराज को देख लें।

उस स्थान में जाकर बाण ने दूर से ही, जिसकी गम्भीर चिग्घाड़ों से आकाश में चातक पक्षी तथा पृथ्वी पर गृहमयूर अस्फुट-मधुर एवं केका (मयूर की आवाज) से मुखरित होकर असमय में कोलाहल कर रहे थे ऐसे, (तात्पर्य यह है कि दर्पशात नामक हाथी की चिग्घाड़ को बादलों की गड़गड़ाहट समझकर

क्रियमाणाकालकोलाहलम्, विकचकदम्बसंवादिमदसुरासौरभभरितभुवनम्, कायवन्तमिवाकालमेघकालम्, अविरलमधुबिन्दुपिङ्गलपद्मजालांकितां सरसीमिवात्यवगाढां दशां चतुर्थीमुत्सृजन्तम्, अनवरतमवतंसशङ्खैरामन्द्रकर्णतालदुन्दुभिध्वनिभिः पञ्चमीप्रवेशमङ्गलारम्भमिव सूचयन्तम्, अविरतचलनत्रिभित्रिपदोल्ललितलास्ययैर्दोलायमानदीर्घदेहाभोगवत्तया मेदिनीविदलनभयेन भारमिव लंघयन्तम्,

स्तोकका: । नीलकण्ठा मयूरा: । केका मयूररुतानि । मेघकालमिति । मेघकालश्च चातककदम्बनीलकण्ठकुलकदम्बकसौरभादियुक्त: । अविरला घना ये मधुबिन्दव इव मधुबिन्दवो माक्षिककणास्तद्वत्पिङ्गलानि पद्मजालकानि संजातानि यस्याम् । 'पद्मकं बिन्दुजालं स्याद्गात्रकं करिणामिति' । यथा— 'पद्मस्वस्तिकसंस्थानो बिन्दुभिश्च कर्णैस्तथा । स्वङ्कितावङ्गसुपाराभः शावः शक्तिकरः ॥' इत्युक्तम् । अन्ये मधुबिन्दवो मकरन्दकणास्तैः पिङ्गलानीति व्याख्येयम् । महत्सरः सरसी । अत्यवगाढामिति । परिणताम् । दशां कालावस्थाम् । चतुर्थीमिति । 'चतुर्थीमवगाढायां लेखाबिन्दुभिराचितः' इत्युक्तम् । शङ्खैः । शङ्खशब्दैरित्यर्थः । कर्णेत्यादि । कर्णौ च दुन्दुभिध्वनितौ । 'कर्णौ च करिणः कार्यकारिणौ सत्प्रशंसिनौ' इति । पञ्चमी

चातक पक्षियों ने कलरव करना शुरू कर दिया तथा गृहमयूरों ने वर्षा प्रारम्भ होने की सूचना समझकर हर्ष के कारण असमय में ही केका ध्वनि करना शुरू कर दिया), जिसने खिले हुए कदम्ब के समान अपने मद की मदिरा-सुगन्धि से भुवन को भर दिया था ऐसे, जो मानो शरीर धारी असामयिक वर्षाकाल था ऐसे, घने मधु-बिन्दुओं के कारण पिङ्गलवर्ण से कमल समूहों से भरे हुए महासरोवर के समान सघन मधुमक्खियों की भाँति पिङ्गलवर्ण के पद्मक नामक बिन्दु-समूह से युक्त परिपक्व चौथी अवस्था को जो छोड़ रहा था ऐसे, जो लगातार अपने कानों में लगे हुए शङ्खों से गम्भीर कर्णताल एवं दुन्दुभि के समान आवाज द्वारा मानों पाँचवीं स्वास्थ्य दशा के प्रवेश का मङ्गलारम्भ सूचित कर रहा था ऐसे, जो अपने तीन पांवों पर खड़ा होकर सुन्दर नृत्य की मुद्रा में अपने मोटे शरीर को लम्बित कर रहा था मानो पृथ्वी के धँस जाने के डर से अपने शरीर के भार को हल्का कर रहा हो ऐसे, जो (झूमने के कारण) मानों

दिग्भित्तितटेषु कायमिव कण्डूयमानम्, आह्वायोदस्तहस्ततया दिग्वारणानिवाह्वयमानम्, ब्रह्मस्तम्भमिव स्थूलनिशितदन्तेन करपत्रेण पाटयन्तम्, अमान्तं भुवनाभ्यन्तरे बहिरिव निर्गन्तुमीहमानम्; सर्वतः सरसकिसलयलतालासिभिर्लेशकैश्चिरपरिचयोपचितैर्वनैरिव विक्षिप्तं, सशैवलबिसबिसरशबलसलिलैः सरोभिरिव चाधोरणैराधीयमाननिदाघसमयसमुचितोपचारानन्दन्, अपि च प्रतिगजदानपवनादानदूरोत्क्षिप्तेनानेकसमरविजयगणनालेखाभिरिव बलिवलयराजिभिस्तनीयसीभिस्तरङ्गितोदरेणातिस्थवीयसा हस्तार्गलदण्डेनार्गलयन्तमिव सकलं सकुलशैलसमुद्रद्वीपकाननं ककुभां चक्रवालम्, एकं करान्तरार्पितेनोत्पलाशेन कदलीदण्डेनान्तर्गतशीकरसिच्यमानमूलम् मुक्तपल्लवमिवापरं लीलाव-

दशा त्रिपदी। एकपदोत्क्षेपे पादत्रयावस्थितिः। लयो लीलाः। आह्वः संग्रामः। ब्रह्मस्तम्भो ब्रह्माण्डम्। करपत्रं क्रकचं स्थूलनिशितदन्तं भवति। तच्च भेदयति। स्तम्भम्। अमान्तमवर्तमानम्। लेशिकैर्घासिकैः। आधोरणैर्गजारोहैः। वलयाकारा बलिर्वलिवलयम्। अर्गलयन्तं सनाटकं कुर्वाणम्। कुमुदवनानीत्युत्प्रेक्षा। दन्तयो-

दिशाओं की भीतों में अपने शरीर को खुजला रहा था ऐसे, जो अपनी सूंड़ उठा-उठा कर मानों दिग्गजों को युद्ध के लिए ललकार रहा था ऐसे, जो अपने मोटे-मोटे तथा तीक्ष्ण दाँतों के आरे से मानों ब्रह्माण्ड को फाड़ रहा था ऐसे, जो मानों पृथ्वी में नहीं अँटने के कारण बाहर निकलने की इच्छा कर रहा था ऐसे, जिसे बादलों के समान चिर-परिक्षित घसियारे सरस पत्तों और लताओं से नचा रहे थे तथा सरोवरों के समान महावत सेवार-सहित कमल-नालों के पानी को छिड़क-छिड़क कर जिसे ग्रीष्म काल के समुचित उपचार का आनन्द दे रहे थे ऐसे, और भी, जो अपनी सूंड़ के अर्गला-दण्ड को, जिसमें मानों अनेकों युद्धों की विजय की गिनतियों का लेखा-जोखा हो ऐसे महीन चारों ओर की लकीरों से मध्य में युक्त था, प्रतिद्वन्द्वी हाथी के मद-जल की हवा को ग्रहण करके दूर ऊपर उठाये हुए मानों कुल पर्वतों, समुद्रों, द्वीपों और जंगलों सहित दिशाओं के चक्रवाल को अर्गलित कर रहा हो ऐसे, जो अपनी सूंड़ से दाँत के बीच केले का वैसा डंठल, जिसमें पत्ता नहीं था, रख लिया था, जिसके पानी से उसके

लम्बिना मृणालजालकेन समररसोच्चरोमाञ्चकण्टकितमिव दन्तमाण्ड-मुद्वहन्तम्, विसर्पन्त्या च दन्तकाण्डयुगलस्य कान्त्या सरःक्रीडास्वादितानि कुमुदवनानीव बहुधा वमन्तम्, निजयशोराशिमिव दिशामर्पयन्तम्, कुकरिकीटपाटनदुर्विदग्धान् सिंहानिवोपहसन्तम्, कल्पद्रुमदुकूलमुखपटमिव चात्मनः कल्पयन्तम्, हस्तकाण्डदण्डोद्धरणलीलासु च लक्ष्यमाणेन रक्तांशुकसुकुमारतरेण तालुना कवलितानि रक्तपद्मवनानीव वर्षन्तम्, अभिनवकिसलयराशीनिवोद्गिरन्तम्, कमलकवलपीतं मधुरसमिव स्वभावापिङ्गलेन वमन्तं चक्षुषा, चूतचम्पककल्वलीलवङ्ग-

वर्णप्राशस्त्यमाह—'पयःकुमुदकुन्दाभौ केतकीकुमुदद्युती । मृगाङ्कुकिरणालोकौ कीर्तिकल्याणकारकौ ॥' इत्युक्तम् । रक्तांशुकेति । उक्तं च—'रक्तोष्ठतालुरसनम्' इति । स्वभावपिङ्गलेनेति । उक्तं च 'शशिसूर्यसमाभासे कलविङ्काक्षसन्निभे । प्रसन्नमधुपिङ्गे च स्थिरे चामीलने तथा ॥ अपरिस्राविणी चैव कुशाग्निनिभभास्वरे । नेत्रे शस्ते समे स्निग्धे दीर्घे चाविलपक्ष्मणी ॥' इति । चूतेत्यादिना प्रशस्तत्वमाह ।

दन्तमूल नीचे जा रहे थे मानो उसका पत्र रहित दूसरा दन्तकाण्ड लीला से लटकाये गये कमल दण्डों से प्रतीत होता था कि युद्धानुरागजन्य रोमाञ्च के कंटक से युक्त हो इस प्रकार दोनों दाँतों को जो धारण कर रहा था ऐसे, जिसके दोनों दाँतों की आगे की ओर फैलती हुई कान्ति से ऐसा लगता था मानो वह जल-बिहार के समय चखे गये कुमुदवनों को अनेक प्रकार से वमन कर रहा हो ऐसे, जो अपनी कीर्त्तिराशि को (दन्त किरणों के रूप में) दिशाओं को अर्पित कर रहा था ऐसे, क्षुद्र हाथियों को विदीर्ण करके उद्दण्ड बन जाने वाले सिंहों का जो मानो उपहास कर रहा था ऐसे, जो मानो कल्पवृक्ष के दुकूल का अपना मुख पट (मुँह पोछने वाला वस्त्र या रुमाल) बना रहा था ऐसे, सूँड़ को ऊपर की ओर उठाने (के खेल) के समय लाल कपड़े के समान सुकोमल दिखने वाले (अपने) तालु भाग से जो मानो निगले गये लाल कमलों को बरसा रहा था या मानो नये-नये (लाल) पल्लवों को उगल रहा था ऐसे, जो अपने स्वाभाविक पीले नेत्रों से मानो कमल के कौर के साथ पिये गये मधुरस को वमन कर रहा था ऐसे, जिसने मानो आम, चम्पक, लवली, लौंग, इलायची से मिश्रित सहकार

कक्कोलवन्त्येलालतामिश्रितानि ससहकारानि कर्पूरपूरितानि पारिजातक-वनानीवोपभुक्तानि पुनःपुन करटाभ्यां बहलमदामोदव्याजेन विसृजन्तम्, अहर्निशं विभ्रमकृतहस्तस्थितिभिरर्धखण्डितपुण्ड्रेक्षुकाण्डकण्डूयन-लिखितैरलिकुलवाचालितैर्दानपट्टकैर्विलभमानमिव सर्वकाननानि करिपतीनाम्, अविरलोदबिन्दुस्यन्दिना हिमशिलाशकलमयेन विभ्रमनक्षत्र-मालागुणेन शिशिरीक्रियमाणम् सकलवारणेन्द्राधिपत्यपट्टबन्धबन्धुर-मिवौच्चस्तरां शिरो दधानम्, मुहुर्मुहुः स्थगितापावृतदिङ्मुखाभ्यां कर्णता-

---

यदाह—'उभयस्रुतिरप्येष विवर्णो हर्षवर्जितः। यदि स्यादपगन्धश्च तादासौ न सतां मतः॥' इति करटाभ्यां गण्डाभ्याम्। अर्धेत्यादिनेक्षुकाण्डकस्य लेखनीसा-दृश्यमाह। लिखितैः कृतलेखैरप्यलिकुलेषु सत्सु वाचालितशब्दयोगो येषामित्यनेनालिकुलस्य लिप्यक्षररूपतां ध्वनयति। लिप्यक्षरेषु च सत्सु पाठ्यमानेषु वाचालता। दानपट्टकलिखितैः किंचिद्धि लभ्यते। अक्षरपाटिकैश्च तेषां हस्तस्थितिर्न क्रियते। दानि च वाच्यन्ते। वद्वा स्वहस्तेनाक्षरकरणं हस्तस्थितिः। हिमशिला वातवज्रीभूतं हिमम्। केचित्तु 'हिमानि हिमशकलानि चन्द्रकान्ताः' इत्याहु। हिमस्य च तदा वर्णनानुचितत्वात्। पर्वतेभ्यो हिमानयनं सुलभमेवेति पूर्वोक्तमेव श्रेष्ठम्। यतश्चन्द्रकान्तानां दिवा स्रुतिर्न भवतीति। नक्षत्रमाला हस्त्याभरणभेदः। उच्चैस्तरामिति। उच्चं हि शिरः करिणः शस्यते। यदुक्तम्—'समं महच्च पूर्णं च

युक्त तथा कपूर से भरे हुए पारिजात वनों का उपभोग कर लिया हो तथा बार-बार अपने गण्डस्थलों से बहती हुई मदधारा के बहाने जो मानो उन्हीं (परिजात वनों) की गन्ध फैला रहा था ऐसे, जो दिन-रात अपने हाथ से तैयार किये गये अर्धखण्डित ईख की लेखनी से लिखे गये तथा भौरों द्वारा बाँधे गये दानपट्टों से करपतियों के जंगलों को मानो प्राप्त कर रहा था ऐसे, लगातार पानी की बूँदें टपकाने वाले तथा चन्द्रकान्त के टुकड़ों से निर्मित नक्षत्र माला नामक आभूषण से जो मानो शीतल किया जा रहा था ऐसे, जो मानो समस्त गजराजों के स्वामित्व के सृजन पट्टबन्धन को बाँधने से ऊँचे मस्तक को धारण किये हुए था ऐसे, जो बार-बार अपने कानों के पंखे से दिशाओं के मुखों को

लतालवित्राभ्यां वीजयन्तमिव भर्तृभक्त्या दन्तपर्यङ्किकास्थितां राजलक्ष्मीम्, आयतवंशक्रमागतेन गजाधिपत्यचिह्नेन चामरेणेव चलता वालधिना विराजमानम्, स्वकरशिशिरशीकरच्छलेन दिग्विजयपीताः सरित इव पुनःपुनर्वमन्तं मुञ्चन्तम्, क्षणमवधानदाननिश्चलीकृतसकलावयवानामन्यद्विरदडिण्डिमाकर्णनाकुलानामन्ते दीर्घफूत्कारैः परिभवदुःखमिवावेदयन्तम्, अलब्धयुद्धमिवात्मानमनुशोचन्तम्, आरोहाधिरूढिपरिभवेन लज्जमानमिवाङ्गुलीभिर्लिखन्तं महीतलम्, मदं मुञ्चन्तम्, अवज्ञा-

नातिस्तब्धोऽधमस्तकम्। नावाग्रं नातिपृथुलं विततानायतं मृदु ॥' इति। दन्तावेव तदवस्थानमसूचितत्वात्। पर्यङ्किका च दन्तमयः पर्यङ्कः आसन इति श्लेषः। आयतवंशः, वक्रवंशः, शर्ववंशः, बाल्यंशश्चेति चत्वारो वंशाः। तेषु आयतवंश आगत एव शास्त्रकृतामभिप्रेतः। तथा च 'मावसूचितपार्श्वश्च वंशश्चापरलाकृतिः। शुभो ज्ञेयो गजेन्द्राणामायतः कुरुते सुखम् ॥' इति नीतिकल्पम्। आगताद्वंशानुक्रमेण गोपुच्छवदायत इति विग्रहः। समानार्थो हि बालधिः शोभां करोति। यदुक्तम्— 'वक्रं स्थूलं च ह्रस्वं च पुच्छं कार्यविवर्जितम्। समानार्धं हि नागस्य भर्तुः शोभाकरं स्मृतम् ॥' इति। वंशः पृष्ठनाभिः, कुलं च। क्रम आनुपूर्वी, पारम्पर्यं च। बालधिः पुच्छम्। **लज्जमानमिति।** यश्च लज्जते स भूमिं लिखति, दर्पं चोज्झति। अंगुली

खोलते-ढंकते हुए मानो स्वामिभक्ति के कारण दाँत से बने पर्यङ्क पर अवस्थित राजलक्ष्मी को झल रहा था, दीर्घ पृष्ठवंश से निकली हुई अपनी चलायमान पूँछ, जो उसके गजाधिपत्य के चिह्न एवं चामर के समान था, जो सुशोभित हो रहा था ऐसे, जो बार-बार अपने मुख से साफ एवं ठण्डे जल के फुहारे इस प्रकार छोड़ रहा था मानो दिग्विजय-काल में पी गई नदियों को उगल रहा हो ऐसे, क्षण-भर ध्यान देने से सभी अङ्गों को निश्चल कर देने वाले दूसरे हाथियों के डिण्डिम घोष (यशोगान) के सुनने से उत्पन्न, अङ्गों के चञ्चलता रहित हो जाने से लम्बे फूत्कारों द्वारा अपनी तिरस्कारजन्य पीडा को जो मानो आवेदित कर रहा था ऐसे, मानो युद्ध का अवसर न मिला हो इस प्रकार जो अपने आप पर पश्चात्ताप कर रहा था ऐसे, (अपनी पीठ पर दूसरों द्वारा) चढ़ने-उतरने से उत्पन्न अपमान के कारण मानो लज्जित होते हुए जो अपनी अंगुलियों से पृथ्वी

गृहीतमुक्तकवलकुपितारोहारटनानुरोधेन मदतन्द्रीनिमीलितनेत्रत्रिभागम्, कथं कथमपि मन्दमन्दमनादरादाददानं कवलान्, अर्धजग्धतमालपल्लवस्रुतश्यामलरसेन प्रभूततया मदप्रवाहमिव मुखेनाप्युत्सृजन्तम्, चलन्तमिव दर्पेण, श्वसन्तमिव शौर्येण, मूर्च्छन्तमिव मदेन, त्रुट्यन्तमिव तारुण्येन, द्रवन्तमिव दानेन, वल्गन्तमिव बलेन, माद्यन्तमिव मानेन, उद्यन्तमिवोत्साहेन, ताम्यन्तमिव तेजसा, लिम्पन्तमिव लावण्येन, सिञ्चन्तमिव सौभाग्येन, स्निग्धं नखेषु, परुषं रोमविषये, गुरुं मुखे, सच्छिष्यं विनये, मृदुं शिरसि, दृढं परिचयेषु, ह्रस्वं स्कन्धबन्धे, दीर्घमायुषि,

करिकराग्रावयवः करशाखा च। तन्द्री आलस्यम्, गाढनिद्रा वा। चलन्तमित्यादि दर्पाधिकरणसमुचितक्रियाप्रतिपादनसाभिप्रायं व्याख्येयम्। स्निग्धमिति। उक्तं च—'नखाः स्निग्धाः सिताः शस्ताः' इति। परुषं निष्कृपम्। यश्च स्निग्धः प्रीतिमान्स कथं परुषः प्रीतिशून्यो भवतीति विरोधः। एवं गुरुर्विस्तीर्णः, आचार्यश्च। विनय इति। उक्तं च—'विनये मुनिभिस्तुल्याः' क्रुद्धा नागाश्च राक्षसाः। निस्त्रिंशस्याधिकत्वाच्च शस्त्रं नागा महीपतेः॥' इति। स्कन्धबन्धे ग्रीवामूले।

पर लिप्त रहा था ऐसे, मद का त्याग करते हुए, अवज्ञापूर्वक कौर ग्रहण कर पुनः उसे छोड देने के कारण क्रुद्ध हुए महावत के द्वारा फिर से खाने का अनुरोध करने से मदजन्य आलस्य के कारण जिसकी आँखें बन्द थीं ऐसे, किसी-किसी तरह धीरे-धीरे अवज्ञापूर्वक कौर को लेते हुए आधा खाये गये तमाल-पत्रों से चूते हुए साँवले रंग के रस की अधिकता के कारण मानो मुख से भी मदप्रवाह को छोड़ता हुआ जो प्रतीत हो रहा था ऐसे, मानो दर्प से काँपते हुए, मानों शौर्य से साँस लेते हुए, मानो मद से बेहोश होते हुए, मानो जवानी से टूटते हुए, दान-जल के कारण मानो अपने मद को और अधिक प्रकट करते हुए, उत्साह के कारण मानो उठते हुए, तेज के कारण मानो तमतमाते हुए, अपने लावण्य से मानो सबको लीपते (अर्थात् अपनी ओर आकृष्ट करते) हुए, अपने सौभाग्य से मानो सींचते हुए, जिसके नखों में स्निग्धता, रोओं मे कठोरता, मुख में गुरुता, विनम्रता से सच्छिष्यता मस्तक में कोमलता, परिचयों में दृढ़ता, कन्धे

दरिद्रमुदरे, सततप्रवृत्तं दाने, बलभद्रं मदलीलासु, कुलकलत्रमायत्ततासु, जिनं क्षमासु, वह्निवर्षं क्रोधमोक्षेषु, गरुडं नागोद्धरणेषु, नारदं कलहकुतूहलेषु, शुष्काशनिपातमवस्कन्देषु, मकरं वाहिनीक्षोभेषु, आशीविषं दशनकर्मसु, वरुणं हस्तपाशाकृष्टिषु, यमं वागुरामानसवेष्टनेषु, कालं परिणतिषु, राहुं तीक्ष्णकरग्रहणेषु, लोहिताङ्गं वक्रचारेषु, अलातचक्रं मण्डलभ्रान्तिविज्ञानेषु, मनोरथसम्पादकं चिन्तामणिं वृत्ते विक्रमस्य,

---

दरिद्रः कृशः दुर्गतश्च । दानं मदवारि वितरणं च । बलभद्रो हलधरः । मदो दानम्, सुराकृतश्च । नागाः करिणः, सर्पाश्च । कलहा रणादयः । आविद्धितशत्रुसैन्ये पातोऽवस्कन्दः । मकरं कूर्मम् । वाहिनी सेना नदी च । दशनकर्म दन्तव्यापारः, दशनकृता च क्रिया । हस्त एव पाशः, प्रशस्तहस्तो हस्तपाश इति वा । हस्तो च पाशः । वागुरा जालम् । परिणतिषु दन्तविदारणकर्मसु । कालं यमम् । शुभाशुभादिकर्मविपाकेषु च कालमहूर्तादिरूपम् । तीक्ष्णं कृत्वा करेण हस्तेन ग्रहणम्, रविश्च तीक्ष्णकरः । लोहिताङ्गोऽङ्गारकः । वक्रं कुटिलम् । पश्चात्कृत्य मण्डलाकृत्या भ्रान्तेर्भ्रमणस्य विज्ञानानि कौशलातिशयगतिः । गोमूत्रिकामण्डले त्रिविधा हि गतिः । तत्रालातचक्रमुल्मुकचक्रं भ्रमणं करोति । मनोरथसम्पादकमिति । शेषं षष्ठीसमासः ।

की जाड़ में लघुता, आयु में दीर्घता, पेट में छोटापन, दान में निरन्तर प्रवृत्ति थी एम, जो मद लीलाओं में बलभद्र (के समान), अधीनता स्वीकार करने में कुल स्त्री (के समान), क्षमा करने में जिन (के समान), क्रोध एवं त्याग करने में क्रमशः अग्नि एवं वर्षा (के समान), नागों (हाथियों या सर्पों) को उठा लेने में गरुड़ (के समान), झगड़े कुतूहल में नारद (के समान), आक्रमण में सूखे वज्रपात (के समान), वाहिनी (सेना या नदी) को क्षुभित करने से मकर (के समान), डँसने के कार्य में साँप (के समान सूँड़ से पकड़ कर खींचने में वरुण (के समान), शत्रुओं को घेरने में यमपाश (के समान), दाँत से विदारण करने में यम (के समान अथवा शुभाशुभ कर्मों के परिणामों में दिवसादि काल के समान), तीक्ष्ण कर अर्थात् प्रचण्ड सूँड़ से ग्रहण अर्थात् आघात करने में (अथवा तीक्ष्ण कर यानि सूर्य के ग्रहण करने में) राहु (के समान), टेढ़ी चालों में मङ्गलग्रह (के समान), विक्रम के चिन्तामणि पर्वत

दन्तमुक्ताशैलस्तम्भनिवासप्रासादमभिमानस्य, घण्टाचामरमण्डनमनोहरमिच्छासंचरणविमानं मनस्वितायाः, मदधारादुर्दिनान्धकारं गन्धोदकधारागृहं क्रोधस्य, सकाञ्चनप्रतिमं महानिकेतनमहंकारस्य, सगण्डशैलप्रस्रवणं क्रीडापर्वतमवलेपस्य, सदन्ततोरणं वज्रमन्दिरं दर्पस्य, उच्चकुम्भकूटाट्टालकविकटं संचारिगिरिदुर्गं राज्यस्य, कृतानेकबाणविवरसहस्रं लोहप्राकारं पृथिव्याः, शिलीमुखशतझांकारितं पारिजातपादपं भूनन्दनस्य तथा च संगीतगृहं कर्णतालताण्डवानाम्, आपानमण्डपं

'कर्मण्यण्' इति वाऽणिकृते स्वार्थे कः। दन्तौ मुक्ताशैलस्य श्वेतपाषाणस्य स्तम्भाविव यस्य। अन्यज—दन्तस्य मुक्ताशैलानां च स्तम्भा यत्र। प्रतिमा दन्तकोशः, देवताकृतिश्च। महानिकेतनं साधुदेवगृहम्। गण्डावेव शैलौ तत्र प्रस्रवणं दाननिर्यासः। सह तेन वर्तते निर्झरश्च। 'महतोमुक्तपाषाणान्गण्डशैलान्प्रचक्षते।' संचारी जङ्गमः। यदाह कौटिल्यः---'हस्तिनो हि जङ्गमं दुर्गम्' इति। कृतान्यनेकानि बाणैर्विवरसहस्राणि यस्य तम्। प्राकारेषु बाणानुत्स्रष्टुं विवरसहस्राणि क्रियन्ते, य इन्द्रकोशा इति चाणक्यादिषु प्रसिद्धाः। भूनन्दनो राजा। 'देवोद्यानं च नन्दम्'। कर्णतालानां ताण्डवानीव ताण्डवानि। अन्यत्र,—लाभप्रधानानि ताण्ड-

---

के समान सभी मनोरथों का सिद्ध करने वाले, अभिमान के निवास-महल के समान, जिसमें दन्तरूपी मुक्ताशैल के खम्भे लगे हुए थे ऐसे, मनस्विता के स्वेच्छाचारी विमान के समान, जो घण्टा और चँवर के आभूषणों से सजा हुआ था ऐसे, क्रोध के सुगन्धित जलपूर्ण धारागृह के समान जो मद की धारा बरसाने के कारण दुर्दिन के अन्धकार जैसा था ऐसे, अलङ्कार से उस महानिकेतन, जिसमें सुवर्ण निर्मित मूर्त्तियाँ थीं, के समान जो था ऐसे, अवलेप के क्रीडा पर्वत के समान था ऐसे, दर्प के उस वज्र मन्दिर, जिसमें दाँतों के तोरण लगे हुए थे, के समान जो था ऐसे, राज्य के उस सञ्चरणशील गिरि दुर्ग, जो कुम्भ के रूप में ऊपरी भाग में अट्टालक होने से विकट था, के समान जो था ऐसे, पृथ्वी के उस लौह-प्राकार (लोहे की दीवार), जिसमें अनेकों बाणों के प्रहार के कारण हजारों छिद्र बन गये थे, के समान जो था ऐसे, पृथ्वी के नन्दन कानन के उस पारिजात वृक्ष, जो सैकड़ों भौंरों द्वारा किये गये झंकार-शब्द से युक्त था, के समान जो था ऐसे, कानों के सञ्चालन रूप नृत्य के संगीत गृह के समान जो था ऐसे,

मधुपमण्डलानाम्, अन्तपुरं शृङ्गाराभरणानाम् मदनोत्सवं मदलीलालास्यानाम्, अक्षुण्णप्रदोषं नक्षत्रमालामण्डलानाम्, अकालप्रावृट्कालं मदमहानदीपूरप्लवानाम्, अलीकशरत्समयं सप्तच्छदवनपरिमलानाम्, अपूर्वहिमागमं शीकरनीहाराणाम्, मिथ्याजलधरं गर्जिताडम्बराणां दर्पशातमपश्यत्।

आसीच्चास्य चेतसि—'नूनमस्य, निर्माणे गिरयो ग्राहिताः परमाणुताम्। कुतोऽन्यथा गौरवमिदम्। आश्चर्यमेतत्। विन्ध्यस्य दन्तावादिवराहस्य करः' इति विस्मयमानमेवं दौवारिकोऽब्रवीत्—
'पश्य,—

मिथ्यैवालिखितां मनोरथशतैर्निःशेषनष्टां श्रियं
चिन्तासाधनकल्पनाकुलधियां भूयो वने विद्विषाम्।

बानि मधुपा भ्रमराः, विटाश्च। शृङ्गारः सिन्दूरादिदानम्, रसभेदश्च। अक्षुण्णः परिपूर्णः, अभ्रादिनानावृतः अपूर्वो वा।

ग्राहिताः प्रापिताः। मिथ्यैवेति। तस्या निःशेषनाशत्वात्पुनरभावप्रसङ्गान्निःशेषत्वाद्यभिप्रायेणाह—मनोरथशतैरिति। तस्यां व्यापाररहितत्वाच्छून्यमनस्कत्वा-

जो भौंरों के आपान मण्डप के समान था ऐसे, जो शृङ्गारोपयोगी आभरणों के अन्तःपुर के समान था ऐसे, जो मदलीला के सुन्दर नृत्यों के मदनोत्सव के समान था ऐसे, जो नक्षत्र माला (आभूषण विशेष) के कभी नष्ट न होने वाले प्रदोष के समान था ऐसे, जो मद की महानदी के प्रवाह के असामयिक वर्षाकाल के समान था ऐसे, जो सप्तच्छद वन के सौरभों के मिथ्या शरत्काल के समान था ऐसे, जो जलकण के शीकरों के बिलक्षण समागम के समान था ऐसे जो गरजने के आडम्बर के मिथ्या मेघ के समान था ऐसे दर्पशात (नामक हाथी) को देखा।

उस (बाण) के मन में हुआ (अर्थात् उसने सोचा)—"निश्चय ही इस (दर्पशात) के निर्माण में परमाणुओं के रूप में पहाड़ ही लिये गये होंगे। अन्यथा ऐसी गुरुता कहाँ से सम्भव है ? आश्चर्य है। यह हाथी या दाँतों वाला विन्ध्याचल है अथवा सूँड़ से युक्त भगवान् आदि वराह है।" इस प्रकार आश्चर्य में पड़े हुए बाण से दौवारिक ने कहा, देखो—

अपनी नष्ट हुई समग्र धन-सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करने के सैकड़ों मनोरथों की चिन्तापूर्ण कल्पना करने वाले शत्रुओं (अर्थात् पराजित राजाओं) के स्मृति

आयातः कथमप्ययं स्मृतिपथं शून्यीभवच्चेतसां
नागेन्द्रः सहते न मानसगतानाशागजेन्द्रानपि ॥

तदेहि। पुनरप्येनं द्रक्ष्यसि। पश्य तावद्देवम्' इत्यभिधीयमानश्च तेन मदजलपङ्किलकपोलपट्टपतितां मत्तामिव मदपरिमलेन मुकुलितां कथमपि तस्माद् दृष्टिमाकृष्य तेनैव दौवारिकेणोपदिश्यमानवर्त्मा समतिक्रम्य भूपालकुलसहस्रसंकुलानि त्रीणि कक्षान्तराणि चतुर्थे मुक्तास्थानमण्डपस्य पुरस्तादजिरे स्थितम्, दूरादूर्ध्वस्थितेन प्रांशुना कर्णिकारगौरेण व्यायामव्यायतवपुषा शस्त्रिणा मौलेन शरीरपरिवारकलोकेन पंक्ति-

---

देवाह—सहत इत्यादि। मानसं मनः, सरोभेदोऽपि। आशाः दिशः, अभिलाषोऽपि। देवमिति इत्यादौ। चक्रवर्तिनं हर्षमद्राक्षीदिति सम्बन्धः। मदजलेन पङ्किले कपोलपट्टे पतिताम्। मत्तामिवेति। मत्तश्च पतति, मुकुलितदृष्टिश्च भवति, गतिवैकल्यादन्येन कृष्यते। भाजनं भोक्तव्यम्। भुङ्क्ते सत्यास्थानं लोकदर्शनं तदर्थं मण्डपस्तस्य। ऊर्ध्वस्थितेत्यादि साधारणम्। प्रांशुनोन्नतेन, अन्य,—प्रकृष्टा अंशवो यस्य तेन। कर्णिकारमारग्वधपुष्पम्। व्यायामः श्रमः। व्यायतं विभक्तावयवम्, विशेषेण दीर्घं च। शस्त्रिणा सायुधेन, स्तम्भा अपि शस्त्रेण वध्यन्ते। मौलभृतकश्रेणि-

---

पथ में जब यह दर्पशात किसी प्रकार आ जाता है (अर्थात् इसका स्मरण जब उन्हें हो जाता है) तो उनका हृदय सूना-सूना सा होने लगता है अर्थात् वे हताश हो जाते हैं। इस प्रकार यह गजेन्द्र (दर्पशात) मन के आशारूपी गजराजों को भी नहीं सह पाता है।''

तो आइए, फिर इसे देखियेगा। तब तक महाराज के दर्शन कीजिए॥ दौवारिक के ऐसा कहने पर बाण ने (दर्पशात के) मदजल से पङ्किल गण्ड स्थल पर पड़ी हुई मतवाली-सी तथा मद के सौरभ से मूँदी हुई अपनी दृष्टि को किसी प्रकार (अर्थात् कठिनता से) फेर कर उसी दौवारिक के द्वारा मार्ग बताये जाने पर हजारों राजाओं की भीड़ों से भरी तीन ड्योढ़ियों को पार कर चौथी (ड्योढ़ी) में मुक्तास्थान मण्डप के सामने आङ्गन में विराजमान पंक्ति में खड़े सोने के (खम्भों) के समान दूर में खड़े, लम्बे (या उत्कृष्ट किरणों वाले), कर्णिकार के समान गोरे रंग वाले, व्यायाम के कारण विशाल शरीर वाले, शस्त्रधारी मौला (सहायक विशेष) अङ्गरक्षकों से घिरे हुए, जिनके

स्थिनेन कार्तस्वरस्तम्भमण्डलेनेव परिवृतम्, आसन्नोपविष्टविशिष्टेष्ट-लोकम्, हरिचन्दनरसप्रक्षालिते तुषारशीकरशीतलतले दन्तपाण्डुरपादे शशिमय इव मुक्ताशैलशिलापट्टशयने समुपविष्टम्, शयनीयपर्यन्तविन्यस्ते समर्पितसकलविग्रहभारं भुजे, दिङ्मुखविसर्पिणि देहप्रभावितानें विततमणिमयूखे धर्मसमयसुभगे सरसीव मृदुमृणालजालजटिलजले सराजकं रममाणम्, तेजसः परमाणुभिरिव केवलैर्निर्मितम्, अनिच्छन्तमपि बलादारोपितमिवमिव सिंहासनम्, सर्वाङ्गेषु सर्वलक्षणैर्गृहीतम्, गृहीतब्रह्मचर्य-

मित्रामित्राटविकभेदेन षट्प्रकाराः सहाया भवन्ति। अन्यत्र—मूले बुध्ने भवं मौलम्। बुध्नप्रतिष्ठमित्यर्थः। पंक्तिस्थितेनेति साधारणम्। कार्तस्वरं सुवर्णम्, यस्योद्घृष्यमाणस्य सतः कुंकुमस्येव रागो जायते; सौगन्ध्यं च तद्धरिचन्दनम्। शशिमय इति वक्ष्यमाणाभिप्रायेण। तुषारेत्यादिना शीतत्वमस्य दर्शयति। दन्ते तद्वच्च पाण्डुरे पादे। रश्मयोऽपि पादाः। मुक्तेत्यादिना शुक्लतयापि शशिमय इवेत्येतदेव पोषयति। विग्रहः कायः रणश्च। धर्मेत्यादि। मणीनां स्वभावत एव शीतत्वात्तदीया मयूखा अपि ह्लादयन्ति। यो हि बलवानारोप्यते स सर्वाङ्गेषु गृह्यते। गृहीतब्रह्मचर्यमिति। स्वदारसंतुष्ट ऋतुकालगामी। 'गृहस्थोचितव्यापारो ब्रह्मचार्येव' इति श्रुतेः। यत्त्वेवमनुश्रूयते—'यावन्मया न सकला जिता भूमिस्तावन्मे ब्रह्मचर्यम्' इति श्रीहर्षः प्रतिज्ञातवान्। द्वादशभिश्च वर्षैर्जित्वा तां महिषीम-

विशिष्ट अपेक्षित लोग बैठे हुए थे ऐसे, हरिचन्दन के रस से पखारे गये तथा बर्फ की फुहारों से ठण्ढे तल वाले, मानो चन्द्रमा को काट कर बनाया गया हो इस प्रकार हाथी-दाँत के बने हुए उजले पावों वाले तथा मुक्ता पर्वत की चट्टानों से बने हुए वट्टशयन पर बैठे हुए, शय्या के सिरे की ओर टिकी हुई भुजा पर अपने सम्पूर्ण शरीर का भार डाले हुए, मानो गर्मी के समय से सुहावने लगने वाले तथा कोमल कमल नालों से भरे हुए सरोवर में राजाओं के साथ स्नान करने का आनन्द ले रहे हों इस प्रकार दिशाओं में फैलने वाले (अपने) शरीर के प्रभारूपी चंदोवे तथा फैली हुई रत्न-किरणों में राज समूह सहित जो आनन्दित हो रहे थे ऐसे, जो मानो केवल तेज के परमाणुओं से ही निर्मित किये गये थे ऐसे, जो मानो स्वयं न चाहते हों फिर भी जिन्हें बलपूर्वक सिंहासन पर बिठाया गया हो ऐसे, जिनके सभी अङ्गों में सभी लक्षण विद्यमान थे ऐसे, जो

मालिङ्गितं राजलक्ष्म्या, प्रतिपन्नासिधाराधारणव्रतमविसंवादिनं राजर्षिम्, विषमराजमार्गविनिहितपदस्खलनभियेव सुलग्नं धर्मं, सकलभूपालपरित्यक्तेन भीतेनेव लब्धवाचा सर्वात्मना सत्येन सेव्यमानम्, आसन्नवारविलासिनीप्रतियातनाभिश्चरणनखपातिनीभिर्दिग्भिरिव दशभिर्विग्रहावर्जिताभिः प्रणम्यमानम्, दीर्घैर्दिगन्तपातिभिर्दृष्टिपातैर्लोकपालानां कृताकृतमिव प्रत्यवेक्षमाणम्, मणिपादपीठपृष्ठप्रतिष्ठितकरेणोपरिगमनाभ्यनुज्ञां मृग्य-

---

ब्रवीत्—'प्रतिज्ञा मे निर्व्यूढा' इति। ततो रोषात् 'अहमपि द्वादशवर्षं ब्रह्मचर्यं चरामि' इति सा प्रतिज्ञामकरोत्। इति ब्रह्मचर्येणाज्ञाकालोऽतिवाहितः। यश्च गृहीतब्रह्मचर्यः स कथं योषितालिङ्ग्यत इति विरोधः। असिधारा खड्गधारा, व्रतविशेषश्च। यत्र स्त्रीपुंसावकपटौ ब्रह्मचर्येण तिष्ठतः। यश्च प्रतिवन्नेषु विश्वासितेषु खड्गधारां पातयति स कस्मान्न विसंवदते; नान्यथा भवति कथं च राजर्षिरसावुच्यत इति विरोधः। यश्च राजर्षिरुत्तममुनिर्गृहीतासिधारो ब्रह्मचारी च स कयाचिदालिङ्ग्यते। विषमोऽशक्यानुष्ठानो नतोन्नतरूपः। मार्गो व्यवहारः, पन्थाश्च। विषमे पथि च स्खलति येन क्वचित्सुलग्नेन भूयते। लब्धवाचेति। सत्यस्य वागेवाश्रयणीयश्च। सर्वैस्त्यक्तः सम्भीतः संस्त्वां, त्यजामीति वाचं लब्ध्वान्यं सेवते, वारविलासिनी शरीरोपचारचतुरा मुख्यललनाप्रतिबिम्बम्। दशभिरिति। नखानां दिशां च दशसंख्याकत्वात्। मणिपादेति। मणिसम्बन्ध-

---

ब्रह्मचर्य को धारण करते हुए भी राजलक्ष्मी के द्वारा आलिङ्गित थे ऐसे—असि धारा को धारण करने का व्रत लेने पर जो अविसंवादी (एकान्तसेवी) राजर्षि थे ऐसे, मानो ऊबड़—खाबड़ राजमार्ग (राजा के पद) पर पैर फिसलने (अर्थात् राज कर्त्तव्यच्युत) होने के भय से जो धर्म का सहारा लिये हुए थे ऐसे, मानों सत्य सभी दूसरे राजाओं से परित्यक्त होकर तथा डरते डरते वचन लेकर सब प्रकार से जिनकी सेवा कर रहा हो ऐसे, बगल में खड़ी वेश्या (चामर ग्राहिणी) की परिछाइयाँ जिनके नखों पर इस प्रकार पड़ रही थीं मानों दसों दिशाएँ शरीर धारण करके प्रणाम कर रही हों ऐसे, जो मानो अपने दिगन्तव्यापी लम्बे दृष्टि पातों से लोकपालों के अच्छे-बुरे कार्यों को देख रहे थे ऐसे, सूर्य की किरणें जिनके मणिमय पादपीठ पर इस प्रकार पड़ रही थीं मानो वे ऊपर (आकाश की ओर) जाने के लिए (उनसे) अनुमति चाह रही हों

माणमिव दिवसकरेण, भूषणप्रभासमुत्सारणबद्धपर्यन्तमण्डलेन प्रदक्षिणीक्रियमाणमिव दिवसेन, अप्रणमद्भिर्गिरिभिरपि दूयमानं, शौर्योष्मणा फेनायमानमिव चन्दनधवलं लावण्यजलधिमुद्वहन्तम् एकराज्योर्जितत्वेन, निजप्रतिबिम्बान्यपि नृपतिचूडामणिगतान्यसहमानमिव दर्पदुःखासिकया चामरानिलच्छलेन बहुधैव श्वसन्तीं राजलक्ष्मीं दधानम्, सकलामिव चतुःसमुद्रलावण्यमादायोत्थितया श्रिया समुपश्लिष्टम्, आभरणमणिकिरणप्रभाजालजायमानानीन्द्रधनुःसहस्राणीन्द्रप्रहितप्राभृतानि विलम्भमानमिव राज्ञां संभाषणेषु परिहासेष्वपि मधु वर्षन्तम्, काव्यकथास्वपीतममृतमुद्वमन्तम्, विस्रम्भभाषितेष्वनाकृष्टमपि हृदयं

प्रतिष्ठानमिव पाययन्तम् । करा हस्तोऽपि । फेनायमिति । अत्र सन्तापेन सफेनं भवति । असहमानमिवेति । कथं सामान्येन समानं इति । सकलमित्यादि । सकलपदेन चतुःशब्देन च शौरेरस्य विशेषमाह । ततो लवणत्वस्य तथात्वेऽपि श्लिष्यमाणत्वात् । अतं लावण्यमादाय । एकस्माच्च समुद्रादुत्थाय लक्ष्म्या शौरिः समुपश्लिष्टः । लावण्यं लवणता; सौन्दर्यं च । प्राभृतं ढौकनिकम् । मधु मद्यम्, अमृतं च ।

ऐसे, आभूषणों की कान्ति से जिनके चारों ओर इस प्रकार मण्डल सा बन गया था मानो दिन उनकी प्रदक्षिणा कर रहा हो ऐसे, शूरता की गर्मी के कारण न झुकने वाले पहाड़ों से जो कष्ट का अनुभव कर रहे थे ऐसे, जो मानो उस चन्दन के समान उजले लावण्य के सागर को धारण कर रहे थे जो उनके एकाधित्य की ऊर्जा से खौल कर फेनिल हो रहा था ऐसे, मानों राजाओं की चूडामणियों में पडने वाले अपने ही प्रतिबिम्बों को दर्प के कारण बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे ऐसे, जो मानो चँवर की हवा के बहाने बार-बार साँस छोड़ती हुई राजलक्ष्मी को धारण कर रहे थे ऐसे, जो मानो चारों समुद्रों के सम्पूर्ण लावण्य को लेकर निकली हुई लक्ष्मी के द्वारा आलिङ्गित हों ऐसे, आभूषणों में लगे हुए रत्नों की कान्तियों से बनाये गये हजारों इन्द्रधनुष, जिन्हें मानों इन्द्र ने उपहार रूप में भेजा हो, जो मानो प्राप्त कर रहे हों ऐसे, जो मानो राजाओं के साथ वार्तालाप के क्रम में छोड़े गये मधु (मदिरा या मधु रस) की वर्षा कर रहे हों ऐसे, जो काव्यगोष्ठियों में मानो न पिये गये अमृत को भी उगल रहे हों ऐसे, जो विश्वासपूर्ण बातचीत के प्रसङ्ग में मानो अपने न खींचे गये हृदय को भी

दर्शयन्तम्, प्रसादेषु निश्चलामपि श्रियं स्थाने स्थाने स्थापयन्तम्, वीरगोष्ठीषु पुलकितेन कपोलस्थलेनानुरागसंदेशमिवोपांशु रणश्रियः शृण्वन्तम्, अतिक्रान्तसुभटकलहालापेषु स्नेहवृष्टिमिव दृष्टिमिष्टे कृपाणे पातयन्तम्, परिहासस्मितेषु गुरुप्रतापभीतस्य राजकस्य स्वच्छमाशयमिव दशनांशुभिः कथयन्तम्, सकललोकहृदयस्थितमपि न्याये तिष्ठन्तम्, अगोचरे गुणानामभूमौ सौभाग्यानामविषये वरप्रदानानामशक्य आशिषाममार्गे मनोरथानामतिदूरे दैवस्यादिश्युपमानानामसाध्ये धर्मस्यादृष्टपूर्वे लक्ष्म्या महत्त्वे स्थितम्, अरुणपादपल्लवेन सुगतमन्थरोरुणा

विस्रम्भ आश्वासः। उपांश्वप्रकटम्। अतिक्रान्ते कलहे रणे शस्त्राणां स्नेहो दीयते रुधिरादिसलिलनिवारणाय। स्वच्छं निर्मलम् सुप्रसादमाशयं भावं, प्रकृष्टतापभीतस्य च स्वच्छो निर्मल आशयो जलाधारो दृश्यते। अत्र प्रतापेत्यादि प्रकरणसाहचर्यात्स्वच्छतान्यथानुपपत्त्या च जलशब्द बिना जलाशय एव प्रतीयते। न्याये तिष्ठन्तम्। न्यायममुञ्चन्तमित्यर्थः। यः सर्वेषां हृदयस्थितः स एकस्मिन्नेव तिष्ठतीति विरोधः। अरुणो लोहितः, अनूरुश्च। शोभनं गमनं ययोस्तौ मन्थरावूरू यस्य

दिखा रहे हों ऐसे, जो प्रसन्नता की स्थितियों में मानो अपनी स्थिर लक्ष्मी को भी जगह-जगह स्थापित कर रहे हों ऐसे, जो वीरों की गोष्ठियों में कपोलों के पुलकित हो जाने के कारण मानो रण-श्री द्वारा भेजे गये अनुराग सन्देश को एकान्त में सुन रहे हों ऐसे, जो बड़े-बड़े योद्धाओं के युद्धों की बातचीत के प्रसङ्गों में अपने प्रिय कृपाण पर मानो स्नेह की वर्षा कर रहे थे ऐसे जो हँसी-मजाक के समय मुस्कुरा कर मानों अपनी दन्त-किरणों के द्वारा अपने विशाल प्रताप से डरे हुए राजाओं के निर्मल मनोभाव को प्रकट कर रहे थे ऐसे, सम्पूर्ण लोगों के हृदय में निवास करते हुए भी जो न्याय पर अवस्थित थे ऐसे, जो लक्ष्मी के पहले न देखे गये वैसे, उत्कर्ष पर अवस्थित थे, जो गुणों का अगोचर, सौभाग्यों की अभूमि, वरदानों का अविषय, आशीर्वचनों का अशक्य, मनोरथों का अमार्ग, भाग्य से अतिदूर, उपमानों का अविषय एवं धर्म का असाध्य था, ऐसे, जो अपने लाल हस्त पल्लव से (सूर्य-सारथि अरुण), सुन्दर एवं मन्द गमन करने

वज्रायुधनिष्ठुरप्रकोष्ठपृष्ठेन वृषस्कन्धेन भास्वद्बिम्बाधरेण प्रसन्नावलोकितेन चन्द्रमुखेन कृष्णकेशेन वपुषा सर्वदेवतावतारमिवैकत्र दर्शयन्तम्, अपि च मांसलमयूखमालामलिनितमहीतले महति महार्हे माणिक्यमालामण्डनमेखले महानीलमये पादपीठे कलिकालशिरसीव सलीलं विन्यस्तवामचरणम्, आक्रान्तकालियफणाचक्रवालं बालमिव पुण्डरीकाक्षम्, क्षौमपाण्डुरेण चरणनखदीधितिप्रतानेन प्रसरता महीं महादेवीपट्टबन्धेनेव महिमानमारोपयन्तम्, अप्रणतलोकपालकोपेनेवातिलोहितौ सकलनृपतिमौलिमालास्वातिपीतं पद्मरागरत्नातपमिव

बुद्धश्च सुगतः। वज्राख्यमायुधं तद्वन्निष्ठुरं कठोरं प्रकोष्ठस्य पृष्ठं यस्य तेन। इन्द्रस्यास्य वज्रमायुधम्। 'प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः'। वृषो दान्तः, धर्मश्च। भास्वद्भास्वरम्; रविश्च भास्वान्। बिम्बं फलभेदः, मण्डलं च। अवलोकितं वीक्षितम्, बुद्धिभेदश्चावलोकितः। कृष्णः कालः, हरिश्च कृष्णः। कलिकालेति। कलिकालस्य मलिनत्वादेवमुत्प्रेक्षा। वामपादेन पराभवनीयत्वमेव पोष्यते। कालियो

वाली जङ्घाओं से (सुगत अर्थात् बुद्ध), वज्रास्त्र के समान कड़े हाथ के गट्टे से (वज्रायुध = इन्द्र), बैल के कन्धे के समान कन्धे से (वृष = धर्म), चमकते हुए बिम्बाधर से (भास्वत् = सूर्य), प्रसन्न दृष्टिपात से (अवलोकितेश्वर), चन्द्रमा के समान मुख से (चन्द्रमा) तथा काले केशों से (कृष्ण रूपी) सभी देवताओं का मानो एकत्र अवतार दिखा रहे थे ऐसे, जो स्थूल किरण-जाल से पृथ्वी तल को मलिन करने वाले, विशाल, बहुमूल्य माणिक्य समूह से अलङ्कृत मध्यभाग वाले, महानीलामय पादपीठ पर, मानो कलिकाल के मस्तक पर रखा गया हो, इस प्रकार अपने बायें पैर को रखे हुए थे ऐसे, अथवा जो कालिया नाग के फनों पर आक्रमण किये हुए बाल कृष्ण के समान थे ऐसे, क्षौमवस्त्र के समान (अपने) पैरों के नाखूनों को फैलती हुई उज्ज्वल रश्मियों से जो मानो पृथ्वी को पट्टबन्धन द्वारा महादेवी (राजमहिषी) के पद पर प्रतिष्ठित कर रहे थे ऐसे, मानो अप्रणत (न झुके हुए) लोकपालों पर क्रोध के कारण लाल हुए, समस्त राजाओं के मुकुटों में अत्यधिक पी गई पद्म-

वमन्तौ सर्वतेजस्विमण्डलास्तमयसंध्यामिव धारयन्तावशेषराजककुसुमशेखरमधुरसस्रोतांसीव स्रवन्तौ समस्तसामन्तसीमन्तोत्तंसस्रक्सौरभभ्रान्तैर्भ्रमरमण्डलैरमित्रोत्तमाङ्गैरिव मुहूर्तमप्यविरहितौ सर्वाहनतत्परायाः श्रियो विकचरक्तपङ्कजवनवासभवनानीव कल्पयन्तौ जलजशङ्खमीनमकरसनाथतलतया कथितचतुरम्भोधिभोगचिह्नाविव चरणौ दधानम्, दिङ्नागदन्तमुसलाभ्यामिव विकटमकरमुखप्रतिबन्धबन्धुराभ्यामुद्वेललावण्यपयोधिप्रवाहाभ्यामिव फेनाहितशोभाभ्यां कलाचन्दनद्रुमाभ्यामिव भोगिमण्डलशिरोरत्नरश्मिराज्यमानमूलाभ्यां हृदयारोपितभूभारधारणमाणिक्यस्तम्भाभ्यामूरुदण्डाभ्यां विराजमानम्, अमृतफेनपिण्ड-

---

नागभेदः। पुण्डरीकाक्षमिति राज्ञो विशेषणम्। तेजस्विनो वीराः, आदित्याश्च। जलजे'त्यादीनि महाराजविशेषणानि लक्षणानि। एवमादि च सम्भवति। मकरमुखं जानुसन्धिः, मकरमुखचिह्नितान्तकपोलश्च। उद्वेलतया लावण्यस्य समुच्छलद्रूपत्वमाह। फेनो रससन्तानः, डिण्डीरश्च। भोगिनो नृपाः, सर्पाश्च। फेनवत्तैश्च

रागमणि की प्रभा को मानो उगलते हुए, सभी तेजस्वियों (वीरों अथवा आदित्यों) के अस्त हो जाने के कारण मानो सन्ध्या को धारण करते हुए, सम्पूर्ण राजाओं के मस्तकों की पुष्पनिर्मित मालाओं के मधुरस को मानो बहाते हुए, समस्त सामन्तों के केशविन्यास की माला की सुगन्ध पर मड़राते हुए भौंरे शत्रुओं के मस्तकों के समान क्षण भर भी जिनसे अलग नहीं होते ऐसे, सेवा में लगी हुई लक्ष्मी के लिए मानो खिले हुए रक्त कमलों के भवनों को बनाते हुए, चारों समुद्रों के उपभोग चिह्नों को मानो प्रकट कर रहे हों इस प्रकार क्रमशः कमल, शङ्ख, मछली एवं मकर के चिह्नों से युक्त तलवों वाले दोनों चरणों को जो धारण कर रहे थे ऐसे, जिनकी दोनों जाँघें, दिग्गजों के दन्तरूपी मुसलों के समान, उद्वेल लावण्य के सागर के दो प्रवाहों के समान विशाल मकर-मुखों (घुटनों के जोड़ों या मकर के मुखों) के प्रतिबन्ध के कारण ऊपर-नीचे उठी हुई फेन से शोभित चन्दन के वृक्षों के सदृश भोगिमण्डल (धनिक वर्ग या चन्दन वृक्ष में लिपटा हुआ सर्प-समूह) के मस्तकों के रत्नों की रश्मियों से रंजित हो रहे मूल भागों वाली तथा (राजा के) हृदय पर आरोपित पृथ्वी-भार के धारण के लिए माणिक्य के खम्भों के समान थीं ऐसे, अमृत के फेन-पिण्ड के समान उजले,

पाण्डुना मेखलामणिमयूखखचितेन नितम्बबिम्बव्यासङ्गिना विमल-पयोधौतेन नेत्रसूत्रनिवेशशोभिनाधरवाससा वासुकिनिर्मोकेणेव मन्दरं द्योतमानम्, अघनेन सतारागणेनोपरिकृतेन द्वितीयाम्बरेण भुव-नाभोगमिव भासमानम्, इभपतिदशनमुसलसहस्रोल्लेखकठिनमसृणे-नापर्याप्ताम्बरप्रथिम्ना विविधवाहिनीसंक्षोभकलकसंमर्दसहिष्णुना कैलास-मिव महत्ता स्फटिकतटेनोरुणोरःकपाटेन विराजमानम्, श्रीसरस्वत्यो-रुरोवदनोपभोगविभागसूत्रेणेव पातितेन शेपेणेव च तद्भुजस्तम्भविन्यस्त-

---

पाण्डु। मेखला रशना, पर्वतमध्यभूमिश्च। पयो जलम्, क्षीरं च। नेत्रसूत्रं पट्टसूत्रम्, मन्थनरज्जुश्च। अघनेन, छातेन, अनभ्रेण च। ताराः सूत्रबिन्दवः नक्ष-त्राणि च। अम्बरं वासः, नभश्च। इभपतीत्यादिना साधारणम्। अपर्याप्तमम्बरं वासो यस्य तादृक्प्रथिमा यस्य, अम्बरं च खम्। वाहिनी सेना, नदी च। अन्यपर्वतसाधारण्येऽपि छायावत्त्वादुन्नतत्वाच्च कैलासमिवेत्युक्तम्। हारेत्यादिना

मेखला की मणियों की रश्मियों से खचित नितम्ब भाग से लगे हुए, स्वच्छ जल से धुले हुए पट्टसूत्रों (रेशमी धागों) के पुटकों (फुदनों) से सुशोभित (मकर पक्ष में— अमृत का फेन पड़ने से उजला, मेखला-भाग की मणि-किरणों से खचित, निर्मल क्षीर से धुला हुआ तथा मन्थन-रज्जु के निवेश से शोभित) अपने अधोवस्त्र से जो वासुकि नाग के केंचुल से मन्दर के समान प्रतीत हो रहे थे ऐसे, जो अपने ऊपर धारण किये गये झीने तथा ताराङ्कित (ताराकार बुनकियों वाले) द्वितीय वस्त्र से मानो अघन अर्थात् बादलों से रहित एवं तारागण से युक्त द्वितीयाकाश से भुवन के आभोग की भाँति भासित हो रहे थे ऐसे, ऐरावत हाथी के दन्तरूपी मुसलों के हजारों के प्रहारों के कारण कड़े और चिकने, आकाश के लिए अपर्याप्त प्रथिमा (विशालता या विस्तार) वाले तथा अनेकों नदियों के संक्षोभजन्य कल-कल ध्वनियों से भरे सम्मर्द को सहने वाले कैलाश पर्वत के स्फटिक तट की भाँति (गजराजों के घातप्रतिघातों से कठिन, कोमल वस्त्र के लिए अपर्याप्त स्थूलता युक्त एवं विविध सेनाओं के कोलाहल को सहन करने वाले) विशाल उरः कपाट को जो धारण कर रहे थे ऐसे, लक्ष्मी एवं सरस्वती के क्रम से छाती एवं मुख के उपभोग का बँटवारा करने वाले सूत्र की भाँति या उनके भुज

समस्तभूभारलब्धविश्रान्तिसुखप्रसुप्तेन हारदण्डेन परिवलितकन्धरम् । जीविताविधिगृहीतसर्वस्वमहादानदीक्षाचीरेणेव हारमुक्ताफलानां किरण-निकरेण प्रावृतवक्षःस्थलम्, अजजिगीषया बालैर्भुजैरिवापरैः प्ररोहद्भि-र्बाहूपधानशायिन्याः श्रियाः कर्णोत्पलमधुरसधारासंतानैरिव गलद्भिर्भुज-जन्मनः प्रतापस्य निर्गमनमार्गैरिवाविर्भवद्भिररुणैः केयूररत्नकिरणदण्डै-रुभयतःप्रसारितमणिमयपक्षवितानमिव माणिक्यमहीधरम्, सकल-लोकालोकमार्गार्गलेन चतुरुदधिपरिक्षेपखातशातकुम्भशिलाप्रकारेण सर्वराजहंसबन्धवज्रपञ्जरेण भुवनलक्ष्मीप्रवेशमङ्गलमहामणितोरणेनाति-दीर्घदोर्दण्डयुगलेन दिशां दिक्पालानां च युगपदायतिमपहरन्तम्,

---

उरुत्वं काठिन्यमाह । परिवलिता । 'परिवेष्टिता—' इति पाठे व्याप्तेत्यर्थः । अजो हरिः । भुजेत्यादिना सेनादिकृतं नयादिकृतं च प्रतापं व्यवच्छिनत्ति । माणिक्य-मुत्कृष्टो मणिः । चतुर्णामुदधीनां सम्बन्धी परिक्षेप एव खातं परिखा यस्य स तादृ-ग्दाढर्याच्छिलाप्राकार इव तेन । परिखां कृत्वान्तरे प्राकारो दीयते इति स्थितिः ।

स्तम्भ पर सम्पूर्ण पृथ्वी के भार को डाल कर विश्राम की नींद लेने वाले शेष नाग की भाँति हारदण्ड जिनके कन्धे से गिर कर लटक रहा था ऐसे प्रति पाँचवें (जीविताविधि) दिये गये सर्वस्व वाले महादान के दीक्षा वस्त्र के समान, हार में गूँथे हुए मोतियों की किरणों से जिनके वक्षःस्थल व्याप्त थे ऐसे, मानों चतुर्भुज विष्णु को जीत लेने की इच्छा से दो अन्य हाथ निकल रहे हों या जिनके विष्णु तुल्य हाथों को तकिया बनाकर सोने वाली लक्ष्मी के कर्ण-कमल का मधु रस धारा के रूप में प्रवाहित हो रहा हो या मानों भुजाओं में उत्पन्न होने वाले प्रताप के निकलने के लिए मार्ग पैदा हो रहे हों इस प्रकार केयूर के रत्नों की दोनों ओर फैली हुई दण्डाकार लाल किरणों से जो मणिमय पक्षवितान को फैलाकर माणिक्य के पर्वत के समान थे ऐसे, समस्त लोकालोक के मार्ग के अर्गलादण्ड के समान, चारों समुद्रों के घेरे की खाई में सोने के खम्भों की दीवार के समान, सम्पूर्ण राजसमूह रूपी हँसों के रहने के लिए वज्रमय पिंजड़ों के समान, भुवन लक्ष्मी के लिए प्रवेश के लिए मङ्गलार्थ लगाये गये विशाल मणि-तोरणों के समान जो अपने दोनों अतिविशाल भुजदण्डों से दिशाओं के विस्तार तथा दिक्पालों के प्रताप का एक ही समय में अपहरण

सोदर्यलक्ष्मीचुम्बनलोभेन कौस्तुभमणेरिव मुखावयवतां गतस्याधरस्य गलता रागेण पारिजातपल्लवरसेनेव सिञ्चन्तं दिङ्मुखानि, अन्तरान्तरा सुहृत्परिहासस्मितैः प्रकीर्यमाणविमलदशनशिखाप्रतानैः प्रकृतिमुग्धाया राजश्रियाः प्रज्ञालोकमिव दर्शयन्तम्, मुखजनितेन्दुसन्देहागतानि कुमुदिनीवनानीव प्रेषयन्तम्, स्फुरत्स्फटिकधवलदशनपङ्क्तिकृतकुमुदवनशङ्काप्रविष्टां शरज्ज्योत्स्नामिव विसर्जयन्तम्, मदिरामृतपारिजातगन्धगर्भेण भरितसकलककुभा मुखामोदेनामृतमथनदिवसमिव सृजन्तम्, विकचमुखकमलकर्णिकाकोशेनानवरतमापीयमानश्वाससौरभमिवाधोमुखेन नासावंशेन, चक्षुषः क्षीरस्निग्धस्य धवलिम्ना दिङ्मुखान्यपूर्ववदनचन्द्रोदयोद्वेलक्षीरोदोत्प्लावितानीव कुर्वाणम्, विमलकपोलफलकप्रतिबिम्बितां चामरग्राहिणीं विग्रहिणीमिव मुखनिवासिनीं सरस्वतीं दधानाम्,

---

राजहंसा राजोत्तमाः, हंसभेदाश्च। आयातिर्दैर्घ्यम्, प्रतापश्च। कर्णिका कोशः, चक्रं च। आपीयमानं श्वाससौरभं यस्य तम्। अधोमुखेनेति। अनेन सुलक्षणत्वं

कर रहे थे ऐसे. अपनी सगी बहन लक्ष्मी को चूमने के लोभ से कौस्तुभ मणि अधर के रूप में मुख का अङ्ग बन गया हो ऐसे अधर से पारिजात-पल्लव के रस के समान चूते हुए राग से दिशाओं के मुखों को सींच रहे थे ऐसे, बीच-बीच में मित्रों के साथ हँसी-मजाक करने के समय हँसने के कारण अपने उजले-उजले दाँतों की छटा के विस्तार से जो मानो प्रकृति मुग्धा राजलक्ष्मी की प्रज्ञा का प्रकाश दिखा रहे थे ऐसे, जो मानो मुख को चन्द्रमा समझ कर आये हुए कुमुद वनों को लौटा रहे थे ऐसे, जो मानो स्फटिक के समान जड़े हुए दाँतों को कुमुद वन समझ कर प्रविष्ट हुई शरत्कालीन ज्योत्स्ना को वापस कर रहे थे ऐसे, मदिरा अमृत एवं पारिजात के मुखवास की मिली हुई सुगन्ध से सभी दिशाओं को भर कर जो मानो अमृत मन्थन के दिन की सृष्टि कर थे ऐसे, खिले हुए मुख कमल के बीज कोश के समान अधोमुख नासावंश से निरन्तर सुगन्धित साँस लेते हुए, क्षीर के समान स्निग्ध अपनी आँखों की सफेदी द्वारा जो मानो अपूर्व मुखरूपी चन्द्रमा के उदित होने से उद्वेल क्षीर समुद्र द्वारा दिशाओं को उत्प्लावित कर रहे थे ऐसे, जिनके स्वच्छ कपोल फलक पर चँवर डुलाने वाली

अरुणेन चूडामणिशोचिषा सरस्वतीर्ष्याकुपितलक्ष्मीप्रसादनलग्नेन चरणालक्तकेनेव लोहितायतललाटतटम्, आपाटलांशुतन्त्रीसंतानवलयिनीं कुण्डलमणिकुटिलकोटिबालवीणामनवरतचलितचरणानां वादयतामुपवीणयतामिव स्वरव्याकरणविवेकविशारदम्, श्रवणावतंसमधुकरकुलानां कलक्वणितमाकर्णयन्तम्, उत्फुल्लमालतीमयेन राजलक्ष्म्याः कचग्रहलीलालग्नेन नखज्योत्स्नावलयेनेव मुखशशिपरिवेषमण्डलेन मुण्डमालागुणेन परिकलितकेशान्तम्, शिखण्डाभरणभुवा मुक्ताफलालोकेन मरकतमणिकिरणकलापेन चान्योन्यसंवलनवृजिनेन प्रयागप्रवाहवेणिका-

---

सौरभस्य तथाऽऽपीयमानानुमतिं दर्शयति। अंशुरेव तन्त्रीसंतानः स एव वलयाकारत्वाद्वलयं विद्यते यस्यास्ताम्। कुण्डलमणिकुटिलकोटिमेव बालवीणां सप्ततन्त्रीकां विपञ्चीं वादयताम्। अनवरतेत्यादिना व्यापारसादृश्येनोक्तम्। वद-(वादय) तामिति। वीणायोपगायतामुपवीणयतामिति गानस्य प्राधान्यं प्रतिपादयति। स्वरव्याकरणविशारदमित्यादिना गानं दर्शयति। परिवेषः परिधिः। वृजिनेन शकलेन, कलुषेण वा। प्रयागो गङ्गायमुनासंगमः। तत्प्रवाहस्य वेणिका-

---

स्त्री का प्रतिबिम्ब इस प्रकार पड़ रहा था मानो मूर्तिमती होकर मुख में निवास करने वाली सरस्वती को धारण कर रहे हों ऐसे, चूडामणि की लाल कान्ति से मानो सरस्वती ईर्ष्या से क्रुद्ध हुई लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए उसके चरणों पर मस्तक डाल देने के कारण (लक्ष्मी के) चरणों में लगे आलता से (रंग जाने के कारण) लाल हुए बिशाल ललाट वाले थे ऐसे, कुण्डलमणि के टेढ़े किनारे ही मानो बाल वीणा है, जिसमें लाल किरणों रूपी तार लगे हुए हैं, ऐसी बाल-वीणा को निरन्तर चरण चलाने के कारण मानो बजाते हुए तथा उस पर स्वर का विस्तार एवं विवेक करते हुए कर्णावतंसस्थित भौंरों के अस्फुट एवं मधुर स्वर को जो ध्यान पूर्वक सुन रहे थे ऐसे, खिले हुए मालती पुष्पों से युक्त, मानो कचग्रह के अवसर पर राजलक्ष्मी नखों की किरणों का कंगन हो इस प्रकार तथा मुखचन्द्र के चारों ओर की परिधि के समान मुण्डमाला से से जिनके बाल सजाये हुए थे ऐसे, शिखण्डाभरण में लगे हुए मोतियों एवं मरकत मणियों की किरणें परस्पर मिलकर जिनके ऊपर इस प्रकार पड़ रही थीं मानों

वारिणेवागत्य स्वयमभिषिच्यमानम्, श्रमजलविलीनबहलकृष्णागुरुपङ्कतिलककलङ्ककल्पितेन कालिम्ना प्रार्थनाचाटुचतुरचरणपतनशतश्यामिकाकिणेनेव नीलायमानललाटेन्दुलेखाभिः क्षुभितमावसोद्गतैरुत्कलिकाकलापैरिव हारैरुल्लसद्भिरवष्टभ्यमानाभिर्विलासवल्गनचटुलैर्भ्रूलताकल्पैरीर्ष्यया श्रियमिव तर्जयन्तीभिरायामिभिः श्वसितैरविरलपरिमलैर्मलयमारुतमयैः पाशैरियाकर्षन्तीभिर्विकटबकुलावलीवराटकवेष्टितमुखैर्बृहद्भिः स्तनकलशैः स्वदारसंतोषरसमिवाशेषमुद्धरन्तीभिः कुचोत्कम्पिकाविकारप्रेङ्खितानां हारतरलमणीनां रश्मिभिराकृष्य हृदय-

रूपेण वारिणेव। श्रमजलेत्यादौ वारविलासिनीभिः सर्वतो विलुप्यमानमसौभाग्यमिवेति सम्बन्धः। प्रार्थनाचाटुवित्यादौ प्रार्थनादीनि सर्वाणि श्रीहर्षविषयाणि ज्ञेयानि। मानसं सरः चेतश्च। उत्कलिका, रुहरुहिकाः, वीचयश्च। अविरलेत्यादिना धारणम् आकर्षणं वशीकरणम्, समीपप्रमाणं च। विकटेत्यादिनोद्दीपनभावमेव पोषयति। वराटको रज्जुः। बृहद्भिरिति। बृहत्त्वेन हृद्यत्वमेषामाह। बृहत्त्वादेव च वक्ष्यति—अशेषमिति स्तनकलशैरिति। कलशाः किल रज्जुवेष्टितमुखै

प्रयाग के त्रिवेणी-संगम का जल स्वयं आकर उनका अभिषेक कर रहा हो ऐसे जिनके ललाट की चन्द्रलेखा पसीने से पसीज कर बहते हुए कृष्णागुरु के पङ्क के तिलक-कलङ्क के कारण इस प्रकार स्याह पड़ गई थी मानो प्रार्थना करने के कारण सैकड़ों बार प्रियतम के चरणों पर सिर पटकने से उनके ललाटों में दाग पड गये हों ऐसी, मानो क्षोभ युक्त हृदय की तरङ्गें हों इस प्रकार जिनके वक्ष पर हार उल्लसित हो रहे थे ऐसी, मानो ईर्ष्या से लक्ष्मी को तर्जना दे रही हो इस प्रकार जो विलास से अपनी भौंहें मटकाती थीं ऐसी, मानो साँसों की डोर से कुछ खींच रही हो इस प्रकार जो मलय-पवन के समान निरन्तर निकलती हुई लम्बी एवं सुगन्धित साँसे ले रहीं थीं ऐसी, बकुल माला की लम्बी रस्सी से बँधे हुए मुख वाले अपने विशाल कुचकलशों से जो मानो अपनी पत्नियों के प्रति होने वाले (महाराज के) सम्पूर्ण सन्तोष-रस को रिक्त कर रहीं थीं ऐसी, स्तनकम्पन के कारण डोलते हुए हार में जड़ी हुई सुन्दर मणियों की किरणों से जो मानो (महाराज को) बलपूर्वक अपने हृदय में प्रविष्ट करा

मिव हठात्वेशयन्तीभिः प्रभामुचामाभरणमणीनां मयूखैः प्रसारितै-र्बहुभिरिव बाहुभिरालिङ्गन्तीभिर्जृम्भानुबन्धबन्धुरवदनारविन्दावरणी-कृतैरुत्तानैः करकिसलयैः सरभसप्रधावितानि मानसानीव निरुन्धती-भिर्मदनान्धमधुकरकुलकीर्यमाणकर्णकुसुमरजःकणकूणितकोणानि कुसुम-शरशरनिकरप्रहारमूर्च्छामुकुलितानीव लोचनानि चतुरं संचारयन्ती-भिरन्योन्यमत्सरादाविर्भवद्भङ्गुरभ्रुकुटिविभ्रमक्षिप्तैः कटाक्षैः कर्णेन्दी-वराणीव ताडयन्तीभिरनिमेषदर्शनसुखरसराशिं मन्थरितपक्ष्मणा चक्षुषा पीतमिव कोमलकपोलपालीप्रतिबिम्बितं वहन्तीभिरभिलाषलीलानि-र्निमित्तैःसमतैश्चन्द्रोदयानिव मदनसहायकाय सम्पादयन्तीभिरङ्गभङ्गवल-

रसो जलमुद्ध्रियते । रसोभिलाषः, जलं च । बन्धुरं हृद्यम् । कूणितः संकोचितः । मदनादिशब्दे विद्यमानेऽपि मदनान्धेत्यभिप्रायेण कुसुमशरग्रहणम् । अत्र पक्षे कर्ण-पदं त्यज्यते । अनिमेषदर्शनसुखरसराशिमिव श्रीहर्षम् । प्रतिबिम्बितमिति । अथ च

रही थीं ऐसी छटा बिखेरने वाली अपनी आभरण-मणियों की फैली हुई किरणों से जो मानो अपनी बहुत सी भुजाओं द्वारा (महाराज का) आलिङ्गन कर रही थी ऐसी, जँभाई लेते समय (विवृत) मुखकमल का ढक्कन बनाये गये अपने उत्तान कर पल्लवों से जो मानो वेगपूर्वक निकल भागते हुए अपने हृदय को रोक रहीं थीं ऐसी, कमान्ध भौरों द्वारा कर्णफूलों के बिखेर दिये गये पराग कणों से जिन की आँखों के कोने इस प्रकार संकुचित हो गये थे मानो कामदेव के बाण-प्रहारों से बेहोश हो जाने के कारण वे आँखें मूँद गई हों, ऐसी (अपनी) आँखों को जो चतुरतापूर्वक चला रही थीं ऐसी पारस्परिक मत्सर के कारण भौंहें ऐंच कर छोड़े गये कटाक्षों से जो मानो अपने कर्णोत्पलों का ताडन कर रही थी ऐसी (तात्पर्य यह है कि कर्णोत्पल एवं मुख कमल दोनों ही अधिका-धिक सुन्दर होने के कारण एक दूसरे के प्रति मत्सर ग्रस्त थे। मानो इसी मात्सर्य के कारण मुख कमल की ओर से कटाक्ष-विक्षेपों द्वारा कर्णोत्पल का ताडन किया जा रहा था।) (महाराज) के निरन्तर दर्शन के सुख की रसराशि, जो मानों स्थिर पलकों वाले नेत्रों से पी ली गई है तथा कोमल गालों पर मानो प्रतिबिम्बित हो रही है, को जो धारण कर रही है ऐसी, मानो कामदेव की सहायता

नान्योन्यघटितोत्तानकरवेणिकाभिः स्फुरन्मुखराङ्गुलीकाण्डकुण्डली-क्रियमाणनखदीधितिनिवहनिभेनाकिंचित्करकामकार्मुकाणीव रुषा भञ्जन्तीभिर्वारविलासिनीभिर्विलुप्यमानसौभाग्यमिव सर्वतः, स्पर्शस्विन्न-वेपमानकरकिसलयगलितचरणारविन्दां चरणग्राहिणीं विहस्य कोणेन-लीलालसं शिरसि ताडयन्तम्, अनवरतकरकलितकोणतया चात्मनः प्रियां वीणामिव श्रियमपि शिक्षयन्तम्, निःस्नेह इति धनैः, अनाश्रयणीय इति दोषैः, निग्रहरुचिरितीन्द्रियैः, दुरुपसर्प इति कलिना, नीरस इति व्यसनैः भीरुरित्ययशसा, दुर्ग्रहचित्तवृत्तिरिति चित्तभुवा, स्त्रैण इति सरस्वत्या; षण्ढ इति परकलत्रैः, काष्ठामुनिरिति यतिभिः, धूर्त इति

रसोजलादिः विमले मणिभाजनादावन्तर्वर्त्यपि प्रतिबिम्बितो लक्ष्यते । करवेणिका परस्परानुबन्धस्थितकरद्वयांगुलिविन्यासः । विलुप्यमानसौभाग्यादिना ताः सुभगा इत्यर्थः । कोणो वीणादिवादनभाण्डम् । प्रियामिति । वीणायाः श्रियाश्च विशेषणम् । निःस्नेह इत्यादौ । एतैरेकमप्यनकधा गृह्यमाणमिति सम्बन्धः । षण्ढः

करने के लिए अभिलाषाओं के कुतूहल से अकारण हँसी हँस कर जो बहुत से चन्द्रों को उदित कर रही थीं ऐसी, अपने अङ्गों को कभी-कभी तोड़-मरोड़ करते हुए हाथों की उँगलियाँ एक दूसरे में फँसा कर जो ऊपर उठा रही थीं तथा उँगलियाँ चटकाकर नखों की किरणों को कुण्डलाकार बनाती हुई जो मानो कामदेव की निकम्मी धनुहियों को क्रोध से तोड़ रही थीं ऐसी गणिकाओं द्वारा जिनका सौभाग्य सब प्रकार से विलुप्त होता जा रहा था ऐसे, (महाराज के) स्पर्श के कारण पसीने से युक्त हुए तथा काँपते हुए अपने कर पल्लव के कारण जो (महाराज के) चरण कमलों पर गिर जाती थी ऐसी चरण दबाने वाली को हँसकर लीला से सिर पर वीणा दण्ड से जो ताडित कर रहे थे ऐसे, निरन्तर अपने हाथ में वीणा दण्ड को लिए रहने के कारण अपनी प्रिय वीणा के समान ही मानो लक्ष्मी को भी जो शिक्षा दे रहे थे ऐसे, धन समझते कि ये मेरे प्रति स्नेह रहित हैं, दोष समझते कि ये मेरे आश्रय-योग्य नहीं हैं, इन्द्रियाँ समझती कि इनके समीप जाना कठिन है, व्यसन समझते कि ये नीरस हैं, अकीर्ति समझती कि ये डरपोक हैं, काम समझता कि इनकी चित्त वृत्ति दुर्ग्रह है, सरस्वती समझती कि ये स्त्रैण हैं, पर स्त्रियाँ समझती कि ये नपुंसक हैं, यती लोग समझते कि ये पहुँचे हुए तपस्वी हैं, वेश्याएँ समझती कि ये धूर्त हैं, मित्र लोग समझते

वेश्याभिः, नेय इति सुहृद्भिः कर्मकर इति विप्रैः, सुसहाय इति शत्रुयोधैः, एकमप्यनेकधा गृह्यमाणम्, शन्तनोर्महावाहिनीपतिम्, भीष्मािज्जतकाशितमम्, द्रोणाच्चापलालसम्, गुरुपुत्रादमोघमार्गणम्,

---

प्रजननाक्षमः। काष्ठा पराधारा, तत्प्रधानो मुनिः काष्ठामुनिरतिशयवांस्तपस्वी। नेयः परवशः। शन्तनुर्नाम राजा भीष्मस्य पिता, वाहिन्या गङ्गायाः पतिः, अयं तु तस्मादपि महतीनां वाहिनीनां सेनानां पतिः शन्तनुरिति। 'पञ्चमी विभक्ते' इति पञ्चमी। भीष्मो जितकाशी जितेन्द्रियः। यतस्त्वयि त्वत्पुत्रे वा सत्यस्मद्दौहित्रस्य कुतो राज्यमिति। यदा हि दशाधिपतिना स्वसुता मत्स्योदरोद्गता मत्स्यावती नामास्मै पित्रर्थमर्थयते न दत्ता, तदैतेन प्रतिज्ञातम्—'नाहं राज्यं विवाहं वा करिस्यामि' इति। अत एव ब्रह्मचार्येवाभूत्। राजा च ततोऽपि जितकाशितमः जितकाशी वा। जितेन जयेन काशते शोभते यः। तथा हि भीष्मेण रामो जितः। सर्वराजसहितं काशिराजं च जित्वा भ्रात्रर्थमम्बादिकन्यात्रयमनैषीत्। राजा तु ततोऽपि जितकाशितमः। द्रोणश्चापाचार्यः। स हि चापे धनुषि लालसः। चापलं न करोतीत्यर्थः। यद्वा चः समुच्चये। अपगता लालसा यस्य सोऽपलालसः। निरभिलाष इत्यर्थः। गुरुपुत्रोऽश्वत्थामा तस्य सफलशरता। तथा शस्त्रोपसंहारेऽक्षमतया याचितोऽपि कस्यचिदेकस्य मारणमन्तरेण न तदुपसंजहार। तत उत्तराया उदरस्थे परीक्षिति वाटिते तस्मिंस्तदुपसंहृतवान्। अन्यत्र—अमोघा मार्गणा

कि ये नेय अर्थात् दूसरों की बुद्धि के अनुसार चलने वाले हैं, ब्राह्मण समझते कि ये हमारे भृत्य हैं, शत्रु समझते कि इनके बहुत से सहायक हैं,—इस प्रकार एक ही प्रकार के होते हुए भी जो अनेक प्रकार से (लोगों द्वारा) गृहीत किये (अर्थात् समझे) जाते थे ऐसे, जो शन्तनु की अपेक्षा महावाहिनी पति थे (अर्थात् शन्तनु केवल वाहिनी पति अर्थात् गङ्गा के पति थे किन्तु वे महावाहिनी अर्थात् महासैन्य के स्वामी थे) ऐसे, जो भीष्म की अपेक्षा अधिक जितेन्द्रिय थे ऐसे, जो द्रोणाचार्य की अपेक्षा अधिक चापलालस (चाप अर्थात् धनुष के प्रति लालसा युक्त या चापल चपलता से शून्य अर्थात् निरभिलाष) थे ऐसे, गुरुपुत्र (द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा) की अपेक्षा अमोघ अर्थात् अव्यर्थ या विनष्ट न

कर्णान्मित्रप्रियम्, युधिष्ठिराद्बहुक्षमम्, भीमादनेकनागायुतबलम्, धनञ्जयान्महाभारतरणयोग्यम्, कारणमिव कृतयुगस्य, बीजमिव विबुधसर्गस्य, उत्पत्तिद्वीपमिव दर्पस्य, एकागारमिव करुणायाः, प्रातिवेशिकमिव पुरुषोत्तमस्य, खनिपर्वतमिव पराक्रमस्य, सर्वविद्यासंगीतगृहमिव सरस्वत्याः द्वितीयामृतमन्थनदिवसमिव लक्ष्मीसमुत्थानस्य, बलदर्शमिव वैदग्ध्यस्य, एकस्नानमिव स्थितीनाम्, सर्वस्वकथनमिव कान्तेः, अपवर्गमिव रूपपरमाणुसर्गस्य, सकलदुश्चरितप्रायश्चित्तमिव राज्यस्य, सर्वबलसन्दोहावस्कन्दमिव कन्दर्पस्य, उपायमिव पुरन्दरदर्शनस्य, आवर्तनमिव धर्मस्य, कन्यान्तःपुरमिव कलानाम्, परमप्रमाणमिव सौभाग्यस्य, राजसर्गसमाप्त्यवभृथस्नानदिवस-

याचका यस्येति । मित्रः सूर्यः सुहृच्च मित्रम् । क्षमा क्षान्तिः सहनं । अनेकानि बहूनि, अनन्यसदृशानि च । एकशब्दस्य च साधारणार्थं नञ् । बलं सामर्थ्यम्, सैन्यं च धनञ्जयोऽर्जुनः । महाभारतरणं कुरूणां यो रणः संग्रामः । अन्यत्र—महतो भारस्य कार्यधुरायास्तरणं निर्वाहणम् । प्रातिवेशिकं प्रतिबिम्बम् । 'खनिराकरः । अपवर्गः समाप्तिः । सन्दोहः समूहः । अवभृथो यज्ञान्तः । गम्भीरं प्रसन्नं

होने वाले बाण चलाने में जो अधिक निपुण थे ऐसे, जो कर्ण की अपेक्षा अधिक मित्र-प्रिय थे ऐसे, जो युधिष्ठिर की अपेक्षा अधिक क्षमावान् अथवा विस्तृत पृथ्वी के स्वामी थे ऐसे, जो भीम की अपेक्षा अधिक हाथियों के बल से युक्त थे ऐसे महाभारत युद्ध के लिए अर्जुन की अपेक्षा अधिक योग्य थे ऐसे, मानों सतयुग के कारण हों, मानो विद्वानों की सृष्टि के बीज हों, मानो दर्प के उत्पन्न होने के द्वीप हों, मानो करुणा के एकागार हों, मानो पुरुषोत्तम (भगवान् विष्णु) के पड़ोसी हों, मानो पराक्रम की खान के पर्वत हों, मानो सरस्वती की सम्पूर्ण विद्याओं वाले संगीत भवन हों, मानो लक्ष्मी के प्राकट्य के दूसरे अमृत मन्थन-दिवस हों, मानो विदग्धता के बल के दर्शन हों, मानो मर्यादाओं के एक ही स्थान हों, मानो कान्ति के सर्वस्व कथन हों, मानो रूप परमाणुओं की सृष्टि के मोक्ष हों, मानो राज्य के सम्पूर्ण पापों के प्रायश्चित्त हों, मानो कामदेव के सम्पूर्ण बलों के सहित आक्रमण हों, मानों इन्द्र के दर्शन के उपाय भूत हों, मानो धर्म के आवर्त्तन हों, मानो कलाओं के कुमारी अन्तःपुर हों, मानो सौभाग्य के परम

मिव सर्वप्रजापतीनाम्, गम्भीरं च, प्रसन्नं च, त्रासजननं च, रमणीयं च, कौतुकजननं च, पुण्यं च चक्रवर्त्तिनं हर्षमद्राक्षीत्।

दृष्ट्वा चानुगृहीत इव निगृहीत इव साभिलाष इव तृप्त रोमाञ्चमुचा मुखेन मुञ्चन्नानन्दवाष्पवारिबिन्दून्दूरादेव विस्मयस्मेरः समचिन्तयत्—'सोऽयं सुजन्मा, सुगृहीतनामा, तेजसां राशिः, चतुरुदधिकेदारकुटुम्बी, भोक्ता ब्रह्मस्तम्भफलस्य, सकलादिराजचरितजयज्येष्ठमल्लो देवः परमेश्वरो हर्षः। एतेन च खलु राजन्वती पृथ्वी। नास्य-

---

चेति परस्परापेक्षं बोद्धव्यम्। तथा च सति गम्भीरत्वे प्रसन्नत्वम् ऋजुत्वं चेन्न स्यात्तत जिह्मप्रकृतित्वं प्रसज्येत। एवं त्रासत्यादौ बोद्धव्यम्। तथा च कालिदासः 'भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्। अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥' इति दिलीपं प्रति वर्णितवान्। कौतुकजननपुण्यत्वादपि संभाव्यते। अत आह—पुण्यमिति। गम्भीरं च प्रसन्नं चेत्यादौ सर्वत्र विरोध उद्भाव्यः। गम्भीरं सतमिस्रं प्रसन्नं निर्मलं न भवतीति।

अनुगृहीत इवेत्यादि। एवंविधमहीपतिप्रसादवशात्। निगृहीत इवेति। संकोचवशात्। साभिलाष इवेति। तस्य दर्शनीयत्वात्। तृप्त इवेति। तथैव तस्य कृतार्थत्वात्। विरोधो ह्यत्र सुबोधः। केदारं क्षेत्रम्। ब्रह्मस्तम्भं जगत्। फलं रत्नादिः। यच्च स्तम्भस्य फलं धान्यादिः तद्भोक्ता कर्षको भवति, राजन्वती प्रशस्तराजयुता।

प्रमाण हों, समस्त प्रजापतियों ने जिनका निर्माण करके मानो राजाओं की सृष्टि का यज्ञ समाप्त कर अन्त में यज्ञान्त स्नान कर लिया हो ऐसे, गम्भीर, प्रसन्न, भय उत्पन्न करने वाले, रमणीय, कुतूहल उत्पन्न करने वाले, पवित्र एवं चक्रवर्ती (महाराज) हर्ष को देखा।

(हर्ष को) देखकर अनुगृहीत, निगृहीत, साभिलाष एवं तृप्त की भाँति अपने रोमाञ्चित हुए मुख से आनन्दाश्रुओं की बूंदे टपकाता हुआ बाण दूर से ही आश्चर्योत्फुल्ल होकर सोचने लगा—"ये ही सुष्ठुजन्म वाले, सुगृहीतनामा, तेजों के समूह, चार समुद्रों से घिरे पृथ्वी-क्षेत्र के स्वामी, संसार के रत्नादि फलों को भोगने वाले एवं सम्पूर्ण पूर्वराजाओं के चरितों को जीतने वाले ज्येष्ठमल्लदेव परमेश्वर (महाराज) हर्ष हैं। इनसे पृथ्वी राजन्वती (अर्थात् प्रशस्त राजा से

हरेरिव वृषविरोधीनि बालचरितानि, न पशुपतेरिव दक्षजनोद्वेगकारीण्यैश्वर्यविलासतानि, न शतक्रतोरिव गोत्रविनाशपिशुनाः प्रवादाः, न यमस्येवातिवल्लभानि दण्डग्रहणानि, न वरुणस्येव निस्त्रिंशग्राहसहस्ररक्षिता रत्नालयाः, न धनदस्येव निष्फलाः सन्निधिलाभाः, न जिनस्ये-

---

वृषो धर्मः, अरिष्टासुरो दान्तरूपश्च बालेति। बाला हि विवेकहीनत्वाद्धर्मविरुद्धमाचरन्ति। अस्य तु तस्यामपि दशायां धर्मविरोधाभावः। दक्षः कुशलः प्रजापतिभेदश्च। महेश्वरपक्ष ऐश्वर्यशब्दो मुख्यवृत्तिः, इतरत्र गौणः। गोत्रं कुलम्, कुलपर्वताश्च गोत्राः। अतिवल्लभानीति। अतिशब्देन युक्तदण्डत्वमाह। दण्डः करः, यमायुधं च। निस्त्रिंशग्राहाः खड्गहस्ताः, अन्यत्र, जलचरभेदाश्च। रत्नालया भाण्डागाराणि, समुद्राश्च। निष्फला ऐश्वर्यादिफलप्राप्तिशून्याः, दानादिविनाकृताश्च। सन्निधिः सन्निधानम्। एतस्य दर्शनं सर्वस्य फलदायि भवतीत्यर्थः। अन्यत्र—सन्निधयः शोभनानि निधनान्यस्य। दर्शनानि जिनस्येव नार्थवादशून्यानि। अर्थो धनं तस्य वादः, अनेनेदं लब्धमिति, तेन शून्यानि। सर्वे तद्दर्शिनोऽर्थेन युज्यते।

युक्त) है। विष्णु के समान इनके बालचरित वृष (अर्थात् धर्म, विष्णु पक्ष में अरिष्टासुर) के विरोधी नहीं हैं, पशुपति अर्थात् शिव के समान इनके ऐसे ऐश्वर्य के विलास नहीं हैं जिनसे दक्षजनों (अर्थात् चतुर व्यक्तियों, शिवपक्ष में दक्ष प्रजापति) के मन में जरा भी उद्वेग हो, इन्द्र के समान इनके विषय में ऐसे प्रवाद नहीं है जो गोत्रों (अर्थात् कुलों, इन्द्रपक्ष में कुलपर्वतों) का विनाश कर डालते हों, यमराज के समान दण्डग्रहण (अर्थात् कर लेना, यम पक्ष में दण्ड नामक आयुध का ग्रहण) इन्हें अतिप्रिय नहीं है, वरुण के समान ये अपने रत्नालयों (रत्न के खजानों, वरुण पक्ष में समुद्रों) की रक्षा हजारों की संख्या में तैनात निस्त्रिंशग्राह (खड्गधारी सैनिक, वरुणपक्ष में जल धारी खूँखार जीव) द्वारा नहीं करते, (जिस प्रकार कुबेर का सन्निधान प्राप्त करना ऐश्वर्यादि फलों से रहित होने के कारण व्यर्थ है, उसी प्रकार) इनका सन्निधान प्राप्त करना व्यर्थ नहीं है, जैसे बुद्ध के दर्शन (महायान के योगाचार और माध्यमिक दर्शन) सर्वथा अर्थवाद (प्राशस्त्यमूलक वाक्य) से शून्य है उसी प्रकार इनके दर्शन धन की प्राप्ति के वचनों से शून्य नहीं (अर्थात् उनके दर्शन होने पर धन प्राप्ति

वार्थवादशून्यानि दर्शनानि, न चन्द्रमस इव बहुलदोषोपहता श्रियः। चित्रमिदमत्यमरं राजत्वम्। अपि चास्य त्यागस्यार्थिनः, प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः, सत्त्वस्य साहसस्थानानि, उत्साहस्य व्यापाराः कीर्तेर्दिङ्मुखानि, अनुरागस्य लोकहृदयानि, गुणगणस्य संख्या, कौशलस्य कला न पर्याप्तो विषयः। अस्मिश्च राजनि यतीनां योगपट्टकाः, पुस्तकर्मणां पार्थिवविग्रहाः, षट्पदानां दानग्रहणकलहाः, वृत्तानां

जिनस्य पुनरर्थवादशून्यानि महायानयोगाचारमाध्यमिकदर्शनानि। बहुलाः प्रभूता दोषा रागाद्याः, बहुलदोषाश्च कृष्णपक्षरात्रयः। श्रियः समृद्धयः, शोभाश्च। पर्याप्तः परिपूर्णः। योगपट्टका यतीनामुपकरणं पर्यङ्कबन्धनार्थम्। ये यतीनां चतुर्थाश्रमिणामेव, न पुनर्योगेन युक्ताः पट्टकाः कूटप्रधानानि लेख्यपत्राणि केषांचित्। एवमन्यत्रापि। पुस्तकर्म लेप्यम्। पार्थिवविग्रहा मृन्मयशरीराणि, राजभिः सह वैराणि च। दानग्रहणं मदजलं दानम्, ऋणव्यवहारश्च। वृत्तानां गुरुलघुनियमा-

---

का वचन अवश्य ही मिलता हैं।), जिस प्रकार चन्द्रमा बहुलदोष (कृष्णपक्ष की रातों) में श्रीहत हो जाता है उसी प्रकार रागादि बहुत दोषों से इनकी लक्ष्मी या शोभा कभी विनष्ट नहीं होती। देवताओं से भी बढ़ा-चढ़ा इनका राजापन आश्चर्यजनक है। इनके त्याग के आगे याचक लोग, इनकी प्रज्ञा के आगे शस्त्र, इनके कवित्व के आगे वाणी, इनके बल के आगे साहस के स्थान, इनके उत्साह के आगे व्यापार, इनकी कीर्त्ति से आगे दिशाएँ, इनके अनुराग के आगे जन-मानस, इनके गुणों के आगे संख्या तथा इनकी कुशलता के आगे कला अपर्याप्त विषय हैं अर्थात् ये सभी पूरे नहीं पड़ते। इस राजा के होते हुए (अर्थात् इनके शासन में) सन्यासी लोग ही (पर्यङ्कबन्ध आदि आसन में) योगपट्ट नामक वस्त्र विशेष धारण करते हैं (न कि इनके राज्य में जाली बनाये हुए ताम्रपत्र हैं), मूर्त्तियाँ ही मिट्टी की बनाई जाती हैं (न कि पार्थिव विग्रह अर्थात् राजा के साथ लड़ाई-झगड़े होते हैं), भौंरे ही (हाथियों के) दानजल को लेने के समय झगड़ते हैं (न कि याचक लोग दान लेने के समय आपस में झगड़ा करते हैं), वृत्तों अर्थात् छन्दों के चरणों में ही सम-विषम या भाग-विराम

पादच्छेदाः, अष्टापदानां चतुरङ्गकल्पना, पन्नगानां द्विजगुरुद्वेषाः, वाक्यविदामधिकरणविचाराः इति समुपसृत्य चोपवीती स्वस्तिशब्दमकरोत्। अथोत्तरे नातिदूरे राजधिष्ण्यस्य गजपरिचारको मधुरमपरवक्त्रमुच्चैरगायत्—

'करिकलभ विमुञ्च लोलतां चर विनयव्रतमानताननः।
मृगपतिनखकोटिभङ्गुरो गुरुरुपरि क्षमते न तेऽङ्कुशः॥

तमकानां, सभाश्च समविषमाणां पादच्छेदा भागाविरामाः, चरणकर्तनानि च। अष्टापदानां चतुरङ्गफलकानाम्। 'चत्वार्यङ्गानि सेनाया हस्त्यश्वरथपत्तयः' तेषां कल्पना रचना, चतुर्णामङ्गानां पाणिपादस्य च छेदः। द्विजगुरुर्गरुडोऽपि। वाक्यविदां मीमांसकानामधिकरणविश्रान्तिस्थानानि। राज्ञां च धर्मनिर्णयस्थानानि। अधिकबलो वा रणः संग्राम' इति केचित्। उपवीती दक्षिणावीती करः। उक्तं च—'उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः' इति।

गज परिचारक। अन्यगजपरिचारकस्य स्वजातिसमुचितं वस्तु राज्ञोः प्रकृतस्मारकं जातम्। तत्र करिणां स्वभावत एव रागित्वादस्यापि रागवित्वाद्

आदि छेद होते हैं (न कि किसी पाप-विशेष होने से पैर काट लिए जाते हैं अर्थात् पाप ही नहीं होता इसीलिए पैर काटने का अवसर ही नहीं आता है), शतरंज के खेल में ही सेना के हस्ती-अश्व-रथों तथा पैदल इन चारों अङ्गों की कल्पना की जाती है (न कि अपराधी के दोनों हाथ और दोनों पाँव काट लिये जाते हैं, तात्पर्य यह है कि इनके राज्य में कोई अपराधी ही नहीं है), सर्प ही द्विजगुरु (अर्थात् गरुड) से द्वेष रखते हैं (न कि प्रजाजन ब्राह्मण और गुरु से द्वेष करते हैं), मीमांसक लोग ही अधिकरणों अर्थात् बिभिन्न प्रकरणों में बिचार-विमर्श करते हैं (न कि धर्म निर्णय की जगह फौजदारी और दिवानी की अदालतें लगती हैं) इस प्रकार सोचते हुए बाण ने, (महाराज हर्ष के) समीप जाकर अपना दायाँ हाथ उठा कर "स्वस्ति" शब्द का उच्चारण किया।

उसी समय उत्तर दिशा की ओर राज-भवन के समीप ही किसी महावत ने मधुर अपवक्त्र को ऊँचे स्वर में गाया—

"अरे हाथी के बच्चे! तू अपनी चपलता को छोड़ तथा सिर नवा कर विनम्रता का व्रत ले। (अन्यथा) सिंह के नखाग्र के समान टेढ़ा और कठोर यह अङ्कुश तुझ पर क्षमा नहीं करेगा॥"

राजा तु तच्छ्रुत्वा दृष्ट्वा च तं गिरिगुहागतसिंहबृंहितगम्भीरेण स्वरेण पूरयन्निव नभोभागमपृच्छत्—'एष स बाणः ?' इति। 'यथाऽऽज्ञापयति देवः। सोऽयम्' इति विज्ञापितो दौवारिकेण 'न तावदेनमकृतप्रसादः पश्यामि' इति तिर्यङ्नीलधवलांशुकधारां तिरस्करिणीमिव भ्रमयन्नपाङ्गनीयमानतरलतारकस्यायामिनीं चक्षुषः प्रभां परिवृत्य प्रेष्ठस्य पृष्ठतो निषण्णस्य मालवराजसूनोरकथयत्—'महानयं भुजङ्गः' इति। तूष्णींभावेन त्वगमितनरेन्द्रवचसि तस्मिन्मूके च राजलोके मुहूर्तमिव तूष्णीं स्थित्वा बाणो व्यज्ञापयत्—'देव! अविज्ञाततत्त्व इव, अश्रद्दधान इव, नेय इव, अविदितलोकवृत्तान्त इव च कस्मादेवमाज्ञापयसि ?

भुजङ्गता स्मृतिः सञ्जातेति। भंगुरो वक्रः। मृगपतिनखकोटिभङ्गुर इति। स्पष्टा व्याख्या। गुरुर्भारः, शासिता च। उपरि पृष्ठदेशे प्रभुभावे च अंकुश इवांकुश इत्यपि। अत आह—तच्छ्रुत्वेति। बृंहितं गर्जितम्। अंशव एवांशुकः। अंशुकं च

राजा (हर्ष) उसे सुन कर तथा बाण की ओर देख कर पहाड़ की गुफा में बैठ कर दहाड़ते हुए सिंह की आवाज के समान गम्भीर स्वर से मानो आकाश भाग को भरते हुए पूछा—"यही वह बाण है ?" इसके बाद "महाराज ठीक ही कह रहे हैं। ये वही हैं" इस प्रकार दौवारिक द्वारा निवेदन करने पर "जब तक यह मेरे प्रसाद (प्रसन्नता या अनुग्रह) का पात्र नहीं होगा तब तक मैं इसे नहीं देखूंगा।" (ऐसा कह कर) टेढ़ी तथा नीले-उजले वस्त्र वाली तिरस्कारिणी (जवनिका) के समान अपाङ्ग तक पहुँचाये गये तरल तारक वाले नेत्र की फैलने वाली प्रभा को घुमा कर पीठ की ओर बैठे हुए परमप्रिय मालवराज के पुत्र से (हर्ष ने) कहा—"यह बहुत बड़ा भुजङ्ग (गुण्डा या लम्पट) है।" सम्राट हर्ष की बातें समझ में न आने के कारण वह (मालवराज पुत्र) चुप ही रहा तथा राजाओं का समूह भी यह (यह सुनकर) जब गुमसुम ही बैठा रहा तो थोड़ी देर तक चुप्पी साधने के बाद बाण ने (हर्ष से) निवेदन किया—"हे देव! वास्तविकता को बिना जाने हुए के समान, विश्वास-रहित के समान, दूसरों की बुद्धि पर निर्भर रहने वाले के समान तथा लोक

स्वैरिणो विचित्राश्च लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च। महद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम्। नार्हसि मामन्यथा संभावयितुमविशिष्टमिव। ब्राह्मणोऽस्मि जातः सामपायिनां वंशे वात्स्यायनानाम्। यथाकालमुपनयनादयाः कृताः संस्काराः। सम्यक्पठितः साङ्गो वेदः। श्रुतानि च यथाशक्तिः शास्त्राणि। दारपरिग्रहादभ्यगारिकोऽस्मि। का मे भुजङ्गता लोकद्वयाविरोधिभिस्तु चापलैः शैशवशून्यमासीत्। अत्रानपलापोऽस्मि। अनेनैव च गृहीतविप्रतीसारमिव मे हृदयम्। इदानीं तु सुगत

वक्त्रम्। तिरस्कारिणी जवनिका। प्रेष्ठस्यातिप्रियस्य। नेयः परवशः। स्वैरिणः स्वतन्त्राः। सोमपायिनां सोमपानाम्। 'शिक्षा कल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्तं छन्दोविचितिः' इति षडङ्गानि वेदस्य। अभ्यागारिको गृहस्थः, सम्यग्वृत्तिस्थितो वा। का मे भुजङ्गतेति। का मे भुजंगता शृङ्गारित्वम्। कामे मदने भुजंगता ज्ञेया, न मादृशेषु। नहि मे काचिद्भुजं बाहुं गता प्राप्तेत्यर्थः। लोकद्वयेत्यादिना त्रिवर्गस्यानुपघातं दर्शयति। शास्त्रविरोधप्रसङ्गात्। 'शतायुर्वै पुरुषः' कालमन्योन्यानुबद्धं परस्परस्यानुपघातेन त्रिवर्गं सेवेत इत्यत एवाह—शैशवमिति। अशून्यमिति। अनेन तदेकासक्तत्वं परिहरति। अनपलापो निरपह्नवः। विप्रतीसारः

वृत्तान्त से अनभिज्ञ होने के समान आप ऐसा क्यों कहते हैं? लोगों के स्वभाव एवं अफवाहें मनमानी और विचित्र हुआ करती हैं। महान् लोगों को यथार्थदर्शी (अर्थात् वास्तविकता को देखने वाला) होना चाहिए। मुझे साधारण सा समझ कर आपको अनाप-शनाप कल्पना नहीं करनी चाहिए। सोमपान करने वाले वात्स्यायन ब्राह्मणों के कुल में मेरा जन्म हुआ है। मेरे उपनयन आदि संस्कार समय पर सम्पादित किये गये हैं। मैंने अङ्गों (शिक्षाकल्पादि षड्वेदाङ्गों) के साथ वेदों का सम्यक् प्रकार से अध्ययन किया है। अपने सामर्थ्य के अनुसार शास्त्रों का भी श्रवण किया है। विवाह करने के कारण नियमित गृहस्थ हूँ। तो मुझमें क्या भुजङ्गता है? दोनों लोकों (इहलोक एवं परलोक) से विरोध न रखने वाली चञ्चलताओं से बचपन सूना नहीं था। इस विषय में मैं अपलाप नहीं करता। इसी लिए मेरा हृदय (सम्प्रति)

इव शान्तमनसि मनाविव कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थानां समवर्तिनीव च साक्षाद्दण्डभृति देवे शासति सप्ताम्बुराशिरशनाशेषद्वीपमालिनीं महीं क इव विशङ्कः सर्वव्यसनबन्धोरविनयस्य मनसाप्यभिनय कल्पयिष्यति। आसतां च तावन्मानुष्यकोपेताः। त्वत्प्रभावादलयोऽपि भीता इव मधु पिबन्ति। रथाङ्गनामानोऽपि लज्जन्त इवाभ्यनुवृत्तिव्यसनैः प्रियाणाम्। कपयोऽपि चकिता इव चपलायन्ते। शरारवोऽपि सानुक्रोशा इव श्वापदगणाः पिशितानि भुञ्जते। सर्वथा कालेन मां ज्ञास्यति स्वामी स्वयमेव। अनपाचीनचित्तवृत्तिग्राहिण्यो हि भवन्ति प्रज्ञावतां प्रकृतयः' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्। भूपतिरपि 'एवमस्माभिः श्रुतम्' इत्यभिधाय तूष्णीमेवाभवत्। संभाषणासनदानादिना तु प्रसादेन नैनमन्वग्रहीत्। केवलममृत-

पश्चात्तापः। सुगतो बुद्धः। समवर्ती यमः। मनुष्यस्य भावो मानुष्यकम्। रथाङ्गनामानश्चक्रवाकाः चपलायन्ते चपलत्वमाचरन्ति। शरारवो हिंस्राः। श्वापदगणाः प्राणिसमूहाः। पिशितं मांसम्। अनपाचीनाऽमृष्टा। अविपरीतेत्यर्थः, निर्दोषा वा।

पश्चात्तापयुक्त है। (लेकिन) इस समय जब कि भगवान् बुद्ध के समान शान्त चित्त, मनु के समान वर्णाश्रम व्यवस्थाओं के कर्त्ता, यम के समान साक्षात् दण्ड ग्रहण करने वाले आप सातों समुद्रों की करधनी और समस्त द्वीपों को माला से सुशोभित पृथ्वी का शासन कर रहे हैं तो कौन ऐसा निडर है जो सब प्रकार के व्यसनों के बन्धुभूत अविनय का मन से भी अभिनय करे? मनुष्यों की बातें तो तब तक दूर ही रहे, आपके प्रभाव के कारण भौंरे भी मानो डरते-डरते मधुपान करते हैं, चक्रवाक् पक्षी भी अपनी पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्ति रूप व्यसन से मानों लज्जित होते हैं। बन्दर भी मानो सशङ्क होकर चपलता करते हैं, हिंसक पशु भी मानो दयायुक्त होकर मांस-भक्षण करते हैं। समय आने पर महाराज स्वयं मुझे जान जायेंगे (कि मैं किस प्रकार का व्यक्ति हूँ। प्रज्ञावान् व्यक्ति हूँ)। प्रज्ञावान् व्यक्तियों के स्वभाव अविपरीत चित्तवृत्ति को ग्रहण करने वाले (अर्थात् किसी बात में विपरीत हठ न करने वाले) होते हैं।" इतना कह कर बाण चुप हो गये। (परन्तु) परस्पर बातचीत, आसनदान आदि के प्रसाद से उसे (अर्थात बाण को) उन्होंने अनुगृहीत नहीं किया।

वृष्टिभिः स्नपयन्निव स्नेहगर्भेण दृष्टिपातमात्रेणान्तर्गतां प्रीतिमकथयत्। अस्ताभिलाषिणि च लम्बमाने सवितरि विसर्जितराजलोकोऽभ्यन्तरं प्राविशत्।

बाणोऽपि निर्गत्य धौतारकूटकोमलातपत्विषि निर्वाति वासरे, आस्ताचलकूटकिरीटे निचुलमञ्जरीभांसि तेजांसि मुञ्चति वियन्मुचि मरीचिमालिनि, अतिरोमन्थमन्थरकुरङ्गकुटुम्बकाध्यास्यमानम्रदिष्ठगोष्ठीनपृष्ठाम्बरण्यस्थलीषु, शोकाकुलकोककामिनीकूजितकरुणासु तरङ्गिणीतटीषु वासविटपोपविष्टवाचाटचटकचक्रवालेष्वालवालावर्जितसेकजलकुटेषु निष्कुटेषु, दिवसविहृतिप्रत्यागतं प्रस्नुतस्तनं स्तनन्धये धयति धेनुवर्गमुद्गतक्षीरं

बाणोऽपीत्यादौ। बाणोऽप्यस्मिन्सति निवासस्थानमगादिति सम्बन्धः। 'रीतिः स्त्रियामारकूटम्' इत्यमरः। निर्वाति शाम्यति। निचुलो वेतसवृक्षः। भुक्तादुद्गीर्णाहारचर्वणं रोमन्थः। म्रदिष्ठं मृदुतमम्। गोष्ठीपूर्वं गोष्ठीनम्। 'गोष्ठात्खञ्भूतपूर्वे'। उक्तं च—'गोष्ठं गोस्थानकं तत्तु गोष्ठीनं भूतपूर्वकम्' इति। कोकाश्चक्रवाकाः। तरङ्गिणी नदी। आलवालमावापः। कुटा घटाः। निष्कुटाः स्वगृहारामाः। स्तन-

केवल स्नेह से भरे अमृत की वर्षा करने वाले दृष्टिपात मात्र से मानो उसे नहलाते हुए उन्होंने अपने भीतर के प्रेम को प्रकट किया। अस्ताचल की अभिलाषा करने वाले सूर्य जब लटक गये तो राज समूह को विसर्जित कर (वे सम्राट हर्ष) अन्दर चले गये।

बाण भी (वहाँ से) निकल कर, धुले हुए पीतल के समान मन्द आतप वाले दिन के ढल जाने पर, अस्ताचल के मुकुट सूर्य के वेतसमंजरी के समान अपने तेजों को छोड़ते हुए आकाश से हट जाने पर, वन भूमियों के अत्यन्त कोमल स्थानों में झुण्ड बैठे हुए हरिणों के धीरे-धीरे पँगुरी करने पर, (प्रिय विरह के कारण) शोक विह्वल चक्रवाक-पत्नियों के करुणक्रन्दन से नदी-तटों के युक्त हो जाने पर, घर के पास वाले उपवनों में पेड़ों पर बैठे चटक नामक छोटे-छोटे पक्षियों के चहचहाने पर तथा उनके द्वारा आल-वालों (वृक्षों को सींचने के लिए उनकी जड़ों के चारों ओर बनाये गये थल्लों) में सींचने के काम में आने वाले घड़ों को औंधा कर देने पर, दिन भर चरने के बाद शाम को वापस लौटी दुधारु गायों के स्वयं उत्पन्न क्षीर वाले स्तन को उनके भूखे

क्षुधिततर्णकव्राते, क्रमेण चास्तधराधरधातुधुनीपूरप्लावित इव लोहिताय मानमहसि मज्जति सन्ध्यासिन्धुपानपात्रे पतङ्गे मण्डले, कमण्डलुजल-शुचिशयचरणेषु चैत्यप्रणतिपरेषु पाराशरिषु, यज्ञपात्रपवित्रपाणौ प्रकीर्ण-बर्हिष्युत्तेजसि जातवेदसि हवींषि वषट्कुर्वन्ति यायजूकजने, निद्राविद्राण-द्रोपणकुलकलिलकुलायेषु कापेयविकलकपिकुलेष्वारामतरुषु निर्जिगमि-षति जरत्तरुकोटरकुटीकुटुम्बिनि कौशिककुले, मुनिकरसहस्रप्रकीर्णसन्ध्या-वन्दनोदबिन्दुनिकर इव दन्तुरयति तारापथस्थलीं स्थवीयसि तारकानि-कुरम्बे अम्बराश्रयिणि शर्वरीशबरीशिखण्डे खण्डपरशुकण्ठकाले कव-

---

न्धयस्तर्णकश्च वत्सः। धुनी नदी। सिन्धुः समुद्रः। शयः करः। चैत्यमायतनम्। पाराशरिषु भिक्षुषु। हवींषि कुशाः। वषडिति दानक्रियासु मोचनमन्त्रः वषट् कुर्वंति। जुह्वतीत्यर्थः। यायजूकोऽत्यर्थं यजनशीलः। निद्राणोऽलसः। द्रोणः काकः। कलिलाः आकुलाः। 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्'। कापेयं चापलम्। कौशिका उलूकाः। स्थवीयसि स्थूलतरे। शिखण्डो जूटकः। खण्डपरशुः शिवः। करा एव

बछड़ों द्वारा चुलाने पर, क्रमानुसार अस्ताचल की गेरु आदि झरनों में डुबकी लगाने से लाल होकर सूर्य के सन्ध्या के समुद्ररूपी मदिरा पात्र में डूबने पर, कमडण्लु के जल से धोकर पवित्र किये गये हाथों एवं पाँवों वाले भिक्षुओं के चैत्यवन्दना में लग जाने पर, यज्ञ पात्रों से युक्त होने के कारण पवित्र हाथों वाले याज्ञिक लोगों के द्वारा कुशा बिछा कर प्रज्वलित अग्नि में बषट्कार द्वारा हवि के डाले जाने पर, उपवन के वृक्षों के नींद से अलसाये हुए कौवों के काँव-

कांव से युक्त घोंसलों वाले तथा चञ्चलता का परित्याग किये हुए बन्दरों से युक्त होने पर, पुराने झंखाड़ वृक्षों की खोड़र में निवास करने वाले उल्लुओं के बाहर निकलने की इच्छा करने पर, मानो सन्ध्यावन्दन के समय के हाथों द्वारा छिड़के गये हजारों जल-बिन्दु हों इस प्रकार झुग्गे के झुग्गे मोटे-मोटे तारों के आकाश की स्थली में छिटकने पर मानो रात्रि रूपी भीलनी के केशपाश का जूड़ा हो इस प्रकार तथा भगवान् शिव के कण्ठ के समान काले

लयति बाले ज्योतिः शेषं सान्ध्यमन्धकारावतारे, तिमिरतर्जननिर्गतासु दहनप्रविष्टदिनकरकरशाखास्विव स्फुरन्तीषु दीपलेखासु, अररसम्पुटसंक्रीडनकथितावृत्तिष्विव गोपुरेषु, शयनोपजोषजुषि जरतीकथितकथे शिशयिषमाणे शिशुजने, जरन्महिषमषीमलीमसतमसि जनितपुण्यजन प्रजागरे विजृम्भमाणे भीषणतमे तमीमुखे, मुखरितविततज्याधनुषि वर्षति शरनिकरमनवरतमशेषसंसारशेमुषीमुषि मकरध्वजे, रताकल्पारम्भशोभिनि शम्भलीगुभाषितभाजि भजति भूषां भुजिष्याजने, सैरन्ध्रीवध्यमानरशनाजालजल्पाकजघनासु जनीषु वशिकाविशिखाविहारिणीष्वनन्यजानुप्लवासु प्रचलितास्वभिसारिकासु, विरलीभवति वरटानां वेशन्त-

---

शाखास्तदाकारत्वादंगुलयश्च करशाखाः। अररः कपाटः। संक्रीडनं शब्दः। आवृत्तिः स्थगनम्। 'गोपुरं स्यात्पुरद्वारं द्वारमात्रेऽपि गोपुरम्'। उपजोषः सुखम्, तूष्णीभावो वा। जरती वृद्धाः। शिशयिषमाणे सुषुप्सति। 'यक्षाः स्युः पुण्यजनाः'। तमी रात्रिः। शेमुषी बुद्धिः। आकल्पो वेशः। शम्भली कुट्टनी। भुजिष्या दासी। सैरन्ध्री प्रसाधनोपचारज्ञा। जनी। वशिका शून्या। विशिखा रथ्या। अनन्यजः कामः। अनुप्लवः सहायः। 'कान्तार्थिनी तु या यति संकेतं साभि-

---

एवं सन्ध्या के बचे हुए तेज को निगलते हुए, आकाश का आश्रय लिये हुए सन्ध्याकालीन अन्धकार का अवतरण हो जाने पर, मानो अन्धकार के तर्जन के लिए निकली हुई अग्नि-प्रविष्ट सूर्य की उँगलियाँ हो इस प्रकार दीप लेखाओं के स्फुरित हो जाने पर, गोपर के दरवाजों के बन्द होने की गड़गड़ाहट के शान्त हो जाने पर बिछावन पर चुपचाप पड़े एवं वृद्धाओं द्वारा कही गई कहानियों को सुनते-सुनते (नींद आने के कारण) बच्चों के ऊँघने पर, बूढ़ी भैंस एवं स्याही के समान मलिन अन्धकार से युक्त रात्रि के अत्यन्त भयानक मुख के जँभाई लेने पर (अर्थात् रात्रि के प्रारम्भ होने पर) तथा पुण्यजनों (यक्षों) को जगा देने पर, सम्पूर्ण संसार की बुद्धि का अपहरण करने वाले कामदेव द्वारा धनुष की टंकार करने पर, सुनसान गलियों में काम की सहायता से अभिसारिकाओं के चलने पर (अर्थात अपने-अपने प्रियतम की ओर

शायिनीनां मञ्जुनि मञ्जीरशिञ्जितजडे जल्पिते, निद्राविद्राणद्राघीयसि द्रावयतीव च विरहिहृदयानि सारसरसिते, भाविवासरबीजाङ्कुनिकर इव च विकीर्यमाणे जगति प्रदीपप्रकरे निवासस्थानमगात्। अकरोच्च चेतसि—'अतिदक्षिणः खलु देवो हर्षः, यदेवमनेकबालचरित[1]चापलोचितकौलीनकोपितोऽपि मनसा स्निह्यत्येव मयि। यद्यहमक्षिगतः स्याम् न मे दर्शनेन प्रसादं कुर्यात्। इच्छति तु मां गुणवन्तम्। उपदिशन्ति हि विनयमनुरूपप्रतिपत्त्युपादनेन वाचा विनापि भर्तव्यानां स्वामिनः। अपि च धिङ्मां स्वदोषान्धमानसमनादरपीडितमेवमतिगुणवति राजन्यन्यथा चान्यथा चिन्तयन्तम्। सर्वथा तथा करोमि, यथा यथावस्थितं जानाति मामयं कालेन' इत्येवमवधार्य चापरेद्यु-

---

सारिका'। 'हंसस्य योषिद्वरटा'। वेशन्तः पल्वलम्। कासारोऽत्यल्पसरः। मञ्जीरं नूपुरम्। दक्षिणोऽनुकूलः कौलीनः जनापवादः। अक्षिगतो द्वेष्यः। विस्रम्भस्याश्वा-

---

अभिसरण करने पर), ताल-तलइयों में शयन करने वाली हंसियों की नूपुर के समान मधुर आवाज के मन्द पड़ने पर, नींद में अलसाये हुए सारस पक्षियों की मानो विरहियों के हृदय को पिघलाने वाली भारी आवाज के होने पर, आगामी दिवस (को पैदा करने) के लिए मानो संसार में बीजाङ्कुर बिखेर दिये गये हों इस प्रकार दीपकों के प्रज्वलित हो जाने पर, अपने (स्कन्धावार नामक) निवास-स्थान में लौट आया। उसने मन में सोचा—"महाराज हर्ष

निश्चय ही बड़े उदार हैं क्योंकि मेरे बचपन की चपलताओं से फैले हुए लोकापवाद को सुन कर क्रुद्ध होने पर भी हृदय में मेरे प्रति प्रेम ही रखते हैं। यदि मैं उनकी "आँखों पर चढ़ा हुआ" (कोपभाजन) होता तो वे दर्शन द्वारा मुझ पर कृपा नहीं करते। मुझे वे गुणवान् (के रूप में) देखना चाहते हैं। मालिक लोग अनुरूप विश्वास उत्पन्न करके बिना कुछ कहे भी आश्रितजनों को विनम्रता का उपदेश दे देते हैं। मुझे धिक्कार है जो अपने ही दोषों से अन्धा होकर तथा अनादर से खिन्न होकर ऐसे गुणवान् राजा के बारे में अण्ट-सण्ट सोचने लगा। अब मैं हर तरह से वैसा ही करूँगा जिससे समय पर वे मुझे ठीक-

निष्क्रम्य कटकात्सुहृदां बान्धवानां च भवनेषु तावदतिष्ठत्, यावदस्य स्वयमेव गृहीतस्वभावः पृथिवीपतिः प्रसादवानभूत्। अविशच्च पुनरपि नरपतिभवनम्। स्वल्पैरेव चाहोभिः परमप्रीतेन प्रसादजन्मनो मानस्य प्रेम्णो विस्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमानीयत नरेन्द्रेणेति।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृते हर्षचरिते राजदर्शनं नाम द्वितीय उच्छ्वासः।



सस्य। द्रविस्य धनस्य। नर्मणः परिहारस्य॥

इति श्रीशंकरविरचिते हर्षचरितसंकेते द्वितीय उच्छ्वासः समाप्तः।

ठीक पहचान लें।' ऐसा निश्चय करके दूसरे दिन स्कन्धावार से निकल कर मित्रों एवं सगे-सम्बधियों के घर में बाण ने तब तक निवास किया जब तक कि महाराज हर्ष उसके स्वभाव को जानकर उस पर प्रसन्न हो गये। (राजा के प्रसन्न हो जाने पर बाण ने) पुनः राजभवन में प्रवेश किया। थोड़े ही दिनों में महाराज उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने प्रसाद जनित सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन-सम्पत्ति, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठा पर उसे ले आये।

महाकवि बाणभट्ट विरचित हर्षचरित में राजदर्शन नामक
द्वितीय उच्छ्वास समाप्त हुआ।



तृतीय उच्छ्वासः

निजवर्षाहितस्नेहा बहुभक्तजनान्विताः ।
सुकाला इव जायन्ते प्रजापुण्येन भूभुजः ॥ १ ॥

साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम् ।
न कुतूहलि कस्य मनश्चरितं च महात्मनां श्रोतुम् ॥ २ ॥

अथ कदाचिद्विरलितबलाहके, चातकातङ्ककारिणि क्वणत्कादम्बे,

निजेति । निज आत्मीयः वर्षो लोकः,वृष्टिश्चः । वर्षं वर्षमपि निजं समुचित-कालप्राप्तम् । स्नेहः प्रीतिः, आर्द्रता च । भक्ताः अनुरक्ताः ओदनश्च । भक्तं भक्तरूपाणां भूभृतां सुकालानां च प्रजापुण्यं हेतुः । अनेन महानुभावपुण्यभूति-वर्णना सूचिता ॥ १ ॥

साधूनामित्यादिनापि भैरवाचार्योपकारकरणम्, स्वयं लक्ष्मीदर्शनम्, विहायसा गमनं भैरवाचार्यस्य, महात्मचरितश्रवणकुतूहलं च निजभ्रात्रादीनां सूचितम् ॥२॥

अथेत्यादौ । एवंविधे शरत्समयारम्भे बन्धून्द्रष्टुं बाणो ब्राह्मणाधिवासमगादिति संबन्धः । विरलिताः न पुनरेकान्तत उपगताः बलाहका मेघाः । चातकाः स्तोका-

---

जिस प्रकार प्रजा के पुण्य के कारण सुकाल में वर्षा होने से धरती के आर्द्र हो जाने पर बहुत अन्न होता है उसी प्रकार आत्मीयजनों के प्रति प्रेमभाव रखने वाले तथा अनेक भक्तों (प्रेमी सेवकों) से युक्त होने वाले राजा लोग प्रजा के पुण्य से ही सुकाल की भाँति उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

सज्जनों के उपकार के लिए लक्ष्मी को प्रत्यक्ष देखने के लिए, आकाशमार्ग से उड़कर चलने के लिए तथा महात्माओं के चरित सुनने के लिए किसका मन कुतूहलयुक्त नहीं हुआ करता ? (अर्थात् सबके मन में कुतूहल होता है ।) ॥ २ ॥

उसके बाद एक बार, (जिसमें) बादल छिट पुट हो गये हों, चातक पक्षियों को डराने वाले कृष्णहंस आवाज कर रहे हों, (पानी के सूख जाने

दर्दुरद्विषि, मयूरमदमुषि, हंसपथिकसार्थसर्वातिथौ, धौतासिनिभनभसि, भास्वरभास्वति, शुचिशशिनि, तरुणतारागणे, गलत्सुनासीरशरासने, सीदत्सौदामनीदाम्नि, दामोदरनिद्राद्रुहि, द्रुतवैदूर्यवर्णार्णसि घूर्णमानमिहिकालघुमेघमोघमघवति, निमीलन्नीपे, निष्कुसुमकुटजे, निर्मुकुलकन्दले, कोमलकमले, मधुस्यन्दीन्दीवरे कल्हाराह्लादिनि, शेफालिकाशीतलीकृतनिशे, यूथिकामोदिनि, मोदमानकुमुदावदातदशदिशि, सप्तच्छदधूलि-

ख्याः पक्षिणः। कादम्बाः कृष्णहंसाः। दर्दुरा मण्डूकाः। हंसा एव पथिकसार्थाः, तेषां निर्मलजलदानादिना स्यात्सर्वातिथित्वम्। शुचिर्निर्मलः। सुनासीर इन्द्रः। सौदामनी विद्युत्। दामोदरो हरिः। अस्य निद्रां दोग्धि यस्तस्मिन्। तदा किल हरिर्विबुध्यत इति वार्ता। अर्णो जलम्। घूर्णमाना भ्रमन्ती या मिहिका नीहारस्तद्वल्लघवस्तुच्छा ये मेघास्तैर्मोघो निष्फलो मघवानिन्द्रो यत्र तस्मिन्। वर्षाभावादिन्द्रस्य मोघत्वम। इन्द्रादेशेन हि मेघा वर्षन्ति। मेघवद् गर्जनमित्यन्ये। नीपाः कुटजाः। कन्दलाश्च वृक्षभेदाः। कल्हाराणि सौगन्धिकापरनामानि श्वेतोत्पलानि। जलकुसुमपत्रिकेत्यन्ये। शेफालिका पुष्पभेदः रात्रावेव विकसति। यूथिका

के कारण) मेढ़क विपत्ति में पड़ गये हों, मोरों का गर्व टूट गया हो, पथिक के रूप में हंस पक्षी सबके अतिथि बन गये हों, पानी चढाई गई तलवार के समान आकाश स्वच्छ हो गया हो, सूर्य चमक रहा हो, चन्द्रमण्डल निर्मल हो गया हो, तारे तरुण हों (अर्थात् संख्या में बढ़ गये हों; इन्द्र धनुष का उगना बिल्कुल समाप्त हो गया हो, बिजली की चमक व्यथित हो गई हो (अर्थात् बिजली बहुत कम चमकने लगी हो), भगवान् विष्णु की नींद टूट गई हो, पिघली हुई वैदूर्यमणि की भाँति जल निर्मल हो गया हो, चमकती हुई बर्फों के समान मेघों ने इन्द्र को व्यर्थ कर दिया हो, कदम्ब के वृक्ष झड़ने लगे हों, कुटज के पौधे पुष्परहित हो गये हों, कन्दल के वृक्ष कुड्मलरहित हो गये हों, कमल के फूल कोमल होने लगे हों (अर्थात् कमल खिलने लगे हों), नीलकमल मकरन्द की झड़ी लगाने लगी हो, उजले कमल आह्लादित होने लगे हों, शेफालिका के फूल (खिल-खिल कर) रात को ठण्ढी करने लगे हों, जूही की सुगन्ध फैलने लगी हो, कुमुदों के खिलने से दसो दिशाएँ उजली लगने लगी हों, सतवन के

धूसरितसमीरे, स्तबकितबन्धुरबन्धूकाबध्यमानाकाण्डसन्ध्ये, नीराजितवाजिनि, उद्दामदन्तिनि दर्पक्षीबौक्षके, क्षीयमाणपङ्कचक्रवाले, बालपुलिनपल्लवितसिन्धुरोधसि, परिणामश्यानश्यामाके, जनितप्रियङ्गुमञ्जरीरजसि, कठोरितत्रपुसत्वचि, कुसुमस्मेरशरे, शरत्समयारम्भे राज्ञः समीपाद्बाणो बन्धून्द्रष्टुं पुनरपि तं ब्राह्मणाधिवासमगात्।

समुपलब्धभूपालसम्मानातिशयपरितुष्टास्तस्य ज्ञातयः श्लाघमाना निर्ययुः। क्रमेण च कांश्चिदभिवादयमानः, कैश्चिदभिवाद्यमानः, कैश्चिच्छिरसि चुम्ब्यमानः, कांश्चिन्मूर्ध्नि समाजिघ्रन्, कैश्चादालिङ्ग्यमानः, कांश्चिदालिङ्गन्, अन्यैराशिषानुगृह्यमाणः, पराननुगृह्णन्, बहु-

---

हरिणिका। मोदमानानि विकसन्ति। सप्तच्छदाः सप्तपर्णाख्या वृक्षभेदाः। बन्धुरा हृद्या। बन्धूका बन्धुजीवाख्या वृक्षभेदाः। नीराजिताः कृतशान्तिविधानाः। क्षीबाणीवौक्षकाणि दान्तसमूहा यत्र तस्मिन्। चक्रवालं समूहः। बाल तत्क्षणस्रुतजलम्। सिन्धवो नद्यः। श्यामाको नीवारः। प्रियङ्गुर्व्रीहिभेदः। त्रपुसं लाडुकम्।

वृक्ष की धूल से हवा मैली हो गई हो, गुच्छेदार बन्धूक-पुष्प खिलकर असमय में सन्ध्या का दृश्य खड़ा करने लगे हों, (युद्ध में भेजने के लिए) घोडों के शान्ति विधान होने लगे हों, हाथी मदोन्मत्त होने लगे हों, साँढ़ दर्प से मतवाले हो गये हों, स्थान-स्थान पर कीचड़ सूखने लगे हों, कुछ-कुछ भींगी रेतों पर नदियों के तट बनने लगे हों, साँवा के धान पककर सूखने लगे हो, प्रियङ्गु (कंगुनी) की मञ्जरियों में पराग भरने लगा हो, त्रपुष नामक फल के छिलके कड़े हो गये हों तथा शर नामक तृणों में फूल खिल उठे हो ऐसे शरत्काल के प्रारम्भ होने पर राजा के पास से बाण अपने बन्धु-बान्धवों को देखने के लिए पुनः ब्राह्मणों के उसी (प्रीतिकूट नामक) निवास स्थान में चला आया।

राजा द्वारा अतिशय समादर प्राप्त कर लौटे हुए बाण के विषय में भाई-बन्धुओं ने सुना तो अत्यन्त सन्तुष्ट होकर प्रशंसा करते हुए वे निकल पड़े। बाण ने क्रम से कुछ लोगों का अभिवादन किया और कुछ लोगों द्वारा अभिवादित हुआ, कुछ लोगों ने उसका सिर चूमा तथा उसने भी कुछ कुछ लोगों के सिर सूँघे, कुछ लोग उससे गले मिले तथा वह स्वयं भी कुछ लोगों से गले मिला, दूसरों ने अपने आशीर्वादों से उसे अनुगृहीत किया तथा उसने भी कुछ लोगों

बन्धुमध्यवर्ती परं मुमुदे। सम्भ्रान्तपरिजनोपनीतं चासनमासीनेषु गुरुषु भेजे। भजमानश्चार्चादिसत्कारं नितरां ननन्द। प्रीयमाणेन च मनसा सर्वांस्तान्पर्यपृच्छत्—'कच्चिदेतावतो दिवसान्सुखिनो यूयम्? अप्रत्यूहा वा सम्यक्करणपरितोषितद्विजचक्रा क्रातवी क्रिया क्रियते? यथावदविकलमन्त्रभाञ्जि भुञ्जते वा हवींषि हुतभुजः? यथाकालमधीयते वा बटवः? प्रतिदिनमविच्छिन्नो वा वेदाभ्यासः? कच्चित्स एव चिरन्तनो यज्ञविद्याकर्मण्यभियोगः? तान्येव व्याकरणे परस्परस्पर्धानुबन्धावन्ध्यदिवसदर्शितादराणि व्याख्यानमण्डलानि, सैव वा पुरातनी परित्यक्तान्यकर्तव्या प्रमाणगोष्ठी, एव वा नन्दीकृतेतरशास्त्ररसो मीमांसायामतिरसः? कच्चित्त एवाभिनवसुभाषितसुधावर्षिणः काव्यालापा?' इति।

संभ्रान्तः सत्वरः। सत्कारं पूजाम्। कच्चिदितीष्टप्रश्ने। प्रत्यूहो विघ्नः। सम्यक्करणं यथाशास्त्रं संपादनम्। क्रतूनां यज्ञानामियं क्रातवी। अधीयत इति। वेदपाठो बालानामेवोचितः। प्रमाणं तर्कविद्या। मीमांसा ब्रह्मनिदर्शनम्। अत एवाह—अतिरस इति।

को आशीर्वाद देकर अनुगृहीत किया। इस प्रकार बहुत से भाई-बन्धुओं के बीच अपने को पाकर बाण अत्यन्त प्रसन्न हुआ। गुरुजनों के बैठ जाने पर परिजन द्वारा शीघ्र लाये गये आसन पर वह बैठा तथा पूजादि सत्कार को प्राप्त करता हुआ बहुत प्रसन्न हुआ। प्रसन्न मन से उसने सब लोगों से पूछा—"आप लोग इतने दिनों तक सुख पूर्वक तो रहे? सम्यक् सम्पादन द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने वाली याज्ञिक क्रिया निर्विघ्न तो होती रही? यज्ञाग्नि को नियमानुसार मन्त्र के साथ-साथ भोजनार्थ हविष तो मिल रहा है (अर्थात् हवन कर्म ठीक से से चल रहा है?) बटु लोग समयानुसार अध्ययन तो कर रहे हैं? वेदाभ्यास प्रतिदिन अविच्छिन्न रूप से तो चल रहा है? यज्ञ सम्बन्धी विद्या एवं कर्म के प्रति वही पुराना भाव तो है न? परस्पर एक दूसरे को जीतने की इच्छा से हमेशा दिन को सार्थक करके आदर प्रदर्शन पूर्वक व्याकरण शास्त्र के ही व्याख्यामण्डल तो जम रहे हैं न? अन्य कार्यों को छोड़-छाड़कर न्यायशास्त्र पर विचार करने वाली गोष्ठी तो वही पुरानी चल रही है न? मीमांसाशास्त्र में अन्य शास्त्रों के रस को फीका कर देने वाला वही अत्यधिक रस मिल रहा है न? नई-नई सदुक्तियों का अमृत बरसाने वाली काव्य-चर्चा तो हो रही है न?

अथ ते तमूचुः—'तात ! सन्तोषजुषां सततसन्निहितविद्याविनोदानां वैतानवह्निमात्रसहायानां कियन्मात्रं न कृत्यं सुखितया सकलभुवनभुजि-भुजङ्गराजदेहदीर्घे रक्षति क्षितिं क्षितिभुजे। सर्वथा सुखिन एव वयम्, विशेषेण तु त्वयि विमुक्तकौसीद्य परमेश्वरपाश्र्ववर्तिनि वेत्रासनमधितिष्ठति। सर्वे च यथाशक्ति यथाविभवं यथाकालं च संपाद्यन्ते विप्रजनोचिताः क्रियाकलापाः' इत्येवमादिभिरालापैः स्कन्धावारवार्ताभिश्च शैशुवातिक्रान्तक्रीडानुस्मरणैः पूर्वजकथाभिश्च विनोदितमनास्तैः सह सुचिरमतिष्ठत्। उत्थाय मध्यंदिने यथाक्रियमाणाः स्थितीरकरोत्। भक्तवन्तं च ते सर्वे ज्ञातयः पर्यवारयन्।

अत्रान्तरे दुकूलपट्टप्रभवे शिखण्डचपाङ्गपाण्डुनी पौण्ड्रे वाससी

तात इति पूजावचनम्। वैतानाः क्रातवाः। कौसीद्यमालस्यम्। निष्प्रयत्नतेत्यर्थः।

अत्रेत्यादौ। सुदृष्टिः पुस्तकवाचक आजगामेति संबन्धः। दुकूलेति एकस्माद्दु-

---

तब उन लोगों ने बाण से कहा—"हे तात ! जब सम्पूर्ण भुवन पर शासन करने वाला तथा शेषनाग के समान विशाल शरीर वाला राजा सुखपूर्वक पृथ्वी की रक्षा में लगा हुआ है तो थोड़े ही में संतोष कर लेने वाले, निरन्तर विद्याविनोद में संलग्न रहने वाले, एवं केवल यज्ञाग्नि को अपना सहायक मानने वाले हम ब्राह्मणों का कार्य ही कितना है ? हम लोग सब प्रकार से सुखी हैं, विशेष तो सुखी इसलिए हैं कि तुम आलस्य छोड़कर महाराजाधिराज हर्ष के समीप वे आसन पर बैठने लगे हो। अपनी शक्ति के अनुसार तथा अपने विभव के अनुसार हम लोगों द्वारा समयानुसार सभी ब्राह्मणोचित क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं" इस प्रकार की बातों से, स्कन्धावार की चर्चा से, बचपन में खेले गये खेलों की यादों से, पुराने लोगों की चर्चा से बाण का मनोविनोद हुआ तथा बहुत देर तक उन लोगों के साथ वह बैठा रहा। मध्याह्न के समय उठकर उसने सबकी भाँति स्नान ध्यानादि किया। भोजन कर लेने के बाद पुनः भाई-बन्धुओं ने उसे घेर लिया।

इसी बीच पुण्ड्र देश के बने, दुकूलपट्ट के थान में से तैयार किये गये तथा

वसानः स्नानावसानसमये वन्दितया तीर्थमृदा गोरोचनया च रचित-तिलकः, तैलामलकमसृणितमौलिः, अनुच्चचूडाचुम्बिना निबिडेन कुसुमापीडकेन समुद्भास्यमानः असकृद्दुपयुक्तताम्बूलविमलाधररागकान्तिः, एकशलाकाञ्जनजनितलोचनरुचिः, अचिरभुक्तः, विनीतमार्यं च वेषं दधानः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिराजगाम । नातिदूरवर्तिन्यां चासन्द्यां निषसाद । स्थित्वा च मुहूर्तमिव तत्कालापनीतसूत्रवेष्टनमपि नखकिरणैर्मृदुमृणालसूत्रैरिवावेष्टितं पुस्तकं पुरोनिहितशरशलाकायन्त्रके निधाय, पृष्ठतः सनीडसन्निविष्टाभ्यां मधुकरपारावताभ्यां वंशिकाभ्यां दत्ते स्थानके प्राभातिकप्रपाठकच्छेदचिह्नीकृतमन्तरं पत्रमुत्क्षिप्य,

कूलपट्टाद्दीर्घाच्छित्त्वा गृहीते, शिखण्ड्यपाङ्गपाण्डुत्वेन कार्कश्यमपि दर्शितम् । पौण्ड्रे पुण्ड्रदेशजे । गोरोचना रक्षाद्रव्यभेदः । मौलयः केशाः । अनुच्चेति । अदीर्घतया कुसुमापीडकस्य श्रोत्रियत्वं विनीतत्वं चास्य दर्शितम् । निबिडेन संहतपुष्पेण । रुचिरं नैर्मल्यम् । भोजनं भुक्तमचिरं भुक्तं यस्य सः । अनेन तस्यानवलिप्तत्वमुक्तम् । आसन्द्यां वेत्रपीठिकायाम् । स्थित्वेत्यादौ । पुराणं पपाठेति संबन्धः । सनीडे समीपे । प्रपाठको वाचकः, प्रपठनं वा । तस्य तत्र वा छेदः । इयन्मात्रं

मोर की आंखों के कोनों की भांति उजले वस्त्र युगल को पहना हुआ, स्नान के बाद पवित्र तीर्थ की मिट्टी तथा गोरोचना से (माथे पर) तिलक किया हुआ, आँवले का तेल लगाने के कारण चिकने मस्तक वाला, लटकती हुई चोटी से लगी हुई पुष्पमाला से सुशोभित होता हुआ, बार-बार पान खाने के कारण जिसके अधर राग की कान्ति निर्मल थी ऐसा, कुछ ही पहले भोजन किया हुआ तथा विनय पूर्ण एवं सौम्य वेश को धारण किया हुआ सुदृष्टि नामक (बाण का) पुस्तक वाचक वहाँ आ पहुँचा। समीप में पड़ी हुई बेंत की कुर्सी पर वह बैठ गया। क्षण भर ठहर कर तत्काल सूत की वेठन खोल देने पर भी उसके नखों की किरणों से मानो कोमल मृणाल के धागों में लिपटी हुई हो ऐसी पुस्तक को सामने रखे सरकण्डों से बने मोढ़े पर रखकर, पीछे की ओर नजदीक में बैठे हुए मधुकर एवं पारावत नामक वंशी बजाने वालों द्वारा अवकाश दिये जाने पर, प्रभात में पढ़े हुए विराम के बीच चिह्न के रूप में लगाये हुए पन्ने को निकाल

गृहीत्वा च कतिपयपत्रलघ्वीं कपाटिकाम्, क्षालयन्निव मषीमलिनान्यक्षराणि दन्तकान्तिभिः अर्चयन्निव सितकुसुममुक्तिग्रन्थम्, मुखसन्निहितसरस्वतीनूपुररवैरिव गमकैर्मधुरैराक्षिपन्मनांसि श्रोतॄणां गीत्या पवमानप्रोक्तं पुराणं पपाठ।

तस्मिंश्च तथा श्रुतिसुभगगीतिगर्भं पठति सुदृष्टौ नातिदूरवर्ती बन्दी सूचीबाणस्तारमधुरेण गीतिध्वनिमनुवर्तमानः स्वरेणेदमार्यायुगलमगायत्—

तदपि मुनिगीतमतिपृथु तदपि जगद्व्यापि पावनं तदपि।
हर्षचरितादभिन्नं प्रतिभाति हि मे पुराणमिदम् ॥ ३ ॥

वाचितं नान्यदिति तेन चिह्नीकृतं लक्ष्मीकृतम्। गमयन्ति रागस्वरूपमिति गमकाः। असाधारणानि स्वराणां निमीलनानि। यानि लक्ष्यज्ञेष्वान्तरमार्गं इति प्रसिद्धास्तैर्गमकैः स्वरयति विशेषैः। पवमानो वायुः।

बन्दी स्तुतिपाठकः। पृथुरादिनृपोऽपि। पवमानप्रोक्तं वायुप्रोक्तमपि। गीतपक्षे-वंशेन वेणुनानुगमो यदोस्तौ विवादिनौ स्वरौ विश्रुत्यन्तरौ गान्धारनिषादौ स्वरौ यत्र तत्। करणमपदः। सताम् आविद्धः स्वरसंनिवेशः, उच्चरणस्थानं वा। भारतं

कर कुछ पत्रों के साथ सुदृष्टि ने उठा लिया और मानो अपने दाँतों की किरणों से स्याही से मलिन हुए अक्षरों को धोता हुआ अथवा उजले फूलों से ग्रन्थ की पूजा करता हुआ मुख में सन्निहित मानो सरस्वती के नूपुर ही इस प्रकार के गमक नामक मधुर स्वरों से श्रोताओं के मन को रमाता हुआ वायु द्वारा प्रोक्त पुराण को गाकर वह पढ़ने लगा।

इस प्रकार मधुर गीत के साथ जब सुदृष्टि पाठ कर रहा था तभी समीपवर्ती सूची वाण नामक बन्दी ने ऊँचे मधुर स्वर से गीत की धुन का अनुकरण करते हुए ये दो आर्याछन्द गाये—

यह पुराण मुनि व्यास द्वारा गाया हुआ है, अत्यन्त बड़ा भी (पृथु नामक आदि राजा से भी बढ़ कर) है, संसार में व्याप्त अर्थात् प्रसिद्ध है और पावन (पवन प्रोक्त अथवा पवित्र) भी है, यह पुराण मुझे हर्ष चरित से भिन्न नहीं प्रतीत होता ॥ ३ ॥

वंशानुगमविवादि स्फुटकरणं भरतमार्गभजनगुरुः ।
श्रीकण्ठाविनिर्यातं गीतमिदं हर्षराज्यमिव ॥ ४ ॥

तच्छ्रुत्वा बाणस्य चत्वारः पितामहमुखपद्मा इव वेदाभ्यासपवित्रितमूर्तयः, उपाया इव सामप्रयोगललितमुखाः, गणपतिः, अधिपतिः, तारा-

भरतमुनिकृतो ग्रन्थः। श्रीकण्ठः श्रीयुक्तः कण्ठः वैस्वर्यादिदोषाभावात्। यद्वा-श्रीकण्ठो हर एव सर्वविद्यानां तत एवोत्पत्तेः। हर्षराज्यमपीदृशमेव। तथा च वंशं कुलमनुगच्छत्यनुसरति यत्तद्वंशानुगम्। तथाविद्यमाना विवादिनो यत्र तदविवादि सौराज्यम्। न केचित्तत्र विवदन्ते। करणमधिकरणं यत्र विद्यापरीक्षा धर्मनिर्णयो वा क्रियते, व्यापारो वा। भरतो नाम पूर्वं राजाभूत्। श्रीकण्ठो देश-भेदः। गीतमपि हर्षस्य प्रमोदस्य राज्यमिव। तस्य विजृम्भमाणत्वात्। तच्छ्रुत्वे-त्यादौ। बाणस्य चत्वारो भ्रातरः परस्परस्य मुखानि व्यलोकयन्निति संबन्धः। तच्छ्रुत्वेत्यादिनास्य प्रकरणस्य प्रकृतानुगुणत्वं दर्शितम्। तेषां च प्रस्ताववेदित्वम्। मुखपद्मा अपि चत्वारः सामवेदभेदाः। सान्त्वं च मुखमारम्भोऽपि। प्रसन्ना शुद्धा,

यह गीत हर्ष के राज्य के समान है। जिस प्रकार गीत वंशी वाद्य से अनुगत है उसी प्रकार राज्य भी वंश परम्परागत है। जिस प्रकार गीत में दो परस्पर विरोधी गान्धार और निषाद स्वर नहीं हैं उसी प्रकार राज्य भी विवाद करने वाले विरोधियों से सर्वथा रहित है। जिस प्रकार गीत के ताल एवं लय स्पष्ट हैं उसी प्रकार राज्य के करण अर्थात् विद्या-परीक्षा या धर्म-निर्णय के स्थान प्रसिद्ध हैं। जिस प्रकार संगीत शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि द्वारा प्रदर्शित मार्ग का आश्रय लेने के कारण गीत महनीय है उसी प्रकार भरत आदि प्राचीन राजाओं द्वारा निर्धारित नीतियों का अनुसरण करने के कारण राज्य भी महनीय है। गीत यदि मधुर कण्ठ से निकला है तो राज्य भी श्रीकण्ठ नामक स्थान से निकला है ॥ ४ ॥

उन दोनों आर्याओं को सुनकर बाण के चार चचेरे भाई-गणपति, अधिपति, तारापति एवं श्यामल, जो ब्रह्मा के चार मुखकमलों के समान वेदाभ्यास करने के कारण पवित्र शरीर वाले थे, जो सामदानादि चार उपायों के समान साम अर्थात् सन्त्वनापूर्ण वचन या सामवेद का प्रयोग करने से सुन्दर मुख वाले थे,

पतिः, श्यामल इति पितृव्यपुत्रा भ्रातरः, प्रसन्नवृत्तयः, गृहीतवाक्याः, कृतगुरुपदन्यासाः, न्यायवादिनः सुकृतसंग्रहाभ्यासगुरवो लब्धसाधुशब्दा लोक इव व्याकरणेऽपि सकलपुराणराजर्षिचरिताभिज्ञाः, महाभारतभावितात्मानः, विदितसकलेतिहासाः, महाविद्वांसः, महाकवयः, महापुरुषवृत्तान्तकुतूहलिनः सुभाषितश्रवणरसरसायनाः वितृष्णाः, वयसि

सुबोद्ध च। वृत्तिर्वर्तनम्, सूत्रविवरणं च। गृहीतमादृतम्, ज्ञातार्थं च। वाक्यं विवरणम्, वार्तिकं च यत्करणात्कात्यायनो वार्तिककार उच्यते। कृतो गुरूणां संबन्धिनि पदे स्थाने न्यासः स्थितिर्येषां ते। सर्वेणोपदेष्टपदे स्थापितास्त इत्यर्थः। यद्वा—कृतो गुरुणि पदे न्यासो यैः। महति पदे स्थिता इत्यर्थः। अन्यत्र—कृतोऽभ्यस्तो गुरुपदे दुर्बोधशब्दे न्यासो वृत्तिविवरणं यैः। न्यासो युक्तम्, उपपत्त्यनुपपत्तिविचारश्च। सुकृत पुण्यम्, सुष्ठु विहितं च। संग्रहः संचयः व्याकरणे व्याडिकृतो ग्रन्थश्च। गुरवो महान्तः, उपाध्यायाश्च। साधुशब्दः साधुवादः साधवोऽमी इत्येवंरूपो वा। साधवः संस्कृताः, शब्दाश्च। पाण्डित्यप्रकटनेनानेन द्रष्टुमिष्टस्य वस्तुन उत्कृष्टतोच्यते। सकलेत्यादिविशेषणत्रयेण द्विजराजादिवृत्तान्तेऽभिज्ञतोच्यते। महापुरुषेत्यादि। हर्षचरिते शुश्रूषाया हेतुः। सुभाषितेत्यादि।

लोक के समान व्याकरण में भी जिनकी वृत्ति या जीविका शुद्ध थी अथवा जो सूत्र-विवरण में सुबोध थे, जो वाक्य अर्थात् वचन का आदर करते थे जो वाक्य अर्थात् वार्तिकों का अर्थ ज्ञान रखते थे, जो गुरु पद अर्थात् श्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित थे अथवा जिन्होंने गुरु पदों यानि दुर्ज्ञेय पदों पर न्यास अर्थात् वृत्ति का अभ्यास किया था, जो न्याय अर्थात् युक्तिपूर्ण बातें बोलते थे अथवा उपपत्ति-अनुपपत्ति का (न्याय शास्त्रीय) विचार रखते थे, जो पुण्य को संगृहीत करने के अभ्यास में निपुण थे या व्याडि प्रणीत संग्रह नामक ग्रन्थ का अध्यापन करते थे, जिन्हें साधुवाद प्राप्त था या जिन्होंने संस्कृत शब्दों का अभ्यास कर लिया था, जो समस्त पुराणों में वर्णित राजर्षियों के चरित्र से अवगत थे, जिन्होंने महाभारत का अनुशीलन किया था, जो सभी इतिहासों को जान चुके थे, जो

वचसि यशसि तपसि सदसि महसि वपुषि यजुषि च प्रथमाः, पूर्वमेव कृतसंगराः, विवक्षवः, स्मितसुधाधवलितकपालोदराः, परस्परस्य मुखानि व्यलोकयन् ।

अथ तेषां कनीयान्कमलदलदीर्घलोचनः श्यामलो नाम बाणस्य प्रेयान्प्राणानामपि वशयिता दत्तसंज्ञस्तैः सप्रणयं दशनज्योत्स्नास्नपितककुभा मुखेन्दुना बभाषे—'तात बाण ! द्विजानां राजा गुरुदारग्रहणमकार्षीत् । पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया दयितेनायुषा व्ययुज्यत । नहुषः

स्वकाव्यप्रशंसासूचनपरम् । सदसि सभायाम् । सगरं सङ्केतः ।

कनीयानिति । अनेन प्रियवचनत्वमस्य दर्शितम् । ब्रहीति दत्तसंज्ञः । तात बाणेत्यादिना पूर्वराजदोषोद्भावनद्वारेण हर्षस्य गरीयस्तां ख्यापयति । अत्र क्वचिच्छब्दद्वारेण क्वचिच्चार्थद्वारेण यथायोग्यं दोष उद्भाव्यः । चन्द्रादिशब्दाभिधानेन राजत्वप्रतीतिर्न स्यादिति द्विजानां राजेत्युक्तम् । गुरुर्बृहस्पतिः, पित्राद्याश्च गुरवः । अत्र कथा—पुरा पूर्णचन्द्रमुदितं वीक्ष्य कामयमानां गुरुपत्नीं ताराख्यामभिगच्छत् । तदसहमानेन च बृहस्पतिना यदेन्द्राद्याः प्रोत्साहितास्तदानयनाय, तदा चन्द्रेण शुक्रः शरणमाश्रितः । ततः शुक्रप्रेरितैर्दैत्यैः सह तेषामन्योन्यं दिव्यं वर्षसहस्रं युद्धमासीत् । तारापि नारदबोधिता सगर्भा सती पुनर्गुरुमेवाभिगतेति । दयितेनायुषा प्रियेण जीवितेन पुत्रेणायुर्नाम्ना । कथा चात्र—पुरूरवाः पूर्वां दिशं जेतुं गच्छन्केनाप्याहृतप्रभूतधनेन विप्रेण यज्ञे निमन्त्रितो लोभाक्षिप्तस्तद्धनं जिहीर्षुस्तच्छा

महाविद्वान् एवं महाकवि थे, महापुरुषों के वृत्तान्त को सुनने का कुतूहल जिनके मन में रहा करता था, सुभाषितों के श्रवण-रस को जो चखने वाले थे, जो तृष्णा रहित थे, आयु में, वाणी में, कीर्त्ति में, तपस्या में, सभा में, तेज में, शरीर में तथा यज्ञ में जो प्रथम अर्थात् सबसे पहले थे, जो पहले से ही परामर्श कर वहाँ आये थे और कुछ बोलने के इच्छुक थे, मुस्कुराहट के अमृत से जिनके कपोलों के मध्य भाग में धवलित थे, परस्पर एक दूसरे का मुख देखने लगे ।

उसके बाद उन चारों में सबसे छोटा कमल के पत्तों के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाला श्यामल, जो बाण का अत्यन्त प्रिय तथा उसके प्राणों को भी वश में रखने वाला था, बड़ों का सङ्केत पाकर दन्त-किरणों से दिशाओं को नहला देने वाले मुखचन्द्र से प्रणयपूर्वक बोला—"तात बाण ! द्विजों के राजा (चन्द्र) ने गुरुपत्नी (तारा) का गमन किया । पुरुरवा ब्राह्मण के धन को

परकलत्राभिलाषी महाभुजङ्ग आसीत्। ययातिराहितब्राह्मणीपाणिग्रहणः पपात। सुद्युम्नः स्त्रीमय एवाभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जगति

पापनष्टः। तस्मिन्मृते स विप्रो नृपं विना प्रजा निवर्तत इति ज्ञात्वा तदायुषा राजर्षिमायुर्नामानमजीजनदिति। भुजङ्गो विटोऽपि। पुरा वृत्रं हत्वा ब्रह्महत्यया शक्रः पलाय्य मृणालच्छिद्रान्तरे यदातिष्ठत्तदा नहुषो यज्वा शूरैश्च देवैरिन्द्रत्वं नीतो दर्पाच्छची प्रार्थयमानो बृहस्पत्युपदेशात्तथोक्तो यथा—'यानेनापूर्वेणागच्छ' इति। ततो ब्रह्मर्षीन्वाहनीकृत्य व्रजन्कामवशात्त्वरमाणः पादेनाताड्य, 'सर्प सर्प' इति चोदयन्नगस्त्येन 'सर्पो भव' इति शप्तः सर्पोऽभवत्। पपातेति नरकगामी बभूव, स्वाचारभ्रष्टत्वात्पतितश्चाभूत्। वृषपर्वणोऽसुरराजस्य दुहित्रा शर्मिष्ठया कलहायमाना 'अस्मद्भृत्यसुता वराकी भूत्वा स्पर्धते' इत्युक्त्वा कूपान्तः पातितां शुक्रसुतां देवयानीं ज्ञात्वा ययातिर्वनविहारी पाणिं गृहीत्वोज्जहार। गते ययातौ परिभवोद्विग्ना वन एवावसत्। अथ नारदाद्यथावृत्तं ज्ञात्वा वृषपर्वा शुक्रस्य प्रार्थनामकरोत्। संदिष्टा च—'कुमारीशतपरिचारवतीयं शर्मिष्ठा यदा मे दास्यं करोति तदागच्छामि' इति। शुक्रशापभीतेन वृषपर्वणा संपादितमनोरथा देवयानी पुनरपि दासीभूतया शर्मिष्ठया सह वने क्रीडन्ती ययातिमायान्तं दृष्ट्वा बभाषे—'क्वाद्य मां त्यक्त्वा पाणिग्राहो महानुभावो गतोऽभूत्' इति। ततो ययातिर्ब्राह्मणीत्वादनङ्गीकुर्वंस्तत्पित्रा शोकविधुरेण शुक्रेण 'पापं मास्तु क्रियतामयं विधिः' इति बुद्ध्वा तां स्वीचक्रे। कालेन चासौ पपातेति। सुद्युम्नो राजा, शोभनं द्युम्नं बलमस्येति च स्त्रीमयो महिलाकृतिः, कान्तानुरक्तश्च। योऽत्र तोयमुपयोक्ष्यति स स्त्रीत्वमापत्स्यत इति भगवता भवान्याभ्यर्थितेन भवेन शप्तः [ ]सन्सरसः पीत्वा तोयं सुद्युम्नो मृगयाविहारी स्त्रीमयोऽभूदिति। जन्तुर्नाम सोमकस्य राज्ञः पुत्रः, जन्तवः प्राणिनश्च।

हथियाने के लालच से अपनी प्रिय आयु से वियुक्त हो गया। राजा नहुष परायी स्त्री को प्राप्त करने की इच्छा के कारण महालम्पट बना। ययाति ब्राह्मण कन्या का पाणिग्रहण करने के कारण पतित हुआ। राजा सुद्युम्न स्त्री रूप ही बन गया था। जन्तु (जन्तु नामक पुत्र या प्राणियों) का वध करने के कारण राजा सोमक की निर्दयता प्रसिद्ध ही है। राजा मान्धाता मार्गण अर्थात् याचना या युद्ध के व्यसन के कारण अपने बेटे पोतों के साथ रसातल को चला गया

जन्तुवधनिर्घृणता । मांधाता मार्गणव्यसनेन सपुत्रपौत्रो रसातलमगात् । पुरुकुत्सः कुत्सितं कर्म तपस्यन्नपि मेकलकन्यकायामकरोत् । कुवलयाश्वो भुजङ्गलोकपरिग्रहादश्वतरकन्यामपि न परिजहार । पृथुः प्रथमपुरुषकः परिभूतवान्पृथिवीम् । नृगस्य कृकलासभावेऽपि वर्णसंकरः समदृश्यत ।

सोमकस्य राज्ञो जन्तुर्नामैकः पुत्रोऽभूत् । स नैकपुत्रत्वादपुत्रत्वं वरमिति जानन्नुद्विग्नः पुरोधसाऽभ्यधायि—'बहून्पुत्रांश्चेदिच्छसि तदास्य सुतस्य वपया होमः क्रियताम् । ततो यावत्यो धूममाजिघ्रन्ति ताः पुत्रैर्युज्यन्ते' इति । स चापि घृणामपहाय तथा कारितवानिति । मार्गणं याच्ञा, शराश्च मार्गणाः । मार्गणेषु व्यसनं युद्धं व्यसनम् । रसातलमगमदधस्ताज्जगाम । विनष्ट इत्यर्थः । रसातलं पातालं च । मांधाता च भुवं जित्वा स्वर्गं जेतुं गतः । शक्रेणोक्तम्—'पातालं जित्वागतस्य तव दास्य यास्यामि' । स च तद्वचनादविचार्यैव रसातलं गतस्तत्र हरप्रसादासादितत्रिशूलेन लवणनाम्ना दानवेन सपुत्रसैन्योऽन्तमनीयत' इति । मेकलकन्यका नर्मदा । पुरुकुत्सः पुरा तपश्चरन्नर्मदायां स्नानं कुर्वन्कामप्यङ्गनामालोक्य कामाविष्टो नीतिमुत्ससर्जेति । भुजङ्गाः सर्पाः, विटा अपि । अश्वतरकन्या वडवामपि । कुवलयाश्वो राजा मृगयाक्रीडाप्रसङ्गेन घर्मातुरो मज्जनरभसेन सरसीमवतीर्णो रसातलं प्राप्तोऽश्वतराभिधां नागकन्यामूढवानिति । प्रथम आद्यः, प्रधानश्च । कुत्सितः पुरुषः कुरुषकः । पृथुरादिनृपो भूधराक्रान्तां सर्वां गां विलोक्य चापकोट्या गिरीन् भुवः पर्यन्तेषु चिक्षेप । धरणकारणभूतभूभृत्परिभवाद्भुवो विभवः । अत एवास्य कापुरुषत्वम् । विष्णुपुराणे तु—'आकृष्टकार्मुकेन पृथुना देहि मे भर्तव्यभरणोपायम्' इत्यनुबध्यमाना भूर्भुवनानि बभ्राम । ततः शरणमलब्ध्वा सास्य सर्वाः सस्यसंपदोऽजनयदिति वर्णितम् । एतस्मात्परिभूताऽभूदिति । कृकलासः

(अर्थात् पतित हुआ या पाताल में पहुँच गया और मर गया) । राजा पुरुकुत्स ने तपस्या के अवसर पर भी नर्मदा में निन्दित कर्म किया (अर्थात् तपस्या करते हुए पुरुकुत्स ने नर्मदा में स्नान करते समय किसी सुन्दरी स्त्री को देखकर कामान्ध हो गया तथा नीति को छोड़ कर कुत्सित कर्म कर बैठा) । राजा कुवलयाश्व ने भुजङ्ग लोक में जाकर (अर्थात् लम्पट लोगों की सङ्गति में पड़कर या नाग लोक पहुँचकर) अश्वतारा नामक नाग कन्या (या घोड़ी) को भी नहीं छोड़ा । आदि राजा पृथु पहला पुरुष है जिसने पृथिवी को अभिभूत किया । राजा नृग

सौदासेन नरक्षिता पर्याकुलीकृता क्षितिः। नलमत्रशाक्षहृदयं कलिरभिभूतवान्। सवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात्। दशरथ इष्टरा-

---

प्राणिभेदः। तद्भावेऽपि तस्यां दशायामपि किं पुना राज्यस्थस्येति निन्द्यत्वम्। वर्णः शुक्लादिः ब्राह्मणादिश्च। नृगो राजा दानप्रस्तावे कस्यचिद्विप्रस्य संबन्धिनीं गामविज्ञायैवान्यस्मै द्विजाय ददौ। कदाचित्तु तस्या गोः स्वामी तां गां परिज्ञाय तं ययाचे। न च तस्मादगां लेभे। ततस्तौ द्वावपि राजद्वारं राजविज्ञापनाय गतौ। ग्राम्यभोगासक्तराजदर्शनमलभमानौ च क्रोधात् 'कृकलासो भव' इति राज्ञः शापं दत्त्वा कस्मैचिद्गां वितीर्य यथागत प्रतिजग्मतुरिति। नरान्क्षिणोतीति नरक्षिता, न पालिता च। सौदासो नाम राजा मृगयाखिन्नः पथि गच्छन्कदाचिन्मुनि शक्रिनामानं मार्गमध्ये स्थितम् 'अपसर्प' इत्यवदत्। 'पन्था देयो ब्राह्मणाय' इति वचनान्न्यायमनुवर्तमानो यावन्न चलितस्तावद्राज्ञा कशयाभिहतः। अथ रोषावेशात् 'गच्छ मनुष्यभक्ष्यो राक्षसो भव' इति तं शशाप। वशमायत्तम्। अक्षहृदयमक्षज्ञानम्, अक्षाणीन्द्रियाणि हृदयं च। तच्च नलो राजा द्यूतव्यसनी तत्स्वरूपानभिज्ञश्च कलिनाभिभूत इति प्रसिद्धम्। मित्रो रविः, सुहृच्च मित्रम्। तपती नाम मित्रस्य रवेर्दुहिताभूत्। तस्यां संवरणो नाम राजा व्यसनी बभूव। रामो दशरथसुतः, रामा स्त्री च। दशरथो मृगयासक्तो घटपूरणरवं श्रुत्वा बृंहितशङ्कया शब्दपातिना शरेण मुनिपुत्रं व्यापादयत्। तेन च बोधितान्वयः पित्रोः समीपं तं निनाय। तद्वचनाच्छल्यमुद्धरति नृपे शिशुर्मृतः। अथ च सदारेण वृद्धतापसेन 'पुत्रादहमिव त्वमपि प्रात्स्यन्तम्' इति शप्तो रामवियोगात्प्राणांस्तत्याजेति। गोनिमित्तं ब्राह्मणस्य जमदग्नेरतिपीडनम्। निधनमयासीत्। जामदग्न्येन हृत

(शाप के कारण) गिरगिट बन जाने पर भी वर्ण संस्कार (अर्थात् कई रंगों की मिलावट या ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्णों के वीर्य से उत्पन्न) ही बना रहा। सौदास नामक राजा ने व्याकुल पृथिवी की रक्षा नहीं की। जुए के खिलाड़ी (अथवा इन्द्रिय एवं हृदय को वश में न रखने वाले) राजा नल को कलि ने अभिभूत कर दिया। संवरण नामक राजा सूर्य (सुहृत्) की बेटी के प्रति (उस पर आसक्त होने के कारण) बेचैन हो उठा था। राजा दशरथ ने अपने प्रिय पुत्र राम के विरहोन्माद (अथवा प्रिय रामा अर्थात् कैकेयी नाम की अपनी प्रिय

मोन्मादेन मृत्युमवाप। कार्तवीर्यो गोब्राह्मणातिपीडनेन निधनमयासीत्। मरुत्त इष्टबहुसुवर्णकोऽपि देवद्विजबहुमतो न बभूव। शन्तनु-

इत्यर्थः। कार्तवीर्यो गवां कोटेरप्यधिकतरां धेनुमपहरञ्जमदग्निं व्यापादितवान्। अथ च तत्सुतेन रामेण क्रोधात्परशुच्छिन्नबाहुसहस्रोऽसौ सर्वक्षत्रियैः सह मृत्युं लेभे इष्टः कृतः अभिमतश्च। देवद्विजो बृहस्पतिः; अन्यत्र—देवाश्च द्विजाश्चेति द्वन्द्वः। मरुत्तो नाम राजा बहुसुवर्णकाख्येन क्रतुनापि यक्ष्यमाणो देवपुरोधसम् मां याजय' इति याचमानस्तेन 'मनुष्योऽयमेव इष्टः' इति। स चोपहसति धिषणे नारदेनोक्तो यथा—गच्छ, अस्यैव भ्राता संवर्तको नाम ग्रहगृहीतच्छद्मना वाराणस्यां स्थितः। तं प्रार्थयस्व' इत्युक्त्वा च नारदोऽग्निं विवेश। स च नारदोक्तचिह्नैस्तं भगवत्प्रमाणं कृत्वा नियन्तं परिज्ञाय बहुधो गालीर्ददतमप्यनुद्विजमानो याजनाय प्रार्थयामास। संवर्तकेन कथितं च—'नेदं त्वयोक्तं यावत्तं वक्ष्यामि। देवेभ्यश्च श्रुत्वा यज्ञभागो न दातव्यः' इति। राजा यथोक्तमनुतिष्ठंस्तेन याजितो देवद्विजस्य नाभिमतोऽभवदिति। अतिव्यसनादत्यन्तरागात्। वाहिनी नदी, सेना च। महाभिषः पुरा ब्रह्मसदसि गङ्गायाश्चामरग्राहिण्याश्चलितवाससोऽङ्गदर्शनहृतहृदयः शृङ्गारपदानि वदन्ब्रह्मणा शप्तः, पतित्वा क्षत्रियगृहे शन्तनुर्नामाभूत्। गङ्गापि 'मत्कृतेऽयमिमां दशां प्राप्तः' इति मत्वा सखेदमवतरन्ती धेनुहरणकुपितवसिष्ठशापसंपन्नमनुष्यलोकावतरणदुःखितैर्वसुभिर्विदितवृत्तान्तैरभ्यधायि—'तत्र नृपे चेत्तव प्रीतिः, तद्वयं त्वय्येवोत्पत्स्यामहे। जातमात्राश्च वयं त्वया स्वजले क्षेप्तव्याः' इति। सा तु तथेत्यङ्गीकृत्य वने विहरन्तं प्रार्थयमानं शन्तनुमवोचत्—'यदहं करोमि तत्र त्वया निर्बन्धो न विधेयः। न चाहं त्वया जन्म प्रष्टव्या' इति। 'तथा' इति तेनाङ्गीकृतवता बहुतरं कालमरंस्त। अथ यः कश्चित्सूनुरुदपादि सर्वस्तया स्वजले क्षिप्तः। एवं सप्तस्वतीतेषु गङ्गासारेष्व निःसंतानोऽयं मा भूदिति मन्वानैः सप्तभिरेव वसुभिः कृतात्मांशनिधिरष्टमो जातः। तमन्तमपि जले क्षिपन्ती शन्तनुना निषिद्धा। तेन 'सापराधो भवान्' इत्युक्त्वा सा प्रति-

पत्नी के उन्माद से मृत्यु को प्राप्त किया। राजा कार्तवीर्य गौओं के लिए ब्राह्मण को पीडा पहुँचाने के कारण मारा गया। राजा मरुत्त बहुसुवर्णक नामक यज्ञ करने पर भी देवद्विज (अर्थात् बृहस्पति द्वारा अथवा देवताओं एवं ब्राह्मणों द्वारा) सम्मान नहीं प्राप्त कर सका। राजा शन्तनु ने अत्यधिक व्यसन के कारण अपनी

रतिव्यसनादेकाकी वियुक्तो वाहिन्या विपिने विललाप। पाण्डुर्वनमध्यगतो मत्स्य इव मदनरसाविष्टः प्राणान्मुमोच। युधिष्ठिरो गुरुभयविषण्णहृदयः समरशिरसि सत्यमुत्सृष्टवान्। इत्थं नास्ति राजत्वमपकलङ्कमृते देवदेवादमतः सर्वद्वीपभुजो हर्षात्। अस्य हि बहून्याश्चर्याणि श्रूयन्ते। तथा—हि अत्र बलजिता निश्चलीकृताश्चलन्तः कृतपक्षाः क्षितिभृतः।

जगाम। ततस्तद्वियोगविधुरधीर्बहु विललापेति व्यसननिमित्तकः सेनया वियोगेन च विलापो विजिगीषोरनुचित एव। वनं तोयम्, विपिनं च। मदनः कामः फलविशेषश्च मदनम्। पाण्डुर्वने मृगरूपया ब्राह्मण्या सह सुरतकर्मसक्तं मृगरूपं कर्दमाख्यं मुनिं शरेण जघान; तेन च म्रियमाणेन 'स्त्रीसंभोगस्थो मरिष्यसि' इति शप्तो माद्रया सह स्मरार्तः क्रीडन्विपन्न इति गुरोर्द्रोणाचार्यस्य भयेन, गुरुणा महता च त्रासेन। युधिष्ठिरो बलानि दग्धुमुद्यतं द्रोणाचार्यं रणमूर्ध्नि 'अश्वत्थामा हतः' इत्युक्त्वा पुत्रशोकाकुलमसत्येनासूनत्याजयदिति। इत्थमिति। इत्थं कृतयुगादारभ्य कलिप्रारम्भपर्यन्तं राज्ञां नास्त्यपकलङ्कं राजत्वमिति। बलजित्प्रजापतिमुखाः शब्दाः राज्ञि यथार्था वेदितव्याः। बलं सैन्यम्। बलाख्यश्चासुरः। निश्चलीकृता इति सहायाभावाच्छत्रुषु यानं न विदधिर इति अन्यत्र—स्थावरत्वं लम्भिताः। पक्षाः सहायाः, पतत्त्राणि च। क्षितिभृतो राजानः, गिरयश्च। प्रजा-

---

वाहिनी (गङ्गा नदी या सेना) से बिछुड़ कर अकेले जङ्गल में भटकते हुए विलाप किया। राजा पाण्डु ने वन के बीच जाकर कामाविष्ट होने के कारण मछली के समान (तड़प-तड़प कर) प्राण-त्याग किया। युधिष्ठिर ने गुरु द्रोणाचार्य से डरकर युद्ध भूमि में सत्य का परित्याग कर दिया। इस प्रकार सभी द्वीपों पर शासन करने वाले महाराजाधिराज हर्ष को छोड़कर शेष किसी भी राजा का राजत्व कलङ्क रहित (अर्थात् बेदाग) नहीं है (यानि कि हर्ष के अतिरिक्त सभी राजाओं के चरित्र में कुछ न कुछ कलङ्क अवश्य लगा है। एकमात्र हर्ष ही ऐसे सम्राट् हैं जिनका चरित्र सर्वथा निर्मल है।) इनके (अर्थात् सम्राट् हर्ष के) बारे में बहुत सी आश्चर्य की बातें सुनने को मिलती हैं। जैसे कि—इन्होंने इन्द्र के समान अपने सैन्यबल से जीतकर शत्रु की ओर मिलने के लिए जाते हुए राजाओं के सहायकों को मारकर निश्चल कर दिया (जिस प्रकार कि बल नामक असुर को जीतने वाले इन्द्र ने भी पर्वतों के पंख काट-काटकर उन्हें

अत्र प्रजापतिना शेषभोगिमण्डलस्योपरि क्षमा कृता। अत्र पुरुषोत्तमेन सिन्धुराजं प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीकृता। अत्र बलिना मोचितभूभृद्घ्नी मुक्तो महानागः। अत्र देवेनाभिषिक्तः कुमारः। अत्र स्वामिनैकप्रहारपातितारातिना प्रख्यापिता शक्तिः। अत्र नरसिंहेन स्वहस्तविशसिता-

पतिना राज्ञा, ब्रह्मणा च। शेषस्यावशिष्टस्य भोगिमण्डलस्य राजसमूहस्योपरि विषये क्षान्तिः कृता। अन्यत्र—शेषाख्यस्य भोगिनो नागस्य मण्डलाभोगस्तत्पृष्ठे भूमिर्निहिता। पुरुषोत्तमो नरोत्कृष्टो राजा, हरिश्च। सिन्धुराजा सिन्धुदेशाधिपतिः, क्षीरोदधिश्च। लक्ष्मीश्छत्रचामरादिरूपा, देवताकृतिः। बलिना बलवता, असुरेश्वरेण च भूभृद्राजा श्रीकुमाराख्यः। श्रीकुमारो नाम राजा किल दर्पशातेनोपजातमदेन हस्तिना वेष्टितः। ततः श्रीहर्षेणाकृष्य खड्गं तस्मान्मोचितोऽसौ दन्ती च गोपाद्वने परित्यक्त इति वार्ता। भूभृच्च पर्वतो मन्दराख्यः। महानागो दर्पशातः, वासुकिश्च। मोचितभूभृद्घ्नोऽमृतमन्थनार्थे। मन्थनार्थं कुमारः कुमारगुप्ताख्यः, कुमारो वा यो दर्पशातात्पोषितः। कुमारो गुहः पुत्रश्च कुमारः। स्वामी प्रभुः, कुमारश्च। अरातयः शत्रवः, तारकश्चासुराधिपतिः। शक्तिः सामर्थ्यम्,

निश्चल बना दिया था)। (जिस प्रकार प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा ने शेषनाग के फनों पर क्षमा अर्थात् पृथिवी को आरोपित किया उसी प्रकार) प्रजापति अर्थात् प्रजाजनों के स्वामी हर्ष ने बचे हुए भोगिमण्डल अर्थात् राजाओं के ऊपर क्षमा की। (जिस प्रकार पुरुषोत्तम अर्थात् भगवान् विष्णु ने सिन्धुराज अर्थात् क्षीर सागर को मथकर लक्ष्मी को अपनाया उसी प्रकार) पुरुषोत्तम अर्थात् पुरुषों में में श्रेष्ठ हर्ष ने सिन्धुराज के मद को मथकर उसकी राजलक्ष्मी को अपना लिया। (जिस प्रकार बलि ने महानाग वासुकि को मन्दराचल के बन्धन से मुक्त करवाया उसी प्रकार) इस बली अर्थात् शक्तिशाली हर्ष ने अपने महान् हाथी दर्पशात को श्रीकुमार नामक राजा को सूँड में लपेटकर दबोचते हुए देखकर छुड़ाया और उसे जङ्गल में छुड़वा दिया। (जिस प्रकार देवराज इन्द्र ने कुमार अर्थात् कार्तिकेय को अपने सेना पति के पद पर अभिषिक्त किया उसी प्रकार) देव अर्थात् महाराज हर्ष ने कुमार का अभिषेक किया। (जिस प्रकार स्वामी अर्थात् कार्तिकेय ने एक ही प्रहार से तारकासुर का वध करके अपनी शक्ति अर्थात् अस्त्रविशेष को प्रसिद्ध कर दिया उसी प्रकार (स्वामी हर्ष ने एक ही प्रहार से शत्रुओं को मार कर अपनी शक्ति को प्रसिद्ध कर दिया। (जिस

रातिना प्रकटीकृतो विक्रमः। अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गाया गृहीतः करः। अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः, सकलभुवनकोशश्चाग्रजन्मनां विभक्तः, इत्येवमादयः प्रथमकृतयुगस्येव दृश्यन्ते महासमारम्भाः। अतोऽस्य कुगृहीतनाम्नः पुण्यराशेः पूर्वपुरुष-वंशानुक्रमेणादितः प्रभृति चरितमिच्छामः श्रोतुम्। सुमहान्कालो नः शुश्रूषमाणानाम्। अयस्कान्तमणय इव लोहानि नीरसनिष्ठुराणि क्षुल्ल-

---

आयुधभेदश्च। नरसिंहः उत्तमो नरः, नृसिंहरूपो हरिश्च। सहस्तेनेति। न तु साधनबलेन। अन्यत्र तु चक्रादिनिजायुधेन। परमेश्वरेण सार्वभोमेन। न तु मण्डलमात्रस्य भोक्त्रा हरेण। दुर्गाया दुर्गमायाः, गौर्याश्च। करो दण्डः,पाणिश्च। लोकनाथो राजा, हरिः, बुद्धश्च। दिशां मुखेषु सीमासु लोकनाथाः (लोकपालाः) सीमापतयः, इन्द्राद्या दिक्पालाश्च। कोशो (गञ्ज) धदसञ्चयः मध्यम्, ग्रन्थभेदश्च। अग्रजन्मानो द्विजाः आदिनृपाः, श्रमणाश्च। एवमादय इति। त्वेतावन्त एव। प्रथमकृतयुगस्येवेति। पर्वतपक्षशातनापयो वृत्तान्ता अभवन्। मणय इवेति। मणि-

---

प्रकार भगवान् नृसिंह ने अपने शत्रु हिरण्यकशिपु की छाती को अपने हाथों से फाड़ कर अपना पराक्रम दिखाया उसी प्रकार) नरों में सिंह के समान हर्ष ने अपने भुजबल से शत्रु को मार कर अपना पराक्रम प्रकट किया। (जिस प्रकार परमेश्वर अर्थात् भगवान् शिव हिमालय की पुत्री पार्वती का कर ग्रहण किया उसी प्रकार) परमेश्वर हर्ष ने हिमालय के दुर्गम प्रदेशों से भी कर लिया। (जिस प्रकार लोकनाथ अर्थात् प्रजापति ब्रह्मा ने इन्द्रादि दिक्पालों को प्रत्येक दिशा की रक्षा के लिए नियुक्त किया उसी प्रकार) लोकनाथ हर्ष ने प्रत्येक दिशा में देखभाल के लिए प्रजा पालकों को नियुक्त किया और (जिस प्रकार लोकपाल अर्थात् भगवान् बुद्ध ने कोश नामक ग्रन्थ को विभक्त करके श्रमणों को अर्पित कर दिया उसी प्रकार) महाराज हर्ष ने सम्पूर्ण धन के भण्डारों को अर्पित कर दिया। इत्यादि सतयुग के समान इनके अनेक महान् कार्य दिखाई पड़ते हैं। इसी लिए सुगृहीत नामा, पुण्यराशि महाराज हर्ष का चरित पूर्वपुरुषों के वंशानुक्रम के साथ शुरु से ही हम सुनना चाहते हैं। बहुत दिनों से हम लोगों की यह सुनने की इच्छा बनी हुई है। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को खींच लेती है उसी प्रकार दुष्ट लोगों के नीरस तथा निष्ठुर मन को

कानामप्याकर्षन्ति मनांसि महतां गुणाः, किमुत स्वभावसरसमृदूनीतरेषाम्। कस्य न द्वितीयमहाभारते भवेदस्य चरिते कुतूहलम्? आचष्टां भवान्। भवतु भार्गवोऽयं वंशः शुचिनानेन पुण्यराजर्षिचरितश्रवणेन सुतरां शुचितरः, इत्येवमभिधाय तूष्णीमभूत्।

बाणस्तु विहस्याब्रवीत्—आर्य! न युक्त्यनुरूपमभिहितम्। अघटमानमनोरथमिव भवतां कुतूहलमवकल्पयामि। शक्याशक्यपरिसंख्यानशून्याः प्रायेण स्वार्थतृषः। परगुणानुरागिणी प्रियजनकथाश्रवणरसरभसमोहिता च मन्ये महतामपि मतिरपहरति प्रविवेकम्। पश्यत्वार्यः क्व परमाणुपरिमाणं बटुहृदयम्, क्व समस्तब्रह्मस्तम्भव्यापि देवस्य चरितम्? क्व परिमितवर्णवृत्तयः कतिपये शब्दाः, क्व संख्यातिगा-

शब्देनोपमेयानां गुणानां रत्नत्वमुक्तम्। लोहान्यपि नीरसानिष्ठुराणि। क्षुल्लकाः खलाः बाला इत्यन्ये। आचष्टामाख्यातु। भार्गव इति भृगुगोत्रत्वम्।

अवकल्पयामि निश्चिनोमि। शक्तमिदमित्येवं रूपेण परिसंख्यानेन गणनया स्वार्थतृषो गृध्नवः शून्याः। शक्याशक्यविवेकं गृध्नवो न जानन्तीत्यर्थः। बटु-

भी महान् लोगों के गुण अपनी ओर खींच लेते हैं फिर तो जिनका मन स्वभावतः सरस और कोमल है उनका क्या कहना? दूसरे महाभारत के समान इनके चरित को सुनने के लिए किसके मन में कुतूहल न होगा? इसलिए आप कहें। यह भार्गव वंश इस पुण्यवान् राजर्षि के पवित्र चरित को सुन कर और अधिक पवित्र हो जाय।' ऐसा कह कर वह (सुदृष्टि) चुप हो गया।

बाण हँस कर बोला—"आर्य! आपने युक्ति सङ्गत बात नहीं कही। मैं समझता हूँ कि इस कुतूहल में आपका मनोरथ पूरा नहीं होगा। प्रायः स्वार्थी लोग सामर्थ्य और असामर्थ्य की गणना (अर्थात् विचार) से शून्य हुआ करते हैं। मुझे लगता है कि दूसरे के गुणों के प्रति अनुराग रखने वाली तथा अपने प्रियजन के कथामृत का पान करने के मोह में पड़ी हुई बड़े-बड़े लोगों की भी बुद्धि विवेक का परित्याग कर देती है। आर्य स्वयं देखें कि परमाणु के परिमाण (माप) वाला मुझ जैसे का हृदय और कहाँ महाराज हर्ष का वैसा चरित जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है? कहाँ नपे-तुले अक्षरों वाले

स्तद्गुणाः ? सर्वज्ञाप्ययमविषयः वाचस्पतेरप्यगोचरः, सरस्वत्या अप्यतिभारः, किमुतास्मद्विधस्य ? कः खलु पुरुषायुषशतेनापि शक्नुयादविकलमस्य चरितं वर्णयितुम् ? एकदेशे तु यदि कुतूहलं वः, सज्जा वयम् । इयमधिगतकतिपयाक्षरलवलघीयसी जिह्वा क्वोपयोगं गमिष्यति ? भवन्तः श्रोतारः । वर्ण्यते हर्षचरितम् । किमन्यत् ।

दिवसः पश्चाल्लम्बमानकपिलकिरणजटाभारभास्वरो भगवान्भार्गवराम इव समन्तपञ्चकरुधिरमहाह्रदे निमज्जति संध्यारागपटले पूषा । श्वो निवेदयितास्मि' इति । सर्वे च ते 'तथा' इति प्रत्यपद्यन्त । नातिचिरादुत्थाय सन्ध्यामुपासितुं शोणमयासीत् ।

द्विजशिशुः । ब्रह्मस्तम्भं जगत् । पुरुषायुषेत्यादिना योग्येऽपि मयि वर्णयितरि वर्णनीयस्य भूयस्त्वम्, अल्पीयस्त्वाच्चायुषः वामास्त्येन वर्णनं न घटत इति प्रातिपादितम् । अत एवाह—एकदेश इति । सज्जा वर्णनाभिमुखा इति । भवन्त इति । न तु यादृशतादृशाः । हर्षचरितमिति । न तु यदेव किंचित् । समन्तपञ्चकं कुरुक्षेत्रम् । तथेति एवमस्त्विति । प्रत्यपद्यन्ताङ्गीकृतवन्तः ।

(मेरे) कुछ शब्द और कहाँ (महाराज के) वे असंख्य गुण ? सर्वज्ञ व्यक्ति के लिए भी यह अविषय है (अर्थात् सर्वज्ञ व्यक्ति भी महाराज हर्ष के चरित को नहीं जान सकता), वृहस्पति के लिए भी यह अगोचर अर्थात् अज्ञेय है और सरस्वती के लिए भी यह भारी बोझ है फिर हम जैसों के लिए तो कहना ही क्या ? कौन वैसा व्यक्ति है जो सौ पुरुषों की आयु को प्राप्त करके भी इनके सम्पूर्ण चरित का वर्णन कर सके ? यदि उनके चरित के किसी एक भाग के प्रति आपका कुतूहल हो तो फिर हम (सुनाने को) तैयार हैं । थोड़े से लवमात्र अक्षरों को ग्रहण की हुई मेरी यह छोटी सी जिह्वा आखिर कहाँ उपयोग में आयेगी ? आप जैसे लोग सुनने वाले हैं । हर्ष चरित का वर्णन किया जाता है । और क्या ?

जिस प्रकार अपनी पीली जटाओं से देदीप्यमान भगवान् परशुराम ने कुरुक्षेत्र के रुधिर-सरोवर में स्नान किया था उसी प्रकार सूर्य भी अपने पीताभ किरण समूह को लटकाते हुए सन्ध्या की लाली में डूबते जा रहे हैं । कल निवेदन करूँगा । तब सबने "ऐसा ही" कहकर स्वीकार किया । बाण थोड़ी देर में उठकर सन्ध्योपासना के लिए शोण के तट पर चले गये ।

अथ मधुमदपल्लवितमालवीकपोलकोमलातपे मुकुलितेऽह्नि, कमलिनीमीलनादिव लोहिततमे तमोलिहि रवौ लम्बमाने, रथिरथतुरगमार्गानुसारेण यममहिष इव धावति नभसि तमसि, क्रमेण च गृहतापसकुटीरकपटलावलम्बिषु रक्तातपच्छेदैः सह संहृतेषु वल्कलेषु, कलिकल्मषमुषि मुष्णति गगनमग्निहोत्रधामधूमे, सनियमे यजमानजने मनौव्रतिनि, विहारवेलाविलोले पर्यटति पत्नीजने, विकीर्यमाणहरितश्यामाकशालिपूलिकासु दुग्धासु होमकपिलासु, हूयमाने वैतानतनूनपाति, पूतविष्टरोपविष्टे कृष्णाजिनजटिले जटिनि जपति बटुजने, ब्रह्मासनाध्यासिनि ध्यायति योगिगणे, तालध्वनिधावमानानन्तान्तेवासिनि अलस-

अथेत्यादौ अस्मिन्नस्मिन्नसति बाणस्तथैव गोष्ठ्या तस्थाविति संबन्धः। कपोलकोमलो गण्डसदृशः। मुकुलिते प्रासंकोचे। कुटीरं गरदगृहम्। पटलं छादनम्। विहारो वह्निसंधुक्षणमग्निहोत्रार्थम्। पूलिको वरण्डः परिमाणभेदः। तनूनपाद्वह्निः। विष्टरमासनम्। तालध्वनिरङ्गुलिजः शब्दः। अन्तेवासिनः शिष्याः। श्रोत्रियो

उसके बाद मधु के मद से पल्लवित मालव सुन्दरियों के कपोल के समान कोमल आतपवाले दिन के सिकुड़ने अर्थात् ढल जाने पर मानो कमलिनी के मूँद जाने से लाल हो गया हो इस प्रकार अन्धकार को चाटने वाले सूर्य के लटक जाने पर, मानो सूर्य के रथ के घोड़े के मार्ग का अनुसरण करते हुए यमराज का वाहन भैंसा दौड़ रहा हो इसी प्रकार आकाश में अन्धकार के व्याप्त हो जाने पर, गृहस्थ जीवन बिताने वाले तपस्वियों की कुटियों की छान्ह पर सूखने के लिए लटकाये गये वल्कलों के रक्तातप के साथ क्रमशः बटोर लिए जाने पर, कलि के पापों को दूर करने वाले अग्नि होत्र गृहनिसृत धूएँ के आकाश में छा जाने पर, व्रत धारण किये हुए यजमान लोगों के मौन होकर बैठ जाने पर, अग्निहोत्र के लिए अग्नि सुलगाने की तैयारी में लगी हुई यजमान पत्नियों के इधर-उधर घूमने पर, हरे-हरे साँवा के पुआल की आँटियाँ छीटकर होम-धेनुओं के दुहे जाने पर, यज्ञाग्नि में हवन प्रारम्भ किये जाने पर, पवित्र विस्तर पर बैठे, काले मृगचर्म ओढ़े हुए तथा जटावाले बटुजनों द्वारा जप प्रारम्भ किये जाने पर, ब्रह्मासन लगाकर बैठे हुए योगियों द्वारा ध्यान प्रारम्भ किये जाने पर, ताली की आवाज पर बहुत से शिष्यों के द्वारा दौड़ लगाये जाने पर, आलसी वेदोपाध्याय द्वारा

वृद्धश्रोत्रियानुमतेन गलद्ग्रन्थदण्डकोद्गारिणी सध्यां समवधारयति वठर-विटबटुसमाजे समुन्मज्जति च ज्योतिषि तारकाख्ये खे, प्राप्ते प्रदोषारम्भे भवनमागत्योपविष्टः स्निग्धैर्बन्धुभिश्च साधं तयैव गोष्ठ्या तस्थौ। नीत-प्रथमयामश्च गणपतेर्भवने परिकल्पितं शयनीयमसेवत। इतरेषां तु सर्वेषां निमीलितदृशामप्यनुपजातनिद्राणां कमलवनानामिव सूर्योदयं प्रतिपालयतां कुतूहलेन कथमपि स क्षपा क्षयमगच्छत्।

अथ यामिन्यास्तुर्ये यामे प्रतिबुद्धः। स एव बन्दी श्लोकद्वयमगायत्—

पश्चादङ्घ्रि प्रसार्य त्रिकनतिविततं द्राघयित्वाङ्गमुच्चै-
रासज्याभुग्नकण्ठो मुखमुरसि सटा धूलिधूम्रा विधूय।
घासग्रासाभिलाषादनवरतचलत्प्रोथतुण्डस्तुरङ्गो
मन्दं शब्दायमानो विलिखति शयनादुत्थितः क्ष्मां खुरेण ॥५॥

वेदोपाध्यायः। तदनुमतेन संध्यां स संधारयति। वदनव्यग्रत्वाद्गलतो विस्मरतः। बन्धमाने व्यग्रत्वाद्गलन्ति। विस्मरन्तं ग्रन्थदण्डकं ऋग्गणं उद्गिरति यस्तस्मिन्। वठरा मूर्खाः। विटा भुजङ्गप्रायाः। बटवो बालाश्च। गृहश्रोत्रियैर्सलीलाः संध्या-बन्दनाय प्रवर्त्यन्ते निर्विवेकत्वात्।

तुर्यश्चतुर्थः। त्रिकं पृष्ठकटीसंधिः द्राघयित्वा दीर्घतरीकृत्वा। आभुग्नो नमितः कण्ठो यस्य तत्। मुखमुरसि। आसज्य कृत्वा। धूम्राः धूसराः। प्रतानस्यो-

---

सिखाये गये मूर्ख तथा लम्पट तुल्य शिष्यों द्वारा ऋचाओं का गलत उच्चारण किये जाने पर, आकाश में तारों के निकल आने पर तथा सन्ध्याकाल के प्रारम्भ हो जाने पर बाण घर आकर बैठ गया तथा अपने प्रेमी बन्धु-बान्धवों के साथ उसी गोष्ठी में रम गया। एक पहर रात बिताकर गणपति के भवन में बिछी हुई शय्या पर ही वह सो रहा। दूसरे सब लोगों ने आँखे तो बन्द कर लीं पर उन्हें नींद नहीं आई, जैसे कमल के वन रात भर सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हैं उसी प्रकार वह रात कुतूहल के कारण किसी-किसी प्रकार बीती।

तत्पश्चात् रात के चौथे पहर में वही बन्दी जगा और उसने दो श्लोक गाये—

घोड़ा सोकर उठ गया और वह पिछाड़ के पैरों को तान, पीठ की रीढ़ गड़ा, अपने अङ्गों को जोर से फैला, गर्दन झुका, मुँह को छाती मे लगा, धूल धूसरित अयाल को झाड़, घास के कौर लेने की इच्छा से निरन्तर अपने थूथन

कुर्वन्नाभुग्नपृष्ठो मुखनिकटकटिः कंधरामातिरश्चीं
　　लोलेनाहन्यमानं तुहिनकणमुचा चञ्चता केसरेण ।
निद्राकण्डूकषायं कषति निबिडितश्रोत्रशुक्तिस्तुरङ्ग-
　　स्त्वङ्गत्पक्ष्माग्रलग्नतनुबुसकणं कोणमक्ष्णः खुरेण ॥६॥

बाणस्तु तच्छ्रुत्वा समुत्सृज्य निद्रामुत्थाय प्रक्षाल्य वदनमुपास्य च भगवतीं संध्यामुदिते च भगवति सवितरि गृहीतताम्बूलस्तत्रैवातिष्ठत् । अत्रान्तरे सर्वेऽस्य ज्ञातयः समाजग्मुः परिवार्य चासांचक्रिरे । असावपि पूर्वोद्घातेन विदिताभिप्रायस्तेषां पुरो हर्षचरितं कथयितुमारेभे—

श्रूयताम्—अस्ति पुण्यकृतामधिवासो वासवावास इव वसुधामव-

परिप्रोथः प्रतानमुत्तरोष्ठमध्यम् । 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्' । तुहिनमवश्यायः । केसराणि ललाटतटस्थाः केशाः, अवटुककाटिकालम्बनः केशपाशो वा । कषायमाविलम् । त्वङ्गदुन्नतम् । कोणं प्रान्तम् । उद्घातः कथाप्रस्तावः ।

अस्तीत्यादौ । श्रीकण्ठनामा जनपदोऽस्तीति सम्बन्धः । पुण्यकृतो देवा अपि ।

को लपलपाता हुआ और मन्द-मन्द घुर घुराता हुआ खुरों से पृथ्वी को कुरेद रहा है ॥ ५ ॥

जिसके कान की सीपी भरी हुई है ऐसा घोड़ा अपनी पीठ सिकोड़, मुँह के पास कमर को ला और गर्दन को बिल्कुल टेढ़ी करके आँख के कोने को खुजला रहा है । अपनी चमकीली चञ्चल अयाल से पानी के फुहारे उड़ाता हुआ मुँह पर झाड़ रहा है । उसकी आँखें निद्रा के आवेग के कारण लाल हो गई हैं । आँख की पपनियों में भूसे की खर चिपक गई है ॥ ६ ॥

श्लोकों को सुन कर बाण नींद छोड़ कर उठा और मुँह धोकर तथा भगवती सन्ध्या की उपासना कर भगवान् सूर्य के उदित हो जाने पर मुँह में पान का बीड़ा रख कर वहीं बैठ गया । इसी बीच उसके सब भाई-बन्धु जुट आये और (उसे) घेर कर बैठ गये । बाण ने भी पहले के प्रस्ताव से उनके अभिप्राय को समझ कर उनके सामने हर्ष चरित कहना प्रारम्भ किया—

जो पुण्यशाली लोगों का निवास-स्थान था, जो पृथ्वी पर उतरे हुए इन्द्र-

तीर्णः सततमसंकीर्णवर्णव्यवहारस्थितिः कृतयुगव्यवस्थः, स्थलकमल-बहलतया पोत्रोन्मूल्यमानमृणालैरुद्गीतमेदिनीसारगुणैरिव कृतमधुकरकोलाहलैर्हलैरुल्लिख्यमानक्षेत्रः, क्षीरोदपयः पार्थिवपयोदसिक्ताभिरिव पुण्ड्रेक्षुवाटसंततिभिर्निरन्तरः, प्रतिदिशमपूर्वपर्वतकैरिव खलधानधामभिर्विभज्यमानैः सस्यकूटैः संकटसकलसीमान्तः, समन्तादुद्धातघटीसिच्यमानैर्जीरकजूटैर्जटिलितभूमिः, उर्वरावरीयोभिः शालेयैरलंकृतः, पाकविशरारुराजमाषनिकरकिर्मीरितैश्चस्फुटितमुद्गफलकोशीकपिशितैर्गोधूमधामभिःस्थलीदृष्टैरधिष्ठितः, महिषदृष्टप्रतिष्ठितगायद्गोपालपालितैश्च कीटपटललम्पट चट-

---

अधिवासो वसतिः। वासवावासः स्वर्गः। पात्रं हलमुखम्। सारा उत्कृष्टाः। अतिमाधुर्यात्क्षीरोदेत्याद्युत्प्रेक्षा। निरन्तरो निर्विवरः। तदैव कल्पितत्वादपूर्वत्वम्। खलधानधामभिः खलपालैः। उद्धातोऽरघट्टः। जीरकोजाजी। जटः समूहः। उर्वरा सर्वसस्याढ्या भूः। वरीयोभिरुरुतरैः। शालेयैः शालिक्षेत्रैः। युगपत्पाकसंभवाद्विशरारुत्वम्: किर्मीरैः शबलैः। कोशी शिम्बिका। गोधनस्य क्षतपृष्ठ-

---

निवास अर्थात् स्वर्ग की भाँति था, ब्राह्मणादि वर्णों की व्यावहारिक मर्यादा निरन्तर सङ्कीर्ण अर्थात् एक में एक घुली-मिली न थी, जहाँ सतयुग की व्यवस्था थी, स्थल कमलों की अधिकता के कारण जहाँ खेत जोते जाने के समय हल के फार से कमल नाल उखाड़े जाते थे तथा कमलों पर विराजमान भौंरे जब गुञ्जार करने लगते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि वे भौंरे पृथ्वी के उत्तम गुणों का गान कर रहे हों, मानों क्षीर समुद्र के जल को पीकर आये हुए मेघों ने बरस कर जिन्हें सींचा हो ऐसे पौड़ों के खेत चारों ओर जहाँ फैले हुए थे, प्रत्येक दिशा में विलक्षण पहाड़ों के समान जहाँ खलिहान के रक्षकों द्वारा धान की बाँटी गई ढेरियों से सभी सीवान भरे हुए थे, जहाँ चारों ओर रहट की सींची गई जीरक की फसल से हरी-भरी भूमि जटिल थी, जो धान के उपजाऊ एवं अच्छे खेतों से सुशोभित था, जहाँ स्थान-स्थान की कृत्रिम भूमियों में पके हुए राजमाष की रंगीनी और पक कर चटके हुए मूंग एवं गेहूँ के खेत चारों ओर फैले हुए थे, भैंस की पीठ पर बैठ कर गाते हुए ग्वालों द्वारा रक्षित कुकुर-

कानुसृतैरवटघटितघण्टाघटीरटितरमणीयैररटद्भिरटवीं हरवृषभपीतमामया-शङ्कया बहुधा विभक्तं क्षीरोदमिव क्षीरं क्षरद्भिर्बाष्पच्छेद्यतृणतृप्तैर्गोधनैर्धव-लितविपिनः, विविधमुखहोमधूमान्धशतमन्युमुक्तलोचनैरिव सहस्रसंख्यैः कृष्णशारैः शारीकृतोद्देशः, धवलधूमिमुचा केतकीवनानां रजोभिः पाण्डुरीकृतैः प्रथमोद्धूलनभस्मधूसरैः शिवपुरस्येव प्रवेशैः प्रदेशैरुपशो-भितः, शाककन्दलश्यामलितग्रामोपकण्ठकाश्यपीपृष्ठः, पदे पदे करभ-पालीभिः पीलुपल्लवप्रस्फोटितैः करपुटपीडितकोमलमातुलुङ्गदल-रसोपलिप्तैः स्वेच्छाविचितकुङ्कुमकेसरकुसुमप्रकरैः प्रत्यग्रफलरसपान-सुखसुप्तपथिकैर्वनदेवतादीयमानामृतरसप्रपागृहैरिव द्राक्षालतामण्डपैः

त्वात्कीटसंभवः। अवटुर्ग्रीवा। घण्टैव घटी घण्टाघटी। आमयोऽजीर्णम्। हरवृषभेण पीतं संतमजीर्णसंभावनया बहुधा विभक्तम्। बाष्पच्छेद्येति सौकुमार्यकथनपरम्। विपिनं गहनम्। मुक्तैः पतितैः। लोचनान्यपि कृष्णशाराणि सहस्रसंख्या न च। कृष्णशारा मृगभेदाश्च। प्रथमा गणाः। प्रवेशैर्मार्गैः। काश्यपी भूः। करभपा-लीभिः। इत्थंभूतलक्षणे तृतीया। करभो बालोष्ट्रः। पीलुर्वृक्षभेदः। प्रस्फोटितै-

मक्खियां तथा फुदकुदी चिड़ियों से अनुसृत, घेंट में बँधी घण्टियां तथा घुंघरुओं के बजने की मधुर आवाज से सुन्दर, जंगल में विचरती हुई, मानो अजीर्ण की आशङ्का से शङ्कर जी के वाहन बैल द्वारा पिये गये क्षीर-समुद्र के जल को दूध के अनेक धार के रूप में उत्पन्न करती हुई, भाप से छंटी घास को खाकर तृप्त होने वाली गायों से जहाँ जङ्गल उजला हो जाता था, अनेक यज्ञों के होम-धूमों से मानों अन्धे होने के कारण इन्द्र के द्वारा छोड़े गये नेत्रों के रूप में हजारों कृष्ण सार मृग जहाँ स्थान-स्थान को चित्र-विचित्र बना रहे थे, केतकी वनों के परागों से जहाँ के प्रदेश इस प्रकार उजले कर दिये गये थे मानो प्रथम गणों द्वारा भस्म रमाने के कारण मटमैले शिवनगर के प्रवेश-मार्ग हों, जहाँ के गाँवों के निकट की भूमि अँखुआए हुए सागों से सावली थी, जहाँ ऊंट के बच्चे पीलू के पत्ते तोड़ कर चट कर जाते, हाथों से मसल कर चुआए हुए मातुलुंगी के कोमल पत्तों के रस से लिपे हुए, स्वेच्छा से तोड़े गये फूलों के पराग से भरे लता मण्डप थे जहाँ ताजे फलो का रस पान कर पथिक आराम से सोते मानो बन देवताओं ने अमृत रस के पनसालो के रूप में उन्हें प्रदान किया हो, जहाँ

स्फुरत्फलानां च बीजलग्नशुकचञ्चुरागाणामिव समारूढकपिकुलकपोलसं-दिह्यमानकुसुमानां दाडिमीनां वनैर्विलोभनीयोपनिर्गमः, वनपालपीय-माननारिकेलरसासवैश्च पथिकलोकलुण्ठ्यमानपिण्डखर्जूरैर्गोलाङ्गूललिह्य-मानमधुरामोदपिण्डारसैश्च कोरचञ्चुजर्जरितारुकैरुपवनैरभिरामः तुङ्गार्जु-नपालीपरिवृतैश्च गाकुलावतारकलुषितकूलकीलालैरध्वगतशतशरण्यैररण्य-वरुणधराबन्धैरवध्यवनरन्ध्रः, करभीयकुमारकपाल्यमानैरौष्ट्रकैरौरभ्रकैश्च कृतसंबाधः, दिशि दिशि रविरथतुरगविलोभनायैव विलोठनमृदितकुङ्कु-मस्थलीरससमालब्धानामुत्प्रोथपुटैरुन्मुखैरुदरशायिकिशोरकजवजननाय प्रभञ्जनमिव चापिबन्तीनां वातहरिणीनामिव स्वच्छन्दचारिणीनां वड-वानां वृन्दैर्विचरद्भिराचितः, अनवरतक्रतुधूमान्धकारप्रवृत्तैर्हंसयूथैरिव

नीराजनी कृतैः। प्रपा पानीयशालिका। उपनिर्गमनानि निर्गमनमार्गाः। उद्या-नानीति केचित्। अर्जुनाः ककुभवृक्षाः। कीलालं तोयम्। धराबन्धास्तटाकानि। करभेभ्यो हिताः करभीयाः। औष्ट्रकैरुष्ट्रसमूहैः। कृतसंबाध आवृतः। किशोरकाः वत्साः। प्रभञ्जनं वातम्। वडवा अश्वाः। धूमान्धकारप्रवृत्तैर्वार्णैर्वर्धितभुवन इति विरोधच्छाया। हंसानामप्यन्धकारप्रवृत्तत्वं तमसि प्रचारात्। प्रवृत्तैराविर्भूतैः।

लाल बीजों में मानो सुग्गे की चोंच की लाली लग गई हो तथा बैठे हुए वानरों के लाल-लाल गालों से फूलों का भ्रम हो रहा हो ऐसे अनार के वनों से लुभाने वाले जहाँ के निर्गम मार्ग थे, जहाँ माली लोग नारियल के फलों का पानी पीते थे, पथिक लोग पिण्ड खजूर लपक लेते थे, लंगूर मधुर गन्धयुक्त ताड़ी को चाट जाते थे, चकोर आरूक नामक फलों को कुतर डालते, ऐसे उपवनों से मनोहर लगने वाला, जहाँ लम्बे-लम्बे ककुभ वृक्षों की पङ्क्तियों से घिरे हुए, पशुओं के उतरने (पानी में उतर कर जल पीने या नहाने) के कारण जिनके किनारे का पानी गन्दला हो गया था ऐसे तथा सैकड़ों राहगीरों के आश्रय स्थल बने हुए जंगली जलाशय थे, ऊँटों को पालने वाले लोग ऊँटों के साथ-साथ भेड़ों को को भी जहाँ चारों ओर जुटाया करते, दिशा-दिशा में मानों सूर्य के रथ के घोड़ों को लुभाने के लिए कुङ्कुम से भरी जमीन पर भुइँ लोट करने के कारण कुङ्कुम रस से लिपटी हुई, मुँह उठा कर थूथन को मरोड़ कर मानो अपने गर्भस्थ शिशु में (वायु का) वेग उत्पन्न कर रही हो इस प्रकार हवा को पीती हुए समूहों से जो युक्त था, निरन्तर यज्ञ-धूम के अन्धकार के द्वारा फैलते

गुणैर्धवलितभुवनः, संगीतगतमुरजरवमत्तैर्मयूरैरिव विभवैर्मुखरितजीवलोकः, शशिकरावदातवृत्तैर्मुक्ताफलैरिव गुणिभिः प्रसाधितः, पथिकशतविलुप्यमानस्फीतफलैर्महातरुभिरिव सर्वातिथिभिरभिगमनीयः, मृगमदपरिमलवाहिमृगरोमाच्छादितैर्हिमवत्पादैरिव महत्तरैः स्थिरीकृतः, प्रोद्दण्डसहस्रपत्रोपविष्टद्विजोत्तमैर्नारायणनाभिमण्डलैरिव तोयाशयैर्मण्डितः, मथितपयःप्रवाहप्रक्षालितक्षितितिभिः क्षीरोदमथनारम्भैरिव महाघोषैः पूरिताशः श्रीकण्ठो नाम जनपदः।

हंसपक्षे—पलायितैः। वृत्तं चरितम्, परिवर्तुलं च गुणिभिः शौर्यादिगुणयुक्तैः ससूत्रैश्च। फलमैश्वर्यमपि। अभिगमनीयः सेव्यः। मृगमदः कस्तूरिका। मृगरोमशब्देन तत्कृतवस्त्रमुच्यते। यस्य राङ्कवमिति संज्ञा। यथा च—'राङ्कवं मृगरोमजम्'। अन्यत्र—मृगाणां रोमाणि। पादाः प्रत्यन्तपर्वताः। महत्तरैर्वृद्धैः, विपुलैश्च। सहस्रपत्राणि पद्मानि। द्विजोत्तमाः पक्षिश्रेष्ठाः, ब्राह्मणाश्च द्विजोत्तमाः। मथितं तक्रम्, विलोडितं च। पयः क्षीरम्। उभयत्रापि मथनमन्था क्षीरोदस्य। घोषो गोष्ठः, शब्दश्च। आशा आशंसा, दिशश्च।

हुए गुण हंस-समूह के समान जहाँ भुवन को धवलित करते थे, सङ्गीत के समय मृदङ्ग की आवाज पर मतवाले होने वाले मयूरों की भाँति जीव लोक को जो ऐश्वर्य से मुखरित किये हुए था, चन्द्र किरण के समान स्वच्छ चरित वाले तथा मुक्ताफलों के सदृश गुणिजनों से सुशोभित, सैकड़ों पथिकों द्वारा तोड़े गये बहुत से फलों वाले विशाल वृक्षों के होने के कारण जो मानो सभी अतिथियों के लिए ठहरने योग्य था, कस्तूरी की सुगन्ध को ढोने वाले मृग-रोमों द्वारा निर्मित वस्त्र को पहनने वाले हिमालय के समीपवर्ती पहाड़ों के समान जहाँ महत्त्वपूर्ण लोग रहा करते थे, जहाँ भगवान् विष्णु के नाभि मण्डल की भाँति अनेक ऐसे जलाशय थे जिनमें खिले हुए ऊँचे कमलों पर उत्तम पक्षी सुशोभित थे (विष्णु की नाभि के पक्ष में द्विजोत्तम का अर्थ ब्रह्मा जी होगा)। क्षीर-समुद्र के मन्थन के प्रारम्भ होने के समान जहाँ दूध के मथने से उठा हुआ महाशब्द पृथ्वी को धोता हुआ दिशाओं में भरता जा रहा था ऐसा श्रीकण्ठ नाम का जनपद था।

यत्र त्रेताग्निधूमाश्रुपातजलक्षालिता इवाक्षीयन्त: कुदृष्टयः। पच्यमानन्चयनेष्टकादहनदग्धानीव नादृश्यन्त दुरितानि। छिद्यमानयूपदारुपरशुपाटित इव व्यदीर्यताधर्मः। मखशिखिधूमजलधरधाराधौत इव ननाश वर्णसंकरः। दीयमानानेकगोसहस्रशृङ्गखण्डयमान इवापलायत कलिः। सुरालयशिलाघट्टनटङ्कनिकरकृता इव व्यदीर्यन्त: विपदः। महादानविधानकलकलाभिद्रुता इव प्राद्रवन्नुपद्रवा:। दीप्यमानसत्रमहानससहस्रानलसंतापिता इव व्यलीयन्त व्याधयः। वृषविवाहप्रवृत्तपुण्यपटहपटुरव

'दक्षिणाग्निर्गार्हपत्याहवनीयौ त्रयोऽग्नयः। अग्नित्रयमिदं त्रेता' इत्यमरसिंहः। अनेकार्थवर्गेऽपि—'त्रेताग्नित्रितये युगे'। त्रेताग्निरूपोऽग्निरित्यग्निप्रकर्षार्थं त्रेतापदम्। अन्यथा तादृशस्याग्नेर्ग्रहणं प्रसज्येत। कुत्सितानि लोकायतादीनां वेदविरुद्धानि दर्शनादीनि, कुत्सिताश्च दृष्टयः कुदृष्टयः। यत्र त्रेताग्नयो हूयन्ते तत्र क्षालिता आविर्भावाद्दृष्टिर्निर्मला भवति। चयनं चित्या विशिष्टाग्निस्थापनम्। घनधाराधौतो ह्यवश्यं संकीर्णवर्णो नीलादिर्नश्यति। वर्णाश्च विप्राद्याः। टङ्कः पाषाणदारणः। सत्रं सदादानम्। महानसं पाकस्थानम्। वृषविवाहो नीलवृषोत्सर्गः।

जहाँ त्रेताग्नि अर्थात् दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य एवं आहवनीय इन तीनों प्रकार की अग्नियों से उत्पन्न हुए धुएँ के लगने के कारण निकले हुए अश्रुजल से धुलकर कुदृष्टियाँ अर्थात् बुरी नजरें (या गलत विचार) समाप्त हो गईं थीं। चयन-यज्ञ की ईंटों की अग्नियों से मानो जल कर पाप जहाँ दिखाई नहीं देते थे। यूप भी छिली हुई लकड़ी में बाँध कर फरसे से काटे हुए पशु के समान मानो अधर्म जहाँ विदीर्ण हो गया था। यज्ञाग्नि से उठे हुए मेघ के समान धुएँ की जलधार से धुल कर मानो वर्णों (जातियों) की सङ्कीर्णता विनष्ट हो गई थीं। दान में दी जाती हुई हजारों गौओं की सींगों से मानो टुकड़े-टुकड़े होकर कलि भाग गया था। देवमन्दिरों के पत्थरों को छाँटने वाली टाँकियों से मानों खण्डित होकर विपत्तियाँ चूर-चूर हो गई थीं। महादानों के समय होने वाले को साहस से मानो ऊब कर उपद्रव भाग गये थे। सत्रों के हजारों रसोई-घरों में जलने वाली अग्नियों की गर्मी से मानो सन्तप्त होकर व्याधियाँ विलीन हो गईं थी। वृषोत्सर्ग समय बजाये गये नगाड़ों की आवाज से मानो डर कर अपमृत्युएँ पास में नहीं

त्रासिता इव नोपासर्पन्नपमृत्यवः संततब्रह्मघोषबाधिरीकृता इवापजग्मुरीतयः। धर्माधिकारपरिभूतमिव न प्राभवद्दुर्दैवम्।

तत्र चैवंविधे नानारामाभिरामकुसुमगन्धपरिमलसुभगो यौवनारम्भ इव भुवनस्य, कुङ्कुममलनपिञ्जरितबहुमाहिषीसहस्रशोभितोऽन्तःपुरनिवेश इव धर्मस्य, मरुदुद्धूयमानचमरीबालव्यजनशतधवलितप्रान्त एकदेश इव सुरराज्यस्य, ज्वलन्मखशिखिसहस्रदीप्यमानदशदिगन्तः शिबिरसंनिवेश इव कृतयुगस्य; पद्मासनस्थब्रह्मर्षिध्यानाधीयमानसकलाकुशलप्र-

---

यत्र चतसृभिर्गोभिः सह दान्तोऽरण्ये स्वैरविहारायपरित्यज्यते। ब्रह्मघोषो वेदध्वनिः। अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषका शलभाः शुकाः। अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥' इति।

तत्र चेत्यादौ। स्थाण्वीश्वराख्यो जनपदविशेष इति सम्बन्धः। आरामा उपवनानि, रामाश्च भार्याः। गन्धस्य परिमलस्याभोगोऽनुभवः, संस्कारः। मलनं निवर्तनम्, समालम्भनं च। महिषी मुख्या जायापि। मरुतो वाताः, देवाश्च। शिबिरसंनिवेशः। कटकबन्धः। कृतं प्रतिसमाहितं युगं द्वयं स्वपक्षपरपक्षरूपं येन स राजोच्यते; कृतयुगं वाद्यो युगभेदः। पद्मासनमासनभेदः, पद्ममेवासनं च।

फटकती थी। निरन्तर वेदध्वनि के कारण मानो बहरी होकर ईति बाधाएँ चली गई थीं। धर्म के अधिकार से मानो परिभूत होकर दुर्भाग्य उत्पन्न ही नहीं हुआ।

इस प्रकार के उस (श्रीकण्ठ नामक जनपद) में, संसार के यौवनारम्भ के समान जो अनेक उपवनों से सुन्दर फूलों की फैलती हुई सुगन्ध के कारण सुभग था, धर्म (श्लेष से यमराज) के अन्तःपुर निवेश के समान जो कुङ्कुम को मलने के कारण पिञ्जरित शरीर वाली हजारों रानियों (यमराज पक्ष में भैंसों) से सुशोभित था, स्वर्ग के एक हिस्से के समान जो वायु से कम्पित चमरी गायों के बालों के सैकड़ों पंखों से सफेद प्रान्त (पार्श्ववर्ती भूभाग) वाला था, सतयुग के सेनानिवेश (सेना के रहने की छावनी) के सदृश जो जलती हुई हजारों यज्ञाग्नियों से प्रकाशित दसों दिशाओं से युक्त था, जहाँ पद्मासन लगा कर बैठे हुए महर्षि लोग सम्पूर्ण अमङ्गलों का शमन करते इसलिए जो ब्रह्मलोक के प्रथम

शमः प्रथमोऽवतार इव ब्रह्मलोकस्य, कलकलमुखरमहावाहिनीशतसंकुलो विपक्ष इवोत्तरकुरूणाम्, ईश्वरमार्गणसंतापानभिज्ञसकलजनो विजिगीषुरिव त्रिपुरस्य, सुधारससिक्तधवलगृहपङ्क्तिपाण्डुरः प्रतिनिधिरिव चन्द्रलोकस्य, मधुमदमत्तकाशिनीभूषणरवभरितभुवनो नामाभिहार इव कुबेरनगरस्य, स्थाण्वीश्वराख्यो जनपदविशेषः।

यस्तपोवनमिति मुनिभिः, कामायतनमिति वेश्याभिः, संगीतशालेति लासकैः, यमनगरमिति शत्रुभिः, चिन्तामणिभूमिरित्यर्थिभिः, वीरक्षेत्र-

---

ब्रह्मर्षय उत्तमद्विजाः। ब्रह्मा चासावृषिश्चेति। यद्वा,—पद्मासनस्थितो ब्रह्मा च ऋषयश्चेति द्वन्द्वः। वाहिन्यो नद्यः सेना च। विपक्षो बलम्, मेरुसमीपवासिन जनाश्चोत्तरकुरवः ईश्वरमार्गणो राजदण्डसाधनयाच्ञा, हरशरश्चश्वरमार्गणः। संतापानभिज्ञेति। ईश्वरशरेण हि सस्त्रीकं त्रिपुरं दग्धम्। योधजनास्ते हि युद्धे देवैर्हता इत्याहुः। जेताऽत्र विजिगीषुः। 'सुधा मक्कोलामृतयोः'। मत्तकाशिनी मुख्या स्त्री, यक्षिणी च। नामाभिहारः पर्यायान्तरम्।

लासकैर्नटैः। वैदेहकैर्वणिग्भिः द्यूतस्थानमिति साधुभ्यो भागो दीयते तत्र।

अवतार की भाँति था, बड़ी-बड़ी सैकड़ों नदियाँ (सेनाएँ) अपनी कलकल ध्वनि से जिसे भर रही थीं इसलिए जो उत्तर कुरुओं के प्रतिद्वन्द्वी के समान था, जहाँ के सारे लोग राजा (ईश्वर) के द्वारा (कर ग्रहणार्थ) ढूँढे जाने के कष्ट से अनजान थे इसलिए जो मानो त्रिपुर को जीतने का इच्छुक था (क्योंकि त्रिपुर के लोग तो ईश्वर अर्थात् भगवान् शङ्कर के मार्गण अर्थात् बाण की अग्नि के सन्ताप से अभिज्ञ थे), सुधा (चूना, चन्द्र पक्ष में—अमृत) के रस से पुते हुए उजले-उजले महलों के कारण स्वयं भी उजले होने से मानो चन्द्रलोक का प्रतिनिधित्व कर रहा था, जहाँ मधुपान से मतवाली कामिनियों (अथवा यक्षिणियों) के गहनों की ध्वनि सम्पूर्ण भुवन में व्याप्त हो जाती थी इस प्रकार जो मानो कुबेर की नगरी अलका के ही बदले हुए रूप के सदृश था ऐसा स्थाणीश्वर नाम का जनपद-विशेष (राजधानी) था।

जो मुनियों द्वारा तपोवन, वेश्याओं द्वारा कामायतन अर्थात् कामोपभोग का स्थान, नर्त्तकों द्वारा संगीतशाला, शत्रुओं द्वारा यमपुरी, याचकों द्वारा चिन्तामणि

मिति शस्त्रोपजीविभिः गुरुकुलमिति विद्यार्थिभिः, गन्धर्वनगरमिति गायनैः, विश्वकर्ममन्दिरमिति विज्ञानिभिः, लाभभूमिरिति वैदेहकैः, द्यूतस्थानमिति बन्दिभिः, साधुसमागम इति सद्भिः, वज्रपञ्जरमिति शरणागतैः, विटगोष्ठीति विदग्धैः, सुकृतपरिणाम इति पथिकैः, असुरविवरमिति वार्तिकैः शाक्याश्रम इति शमिभिः, अप्सरःपुरमिति कामिभिः, महोत्सवसमाज इति चारणैः, वसुधारेति च विप्रैरगृह्यत ।

यत्र च मातङ्गगामिन्यः शीलवत्यश्च, गौर्यो विभवरताश्च, श्यामाः पद्मरागिण्यश्च, धवलद्विजशुचिवदना मदिरामोदिश्वसनाश्च, चन्द्रकान्त-

---

बन्दिभ्योऽभिवाञ्छितसंवृत्तेः सुकृतपरिणमता । वार्तिकैर्विवरव्यसनिभिराचार्यैः । शाक्यो बौद्धः । चारणैः कुशीलवैः । वसुधारा धनप्रवाहः ।

मातङ्गेत्यादयो विरोधाः । मातङ्गो हस्ती चण्डालश्च । याः प्रमदाश्चण्डालानपि गच्छन्ति ताः कथं शीलवत्य इति विरोधः सर्वत्र ज्ञेयः । गौर्यो गौराङ्ग्यः । विभव ऐश्वर्ये रक्ताः । यत्र विगतो भवस्तत्र कथं गौरी रतेति । विगतं भवे रतं यस्या वा । श्यामाः श्यामलाङ्ग्यः । पद्मरागिण्यो लोहितमणिभूषणाः । श्यामा रात्रयः कथं पद्मरागिण्यः । रात्रौ पद्मानां संकोचात् । द्विजैर्दन्तैः शुचिवदना मदिरावन्मदिरयैव वा । आमोदो श्वसनो मुखमारुतो यासां, धवलद्विजवच्छुद्धब्राह्मणविच्छुचिवदनं ताः

की भूमि, शस्त्रों पर अपनी जीविका चलाने वालों द्वारा वीर क्षेत्र, विद्यार्थियों द्वारा गुरुकुल, गायकों द्वारा गन्धर्वनगर, वैज्ञानिकों द्वारा विश्वकर्मा का मन्दिर, बनियों द्वारा मुनाफे की जगह, बन्दी लोगों द्वारा जुआ खेलने का स्थान, सज्जनों द्वारा साधुसमागम, शरणापन्न लोगों द्वारा वज्रनिर्मित पिंजड़ा, चतुर लोगों द्वारा बिटगोष्ठी, राहगीरों द्वारा पुण्यफल, वार्तिक लोगों द्वारा अपनी साधना चलाने के लिए असुर विवर, भिक्षुओं द्वारा बौद्धविहार; कामी लोगों द्वारा वेश्यानगर, चरणों द्वारा महोत्सव का समाज तथा ब्राह्मणों द्वारा धनप्रवाह के रूप में ग्रहण किया अर्थात् समझा जाता था ।

जहाँ पर स्त्रियाँ मातङ्गगामिनी अर्थात् हाथी के समान गमन करने वाली थीं (न कि मातङ्ग अर्थात् चाण्डाल का गमन करने वाली थी क्योंकि वे) शीलवती थीं । वे गौरी (पार्वती) अर्थात् गौरवर्णा थी और (पार्वती होकर भी भव अर्थात् शिव में अनुरक्त न थी) विभव अर्थात् ऐश्वर्य में अनुरक्त थी । श्यामा (रात्रियां) अर्थात् साँवली थी और पद्मरागिणी (कमलों में अनुराग करने वाली, रातें कमलों में अनुराग नहीं करती यही विरोध है) अर्थात् लालमणियों के आभूषण पहनती थी । उजले दाँतों से उनका मुख पवित्र था तथा मदिरा

वपुषः शिरीषकोमलाङ्ग्यश्च, अभुजङ्गगम्याः कञ्चुकिन्यश्च, पृथुकलत्रश्रियो दरिद्रमध्यकलिताश्च, लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च, अप्रमत्ताः प्रसन्नोज्ज्वलमुखरागाश्च, अकौतुकाः प्रौढाश्च प्रमदाः।

कथं मदिरामोदिश्वसनाः। चन्द्रवत्कान्तं वपुर्यासाम्। शिरीषपुष्पवत्सुकुमाराङ्ग्यश्चन्द्रकान्तस्येव वपुर्यासां ताः, कथं शिरीषकोमलाङ्ग्यः। भुजङ्गा विटाः कञ्चुकं स्त्रीणां वासः, बारवाणाख्यश्चायाश्च कञ्चुकिन्यः सर्पिण्यस्ताः कथं भुजङ्गैर्न गम्यः। कलत्र जघनम्। दरिद्रं क्षामं मध्यमुदरं यासाम्। कलत्रस्य परिवारस्य पृथ्वीः श्रीस्ताः कथं दरिद्राणां निर्धनानां मध्ये कलिताः संख्याता भवन्ति। लावण्यं सौन्दर्यम्; मधुरं हृद्यम्। लावण्यं रसवतीनां मधुरभाषितं विभाव्यते। अप्रमत्ताः प्रमादशून्याः। प्रसन्नो मनोहरः। उज्ज्वलो मनोहारी। प्रसङ्गा च सुरा तयोज्ज्वलो मुखरागो यासां ताः, कथमप्रमत्ताः। अकौतुका अकरकङ्कणाः। विवाहितानां हि करकङ्कणोऽवबध्यते। रुद्राक्षदर्पसिद्धार्थशिखिपक्षोरगत्वचः। कङ्कणौपधयश्चेति कौतुकाख्याः प्रकीर्तिता॥'

की गन्ध से युक्त साँस लेती थीं। चन्द्रमा के समान सुन्दर शरीर वाली थी (या चन्द्रकान्तमणि के समान कठोर शरीर वाली थी फिर भी) शिरीष के फूल के समान उनके अङ्ग कोमल थे। भुजङ्ग अर्थात् लम्पट व्यक्ति उन्हें नहीं प्राप्त कर सकते थे और वे कञ्चुक धारण करती थीं (विरोध यह है कि जो कञ्चुक अर्थात् केंचुल को धारण करती है अर्थात् सर्पिणी हो वह भुजङ्गों अर्थात् सर्पों के द्वारा कैसे अगम्या है)। पृथु अर्थात् स्थूल जङ्घाओं से सुशोभित थीं और उनका मध्य अर्थात् कटि भाग पतला था (विरोध यह है कि जो राजा पृथु की स्त्रियों के समान हों वे दरिद्रों के मध्य में कैसे गिनी जायेंगी?)। वे लावण्यवती और मधुरभाषिणी थीं (विरोध यह है कि जो लावण्यवती अर्थात् नमकीन हैं वे भला मधुर कैसे हो सकती है?)। वे प्रमादरहित थीं तथा उनका वर्ण प्रसन्न एवं उज्ज्वल था (विरोध यह है कि जो प्रमत्ता नहीं वे प्रसन्ना अर्थात् मदिरा के कारण शृङ्गार डूबे हुए मुखराग वाली कैसे हो सकती हैं)। वे अकौतुका अर्थात् प्रिय-समागम के लिए उत्सुकता रहित थीं और प्रौढ़ा अर्थात् पूर्ण यौवना थी (विरोध यह है कि जो कौतुक अर्थात् वैवाहिक मङ्गल-सूत्र से रहित हों वे प्रौढा अर्थात् विवाहिता कैसे हो सकती हैं?)।

यत्र च प्रमदानां चक्षुरेव सहजमुण्डमालामण्डनं भारः कुवलयदलदामानि, अलकप्रतिबिम्बान्येव कपोलतलगतान्यक्लिष्टाः श्रवणावतंसाः पुनरुक्तानि तमालकिसलयानि, प्रियकथा एव सुभगाः कर्णालंकारा आडम्बरः कुण्डलादिः, कपोला एव सततमालोककारका विभवो निशासु मणिप्रदीपाः सुरभिनिःश्वासाकृष्टं मधुकरकुलमेव रमणीयं मुखावरणं कुलस्त्रीजनाचारो जालिका, वाण्येव मधुरतरा वीणा बाह्यविज्ञानं तन्त्रीताडनम्, हासा एवातिशयसुरभयः पटवासा निरर्थकाः कर्पूरपांसवः, अधरकान्तिविसर एवोज्ज्वलतरोऽङ्गरागो निर्गुणो लावण्यकलकङ्कः कुङ्कुमपङ्कः, बाहव एव कोमलतमाः, परिहासप्रहारवेत्रलता निष्प्रयो-

मुण्डमालारूपं मण्डनं मुण्डमालामण्डनम् । सहजमकृत्रिमम् । अनेन ककुवलयदलदामाभ्यासोत्कर्षः, न तु कुवलयदलदामसम्भवेऽपि प्रतिनिधिरूपतापादनम् । भार इत्यनेनैष एवार्थः प्रकटितः । एवमक्लिष्टा इत्यादौ बोद्धव्यम् । आड-

जहाँ सुन्दरियों की आँखें ही सिर की सहज फूल-माला बन जातीं, कुवलय के फूलों की माला भार प्रतीत होती । उनके गालों पर छितराये हुये बालों के प्रतिबिम्ब ही क्लेश न देने वाले कर्णाभरण बन जाते, फिर कानों में कर्णाभरण के रूप में लगे हुए तमालपत्र पुनरुक्ति मात्र हो जाते । अपने प्रियतम की वार्ता ही उनके कान के सुन्दर आभूषण बन जाती इसलिए कुण्डल आदि आडम्बर मात्र हो जाते । उनके गाल ही अनवरत प्रकाश उत्पन्न करते, मणियों के दीपक तो रातों में विभव मात्र थे । उनकी सुगन्धित साँसों पर आकृष्ट भौंरे ही उनके मुख के सुन्दर आवरण अर्थात् घूँघट के पट का काम करते थे फिर भी कुलीन स्त्रियों के आचार के नाते वे अपने मुख पर घूँघट की जाली डाल लेतीं थीं । उनकी वाणी ही मधुर वीणा थी, केवल बाह्यकला के रूप में वे तारों को छेड़ती थी । उनकी हँसी ही अत्यन्त सुगन्धित पटवास का काम करती थी; कपूर की धूलि व्यर्थ प्रतीत होती थी । उनके होठों की कान्ति का फैलाव ही उनके शरीर के उजले अङ्गराग का काम करता था फिर भी बिना लाभ के कुङ्कुम लगाना उनके लावण्य का कलङ्क ही था । उनकी कोमल भुजाएँ हँसी-मजाक के अवसर पर पीटने के काम में आने वाली नेत्र लता थी, कमलदण्ड का वहाँ कुछ भी

जनानि मृणालानि, यौवनोष्मस्वेदबिन्दव एव विदग्धाः कुचालंकृतयो हारास्तु भाराः, श्रोण्य एव विशालस्फटिकशिलातलचतुरस्रा रागिणां विश्रामकारणमनिर्मितं भवनमणिवेदिकाः। कमललोभनिलीनान्यलिकुलान्येव मुखराणि पदाभरणकानि निष्फलानीन्द्रनीलमणिनूपुराणि। नूपुररवाहृता भवनकलहंसा एव समुचिताः संचरणसहाया ऐश्वर्यप्रपञ्चा परिजनाः।

तत्र च साक्षात्सहस्राक्ष इव सर्ववर्णधरं धनुर्दधानः, मेरुमय इव कल्याणप्रकृतित्वे, मन्दरमय इव लक्ष्मीसमाकर्षणे, जलनिधिमय इव मर्यादायाम्, आकाशमय इव शब्दप्रादुर्भावे, शशिमय इव कलासंग्रहे,

---

म्बरः स्फुटः। जालिका शिरोवस्त्रभेदः। चतुरस्रा रम्याः। विश्रमकरणमिति गुरुत्वात्।

तत्र चेत्यादौ। तत्र पुष्यभूतिर्नाम राजासीदिति सम्बन्धः। वर्णा विप्राद्याः, शुक्लाद्याश्च। कल्याणं श्रेयः, सुवर्णं च। मन्दरेण श्रीराकृष्टामृतमन्थने, पुण्यभूतिना भैरवाचार्यवेतालसाधने। मर्यादाचारः सीमा च। शब्दो यशोऽपि। प्रादुर्भावः

प्रयोजन नहीं था। जवानी की गरमी से उनके स्तनों पर छूटती हुई पसीने की बूँदें ही सुन्दर हार के समान प्रतीत होती थी, हार तो उनके लिए बोझ ही था। उनके नितम्ब ही विशाल स्फटिक मणि के शिलातल के सदृश रमणीय होने के कारण रागी (अर्थात् कामी) लोगों के लिए विश्राम का कारण बन रहे थे, महलों में निर्मित मणि वेदियाँ तो व्यर्थ थीं। उनके चरणों को कमल समझ कर बैठे हुए भौंरे ही उनके शब्दायमान चरणा भूषण थे, पैरों में लगे हुये इन्द्र नीलमणि के नूपुर तो निष्फल थे। उनके पैरों में बँधे हुये नूपुरों की आवाज पर खिंचे चले आये भवन के कलहंस ही उनके घूमने के लिए योग्य साथी थे, परिजन तो ऐश्वर्य के प्रदर्शन मात्र थे। वहीं पर (अर्थात् स्थाणीश्वर में), जिस प्रकार इन्द्र सभी वर्णों अर्थात् रङ्गों का धनुष धारण करता है उसी प्रकार ब्राह्मणादि सम्पूर्ण वर्णों के लिए नियमार्थ धनुष धारण करने वाला, कल्याण प्रकृति अर्थात् श्रेयभावना से भरे होने के कारण मानो कल्याण (सुवर्ण) के सुमेरु से बना हुआ, लक्ष्मी के आकर्षण में मन्दराचल के सदृश, मर्यादा में समुद्र के सदृश, शब्द रूप यश को उत्पन्न करने में आकाश के सदृश, कलाओं के संग्रह में चन्द्रमा

वेदमय इवाकृत्रिमालापत्वे, धरणिमय इव लोकधृतिकरणे, पवनमय इव सर्वपार्थिवरजोविकारहरणे, गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुयात्रस्तेजसि, सुमन्त्रो रहसि, बुधः, सदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्नः समरे, शूरः शूरसेनाक्रमणे, दक्षः प्रजाकर्मणि, सर्वादिराजतेजःपुञ्जनिर्मित इव राजा पुष्यभूतिरिति नाम्ना बभूव ।

प्रकाशता । कला गीताद्याः, लेखाश्च । अकृत्रिमः सत्ययुक्तः, अपौरुषेयश्च । धृतिर्धैर्यम्, धारणं च । पार्थिवो राजा, पृथिवीसम्बन्धी च । रजोविकारा रागाद्याः, वेणुकार्याणि । गुर्वित्यादिना वक्रोक्त्याङ्गानां गुर्वादिमयत्वं सूचयति । गुरुरुपदेष्टा, गुरुर्महान् । गम्भीरशब्दत्वाद्बृहस्पतिश्च । पृथुर्विपुलः, आदिराजश्च कश्चित् । विशालो विस्तीर्णः विशालाद्याश्च नृपा अभवन् । अथ विशालो नाम बोधिसत्त्वः स एव शान्तः शान्तमना इत्यपि प्रतीतिरस्ति । जनको जनयिता, जनक इव तपस्वी च । सुयात्र इति । शोभना यात्रा यस्य सोऽपि । कर्तव्यावधारण मन्त्रः स शोभनो यस्येति च । बुधः पण्डितः, ग्रहश्च । अर्जुनः शुक्लोऽपि । भीष्मो भयनकः, गाङ्गेयश्च । निषधो घर्षणीयः, कठिनो वा, नलस्य च पिता, गिरिभेदो वा शरो विक्रान्तः यदूनां राजा च दक्षश्चतुरः; प्रजापतिश्च । महिषीं महादेवीमपि । निसर्गः स्वभावः । स्वैरिणी स्ववशा ।

के समान, स्वाभाविक बात-चीत करने में वेद के सदृश, लोक-धारण में पृथिवी के सदृश, पार्थिवों अर्थात् राजाओं के (अथवा पृथिवी सम्बन्धी) रजोविकारों को दूर करने में वायु के सदृश, वाणी में महान् या बृहस्पति, वक्ष के विषय में पृथु अर्थात् विपुल या राजा पृथु, मन का विशाल, तपस्या करने में जनक, तेज में सुयात्र नामक राजा, रहस्य के सम्बन्ध में सुमन्त्र अर्थात् शोभन मन्त्र या विचार देनेवाला या सुमन्त्र नामक राजा, सभा में पण्डित, कीर्त्ति में अर्जुन, धनुर्विद्या में भीष्म, शरीर में अघर्षणीय या निषध, युद्ध में शत्रु को मारने वाला या शत्रुघ्न, शूरसेन या शूरों की सेना पर आक्रमण करने में शूर, प्रजा के कार्य में दक्ष अर्थात् निपुण या दक्ष प्रजापति तथा मानो सभी पूर्व राजाओं की तेजोराशि से निर्मित किया गया ही ऐसा पुस्यभूति नाम का राजा हुआ ।

पृथुना गौरिवेयं कृतेति यः स्पर्धमान इव महीं महिषीं चकार। निसर्गस्वैरिणी स्वरूच्यनुरोधिनी च भवति हि महतां मतिः। यतस्तस्य केनचिदनुपदिष्टा सहजैव शैशवादारभ्यानन्यदेवता भगवति, भक्तिसुलभे, भुवनभृति, भूतभावने भवच्छिदि, भवे भूयसो भक्तिरभूत्। अकृतवृषभध्वजपूजाविधिर्न स्वप्नेऽप्याहारमकरोत्। अजम्, अजरम्, अमरगुरूम्, असुरपुररिपुम्, अपरिमितगणपतिम्, अचलदुहितृपतिम्, अखिलभुवनकृतचरणनतिम्, पशुपतिं प्रपन्नोऽन्यदेवताशून्यमन्यत त्रैलोक्यम्। भर्तृचित्तानुवर्तिन्यश्चानुजीविनां प्रकृतयः। तथा हि–गृहे गृहे भगवानपूज्यत खण्डपरशुः। बबुरस्य होमालवालानलविलीयमानबहुलगुग्गुलुगन्धगर्भाः स्नपनक्षीरशीकरक्षोदक्षरारिणो विल्वपल्लवदामदलोद्वाहिनः पुण्य

खण्डपरशुः शिवः। ववुरवहन्; होमालवालमग्निकुण्डम्। सपर्या पूजा।

आदि राजा पृथु ने पृथिवी को धेनु बनाया था अतः मानो इसी स्पर्धा में जिस (राजा पुष्यभूति) ने पृथिवी को अपनी महिषी (भैंस अर्थात् रानी) बना लिया। महान् लोगों की बुद्धि स्वभाव से ही स्वच्छन्द और अपनी रुचि के अनुसार चलने वाली होती है। क्योंकि उस राजा की बिना किसी के द्वारा उपदेश दिये ही स्वाभाविक रूप से बचपन से ही भक्ति द्वारा सुलभ होने वाले, संसार का भरण-पोषण करने वाले, भूत भावन तथा मोक्ष प्रद भगवान् शङ्कर में अनन्य भक्ति थी। वृषभध्वज अर्थात् भगवान् शङ्कर की पूजा किये बिना वह स्वप्न में भी कुछ नहीं खाता था। वह अजन्मा, अजर, देवताओं के गुरु, त्रिपुरारि, असंख्य प्रमथगणों के स्वामी, पर्वत (हिमालय) की पुत्री अर्थात् पार्वती के पति, समस्त संसार द्वारा वन्दित चरणों वाले, भगवान् पशुपति अर्थात् शङ्कर के शरणापन्न था तथा यह मानता था कि भगवान् शङ्कर के अतिरिक्त तीनो लोकों में दूसरा कोई देवता नहीं है। स्वामी के हृदय के अनुसार ही उसके अनुजीवी लोगों के स्वभाव होते हैं। इसलिए घर-घर में भगवान् शङ्कर पूजे जाते थे।

होम के थल्ले में पड़ते हुए गुग्गुल की गन्ध से भरी हुई, शङ्कर जी को दूध से नहलाने में उड़े हुए फुहारों से शीतल एवं विल्वपत्रों की माला की उड़ती

विषयेषु वायवः। शिवसपर्यामुचितैरुपायनैः प्राभृतैश्च पौराः पादोपजीविन सचिवाः स्वभुजबलनिर्जिताश्च करदीकृता महासामन्तास्तं सिषेविरे। तथाहि–कैलासकूटधवलैः कनकपत्रलतालंकृतविषाणकोटिभिर्महापट्टैश्चयमणियष्टिप्रदीपैश्चब्रह्मसूत्रैश्च महार्हमाणिक्यखण्डखचितैश्च मुखकोषैः परितोषमस्य मनसि चक्रुः। अन्तःपुराण्यपि स्वयमारब्धबालेयतण्डुलकण्डनानि देवगृहोपलेपनलोहिततकरकिसलयानि कुसुमग्रथनव्यग्रसमस्तपरिजनानि तस्याभिलषितमन्ववर्तन्त। तथा च परममाहेश्वरः स भूपालो लोकतः शुश्राव भुवि भगवन्तमपरमिव साक्षाद्दक्षमखमथनं दाक्षि-

---

उपायनं ढौकनिका स्वयमानीते। प्राभृतं कौशलिका सखिभिः प्रहीयते। करदीकृता दण्डदाः कृताः। कूर्चं श्रृङ्गम्। यत्र वस्त्रेषु पुष्पाणि सूत्रैः क्रियन्ते स पुष्पपट्टः। ज्वलन्मणिशिखरा स्वर्णयष्टिर्यष्टिप्रदीपः। ब्रह्मसूत्रैर्यज्ञोपवीतः। मुखयुक्ताः कोषा मुखकोषाः। ये लिङ्गोपरि दीयन्ते। बलये हिता बालेयाः। 'छदिरूपधिबलेर्ढञ्' ग्रथनशब्दश्चिन्त्यः। ग्रन्थनमिति भाव्यम्। अभिलषितमन्ववर्तन्तेत्यनेन चित्तानुवृत्तिः

हुई हवा उस राजा के देश मे चारों ओर बहने लगी। भगवान् शङ्कर की पूजा के लिए उपयोगी उपहारों एवं भेंटों से नगर के लोग, राज्य के कर्मचारी, मंत्री तथा भुजबल से पराजित होकर कर देने वाले बड़े-बड़े सामन्त भी उसकी सेवा करते थे। जैसा कि—कैलास पर्वत की चोटी के समान उजले, सोने के पत्तरों से जिनकी सींगों के अग्रभाग मढ़े हुए थे ऐसे तथा विशाल आकृतिवाले सायङ्कालीन पूजा के बैल, कढ़े हुए फूलदार कपड़े, मणिनिर्मित यष्टि प्रदीप, यज्ञोपवीत और बहुमूल्य रत्नों के टुकड़ों से खचित (शिवलिङ्ग पर चढ़ाये जाने वाले) मुखकोश अर्पित कर लोग उसके मन में सन्तोष उत्पन्न करते थे। पूजा के लिए स्वयं चावल को फटकने-बीनने वाली एवं देव मन्दिरों को स्वयं लीपने के कारण जिनके हाथ रूपी पल्लव लाल हो गये थे ऐसी स्त्रियों तथा फूल गूँथने में व्यग्र सम्पूर्ण परिजनों से युक्त उसके अन्तःपुर भी उसकी इच्छा का अनुगमन करते थे। इस प्रकार भगवान् महेश्वर के परम भक्त उस राजा ने लोगों से सुना कि कोई भैरवाचार्य नामक दाक्षिणात्य महाशैव हैं जो साक्षात् भगवान् शिव के

णात्यं बहुविधविद्याप्रभावप्रख्यातैर्गुणैः शिष्यैरिवानेकसहस्रसंख्यैर्व्याप्तमर्त्यलोकं भैरवाचार्यनामानं महाशैवम्। उपनयन्ति हि हृदयमदृष्टमपि जनं शीलसंवादाः। यतः स राजा श्रवणसमकालमेव तस्मिन्भैरवाचार्ये भगवति द्वितीय इव कपर्दिनि दूरगतेऽपि गरीयसीं बबन्ध भक्तिम्। आचकाङ्क्ष च मनोरथैरप्यस्य सर्वथा दर्शनम्।

अथ कदाचित्पर्यस्तेऽस्ताचलचुम्बिनि वासरेऽन्तःपुरवर्तिनं राजानमुपसृत्य प्रतीहारी विज्ञापितवती—'देव! द्वारि परिव्राडास्ते, कथयति च भैरवाचार्यवचनाद्देवमनुप्राप्तोऽस्मि'। इति राजा तु तच्छ्रुत्वा सादरम्—'क्वासौ? आनयात्रैव, प्रवेशयैनम्' इति चाब्रवीत्। तथा चाकरोत् प्रतीहारी। न चिराच्च प्रविशन्तं प्रांशुम्, आजानुभुजम्, भैक्षक्षाममपि स्थूलास्थिभिरवयवैः पीवरमिवोपलक्ष्यमाणम्, पृथूत्तमाङ्गम्,

---

शुद्धान्तानां वणिता। भुवीति। भूस्थत्वेऽप्यसुलभत्वदर्शनमस्योक्तम्। शीलसंवादाश्चरित्रसादृश्यानि। कपर्दिनि शिवे।

न चिराच्चेत्यादौ। मस्करिणमद्राक्षीदिति सम्बन्धः। प्रांशुं दीर्घम्। जानुरू-

---

दूसरे अवतार हैं और बहुत प्रकार की विद्याओं से प्रसिद्ध हजारों की संख्या में गुणों के समान अपने शिष्यों से सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हैं। पहले न देखे हुए व्यक्ति को भी शीलगुण के सम्वाद हृदय के समीप कर देते हैं। क्योंकि वह राजा सुनते ही दूर होने पर भी साक्षात् शङ्कर के समान भैरवाचार्य के प्रति प्रगाढ भक्ति से युक्त हो गया। वह मनोरथों द्वारा ही सर्वथा उनके दर्शन की आकांक्षा करने लगा।

इसके बाद किसी दिन जब अस्ताचल की ओर दिन ढलने लगा तो अन्तःपुर में विराजमान राजा के समीप जाकर प्रतीहारी ने निवेदन किया—"देव! दरवाजे पर एक परिव्राजक उपस्थित हैं और कह रहें हैं कि भैरवाचार्य के आदेश से मैं महाराज के पास आया हूँ।' उसे सुनकर राजा ने आदरपूर्वक "कहाँ हैं? यहीं ले आओ, उन्हें प्रवेश करने दो" ऐसा कहा। प्रतीहारी ने वैसा ही किया। थोड़ी ही देर में प्रवेश करते हुए लम्बे कदवाले, घुटनों तक जिनके हाथ थे एसे, भिक्षाटन के कारण दुबले होने पर भी मोटी हड्डियों वाले अङ्गों के कारण मोटे

त्तुङ्गवलिभङ्गस्थपुटललाटम्, निर्मांसगण्डकूपकम्, मधुबिन्दुपिङ्गल-परिमण्डलाक्षम्, ईषदावक्रघोणम्, अतिप्रलम्बैककर्णपाशम्, अला-बुबीजविकटोन्नतदन्तपङ्क्तिम्, तुरगानूकश्लथाधरलेखम्, लम्बचिबुकायततरलपनम्, अंसावलम्बिना काषायेण योगपट्टकेन विरचितवैक-क्षकम्, हृदयमध्यनिबद्धग्रन्थिना च रागेणेव खण्डशः कृतेन धातुरसा-रुणेन कर्पटेन कृतोत्तरासङ्गम्, पुनरुक्तबालप्रग्रहवेष्टनिश्चिलमूलेन बद्ध-मृत्परिशोधनवंशत्वक्तितउना कौपीनसनाथशिखरेण खर्जूरपुटसमुद्गक-

रुपर्वा। उक्तं च—'जङ्घा तु प्रसृता जानुरुपर्वाष्ठीवदस्त्रियाम्'। पीवरं। स्थूलम्। स्थपुटं निम्नोन्नतम्। ललाटमलिकं गोधिः। गण्डकूपोऽक्षणोरधोदेशः। घोणा नासिका। अलाबुस्तुम्बी। उक्तं च—'तुम्ब्यलाबू उभे समे'। तुरगानामधस्तादोष्ठोऽनूकः। 'अधोऽधरस्य चिबुकम्। लपनं मुखम्। उत्तरासङ्गमुपरिप्रावरणम्। पुनरुक्तः पौनः-पुन्येन कृतम्। प्रग्रहो रज्जुः। तितउश्चालनी परिपवनशब्दवाच्या। कौपीनं गुह्यदेश उपचारात्, तदाच्छादनं च खर्जूराख्यस्य वृक्षस्य च सम्बन्धिभिः पुटैः

से दीखने वाले, विशाल मस्तक वाले, लम्बी रेखाओं के कारण जिनका ललाट ऊंचा-नीचा लग रहा था ऐसे, जिनके गालों में मांस न होने के कारण गड्ढे पड़े हुए थे ऐसे, शहद की बूंदों के समान पीली पुतलियों वाले, जिनकी नाक थोड़ी टेढ़ी थी ऐसे, जिनके कान की एक पाली लम्बी थी ऐसे, लौकी के बीज की भांति जिनके दांत निकले हुए थे ऐसे, जिनका निचला होंठ घोड़े के निचले होंठ के समान लटका हुआ था ऐसे, लम्बी ठुड्डी के कारण जिनका मुंह लम्बोतरा सा लग रहा था ऐसे, कंधे से लटकते हुए गेरुए रंग के योग पट्ट से जिसने अपना वैकक्षक बना लिया था ऐसे, मानो हृदय के बीच पड़ी ग्रन्थि वाले तथा टुकडे टुकड़े किये गये राग हों इस प्रकार धातु रस अर्थात् गेरु के रंग से रंगे हुए कपड़े को छाती के बीच में खण्ड-खण्ड करके चादर के रूप में जो बांधे हुए था ऐसे, एक सिरा बायें हाथ में पकड़े हुए, बांस के दूसरे सिरे से जिसके कंधे के पीछे लटकती हुई झोली थी। झोली का ऊपरी भाग बालों की बँटी हुई रस्सी से खूब बँधा हुआ था, मिट्टी चालने के लिए बांस की बनी हुइ चलनी उसमें बँधी थी। अग्रभाग में कौपीन लटक रहा था, झोली के अन्दर खजूर

गर्भीकृतभिक्षाकपालकेन दारवफलकत्रयत्रिकोणत्रियष्टिनिविष्टकमण्डलुना बहुरुपादितपादुकावस्थानेन स्थूलदशासूत्रनियन्त्रितपुस्तिकापूलकेन वामकरधृतेन योगभारकेणाध्यासितस्कन्धम्, इतरकरगृहीतवेत्रासनं मस्करिणमद्राक्षीत्। क्षितिपतिरप्युगपतमुचितेन चैनमादरेणान्वग्रहीत्। आसीनं च पप्रच्छ—'क्व भैरवाचार्यः ?' इति सादरनरपतिवचनमुदितमतिस्तु परिव्राट् तमुपनगरं सरस्वतीतटवनावलम्बिनि शून्यायतने स्थितमाचचक्षे। भूयश्चाबभाषे—'अर्चयति हि महाभागं भगवानाशीर्वचसा' इत्युक्त्वा चोपनिन्ये योगभारकादाकृष्य भैरवाचार्यप्रहितानि रत्नयन्ति बहलालोकलिप्तान्तःपुराणि पञ्च राजतानि पुण्डरीकाणि।

क्लिष्टैः, पत्रैश्च समुद्गकः कपालभङ्गो भिक्षार्थं क्रियते। दारवे काष्ठसम्बन्धिनि फलकत्रये त्रयः कोणास्तेषु यास्तिस्रो यष्टयस्तासु निविष्टः कमण्डलुर्यत्र तेन। योगभारकेण मात्राभारिकया। मस्करिणं परिव्राजकम्। राजतानि रौप्याणि।

के पत्तों को मोड़कर बनाया हुआ भिक्षा-कपाल रखा था। लकड़ी के तीन फट्टों को जोड़कर बनाये गये त्रिकोण पर कमण्डलु रखा हुआ था और उस त्रिकोण के तीन फट्टों में तीन डंडियाँ लगी थी जिनसे वह बाँस से लटका हुआ था। झोली के बाहर खड़ाऊँ लटक रही थी। कपड़े की मोटी किनारी से बँधे हुए पोथियों के गुटके झोली में रक्खे थे। (इसी प्रकार) जिसके दायें हाथ में बेंत की चटाई थी ऐसे परिव्राजक (सन्यासी) को राजा ने देखा। पहुँचे हुए उस सन्यासी से राजा उचित सम्मान के साथ मिला और उसके बैठ जाने पर पूछा—"भैरवाचार्य कहाँ हैं ? सम्मान पूर्वक कहे गये राजा के वचन को सुनकर प्रसन्न हुए उस सन्यासी ने बताया कि नगर के समीप सरस्वती नदी के तटवर्ती जंगल के एक शून्यायतन अर्थात् सूने स्थान में भैरवाचार्य हैं। सन्यासी फिर बोला—"भगवान् (भैरवाचार्य) आप महाभाग को अपने आशीर्वाद से सम्मानित करते हैं।" यह कहकर उसने भैरवाचार्य द्वारा भेजे हुए रत्न जटित चाँदी के पाँच कमलों को झोली से निकाल कर राजा को अर्पित किया जिन (कमलों) के अतिशय आलोक से अन्तःपुर नहा उठा।

नरपतिस्तु प्रियजनप्रणयभङ्गकातरो दाक्षिण्यमनुरुध्यमानो ग्रहणलाघवं च लङ्घयितुमसमर्थो दोलायमानेन मनसा स्थित्वा चिरं कथंकथमप्यतिसौजन्यनिघ्नस्तानि जग्राह। जगाद च—'सर्वफलप्रसवहेतुः शिवभक्तिरियं नो मनोरथदुर्भभानि फलति फलानि। येनैनमस्मासु प्रीयते तत्रभगवान्भुवनगुरुर्भैरवाचार्यः। श्वो द्रष्टास्मि भगवन्तम्' इत्युक्त्वा च मस्करिणं व्यसर्जयत्। अनया च वार्तया परां मुदमवाप।

अपरेद्युश्च प्रातरेवोत्थाय वाजिनमधिरुह्य समुच्छ्रितश्वेतातपत्रः समुद्धूयमानधवलचामरयुगलः कतिपयैरेव राजपुत्रैः परिवृतो भैरवाचार्यं सवितारमिव शशी द्रष्टुं प्रतस्थे। गत्वा च किंचिदन्तरं तदीयमेवाभिमुखमापतन्तमन्यतमं शिष्यमद्राक्षीत्। अप्राक्षीच्च—'क्व भगवानास्ते?' इति। सोऽकथयत्—'अस्य जीर्णमातृगृहस्योत्तरेण बिल्ववाटिकामध्यास्ते'

लङ्घयितुमुत्सोढुम्। निघ्नः स्ववशः।
अन्यतममपरम्। उत्तरेणोत्तरस्यां दिशि।

राजा ने प्रियजन के प्रेम के भङ्ग हो जाने के भय से उदारता का अनुरोध करते हुए दी हुई वस्तु को लेने के हल्के पन को पार करने में असमर्थ हो अपने डोलते हुए मन से कुछ देर तक ठहरकर किसी-किसी प्रकार अर्थात् बहुत कठिनाई से अपने सौजन्य से विवश होकर उन रत्नों को ले लिया और कहा—"सब प्रकार के फलों को उत्पन्न करनेवाली यह शिवभक्ति, हमारे मनोरथों के लिए भी जो दुर्लभ हैं ऐसे फलों को फलती है। जिससे इस प्रकार हम पर माननीय जगद्गुरु भैरवाचार्य प्रसन्न हैं। मैं कल भगवान् का दर्शन करूँगा।" यह कहकर उस सन्यासी को बिदा किया। इस समाचार से वे अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त किये।

दूसरे दिन सुबह ही उठ कर घोड़े पर चढ़ कर, उजले छाते को फैला कर हाँके जाते हुए उजले दो चाँवरों से युक्त हो, कुछ ही राजपुत्रों को साथ लेकर, जिस प्रकार चन्द्रमा सूर्य को देखने जाता है उसी प्रकार भैरवाचार्य को देखने के लिए राजा ने प्रस्थान किया। कुछ ही दूर जाने पर सामने आते हुए उन्हीं (भैरवाचार्य) के एक शिष्य को उन्होंने देखा और पूछा—"भगवान् कहाँ हैं?" उसने कहा—"यहीं पुराने देवी मन्दिर के उत्तर बिल्ववाटिका में आसीन

इति। गत्वा च तं प्रदेशमवततार तुरगात्। प्रविवेश च बिल्ववाटिकाम्।

अथ महतः कार्पटिकवृन्दस्य मध्ये प्रातरेव स्नातम्, दत्ताष्टपुष्पिकम्, अनुष्ठिताग्निकार्यम्, कृतभस्मरेखापरिहारपरिकरे हरितगोमयोपलिप्तक्षितितलवितते व्याघ्रचर्मण्युपविष्टम्, कृष्णकम्बलप्रावरणनिभेनासुरविवरप्रवेशाशङ्कया पातालान्धकारावासमिवाभ्यस्यन्तम्, उन्मिषिता विद्युत्कपिलेनात्मतेजसा महामांसविक्रयक्रीतेन मनःशिलापङ्केनेव शिष्यलोकं लिम्पन्तम्, जटाकृतैकदेशलम्बमानरुद्राक्षशङ्खगुटिकेनोर्ध्वबद्धेन शिखापाशेन बध्नन्तमिव, विद्यावलेपदुर्विदग्धानुपरिसंचरतः सिद्धान्, धवलकतिपयशिरोरुहेण वयसा पञ्चपञ्चाशतं वर्षाण्यतिक्रामन्तम्, खालित्यक्षीयमाणशङ्खलोमलेखम्, लोमशकर्णशष्कुलीप्रदेशम्,

---

अथेत्यादौ। भैरवाचार्यं ददर्शेति सम्बन्धः। कार्पटिका व्रतिनः। अष्टपुष्पिका प्रागुक्ता। परिहारोऽत्र मर्यादा। शङ्खे। ललाटास्थ्नि। उक्तं च—'शङ्खो निधौ ललाटास्थ्नि'। गुटिका खण्डिका। उपरीत्याद्यभिप्रायेणोक्तम्—ऊर्ध्वंबद्धे (बुद्धे ?) नेति। प्रशस्ता शिखा शिखापाशः। अवलेपोऽहंकृतिः। खालित्यं खल्वाटता। शङ्खो

हैं।" उस स्थान पर जाकर राजा घोड़े से उतर गये और उन्होंने बिल्व वाटिका में प्रवेश किया।

तत्पश्चात् साधुओं की भारी जमात के बीच, प्रातःकाल ही स्नान किये, हुए, (अष्टमूर्त्ति महादेव के लिए आठ फूलों को) अष्ट पुष्पिका अर्पित कर चुके हुए, जिसके चारों ओर भस्म की लकीर से सीमा बना दी गई थी तथा जो गोबर से लिपी भूमि पर बिछा हुआ था ऐसे व्याघ्र चर्म पर बैठे हुए, काले कम्बल को ओढ़ कर जो मानो असुर-विवर में प्रवेश करने की इच्छा से पाताल के अन्धकार में रहने का अभ्यास कर रहे थे ऐसे, बिजली के समान पीले चमकते हुए अपने तेज से जो शिष्यों को मानो श्मशान का महामांस को बेच कर खरीदे हुए मैनसिल के चन्दन से चर्चित कर रहे थे ऐसे, एक देश में जटा बनाकर लटकाये रुद्राक्ष और शङ्ख की गुटिका से युक्त और ऊपर करके बाँधे हुए शिखा-पाश से जो मानो विद्या-गर्व से मतवाले बने हुए ऊपर सञ्चरण करते हुए सिद्धों को बाँध रहे थे ऐसे, जिनके सिर के कुछ बाल पक गये थे तथा जो आयु पचपन वर्ष बिता चुके थे ऐसे, गंजापन के कारण जिनकी खोपड़ी के बाल

पृथुललाटतटम्, तिरःश्यामभस्मललाटिकया बहुशः शिरोर्धधृतदग्धगुग्गुलुसंतापस्फुटितकपालास्थिपाण्डुरराजिशङ्कामिव जनयन्तम्, सहजललाटबलिभङ्गसंकोचितकूर्चभागां बभ्रुभासं भ्रूसंगतया निरन्तरामायामिनीमेकामिव भ्रूलेखां बिभ्राणम्, ईषत्काचरकनीनिकेन रक्तापाङ्गनिर्गतांशुप्रतानेन मध्यधवलभासेन्द्रायुधेनेवातिदीर्घेण लोचनयुगलेन परितो महामण्डलमिवानेकवर्णरागमालिखन्तम्, सितपीतलोहित पताकावलिशबलम्, शिवबलिमिव दिक्षु विक्षिपन्तम्, तार्क्ष्यतुण्डकोटिकुब्जाग्रघोणम्, दूरविदीर्णसृक्कसंक्षिप्तकपोलम्, किंचिद्दन्तुरतया सदाहृदयसंनिहितहरमौलिचन्द्रालपेनेव निर्गच्छता दन्तालोकेन धवलयन्तं दिशां जलम्, जिह्वाग्रस्थितसर्वशैवसंहितातिभारणेव मनाक्प्र-

ललाटास्थि। शष्कुली कुहरम्। 'कूर्चमस्त्री भ्रुवोर्मध्यम्'। काचरा पीतवर्णा। तुण्डं मुखम्। कोटिः प्रान्तः, चञ्च्वग्रम्। 'प्रान्तावोष्ठस्यसृक्किणी, प्रकोष्ठमन्तरं विद्या-

क्षीण ही रहे थे ऐसे, जिनके कानों के भीतरी भाग भी रोएँदार थे ऐसे, विस्तृत ललाट वाले, ललाट पर धारण की गई भस्म की टेढ़ी एवं साँवली रेखाओं के कारण जो सिर पर आधे जले हुए गुग्गुलु की गरमी से फूली ललाट की खोपड़ी के उजलेपन की शङ्का को उत्पन्न कर रहे थे ऐसे, ललाट के स्वाभाविक रेखा भङ्ग के कारण बिचले भाग के सिकुड़ जाने से और फलतः भौहों के मिल जाने से एक भूरी, घनी तथा लम्बी भ्रू-लेखा को जो धारण कर रहे थे ऐसे, थोड़ी पीली पुतलियों वाले, आँखों के लाल कोनों से किरणें फैलाने वाले तथा बीच में उजले, ऐसे इन्द्रायुध अर्थात् इन्द्र धनुष के समान अपने अत्यन्त बड़े-बड़े दोनों नेत्रों से जो चारों ओर मानो अनेक वर्णराग से युक्त बहुत बड़े घेरे का निर्माण कर रहे थे ऐसे, उजली पीली तथा लाल झण्डियों से जो रङ्ग-बिरङ्ग के लग रहे थे ऐसे, जो दिशाओं में मानों शिव बलि छोड़ रहे थे ऐसे, जिनकी नाक का अगला हिस्सा गरुड़ के मुख के समान आगे की ओर झुका हुआ था ऐसे, होंठ की बगल की दूर तक कटाव से जिनके गाल इस प्रकार छोटे लग रहे थे मानो उनके हृदय में सदैव सन्निहित रहने वाले भगवान् शङ्कर के मस्तक की चन्द्र किरणों के समान दाँतों का टेढ़ा प्रकाश दिशाओं को सफेद बना रहा हो ऐसे, मानो जीभ के अग्रभाग में अवस्थित सम्पूर्ण शैव संहिताओं के अत्यन्त बोझ

लम्बितौष्ठम्, प्रलम्बश्रवणपालीप्रेङ्खिताभ्यां स्फाटिककुण्डलाभ्यां शुक्र-बृहस्पतिभ्यामिव सुरासुरविजयविद्यासिद्धिश्रद्धयानुबध्यमानम्, बद्धविविधौषधिमन्त्रसूत्रपङ्क्तिना सलोहवलयेनैकप्रकोष्ठेन शङ्खखण्डं पूष्णो दन्तमिव भगवता भवेन भग्नं भक्त्या भूषणीकृतं कलयन्तम्, अखिलरसकूपोदञ्चनघटीयन्त्रमालामिव रुद्राक्षमालां दक्षिणेन पाणिना भ्रमयन्तम्, उरसि दोलायमानेनापिङ्गलाग्रेण कूर्चकचकलापेन संमार्जयन्तमिवान्तर्गतं निजरजोनिकरम्, अतिनिबिडनीललोममण्डलविचितं च ध्यानलब्धेन ज्योतिषा दग्धमिव हृदयदेशं दधानम्, ईषत्प्रशिथिलवलिबलयबध्यमानतुन्दम्, उपचीयमानस्फिङ्मांसपिण्डकम्, पाण्डुरपवित्रक्षौमावृतकौपीनम्, सावष्टम्भ-

---

दरत्निमणिबन्धयोः'। पूष्णो रविभेदस्य। पुरा दक्षयज्ञगतस्य हरं निन्दतः 'मय्यनागते किमर्थमागतोऽसि' इति मुष्टिप्रहारेणहन्ता भग्नाः। तत्करस्पर्शेन पावनत्वात्तत्र भक्तिः। अखिलस्य रसस्य कूपादुदञ्चनाय घटीयन्त्रमालापि भ्राम्यते। दोलायमानत्वेन संमार्जनसंभावना। कलापग्रहणं मार्जनीसादृश्यार्थम्। रजो रागः, रेणुश्च। वचितं व्याप्तम् तुन्दमुदरम्। स्फिगावुभयत्र प्रसिद्धे। 'स्त्रियां स्फिजौ कटिप्रोथौ'

से जिनका ओष्ठ नीचे की ओर थोड़ा लटक रहा था ऐसे, जिनके कानों की लम्बी पालियों में झुलते हुए स्फटिक कुण्डलों से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो देवताओं एवं असुरों पर विजय प्राप्त करने के लिए विद्या-साधन की श्रद्धा से शुक्र और बृहस्पति पीछे लग गये हों ऐसे, जो एक हाथ में लोहे के कड़े में पिरोये हुए शङ्ख को पहने थे, जिसमें अनेक औषधियाँ मन्त्र और सूत्र में अक्षर लिख कर बँधी थीं, मानो उस शङ्ख के टुकड़े के रूप में भगवान् शङ्कर द्वारा तोड़े गये पूषा के दाँत को उन्होंने भक्ति के कारण अपना आभूषण बना लिया था ऐसे, जो दायें हाथ से रुद्राक्ष की माला को इस प्रकार फेर रहे थे मानो सम्पूर्ण रस को निकाल लेने के लिए रहट चला रहे हों ऐसे, जिनकी छाती पर पीले रङ्ग की दाढ़ी इस प्रकार हिल रही थी मानो अपने अन्दर के रजोविकार को झाड़ रहे हों ऐसे, जिनकी छाती के अत्यधिक घने और नीले रोओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वे ध्यान से प्राप्त ज्योति के कारण जले हुए हृदय को धारण कर रहे हों ऐसे, जिनके पेट में कुछ हल्की वलियां (उदर-रेखाएँ) पड़ गई थीं ऐसे, जिनकी कमर का मांस बढ़ गया था ऐसे जिनका कौपीन उजले और पवित्र क्षौम वस्त्र से ढँका हुआ था ऐसे, वीरासन लगा कर

पर्यङ्कबन्धमण्डलितेनामृतफेनश्वेतरुचा योगपट्टकेन वासुकिनेवाप्रतिहतानेकमन्त्रप्रभावाविर्भूतेन प्रदक्षिणीक्रियमाणम्, अरुणतामरसमुकुमारतरतलस्य पादयुगलस्य निर्मलैर्नखमयूखजालकैर्जर्जरयन्तमिव महानिधानोद्धरणरसेन रसातलम्, तोयक्षालितशुचिना धौतपादुकायुगलेन हंसमिथुनेनेव भागीरथीतीर्थयात्रापरिचयागतेनामुच्यमानचरणान्तिकम्, शिखरनिखातकुब्जकालायसकण्टकेन वैणवेन विशाखिकादण्डेन सर्वविद्यासिद्धिविघ्नविनायकापनयाङ्कुशेनेव सततपार्श्ववर्तिना विराजमानम्, अबहुभाषिणं मन्दहासिनं सर्वोपकारिणं कुमारब्रह्मचारिणम्, अतितपस्विनम्, महामनस्विनं कृशक्रोधम्, अकृशानुरोधम्, महानगरमिवादीनप्रकृतिशो-

इत्यमरः। फेनवत्तस्य श्वेतता। वासुकिनेवेति। न सामान्येनेति प्रभावपरिशोधकम्। जर्जरयन्तं खण्डशः कुर्वाणम्। तोयेत्यादि। हंसमिथुनस्यापि विशेषणम्। शिखरेत्यादिनाङ्कुशसादृश्यं विशाखिकादण्डस्योक्तम्। निखात उत्कीर्णः। कालायसं शस्त्रभेदः। विशाखिका खनित्रिका। विघ्नोऽन्तरायः। विनायको गजाननः। प्रकृतिः

विराजमान जिनके चारों ओर अमृत के झाग के समान योग पट्ट इस प्रकार घिरा हुआ था मानो उनके अमोघ मन्त्रों के प्रभाव से प्रकट होकर वासुकि नामक सर्पराज उनकी प्रदक्षिणा कर रहा हो ऐसे, जिनके लाल कमल के सदृश सुकोमल तलवे वाले दोनों पैरों के नखों की स्वच्छ किरणें इस प्रकार फैल रही थीं मानो बहुमूल्य खजाने को निकालने के लिए पाताल को विदीर्ण कर रहे हों ऐसे, जिनके चरणों के पास पानी से धुले हुए पवित्र खड़ाउँओं का जोड़ा इस प्रकार रखा था मानो गङ्गा के तीर्थों में विचरण करने के समय परिचय हो जाने के कारण हंसों का जोड़ा साथ लग गया हो ऐसे, जिनके पास सदा बाँस का वैसाखी वाला डण्डा पड़ा रहता था जिसके सिरे पर लोहे की टेढ़ी कील जुड़ी हुई थी मानो सम्पूर्ण विद्याओं की सिद्धि में विघ्न उपस्थित करने वाले विघ्नराज गजराज को हटाने के लिए अङ्कुश हो ऐसे, बहुत कम बोलने वाले, मन्द-मन्द मुस्कुराने वाले, सबके उपकारी, आजन्म ब्रह्मचारी, बहुत बड़े मनस्वी, क्रोध रहित, अत्यधिक उदार, जिस प्रकार दीनता रहित प्रकृतियों अर्थात् लोगों से महानगर शोभित होता है उसी प्रकार अपनी दीनतारहित प्रकृति अर्थात् स्वभाव से जो शोभित हो रहे थे ऐसे, (जिस प्रकार सुमेरु

भितम्, मेरुमिव कल्पतरुपल्लवराशिसुकुमारच्छायम्, कैलासमिव पशु-पतिचरणरजःपवित्रितशिरसम्, शिवलोकमिव माहेश्वरगणानुयातम्, जलनिधिमिवानेकनदनदीसहस्रप्रक्षालितशरीरम्, जाह्नवीप्रवाहमिव बहु-पुण्यतीर्थस्थानशुचिम्, धाम धर्मस्य, तीर्थं तथ्यस्य, कोशं कुशलस्य, पत्तनं पूततायाः, शाला शीलस्य, क्षेत्रं क्षमायाः शालेयं शालीनतायाः, स्थानं स्थितेः, आधारं धृतेः, आकरं करुणायाः, निकेतनं कौतुकस्य, आरामं रामणीयकस्य, प्रासादं प्रसादस्य, आगारं गौरवस्य, समाज सौजन्यस्य, संभवं सद्भावस्य, कालं कलेः, भगवन्तं साक्षादिव विरूपाक्षं भैरवाचार्यं ददर्श।

स्वभावः, मायादिका च। राशिवत्तेन च सुकुमाराः। गणाः समूहाः, प्रमथाश्च। नदनदीत्येकशेषो युक्तः। सहस्रेषु तैः प्रक्षालितशि (शरी ?) राः। तीर्थेषु यत्स्थानं वसनं तेन शुचिम्। तीर्थस्थानैः कनखलाद्यवस्थितिभिश्च शुचिः। शालीनता विनीतत्वम्। निकेतनं गृहम्। तत्र हि सर्वस्य कौतुकं जायते।

पर्वत पर कल्पवृक्ष की छाया रहती है उसी प्रकार) जो कल्पवृक्ष के पल्लवों की सुकुमार छाया से युक्त सुमेरु के सदृश थे ऐसे, जिस प्रकार पशुपति अर्थात् भगवान् शङ्कर के चरणों की धूलि से कैलाश पर्वत पवित्र रहता है उसी प्रकार शङ्कर की चरण-धूलि से जिनका मस्तक पवित्र था ऐसे, जिस प्रकार शिवलोक में प्रमथ गण रहते हैं उसी प्रकार माहेश्वर अर्थात् शैव लोगों से अनुगत जो साक्षात् शिवलोक के सदृश थे ऐसे, अनेक नद एवं नदियों में जिन्होंने अपने शरीर को समुद्र की भाँति प्रक्षालित किया था ऐसे, जो गङ्गा के प्रवाह की भाँति अनेक पवित्र तीर्थों में भ्रमण करके पवित्र हो चुके थे ऐसे, जो धर्म के धाम, सत्य के तीर्थ, कुलश के कोश, पवित्रता के नगर, शील के गृह, क्षमा के क्षेत्र, शालीनता के निवास स्थान, मर्यादा के स्थान, धैर्य के आधार, करुणा के भण्डार, कुतूहल के निकेतन, सौन्दर्य के उपवन, प्रसन्नता के प्रासाद, गौरव के गृह, सौजन्य के समाज, सद्भाव के उद्भव स्थान एवं कलि के काल अर्थात् यमराज अथवा संहारक थे ऐसे साक्षात् भगवान् विरुपाक्ष अर्थात् शिव के समान भैरवाचार्य को देखा।

भैरवाचार्यस्तु दूरादेव राजानं दृष्ट्वा शशिनमिव जलनिधिश्चचाल। प्रथमतरोत्थितशिष्यलोकश्चोत्थाय प्रत्युज्जगाम। समर्पितश्रीफलोपायनश्च जह्नुकर्णसमुद्गीर्यमाणगङ्गाप्रवाहह्रदगम्भीरया गिरा स्वस्तिशब्दमकरोत्।

नरपतिरपि प्रीतिविस्तार्यमाणधवलिम्ना चक्षुषा प्रत्यर्पयन्निव बहुतराणि पुण्डरीकवनानि ललाटपट्टपर्यस्तेन चोर्दंशुना शिखामणिना महेश्वरप्रसादमिव तृतीयनयनोद्गमेन प्रकाशयन्नावर्जितकर्णपल्लवपलायमानमधुकरः शिवसेवासमुन्मूलिताशेषपापलवमुच्यमान इव दूरादवनतः प्रणाममभिनवं चकार। आचार्योऽपि—'आगच्छत अत्रोपविश' इति शार्दूलचर्मात्मीयमदर्शयत्। उपदर्शितप्रश्रयस्तु राजा मत्तहंसकलगद्गदस्वरसुभगां मधुरसमयीं महानदीमिव प्रवर्तयन्वाचं व्याजहार—'भगवन्! नार्हसि

शश्यपि राजा तं च दूरादेव दृष्ट्वा जलनिधिश्चलति। गाम्भीर्याच्च जलनिधिरेवेत्युक्तम्। बिल्वं श्रीफलम्। गङ्गेत्यादिना पवित्रत्वमाह।

धवलिम्नेत्यनेन पुण्डरीकाणां धवलत्वमाह। प्राभृतपुण्डरीकाणां राजतत्वात्। आवर्जितं स्वच्छ तेन सुभगात्। शार्दूलो व्याघ्रः।

भैरवाचार्य दूर से ही राजा को देख कर इस प्रकार चल पड़े जिस प्रकार चन्द्रमा को देख कर सागर उमड़ उठता है। पहले ही उठे हुए शिष्यों को साथ लेकर राजा के पास पहुँचे तथा श्रीफल का उपहार भेंट करके जह्नु के कर्ण-विवर से निकले गङ्गा-प्रवाह के शब्द के सदृश गम्भीर वाणी द्वारा उन्होंने "स्वस्ति" शब्द का उच्चारण किया।

राजा ने भी प्रेम से नेत्रों की धवलता को बढ़ाते हुए देखा मान (उनके स्वागत में) बहुत से कमल को अर्पित कर रहा हो और ललाट में लगी हुई शिखामणि के ऊपर की ओर फैलती हुई किरणों से मानो भगवान् शिव के तीसरे नेत्र से उपलब्ध प्रसाद को प्रकाशित कर रहा हो। झुके हुए उसके कर्ण पल्लव पर बैठे हुए भौंरे इस प्रकार उड़े मानो भगवान् शिव की सेवा करने से उसके पाप उड़े जा रहे हों इस प्रकार उसने दूर से ही झुक कर प्रणाम किया। आचार्य ने भी "आओ यहाँ बैठो," यह कह कर अपने व्याघ्र चर्म की ओर निर्देश किया। विनम्रता प्रदर्शित करते हुए राजा ने मत्त कलहंस की मीठी आवाज की भाँति सुन्दर तथा मानो मधुरस की महानदी को प्रवाहित करते

मामन्यनृपस्खलितैः खलीकर्तुम्। अशेषराजकोपेक्षितायाः हतलक्ष्म्याः खल्वयं शीलापराधो द्रविणदौरात्म्यं वा यदेवमाचरति मयि गुरुः। अभूमिरयमुपचाराणाम्। अलमतियन्त्रणया। दूरस्थितोऽपि मनोरथ-शिष्योऽय जनो भवताम्। माननीयं च गुरुवन्नोल्लङ्घनमर्हति गुरोरास-नम्। आसतां च भवन्त एवात्र' इति व्याहृत्य परिजनोपनीते वाससि निषसाद। भैरवाचार्योऽपि प्रीत्यानातिक्रमणीयं नृपवचनमनुवर्तमानः पूर्ववत्तदेव व्याघ्राजिनमभजत।

आसीने च सराजके परिजने शिष्यजने च समुचितमर्घ्यादिकं चक्रे। क्रमेण च नृपमाधुर्यहृतान्तःकरणः शशिकरनिकरविमला दशन-दीधितीः स्फुरन्तीः शिवभक्तीरिव साक्षाद् दर्शयन्नुवाच—'तात! आतनम्र-तैव ते कथयति गुणानां गौरवम्। सकलसंपत्पात्रमसि। विभवानु-

---

अन्तःकरणं मनः। गौरवमुत्कर्षः भारवत्त्वं च। अदत्तदृष्टिरिति। न तु मया धनान्यलम्यानि। स्वापतेयेषु धनेषु। संरक्षिता इति। यदि कदाचित्क्वचिदुपयोगं

हुए कहा—"भगवन्! आप मुझे दूसरे राजाओं के समान दोषों से भरा न समझें। सम्पूर्ण राजाओं से उपेक्षित राजलक्ष्मी का ही यह चरित्र-दोष और धन का मद है जो मेरे लिए गुरु आप ऐसा व्यवहार करते हैं। मैं इस प्रकार के उपचारों का पात्र नहीं हूँ। अत्यधिक क्लेश देने से अब बस करें। यह जन (अर्थात् मैं) दूर रह कर भी मनोरथों से आपका शिष्य बना हुआ है। गुरु के समान ही गुरु का यह माननीय आसन उल्लंघन के योग्य नहीं है, आप ही इस पर विराजें "यह कह कर परिजन द्वारा लाये गये वस्त्र पर राजा बैठ गये। भैरवाचार्य ने भी प्रेमपूर्वक राजा की बात मान ली तथा पूर्व की ही भाँति उसी व्याघ्रचर्म पर बैठ गये।

परिजनों सहित राजाओं के तथा शिष्य लोगों के बैठ जाने पर भैरवाचार्य ने अर्घ्यादि के द्वारा समुचित सत्कार किया। क्रमशः राजा के मधुर व्यवहार से आकृष्ट चित्त वाले भैरवाचार्य चन्द्र किरणों की भाँति स्वच्छ दन्त-किरणों के रूप में स्फुरित होती हुँई शिव-भक्ति को प्रदर्शित करते हुँए बोले—"तात! तुम्हारी अत्यन्त विनम्रता ही तुम्हारे गुणों के गौरव को बतला रही है।

रूपास्तु प्रतिपत्तय:। जन्मन: प्रभृत्यदत्तदृष्टिरेवास्मि स्वापतेयेषु। यत: सकलदोषकलापानलेन्धनैरविक्रीतं क्वचिच्छरीरकमस्ति। भैक्षरक्षिता: सन्ति प्राणा:। दुर्गृहीतानि कतिचिद्विद्यन्ते विद्याक्षराणि। भगवच्छिव-भट्टारकपादसेवया समुपार्जिता: कियत्योऽपि सान्निहिता: पुण्यकणिका:। स्वीक्रियतां यदत्रोपयोगार्हम्। प्रतनुगुणग्राह्याणि कुसुमानीव हि भवन्ति-सतां मनांसि। अपि च, विद्वत्संमता: श्रूयमाणा अपि साधव: शब्दा इव सुधीरेऽपि हि मनसि यशांसि कुर्वन्ति। विवरं विशत: कुतूहलस्य फेनधवलै: स्रोतोभिरिवापह्रियमाणो गुणगणैरानीतोऽस्मि कल्याणिना' इति।

राजा तु तं प्रत्यवादीत्—भगवन्! अनुरक्तेष्वपि शरीरादिषु साधूनां

यास्यन्तीति। अनेन प्राणादिदानमेवोचितमित्युक्तम्। सकलसंपत्पात्रस्येयत: कियती वसुसम्पत्तिर्भविष्यतीत्याशङ्क्याह—प्रतन्वित्यादि। गुणा उत्कर्षा:, तन्तवश्च। कुसुमानीवेति। कुसुमसादृश्येन मनस: सौकुमार्यमप्युक्तम्। साधव: शिष्टा:, शब्दा इव साधव:। संस्कृता विद्वत्समताश्च। फेनवत्तैश्च धवलैर्गुणगणै: स्रोतोभिश्च।

स्वामिन एव प्रणयिन इति। अनुक्तान्यपि शरीरादीनि प्रणयिनां स्वायत्ता-

---

तुम सम्पूर्ण सम्पत्तियों के पात्र हो। ऐश्वर्य के अनुरूप ही मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ हुआ करती हैं। मैंने जन्म से लेकर धन की ओर दृष्टिपात नहीं किया है। क्योंकि सब प्रकार के दोषरूपी अग्नि की ईन्धन की भाँति भड़काने वाले धन पर यह मेरा तुच्छ शरीर कहीं बिका नहीं है। मैंने भिक्षा के अन्न से ही अपने प्राणों की रक्षा की है। विद्या के कुछ अक्षरों को कठिनाई से सीख पाया हूँ। भगवान् शिव भट्टारक की सेवा करके पुण्य के थोड़े से कण इकट्ठे कर पाया हूँ। तुम्हारे उपयोग के योग्य जो कुछ भी यहाँ है उसे स्वीकार करो। जिस प्रकार महीन धागे से फूल बाँधे जाते हैं उसी प्रकार सज्जनों के मन भी थोड़े से गुणों से भी गृहीत हो जाते हैं। और भी, जो विद्वानों द्वारा मान लिये गये हैं ऐसे सुने जाते हुए शब्दों के समान साधु पुरुष सुधीर मन में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। कल्याण-भाजन तुमने हृदय हृदय में प्रवेश करते हुए कुतूहल के के फेन सदृश उजले प्रवाहों के समान गुणों द्वारा खींच कर मुझे यहाँ आने के लिए विवश किया।"

राजा ने भैरवाचार्य से कहा—"भगवन्! शरीर आदि पर अनुरक्त होने

स्वामिन एव प्रणयिनः । युष्मद्दर्शनादुपार्जितमेव चापरिमितं कुशलजातम् । 'अनेनैवागमनेन स्पृहणीयं पदमारोपितोऽस्मि गुरुणा' इति विविधाभिश्च कथाभिश्चिरं स्थित्वा गृहमगात् ।

अन्यस्मिन्दिवसे भैरवाचार्योऽपि राजानं द्रष्टुं ययौ । तस्मै च राजा सान्तःपुरं सपरिजनं सकोषमात्मानं निवेदितवान् । स च विहस्योवाच—'तात ! क्व विभवाः, क्व च वयं वनवर्धिताः ? धनोष्मणा म्लायत्यलं लतेव मनस्विता । खद्योतानामिवास्माकमियमपरोपतापिनी राजते तेजस्विता । भवादृशा एव भाजनं भूतेः' इति स्थित्वा च कंचित्कालं जगाम ।

परिव्राट् तेनैव क्रमेण पञ्च पञ्च राजतानि पुण्डरीकाण्युपायनीचकार । एकदा तु श्वेतकर्पटावृतं किमप्यादाय प्राविशत् । उपविश्य च पूर्ववत्स्थित्वा मुहूर्तमब्रवीत्—'महाभाग ! भवन्तमाह भगवान्यथा-

नीत्यर्थः । खद्योताः कीटमणयः ।

महाभागेति प्रस्तुतानुगुणमामन्त्रणम् । परिवारादाचकर्ष कृपाणमिति संबन्धः ।

पर भी प्रेमी लोग सज्जनों के स्वामी होते हैं । आपके दर्शन से अपरिमित कुशल की प्राप्ति हुई । आप गुरु ने अपने इस आगमन से मुझे स्पृहणीय पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है ।" इस प्रकार तरह-तरह की बातों से देर तक वहाँ ठहर कर राजा घर चले गये ।

दूसरे दिन भैरवाचार्य भी राजा को देखने के लिए गये । (उनके स्वागत में) राजा ने अपने अन्तःपुर, अपने परिजन तथा अपने खजाने के साथ अपने आपको उन्हें भेंट किया । भैरवाचार्य हँस कर बोले—"तात ! कहाँ ये ऐश्वर्य और कहाँ जंगल के वासी हम ! मनस्विता धन की गर्मी से लता के समान झुलस कर मलिन पड़ जाती है । जुगनुओं की भाँति दूसरों को सन्तप्त न करने वाली यह हमारी तेजस्विता है । आप जैसे लोग ही ऐश्वर्य के पात्र हैं ।" इस प्रकार कुछ समय तक ठहर कर भैरवाचार्य चले गये ।

सन्यासी (भैरवाचार्य के शिष्य) उसी क्रम से चाँदी के पाँच-पाँच कमल भेंट स्वरूप राजा को अर्पित किये । एक बार वह उजले कपड़े से ढँक कर कुछ लिए हुए पहुँचा ।

पहले की भाँति बैठ कर क्षण भर ठहर कर बोला—"महाभाग ! भगवान

स्मच्छिष्यः पातालस्वामिनामा ब्राह्मणः । तेन ब्रह्मराक्षसहस्ता-
दपहृतो महासिरट्टहासनामा । सोऽयं भवद्भुजयोग्यो गृह्यताम्'
इत्यभिधायोपहृतकर्पटाबच्छादनात् परिवारादाचकर्ष शरद्गगनतलमिव
पिण्डतां नीतम्, कालिन्दीप्रवाहमिव स्तम्भितजलम्, नन्दकजिगीषया
कृष्णकोपितं कालियमिव कृपाणतां गतम् , लोकविनाशाय प्रकाशितधा-
रासारं प्रलयकालमेघखण्डमिव नभस्तलात् पतितम्, दृश्यमानविकट-
दन्तमण्डलं हासमिव हिंसायाः, हरिबाहुदण्डमिव कृतदृढमुष्टिग्रहम्,
सकलभुवनजीवितापहरणक्षमेण कालकूटेनेव निर्मितम् । कृतान्तकोपान-
लतप्तेनेवायसा घटितम्, अतितीक्ष्णतया पवनस्पर्शेनापि रुषेव क्वणन्तम्

पिण्डं शस्त्रम् । उक्तं च—'लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी' इति । स्तम्भितं धृतं रक्षितमन्तर्जलं यस्य तम् । किल कृपाणस्य वा पानीयं यन्त्रेण क्रियते । नन्दको विष्णुखड्गः । कालियो नागभेदः । धाराणामासारः धारारूप-श्चासारो धारासारः । दन्तमण्डलं दन्तचक्रवालम्, दशनसमूहश्च । मुष्टिः त्सरुः, असुरभेदश्च । अतितीक्ष्णतयेति तैक्ष्ण्यं तानवान्भवति, ननु च परस्परस्पर्शेन

ने आप से कहा है कि पाताल स्वामी नाम का मेरा एक ब्राह्मण शिष्य है । उसने ब्रह्म राक्षस के हाथ से अट्टहास नामक बड़ी तलवार छीनी है । वह आपके हाथ में रखने योग्य है इसलिए ग्रहण करें ।'' वह कह कर उसने ऊपर का वस्त्र हटा कर म्यान से तलवार को खींच लिया जो ऐसी लग रही थी मानो शरत्कालीन आकाश ही शस्त्र का रूप धारण कर चुका हो, मानो यमुना का वैसा प्रवाह हो जिसमें जल रुक गया हो, मानो कृष्ण के द्वारा कोपित कालिय नाग उनके नन्दक नामक खड्ग को जीतने की इच्छा से स्वयं कृपाण का रूप धारण कर लिया हो, मानो संसार के विनाश के लिए धारा जल की वर्षा करते हुए प्रलय कालीन मेघ का टुकड़ा हो, मानो हिंसा का वैसा हास हो जिसमें उसके भयानक दाँत दिखाई पड़ते हैं, भगवान् कृष्ण के बाहुदण्ड के सदृश जिसकी मूँठ मजबूत थी, मानो सम्पूर्ण संसार के प्राणों को हर लेने में समर्थ जो विष है उसी से उसका निर्माण हुआ हो, मानो यमराज की क्रोधाग्नि में तपाये गये लोहे से वह बनायी गई हो, अत्यन्त धार दार होने के कारण हवा के स्पर्श से भी जो इस प्रकार झनझना उठती थी मानो क्रुद्ध हो, मणि की भूमि

माणसभाकुट्टिमपतत्प्रतिबिम्बच्छद्मनात्मानमपि द्विधेव पाटयन्तम्, अरिशिरश्छेदलग्नैः कचैरिव किरणैः करालितधारम् मुहुर्मुहुस्तडिदुन्मेषतरलैः प्रभाचक्रच्छुरितैर्जर्जरितातपम्, खण्डशश्छिन्दन्तमिव दिवसम्, कटाक्षमिव कालरात्रेः, कर्णोत्पलमिव कालस्य, ओंकारमिव क्रौर्यस्य अलंकारमहंकारस्य, कुलमित्रं कोपस्य, देहं दर्पस्य, सुसहायं साहसस्य, अपत्यं मृत्योः, आगमनमार्गं लक्ष्म्याः, निर्गमनमार्गं कीर्तेः, कृपाणम् ।

अवनिपतिस्तु तं गृहीत्वा करेणायुधप्रीत्या प्रतिमानिभेनालिङ्गन्निव सुचिरं ददर्श । संददेश च—'वक्तव्यो भगवान् परद्रव्यग्रहणावज्ञादुर्विदग्धमपि हि मे मनो युष्मद्विषये न शक्नोति वचनव्यतिक्रमव्यभिचारमाचरितुम्' इति । पारब्राट् तु गृहीते तस्मिन् परितुष्टः 'स्वस्ति भवते । साधयामः' इत्युक्त्वा निरयासीत् । नृपश्च प्रकृत्या वीररसानुरागी तेन कृपाणेनामन्यत करतलवर्तिनीं मेदिनीम् ।

क्वणति । तथा चातितीक्ष्णोऽतिदण्डप्रकृतीरोषेणहुंकरोति । कचैः केशैः । करालिताः व्याप्ताः। साधयामः स्वकर्मसिद्धिं विदध्मः। मङ्गलत्वाद्गच्छाम इति नोक्तम् ।

पर पड़ती हुई अपनी छाया के बहाने मानो अपने आपके भी दो टुकड़े कर रही हो, जिसकी धार से इस प्रकार किरणें निकल रहीं थीं मानो शत्रुओं का मस्तक काटने के कारण उसमें बाल चिपक गये हों, जो बार-बार बिजली के समान चमक वाली प्रभा से आतप को इस प्रकार जर्जर बना रही थी मानो दिन के टुकड़े-टुकड़े कर रही हो, जो मानो कालरात्रि का कटाक्ष, काल कर्ण-कमल, क्रूरता का आकार, अहङ्कार का अलङ्कार, कोप का खानदानी मित्र, दर्प की देह, साहस की सहायिका, मृत्यु की सन्तति, लक्ष्मी के आने का मार्ग और कीर्त्ति के निकलने का मार्ग थी । राजा ने उस तलवार को हाथ में लेकर आयुध के प्रति सहज प्रेम के कारण मानो प्रतिबिम्ब पड़ने के बहाने उसका आलिङ्गन करते हुए देर तक देखा और संदेश दिया—"भगवान् भैरवाचार्य से कह देंगे कि दूसरे के धन को ग्रहण करने में उपेक्षा की भावना रखने वाला भी मेरा मन आपकी बात का उल्लङ्घन नहीं कर सकता ।" राजा के तलवार ले लेने पर वह सन्यासी सन्तुष्ट हो गया और "आपका कल्याण हो, मैं चला" यह कहकर निकल गया । स्वभाव से ही वीररस में अनुराग रखने वाले राजा ने उस कृपाण के द्वारा सम्पूर्ण पृथिवी को अपनी हाथ में आयी हुई समझा ।

अथ व्रजत्सु दिवसेष्वेकदा भैरवाचार्यो राजानमुपह्वरे सोपग्रहम-वादीत्—'तात ! स्वार्थालसाः परोपकारदक्षाश्च प्रकृतयो भवन्ति भव्यानाम् । भवादृशां चार्थिदर्शनं महोत्सवः प्रणयनमाराधनमर्थग्रहणमुपकारः । भूमिरसि सर्वलोकमनोरथानाम् । येनाभिधीयसे । श्रूयताम् । भगवतो महाकालहृदयनाम्नो महामन्त्रस्य कृष्णस्रगम्बरानुलेपनेनाकल्पेन कल्पकथितेन महाश्मशाने जपकोट्या कृतपूर्वसेवोऽस्मि । तस्य च वेतालसाधनावसाना सिद्धिः । असहायैश्च सा दुरवापा । त्वं चालमस्मै कर्मणे । त्वयि च गृहीतभरे भविष्यन्त्यपरे सहायास्त्रयः । एकः स एवास्माकं टीटिभनामा बालमित्रं मस्करी यो भवन्तमुपतिष्ठते । द्वितीयः स पातालस्वामी । अपरो मच्छिष्य एव कर्णतालनामा द्राविडः । यदि

उपह्वरे प्रच्छन्ने । सोपग्रहं साभ्यर्थनम् । प्रणयनं याचनम् । मनोरथानामिति । रथाश्च भूमौ वहन्ति । आकल्पेन वेशेन । इति कर्तव्यताकलापोपदेशको ग्रन्थः कल्पः । अलं पर्याप्तः । उपतिष्ठत इति संगतिकरणे तङ् । परिग्रहणं स्वीकारः ।

उसके बाद कुछ दिनों के बीत जाने पर एक समय भैरवाचार्य ने एकान्त में राजा से प्रार्थना पूर्वक कहा—"तात ! सज्जन लोग स्वभाव से ही अपने मतलब को साधने में आलसी तथा दूसरों का उपकार करने में निपुण हुआ करते हैं । आप जैसे लोग याचकों को देख कर उत्सव मनाते हे, उनके मांगने से अपने को सम्मानित समझते हैं तथा दी हुई चीज को उनके द्वारा ग्रहण किये जाने पर स्वयं को उपकृत मानते हैं । सम्पूर्ण लोगों की अभिलाषाओं के आप केन्द्र हैं । इसीलिए आप से कह रहा हूँ ।' सुनें—"महाकाल हृदय" नामक शक्तिशाली महामन्त्र का काला कपड़ा एवं काला चन्दन धारण कर शास्त्र के कथनानुसार महाश्मशान में एक करोड़ जप मैंने पूर्व में किया है । अन्त में वेताल की साधना करने से उस मन्त्र की सिद्धि होती है । असहाय लोगों के लिए वह सिद्धि दुर्लभ है । आप इस कार्य में समर्थ हैं । यदि आप इस भार को स्वीकार करते हैं तो (इस कार्य में) आपके और तीन साथी हो जाएँगे । एक तो वही टीटिम नाम का मेरा बचपन का मित्र सन्यासी है जो आपके पास आता रहता है, दूसरा वह पाताल स्वामी और तीसरा मेरा शिष्य ही है जिसका नाम कर्णताल है तथा जो द्रविड़ देश का रहने वाला है । यदि आप ठीक

साधु मन्यसे ततो नीयतामयं दिङ्नागहस्तदीर्घो गृहीताट्टहासो निशामेकामेकदिङ्मुखार्गलतां बाहुः।' इति कृतवचसि च तस्मिन्नन्धकारप्रविष्ट इव दृष्टप्रकाशः प्राप्तोपकारावकाशः प्रमुदितेनान्तरात्मना नरेन्द्रः समभाषत—'भगवन्! परमनुगृहीतोऽस्म्यनेन शिष्यजनसामान्येन निदेशेन कृतपरिग्रहमिवात्मानमवैमि' इति। ननन्द च तेन नरेन्द्रव्याहृतेन भैरवाचार्यः। चकार च संकेतम्—'अस्यामेवागामिन्यामसितपक्षचतुर्दशीक्षपायामियत्यां वेलायाममुष्मिन् महाश्मशानसमीपभाजि शून्यायतने शस्त्रद्वितीयेनायुष्मता द्रष्टव्या वयम्' इति।

अथातिक्रान्तेष्वहःसु प्राप्तायां च तस्यामेव कृष्णचतुर्दश्यां शैवेन विधिना दीक्षितः क्षितिपो नियमवानभूत्। कृताधिवासं च संपादितगन्धधूपमाल्यादिपूजं खड्गमट्टहासमकरोत्। ततः परिणते दिवसे केनापि कर्मसाधनाय कृतरुधिरबलिविधानास्विव लोहितायमानासु दिक्षु रुधि-

दीक्षितः कृतनियमः। अधिवासो नियमदिवसादाद्येऽहनि यथाशास्त्रं विधिना मन्त्रन्यासादिः। पर्वपूजेति यावत्। तत इत्यादौ। ततोऽस्मिन्प्राप्ते राजा नग-

समझते हैं तो दिङ्नाग की सूँड़ के समान लम्बे अपने हाथ में अट्टहास (नामक तलवार) लेकर एक दिशा की रक्षा करते हुए एक रात ठहरें।" भैरवाचार्य के ऐसा कहने पर अन्धकार में पड़े हुए राजा ने मानो प्रकाश को देख लिया तथा उपकार करने का अवसर प्राप्त हुआ समझ कर प्रसन्न मन से कहा—"भगवान्! सामान्य शिष्यजन की भाँति आपने मुझे स्वीकार करके जो आज्ञा दी है उससे मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।" राजा के उस कथन से भैरवाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सङ्केत किया—"इसी आने वाली कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात को महाश्मशान के निकट वाले शून्यायतन में केवल हाथ में तलवार लेकर आप हमसे मिलें।"

कुछ दिनों के बीत जाने पर उसी कृष्ण चतुर्दशी की रात जब आयी तो शैवविधि से दीक्षित होकर राजा व्रत संलग्न हो गये।

एक दिन पहले ही गन्ध, धूप, माला आदि से उन्होंने अट्टहास नामक तलवार की पूजा की। उसके बाद सन्ध्या हो जाने पर, मानो किसी ने कर्म की सिद्धि के लिए रुधिर की बलि चढ़ायी हो इस प्रकार दिशाओं के लाल हो

रबलिलम्पटासु च वेतालजिह्वास्विव लम्बमानासु च रविदीधितिषु, नरेन्द्रानुरागेण गृहीतपरदिशि स्वयमिव दिक्पालतां चिकीर्षति सवितरि, यातुधानीष्विव वर्धमानासु तरुच्छाया, पातालतलवासिषु विघ्नाय दानवेष्विवोत्तिष्ठत्सु तमोमण्डलेषु, नभसि पुञ्जीभवति रौद्रं कर्म दिदृक्षमाणा इव नक्षत्रगणे विगाढायां शर्वर्याम्, सुप्तजने निःशब्दस्तिमिते निशीथे, राजा सान्तःपुरं परिजनं वञ्चयित्वा वामकरस्फुरत्सरुर्दक्षिणकरेणोत्खात-खड्गमट्टहासमादाय विसर्पता च खड्गप्रभापटलेन नीलांशुकपटेनेव दर्शनभयादवगुण्ठितनिखिलगात्रयष्टिरनादिष्टयाप्यनुगम्यमानो राजलक्ष्म्या पृष्ठतः परिमललग्नमधुकरवेणिव्याजेन केशेष्विव कर्मसिद्धिमाकर्षन्नेकाकी नगरान्निरगात्। अगाच्च तमुद्देशम्।

रान्निरगादितिः सम्बन्धः। यातुधानीषु राक्षसीषु। पुञ्जीभवतीति। कृष्णरात्र्यां नक्षत्रगतपुञ्जीभावो लक्ष्यते। दिदृक्षवोऽपीतस्ततः पुञ्जीभवन्ति। विगाढायां घनायाम्। निशीथेऽर्धरात्रे। नीलेत्यादि सहोपमेयम्।

जाने पर, मानो रुधिर-बलि के लिए वेतालों की लपलपाती जीभें हों इस प्रकार सूर्य की किरणों के लटक जाने पर, मानो राजा के प्रति अनुराग होने के कारण सूर्य के स्वयं पश्चिम दिशा के दिक्पाल बन जाने पर, राक्षसियों के समान पेड़ों की छाया का बढ़ना प्रारम्भ हो जाने पर, विघ्न पैदा करने वाले पाताल तल-वासी दैत्यों की भाँति अन्धकार के चारों ओर उठना प्रारम्भ हो जाने पर, मानो उस रौद्र (भयानक) कर्म को देखने की इच्छा से नक्षत्र गणों के आकाश में इकट्ठा होना प्रारम्भ हो जाने पर, रात गहरी हो गई, लोग सो गये, चारों ओर निस्तब्ध आधी रात हो गई तब राजा अन्तःपुर एवं परिजनों को चकमा देकर बायें हाथ से मूँठ तथा दायें हाथ से नंगी अट्टहास नामक तलवार को लेकर नगर से अकेला ही निकल पड़ा। तलवार की चमक इस प्रकार फैल रही थी मानो दिखाई पड़ने के डर से नीले अंशुक से अपने सम्पूर्ण शरीर को ढँक कर बिना आदेश प्राप्त किये ही राजलक्ष्मी उसके पीछे चल पड़ी हो। पीछे-पीछे मानों कर्म की सिद्धि ही साथ-साथ खिंचती जा रही हो, इस प्रकार राजा के बालों की खुशबू में लगे हुए भौंरे झूलते जा रहे थे। राजा उसी स्थान पर जा पहुँचा।

अथ प्रत्युपजग्मुस्ते त्रयोऽपि द्रोणिकृपकृतवर्माण इव सौप्तिके संनद्धाः स्नाताः स्रग्विणो गृहीतविकटवेषाः, कुसुमशेखरसंचारिभिः क्रियमाणमन्त्रशिखाबन्धा इव गुञ्जद्भिः षट्चरणैरुष्णीषपट्टकाल्ललाटमध्यघटितविकटस्वस्तिकाग्रन्थीन्महामुद्राबन्धानिव धारयन्तो मूर्धभिः एकश्रवणविवरवितनविमलदन्तपत्रप्रभालोकलेपधवलितकपोलैर्मुखैरापिबन्त इव निशाचरापचयचिकीर्षया शार्वरमन्धकारम्, इतरकर्णावलम्बिनां रत्नकुण्डलानामच्छया रुचा गोरोचनयेव मन्त्रपरिजप्तया समालब्धाङ्गाः स्वप्रतिबिम्बगर्भान् कर्मसिद्धये दत्तपुरुषोपहारानिवोल्लासयन्तो निशितान्निस्त्रिंशान्, निस्त्रिंशांशुसन्तानसीमान्ततितिभिरामात्मीयात्मीयदिग्विभागसंरक्षणाय त्रिधेव त्रियामां पाटयन्तः सार्धचन्द्रैः कलधौतबु-

सुप्तेषु भवं सौप्तिकम्। धृष्टद्युम्नाधिष्ठिताक्षौहिणीविनाशाय दुर्योधनप्रेरितादिवार्जुनाधिष्ठितानां न किंचिदेषां शक्यमिति रात्राववस्कन्दमगच्छन्निति वार्ता। सन्नद्धः सकवचः। उक्तं च—'सन्नद्धो वर्मितः सज्जो दंशितो व्यूढकङ्कटः'। अपचयो हानिः। गोरोचनयेवेति सहोपमेयम्। उल्लासयन्तश्चालयन्तः। सार्धचन्द्रैरिति। निशायां खड्गेषु चन्द्रखण्डस्य सम्भाव्यमानत्वादेवमुक्तम्। न तु

जिस प्रकार महाभारत के सौप्तिक पर्व में द्रोणाचार्य-पुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा मिले थे, उसी प्रकार उन तीनों ने राजा का स्वागत किया जो स्नान किये हुए, माला पहने हुए तथा विकट वेष धारण किये हुए तैयार थे। उनकी शिखाओं के फूलों में भौंरे इस प्रकार गुञ्जार कर रहे थे मानो शिखा बन्धन के मन्त्र पढ़ रहे हों। उनके मस्तकों पर पगड़ियों के बीचोबीच इस प्रकार स्वस्तिका ग्रन्थि बँधी थी मानो वे महामुद्रा बन्धों को धारण कर रहे हों। एक ही कान पर लटकते हुए दन्त पत्र की प्रभा धवलित हुए गालों वाले मुखों से मानो वे राक्षसों के संहार की इच्छा से रात्रि के अन्धकार को पीते जा रहे थे तथा दूसरे कान में लटकते हुए रत्नकुण्डल की कान्ति ऐसी लग रही थी मानो उनके अङ्गों में अभिमन्त्रित गोरोचना लगी हुई हो। तेज धारवाली तलवारों में उनकी छाया इस प्रकार पड़ रही थी मानो कर्मसिद्धि के लिए उनमें से पुरुषों को बलि दो गयी हो। वे तलवार की किरणों से मानो अलग-अलग अपनी-अपनी दिशा की रक्षा के लिए रात को तीन भागों में बाँट रहे हों इस प्रकार अन्धकार को छाँट रहे थे। जिन पर अर्ध चन्द्र एवं सोने की

द्बुदावलितरलतारागणैर्निशाया इव पुरुषासिधारानिकृत्तैः खण्डैर्गृहीतै-श्चर्मफलकैरकाण्डशर्वरीमपरां घटयन्तः काञ्चनशृङ्खलाकलापनियमित-निबिडनिष्प्रवाणयः, बद्धासिधेनवः, टीटिभकर्णतालपातालस्वामिनो निवेदितवन्तश्चात्मानम् ।

अवनिपतिस्तु—'कोऽत्र कः?' इति त्रीनपृच्छत् । आचचक्षिरे च स्वं स्वं नाम त्रयोऽपि ते । तैरेव चानुगम्यमानो जगाम तां बलिदीपा-लोककर्जारतगुग्गुलुधूपमगृह्यमाणदिग्विभागतया विक्षिप्यमाणरक्षासर्ष-पार्धदग्धान्धकारपलायमाननिशामिव समुपकल्पितसर्वोपकरणां निःशब्दां च गम्भीरां च भीषणां च साधनभूमिम् ।

वस्तुवृत्तेन । कृष्णचतुर्दशीक्षपायां चन्द्रः सम्भवतीति । कलधौतं हेम रौप्यं वा । बुद्बुदावलिबिन्दुपङ्क्तिः । चर्मफलकैः स्फटकैः । एकस्यावर्तमानत्वादाह—अपरामिति । निष्प्रवाणि नवं वस्त्रम् । उक्तं च—'अनाहतं निष्प्रवाणि तन्त्रकं च नवाम्बरे' । असिधेनुः कृपाणम् ।

कोऽत्र क इति वाक्यैकदेशोऽयम् । अत्र कः कः स्थित इत्यर्थः । बलीत्यादिना-र्धदग्धत्वसम्भावनम् । अर्धदग्धस्य पलायनमुचितम् । न तु बहुदग्धस्य । पलायंश्च दिग्भागान् गृह्णाति । सर्षपो गौरसिद्धार्थः ।

बुनकियाँ इस प्रकार बनी थी मानो तलवार की तीक्ष्ण धार से रात्रि के टुकड़े-टुकड़े कर दिये हों तथा दूसरी रात का निर्माण कर रहे हों इस प्रकार की ढालों को हाथ में लिए हुए तथा कमर में सोने की सिकड़ी से नवीन वस्त्र को कसकर बाँधे हुए थे जिसमें छुरी खोंसी हुई थी, ऐसे टीटिभ, कर्णताल एवं पाताल स्वामी सामने आ गये ।

राजा ने—"यहाँ कौन-कौन हैं ?" इस प्रकार तीनों से पूछा । उन तीनों ने अपना-अपना नाम कहा । उन तीनों को साथ लेकर जहाँ बलिदीपों का प्रकाश फैल रहा था, जलते हुए गुग्गुल के धुएँ की सुगन्ध दिशाओं में फैल रही थी, रक्षा के उद्देश्य से अग्नियों में छींटी जाती हुई सरसों के धुएँ के रूप में मानो रात भागी जा रही थी, साधना की समस्त सामग्री जहाँ जुटायी हुई थी ऐसी (भैरवाचार्य की) वीरान, गम्भीर तथा भयानक साधना भूमि में राजा पहुँचे ।

तस्यां च कुमुदधूलिधवलेन भस्मना लिखितस्य महतो मण्डलस्य मध्ये स्थितं दीप्ततरतेजःप्रसरम्, पृथुपरिवेशपरिक्षिप्तमिव शरत्सवितारम्, मथ्यमानक्षीरोदवर्त्तवर्तिनमिव मन्दरम्, रक्तचन्दनानुलेपिनो रक्तस्रगम्बराभरणस्यौत्तानशयस्य शवस्योरस्युपविश्य जातजातवेदसि मुखकुहरे प्रारब्धाग्निकार्यम्, कृष्णोष्णीषम्, कृष्णाङ्गरागम्, कृष्णप्रतिसरम्, कृष्णवाससम्, कृष्णतिलाहुतिनिभेन विद्याधरत्वतृष्णया मानुषनिर्माणकारणकालुष्यपरमाणूनिव क्षयमुपनयन्तम्, आहुतिदानपर्यस्ताभिः प्रेतमुखस्पर्शदूषितं प्रक्षालयन्तमिवाशुशुक्षणिं करनखदीधितिभिः, धूमालोहितेन चक्षुषा क्षतजाहुतिमिव हुतभुजि पातयन्तम्,

तस्यां चेत्यादौ। भैरवाचार्यमपश्यदिति सम्बन्धः। पृथुपरिवेशेत्यादिना भीषणीयत्वमुक्तम्। परिवेशः परिधिः परिक्षिप्तं परिवलितम्। शरदि सविता दीप्ततरतेजःप्रसरो भवतीति शरद्ग्रहणम्। जातः उत्पन्नः, न तूत्क्षिप्तः। प्रतिसरो हस्तसूत्रम्। दिक्षु काण्डसूत्रप्रतिबन्ध इति। अत्र तिलानां कृष्णत्वात् परमाणूनामपि कालुष्यकथनम्। क्षतजेति। प्रस्तावनानुगुण्येन रक्ताहुतिः सम्भाव्यते। जपव-

उस साधना भूमि में कुमुद के पराग के समान धवल भस्म से पुरे गये बहुत बड़े घेरे के बीच में विराजमान, जिनका तेज अत्यधिक दीप्त हो गया था ऐसे, जो विशाल मण्डल से घिरे हुए शरत्कालीन सूर्य की भाँति प्रतीत हो रहे थे ऐसे, जो मथे जाते हुए क्षीरसागर की भँवरियों के बीच मन्दराचल के समान प्रतीत हो रहे थे ऐसे, रक्त चन्दन से चर्चित, लाल माला एवं लाल वस्त्र से अलंकृत, जो उतान पड़े हुए मुर्दे की छाती पर बैठकर उसके मुँह में आग जलाकर हवन कर रहे थे ऐसे, जो काली पगड़ी, काला अङ्गराग, काली राखी एवं काला वस्त्र धारण किये हुए थे ऐसे, विद्याधर बनने की लालसा से जो काले तिल की आहुति इस प्रकार डाल रहे थे मानो मनुष्य में जन्म लेने के कारणभूत कालुष्य के परमाणुओं का संहार कर रहे हों ऐसे, आहुति डालने के समय जिनके हाथ के नखों की किरणें इस प्रकार फैल जाती थीं मानो प्रेत के मुँह के स्पर्श से दूषित अग्नि को धोकर पवित्र कर रहे हों ऐसे, धुएँ के लगने के कारण जिनकी आँखें इस प्रकार लाल हो गई थीं मानो अग्नि में रुधिर की आहुति डाल

ईषद्विवृताधरपुटप्रकटितसितदशनशिखरेण दृश्यमानमूर्तमन्त्राक्षरपङ्क्तिमेव मुखेन किमपि जपन्तम्, होमश्रमस्वेदसलिलप्रतिबिम्बिताभिरासन्नदीपिकाभिर्दहन्तमिव कर्मसिद्धये सर्वावयवान् अंसावलम्बिना बहुगुणेन विद्याराजेनेव ब्रह्मसूत्रेण परिगृहीतं भैरवाचार्यमपश्यत् । उपसृत्य चाकरोन्नमस्कारम् । अभिनन्दितश्च तेन स्वव्यापारमन्वतिष्ठत् ।

अत्रान्तरे पातालस्वामी शातक्रतवीमाशामङ्गीचकार, कर्णतालः कौबेरीम्परिव्राट् प्राचेतसीम् । राजा तु त्रैशङ्कवेन ज्योतिषाङ्कितां ककुभमलंकृतवान् ।

शादीषदित्याद्युक्तम् । ईषद्विवृतत्वादेव शिखरग्रहणम् । प्रतिबिम्बादानोपपादनार्थमासन्नपदम् । गुणास्तन्तवः, गुणनं गुणाः । पौनः पुन्येनावर्तनं च । उत्कर्षो वा गुणः । विद्याराजो मन्त्रविशेषः ।

शातक्रतवीं पूर्वाम् । अङ्गीचकारेत्यनेन सर्वेषां स्वरुचिपरिगृहीतत्वमुक्तम् कौवेरीमुत्तराम् । प्राचेतसीं पश्चिमाम् । त्रिशंकुरिक्ष्वाकुवंश्यः शापाच्चाण्डालतां प्राप्तो यज्ञेन स्वर्गमारुरुक्षुरर्धपथे देवैर्निवारितो दक्षिणस्यां दिश्युदेति । तेन त्रैशङ्कवेन ज्योतिषाङ्कितां ककुभं दिशं दक्षिणाम् । दक्षिणस्यामित्युक्तेऽनिष्टप्रतीतिरिति त्रैशङ्कवेनेत्युक्तम् ।

रहे हों ऐसे, जो अपने होठों को थोड़ा सा खोले कुछ जप कर रहे थे तथा उस समय जिनके दिखाई पड़ने वाले उजले दाँत मूर्त्तिमान मन्त्राक्षरों के समान लग रहे थे ऐसे, जिनके निकट में रखे दिये हवन कर्म के परिश्रम से उत्पन्न पसीने में इस प्रकार प्रतिबिम्बित हो रहे थे मानो कर्म की सिद्धि के लिए अपने सभी अङ्गों को जला रहे हों ऐसे तथा जिनके कन्धे से विद्याराज नामक मन्त्र के सदृश वहुत गुणों वाला ब्रह्मसूत्र लटक रहा था ऐसे भैरवाचार्य को राजा ने देखा और पास जाकर नमस्कार किया। फिर भैरवाचार्य द्वारा अभिनन्दित होकर राजा अपना काम करने लगा।

इसी बीच पातालस्वामी इन्द्र की दिशा अर्थात् पूर्व दिशा में, कर्णताल कुबेर की दिशा अर्थात् उत्तर दिशा मे, सन्यासी अर्थात् टीटिभ वरुण की दिशा अर्थात् पश्चिम दिशा में बैठ गये। राजा ने त्रिशंकु के तेज से अङ्कित दक्षिण दिशा को (बैठकर) अलंकृत किया।

एवं चावस्थितेषु दिक्पालेषु दिक्पालभुजपञ्जरप्रविष्टे विस्रब्धं कर्म साधयति भैरवं भैरवाचार्येऽतिचिरं च कृतकोलाहलेषु निष्फलप्रयत्नेषु प्रत्यूहकारिषु शान्तेषु कौणपेषु गलत्यर्धरात्रसमये मण्डलस्य नातिदवीयस्युत्तरेणाकस्मादेव प्रलयमहावराहदंष्ट्रविवरमिव दर्शयन्ती क्षितिरदार्यत। सहसैव च अस्माद्विवरादाशावारणोत्क्षिप्त इवालानलोहस्तम्भः, महावराहपीवरस्कन्धपीठो नरकासुर इव भुवो गर्भादुद्भूतो बलिदानव इव भित्त्वोत्थितः पातालम्, इन्द्रनीलप्रासाद इवोपरिज्वलितरत्नप्रदीपः, स्निग्धनीलघननिबिडकुटिलकुन्तलकान्तमौलिरुन्मीलन्मालतीमुण्डमालः, गद्गदतया स्वरस्य स्वभावपाटलतया च चक्षुषः क्षीब इव यौवनमदेन वल्गद्गलदामकः, करसंपुटमृदितया मृदा दिङ्नागकुम्भाभावं सकृत्पुनःपुनः

विस्रब्धमिति। एतदर्थमेव राजादीनां परिग्रहः। प्रत्यूहो विघ्नः कौणपेषु राक्षसेषु। सहसेत्यादौ। कुवलयश्यामलः पुरुष उज्जगामेति सम्बन्धः। लोहस्तम्भ इति। लोहशब्देन सारता कृष्णता चोक्ता। गर्भान्मध्यात्, उदराच्च। घना निबिडाः। निबिडकुटिला अतिकुञ्चिताः कुन्तलाः केशाः। मौलिश्चूडा, किरीटं

इस प्रकार उन तीनों के दिक्पाल के रूप में अवस्थित हो जाने पर, उन तीनों दिक्पालों की भुजाओं के पिंजड़े मे घुसकर निश्वस्त होकर भैरवाचार्य के भीषण कर्म प्रारम्भ करने पर, बहुत देर तक कोलाहल करके प्रयासों के व्यर्थ हो जाने के कारण विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों के शान्त हो जाने पर, जब आधी रात हो गई तो घेरे से थोड़ी ही दूर उत्तर की ओर अचानक ही मानो प्रलयकालीन महावराह के दाँतों द्वारा हुए विवर को दिखाती हुई पृथिवी फट पड़ी। अकस्मात् ही जिस विवर से, मानो किसी दिग्गज ने अपने लोहे का खूँटा उखाड़ फेंका हो ऐसा, या महावराह का मोटा कन्धा निकल आया हो, या नरकासुर पृथिवी के गर्भ से निकल पड़ा हो, या दैत्यराज बलि पाताल को फोड़कर ऊपर उठ आया हो ऐसा, इन्द्रनील के महल की भाँति जिसके ऊपर अर्थात् माथे पर जलता हुआ रत्नद्वीप था, जो चिकने, नीले, घने तथा अधिक घुँघराले बालों से सुन्दर मस्तक वाला तथा मालती की शिरोमाला धारण किये हुए था, जो आवाज के भरी जाने तथा आँखों के स्वभावतः लाल होने के कारण जवानी के नशे से मतवाले के समान था, जिसके गले की माला गिर रही थी, अपने ही हाथों से मिट्टी मलने के कारण दिग्गज के कन्धों के समान अपने कन्धे

परिपङ्कयन् सान्द्रचन्दनकर्दमदत्तैरव्यवस्थास्थासकैरविसितजलधरशकलशारित इव शारदाकाशैकदेशः केतकीगर्भपत्रपाण्डुरस्य चण्डातकस्योपरि क्षामतरीकृतकुक्षिः, कक्ष्याबन्धं विधाय विलासविक्षिप्तेन धवलव्यायामफालीपटान्तेन धरणितलगतेन धार्यमाण इव पृष्ठतः शेषेण, स्थिरस्थूलोरुदण्डः भूमिभङ्गभयेनेव मन्थराणि स्थापयन्पदानि निर्भरगर्वगुरु कथमपि शैलमिव गात्रमुद्वहन् दर्पेण मुहुर्मुहुरुरसि द्विगुणिते दोष्णि वामे तिर्यगुत्क्षिप्ते च दक्षिणे जङ्घाकाण्डे कुण्डलिते च चण्डास्फोटनटांकारैः कर्मविघ्ननिर्घातानिव पातयन्नेकेन्द्रियविकलमिव जीवलोकं कुर्वन् कुवलयश्यामलः पुरुष उज्जगाम। जगाद च विहस्य नरसिंहनादानुघोषघोरया भारत्या—'भो विद्याधरोऽश्रद्धाकामुक ! किमयं 'वद्यावलेपः सहायमदो वा

च। उक्तं च—'चूडा किरीटं केशाश्च संहता मौलयस्त्रयः'। स्थासकैश्चन्द्रकैः फाली। कक्ष्याबन्धः। शेषेणेति। शेषो धवलः, धरणितलगतश्च। पाठान्तेनापि विशेषेणावतिष्ठते। आस्फोटनं बाह्वादिशब्दाः। एकेन्द्रियम्। अर्थाच्छ्रोत्रम्। निर्घोषो दिक्षु व्याप्तिः। अत्र विद्याधरीत्यादि ह्लपणार्थमामन्त्रणाम्। श्रद्धाग्रहणं

को बार-बार जो गीला कर रहा था, जो अपने शरीर में गाढ़े चन्दन के जहाँ-तहाँ लगाये गये थप्पों से उजले मेघ खण्डों से रंगीन शरत्कालीन आकाश के एक भाग जैसा लग रहा था ऐसा, जिसका कुक्षि-भाग केतकी के पत्ते के समान उजले चंडा तक के ऊपर क्षीण हो गया था ऐसा, कच्छा बाँधकर जो जमीन तक लटकती हुई उजली पटली को इस प्रकार धारण किये हुए था मानो पृथिवी पर आकर शेष नाग ने उसे धारण कर लिया हो ऐसा, स्थिर एवं मोटी जङ्घाओं वाला, मानो धरती के धँस जाने के भय से अपने पैरों को धीरे-धीरे रखता हुआ, अत्यधिक गर्व के कारण पर्वत के समान भारी अपने शरीर को किसी-किसी प्रकार धारण करता हुआ, दर्प से बार-बार छाती पर बायाँ हाथ मोड़कर रखा हुआ, दायाँ हाथ तिरछा फेंकता हुआ, दाहिनी जाँघ मोड़कर उस पर ताल ठोंकता हुआ, मानो भैरवाचार्य के कर्म में विघ्न पैदा करने के लिए आँधी की आवाज उत्पन्न करता हुआ, मानो उस आवाज से जीवलोक (संसार) को कर्णेन्द्रियरहित (अर्थात् बधिर) करता हुआ कुवलय के समान साँवले रंग का कोई पुरुष बाहर आया और नरसिंह के समान गुर्राहट भरी आवाज में वह बोल उठा—"अरे विद्याधरी के श्रद्धायुक्त कामुक ! क्या यह तुझे विद्या का गर्व है

यदस्मै जनाथाविधाय बलिं बालिश इव सिद्धिमभिलषसि ? का ते दुर्बुद्धिरियम् ? एतावता कालेन क्षत्राधिपतरस्य मन्नाम्नैव लब्धव्यपदेशस्य देशस्य नागतस्ते श्रोत्रापकण्ठं श्रीकण्ठनामा नागोऽहम् ? अनिच्छति मयि का शक्तिर्ग्रहणस्यापि गन्तुं गगने। भूनाथोऽप्ययमनाथस्तपस्वी यस्त्वादृशैः शैवापसदैरुपकरणीक्रियते। सहस्वेदानीं सहामुना दुर्नरेन्द्रेण दुर्नयस्य फलम्' इत्यभिधाय च निष्ठुरैः प्रकोष्ठप्रहारैस्त्रीनपि टीटिभप्रभृतीनभिमुखं प्रधावितान् सशरीरावरणकृपाणानपातयत्।

अथापूर्वाधिक्षेपश्रवणादशस्त्रव्रणैरप्यमर्षस्वेदच्छलेनानेकसमरपीतमसिधाराजलमिव वमद्भिरवयवैरपि रोमाञ्चनिभेन मुक्तशरतशल्यनिकरभरलघुमिवात्मानं रणाय कुर्वद्भिरट्टहासेनापि प्रतिबिम्बिततारागणेन

फलाभावप्रतिपादनाय। अस्मादित्यादि गर्वगर्भेयमुक्तिः। बालिशो मूर्खः। अभिलषसीति फलाभावसूचनपदम्। अपसदोऽधमः दुर्नरेन्द्रेण कुराज्ञा। दुर्नरेन्द्री मन्त्रतन्त्रानभिज्ञः सशरीरेत्यादि। न तु नरेन्द्रवदशस्त्रान्।

अथेत्यादौ। नरनाथः सावज्ञमवादीदिति संबन्धः। कथ्यमानेत्यादि। अशस्त्रव्र-

या तू अपने सहायकों के मद में फूल गया है जो मुझे बिना बलि दिये ही मूर्ख के समान सिद्धि प्राप्त कर लेना चाहता है ? यह तेरी कौन सी दुर्बुद्धि है ? अब तक तूने क्या यह नहीं सुना है कि मैं ही इस क्षेत्र का स्वामी श्रीकण्ठ नामक नाग हूँ जिसके नाम से यह देश भी प्रसिद्ध है। मेरे न चाहने पर तारों को भी आकाश में जाने की हिम्मत नही होती। यह (पुष्यभूति) भूनाथ अर्थात् राजा होकर भी अनाथ है जो बेचारा तुझ जैसे (नीच) शैवोपासक द्वारा साधन बनाया जा रहा है। अब तू इस दुष्ट राजा के साथ-साथ अपनी दुर्नीति का परिणाम भोगा।'' यह कहकर कठोर मुक्कों के प्रहारों से सामने अपनी ओर (आक्रमण के लिए) दौड़कर आते हुए टीटिभ आदि तीनों व्यक्तियों को उनके कंचुक एवं तलवार आदि के साथ गिरा दिया।

इसके पहले कभी भी ऐसी डाँट नही सुनने के कारण बिना हथियार के ही राजा के अङ्गों में घाव हो गये और अमर्षजन्य पसीने की बूँदों के बहाने अनेक युद्धों में दिये हुए खड्ग की धारा के जल को छोड़ता हुआ एवं रोमाञ्च के व्याज से युद्ध के लिए सैकड़ों बाण छोड़-छोड़कर मानो अपने को हल्का करता हुआ,

स्पष्टदृष्टधवलदन्तमालामवज्ञया हसतैव कथ्यमानसत्त्वावष्टम्भः परिकर-बन्धविभ्रमभ्रमितकरनखकिरणचक्रवालेन व्यपगमनाशङ्कया नागदमन-मन्त्रमण्डलबन्धेनेव रुन्धन् दशदिशो नरनाथः सावज्ञमवादीत्—'अरे काकोदर काक! मयि स्थिते राजहंसे न जिह्रेषि बलिं याचितुम्? अमीभिः किं वा परुषभाषितैः? भुजे वीर्यं निवसति, न वाचि। प्रतिपद्यस्व शस्त्रम्। अयं न भवसि। अगृहीतहेतिष्वशिक्षितो मे भुजः प्रहर्तुम्' इति। नागस्त्वनादृततरम्—'एहि, किं शस्त्रेण? भुजाभ्यामेव भनज्मि भवतो दर्पम्' इत्यभिधायास्फोटयामास। नरपतिरपि निरायुधमायुधेन युधि लज्जमानो जेतुमुत्सृज्य सचर्मफलकमट्टहासमासिमर्थोरुकस्योपरि बबन्ध बाहुयुद्धाय कक्ष्याम्। युयुधाते च निर्दयास्फोटनस्फुटि-

र्णैश्चावयवैश्चाट्टहासेन च। मण्डलं गरुडशास्त्रप्रसिद्धमैन्द्रादिकम्। काकोदरः सर्पः। काकेति निन्दायाम्। काकस्य च बलियाचनमुक्तम्। राजहंसो नृपवरः हंसभेदश्च। हेतिरायुधम्। आस्फोटयामास बाह्वोः करघातमकार्षीत्। असिमिति प्रशंसार्थः

जिसमें तारागण का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था तथा जिसमें उज्जल दाँतों की पंक्ति स्पष्ट रूप से इस प्रकार दिखाई पड़ती थी मानो वह अवज्ञापूर्वक खिल्ली उड़ा रहा हो ऐसे अट्टहास नामक कृपाण से जिसका बलस्थैर्य प्रकट किया जा रहा था ऐसा, तथा परिकर बाँधने के समय जिसके नखों की किरणें चारों ओर इस प्रकार घूम गईं मानो शत्रु के भाग जाने की शङ्का से सर्पों का दमन करने वाले गरुड-मन्त्र से दिशाओं को बाँध रहा हो, ऐसा राजा तिरस्कारपूर्वक बोला—"अरे सर्पकाक (अर्थात् नीच सर्प)! मुझ राजहंस के रहते बलि माँगता हुआ तू लज्जित नहीं होता? इन कठोर बातों से क्या? वीरता भुजाओं में रहती है न कि वचन में। शस्त्र उठा। यदि ऐसा नहीं होता तो मेरी भुजाओं में आयुध-विहीनों पर प्रहार करना नहीं सीखा है।' नाग ने अनादर के साथ कहा—"अरे, जा तो जा। शस्त्र से क्या! भुजाओं से ही तेरे दर्प को चूर करता हूँ।" यह कह कर ताल ठोंका। आयुध-हीन के साथ आयुध लेकर लज्जा का अनुभव करते हुए राजा ने ढाल के साथ अट्टहास नामक तलवार को फेंक कर बाहु युद्ध के लिए जाँघिया तक कच्छा बाँध लिया। दोनों युद्ध करने

तभुजरुधिरशीकरसिच्यमानौ शिलास्तम्भैरिव पतद्भिर्बाहुदण्डैः शब्दमयमिव कुर्वाणो भुवनं तौ। न चिराच्च पातयामास भूतले भुजङ्गमं भूपतिः। जग्राह च केशेषु। उच्चखान च शिरश्छेत्तुमट्टहासम्। अपश्यच्च वैकक्षकमालान्तरेणास्य यज्ञोपवीतम्। उपसंहृतशस्त्रव्यापारश्चावादीत्–'दुर्विनीत! अस्ति ते दुर्नयनिर्वाहबीजमिदम्। यतो विश्रब्धमेवाचरसि चापलानि' इत्युक्त्वोत्ससर्ज च तम्। अनन्तरं च सहसैवातिबहलां ज्योत्स्नां ददर्श। शरदि विकसितां कमलवनानामिव च घ्राणावलेपिनमामोदमजिघ्रत्। झटिति च नूपुरशब्दमश्रृणोत्। व्यापारयामास च शब्दानुसारेण दृष्टिम्।

अथ करतलस्थितस्याट्टहासस्य मध्ये तडितमिव नीलजलधरोदरे स्फुरन्तीं प्रभया पिबन्तीमिव त्रियामाम्, तामरसहस्ताम्, कोमलाङ्गुलिरागराजिजालकानि च चरणलग्नानि वेलाबालविद्रुमलतावनानीवा-

सामान्यपदप्रयोग इति रुद्रटः। वैकक्षमालान्तरितत्वेन,पूर्वमदर्शनं,यज्ञोपवीतस्याह।

अथेत्यादौ। अट्टहासस्य मध्ये स्फुरन्तीं स्त्रियमपश्यदिति सम्बन्धः। तामरसं

तथा क्रूर प्रहारों के कारण फूट जाने से भुजाओं के शोणित से सिंचते हुए वे दोनों शिला-स्तम्भों के समान गिरते हुए बाहु-दण्डों से संसार को मानो शब्दमय करने लगे। देर तक लड़ने के बाद भी राजा उस सर्प को जमीन पर नहीं गिरा पाया। राजा ने उसके बाल पकड़ लिए तथा उसके सिर को काटने के लिए अट्टहास नामक तलवार खींच ली। (तभी) राजा ने उस नाग की वैकक्ष्यक माला के अन्दर जनेऊ देखा। शस्त्र के वार को रोक कर राजा बोला—"रे दुर्विनीत! अनीति करके उससे बच निकलने का यह बीज तेरे पास है जिसके कारण तू विश्वस्त होकर चपलताएं कर रहा है।" यह कह कर राजा ने उसे छोड़ दिया। उसके बाद उसने अचानक अत्यधिक प्रकाश देखा। शरत्काल में खिलते हुए कमलवनों की जैसी नाक घुस जाने वाली गन्ध उसने सूंघी तथा नूपुर की आवाज सुनी। आवाज की ओर उसने अपनी नजर दौड़ाई।

इसके बाद हाथ में स्थित अट्टहास के बीच, नीले मेघ के बीच चमकती हुई बिजली के समान जो अपनी कान्ति से मानो रात को पीती जा रही थी ऐसी, कमल-सदृश हाथों वाली, जिसके चरणों की कोमल अङ्गुलियों में लगी

कर्षन्तीम्, करपङ्कजसंकोचाशङ्कया शशाङ्कमण्डलमिव खण्डशः कृतं निर्मलचरणनखनिवहनिभेन बिभ्रतीम्, गुल्फावलम्बिनूपुरपुटतया स्थितनिबिडकटकावलिबन्धनादिव परिभ्रश्यागताम् बहुविधकुसुमशकुनिशतशोभितात्पवनचलिततनुतरङ्गादतिस्वच्छादंशुकादुदधिसलिलादिवोत्तरन्तीम्, उदधिजन्मप्रेम्णा त्रिवलिच्छलेन त्रिपथगयेव परिष्वक्तमध्याम्, अत्युन्नतस्तनमण्डलाम्, दृश्यमानदिङ्नागकुम्भामिव ककुभम्, मदलग्नैरावतकरशीकरनिकरमिव शरत्तारागणतारं हारमुरसा दधानाम्, धवलचामरैरिव च मन्दमन्दनिःश्वासदोलायितैर्हारकिरणैरुपवीज्यमानाम्, स्वभावलोहितेन मदान्धगन्धेभकुम्भास्फालनसंक्रान्तसिन्दूरेणेन करद्वयेन

पद्मम्। बहुविधेति। प्रकृते कुसुमानि शकुनयश्च सूत्रमयानि तरङ्गा मुष्टिदानक्षता भङ्गयः,वीचयश्च। अतिस्वच्छत्वमंशुकस्योदधिसलिलेन। उत्तरन्तीमिति। अंशुकाच्छादितयोदञ्चन्त्या उत्तरणमिवांशुकाल्लक्ष्यत इति। वर्ण्याभिप्रायेण त्रिपथगेति नाम। मदे दाने लग्नः सक्तः। समद इत्यर्थः। श्रीर्हस्तिपृष्ठेन यातीति मदान्धेत्या-

हुई राग की जाली ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो वह सागर-तट के छोटे विद्रुम लताओं के वनों को खींचती चली आ रही हो ऐसी, जो मानो अपने कर-कमल के मुँद जाने की शङ्का से चन्द्रमा के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें अपने चरण के स्वच्छ नखों के रूप में धारण कर रही हो, ऐसी जिसके ठिगनी तक लटकने वाले नूपुर से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सैनिकों से भरे जेल के घेरे निकल कर भाग आई हो, बहुत प्रकार के फूल तथा पक्षी जिस पर कढ़े हुए थे, हवा से जो फहर रहा था तथा अत्यन्त स्वच्छ ऐसे वस्त्र को धारण करने के कारण जो ऐसी लगती थी मानो समुद्र से निकली हो ऐसी, समुद में जन्म लेने के प्रेम के कारण त्रिवलि के व्याज से माना त्रिपथगा गङ्गा ने जिसे आलिङ्गन में ले लिया था ऐसी, जिसके स्तन अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे थे ऐसी, जिसमें दिग्गज का कुम्भ स्थल दिखाई पड़ता हो ऐसी दिशा के समान जो लग रही थी ऐसी, मत वाले ऐरावत की सूँड़ के द्वारा उड़ाये गये फुहारे के समान शरत्कालीन तारों के सदृश झलकते हुए हार को जो अपने वक्ष पर धारण किये हुए थी ऐसी, उजले चाँवरों के समान मन्द-मन्द साँसों से हिलाती हुई हार की किरणें जिस पर डोल रहीं थीं ऐसी, मदान्ध गर्बीले हाथी के कुम्भस्थल को सहलाने के कारण मानो उसका सिन्दूर लग गया हो ऐसे अपने स्वाभाविक लाल वर्ण के

द्योतमानाम्, हरशिखण्डेन्दुद्वितीयखण्डेनेव कुण्डलीकृतेन ज्योत्स्नामुचा दन्तपत्रेण विभ्राजमानाम्, कौस्तुभगभस्तिस्तबकेनेव च श्रवणलग्नेनाशोककिसलयेनालंकृताम्, महता मत्तमातङ्गमदमयेन तिलकेनादृश्यच्छत्रच्छायामण्डलेनेवाविरहितललाटाम् आपादतलादासीमन्ताच्च चन्द्रातपधवलेन चन्दनेनादिराजयशसेव धवलीकृताम्, धरणितलचुम्बिनीभिः कण्ठकुसुममालाभिः सरिद्भिरिव सागराधिष्ठात्रीभिरधिष्ठिताम्, मृणालकोमलैरवयवैः कमलसम्भवत्वमनक्षरमाचक्षाणां स्त्रियमपश्यत्। असम्भ्रान्तश्च पप्रच्छ—'भद्रे! कासि, किमर्थं वा दर्शनपथमागतासि?' इति। सा तु स्त्रीजनविरुद्धेनावष्टम्भेनाभिवन्तीवाभाषत तम्—'वीर! विद्धि मां नारायणोरःस्थलीलीलाविहारहरिणीम्, पृथुभरतभगीरथादिराजवंशपताकाम्, सुभटभुजजयस्तम्भविलासशालभञ्जिकाम्, रणरु-

---

द्युक्तम्। हस्तिवाहित्वाल्लक्ष्म्या एवमुक्तम्। धरणितलचुम्बिनीभिर्मालाभिः, सरिद्भिश्च। हरिणीमिति। हरिणी किल स्थाल्या लीलया विहरति। वंशोऽन्वयेऽथ वंशेवेणौ पताकोत्क्षिप्यते। सुभटेत्यादिविशेषणेन वीरानुरागित्वमस्या दर्शितम्।

दोनों हाथों से जो सुशोभित हो रही थी ऐसी, मानो शिव के मस्तक स्थित चन्द्रमा के दूसरे टुकड़े से कुण्डल बनाया गया हो इस प्रकार किरणों के बिखेरने वाले दन्त पत्र से जो सुशोभित हो रही थी ऐसी, कौस्तुभ मणि की किरणों के गुच्छे के समान कानों में लगे अशोक के नव पल्लवों से जो विभूषित थी ऐसी, मतवाले हाथी के मद से युक्त बड़ा तिलक अवश्य छत्र की छाया के घेरे के समान जिसके ललाट पर लगा था ऐसी, पाँव से लेकर ललाट तक चाँदनी के, आदिराज मनु के यश के समान उजले, चन्दन से चर्चित होकर जो उजली की गई थी ऐसी, पृथिवी तल को चूमने वाली कण्ठ स्थित पुष्प मालाओं से जो समुद्र तक जाने वाली नदियों से युक्त हुई के समान था ऐसी तथा मृणाल के समान कोमल अपने अङ्गों से जो बिना कहे ही अपने को कमल से उत्पन्न बता रही थी ऐसी स्त्री को राजा ने देखा और बिना घबड़ाए हुए उससे पूछा—"भद्रे! तुम कौन हो? क्यों सामने आई हो? वह स्त्री-जाति के विरुद्ध गर्व से अभिभूत करती हुई बोली—"वीर! नारायण के हृत्प्रदेश में लीला-विहार करने वाली हरिणी, पृथु, भरत, भगीरथ आदि राजाओं के वंशों की पताका, योद्धाओं की भुजाओं के जय स्तम्भ में विलसित होने वाली शालभञ्जिका

धिरतरङ्गिणीतरङ्गक्रीडादोहददुर्ललितराजहंसीम्, सितनृपच्छत्रषण्डशिखण्डिनीम्, अतिनिशितशस्त्रधारावनभ्रमणविभ्रमसिंहीम्, असिधाराजलकमलिनीं श्रियम्। अपहृतास्मि तवामुना शौर्यरसेन याचस्व। ददामि ते वरमभिलषितम्' इति।

वीराणां त्वपुनरुक्ताः परोपकाराः यतो राजा तां प्रणम्य स्वार्थविमुखो भैरवाचार्यस्य सिद्धिं ययाचे, लक्ष्मीस्तु देवी प्रीततरहृदया विस्तीर्यमाणेन चक्षुषा क्षीरोदेनेवोपरि पर्यस्तेनाभिषिञ्चन्ती भूपालम् 'एवमस्तु' इत्यब्रवीत्। अवादीच्च पुनः—'अनेन सत्त्वोत्कर्षेण भगवच्छिवभट्टारकभक्त्या चासाधारणया भवान्भुवि सूर्याचन्द्रमसोस्तृतीय इवाविच्छिन्नस्य प्रतिदिनमुपचीयमानवृद्धेः शुचिसुभगमान्यसत्यत्यागशौर्यशुण्डपुरुषप्रकाण्डप्रायस्य महतो राजवंशस्य कर्ता भविष्यति। यस्मिन्नुत्पत्स्यते सर्व-

---

स्तम्भे च शालमञ्जिकोत्कीर्णपुत्रिका क्रियते। षण्डो वनम्, तत्र शिखण्डिनी मयूरी।

अपुनरुक्ता भूयो भूयः क्रियमाणापि चेत्यर्थः। परोपकारकरणपरत्वेन प्रीतत्वम्। अभिषिञ्चन्तीति। अभिषेको राज्ञ उचितः। शौण्डः प्रसक्तः। प्रकाण्डशब्दः प्रशंसावाची। द्वितीयः। स्पर्धावान्।

(पत्थर में उत्कीर्ण मूर्त्ति), युद्धस्थल में रक्त को बहने वाली नदियों की लहरों में क्रीडा का आनन्द अनुभव करने वाली राजहंसी, राजाओं के श्वेत छत्रों में मढ़ी जाने वाली मयूरी, अत्यन्त तीक्ष्ण हथियारों की धारा के वनों में विहार करने वाली सिंहनी तथा खड्गों के धारा जल में खिलने वाली कमलिनी के रूप में तू मुझे लक्ष्मी जान। मैं तेरी इस शूरता के प्रति कुतूहल से यहाँ तक खिच आई हूँ। माँग। तुझे इच्छित वर दूँगा।"

वीर परोपकार का सङ्कल्प करके कभी नहीं मुकरते क्योंकि राजा ने उसे प्रणाम कर स्वार्थ से विमुख होकर भैरवाचार्य की सिद्धि के लिए याचना की। देवी लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर फैलती हुई आँखों से राजा को इस प्रकार देखा मानो दूध से राजा का अभिषेक कर रही हो तथा वह बोली—"ऐसा ही हो।" वह फिर बोली—"राजन्! अपने बल के इस उत्कर्ष से तथा भगवान् शिव भट्टारक की असामान्य भक्ति से आप पृथिवी पर सूर्य और चन्द्रमा के बाद तीसरे व्यक्ति होंगे तथा अविच्छिन्न, प्रतिदिन वर्द्धनशील एवं पवित्र, सुभग, मान्य, सत्य, त्याग तथा शूरता में समर्थ पुरुषों से युक्त विशाल राजवंश के

द्वीपानां भोक्ता हरिश्चन्द्र इव हर्षनामा चक्रवर्ती त्रिभुवनविजिगीषुर्द्वितीयो मांधातेव यस्यायं करः स्वयमेव कमलमपहाय ग्रहीष्यति चामरम्' इति वचसोऽन्ते तिरोबभूव।

भूमिपालस्तु तदाकर्ण्य हृदयेनातिमात्रमप्रीयत। भैरवाचार्योऽपि तस्या देव्यास्तेन वचसा कर्मणा च सम्यगुपपादितेन सद्य एव कुन्तली किरीटी कुण्डली हारी केयूरी मेखली मुद्गरी खड्गी च भूत्वावाप विद्याधरत्वम्। प्रोवाच च—'राजन्! अदूरव्यापिनः फल्गुचेतसामलसानां मनोरथाः। सतां तु भुवि विस्तारवत्यः स्वभावेनैवोपकृतयः। स्वप्नेऽप्यसम्भावितां दातुमिमां दक्षिणां क्षमः कोऽन्यो भवन्तमपहाय। संपत्कणिकामपि प्राप्य तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति। त्वदीयैर्गुणैरुपकरणीकृतस्य त्वत्त एव च लब्धात्मलाभस्य निर्लज्जते यमस्य मूढहृदयस्य। तदिच्छामि येन केनचित्कार्यलवोपपादनोपयोगेन स्मरयितुमात्मानम्' इति।

कुण्डलं कर्णविष्टनम्। हारो मुक्ताहारः। केयूरमङ्गदं दोर्भूषा। फल्गवसारम्। प्रत्याचचक्षे पर्यहार्षीत्।

कर्त्ता होंगे। जिस राजवंश के सभी द्वीपों पर शासन करने वाले हरिश्चन्द्र के समान चक्रवर्ती हर्ष उत्पन्न होगा जो दूसरे मान्धाता के समान तीनों लोकों को जीतने की इच्छा रखने वाला होगा तथा स्वयं मेरा यह हाथ कमल को छोड़ कर जिसका चँवर पकड़ेगा।" इस प्रकार की बात कह कर लक्ष्मी तिरोहित (अर्थात् गायब) हो गई।

राजा यह सुनकर हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हुआ। भैरवाचार्य भी देवी लक्ष्मी के उस वचन से तथा अपने द्वारा किये गये समीचीन कर्म से तुरन्त ही सुन्दर बाल, मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर, करधनी, मुद्गर एवं खड्ग से युक्त होकर विद्याधर बन गया और बोला—"राजन्! सारहीन हृदयवाले मन्द लोगों के मनोरथ दूर तक नहीं होते किन्तु सज्जनों के उपकार स्वभाव से ही पृथिवी में फैले हुए होते हैं। स्वप्न में भी जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती ऐसी यह दक्षिणा आपको छोड़ कर दूसरा कौन है जो देने में समर्थ हो सके? सम्पत्ति के कण को भी पाकर तराजू के समान क्षुद्र स्वभाव वाले लोग ऊपर उठ जाते हैं। आपके ही गुणों को साधन न बना कर आप से ही जो मैं लाभवान् बना उससे ही मूढ हृदय होकर निर्लज्ज इसलिए अपने आपको स्मरण कराने के लिए थोड़ा भी कार्य

प्रत्युपकारदुष्प्रवेशास्तु भवन्ति धीराणां हृदयावष्टम्भाः। यतस्तं राजा "भवत्सिद्धयैव परिसमाप्तकृत्योऽस्मि। साधयतु मान्यो यथासमीहितं स्थानम्' इति प्रत्याचचक्षे।

तथोक्तश्च भूभुजा जिगमिषुः सुहृदं समालिङ्ग्य टीटिभादीन् कुवलयवनेनेवाश्यायशीकरस्राविणा सास्रेण चक्षुषा वीक्षमाणः क्षितिपतिं पुनरुवाच—तात! ब्रवीमि यामीति न स्नेहसदृशम्। त्वदीयाः प्राणा इति पुनरुक्तम्। गृह्यतामिदं शरीरकमिति व्यतिरेकेणार्थकरणम्। तिलशः क्रीता वयमिति नोपकारानुरूपम्। बान्धवोऽसीति दूरीकरणमिव। त्वयि स्थितं हृदयमित्यप्रत्यक्षम्। त्वद्विरहानुकारिणी कारणेयं न सिद्धिरित्यश्रद्धेयम्। निष्कारणस्तवोपकार इत्यनुवादः। स्मर्तव्या वयमित्याज्ञा।

यामीत्यादिवक्रोक्त्या चेतःस्थितं सर्वं व्याहरति-न स्नेहसदृशमिति। स्नेहानुरूपनिषेधेन स्नेह इव सुतरामाविष्कृत एव। उक्तं हि—'प्रतिषेध इवेष्टस्य यद्विशेषाभिधित्सया। आक्षेप इति तं सन्तः शंसन्ति कवयः सदा॥' इति। एवं त्वदीयाः प्राणा इत्यादौ। व्यतिरेकः पृथग्भागः। आवां किलैक एवार्थः। तिलश इति।

कर लेना चाहता हूँ।" धीर पुरुषों के हृदय की गम्भीरता ऐसी होती है जिसमें प्रत्युपकार का प्रवेश करना कठिन होता है। क्योंकि राजा ने उसे—"आपकी सिद्धि से ही मैं कृत-कृत्य हो गया हूँ। अब आप अपने इच्छित स्थान को जाँय।" ऐसा उत्तर दिया।

राजा के द्वारा ऐसा कहने पर जाने का इच्छुक वह भैरवाचार्य टीटिभ आदि का आलिङ्गन कर ओस बहाने वाले कुवलय वन के समान आँसुओं से भरी आँखों से राजा को देखता हुआ पुनः बोला—"तात! यदि कहूँ कि "जाता हूँ" तो यह स्नेह के सदृश अर्थात् प्रेमानुकूल बात नहीं है। "ये प्राण तुम्हारे है" तो इसमें पुनरुक्ति है।" इस तुच्छ शरीर को स्वीकार करो "तो यह भिन्नता की बात हो जाती है।" हम तुम्हारे द्वारा तिल-तिल करके खरीद लिये गये" तो यह बात उपकार के अनुरूप नहीं है। "तुम हमारे बान्धव हो" तो यह दूर कर देने जैसी बात है। "यह हृदय तुम्हीं में है" तो इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। "यह सिद्धि नहीं बल्कि तुम्हारा वियोग कर देने वाली यातना है" तो यह बात श्रद्धा के योग्य नहीं है। "तुम्हारे द्वारा किया गया यह उपकार

सर्वथा कृतघ्नालोपेष्वसज्जनकथासु च चेतसि कर्तव्योऽयं स्वार्थनिष्ठुरो जनः' इत्यभिधाय वेगच्छिन्नहारोच्छलितमुक्ताफलनिकरताडिततारागणं गगनतलमुत्पपात। ययौ च सीमन्तितग्रहग्रामः सिद्धयुचित धाम। श्रीकण्ठोऽपि—'राजन्! पराक्रमक्रीतः कर्तव्येषु नियोगेनानुग्राह्यो ग्राहितविनयोऽयं जनः'—इत्यभिधाय राजानुमोदितस्तदेव भूयो भूविवरं विवेश।

नरपतिस्तु क्षीणभूयिष्ठायां क्षपायां, प्रवातुमारब्धे प्रबुध्यमानकमलिनीनिःश्वाससुरभौ, वनदेवताकुचांशुकापहरणपरिहासस्वेदिनीव सावश्यायशीकरे परिमलाकृष्टमधुकृति कुमुदनिद्रावाहिनि निशापरिणतिजडे तुषारलेशिनि वनानिले, विरहविधुरचक्रवाकचक्रनिःश्वसितसंतापितायाः

यावान्किलायमुपकारो बहुगुणस्तावन्तो नावयवास्तिलशो वियोगेनास्माकम्। कारणा यातना। सीमन्तिता द्विधाकृतः। ग्रामः समूहः।

वनेत्यादौ। अस्मिन्नस्मिन्सति नरपतिर्नगरं विवेशेति सम्बन्धः। क्षीणभूयिष्ठायां बहुतरं क्षीणायाम्। तुषारस्य शीतस्य लेशाः सन्ति तत्र तस्मिन्नीषच्छीतले।

अहेतुक है" यह तो वही बात हुई। "हमें याद रखना" यह आज्ञा हो जाती है। जब कृतघ्नों की चर्चा होगी तथा सज्जनों की कथा का प्रसङ्ग उपस्थित होगा तब स्वार्थ के कारण निष्ठुर इस व्यक्ति को अवश्य ध्यान में लाना" यह कह कर वेग के कारण टूटे हुए हार के मोतियों से तारों को जहाँ आघात पहुँचाया जाता था ऐसे आकाश की ओर भैरवाचार्य उड़ गया तथा तारों के समूह को दो भागों में बाँटता हुआ वह अपनी सिद्धि के लिए उचित स्थान में चला गया। श्रीकण्ठ नाग ने भी—"राजन्! अपने पराक्रम से खरीदे गये तथा विनम्र बनाये गये इस व्यक्ति को (अर्थात् मुझे) समय-समय पर कार्यों में लगा कर आप अनुगृहीत करें।" यह कह कर तथा राजा की स्वीकृति प्राप्त कर पुनः भूमि के उसी विवर में प्रविष्ट हो गया।

रात का बहुत अधिक भाग जब समाप्त हो गया जगती हुई कमलिनी के निःश्वास की सुगन्ध से भरी हुई, वन-देवता के स्तनावरण को खींच लेने के हँसी-मजाक में पसीने से युक्त हुई सी तथा ओस के फुहारों से युक्त, सुगन्ध से भौरों को खींचती हुई एवं कुमुदों को सुलाती हुई, रात्रि की समाप्ति में वन की ठण्डी हवा ने जब बहना प्रारम्भ कर दिया, वियोग-व्यथित चक्रवाकों के

मिवापरजलनिधिमवतरन्त्यां त्रियामायां, साक्षादागतलक्ष्मीविलोकनकुतूहलिनीष्विव समुन्मीलन्तीषु नलिनीषु, उन्निद्रपक्षिणि क्षरति कुसुमविसरमिव तुहिनकणनिकरं मृदुपवनलासितलते कानने, कमललक्ष्मीप्रबोधमङ्गलशङ्खेष्विव रणत्स्वन्तर्बद्धषट्चरणमधुकरेषु मुकुलायमानेषु कुमुदेषु, उज्जिहानरविरथवाजिविसृष्टैः प्रोथपटुपवनैः प्रोत्सार्यमाणास्विव वारुण्यां ककुभि पुञ्जीभवन्तीषु श्यामालताकलिकासु तारकासु, मन्दरशिखराश्रयिणि मन्दानिलुलितकल्पलतावनकुसुमधूलिविच्छुरित इव धूसरीभवति सप्तर्षिमण्डले, सुरवारणाङ्कुश इव च्युते गलति तारामये मृगे त्रीनपि टीटिभादीन् गृहीत्वा नागयुद्धव्यतिकरमलीमसानि शुचिनि वनवापीपयसि प्रक्षाल्याङ्गानि नगरं विवेश। अन्यस्मिन्नहनि तेषामात्मशरीरानन्तरं

संतापितायामिवेति। संतापितश्च शीतलं स्थानमवतरन्ति। कुसुमविसरमिवेति समोपमा। लासिता नर्तिताः। उज्जिहान उद्गच्छन्। श्यामा रात्रिः, सैव लता व्रततिः। प्रियङ्गुलतिका मकरिका। तारामयो मृगशीर्षस्थितारोऽङ्कुशाकारः।

निःश्वास के सन्ताप का अनुभव करती हुई रात जब पश्चिम समुद्र में उतरने लगी, मानों साक्षात् आई हुई लक्ष्मी को देखने की उत्सुकता से कमलिनियाँ जब आँखें खोलने लगीं, जिसमें पक्षी जाग पड़े हों, फूलों के रूप में ओस-कण गिर रहे हों एवं मन्द वायु द्वारा लताएँ नृत्य करने लगी हों ऐसे जंगल के हो जाने पर, कमल में निवास करने वाली लक्ष्मी को जगाने के लिए मङ्गल शङ्ख के समान भीतर में बँधे हुए भौंरों के गुञ्जार करने पर तथा कुमुदों के मुँद जाने पर, ऊपर आते हुए सूर्य के रथ के घोड़ों की थुथुन को तेज हवा से उड़ाये गए के समान तारे श्यामलता की कलियों के समान पश्चिम दिशा में जब इकट्ठे होने लगे, मन्दराचल की चोटी का आश्रय लेने वाला सप्तर्षि मण्डल जब मानो मन्द वायु से काँपती हुई कल्पलता के फूलों की धूल से धूसरित होने लगा, ऐरावत के अङ्कुश की भाँति जब मृगशिरा नक्षत्र नीचे चला गया तब राजा ने टोटिम आदि तीनों को साथ लेकर नाग से युद्ध करने के कारण गन्दे पड़ गये अङ्गों को जङ्गल की बावली के पवित्र जल में धोकर नगर में प्रवेश किया।

स्नानभोजनाच्छादनादिना प्रीतिमकरोत् ।

कतिपयदिवसापगमे च परिव्राड्भूभुजा वार्यमाणोऽपि वनं ययौ । पातालस्वामिकर्णतालौ तु शौर्यानुरक्तौ तमेव सिषेवाते । संपादितमनोरथातिरिक्तविभवौ च सुभटमण्डलमध्ये निष्कृष्टमण्डलाग्रौ समरमुखेषु प्रथममुपयुज्यमानौ कथान्तरेषु चान्तरान्तरा समादिष्टौ विचित्राणि भैरवाचार्यचरितानि शैशववृत्तान्तांश्च कथयन्तौ तेनैव सार्धं जरामाजग्मतुरिति ।

इति महाकविश्रीबाणभट्टकृते हर्षचरिते राजदर्शनं नाम तृतीय उच्छ्वासः ।

आत्मशरीरातन्तरं स्नानेति । आत्मशरीरमनन्तरं यस्य तादृशेन स्नानभोजनाच्छादिना । तेषु कृत्वा पश्चादात्मनः करोतीत्यर्थः ।

शौर्यानुरक्ताविति । न भोगलोलुभौ । अतिरिक्तोऽधिकः । मण्डलाग्रः खड्गः । अन्तरान्तरा मध्ये मध्ये । कथयन्ताविति स्थिरप्रीतिसिद्धये ।

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते तृतीय उच्छ्वासः ।

दूसरे दिन अपने से पहले उन्हें स्नान, भोजन, वस्त्र, आदि द्वारा प्रसन्न किया ।

कुछ दिनों के बाद राजा द्वारा रोके जाने पर भी सन्यासी (टीटिम) वन को चला गया । राजा की शूरता पर अनुरक्त रहने वाले पाताल स्वामी एवं कर्णताल (वहीं रह कर) राजा की सेवा करने लगे । राजा ने उन दोनों के लिए इच्छा से अधिक धन दिया तथा सुभटों के बीच खड्ग खींचने वाले और सेना के प्रधान के रूप में उन्हे नियुक्त किया । बातचीत के समय बीच-बीच में राजा की आज्ञा पाकर भैरवाचार्य के विचित्र कार्य और बचपन के वृत्तान्त को कहते हुए राजा के साथ-साथ हो वे दोनों भी बूढ़े हो गये ।

महाकवि श्रीबाणभट्ट विरचित हर्षचरित में राजदर्शन नामक
तृतीय उच्छ्वास समाप्त हुआ ।

चतुर्थ उच्छ्वासः

योगं स्वप्नेऽपि नेच्छन्ति कुर्वते न करग्रहम् ।
महान्तो नाममात्रेण भवन्ति पतयो भुवः ॥ १ ॥
सकलमहीभृत्कम्पकृदुत्पद्यत एक एव नृपवंशे ।
विपुलेऽपि पृथुप्रतिमो दन्त इव गणाधिपस्य मुखे ॥ २ ॥

योगमित्यादिना प्रसिद्धात्प्रत्युद्गतवैलक्षण्यमुच्यते । भूपतीनां योगो युक्तिः । गूढप्रत्याहाररसादनादिच्छद्मेत्यर्थः, संबन्धश्च । करग्रहो दण्डग्रहणम्, विवाहश्च । नाममात्रेणेति । नामैव तेषां श्रुत्वा भुवनं कम्पत इत्यर्थः । अर्थशून्येन सकलेनेत्यादिना भाविनी हर्षोत्पत्तिः सूचिता ॥ १ ॥

महीभृद्भिरपि कम्पो वेपथुः चलनं च । पृथुरादिराजः विस्तीर्णश्च । प्रतिमा सादृश्यम्, दन्तकोशश्च । दन्त इवेति । दन्तोऽप्येको गणाधिपस्य मुखे, समूहाधिपस्य प्रदाने च ॥ २ ॥

महान् लोग नाम मात्र से ही पृथ्वी के प्रति होते हैं । वे स्वप्न में भी न तो योग (शत्रु से छल-कपट की युक्ति) चाहते हैं और न ही कर (दण्ड) ग्रहण करते हैं । (दूसरा अर्थ यह है कि पति होकर स्वप्न में भी योग अर्थात् समागम नहीं चाहते और कर ग्रह अर्थात् पाणिग्रहण (विवाह) नहीं करते । इस प्रकार केवल नाम से ही पति बने रहते हैं) ॥ १ ॥

जिस प्रकार गणेश जी एक ही विशाल दाँत से समस्त पर्वतों को उखाड़ फेंकता है उसी प्रकार सम्पूर्ण राजाओं को भय से कँपा देने वाला कोई एक ही व्यक्ति महान् राजकुल में पृथुराज के समान पैदा होता है ॥ २ ॥

अथ तस्मात्पुष्पभूतेर्द्विजवरस्वेच्छागृहीतकोषो नाभिपद्म इव पुण्डरीकेक्षणात्, लक्ष्मीपुरःसरो रत्नसंचय इव रत्नाकरात्, गुरुबुधकविकलाभृत्तेजस्विभूनन्दनप्रायो ग्रहगण इवोदयस्थानात्, महाभारवाहनयोग्यः सागर इव सगरप्रभावात्, दुर्जयबलसनाथो हरिवंश इव शूरान्निर्जगाम

अथेत्यादौ। राजवंशो निर्जगामेति संबन्धः। द्विजवरा विप्रोत्तमाः। ब्रह्मा च द्विजोत्तमः। कोशो गञ्जः, कर्णिका च। पुण्डरीकेक्षणः कमललोचनः, विष्णुश्च। लक्ष्मीः पुरःसरा यस्य लक्ष्मीपुरःसरः। 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते'। मणयश्च रत्नानि। गुरव उपदेष्टारः। बुधाः पण्डिताः। कवयः काव्यकृतः। कलावन्तो गीतादिज्ञाः। तेजस्विनः शूराः। भूनन्दना राजानः, इतरत्र,- गुरुर्बृहस्पतिः। उदयः प्रभावोऽपि। महाभारो भूपालनरूपो विजयरूपो वा तस्य निर्वहणे योग्यः। सगरवत्प्रभावो यस्य तस्माद्राज्ञः,सागराणां च यः प्रभावस्तस्मात्। 'प्रभवात्' इति पाठे सगरवत्प्रकृष्टो भव उत्पत्तिर्यस्य तस्मात्, अन्यत्र,—सगरस्य यः प्रभवस्तस्मादिति व्याख्या। दुर्जयो दुरभिभवः। बलं प्राणाः सैन्यं वा तेन युक्तः। ततः कर्मधारयः, अन्यत्र,—दुर्जयोऽजितो विष्णुः, बलो हलधरः, ताभ्यां सनाथा। शूराद्वि-

जिस प्रकार पुण्डरीक-नयन अर्थात् भगवान् विष्णु से ब्रह्मा जी द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार अधिष्ठित मध्य भाग वाला नाभिकमल (द्विजवरों अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार ग्रहण किये गये खजाने वाला राजवंश) निकला, जिस प्रकार लक्ष्मी को आगे करके समुद्र से रत्नों का भण्डार (लक्ष्मी से युक्त राजवंश) निकला, जिस प्रकार उदयाचल से गुरु (बृहस्पति), बुध, कवि (शुक्र), कलाभृत् (चन्द्र), तेजस्वी (सूर्य), भूनन्दन (मङ्गल), आदि ग्रहों का समूह (उपदेश देने वाले गुरु, बुध अर्थात् विद्वान्, कवि अर्थात् काव्य निर्माता, कलाभृत् अर्थात् कलाकार तेजस्वी अर्थात् शूर-वीर और भूनन्दन अर्थात् पृथिवी को आनन्दित करने वाले राजाओं आदि से युक्त राजवंश) निकला, जिस प्रकार राजा सगर के प्रभाव से महान् वस्तुओं का वहन करने वाला सागर (पृथिवी के पालन रूप बहुत बड़े बोझ को ढोने वाला राजवंश) निकला जिस प्रकार शूर नामक यदुराज से दुर्जय अर्थात् भगवान् विष्णु एवं बल अर्थात् बलराम से युक्त हरिवंश (अजेय सैन्य बल वाला राजवंश) निकला उसी प्रकार पुष्पभूति से एक राजवंश चला।

राजवंशः। यस्मादविनष्टधर्मधवलाः प्रजासर्गा इव कृतमुखात् प्रतापाक्रान्तभुवनाः किरणा इव तेजोनिधेः, विग्रहव्याप्तदिङ्मुखा गिरय इव भूभृत्प्रवरात्, धरणिधारणक्षमा दिग्गजा इव ब्रह्मकरात्, उदधीन् पातुमुद्यता जलधरा इव घनागमात्, इच्छाफलदायिनः कल्पतरव इव नन्दनात्, सर्वभूताश्रया विश्वरूपप्रकारा इव श्रीधरादजायन्त राजानः।

तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु क्रमेणोदपादि हूणहरिणकेसरी सिन्धुराजज्वरो गूर्जरप्रजागरो गान्धाराधिपगन्धद्विपकूटपाकलो लाटपाटवपाटच्चरो

क्रान्तात्, शूरश्च यदूनां राजा तस्मात्। अविनष्टेन पूर्णेन। धवला शुक्लाः। अविनष्टधर्मान्धिवाँल्लान्तीति वा। कृतमुखात्संस्कृतात्, कृतयुगादेश्च। प्रताप आतपः, रिपुभयजननो वार्ता च विग्रहो विरोधः, देहश्च। भूभृतां राज्ञाम्, भूधराणां च। धारणं पालनम्, उद्वहनं च। ब्रह्म करोतीति ब्रह्मकरस्तस्मात्। सामानि गायतो ब्रह्मणः करात्करिण उत्पन्ना इति वार्ता। पातुं रक्षितुम्, ग्रासीकर्तुं च। घन आगम उपदेशो यस्य, घनागमश्च वर्षाकालः। नन्दयतीति नन्दनः, देवोद्यानं च। सर्वेषां भूतानां प्राणिनामाश्रया आश्रयणीयाः, सर्वस्य वा भूतस्याश्रयाः, सर्वेषां वा भूताः परमार्थिका अत एवाश्रयणीयाः। श्रीधरो हरिरपि।

हूणादयो जनपदभेदाः। प्रजागरो निद्राक्षयः। 'स्वेदं मूत्रं पुरीषं च मज्जा चैवं मतङ्गजाः। यस्याघ्राय विमाद्यन्ति तं विद्याद् गन्धहस्तिनम्॥' कूटपाकलो

जिस प्रकार विनष्ट न होने वाले धर्म के कारण प्रजा के उज्ज्वल निर्माण सतयुग से हुए, जिस प्रकार अपने प्रताप से सम्पूर्ण संसार को आक्रान्त करने वाली किरणें सूर्य से (उत्पन्न) हुईं, दिशाओं में जिनके शरीर फैल गये ऐसे पर्वत जिस प्रकार प्रधान पर्वत से (उत्पन्न) हुए, जिस प्रकार पृथिवी को धारण करने में समर्थ दिग्गज ब्रह्मा जी के हाथ से (उत्पन्न) हुए, समुद्रों को पीने के लिए तत्पर मेघ जिस प्रकार वर्षाकाल से (उत्पन्न) हुए, इच्छानुसार फल को देने वाले कल्पवृक्ष जिस प्रकार नन्दन वन से (उत्पन्न) हुए तथा सभी प्राणियों पर आश्रित रहने वाले संसार के दृश्यमान रूप जिस प्रकार श्रीधर अर्थात् भगवान् विष्णु से (उत्पन्न) हुए उसी प्रकार जिस राजवंश से अनेक राजा उत्पन्न हुए।

इस प्रकार उन राजाओं के उत्पन्न होने के क्रम में, हूण रूपी हरिणों के लिए सिंह के समान, सिन्धु देश के राजा के लिए बुखार के समान, गुर्जर के

मालवलक्ष्मीलतापरशुः प्रतापशील इति प्रथितापरनामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः। यो राज्याङ्गसङ्गीन्यभिषिच्यमान एव मलानीव मुमोच धनानि। यः परकीयेनापि कातरवल्लभेन रणमुखे तृणेनेव धृतेनालज्जत जीवितेन। यः करधृतधौतासिप्रतिबिम्बितेनात्मनाप्यदूयत समितिषु सहायेन रिपूणां पुरः प्रधनेषु धनुषापि नमता यो मानी मानसेवाखिद्यत। यश्चान्तर्गतापरिमितरिपुशस्त्रशल्यशङ्कुकीलितामिव निश्चलामुवाह राजलक्ष्मीम्। यश्च सर्वासु दिक्षु समीकृततटावटविटपाटवीतरुतृणगुल्म-

---

हस्तिज्वरः। यतो हूणाद्युन्मूलकोऽत एव प्रथितापरनामा राजा। राज्याङ्गन्यमात्याद्याः। अभिषिच्यमानो राज्ये प्रतिष्ठाप्यमानो यस्यामितः सिच्यते सोऽङ्गसङ्गीनि मलानि मुञ्चति। कातरेति। तृणं कातरैर्मुखे ध्रियते। तृणेनेति सहोपमा मुखे तृणधारणमनौचित्यमेव पोषयति। धौतपदेन बिम्बस्वीकारसामर्थ्यमुक्तम्। समिदिन्धनं संग्रामश्च। निश्चलामनपायिनीम्। समीकृतास्तटावटा यैर्विटपाटवीयुक्तैस्तरुभिस्तथा तृणादिभिश्च गहनैः। विटपाः शाखाः अटवी समूहः। गुल्मा जाल-

---

लिए (चैन से न सोने देने वाले) उन्निद्र रोग के समान, गान्धार पति रूपी मतवाले हाथी के लिए कूटकपाल नामक बुखार के समान, लाट देश की चतुराई को समाप्त करने वाला, मालवदेश की लक्ष्मीरूपिणी लता के लिए कुठार के समान प्रभाकरवर्धन नामक राजाधिराज हुआ जिसका दूसरा नाम प्रतापशील था। जिसने अभिषेक के समय में ही राज्य के अङ्गों में लगी हुई गन्दगी के समान धन-दौलत को धो डाला। दीन-दुखियों के प्रिय अपने जीवन को सदैव परोपकार में लगे रहने पर भी संग्राम में तिनके की तरह धारण किये हुए समझ कर जो अपने आप में लज्जित होता रहता था। जो अपने हाथ में धारण की गई तलवार में प्रतिबिम्बित अपने आपको भी अपना सहायक समझ कर युद्धों में व्यथित होता था (अर्थात् युद्धों में जो किसी की सहायता का मुहताज नहीं रहता था), जो ऐसा स्वाभिमानी था कि युद्धों में शत्रुओं के समक्ष अपने धनुष के भी झुकने पर मन में खेद का अनुभव करता था। जिसने शत्रुओं के अपरिमिति शस्त्रों के भीतर तक घुसे हुए—लौह कण्टकों से मानो कीलित कर दी गई निश्चल राजलक्ष्मी को धारण किया। जिसने सभी दिशाओं में नदियों

वल्मीकगिरिगहनैर्दण्डयात्रापथैः पृथुभिर्भृत्योपयोगाय व्यभजतेव वसुधां बहुधा। यं चालब्धयुद्धदोहदमात्मीयोऽपि सकलरिपुसमुत्सारकः परकीय इव तताप प्रतापः। यस्य च वह्निमयो हृदयेषु, जलमयो लोचनपुटेषु, मारुतमयो निःश्वसितेषु, क्ष्मामयोऽङ्गेषु, आकाशमयः शून्यतायां पञ्च-महाभूतमयो मूर्त इवादृश्यत निहतप्रतिसामन्तान्तःपुरेषु प्रतापः। यस्य चासन्नेषु भृत्यरत्नेषु प्रतिबिम्बितेव तुल्यरूपा समलक्ष्यत लक्ष्मीः। तथा च यस्य प्रतापाग्निना भूतिः, शौर्योष्मणा सिद्धिः, असिधाराजलेन वंश-वृद्धिः, शस्त्रव्रणमुखैः पुरुषकारोक्तिः, धनुर्गुणकिणेन करगृहीतिरभवत्।

कानि। वल्मीकः पिपीलककृतो मृत्कूटः। दण्डश्चतुरङ्गबलम्। तस्य यात्रापथैर्गमन-मार्गैः। सीमास्थानीयैर्व्यभजत खण्डशो व्यलभत। भूशय्यादिवशेन पांसुमृतत्वात्का-ठिन्याच्च क्ष्मामयः शून्यतायां निश्चेष्टत्वे। आसन्नेष्विति। आसन्नानि प्रतिबिम्बं गृह्णन्ति, भूतिः सम्पत्, भस्म च। ऊष्मा चान्नदाहिका शक्तिः। सिद्धिः पाकोऽपि। वंशो वेणुरपि। व्रणानां मुखान्यग्राणि। गुणान्येव वा मुखान्याननानि। मुखैः किलो-क्तिर्भवति। करगृहीतिर्दण्डग्रहणम्। किणश्च व्यायामहस्त एव भवति। अज्ञातः।

के तट, गड्ढे, वन, वृक्ष, तृण, झाड़ी, वल्मीक पहाड़ आदि को समतल बना कर नौकरों के उपयोग के लिए दूर तक विस्तृत सैन्यमार्ग बना कर पृथिवी को मानो बहुत हिस्सों में विभक्त कर दिया। युद्धाभिलाषा के पूर्ण होने पर समस्त शत्रुओं को नष्ट करने वाला अपना प्रताप भी पराये जैसा प्रतीत होकर जिसे दुःख पहुँचाता था। मारे गये शत्रुओं के अन्तःपुरों में जिसका प्रताप, हृदयों में अग्नि बन कर जलन पैदा करता हुआ, आँखों में आँसुओं का जल बना हुआ, साँसों में हवा का रूप धारण किये हुए, अङ्गों में धूल भरने के कारण पृथिवी के रूप में परिणत तथा वियोग या बेहोशी की स्थिति में शून्यता के कारण आकाश बना हुआ, शरीरधारी पञ्चभूतों के रूप में दिखाई पड़ता था। जिसकी निकटस्थ भृत्य रत्नों में समान रूप से प्रतिबिम्बित हुई सी लगती थी। जिसके प्रतापरूपी अग्नि से ऐश्वर्य हुआ, जिसकी शूरता की गर्मी से सिद्धि हुई, जिसकी तलवार के धाराजल से वंशवृद्धि हुई, शस्त्रों के घावों से जिसके पौरुष का कथन हुआ, जिसके धनुष की प्रत्यञ्चा की रगड़ के घट्टे से कर की वसूली हुई। जो शत्रुता

यश्च वैरमुपायनं विग्रहमनुग्रहं समरागमं महोत्सवं शत्रुं निधिदर्शनमरिबाहुल्यमभ्युदयमाहवाह्वानं वरप्रदानमवस्कन्दगातं दिष्टवृद्धिं शस्त्रप्रहारपतनं वसुधारारसममन्यत। यस्मिंश्च राजनि निरन्तरैर्यूपनिकरैरशङ्कुरितमिव कृतयुगेन, दिङ्मुखविसर्पिभिरध्वरधूमैः पलायितमिव कलिना, ससुधैः सुरालयैरवतीर्णमिव स्वर्गेण, सुरालयशिखरोद्धूयमानैर्धवलध्वजैः पल्लवितमिव धर्मेण, बहिरुपरचितविकटसभासत्रप्रपाप्राग्वंशमण्डपैः प्रसूतमिव ग्रामैः, काञ्चनमयसर्वोपकरणैर्विभवैर्विशीर्णमिव मेरुणा द्विजदीयमानैरार्थकलशैः फलितमिव भाग्यसम्पदा।

शत्रुष्वभिगमोऽवस्कन्दः। दिष्टवृद्धिरानन्दवर्धनम्। धूमेनोत्प्रेक्षा काष्ण्यात्। सुधा मक्कोलम्, अमृतं च। सभासदः। उक्तं च--'समज्या परिषद्गोष्ठी सभासमितिसंसदः। आस्थानी क्लीबमास्थानं स्त्रीनपुंसकयोः सदः॥' सत्रं सदादानम्। 'सत्रमाच्छादने यज्ञे सदादाने वनेऽपि च' इत्युक्तम्। प्रपा यत्र तोयदानम्। प्राग्वंशः पत्नीशाला। उक्तं च 'प्राग्वंशः प्राग्घविर्गेहात्' इति। बहिरुपपादिता विकटाः सभासत्रप्रपाप्राग्वंशरूपा यैस्तैः।

को उपहार समझता, शत्रु द्वारा किये गये विरोध को जो उसके द्वारा की गई कृपा समझता, जो युद्धावसर को बहुत बड़ा उत्सव मानता, जो शत्रु को ऐसा समझता मानो खजाना दिख पड़ा हो, जो शत्रुओं की अधिकता को अपना अभ्युदय समझता, युद्ध के लिए ललकार जो वरदान समझता, आकस्मिक आक्रमण को जो अपनी भाग्य-वृद्धि मानता और शस्त्र के प्रहार से (शत्रु के) गिरने पर जो धन की वर्षा का आनन्द का अनुभव करता। जिस राजा के शासन-काल में सदैव यज्ञों में यूपों (यज्ञ के लिए लकड़ी का बना हुआ एक विशेष उपकरण) से मानो सतयुग अङ्कुरित हो गया था, दिशाओं में फैलते हुए यज्ञधूमों के कारण मानो कलियुग भाग खड़ा हुआ था, चूने से पुते हुए देव-मन्दिरों के कारण मानो स्वर्ग उतर आया था, देवालयों के ऊपर फहराती हुई उजली पताकाओं के कारण मानो धर्म पल्लवित हो गया था, नगर के बाहर, बड़े-बड़े सभा-भवन, दान-गृह, पानशाला, होमगृह और मण्डप आदि से मानो गाँव के गाँव बस गये थे, स्वर्ण निर्मित सामग्री से युक्त ऐश्वर्य के कारण मानो मेरु ही वहाँ फैल गया था, ब्राह्मणों को दिये जाने वाले धन-कलशों के कारण मानो वहाँ सौभाग्य की सम्पत्ति फलित हो गई थी।

तस्य च जन्मान्तरेऽपि सतो पार्वतीव शंकरस्य, गृहीतपरहृदया लक्ष्मीरिव लोकगुरोः स्फुरत्तरलतारका रोहिणीव कलावतः, सर्वजन-जननी बुद्धिरिव प्रजापतेः, महाभूभृत्कुलोद्गता गङ्गेव वाहिनीनायकस्य, मानसानुवर्तनचतुरा हंसीव राजहंसस्य, सकललोकार्चितचरणा त्रयीव-धर्मस्य, दिवानिशममुक्तपार्श्वस्थितिररुन्धतीव महामुने हंसमयीव-गतिषु, परपुष्टमयीवालापेषु, चक्रवाकमयीव पतिप्रेम्णि, प्रावृण्मयीव पयो-

---

तस्येत्यादौ। तस्य च महादेवी यशोमती नामाभूत्सा यस्य वक्षसि ललासेति सम्बन्धः। सती साध्वी, शोभना वा। जन्मान्तरे श्यामायाः संज्ञैषा। शंकरस्येत्यादीनि महामुनिशब्दान्तानि राज्ञि योज्यानि। गृहीतमावर्जितम्। परहृदयं चेतः, वक्षश्च। लोकगुरोर्हरेश्च। तारका कनीनिका, नक्षत्राणि च तारकाः। जननी माला, जन्यतेऽनयेति जननी च। भूभृद्गिरिरपि कुलं समूहोऽपि। वाहिनी सेना, नदी च। मानसं चेतः, चरणौ पादौ, कण्वादिशाखाश्च चरणाः। धर्मोऽस्ति यस्य स धर्मः। अर्शआदित्वादच्। यद्वा,—साक्षादेव धर्मः। महामुनी राजर्षिः, वसिष्ठश्च।

उस राजा की यशोमती नाम की पटरानी थी जो जन्मान्तर में प्राप्त हुई पतिव्रता धर्मपत्नी, भगवान् शङ्कर की सती पत्नी पार्वती के समान, लोकगुरु अर्थात् भगवान् विष्णु की उस लक्ष्मी के समान जो दूसरों के हृदय में निवास करती है, चन्द्रमा की उस रोहिणी के समान जो झिलमिलाते हुए चञ्चलतारों से युक्त है, ब्रह्मा की उस बुद्धि के समान जो समस्त लोगों को जन्म देती है, वाहिनीनायक अर्थात् समुद्र की उस गङ्गा के समान जो हिमालय के वंश में उत्पन्न हुई है (वाहिनी नायक अर्थात् सेनानायक राजा की वैसी पत्नी जो बहुत बड़े राजकुल में उत्पन्न हुई है)।

राजहंस की वैसी हंसी के समान जो मानस (मानसरोवर या मन) में निवास करने में निपुण हो, धर्म की समस्त संसार द्वारा पूजित चरणों (वैदिक शाखाओं या पैरों) वाली त्रयी अर्थात् वेद-विद्या के समान, वशिष्ठ की दिन-रात पास में रहने वाली (पत्नी) अरुन्धती के समान, चाल में हंसी के समान, बोलने में कोयल के समान, पति के प्रति प्रेम-भाव में चक्र वाकी समान, पयोधरों (दोनों स्तनों या मेघों) की ऊँचाई में वर्षाकाल के समान विलासों

धरोन्नतौ, मदिरामयीव विलासेषु, निधिमयीवार्थसञ्चयेषु, वसुधारामयीव-प्रसादेषु, कमलमयीव कोशसंग्रहेषु, कुसुममयीव फलदानेषु, सन्ध्यामयीव-वन्द्यत्वे, चन्द्रमयीव निरूष्मत्वे, दर्पणमयीव प्रतिप्राणिग्रहणेषु सामुद्र-मयीव परचित्तज्ञानेषु, परमात्ममयीव व्याप्तिषु, स्मृतिमयीव पुण्यवृत्तिषु, मधुमयीव सम्भाषणेषु, अमृतमयीव तृष्यत्सु, वृष्टिमयीव भृत्येषु, निर्वृति-मयीव सखीषु, वेतसमयीव गुरुषु, गोत्रवृद्धिरिव विलासानाम्, प्रायश्चित्त-शुद्धिरिव स्त्रीत्वस्य, आज्ञासिद्धिरिव मकरध्वजस्य, व्युत्थानवृद्धिरिव रूपस्य, दिष्टवृद्धिरिव रतेः, मनोरथसिद्धिरिव रामणीयकस्य, दैवसम्प-

प्रावृट् वर्षा पयोधरौ स्तनौ, मेघाश्च पयोधराः। वसुधारा धनवृष्टिः। कोषो गञ्जः कर्णिका च। ऊष्मा गर्वः, औष्ण्यं च। प्राणिनि प्राणिनि प्रतिप्राणि सर्वजन्तुविषये ग्रहणेष्वावर्जनेषु, प्रतिबिम्बोत्पादनेषु च। सामुद्रं समुद्रकृतं शास्त्रम्। येनान्य स्वभावो ज्ञायते। परमात्मनि व्याप्तिः सर्वगतत्वमनुश्रेष्ठ्यकार्यम्, ज्ञानं चान्यत्र। अमृतं सुधा, तोयं च। वेतसमयीवेति नम्रत्वात्। प्रायश्चित्तशुद्धिरिति। स्त्रीत्वं

में मदिरा के समान, धन इकट्ठा करने में खजाने के समान, प्रसन्नता के अवसर पर धन-वृष्टि के समान, कोश अर्थात् भण्डारों की रक्षा करने में कमल के समान (अर्थात् जिस प्रकार कमल अपने कोष यानि बीजकोश का संग्रह करता है वैसी ही) फल देने में फूल के समान (फूल के बाद ही फल की प्राप्ति होती है, यही तात्पर्य है)। वन्दनीय होने में सन्ध्या के समान, स्वभाव के ठण्डेपन में चन्द्रमा के समान, सभी प्राणियों को अपने में धारण करने में दर्पण के समान, दूसरों के मन की बात जान लेने में सामुद्रिक शास्त्र के समान, सर्वत्र व्याप्त हो जाने में परमात्मा अर्थात् सर्वव्यापी ईश्वर के समान, पुण्याचरणों में स्मृति शास्त्र के समान, वार्तालाप करने में शहद के समान, सबको तृप्त करने में अमृत के समान, भृत्यों के लिए धन की वर्षा के समान, सहेलियों के लिए आनन्द का रूप धारण करने वाली, गुरुजनों के प्रति वेतस के समान, विलासों के लिए वंशवृद्धि के समान, नारीत्व के सम्पूर्ण प्रायश्चित्तों की पवित्रता के समान, कामदेव की आज्ञा की सिद्धि के समान, रूप के व्युत्थान (समाधिभङ्ग) की वृद्धि के समान, रति की भाग्य-वृद्धि के समान, सौन्दर्य की मनोरथ-सिद्धि के लावण्य की दैवी सम्पदा के

त्तिरिव लावण्य, वंशोत्पत्तिरिवानुरागस्य, वरप्राप्तिरिव सौभाग्यस्य, उत्पत्तिभूमिरिव कान्तेः, सर्गसमाप्तिरिव सौन्दर्यस्य, आयतिरिव यौवनस्य, अनभ्रवृष्टिरिव वैदग्ध्यस्य, अयशःप्रमृष्टिरिव लक्ष्म्याः, यशःपुष्टिरिव चरित्रस्य हृदयतुष्टिरिव धर्मस्य, सौभाग्यपरमाणुसृष्टिरिव प्रजापतेः, शमस्यापि शान्तिरिव, विनयस्यापि विनीतिरिव, आभिजात्यस्याप्यभिजातिरिव, संयमस्यापि संयतिरिव, धैर्यस्यापि धृतिरिव, विभ्रमस्यापि विश्रान्तिरिह, यशोमती नाम महादेवी प्राणानां प्रणस्य विस्रम्भस्य धर्मस्य सुखस्य च भूमिरभूत्। यास्य वक्षसि नरकजितो लक्ष्मीरिव ललास।

निसर्गत एव च स नृपतिरादित्यभक्तो बभूव। प्रतिदिनमुदये दिनकृतः स्नातः सितदुकूलधारी धवलकर्पटप्रावृतशिराः प्राङ्मुखः क्षितौ

तयोज्वलितं पवित्रितं वेत्यर्थः। व्युत्थानं समाधेश्चालनम्। आयतिः प्रतापः। अनभ्रवृष्टिरिवेति। यथा ह्यनभ्रवृष्टिराश्चर्यहेतुस्तथा वैदग्ध्यं तस्यामाश्चर्यम्। शमस्यापीति शमे हि कश्चाशान्तो भवति। शमं सम्प्राप्य लब्धात्मलाभो जायते। इत्येवमुत्तरत्रापि व्याख्याक्रमः। आभिजात्यस्य कुलोचितत्वस्य। नरको नामासुरः, यातनास्थानानि च नरकाः।

समान, अनुराग की वंशोत्पत्ति के समान, सौभाग्य की वर-प्राप्ति के समान, कान्ति अर्थात् शोभा प्रादुर्भाव के स्थान के समान, सौन्दर्य के निर्माण की समाप्ति के समान यौवन के प्रताप या परिपूर्णता के समान, लक्ष्मी के चाञ्चल्य रूप के अयश के मार्जन के समान, चारित्र्य की यशः पुष्टि के समान, धर्म के चित्त स्थित सन्तोष के समान सौभाग्य के परमाणुओं की ब्रह्मा द्वारा की गई सृष्टि के समान, सम की भी शान्ति के समान, विनय की भी विनम्रता के समान, कुलीनता की भी कुलीनता के समान संयम की भी संयति के समान, धैर्य की भी धृति के समान, विभ्रम की भी विश्रान्ति के समान तथा राजा के प्राण, प्रेम, विश्वास, धर्म और सुख की भूमि थी। जो राजा के हृदय में उसी प्रकार निवास करती थी जैसे नरकजित अर्थात् भगवान् विष्णु के वक्ष पर लक्ष्मी विलास करती है।

स्वभाव से ही वह राजा भगवान् सूर्य का भक्त था। प्रतिदिन सूर्योदय के समय स्नान करके, उजले दुपट्टे को धारण कर, उजले कपड़े से सिर को ढँक

जानुभ्यां स्थित्वा कुङ्कुमपङ्कानुलिप्ते मण्डलके पवित्रपद्मरागपात्रीनिहितेन स्वहृदयेनेव सूर्यानुरक्तेन रक्तकमलषण्डेनार्घं ददौ। अजपच्च जप्यं सुचरितः प्रत्युषसि मध्यंदिने दिनान्ते चापत्यहेतोः प्राध्वं प्रयतेन मनसा जञ्जपूको मन्त्रमादित्यहृदयम्।

भक्तजनानुरोधविधेयानि तु भवन्ति देवतानां मनांसि। यतः स राजा कदाचिद् ग्रीष्मसमये यदृच्छया सितकरकरसितसुधाधवलस्य हर्म्यस्य पृष्ठे सुष्वाप। वामपार्श्वे चास्य द्वितीयशयने देवी यशोमती शिश्ये। परिणतप्रायायां तु श्यामायाम्, आसन्नप्रभातवेलाविलुप्यमानलावण्ये लिलम्बिषमाणे सीदत्तेजसि तारकेश्वरे, कराग्रस्पृष्टकुमुदिनीप्रमोदजन्मनि शशधरस्वेद इव गलत्यनिशीतलेऽवश्यायपयसि, मधुमदमत्तप्रसुप्तसीम-

स्वहृदयेनेनेति। स्वहृदयमपि सूर्यानुरक्तम्। प्राध्वं प्रह्वः। जञ्जपूकशब्दो जपासक्ततां लक्षयति।

द्वितीयेत्यादिनास्य सदाचारनिष्ठोक्ता। उक्तं हि—'नाश्नीयाद्भार्यया सार्कं न च सुप्यात्तया समम्' इति। परिणतेत्यादावस्मिन् सति देवी यशोमत्युदतिष्ठदिति सम्बन्धः। तारकेश्वरे। कर रश्मयः, हस्तश्च करः सीमन्तिनी ललना संबाह्यमा-

कर, पूर्व की ओर मुँह करके, पृथिवी पर घुटनों के बल बैठ कर, रक्तकमल से, पद्मराग मणि के पवित्र थाल में सूर्य के प्रति अनुरागयुक्त उसके मानो हृदय के रूप में स्थापित किया हुआ था, कुङ्कुम के पङ्क से बनाये हुए सूर्यमण्डल में अर्घ्य देता था। सुष्ठु चरित वाला जपशील वह प्रातःकाल, दोपहर एवं सायङ्काल पुत्र के लिए पवित्र और विनत होकर शुद्ध मन से जपनीय आदित्य हृदय नामक मन्त्र का जप करता था।

देवताओं के मन सदा अपने भक्त लोगों के अनुरोध के वश में होते हैं। क्योंकि वह राजा किसी समय गर्मी के समय में अपनी इच्छा से चन्द्रमा की चाँदनी में धुले हुए अपने कोठे पर सो रहा था। उसके बायें भाग में दूसरी शय्या पर महारानी यशोमती भी सो रही थी। रात जब समाप्त होने पर थी, प्रभात के निकट होने से कम होती चमक वाला चन्द्रमा जब लटकता जा रहा था, कुमुदिनी को हाथ के अग्र भाग से छूने के आनन्द में चन्द्रमा के पसीने की तरह अत्यन्त ठण्ढी ओस जब पड़ने लगी, मधुपान के नशे में सोई हुई सुन्दरियों

ल्निनीनिःश्वासाहतेषु संक्रान्तमदेष्विव घूर्णमानेष्वन्तःपुरप्रदीपेषु, राजनि च विमलनवप्रतिबिम्बिताभिः संवाह्यमानचरण इव तारकाभिः, विस्रब्धप्रसारितैर्दिगङ्गनानामिवार्पितैरङ्गैर्मधुसुगन्धिभिः स्वहस्तकमल-तालवृन्तवातैरिव श्वसितैर्मुखश्रिया वीज्यमाने विमलकपोलस्थलस्थितेन सितकुसुमशेखरेणेव रतिकेलिकचग्रहलम्बितेन प्रतिमाशशिबिम्बेन विराजिते स्वपति देवी यशोमती सहसैव 'आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व' इति भाषमाणा भूषणरवेण व्याहरन्तीव परिजनमुत्कम्पमानाङ्गयष्टिरुदतिष्ठत।

अथ तेन सर्वस्यामपि पृथिव्यामश्रुतपूर्वेण किमुत देवीमुखे परित्रायस्वेति ध्वनिना दग्ध इव श्रवणयोरेकपद एव निद्रा तत्याज राजा। शिरोभागाच्च कोपकम्पमानदक्षिणकराकृष्टेन कर्णोत्पलेनेव निर्गच्छताच्छधारेण धौतासिना सीमन्तयन्निव निशाम्, अन्तरालव्यवधायकमाकाशमिवोत्त-

---

नावुपमर्द्यमानौ। अङ्गैरितीत्थंभूतलक्षणे तृतीया। मधु मद्यम्। तद्वत्। मधु मकरन्दः। तालवृन्तमुत्क्षेपकः। सितग्रहणेन चन्द्रसादृश्यमाह।

एकपदे तत्क्षणम्। शिरोभागाच्चेत्यादौ राजा वेगेनोत्पपातेति सम्बन्धः।

की साँसों से आहत होकर अन्तःपुर के दीपक मानो स्वयं मतवाले होकर जब घूर्णित होने लगे, तारिकायें राजा के स्वच्छ नखों में प्रतिबिम्बित होकर मानो उनके पाँव दबाने लगीं, मानो राजा को मुख-शोभा दिगङ्गनाओं द्वारा विश्वास-पूर्वक फैला कर चढ़ाये गये, अङ्गों के समान अपने करकमलों पंखों की मधु से सुगन्धित साँसों की हवा से धीरे-धीरे उन्हें झल रही थी, मानो रतिक्रीडा के समय किये गये केश-ग्रह से लटका हुआ चन्द्र-बिम्ब उनके स्वच्छ गाल पर उजले फूलों की माला के समान चमक रहा था, इस प्रकार राजा जब सो रहा था तभी रानी यशोमती अचानक चौंक कर "आर्यपुत्र! बचाओ, बचाओ" यह कहती हुई अपने आभूषणों की आवाज से अन्तःपुर के परिजनों को मानो पुकारती हुई तथा काँपती हुई उठ गई।

समूची पृथिवी में इससे पहले कभी भी जो 'बचाओ' यह शब्द नहीं सुनाई पड़ा था उसे रानी के मुख से सुनकर कानों में जले हुए के समान राजा की नींद तत्काल टूट गई। अपने सिरहने से, क्रोध से काँपते हुए दायें हाथ से खींची गई, कर्णोत्पल के समान, निकलती हुई निर्मल धारवाली अपनी तलवार से मानो

रीयांशुकं विक्षिपन् वामकरपल्लवेन, करविक्षेपवेगगलितेन हृदयेनेव भयनिमित्तान्वेषिणा भ्रमता दिक्षु कनकवलयेन विराजमानः, सत्वरावतारितवामचरणक्रान्तिकम्पितप्रासादः, पुरः पतितेनासिधारागोचरगतेन शशिमयूखखण्डेनेव खण्डितेन हारेण राजमानः, लक्ष्मीचुम्बनलग्नताम्बूलरसरञ्जिताभ्यामिव निद्रया कोपेन चातिलोहिताभ्यां लोचनाभ्यां पाटलयन्पर्यन्तानाशानाम्, बद्धान्धकारया त्रिपताकया भ्रुकुट्या पुनरिव त्रियामां परिवर्तयन् 'देवि ! न भेतव्यं न भेतव्यम्' इत्यभिदधानो वेगेनोत्पपात। सर्वासु च दिक्षु विक्षिप्तचक्षुर्यदा नाद्राक्षीत्किंचिदपि तदा प्रपच्छ तां भयकारणम्।

अथ गृहदेवतास्विव प्रधावितासु यामिकिनीषु, प्रबुद्धे च समीपशा-

सीमन्तयन् द्विधा कुर्वन् त्रिपताकतया त्रिरेखया।
यामिकिनीषु जागरिकासु।

रात के दो टुकड़े करता हुआ, बीच में व्यवधान बनते हुए आकाश की तरह उत्तरीय अंशुक को अपने बायें हाथ रूपी पल्लव से फेंकता हुआ, हाथ फेंकने के वेग से गिरे हुए स्वर्णकङ्कणा से, मानो उसका हृदय ही निकल कर रानी के भय के कारण की खोज करने के लिए दिशाओं मे चक्कर काट रहा हो, इस प्रकार प्रतीत होता हुआ, जल्दीबाजी में शय्या से जिसके द्वारा बायें पैर के नीचे उतारे जाने से महल हिल गया ऐसा, मानो तलवार के सामने पड़ जाने से चन्द्र-किरणें टूक-टूक हो गई हों इस प्रकार आगे की ओर गिरे हुए अपने हार से सुशोभित होता हुआ, मानो लक्ष्मी द्वारा चुम्बन किये जाने पर पान से भरे उसके मुख की लाली आखों मे उतर आई हो इस प्रकार की, क्रोध और नींद के कारण अत्यन्त लाल-लाल अपनी आँखों से दिशाओ की सीमाओं को लाल बनाता हुआ, क्रोध के अन्धकार को लिए हुए तीन रेखाओं से युक्त अपनी भौंह के द्वारा रात को फिर से मानो प्रारम्भ करता हुआ "देवि ! डरो मत, डरो मत" ऐसा कहता हुआ झट से उठकर राजा खड़ा हो गया। सभी दिशाओं में आँखें फैलाने पर भी जब उसने कुछ भी नहीं देखा तो रानी से डरने का कारण पूछा।

तत्पश्चात् गृहदेवताओं के समान रात को अन्तःपुर में पहरा देने वाली स्त्रियाँ जब दौड़ पड़ीं, नजदीक के सोने वाले परिजन जब जाग पड़े तथा हृदय को कँपा देने वाला वह भय जब शान्त हो गया तब वह (रानी यशोमती)

यिनि परिजने, शान्ते च हृदयोत्कम्पकारिणि साध्वसे सा समभाषत 'आर्यपुत्र! जानामि स्वप्ने भगवतः सवितुर्मण्डलान्निर्गत्य द्वौ कुमारकौ, तेजोमयौ, बालातपेनेवापूरयन्तौ दिग्भागान् वैद्युतमिव जीवलोकं कुर्वाणौ, मुकुटिनौ, कुण्डलिनौ अङ्गदिनौ कवचिनौ, गृहीतशस्त्रौ, इन्द्रगोपकरुचा रुधिरेण स्नातौ, उन्मुखेनोत्तमाङ्गघटमानाञ्जलिना जगता निखिलेन प्रणम्यमानौ, कन्ययैकया च चन्द्रमूर्त्येव सुषुम्णारश्मिनिर्गतयानुगम्यमानौ, क्षितितलमवतीर्णौ। तौ च मे विलपन्त्याः शस्त्रेणोदरं विदार्य प्रवेष्टुमारब्धौ। प्रतिबुद्धास्मि चार्यपुत्र। विक्रोशयन्ती वेपमानहृदया' इति।

एतस्मिन्नेव च कालक्रमे राजलक्ष्म्याः प्रथमालापः प्रथयन्निव स्वप्नफलमुपतोरणं रराण प्रभातशङ्खः। भावनीं भूतिमिवाभिदधाना दध्वनु-

---

मुकुटिनौ मौलियुक्तौ। अङ्गदिनौ। सकेयूरौ। इन्द्रगोपकः कीटविशेष (भाषायां 'वीरबहुटी' इति ख्यातः)। सुषुम्णाख्योऽमृतमयो रविरश्मिः।

बोली—"आर्यपुत्र! स्मरण करती हूँ कि स्वप्न में भगवन् सूर्य के मण्डल से निकलकर दो तेजस्वी कुमार अपने तेज से दिशाओं को भरते हुए, सम्पूर्ण संसार को तडिन्मय बनाते हुए, सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, हाथ में विजायट, शरीर पर कवच तथा शस्त्र ग्रहण किये हुए इन्द्रगोपक नामक कीड़े की तरह अपने तेज की लाल प्रभा में स्नान किये हुए, उन्मुख होकर, सिर पर अञ्जलि बाँधे हुए समस्त संसार द्वारा प्रणाम किये जाते हुए, सुषुम्ना नाम की रश्मि से निकली हुई चन्द्रमूर्ति की भाँति एक कन्या द्वारा अनुगत होकर पृथिवीतल पर उतर पड़े। वे दोनों शस्त्र से चिल्लाती हुई मेरे पेट को फाड़कर (उसमें) प्रवेश करने में लगे। आर्य पुत्र! तब मैं चिल्लाती हुई जाग पढ़ी तथा मेरा हृदय काँपने लगा।"

इसी बीच राजलक्ष्मी का प्रथम आलाप रूप, रानी के स्वप्न फल को मानों प्रख्यापित करता हुआ प्रभातकालीन शङ्ख, तोरण के समीप बज उठा। होने वाली समृद्धि को मानो बताती हुई दुन्दुभियाँ भी जोर से बज उठीं। डण्डे से

रमन्दं दुन्दुभयः। चकाण कोणाहतानन्दादिव प्रत्युषनान्दी। जयजयेति प्रबोधमङ्गलपरिपाठकानामुच्चैर्वाचोऽश्रूयन्त। पुरुषश्च वल्लभतुरङ्गमन्दुरामन्दिरे मन्दमन्दं सुप्तोत्थितः सप्तानां कृतमधुरहेषारवाणां पुरश्च्योतत्तुषारसलिलशीकरं किरन्मरकतहरितं यवसं वक्त्रापरवक्त्रं पपाठ—

'निधिस्तरुविकारेण सन्मणिः स्फुरता धाम्ना।
शुभागमो निमित्तेन स्पष्टमाख्यायते लोके॥ ३॥
अरुण इव पुरःसरो रविं पवन इवातिजवो जलागमम्।
शुभमशुभमथापि वा नृणां कथयति पूर्वनिदर्शनोदयः॥ ४॥

नरपतिस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीयमाणेनान्तःकरणेन तामवादीत्—'देवि। मुदोऽवसरे विषीदसि। समृद्धास्ते गुरुजनाशिषः। पूर्णा नो मनोरथाः।

कोणो वादनभाण्डम्। नान्दी भेरी। वल्लभेत्यादिना पुरुषस्य नैकट्यमाह। सप्तयोऽश्वाः। यवसं घासम्। 'नान्द्याः प्रायोऽम्बुधेर्वक्त्रम्' इति वक्त्रलक्षणम्। अपरवक्त्रं प्रसिद्धम्। तत्र विकारेणेति। यत्राधोनिधिस्तत्र परिणाहोद्धताधोमुख-

आहत होकर प्रातःकालीन भेरियाँ भी मानो आनन्द के कारण कड़कने लगीं। जागरण काल में मङ्गल पाठ करने वालों के ऊँचे स्वरों में किये गये जय-जयकार भी सुनाई पड़ने लगे। कोई अश्वपाल राजा के घोड़साल में सोकर धीरे-धीरे उठा और मीठे स्वर में हिनहिनाते हुए घोड़ों के सामने मरकत के समान हरी-हरी घास, जिससे पानी की बूँद टपक रही थी, डालते हुए वक्त्र और अपरवक्त्र नामक दो छन्दों को पढ़ा—

लोक में जिस प्रकार वृक्ष की शाखा के झुक जाने आदि विकार से पृथ्वी के अन्दर छिपे हुए खजाने का तथा चमकते हुए तेज से मणि का पता चलता है उसी प्रकार किसी प्रकार के निमित्त (शुभसूचक स्वप्न आदि) से किसी शुभ बात का होना समझा जाता है॥ ३॥

जिस प्रकार पहले उदित होने वाला अरुण सूर्य को तथा अत्यन्त वेग से बहने वाला पवन जल की वृष्टि को सूचित करता है उसी प्रकार पहले निमित्त का उदय मनुष्यों के शुभ या अशुभ का कह देता है॥ ४॥

राजा ने उसे सुनकर प्रसन्न हृदय से रानी से कहा—"देवि! हर्ष के समय में दुःखी हो रही हो? तुम्हारे गुरुजनों के आशीर्वाद सफल हो गये। हम लोगों

परिगृहीतासि कुलदेवताभिः। प्रसन्नमस्ते भगवानंशुमाली। न चिरेणैवातिगुणवदपत्यत्रयलाभेनानन्दयिष्यति भवतीम्' इति। अवतीर्य च यथाक्रियमाणाः क्रियाश्चकार। यशोमत्यपि तुतोष तेन पत्युर्भाषितेन।

ततः समतिक्रान्ते कस्मिंश्चित्कलांशे देव्यां च यशोमत्यां देवो राज्यवर्धनः प्रथममेव सम्बभूव गर्भे। गर्भस्थितस्यैव च यस्य यशसेव पाण्डुतामादत्त जननी। गुणगौरवक्लान्तेव गात्रमुद्वोढुं न शशाक। कान्तिविसरामृतरसतृप्तेवाहारं प्रति पराङ्मुखी बभूव। शनैः शनैरुपचीयमानगर्भभरालसा च गुरुभिर्वारितापि वन्दनाय कथमपि सखीभिर्हस्तावलम्बेनानीयत। विश्राम्यन्ती सालभञ्जिकैव समीपगतस्तम्भभित्तिष्वलक्ष्यत। कमललोभनिलीनैरलिभिरिव वृतावुद्धर्तुं नाशकच्चरणौ। मृणाललोभेन च चरणनखमयूखलग्नैर्भवनहंसैरिव संचार्यमाणा मन्द-

शाखामूलादिभाजो वृक्षा भवन्ति। निदर्शनं निमित्तम्। समृद्धाः परिपूर्णाः परिगृहीता अङ्गीकृता।

उर्वीभृतो राजानः, पर्वताश्च। पक्षाः समूहाः, पतत्राणि च। पातः पतनम्, शातनं च।

के मनोरथ पूरे हुए। कुल देवताओं ने तुम्हारी बात मान ली। भगवान् सूर्य तुम पर प्रसन्न हैं। वे शीघ्र ही अत्यन्त गुणवान् तीन सन्तान देकर तुम्हें आनन्दित करेंगे।" राजा कोठे से उतर कर अपने निर्धारित कार्यों में लग गये। रानी यशोमती भी पति की उस बात से सन्तुष्ट हो गई।

उसके बाद समय के कुछ भाग के बीत जाने पर देवी यशोमती के गर्भ में पहले-पहल राज्य वर्धन हुआ। गर्भ में रहते हुए ही जिसके मानो यश से माता ने पीलेपन को धारण किया। मानो उसके गुणों के बोझ से क्लान्त होकर वह अपने शरीर को ढोने में अक्षम हो गई।

मानो उसकी कान्ति से फैलने वाले अमृतरस से तृप्त होकर वह भोजन से विमुख हो गई। धीरे-धीरे बढ़ते हुए गर्भ के बोझ से अलसाई हुई वह गुरुजनों द्वारा रोकी जाने पर भी सखियों द्वारा हाथ का सहारा देकर किसी प्रकार (अर्थात् बहुत कठिनाई से) प्रणाम करने के लिए पहुँचाई जाने लगी। विश्राम लेती हुई वह निकट में वर्त्तमान खम्भे की भित्तियों में पत्थर में उत्कीर्ण मूर्त्ति के समान दीख पड़ी। मानों कमल के लालच में पड़े हुए भौरों से घिरे हुए अपने पैरों को वह उठा नहीं पा रहा थी। मृणाल के लालच से पैरों के नखों की रश्मियों के पीछे लगे महल के हंसों द्वारा मानो चलाई जाती हुई वह

मन्दं बभ्राम। मणिभित्तिपातिनीषु निजप्रतिमास्वपि हस्तावलम्बनलोभेन प्रसारयामास करकमलम्, किमुत सखीषु। माणिक्यस्तम्भदीधितीरप्यालम्बितुमाचकाङ्क्ष, किं पुनर्भवनलताः। समादेष्टुमप्यसमर्थासीद् गृहकार्याणि, कैव कथा कर्तुम्। आस्तां नूपुरभारखेदितं चरणयुगलं मनसापि नोदसहत सौधमारोढुम्। अङ्गान्यपि नाशक्नोद्धारयितुं दूरे भूषणानि। चिन्तायत्यापि क्रीडापर्वताधिरोहणमुत्कम्पितस्तनौ तस्तान। प्रत्युत्थानेषूभयजानुशिखरविनिहितकरकिसलयापि गर्वादिव गर्भेणाधार्यत। दिवसं चाधोमुखी स्तनपृष्ठसंक्रान्तेनापत्यदर्शनौत्सुक्यादन्तः प्रविष्टेनेव मुखकमलेनैवं प्रीयमाणा ददर्श गर्भम्। उदरे तनयेन हृदये च भर्त्रा तिष्ठता द्विगुणितामिव लक्ष्मीमुवाह। सख्युत्सङ्गमुक्तशरीरा च शरीरपरिचारिकाणामङ्केषु सपत्नीनां तु शिरःसु पादौ चकार। अवतीर्णे

आहिस्ते-आहिस्ते टहला करती थी। मणिनिर्मित दीवालों में पड़ती हुई अपनी प्रतिमाओं पर भी हाथ का सहारा लेने के लोभ से वह हाथ फैला देती थी फिर सखियों पर तो कहना ही क्या। माणिक्य के खम्भों की किरणों का भी वह सहारा ले लेना चाहती थी फिर भवनलताओं की तो बात ही क्या। घर के कामों को करने का आदेश देने में भी वह असमर्थ हो गई थी फिर उन्हें स्वयं करने की बात तो दूर रही। नूपुरों के बोझ से भी खिन्न उसके दोनों पैरों की कौन कहे, वह तो मन से भी कोठे पर चढ़ने का साहस नहीं जुटा पाती थी। वह अपने अङ्गों को भी धारण करने में असमर्थ हो गई थी, गहने तो दूर रहे। अपने क्रीडा पर्वत पर चढ़ने की बात सोचने भर से उसके दोनों स्तन काँप उठते। बैठकर जब वह पुनः उठने लगती तो अपने दोनों घुटनों के ऊपर अपने हाथ रूपी किसलय को टिकाकर भी मानो गर्भ द्वारा अपनी गुरुता के गर्व से पुनः बैठा दी जाती। दिन में अपने मुख को वह नीचा किये हुए रहती, स्तन पर उसके मुख का प्रतिबिम्ब संक्रान्त हो रहा था मानो अपने पुत्र को देखने की उत्सुकता से वह अपने मुख कमल के अन्दर बैठकर प्रसन्न होकर अपने गर्भ को देखा करती। पेट में पुत्र एवं हृदय में पति के निवास करने के कारण जो मानो दुगुनी शोभा धारण कर रही थी। सखियों की गोद में अपने शरीर को छोड़कर शरीर की परिचारिकाओं (सेविकाओं) की गोदों में तथा सौतों के मस्तकों पर

च दशमे मासि सर्वोर्वीभृत्पक्षपाताय वज्रपरमाणुभिरिव निर्मितम्, त्रिभुवनभारधारणसमर्थं शेषफणामण्डलोपकरणैरिव कल्पितम्, सकलभूभृत्कम्पकारिणं दिग्गजावयवैरिव विहितमसूत देवं राज्यवर्धनम्। यस्मिंश्च जाते जातप्रमोदा नृत्यमय्य इवाजायन्त: प्रजा:। पूरितासंख्यशङ्खशब्दमुखरं प्रहतपटहशतपटुरवं गम्भीरभेरीनिनादनिर्भरभरितभुवनं प्रमोदोन्मत्तमर्त्यलोकमनोहरं मासमेकं दिवसमिव महोत्सवमकरोन्नरपति:।

अथान्यस्मिन्नतिक्रान्ते कस्मिंश्चित्काले कन्दलिनि कुड्मलितकदम्बतरौ रूढतोमतृणस्तम्बे स्तम्भिततामरसे विकसितचातकचेतसि मूकमानसौकसि नभसि मासि देव्या देवक्या इव चक्रपाणिर्यशोमत्या हृदये

कन्दलं लताभेद: नीरं तोयम्। नीरं मानसौकसो हंसा:। नभसि श्रावणे। यशोवत्या देव्या:। चक्रपाणि: कृष्ण:। रेखाकारं च चक्रं पाणौ यस्य। देवक्या अपि

उसने अपने पैर रखे। दसवें महीने के आने पर, समस्त पहाड़ों के पंखों को काट गिराने के लिए (या समस्त राजाओं में पक्षपात करने के लिए) मानो वज्र के परमाणुओं से बने हुए, त्रिभुवन को धारण करने में समर्थ मानो शेषनाग के फनों के निर्माण की सामग्री से बने हुए, मानो सम्पूर्ण पर्वतों (अथवा राजाओं) को कँपा देनेवाले दिग्गज के अङ्गों से बने हुए देव राज्यवर्धन को उसने जन्म दिया। जिसके जन्म लेने से प्रजा प्रसन्नता से भर उठी तथा मानो नाचने लगी। अगणित शङ्खों के शब्द से भरा हुआ, पीटे गये सैकड़ों नगाड़ों की भारी आवाज से युक्त, भेरियों की गम्भीर आवाज से जिसमें संसार भर गया, खुशी में मतवाले हुए लोगों से मनोहर, एक मास तक राजा ने (पुत्र जन्म का) महोत्सव मनाया जो एक दिन की तरह बीत गया।

उसके बाद जब फिर कुछ समय बीत चला तो, जिसमें कंदल की लताएँ बढ़ गईं, कदम्ब के वृक्ष मुकुलित हो गये, तोम नामक घास हरे-भरे गुच्छे के रूप में उग आई, कमल निश्चल हो गये, चातक पक्षियों का मन खिल उठा और हंस चुप्पी लगा गये ऐसे श्रावण के महीने में देवकी के गर्भ में कृष्ण की भाँति रानी यशोमती के हृदय तथा गर्भ, दोनों में साथ ही साथ हर्ष उत्पन्न हुआ (अर्थात् गर्भ में हर्ष नामक पुत्र आया तथा उसके आने के कारण हृदय में हर्ष

गर्भे च सममेव सम्बभूव हर्षः। शनैः शनैश्चास्याः सर्वप्रजापुण्यैरिव परिगृहीता भूयोऽप्यापाण्डुतामङ्गयष्टिर्जगाम। गर्भारम्भेण श्यामायमानचारुचूचुकचूलिको चक्रवर्तिनः पातुं मुद्रिताविव पयोधरकलशौ बभारोरःस्थलेव। स्तन्यार्थमाननिहिता दुग्धनदीव दीर्घस्निग्धधवला माधुर्यमधत्त दृष्टिः। सकलमङ्गलगणाधिष्ठितगात्रगरिम्णैव गतिरमन्दायत। मन्द-मन्दं संचरन्त्या निर्मलमणिकुट्टिमनिमग्नप्रतिबिम्बनिभेन गृहीतपादपल्लवा पूर्वसेवामिवारेभे पृथिव्यस्याः। दिवसमधिशयानायाः शयनीयमपाश्रयपत्रभङ्गपुत्रिकाप्रतिमा विमलकपोलोदरगता प्रसवसमयं प्रतिपालयन्ती लक्ष्मीरिवालक्ष्यत। क्षपासु सौधशिखराग्रगताया गर्भोन्माथमक्तांशुके स्तनमण्डले संक्रान्तमुडुपतिमण्डलमुपरि गर्भस्य श्वेतातपत्रमिव केनापि धार्यमाणमदृश्यत। सुप्ताया वासभवने चित्रभित्तिचाकर-

---

यशोमत्याः। प्रमोदो हर्षः। पुण्यैरिवेति। पुण्यानां स्वभावशुद्धित्वात्। स्तनयोर्भवं स्तन्यं क्षीरम्। अपाश्रयः पर्यङ्कः। उन्माथः खेदः। चन्द्रशाला धवलगृहस्योपरि

अर्थात् प्रसन्नता का आगमन साथ-साथ हुआ)। धीरे-धीरे उसकी अङ्गयष्टि मानो प्रजा के पुण्यों से मिलकर पीली पड़ गई। गर्भ के आरम्भ से उसने अपने श्यामायमान सुन्दर चूचुकों वाले स्तन कलशों को, जो मानो चक्रवर्ती के पीने के लिए (सील-मुहर से) मुद्रित कर दिये गये थे छाती पर धारण किया। मानो स्तन के दूध के लिए उसके मुँह में निहित दुग्ध-नदी के समान बड़ी, स्नेहपूर्ण तथा उज्ज्वल उसकी दृष्टि मिठास से भर गई। सम्पूर्ण मङ्गलों के अधिष्ठित होने से मानों शरीर की गुरुता के कारण ही उसकी चाल शिथिल पड़ गई। जब वह धीरे-धीरे चलने लगती तो निर्मल मणिकुट्टियों पर उसके पाँवों के पड़ने वाले प्रतिबिम्बों से ऐसा प्रतीत होता मानो पृथिवी उसके चरण-पल्लवों को ग्रहण करके पहले से सेवा करने लग गई हो। दिन में पलङ्ग पर सोई हुई उसके कपोलतल में तकिये पर की पत्रभङ्ग के साथ पुतलियों में प्रतिबिम्बित हो जाती थी जिससे प्रसवकाल की प्रतीक्षा करती हुई लक्ष्मी के समान वह दिखाई पड़ती थी। रातों में जब वह महल की छत के अगले हिस्से पर जाती तो उसके गर्भखेद से ढलके हुए अंशुकवाले स्तनों पर चन्द्रमण्डल का पड़नेवाला प्रतिबिम्ब ऐसा लगता था मानो गर्भ के ऊपर किसी के द्वारा उजला छाता धारण किया गया हो।

ग्राहिण्योऽपि चामराणि चालयांचक्रुः। स्वप्नेषु करविधृतकमलिनीपलाशपुटसलिलैश्चतुर्भिरपि दिक्करिभिरक्रियताभिषेकः प्रतिबुध्यमानायाश्च चन्द्रशालिकासालभञ्जिकापरिजनोऽपि जयशब्दमसकृदजनयत्। परिजनाह्वानेष्वादिशेत्यशरीरा वाचो निश्चेरुः। क्रीडायामपि नासहताज्ञाभङ्गम्। अपि च चतुर्णामपि महार्णवानामेकीकृतेनाम्भसा स्नातु वाञ्छा बभूव। बेलावनलतागृहोदरपुलिनपरिसरेषु पर्यटितुं हृदयमभिललाष। आत्ययिकेष्वपि कार्येषु सविभ्रमं भ्रूलता चचाल। सन्निहितेष्वपि मणिदर्पणेषु मुखमुत्खाते खड्गपट्टे वीक्षितुं व्यसनमासीत्। उत्सारितवीणाः स्त्रीजनबिरुद्धा धनुर्ध्वनयः श्रुतावसुखायन्त। पञ्जकेसरिषु चक्षुररमत। गुरुप्रणामेष्वपि स्तम्भितमिव शिरः कथमपि ननाम सख्यश्चास्याः

प्रासादिकायामन्तर्धारिणीत्युच्यते। गर्भस्थजनवित्तवृत्यनुसारेण गर्भिण्या अपि चित्तवृत्तिर्भवति। यतो वार्ता श्रूयते ततश्चतुर्णामित्युक्तम्। परिसरः पर्यन्तः। आत्ययिकेष्ववश्यकर्तव्येषु।

जब वह अपने वास-भवन में सोती तो दीवालों पर चित्रित चामरग्राहिणी स्त्रियाँ भी उसे चँवर डुलाती थीं। सपनों में चारों दिशाओं के दिग्गज अपनी-अपनी सूँड़ से उठाई गई कमलिनी के दोनों में जल भर कर उसका अभिषेक करते तथा जब वह जाग जाती तो चन्द्रशालिका में उत्कीर्ण शालभञ्जिका के रूप में स्त्रियाँ भी बार-बार जय जयकार करतीं। जब वह अपने परिजनों को पुकारती तो "आदेश दो" इस प्रकार की अशरीरी अर्थात् किसी शरीरधारी द्वारा न की गई आवाज आने लगती। वह खेल-खिलवाड़ में भी अपने आदेश के उल्लङ्घन को न सह पाती थी। चारों समुद्रों के एक में मिले हुए पानी से वह स्नान करने की इच्छा रखती थी। समुद्र तटीय वन के लतागृहों की रेतों में घूमने के लिए उसका हृदय इच्छुक बना रहता। आवश्यक कार्यों में भी केवल विलास के साथ उसकी भौंह चलती थीं। पास में मणिदर्पणों के रहने पर भी वह खींची हुई तलवार पर ही अपना मुखविलोकन करने का शौक रखती। बीणा की आवाज के बदले स्त्री जाति के स्वभाव के विपरीत उसे धनुष की टङ्कार ही सुनने में अधिक आनन्ददायक लगते। पिंजड़े के सिंहों पर उसकी आँखें रमती थीं। गुरुजनों को प्रणाम करते समय भी अपने निश्चल मस्तक को वह किसी-किसी प्रकार झुका पाती थी। उसकी सखियाँ मानो

प्रमोदविस्फारितैर्लोचनपुटैरासन्नप्रसवमहोत्सवधियेव धवलयन्त्यो भवन विकचकुमुदकमलकुवलयपलाशवृष्टिमयं रक्षाबलिविधिमिवानवरतं विदधाना दिक्षु क्षणमपि न मुमुचुः पार्श्वम्। आत्मोचितस्थाननिषण्णाश्च महान्तो विविधौषधिधरा भिषजो भूधरा इव भुवो धृतिं चक्रुः। पयोनिधीनां हृदयानीव लक्ष्म्या सहागतानि ग्रीवासूत्रग्रन्थिषु प्रशस्तरत्नान्यबध्यन्त।

ततश्च प्राप्ते ज्येष्ठामूलीये मासि बहुलासु बहुलपक्षद्वादश्यां व्यतीते प्रदोषसमये समारुरुक्षति क्षपायौवने सहसैवान्तःपुरे समुदपादि कोलाहलः स्त्रीजनस्य। निर्गत्य च ससंभ्रमं यशोवत्याः स्वयमेव हृदयनिर्विशेषा धात्र्याः सुता सुपात्रेति नाम्ना राज्ञः पादयोर्निपत्य 'देव! दिष्ट्या वर्धसे द्वितीयसुतजन्मना' इति व्याहरन्ती पूर्णपात्रं जहार।

महान्तः प्रभाविताः, उच्छ्रिताश्च। विविधा ओषधीर्धारयन्ति ये ते विविधा ओषधयो यासु ताः धरा भूमयो येषां ते च। धृतिर्धैर्यम्, धारणं च। लक्ष्म्या सहेति। लक्ष्मीर्हि पयोधिसुता। प्रशस्तरत्नानीति कर्मधारयः, अन्यत्र बहुव्रीहिः।

ज्येष्ठामूलीयो मासो ज्येष्ठः। बहुलासु कृत्तिकासु। बहुलपक्षः। कृष्णपक्षः।

निकट-भविष्य में होने वाले पुत्र-जन्म के महोत्सव के लिए खुशी से फैलाई गई आँखों से महलों को धवल बनाती हुई और खिले हुए कुमुद, कमल, कुवलय एवं पलाश की वर्षा के रूप में दिशाओं में रक्षा बलि चढ़ाती हुई उसे क्षण-भर के लिए भी अकेली नहीं छोड़ती थी। अपने-अपने अनुकूल स्थान पर बैठे हुए पर्वतों के समान विभिन्न प्रकार की औषधियों के लिए बड़े-बड़े वैद्य भी उस प्रसव-भूमि को सिर पर धारण किये हुए रहते थे। उसके गले के सूत्र की गाँठों में बहुमूल्य रत्न इस प्रकार बँधे हुए थे मानो लक्ष्मी के साथ निकल कर आये हुए समुद्रों के हृदय हों।

इसके बाद जेठ महीने के कृत्तिका नक्षत्र में कृष्णपक्ष की द्वादशी तिथि को सन्ध्याकाल के बीतने पर जब रात चढ़ रही थी तभी अन्तःपुर में एकाएक स्त्रियों का शोरगुल हुआ। रानी यशोमती की अत्यन्त प्रिय धाय की बेटी सुपात्रा स्वयं बड़ी तेजी से निकली और राजा के पैरों पर पड़ कर "देव! दूसरे पुत्र का जन्म हुआ है, आप भाग्यवान् हैं!" यह कह कर (पुरस्कार के रूप में आभूषण-वस्त्रादि से युक्त) पूर्ण प्राप्त किया।

अस्मिन्नेव च काले राज्ञः परमसंमतः शतशः संवादितातीन्द्रियादेशः, दर्शितप्रभावः संकलिती, ज्योतिषि सर्वासां ग्रहसंहितानां पारदृश्वा, सकलगणकमध्ये महितो हितश्च त्रिकालज्ञानभाग्भोजकस्तारको नाम गणकः समुपसृत्य विज्ञापितवान्—'देव! श्रूयते मान्धाता किलैवंविधे व्यतीपातादिसर्वदोषाभिषङ्गरहितेऽहनि सर्वेषूच्चस्थानस्थितेष्वेवं ग्रहेष्वीदृशि लग्ने भेजे जन्म। अर्वाक्ततोऽस्मिन्नन्तराले पुनरेवं विधे योगे चक्रवर्तिजनने नाजनि जगति कश्चिदपरः। सप्तानां चक्रवर्तिनामग्रणी-

पूर्णपात्रं यथापरिहृतवस्त्रादि। उक्तं च—'आनन्ददा हि सौहार्दादित्य वस्त्रादिकं बलात्। अजानतो हरत्येव पूर्णपात्रं तु तत्स्मृतम् ॥' इति।

संवादितः प्रत्यक्षीकृतः। अतीन्द्रियादेशो भाविकथनम्। संकलिती गणनाज्ञः। पारदृश्वा पर्यन्तदर्शी। (भोजको रविमर्चयित्वा, पूजका हि भूयसा गणका भवन्ति। ये भगा इति प्रसिद्धाः) भागवता इत्यन्ये। व्योम्नि चन्द्रार्कौ राशिषट्के यदैकमार्गस्थितौ भवतः स व्यतीपातः। उक्तं च लाटाचार्येण—'गगने हिमकरसूर्यौ युगपत्स्यातां यदैकमार्गस्थौ। भगणार्धेऽर्कश्च यदा शशी च स भवेद्व्यतीपातः ॥' इति। अभिषङ्गः सम्बन्धः। अर्वाक्पश्चात्। चक्रवर्तिनामिति। भरतार्जुनमांधातृभगीरथयुधिष्ठिराः। सगरो नहुषश्चैव सप्तैते चक्रवर्तिनः ॥' 'कूर्मोर्णो जालहस्तित्वं पद्मादि जालचरणत्व'मित्यादि चक्रवर्तिचिह्नानि। 'मण्यश्वकरिचक्राणि वा स्त्री परिना-

इसी समय, राजा का परम प्रिय, सैकड़ों बार अपनी भविष्यवाणियों को प्रत्यक्ष प्रमाणित करने वाला, अपना प्रभाव जमा लेने वाला, गणित के अनुसार फल देखने वाला, ज्योतिष शास्त्र की सारी ग्रह संहिताओं का पारङ्गत विद्वान् सभी ज्यौतिषियों के बीच प्रतिष्ठित, अच्छा व्यक्ति तथा (भूत, वर्त्तमान एवं भविष्य, इन) तीनों कालों का ज्ञाता तारक नाम का ज्यौतिषी राजा के समीप पहुँच कर उनसे निवेदन किया—"महाराज! सुना जाता है कि इसी प्रकार व्यतीपात आदि समस्त दोषों से रहित दिन में, जब कि सारे ग्रह अपने ऊँचे स्थान में विद्यमान थे ऐसे ही लग्न में मान्धाता का जन्म हुआ था। इसके बाद इस बीच चक्रवर्त्ती के उत्पन्न होने वाले इस प्रकार के योग में अब तक संसार में कोई भी उत्पन्न नहीं हुआ। महाराज का यह पुत्र सात चक्रवर्ती राजाओं

श्चक्रवर्तिचिह्नानां महारत्नानां च भाजनं सप्तानां सागराणां पालयिता सप्ततन्तूनां सर्वेषां प्रवर्तयिता सप्तसप्तिसमः सुतोऽयं देवस्य जातः' इति। अत्रान्तरे स्वयमेवानाध्माता अपि तारमधुरं शङ्खा विरेसुः। अताडितोऽपि क्षुभितजलनिधिजलध्वनिधीरं जुगुञ्जाभिषेकदुन्दुभिः। अनाहतान्यपि मङ्गलतूर्याणि रेणुः। सर्वभुवनाभयघोषणापटह इव दिगन्तरेषु बभ्राम तूर्यप्रतिशब्दः। विधुतकेसरसटाश्च साटोपगृहीतहरितदूर्वापल्लववैनृ॑त्यन्त इव श्रवणसुभगं जगर्जुर्गजाः। ववौ चाचिराच्चक्रायुधमुत्सृजन्त्या लक्ष्म्या निःश्वास इव सुरामोदसुरभिर्दिव्यानिलः। यज्वनां मन्दिरेषु प्रद-

यकः। षडेतानि तु रत्नानि कीर्तितानि मनीषिभिः॥' परिनायकः सेनापतिः। गृहनायको गजाध्यक्षः। सप्ततन्तूनां यज्ञानाम्। सप्तसप्तिः सूर्यः।

अनाध्माता मुखानिलेनापूरिताः। दुन्दुभिरानकः। तूर्याणि वादित्राणि घोषणश्रावणा। ग्रीवारोमवल्लयस्त एव सटाः। कवलो ग्रासः यज्वनो यज्ञयाजिनाम्।

(भरत, अर्जुन, मान्धाता, भगीरथ, युधिष्ठिर, सगर एवं नहुष) में आगे रहने वाला, शङ्ख, चक्र आदि चक्रवर्ती के पदचिह्नों और बड़े-बड़े रत्नों को प्राप्त करने वाला, सात समुद्रों पर शासन करने वाला, सभी यज्ञों को करने वाला एवं सप्त सप्ति अर्थात् सूर्य के समान उत्पन्न हुआ है।"

इसी समय मुँह से फूँके न जाने पर भी स्वयं ही ऊँची और मधुर आवाज में शङ्ख बज उठे। अभिषेक की दुन्दुभि बिना पीटे जाने पर भी क्षुभित सागर के समान धीर स्वर में गूँज उठा। मङ्गलतूर्य आहत न होने पर भी गरज उठे। तूर्य की प्रतिध्वनि समस्त संसार में अभय-दान की घोषणा करने वाले नगाड़े के समान दिग्दिगन्त में चक्कर काटने लगी।

घोड़े प्रसन्न होकर अपनी अयाल झाड़ते हुए हपस-हपस कर उठाई हुई हरी दूब के पत्तों की कौर से भरे मुँह से हिनहिनाने लगे। हाथी लीलापूर्वक अपनी सूंड़ को उठा कर मानो नाचते हुए कर्ण-सुखद आवाज में चिग्घाड़ने लगे। कुछ ही देर में मानो चक्रायुध अर्थात् भगवान् विष्णु को छोड़ती हुई लक्ष्मी के वियोगजन्य निःश्वास के समान मदिरा की मादक सुगन्ध वाली हवा चलने लगी।

क्षिणशिखाकलापकथितकल्याणागमाः । प्रजज्वलुरनिन्धना वैतानवह्नयः । भुवस्सलात्तपनीयशृङ्खलाबन्धबन्धुरकलशीकोशाः समुदगुर्महानिधयः, प्रहतमङ्गलतूर्यप्रतिशब्दनिभेन दिक्षु दिक्पालैरपि प्रमोद दक्रियतेव दिष्टवृद्धिकलकलः । तत्क्षण एव च शुक्लवाससो ब्रह्ममुखाः कृतयुगप्रजापतय इव प्रजावृद्धये समुपतस्थिरे द्विजातयः । साक्षाद्धर्म इव शान्त्युदकफलहस्तस्तस्थौ पुरः पुरोधाः । पुरातन्यः स्थितय इवादृश्यन्तागता बान्धववृद्धाः । प्रलम्बश्मश्रुजालजटिलाननानि बहलमलपङ्ककलङ्ककालकायानि नश्यतः कलिकालस्य बान्धवकुलानीवाकुलान्यधावन्त मुक्तानि बन्धनवृन्दानि । तत्कालापक्रान्तस्याधर्मस्य शिबिरश्रेणय इवालक्ष्यन्त लोकविलुण्ठिता विपणिवीथ्यः । विलसदुन्मुखवामनकबधिरवृन्दवेष्टिताः साक्षाज्जातमातृदेवता इव बहुबालकव्याकुला ननृतुर्वृद्धधात्र्यः । प्रावतत च

विताने यज्ञे भवा वैतानाः । तपनीयं सुवर्णम् । बन्धुरो हृद्यः । कोश आवरणम् । ब्रह्ममुखा वेदवदना अपि ।

पुरोधाः पुरोहितः । विपणिवीथ्यो वणिक्पथपङ्क्तयः । जातमातृदेवताः मार्जा-

---

याज्ञिक लोगों के घरों में बिना ईंधन के ही यज्ञ की अग्नियाँ अपनी दक्षिणामुख ज्वालाओं में शुभागम का सन्देश व्यक्त करती हुई प्रज्वलित हो उठीं । सोने की सिकड़ियों में बँधे हुए घड़ों की बड़ी-बड़ी निधियाँ पृथिवी के गर्भ से निकलने लगीं ।

बजाये जाते हुए मङ्गल-तूर्य के प्रति शब्द के रूप में दिशाओं में मानो दिक्पाल भी अत्यधिक आनन्द के कारण भाग्य-वृद्धि सूचक कोलाहल करने लगे । उसी समय प्रजा वृद्धि के लिए सतयुग के प्रजापतियों के समान श्वेत वस्त्रधारी वैदिक ब्राह्मण उपस्थित हुए । साक्षात् धर्म के समान पुरोहित जी हाथ में शान्ति कर्म के जल और फल लिये आ खड़े हुए । आई हुई बान्धव-वृद्धाएँ प्राचीन मर्यादाओं के समान दिखाई पड़ने लगीं । लम्बी-लम्बी दाढ़ियों से युक्त मुँहवाले तथा अत्यधिक मैल जम जाने से काले चिकट शरीर वाले कैदी लोग कारागार से मुक्त कर दिये गये और आकुल होकर इस प्रकार भागने लगे मानो नष्ट होते हुए कलिकाल के भाई-बन्धु हों । लोगों द्वारा लूटी गई बाजार की दूकानें तत्क्षण भागने वाले अधर्म की छावनियों के समान दिखाई पड़ने लगीं । ऊपर मुँह किये हुए बौनों और बहरों से घिरी हुई साक्षात् जातमातृका संज्ञक देवियों के समान

विगतराजकुलस्थितिरधःकृतप्रतीहाराकृतिरपनीतवेत्रिवेत्री निर्दोषान्तः-पुरप्रवेशः समस्वामिपरिजनो निर्विशेषबालवृद्धः समानशिष्टाशिष्टजनो दुर्ज्ञेयमत्तामत्तप्रविभागस्तुल्यकुलयुवतिवेश्यालापविलासः प्रनृत्तसकलकटक-लोकः पुत्रजन्मोत्सवो महान्।

अपरेद्युरारभ्य सर्वाभ्यो दिग्भ्यः स्त्रीराज्यानीवावर्जितानि, असुरवि-वराणीवापावृतानि, नारायणावरोधानीव प्रस्खलितानि, अप्सरसामिव महीमवतीर्णानि कुलानि, परिजनेन पृथुकरण्डपरिगृहीताः स्नानीयचूर्णा-वकीर्णकुसुमाः सुमनःस्रजः, स्फटिकशिलाशकलशुक्लकर्पूरखण्डपूरिताः

रानना ब्रह्मपुत्रपरिवाराः सूतिकागृहे स्थाप्यन्ते। अवरोधोऽन्तःपुरम्।

अपरेद्युरित्यादौ। इदमिदं विश्राणेन परिजनेनानुगम्यमानानि सामन्तातःपुर-सहस्राण्यादृश्यन्तेति सम्बन्धः। स्त्रीराज्यानीति बहुलत्वम्। असुरविवराणीवेत्यु-ज्ज्वलत्वात्। नारायणेत्यादिगौरववत्त्वाद् बहुलत्वाच्च। स्नानीयं स्नानहितम्।

बालकों से अकुलाई जाती हुई बूढ़ी धात्रियाँ नाचने लगीं। राजकुल के नियम समाप्त कर दिये गये, प्रतीहारी लोगों ने अपनी वर्दियाँ एवं डण्डे उतार कर रख दिये, सब लोग बेरोकटोक राजा की हवेली में घुसने लगे, मालिक और नौकर में कोई भेद न रहा, बच्चे और बूढ़े में अन्तर न रहा, शिष्ट और अशिष्ट लोग एक समान हो गये, मत्त और अमत्त का भेद भी दुर्ज्ञेय हो गया, कुल युवतियों एवं वेश्याओं की बातचीत में किसी प्रकार का भेद-भाव न रहा तथा शिविरों में रहने वाले सारे सैनिक लोग भी नाचने लगे, इस प्रकार खूब धूम-धाम के साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया गया।

दूसरे दिन, चारों ओर से सामन्तों की हजारों स्त्रियाँ राजकुल में आती हुई दिखाई पड़ीं; मानो सभी दिशाओं से स्त्रियों के राज्य ही खिंचे चले आ रहे हों, या पाताल के विवर ही खुल चुके हों, या भगवान् कृष्ण के अन्तःपुर ही टपक पड़े हों या वेश्याओं के समूह पृथिवी पर उतर आये हों। उनके पीछे अनेक नौकर-चाकर थे जो चौड़ी चंगेरियों में स्नानीय चूर्णों से छिड़की हुई फूलों की मालाएँ, स्फटिक मणि के टुकड़ों के समान कपूर के टुकड़ों से भरी तश्तरियाँ, कुङ्कुम से सुगन्धित अनेक मणिमय पात्र आम के तेल से सिक्त

पात्रीः, कुङ्कुमाधिवासभाञ्जि भाजनानि च मणिमयानि, सहकारतैलतिम्यत्तनुखदिरकेसरजालजटिलानि चन्दनधवलपूगफलफालीदन्तुरदन्तशफरुकाणि, गुञ्जन्मधुकरकुलपीयमानपरिजातपारिमलानि पाटलानि पाटलकानि च, सिन्दूरपात्राणि च पिष्टातकपात्राणि च बाललतालम्बमानविटकवीटकांश्च ताम्बूलवृक्षकान् बिभ्राणेनानुगम्यमानानि चरणनिकुट्टनरणितमणिनूपुरमुखरितदिङ्मुखानि नृत्यन्ति राजकुलमागच्छन्ति समन्तात् सामन्तान्तःपुरसहस्राण्यदृश्यन्त ।

शनैः शनैर्व्यजृम्भत च क्वचिन्नृत्तानुचितचिरंतनशालीनकुलपुत्रकलोकलास्यप्रथितपार्थिवानुरागः, क्वचिदन्तः स्मितक्षितिपालापेक्षितक्षीबक्षुद्रदासीसमाकृष्यमाणराजवल्लभः, क्वचिन्मत्तकटककुट्टनीकण्ठलग्नवृद्धार्यसामन्तनृत्तनिर्भरहसितनरपतिः, क्वचित्क्षितिपाक्षिसंज्ञादिष्टदुष्टदासेरकगोत-

---

खदिरः केसरं खदिरसारम् । फली खाता । शफरुकाणि समुद्गाः । पारिजातं सुगन्धिद्रव्यचूर्णम् । 'पिष्टातः पटवासकः' इत्यमरसिंहः स च मङ्गलार्थः । विटकवीटकं पञ्चाशत्ताम्बूलपत्रैः क्रियते ।

शनैः शनैरित्यादौ । व्यजृम्भतोत्सवामोद इति सम्बन्ध । शालीनमधृष्टता । दास्या अपत्यं दासेरकः । 'क्षुद्राभ्यो वा' इति ढ्रक् । सचिवो मन्त्री । रतं सुरतम् ।

खदिर के केशर तथा चन्दन से धवलित पूगफल से भरी हाथी-दाँत की बनी छोटी मंजूषाएँ, गुञ्जार करते हुए भौरों द्वारा पिये जाते हुए सुगन्धित द्रव्यों के चूर्ण से भरी हुई लाल थेलियाँ, सिन्दूरदान, पिष्टातक (पिठार) से भरे पात्र और बाल लताओ पर लटकते हुए पचास बीडों से लदे हुए छोटे-छोटे पान के झाड़ लिये हुए थीं । वे (स्त्रियाँ) चलने के कारण पैरों के सञ्चालन से बजते हुए अपने मणि निर्मित नूपुरों से दिशाओं को शब्दायमान करती हुई नाचने लगीं ।

धीरे-धीरे उत्सव का आनन्द और बढ़ गया । कहीं नृत्य का अभ्यास न होने पर भी राजा के प्रति प्रेम होने के कारण शालीन कुलपुत्र नाचने लगे । कहीं मतवाली क्षुद्रदासियाँ मन्द मुस्कुराहट के साथ राजा का संकेत पाकर सम्राट के प्रिय पात्रों को अपनी ओर खींच लेती थीं । कहीं मतवाली बूढ़ी छिनाल औरतें बूढ़े आर्य सामन्तों के गले हाथ डाल देतीं और राजा लोग यह देख खूब हँसते । कहीं राजा आँखों का इशारा पाकर दुष्ट दासी-पुत्र (नीच

सूच्यमानसचिवचौर्यरतप्रपञ्चः, क्वचिन्मदोत्कटकुटहारिकापरिष्वज्यमानजरत्प्रव्रजितजनितजनहासः, क्वचिदन्योन्यनिर्भरस्पर्धोद्धुरविकटचेटकारब्धावाच्यवचनयुद्धः, क्वचिन्नृपाबलाबलात्कारकृष्टनर्त्यमाननृत्तानभिज्ञान्तःपुरपालभावितभुजिष्यः, सपर्वत इव कुसुमराशिभिः, साधारगृह इव सीधुप्रपाभिः, सनन्दनवन इव पारिजातकामोदैः सनीहार इव कर्पूररेणुभिः, साट्टहास इव पटहरवैः, सामृतमथन इव महाकलकलैः, सावर्त इव रासकमण्डलैः सरोमाञ्च इव भूषणमणिकिरणैः, सपट्टबन्ध इव चन्दनललाटिकाभिः, सप्रसव इव प्रतिशब्दकैः, सप्ररोह इव प्रसाददानैरुत्सवामोदः।

कुटहारिका कुम्भदासी। गायकनर्तकभुजिष्याजनरचितः समूहश्चेटकः। अवाच्यवचनानि गाल्यः। भाविताः कथं नृत्यन्तीत्यवलोकिताः। भुजिष्या दास्यः। रासकमण्डलैस्त्र्यसम्भ्रान्तनृत्तवृन्दैः। ललाटेऽलंकारो ललाटिका। 'कर्णललाटात्कनलंकारे'। प्ररोहोऽङ्कुरः।

छोकरे) सचिवों के चोरी से किये गये प्रेम की पोल खोल देते। कहीं "मस्तानी पनिहारिन बूढ़े सन्यासियों का आलिङ्गन कर लोगों को हँसाने लगतीं। कहीं एक दूसरे से स्पर्धा (धुक्कम फज्जत) करने में चालक बदतमीज नौकर गाली-गलौज करते हुए भिड़ जाते। कहीं "रनिवास की महिलाओं द्वारा जबर्दस्ती खींच कर नचाये गये अन्तःपुर के नृत्य ज्ञान शून्य रक्षक दासियों के साथ नृत्य में शामिल हो गये। स्थान-स्थान पर पर्वतों के समान फूलों की ढेरे थीं। धारा गृहों के समान मदिरा के पनसाले बन गये। नन्दन वन के समान पारिजात की सुगन्ध भरने लगी। कपूर की धूल ओस के समान भर गई। अट्टहास के समान पटह की आवाजें होने लगीं। अमृत-मन्थन के समान महान कोलाहल होने लगा। भँवरियों के समान रास मण्डलियाँ बन गईं। गहनों की मणियों की किरणें रोमाञ्च के समान लगने लगीं। माथे पर चन्दन के अलङ्कार कपड़े की बँधी पट्टी के समान मालूम पड़ने लगे। बच्चों की "केहाँ-केहाँ" के समान प्रति ध्वनि होने लगी। प्रसन्नता से दिये जाने वाले दान अङ्कुर के समान लगातार बढ़ने लगे।

स्कन्धावलम्बमानकेसरमालाः काम्बोजवाजिन इवास्कन्दन्तः, तरलतारका हरिणा इवोड्डीयमानाः, सगरसुता इव खनित्रैर्निर्दयैश्चरणाभिघातैर्दरियन्तो भुवम्, अनेकसहस्रसंख्याश्चिक्रीडुर्युवानः। कथमपि तालावचरचारणचरणक्षोभं चक्षमे क्षमा। क्षितिपालकुमारकाणां च खेलतामन्योन्यास्फालैराभरणेषु मुक्ताफलानि फेलुः। सिन्दूररेणुना पुनरुत्पन्नहिरण्यगर्भगर्भशोणितशोणाशमिव ब्रह्माण्डकपालमभवत्। पटवासपांसुपटलेनप्रकटितमन्दाकिनीसैकतसहस्रमिव शुशुभे नभस्तलम्। विप्रकीर्यमाणपिष्टातकपरागपिञ्जरितातपा भुवनक्षोभविशीर्णपितामहकमलकिञ्जल्करजोराजिरञ्जित इव रेजुर्दिवसाः। संघट्टविघटितहारपतितमुक्ताफलपटलेषु चस्खाल लोकः।

केसराणि बकुलानि, ग्रीवारोमवल्ल्यश्च। काम्बोजा वाह्लिकदेशजाः। आस्कन्दन्त आक्रमतः। तालैरवचरन्ति तालावचराः। तालावचरेण युक्तं भ्रमणम्। स्फुटितालिकाशतैर्युक्तं चारणजनस्य कैश्चिद् भ्रमणम्। तत्कांस्यतालिकयाराडाशिष्टापञ्चकुलमारिवकाः दक्षिणापथे तालावा इति प्रसिद्धः। खेलतां क्रीडताम्। फेलुर्बिभिदुः। शोणाशं लोहितदिक्कम्।

जिस प्रकार कम्बोज देशीय घोड़ों के कन्धे पर अयाल होती है उसी प्रकार कन्धे पर मौलिसिरी की माला धारण कर आक्रमण करते हुए, आँखों के चञ्चल तारों वाले हरिणों की तरह उड़ान भरते हुए और खन्तियों के प्रहारों से पृथिवी को खन देने वाले सगर-पुत्रों की तरह अपने चरणों के निष्ठुर प्रहारों से पृथिवी को विदीर्ण करते हुए हजारों नवयुवक खेलने लगे। ताल के साथ नृत्य करते हुए चरणों के आघातों को पृथिवी किस प्रकार सहन कर पाती थी। खेलते हुए राजकुमारों की पारस्परिक भिडन्त से आभूषणों के मोती टूटकर बिखर गये। सिन्दूर की धूल इस प्रकार दिशाओं में भर गई मानो ब्रह्माण्ड का कपाल फिर से हिरण्य गर्भ के गर्भ से उत्पन्न खून से लदफद है। पटवास की धूल से मन्दाकिनी (आकाशगङ्गा) की हजारों बालुकाओं को प्रकट करता हुआ आकाश सुशोभित होने लगा। दिन के आतपपिष्टातक के पीले पराग उड़ने से पिञ्जरित हो गये मानो सम्पूर्ण भुवन को आनन्द से कम्पित करने वाले ब्रह्माजी के कमल की धूल से दिन रंग गये हों। टक्कर लगने के कारण टूटे हुए हार के बिखरे हुए मोतियों पर पैर पड़ते ही लोग फिसलने लगे।

स्थानस्थानेषु च मन्दमन्दमास्फाल्यमानालिङ्ग्यकेन शिञ्जानमञ्जुवेणुना झणझणायमानझल्लरीकेण ताड्यमानतन्त्रीपटहिकेन वाद्यमानानुत्तालालाबुवीणेन कलकांस्यकोशीक्वणितकाहलेन समकालदीयमानानुत्तालतालिकेनातोद्यवाद्येनानुगम्यमानाः, पदे पदे झणझणितभूषणरवैरपि सहृदयैरिवानुवर्तमानताललयाः, कोकिला इव मदकलकाकलीकोमलालापिन्यः, विटानां कर्णामृतान्यश्लीलरासकपदानि गायन्त्यः, समुण्डमालिकाः, सकर्णपल्लवाः, सचन्दनतिलकाः, समुच्छ्रिताभिर्वलयावलीवाचालाभिर्बाहुलतिकाभिः सवितारमिवालिङ्गयन्त्यः, कुङ्कुमप्रमृष्टिरुचिरका-

स्थानस्थानेष्वित्यादौ। एवं विधेनाद्येनानुगम्यमानाः पण्यविलासिन्यः प्रानृत्यन्निति सम्बन्धः। आलिङ्ग्यको मुरजभेदः। तन्त्री। पटहिका पणहभेदः। न उत्ताला अनुत्ताला अनुद्भटशब्दाः। कांस्यकोशी शय्या। काहलेन व्याप्तेन। काहलं कांस्यद्वयाभिघातः। आतोद्यमिति। उक्तं च—'तत वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम्। वंशादिकं तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्। चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम्॥' इति। लयशब्देन ताल एव माननिधानं यतीनामवच्छेदेन विधिं निवर्तयमानो द्रुतमध्यविलम्बिताख्यमानवर्तनविधौ। स एव तालस्तु यत्यवच्छेदमलङ्घ्यमानः स्यात्। व्यपदेशो लय इति ख्यात इति। मदेन कलो हृष्टः। काकली

जगह-जगह पर, धीरे-धीरे बजते हुए आलिङ्ग्यक नाम के मृदङ्ग से, बजती हुई सुन्दर वंशी से, झड़झड़ाती हुई झाँझ से, पीटी जाती हुई तन्त्री पटहिका (नगाड़े के साथ की बजने वाली टंकी) नामक वाद्य यन्त्र से, धीरे-धीरे बजाई जाती हुई अलाबु की नाम की वीणा से मधुर स्वर में बजते हुए कांस्यकोशी काहल नामक वाद्य से, एक ही समय में धीरे-धीरे बजती हुई तालियों के साथ-साथ बजती हुई नौबत वाद्य से अनुगत होती हुई, पग-पग पर झनझनाते हुए गहनों की आवाजों से मानो ताल और लय का अनुसरण करते हुए सहृदय लोग जिनके पीछे-पीछे चल रहे थे ऐसी, कोयल के समान काकाली के अव्यक्त मधुर स्वर में आलाप करने वाली, विटों के कानों के लिए अमृत के समान सुनने में अच्छे लगने वाले गाली भरे रासक गीतों को गाती हुई, सिर पर पुष्पमाला धारण कर, कानों में पल्लव पहनकर, चन्दन का तिलक लगाकर, बजनेवाले कंगनों से युक्त बाहुलताओं को ऊपर उठाकर मानो सूर्य का आलिङ्गन करती

या काश्मीरकिशोर्य इव वल्गन्त्यः नितम्बबिम्बविकटकुरण्टकशेखराः प्रदीप्ता इव रागाग्निना, सिन्दूरच्छटाच्छुरितमुखमुद्राः, शासनपट्टपङ्क्तय इवाप्रतिहतशासनस्य कन्दर्पस्य, मुष्टिप्रकीर्यमाणकर्पूरपटवासपांसुला मनोरथसंचरणरथ्या इव यौवनस्य, उद्दामकुसुमदामताडिततरुणजनाः प्रतीहार्य इव तरुणमहोत्सवस्य, प्रचलत्पत्रकुण्डला लसन्त्यो लता इव मदनचन्दनद्रुमस्य, ललितपदहंसकरवमुखराः समुल्लसन्त्यो वीचय इव शृङ्गा-

---

कलसूक्ष्ममधुरगीतध्वनिः। अश्लीलानि ग्राम्याणि। कुङ्कुमेन परिमृष्टिः परिमार्जनमुद्वर्तनादि। अन्यत्र,—कुङ्कुमप्रसृष्टिः कुङ्कुमस्थलीषु लोठनात्। कुरण्टका अम्लातकानि। तेषां रक्तत्वमाह—प्रदीप्ता इति। मुखमुद्रा वक्त्रटङ्कः। शासनपट्टानां मुखेऽग्रे या मुद्रा दीयन्ते ता अपि ससिन्दूराः। मनोरथेत्यादि। रथाश्च रथ्यासु संचरन्ति। ता अपि तद्वशात्पांसुला भवन्ति। उद्दामेति। प्रतीहार्यश्च। ता अप्येवंविधा भवन्ति। प्रचलन्ति नृत्तवशाद्दोलमानानि पत्राणि विशेषकाणि तथा कुण्डलानि यासाम्, अन्यत्र,—पत्राणि पल्लवाः। कुण्डलानि समूहाः। ललितेषु पदेषु हंसका नूपुराः। 'पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्। हंसकः पादकटकः' इति। यद्वा-ललितानि पदानि यासां ताश्च ता हंसकरवमुखराश्च।

हुई, कुङ्कुम मलने के कारण सुन्दर शरीर वाली काश्मीर-कन्याओं के समान इठलाती हुई, नितम्ब पर लटके हुए कुरंटक फूलों की मालाओं से जो ऐसी लग रही थी मानो रागरूपी अग्नि से जल उठी हों, सिन्दूर की शोभा से दमकती हुई मुख मुद्रावाली, अमोघ शासन वाले कामदेव के शासनपट्ट की श्रेणियों के समान, मुट्ठी से छिड़के जाने वाले कपूर की धूल से जो इस प्रकार धूसरित हो रही थीं मानो यौवन के स्वेच्छा से विहार करने के लिए गलियाँ हों, बड़े-बड़े फूलों की मालाओं से युवकों पर प्रहार करती हुई जो युवकों के महोत्सव के लिए नियुक्त प्रतीहारियों के समान लग रही थी, जिनके कानों में लगे पल्लवों के साथ कुण्डलों के हिलने से जो मदनरूपी चन्दन वृक्ष की लताओं के समान सुशोभित हो रही थी, सुन्दर पैरों में लगे नूपुरों की आवाज से शब्दायमान जो शृंगाररस के समुद्र की तरंगों के समान प्रतीत हो रही थी, क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए, इस

रसरसागरस्य, वाच्यावाच्यविवेकशून्या बालक्रीडा इव सौभाग्यस्य, घनपटहरवोत्कण्टकितगात्रयष्टयः केतक्य इव कुसुमधूलिमुद्गिरन्त्यः, कमलिन्य इव दिवसमुत्फुल्लाननाः, कुमुदिन्य इव रात्रावनुपजातनिद्राः, आविष्टा इव नरेन्द्रवृन्दपरिवृताः, प्रीतयः इव हृदयमपहरन्त्यः, गीतय इव रागमुद्दीपयन्त्यः, पुष्टय इवानन्दमुत्पादयन्त्यः, मदमपि मदयन्त्य इव, रागमपि रञ्जयन्त्य इव, आनन्दमपि आनन्दयन्त्य इव, नृत्यमपि वर्तयमाना इव, उत्सवमप्युत्सवयन्त्य इव, कटाक्षेक्षितेषु पिबन्त्य इवापाङ्गशुक्तिभिः, तर्जनेषु संयमयन्त्य इव नखमयूखपाशैः, कोपाभिनयेषु ताडयन्त्य इव भ्रूलताविभागैः, प्रणयसम्भाषणेषु वर्षन्त्य इव सर्वरसान्, चतुरचङ्क्रमणेषु विकिरन्त्य इव विकारान्, पण्यविलासिन्यः प्रानृत्यन् ।

ता ललितपदाश्च ते हंसा एव हंसकाश्चेति वा । बालक्रीडाश्च विवेकशून्याः । घनो निरन्तरः, मेघश्च । केतक्योऽपि संकेतकरजस्काः । निद्रा स्वापः, संकोचश्च । आविष्टा भूतादिगृहीताः । नरेन्द्रो राजा, मन्त्री च । रागोऽभिष्वङ्गः, हिङ्गुलकादिश्च । मदमपि मदयन्त्य इवेत्यादि । मदेन हि सर्वो मत्तो भवति, मदस्तु ता आश्रित्य मत्तः । एवमुत्तरत्र ।

विवेक से शून्य जो सौभाग्य की बाल-क्रीडा के समान थी,पटह की भारी आवाज से जिनका शरीर इस प्रकार रोमाञ्चित हो जाता था मानो पराग उगलती हुई केतकी के फूल हों, दिन में खिले हुए मुखों वाली जो कमलिनियों के सदृश थीं, जो भूतों से आविष्ट के सदृश नरेन्द्रों (ओझाओं या राजाओं) से घिरी थीं, प्रीति के समान हृदय को हरती हुई, गीति के समान राग (स्वरलय या स्नेह) को उद्दीपित करती हुई, पुष्टि के समान आनन्द को पैदा करती हुई, नशे को भी मानो नशीला बनाती हुई, राग को भी मानो रञ्जित करती हुई, आनन्द को भी मानो आनन्दित करती हुई, नृत्य को भी मानो नचाती हुई, उत्सव को भी मानो उत्सव में निमग्न करती हुई, तिरछी चितवनों में मानो आँखों के कोनों रूपी सीपों से पीती हुई, डाँटने के अवसर पर मानो नख की किरणों के जाल से बाँधती हुई, क्रोध का नाट्य करते समय अपनी भौंहे चला कर मानो ताडन करती हुई, प्रेमालाप के समय मानो सभी रसों की वर्षा करती हुई और (नृत्य के समय)चक्करदार मुद्राओं में मानो कामजन्य विकारों को छींटती हुई वाराङ्गनाएँ नृत्य करने लगीं ।

अन्यत्र वेत्रिवेत्रवित्रासितजनदत्तान्तराला: ध्रियमाणधवलातपत्रवना वनदेवता इव कल्पतरुतलविचारिण्य: काश्चित्स्कन्धोभयपालीलम्बमान-लम्बोत्तरीयलग्नहस्ता लीलादोलाधिरूढा इव प्रेङ्खन्त्य:, काश्चित्कनककेयूरकोटिविपाटयमानपट्टांशुकोत्तरङ्गास्तरङ्गिण्य इव तरच्चक्रवाकसीमन्त्यमानस्रोतस:, काश्चिदुद्धूयमानधवलचामरसटालग्नत्रिकण्टकवलितविकटकटाक्षा: सरस्य इव हंसाकृष्यमाणनीलोत्पलवना, काश्चिच्चलच्चरणच्युतालक्तकारुणस्वेदशीकरसिच्यमानभवनहंसा:, सन्ध्यारागरज्यमानेन्दुबिम्बा इव कौमुदीरजन्य:, काश्चित्कण्ठनिहितकाञ्चनकाञ्चीगुणाञ्चितकञ्चुकिविकाराकुञ्चितभ्रुव: कामवागुरा इव प्रसारितबाहुपाशा राजमहिष्य: प्रारब्धनृत्ता विलेसु: ।

अन्यत्रेत्यादौ । राजमहिष्यो विलेसुरिति संबन्ध: ध्रियमाणधवलातपत्रवना इत्यादौ वाक्यार्थोपमा विचार्या । पाली पङ्क्ति: । कनककेयूरेणेति । कनकग्रहणेन चक्रवाकसादृश्यमाह । तरङ्ग उत्तरीयम् । सीमन्त्यमानानानि द्विधाक्रियमाणानि । त्रिकण्टक: कर्णाभरणभेद: । 'त्रिकण्टकस्तु त्र्यस्र: स्यात्त्रिमणी रत्नैश्च भूषणम्' । कौमुदी कार्तिकज्योत्स्ना । तद्युक्ता रजन्यौ रात्रय: । आकुञ्चित आकृष्ट: । विलेसुश्चिक्रीडु: ।

दूसरी ओर बेंत धारियों ने अपनी बेतों से लोगों को डराकर जिन्हें जगह दे दी, जो श्वेत आतपत्र को सिर पर धारण कर कल्पवृक्ष के नीचे विचरण करने वाली वनदेवता के समान प्रतीत हो रही थीं, जिनमें से कुछ दोनों तरफ कन्धों से दुपट्टे के लम्बे छोर के लटकने से हिंडोले में बैठकर झूलती हुई प्रतीत हो रही थीं, जिनमें से कुछ सोने के बने केयूर के कोने से लगकर फट जाने वाले अंशुको के फहराने के कारण नदियों के समान प्रतीत हो रही थीं जिनकी लहरें तैरते हुए चक्रवाक पक्षी के तैरने के कारण दो भागों मे विभक्त हो जाती हैं, जिनमें से कुछ कानों के त्रिकंटक में डोलते हुए चँवर के बालों के फँस जाने के कारण अपने कटाक्ष को इस प्रकार समेट ले रही थी मानो हंस तालाब के नीले कमलों को खींच रहे हों, जिनमें से कुछ चलायमान पैरों के गिरते हुए आलते के कारण लाल रंग के पसीने की बूंदों से भवन के हंसों को इस प्रकार खींच रही थी मानो सन्ध्या की लाली से रंगे हुए चन्द्र से युक्त कार्तिक की चांदनी भरी रातें हों, जिनमें से कुछ सोने की बनी अपनी करधनियों को कञ्चुकियों के गले

सर्वतश्च नृत्यतः स्त्रैणस्य गलद्भिः पादालक्तकैररुणिता रागमयीव शुशोण क्षोणी। समुल्लसद्भिः स्तनमण्डलैर्मङ्गलकलशमय इव बभूव महोत्सवः। भुजलताविक्षेपैर्मृणालवलयमय इव रराज-जीवलोकः। समुल्लसद्भिर्विलासस्मितैस्तडिन्मय इवाक्रियत कालः। चञ्चलानां चक्षुषामंशुभिः कृष्णसारमया इवासन् वासराः। समुल्लसद्भिः शिरीषकुसुमस्तबककर्णपूरैः शुकपिच्छमय इव हरितच्छायोऽभूदातपः। विस्रंसमानैर्धम्मिल्लतमालपल्लवैः कज्जलमयमिवालक्ष्यतान्तरिक्षम्। उत्क्षिप्तैर्हस्तकिसलयैः कमलिनीमय्य इव बभासिरे सृष्टयः। माणिक्येन्द्रायुधानामर्चिषा चाषपत्रमया एव चकाशिरे रविमरीचयः। रणतामाभरणगणानां प्रतिशब्दकैः किङ्किणीमय्य इव शिशिञ्जिरे दिशः। जरत्योऽप्युन्मादिन्य इव रमण्यो

स्त्रीणां समूहः स्त्रैणं तस्य। शुशोण शोणाभूत्। कालो होरादिलक्षणः, कालश्च कृष्णः। कथं तडिन्मयो रक्तवर्ण इति विरोधच्छाया। धम्मिल्लाः संयताः केशाः। बभासिरेऽशोभन्त। माणिक्यमुत्कृष्टं रत्नम्। किङ्किण्यः सूक्ष्मघण्टाः। शिशिञ्जिरे

में डाल कर उनके विकारयुक्त भावों को देख इस प्रकार भौंहे नचा रही थीं मानो कामदेव की वागुरा अर्थात् डोरी हो,ऐसी राजमहिषियाँ भी अपने बाहुपाशों को फैलाये नृत्य प्रारम्भ कर सुशोभित होने लगीं।

सब ओर नाचते हुए स्त्री-वृन्द के गिरते हुए चरण-लग्न आलते से रागमयी के समान पृथिवी लाल हो गई। (स्त्रियों के) सुशोभित होते हुए स्तनमण्डलों से महोत्सव मानो मङ्गल कलशमय हो गया। (उनकी) भुजलताओं के विक्षेपों से प्राणिलोक कमलनाल निर्मित कंगनों से युक्त हुए जैसा सुशोभित होने लगा। (उनकी) शोभने वाली बिलासयुक्त मुस्कानों से समय मानो विद्युन्मय बना दिया गया। (उनके) चञ्चल नेत्रों की किरणों से दिवस मानो कृष्णसार मृगों से युक्त हो गये। शिरीष फूलों के गुच्छों के (उनके) कनफूल इस प्रकार समुल्लसित हो गए कि आतप तोते के पंख से युक्त हुए के समान हरी छाया वाला हो गया। (उनके) केशपाश से गिरने वाले तमाल पत्रों से आकाश कज्जलमय जैसा दिखने लगा। ऊपर की ओर फेंके गये करपल्लवों से सृष्टियाँ मानों कमलिनियों से युक्त हुई जैसी भास ने अर्थात् प्रतीत होने लगीं। माणिक्य निर्मित इन्द्रायुधों की किरणों से सूर्य की रश्मियाँ चाषपक्षमय जैसी चमकने लगीं। बजते हुए गहनों की प्रतिध्वनियों से दिशाएँ मानों घुँघरुओं से युक्त

रेणुः। वर्षीयांसोऽपि ग्रहगृहीता इव नापत्रेपिरे। विद्वांसोऽपि मत्ता इवात्मानं विसस्मरुः। निनतिषया मुनीनामपि मनांसि विपुस्फुलुः। सर्वस्वं च ददौ नरपतिः। दिशि दिशि कुबेरकोषा इवालुप्यन्त लोकेन द्रविणराशयः।

एवं च वृत्ते तस्मिन्महोत्सवे, शनैः शनैः पुनरप्यतिक्रामति काले, देवे चोत्तमाङ्गनिहितरक्षासर्षपे, समुन्मिषत्प्रतापाग्निफुलिङ्ग इव गोरोचनापिञ्जरितवपुषि, समभिव्यज्यमानसहजक्षात्त्रतेजसीव हाटकबद्धविकटव्याघ्रनखपङ्क्तिमण्डितग्रीवके; हृदयोद्भिद्यमानदर्पाङ्कुर इव,प्रथमाव्यक्तजल्पितेन सत्यस्य शनैःशनैरोंकारमिवकुर्वाणे, मुग्धस्मितैः कुसुमैरिव मधुकरकुलानि बन्धुहृदयान्याकर्षति, जननीपयोधरकलशपयःसीकलरसेकादिव

सशब्दा अभवन्। रेणुः स्लानितवस्यः। वर्षीयांसो वृद्धतराः। अपत्रेपिरे लज्जामभजन्त। विपुस्फुलुश्चेलुः।

एवं चेत्यादौ देवी यशोमती राज्यश्रियमधत्तेति संबन्धः। हाटकं सुवर्णम्।

होकर बज उठीं। बूढ़ी स्त्रियाँ भी उन्मादिनी युवतियों के समान ठमकने लगीं। बड़े-बूढ़े भी ग्रहाविष्ट के समान निर्लज्ज हो गये। विद्वान् लोग भी मतवालों के समान अपने-आपको भूल गये। नाचने की इच्छा से मुनियों के भी मन मचल पड़े। राजा ने अपना सब कुछ लुटा दिया। सब ओर कुबेर के खजानों के समान धनराशियों को लोगों ने लूट लिया।

इस प्रकार जब वह महोत्सव समाप्त हो गया, धीरे-धीरे जब फिर समय बीत चला तो, जिनके मस्तक पर रक्षा के लिए सरसों रखी गई थी, ऐसे प्रताप की अग्नि की चिनगारियाँ फूट कर निकली हों इस प्रकार गोरोचना के मलने से जिनका शरीर पीला किया गया था ऐसे, मानो अपने स्वाभाविक क्षात्र तेज को व्यक्त कर रहे हों इस प्रकार जिनके गले में बाघ के नाखून सोने में मढ़ कर पहना दिया गया था, मानों हृदय मे उभरते हुए दर्प के अङ्कुर हों, पहले पहल अस्फुट वचन से मानो सत्य का धीरे-धीरे ओंकार अर्थात् श्रीगणेश या प्रारम्भ कर रहे हों ऐसे, जिस प्रकार फूल भौंरों को अपनी ओर खींच लेते हैं उसी प्रकार अपनी मधुर मुस्कानों से अपने बन्धुजनों के हृदय को जो खींच लेते थे ऐसे, माता के स्तनकलश को दूध-धार से सींचने के कारण मानो उत्पन्न हुई

जायमानैर्विलासहसिताङ्कुरैर्दशनकैरलंक्रियमाणमुखकमलके, चारित्र्य इवान्तःपुरस्त्रीकदम्बकेन पाल्यमाने, मन्त्र इव सचिवमण्डलेन रक्ष्यमाणे, वृत्त इव कुलपुत्रकलोकेनामुच्यमाने, यशसीवात्मवशेन संवर्ध्यमाने, मृगपतिपोत इव रक्षिपुरुषशस्त्रपञ्जरमध्यगते, धात्रीकराङ्गुलिलग्ने पञ्चषाणि पदानि प्रयच्छति हर्षे, षष्ठं वर्षमवतरति च राज्यवर्धने देवी यशोमती गर्भेणाधत्त नारायणमूर्तिरिव वसुधां देवीं राज्यश्रियम्।

पूर्णेषु च प्रसवदिवसेषु दीर्घरक्तनालनेत्रामुत्पलिनीमिव सरसी, हंसमधुरस्वरां शरदमिव प्रावृट्, कुसुमसुकुमारावयवां वनराजीमिव मधुश्रीः, महाकनकावदातां वसुधारामिव द्यौः, प्रभावर्षिणीं रत्नजातिमिव वेला,

ओंकारम्। ओमिति यावत्। पयोधरौ स्तनौ, पयोधराश्च मेघाः। पयः क्षीरम्, जलं च। पञ्च वा षड् वा पञ्चषाणि।

पूर्णेष्वित्यादौ। देवी दुहितरं प्रसूतवतीति संबन्धः। रक्तनाले रक्ते एव नेत्रे यस्याः, रक्तानि नालानि नेत्राणि मूलानि च यस्याः। हंसवत्तैश्च मधुरः। अवयवा अङ्गानि, विभागाश्च। माधवो वसन्तः। महाकनकं तिलसुवर्णम्। वसुधारा धन-

विलास-पूर्ण हँसी के अंकुर जैसे दाँत जिनके मुखकमल को सुशोभित कर रहे थे ऐसे, अन्तःपुर की स्त्रियों द्वारा चारित्र्य के समान जो पालित हो रहे थे ऐसे, सचिवों के द्वारा मन्त्र के समान जो रक्षित हो रहे थे ऐसे, कुलीन राजपुत्रों द्वारा सदाचार की तरह जो नहीं परित्यक्त किये जाते थे ऐसे, कीर्त्ति के समान अपने वंश के साथ जो बढ़ रहे थे (अर्थात् जैसे वंश की कीर्त्ति बढ़ रही थी उसी प्रकार जो स्वयं भी बढ़ रहे थे), सिंह शावक के समान जो रक्षा-पुरुषों के शस्त्रों रूपी पिंजड़े में रहते थे, धाय के हाथ की उँगली पकड़ कर जो पाँच-छः कदम चलने लगे थे ऐसे देव हर्ष के हो जाने पर तथा राज्यवर्धन के छठे वर्ष मे प्रवेश कर जाने पर यशोमती ने राज्यश्री को गर्भ में इस प्रकार धारण किया जिस प्रकार नारायण की मूर्त्ति पृथिवी को धारण करती है।

जब प्रसव के दिन पूरे हो गये तब, जिस प्रकार सरसी बड़े और लाल नयन वाली कमलिनी को, जिस प्रकार ऋतु हंसों के समान मधुर स्वर से युक्त शरद् ऋतु को (पक्ष में हंस के समान मधुर स्वर वाली), जिस प्रकार वासन्ती शोभा फूलों के कारण सुकुमार प्रान्तों वाली वनराजि को (पक्ष में फूलों के समान

सकलजननयनानन्दकारिणीं चन्द्रलेखामिव प्रतिपत्, सहस्रनेत्रदर्शनयोग्यां जयन्तीमिव शची, सर्वभूभुदभ्यर्थितां गौरीमिव मेना प्रसूतवती दुहितरम्। यया द्वयो सुतयोरपि स्तनयोरिवैकावलीलतया नितरामराजित जननी।

अस्मिन्नेव तु काले देव्या यशोमत्या भ्राता सुतमष्टवर्षदेशीयमुद्भूयमानकुटिलकाकपक्षकशिखण्डं खण्डपरशुहुङ्काराग्निधूमलेखानुबद्धमूर्धानं मकरध्वजमिव पुनर्जातम्, एकेनेन्द्रनीलकुण्डलांशुश्यामलितेन शरीरार्धेनेतरेण च त्रिकण्टकमुक्ताफलालोकधवलितेन संपृक्तावतारमिव

वृष्टिः। इयं च महाभ्युदयसूचनाय दिवा पतति। वेला जलविकृतिः। इन्द्रोऽपि सहस्रनेत्रः। जयन्तः शक्रपुत्रः। भूभृतो राजानः, पर्वताश्च। मेना हिमवन्महिला।

यथेत्यादौ यथा दुहित्रा। द्वयोः सुतयोरुपरि जातया यशोमती नितरामराजतेति संबन्धः।

अस्मिन्नित्यादौ। देव्या यशोमत्या भ्राता स्वतनयं भण्डिनामानं कुमारयोरनुचरमर्पितवानिति संबन्धः। काकपक्षकश्चूडा एव शिखण्डः पिच्छम्। पुष्पलोहं

सुकोमल अङ्गों वाली), जिस प्रकार आकाश महाकनक अर्थात् तिल सुवर्ण नामक पुष्प के समान उजली धन-सम्पत्ति की धारा को (पक्ष में स्वर्ण के समान गौरवर्णा), जिस प्रकार बेला (समुद्र की विकृति) प्रभा अर्थात् चमक की वर्षा करने वाली रत्न जाति को, जिस प्रकार प्रतिपदा सम्पूर्ण लोगों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाली चन्द्रलेखा को, जिस प्रकार इन्द्र-पत्नी शची हजार नेत्रों वाले इन्द्र द्वारा देखने योग्य जयन्ती को (पक्ष में हजार नेत्रों से देखने योग्य) जिस प्रकार मेना सभी पर्वतों से पूजित गौरी को (पक्ष में सभी राजाओं से पूजित) उत्पन्न किया। उसी प्रकार रानी यशोमती ने पुत्री को जन्म दिया। दोनों पुत्रों के बाद जिस पुत्री से दोनों स्तनों के ऊपर एकावली लता की भाँति माता अत्यन्त सुशोभित हुई।

इसी समय देवी यशोमती के भाई ने आठ वर्ष की आयु वाले भण्डि नामक अपने पुत्र को, जिसकी टेढ़ी शिखा मोरपंख के समान लहरा रही थी, मानो भगवान् शङ्कर की क्रोधाग्नि की धूमलेखा को मस्तक पर धारण किये हुए कामदेव पुनः पैदा हो गया हो, जिसके शरीर का पहला आधा हिस्सा इन्द्र

हरिहरयोर्दर्शयन्तम्, पीनप्रकोष्ठप्रतिष्ठितपुष्पलोहवलयं परशुराममिव क्षत्रक्षपणक्षीणपरशुपाशचिह्नितं बालताङ्गतम्, कण्ठसूत्रग्रथितभङ्गुरप्रवालाङ्कुरं हिरण्यकशिपुमिवोरः काठिन्यखण्डितनरसिंहनखरखण्डं गृहीतजन्मान्तरम्, शैशवेऽपि सवाष्टम्भं बीजमिव वीर्यद्रुमस्य भण्डिनामानमनुचरं कुमारयोरर्पितवान्।

अवनिपतेस्तु तस्योपरि पुत्रयोस्तृतीयस्य नेत्रयोरिवेश्वरस्य तुल्यं दर्शनमासीत्। राजपुत्रावपि सकलजीवलोकहृदयानन्ददायिनौ तेन प्रकृतिदक्षिणेन मधुमाधवाविव मलयमारुतेनोपेतौ नितरां रेजतुः। क्रमेण-

---

मणिभेदः। मृताग्निहोत्रं रथचक्रमिति केचित्। रणहतवीरकायशातनवशात्परशोः पाशावशेषता। भङ्गुरः कुटिलः। बीजमिवेति। शैशवाद्बीजावस्थोत्प्रेक्षते, न तु द्रुमावस्था।

अवनीत्यादौ। अवनिपतेस्तु तस्योपरि पुत्रयोस्तुल्यं दर्शनमालोकनमिति संबन्धः। अन्यत्र,—दर्शनं दृष्टिः। तृतीयस्येति च। ईश्वरस्येति साधारणम्। सकलेत्यादि साधारणम्। दक्षिणोऽनुकूलः, दाक्षिणात्यश्च। मधुमाधवौ चैत्रवैशाखौ।

नीलमणि के कुण्डल की किरणों से साँवले रंग का हो रहा था और दूसरा आधा हिस्सा त्रिकण्टक में पिरोये गये मोतियों के प्रकाश में उजला हो गया था, मानो विष्णु एवं शिव के मिले-जुले अवतार को दिखा रहा हो, जिसकी मोटी कलाई में पुखराज का कड़ा पड़ा था माना क्षत्रियों का संहार करने में घिसे हुए परशु से चिह्नित भगवान् परशुराम ही बाल्यावस्था को प्राप्त कर चुके हों, जिसके कण्ठ में धागे में गुँथा हुआ मूँगे का टेढ़ा टुकड़ा सिंहनख के समान प्रतीत हो रहा था मानो भगवान् नृसिंह के नख का टुकड़ा टूट कर जिसकी कड़ी छाती पर लग गया हो ऐसे हिरण्य कशिपु ने दूसरा जन्म ले लिया हो, जो बचपन में भी वीरता रूपी वृक्ष के बीज की भाँति दृढ़ था, दोनों कुमारों (राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन) के अनुचर के रूप में सौंप दिया।

राजा की उस (भण्डि) पर दोनों पुत्रों के बीच, भगवान् शङ्कर के दो नेत्रों के बीच तीसरे नेत्र के समान, समान दृष्टि थी। समग्र प्राणिलोक के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले दोनों राजकुमार भी स्वभाव से दक्षिण अर्थात् अनुकूल उस भण्डि में घुल मिल कर खूब सुशोभित होने लगे मानो मलय-पवन से मिले हुए चैत्र एवं वैशाख हों। क्रमशः दूसरे भाई के समान प्रजाजनों के

चापरेणेव भ्रात्रा प्रजानन्देन सह वर्धमानौ यौवनमवतेरतुः। स्थिरोरुस्तम्भौ च पृथुप्रकोष्ठौ दीर्घभुजार्गलौ विकटोरः कवाटौ प्रांशुशालाभिरामौ महानगरसंनिवेशाविव सर्वलोकाश्रयक्षमौ बभूवतुः।

अथ चन्द्रसूर्याविव स्फुरज्ज्योत्स्नायशःप्रतापाक्रान्तभवनावभिरामदुर्निरीक्ष्यौ, अग्निमारुताविव समभिव्यक्ततेजोबलावेकीभूतौ, शिलाकठिनकायबन्धौ हिमवद्विन्ध्याविवाचलौ, महावृषाविव कृतयुगयोग्यौ, अरुणगरुडाविव हरिवाहनविभक्तशरीरौ, इन्द्रोपेन्द्राविव नागेन्द्रगतौ, कर्णार्जुना-

ऊरुस्तम्भाविव उरवः महान्तश्च स्तम्भाः। 'प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः'। स्थानविशेषो वा। कवाटो द्वारपट्टः। सालो वृक्षभेदः, प्राकारश्च। सर्वलोकेत्यादि-साधारणम्।

अथेत्यादौ। तौ सर्वस्यामेव पृथिव्यां प्रकाशतां जग्मतुरिति संबन्धः। स्फुरज्ज्योत्स्नाजालं यद्यशस्तथा प्रतापस्ताभ्याम्, अन्यत्र,–ज्योत्स्नायश इव भुवनाक्रमणसमर्थत्वम्। प्रताप आयतिः, आलपश्च। तेजस्तैक्ष्ण्यम्, प्रकाशश्च। बलं सामर्थ्यम्। उभयत्राप्येकीभूतावन्योन्यानुवर्तिनौ, मिलितौ च। शिलावत्ताभिश्च कठिनः। अचलावकम्पौ, गिरी चाचलौ। कृतयुगमाद्ययुगभेदः, मूर्धन्यकाष्ठं च। योग्यावुचितौ, योग्या च शिक्षा। यद्वा,–कृतयुगे तत्र शकटादौ समर्थौ। हरयोऽश्वाः, सूर्यविष्णू

आनन्द के साथ बढ़ते हुए युवावस्था को प्राप्त हुए। खम्भे के समान दो-दो उरुदण्ड, द्वार-प्रकोष्ठ के समान सुगठित प्रकोष्ट, अर्गला दण्ड के समान दीर्घ भुजाएँ, किवाड़ के पल्ले के समान चौड़ी छाती धारण किये हुए जो ऊँचे प्राकार के समान सुन्दर थे ऐसे वे दोनों राजकुमार सभी लोगों के आश्रय के योग्य, ऊँचे सालवृक्षों से युक्त महानगरों के सन्निवेशों के समान थे।

इसके बाद चन्द्रमा की ज्योत्स्ना एवं सूर्य के प्रताप की भाँति जिनके यश एवं प्रताप के सम्पूर्ण संसार में फैलने से जो चन्द्रमा के समान अभिराम एवं सूर्य के समान दुरवलोकनीय हो गये, अग्नि और वायु के समान तेज और बल जिन दोनों में अभिव्यक्त हुए तथा जो दोनों एक जैसे हो गये, जिनके शरीर की गठनशिला के समान कड़ी हो गई तथा जो दोनों हिमालय एवं विन्ध्याचल के समान अडिग हो गये, दो महावृषभ (धर्म या बैल) की भाँति जो दोनों सतयुग के योग्य (पक्ष में जुआठ धारण करने योग्य) थे, क्रमशः अरुण और गरुड़ के

विव कुण्डलकिरीटधरौ, पूर्वापरदिग्भागाविव सर्वतेजस्विनामुदयास्तमयसंपादनसमर्थौ, अमान्ताविवातिमानेनासन्नवेलार्गलनिरोधसंकटे कुकुटीरके, तेजःपराङ्मुखीं छायामपि जुगुप्समानौ, स्वात्मप्रतिबिम्बेनापि पादनखलग्नेन लज्जमानौ, शिरोरुहाणामपि भङ्गेन दुःखमवतिष्ठमानौ, चूडामणिसंक्रान्तेनापि द्वितीयेनातपत्रेणापत्रपमाणौ, भगवति षण्मुखेऽपि स्वामिशब्देनासुखायमानश्रवणौ, दर्पणदृष्टेनापि प्रतिपुरुषेण दूयमानन-

च हरी। उक्तं च—'यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु। शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु॥' इति। विभक्तं स्कन्धमध्यादिविभागेन स्थितम्, परिकल्पितं च नाग ऐरावणः, शेषश्च। नागेन्द्रवद्गतं ययोः, नागेन्द्र वा गतावारूढौ। तेजस्विनो वीराः, आदित्याश्च। उदयो वृद्धिः आविर्भावश्च। अस्तमयो नाशः, तिरोधानं च। अमान्ताविव वर्तमानौ। वेला जलनिधेः, जलमर्यादा। कुर्भूमिरेवकुटीरकं जरद्गेहम्। भङ्गः कुञ्चितत्वम्, युद्धे पलायनं च। अपत्रपमाणौ लज्जन्तौ। स्वामी

समान जो दोनों अलग-अलग घोड़े की सवारी करते थे (अरुण पक्ष में—सूर्य के वाहन अर्थात् सारथि के रूप में और गरुड़ पक्ष में विष्णु के वाहन रूप में विभक्त शरीर वाले), जो दोनों क्रमशः इन्द्र (देवराज) एवं उपेन्द्र (भगवान् विष्णु) के समान नागेन्द्र (हाथी) के समान गमन करने वाले (इन्द्र पक्ष में—नागेन्द्र अर्थात् ऐरावत हाथी तथा विष्णु पक्ष में नागेन्द्र अर्थात् गरुड पर गमन करने वाले) थे। जो दोनो क्रमशः कर्ण और अर्जुन के समान कुण्डल और किरीट को धारण करते थे, जो दोनो पूरब और पश्चिम दिग्भाग के समान (सूर्य और चन्द्रमा रूपी) सभी तेजस्वियों के उदय एवं अस्त करने में समर्थ थे, जिन दिनों ने अपने मान का इतना विस्तार कर लिया था कि पृथिवी रूपी कुटिया के संकीर्ण स्थान में अँट नहीं पा रहे थे जिसमें समुद्र तट की अर्गला लगा दी गई थी, जो दोनों तेज से विमुख रहने वाली छाया को भी हीन दृष्टि से देखा करते थे, जो दोनों अपने पैरों के नखों में गिर कर लगे हुए अपने शरीर के प्रतिबिम्ब से भी लज्जित हो जाते थे, जो दोनों सिर के बालों के काटे जाने से भी दुःख का अनुभव करते थे, चूडामणि में प्रतिबिम्बित अपने ही छत्र को दूसरे का समझ कर जो दोनो लज्जित हो जाते थे, भगवान् कार्तिकेय के लिए भी 'स्वामी' शब्द का प्रयोग करना जिन दोनो के कानों को सुखमर नहीं लगता था,

यनौ, संध्याञ्जलिघटनेष्वपि शूलायमानोत्तमाङ्गौ, जलधरधृतेनापि धनुषा दोधूयमानहृदयौ, आलेख्यक्षितिपतिभिरप्यप्रणमद्भिः संतप्यमानचरणौ, परिमितमण्डलसंतुष्टं तेजः सवितुरप्यबहुमन्यमानौ, भूभृदपहृतलक्ष्मीकं सागरमप्युपहसन्तौ, बलवन्तमकृतविग्रहं मारुतमपि निन्दन्तौ, हिमवतोऽपि चमरीबालव्यजनवीजितेन दह्यमानौ, जलधीनामपि शङ्खैः खिद्यमानौ, चतुःसमुद्राधिपतिमपरं प्रचेतसमप्यसहमानौ, अनपहृतच्छत्रानपि विच्छायानवनिपालान् कुर्वाणौ, साधुष्वप्यसेवितप्रसन्नौ, मुखेन मधु-

कुमारः, प्रभुश्च । प्रतिपुरुषेणेति । स्पर्धायां प्रतिशब्दः । दोधूयमानं संतप्यमानम् । मण्डलं बिम्बम्, विषयश्च । तेजः प्रकाशः, तैक्ष्ण्यं च । भूभृदत्र प्रकरणान्मन्दरः, राजानश्च भूभृतः । लक्ष्मीः समृद्धिरपि । विग्रहं वैरम्, देहश्च । अनपहृतेत्यादि वर्ण्यमानवयोवस्थाभिप्रायेणोक्तम् । छाया कान्तिः, आतपप्रतिपक्षजातिश्च । सति छत्रे विच्छायत्वं न भवतीति विरोधः । साधुष्विति । साधूनां सेवाव्यतिरेकेण प्रसादायोग्यत्वम् । प्रसन्नौ प्रसादवन्तौ, सुरापि प्रसन्ना । मधु माधुर्यम्, मद्यं च ।

दर्पण में दिखने वाले अपने ही प्रतिबिम्ब को प्रतिद्वन्द्वी समझ कर जिन दोनों के नेत्रों को कष्ट पहुँचता था, सन्ध्या वन्दन के समय भी हाथ जोड़ने के कारण जिन दोनो को सिर-दर्द होने लगता था, मेघ द्वारा भी धनुष धारण करने पर जिन दोनों का हृदय कम्पित होने लगता था, चित्र में भी मस्तक न झुकाये हुए राजाओं को देख कर जिन दोनों के पैर क्रोध के कारण थरथराने लगते थे, सूर्य के मण्डल में घिरे तेज को भी जो दोनों महत्त्व नहीं देते थे, (पर्वत द्वारा अथवा राजाओं द्वारा) अपहृत की गई लक्ष्मी वाले समुद्र की भी जो दोनों खिल्ली उड़ाते थे, जो शक्तिशाली होता हुआ भी अकृत विग्रह अर्थात् युद्ध नहीं करने वाला अथवा शरीर रहित है ऐसे वायु की जो निन्दा करते थे, चमरी के बालों रूपी पंखों से झले जाते हुए हिमालय से भी जो दोनों मन ही मन जलते थे, समुद्रों के शंखों (शङ्ख नामक निधियों) से जो दोनो खेद को प्राप्त होते थे, चारों समुद्रों के स्वामी होने के कारण जो दोनो दूसरे वरुण को भी बर्दाश्त नहीं कर पाते थे, बिना छत्र छीने ही राजाओं को जो दोनों छाया-रहित अर्थात् कान्ति-विहीन बना देते थे, जो दोनों सज्जनों पर बिना सेवा के ही प्रसन्न रहते और मुख से उनके प्रति मधुर वाणी का प्रयोग करते अथवा

क्षरन्तौ, दुष्टराजवंशानूष्मणा दूरस्थितानपि म्लानिमानयन्तौ, अनुदिवसं शस्त्राभ्यासश्यामिकाकलङ्कितमशेषराजकप्रतापाग्निनिर्वपणमलिनमिव करतलमुद्वहन्तौ, योग्याकालेषु धीरैर्धनुर्ध्वनिभिरभ्यर्णोपभोगादिग्वधूभिरिवालपन्तौ राज्यवर्धन इति हर्ष इति सर्वस्यामेव पृथिव्यामाविर्भूतशब्दप्रादुर्भावौ स्वल्पीयसैव कालेन द्वीपान्तरेष्वपि प्रकाशतां जग्मतुः।

एकदा च तावाहूय भुक्तवानभ्यन्तरगतः पिता सस्नेहमवादीत्—'वत्सौ! प्रथमं राज्याङ्गं, दुर्लभाः सद्भृत्याः। प्रायेणा परमाणव इव समवायेष्वनुगुणीभूय द्रव्यं कुर्वन्ति पार्थिवं क्षुद्राः। क्रीडारसेन नर्तयन्तौ

असेवितप्रसन्नश्च कथं मुखेन मधु क्षरतीति विरोधः। ऊष्मा स्मयः, तापश्च। ऊष्मणा च दाहशक्त्या। वंशा वेणवः। निकटस्थो म्लानीक्रियते न तु दूरस्थ इति विरोधः। निर्वपणं शमनम्। योग्या अभ्यासः। अभ्यर्णः प्रत्यासन्नः शब्दः। प्रादुर्भावः ख्यातिः।

प्रथमं प्रधानभूतम्। प्रायेणेति। क्षुद्राः प्रायेण समवायेषु मन्त्रेष्वनुगुणीभूय यथा क्षुद्रा अल्पपरिमाणाः परमाणवः पार्थिवं पृथिव्यादिजातीयं घटादिद्रव्यं

प्रसन्ना यानि मदिरा का सेवन किये बिना ही मुँह से मधु अर्थात् मदिरा गिराते, दुष्ट राजाओं के वंशों (वेणूओं या कुलों) को दूर में स्थित रहने पर भी अपनी गर्मी से उन्हें जो दोनों म्लान कर देते थे, प्रतिदिन शस्त्राभ्यास करने के कारण दाग पड़े हुए तथा सम्पूर्ण राजाओं की प्रतापाग्नि को बुझाने के कारण मानो मलिन पड़े हुए करतल को जो दोनों धारण कर रहे थे, अभ्यास के समय में धनुष की गम्भीर टंकार से मानो समीप में उपभोग की भावना से दिगङ्गनाओं के साथ जो दोनों वार्तालाप करते थे, राज्यवर्धन एवं हर्ष ये दोनों ही शब्द समस्त पृथिवी में जिन दोनों से प्रादुर्भूत हुए थे ऐसे वे दोनों थोड़े ही समय में अन्य द्वीपों में भी प्रकाश में आ गये (अर्थात् अन्य द्वीपों में भी उनका नाम फैल गया)।

एक समय भोजन करने के बाद अन्तःपुर में पहुँचे हुए पिता ने उन दोनो (पुत्रों) को बुलाकर स्नेह पूर्वक कहा—"बेटो! राज्य के प्रमुख अङ्ग अच्छे भृत्य दुर्लभ होते हैं। जिस प्रकार क्षुद्र परमाणु समवाय सम्बन्ध में अनुरूप होकर पार्थिव तत्त्व को द्रव्य बना देते हैं उसी प्रकार क्षुद्र लोग समवाय अर्थात्

मयूरतां नयन्ति बालिशाः। दर्पणमिवानुप्रविश्यात्मीयां प्रकृतिं संक्रामयन्ति पल्लविकाः। स्वप्ना इव मिथ्यादर्शनैरसद्बुद्धिं जनयन्ति विप्रलम्भकाः। गीतनृत्यहसितैरुन्मत्ततामावहन्त्यपेक्षिता विकारा इव वातिकाः, चातका इव तृष्णावन्तो न शक्यते ग्रहीतुमकुलीनाः। मानसे मीनमिव स्फुरन्तमेवाभिप्रायं गृह्णन्ति जालिकाः। यमपट्टिका इवाम्बरे चित्रमालिखन्त्युद्गीतकाः। शल्यं हृदये निक्षिपन्त्यतिमार्गणाः। यतः सर्वैरेभिर्दोषा-

---

कुर्वन्ति। कथं समवायेष्वनुगुणीभूयायुतसिद्धानामाधाराधेयभूतानामिह प्रत्ययहेतुः। संयोगः। समवायः। यथा तन्तुषु पट इति। कार्यस्य द्रव्यस्यावयविन आरम्भं प्रतियोगोभावोऽनुगुणत्वम्। मयुरो धूर्तजनयोग्यो हासो वा, शिखण्डी च। बालिशा धूर्ताः, कुमाराश्च। बालका हि क्रीडारसेन मयूरं नर्तयन्ते। अनुप्रविश्य चित्तरञ्जनां कृत्वा, आसाद्य च प्रकृतिं स्वभावम्, शरीरं च। पल्लविका विटाः, किसलयानि च। मिथ्यादर्शनैरसदागमैः, अलीकवस्तुप्रकाशनैश्च। असतीमशोभनां बुद्धिम्, असत्यविद्यमाने च बुद्धिः। विप्रलम्भकाः प्रतारकाः। वातिका धूर्ताः, वातोत्थिताश्च। तृष्णा धनगर्धा, पिपासा च। ग्रहीतुमावर्जयितुम्, अवष्टब्धुं च। अकुलीना अकुलोद्गताः। कौ भूमौ न निलीनाश्चाकाशचारित्वात्। मानसे चित्ते,

---

मन्त्रणा में अनुकूल होकर पार्थिव अर्थात् राजा को साधारण बना देते हैं। बालिश अर्थात् धूर्त (या बालक) लोग खेल के आनन्द से उसे अर्थात् राजा को नचाते हुए मयूर बना डालते हैं। विट लोग दर्पण के समान उसमें प्रवेश करके अपने स्वभाव को उसमें संक्रान्त कर देते हैं। ठग लोग स्वप्नों के समान झूठ-मूठ की बातों को दिखाकर उसकी बुद्धि को खराब कर डालते हैं। विकृतियों के सदृश वातिक (हवाई प्रकृति के धूर्त) लोग अपेक्षित होकर, गाना, नाच, हँसी-मजाक से उसे उन्मत्त बना डालते हैं। चातकों के समान तृष्णायुक्त ये अकुलीन लोग पकड में नहीं आते (आकाशचारी होने के कारण चातक भी कु अर्थात् पृथिवी में लीन नहीं होते)। जालसाज लोग मन में मछली के समान स्फुरित होते ही अभिप्राय को ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् उसे समझ जाते हैं। यमपट्टिक अर्थात् जादूगर के समान ऊँचे स्वर में गीत गाने वाले ये लोग अम्बर (आकाश या वस्त्र) पर चित्रकारी करते हैं। मार्ग का अतिक्रमण करने वाले अथवा बाण रूप ये लोग हृदय में काँटा चुभाते हैं। इसलिए इन सभी दोषों

भिषङ्गैरसंगतौ बहुधोपधाभिः परीक्षितौ शुची विनीतौ विक्रान्तावभिरूपौ मालवराजपुत्रौ भ्रातरौ भुजाविव मे शरीरादव्यतिरिक्तौ कुमारगुप्तमाधवगुप्तनामानावस्माभिर्भवतोरनुचरत्वार्थमिमौ निर्दिष्टौ। अनयोरुपरि भवद्भ्यामपि नान्यपरिजनसमवृत्तिभ्यां भवितव्यम्', इत्युक्त्वा तयोराह्वानाय प्रतीहारमादिदेश।

न चिराद् द्वारदेशनिहितलोचनौ राज्यवर्धनहर्षौ प्रतीहारेण सह प्रविशन्तम्, अग्रतो ज्येष्ठमष्टादशवर्षवयसं नात्युच्चं नातिखर्वमतिगुरुभिः

सरोभेदे च। स्फुरन्तमुत्पद्यमानम्। अनुत्पन्नाभिभवमिति यावत्। सति कार्ये हि सर्व एवाभिप्रायं लक्षयति। एतेऽत्र प्रागेव। अन्यत्र—च चलन्तम्। जालिकाः कौसृतिकाः, कैवर्ताश्च। यमपट्टिका गृहीतपट्टलिखितसपरिवारधर्मराजाः। अम्बर आकाशे, वस्त्रे चाम्बरे। चित्रमालिखन्तीति। असंभाव्यमानानर्थानारभन्त इति यावत्। अन्यत्र,—चित्रमालेख्यम्। उद्गीतका उच्चतरत्वादुच्चैर्गीतं येषां ते च। शल्यमिव शल्यं पीडा, फलिका च। अतिमार्गणा अतिक्रम्य ये संश्रयन्ते, अन्यथा महाभागिनोऽस्य वक्तुरनुचितेयमुक्तिः स्यात्। तेनानुरूपसंभवमविच्छिन्नं च। मार्गणमतिमार्गणम्, मार्गणाः शराश्च। हृदये शल्यं फलिकामर्पयन्ति अभिषङ्गः संपर्कः। उपधा भृत्यस्य धर्मादिविषयः परीक्षणोपायः। उक्तं च—'उपेत्याधीयते यस्मादुपधेति ततः स्मृता। उपाय उपधा ज्ञेया तया भृत्यान् परीक्षयेत्॥' इति। विक्रान्तौ शूरौ। अभिरूपौ सुन्दरौ।

न चिरादित्यादौ। राज्यवर्धनहर्षौ प्रतीहारेण सह प्रविशन्तमग्रतो ज्येष्ठं कुमारगुप्तं पृष्ठतश्च तस्य कनीयांसं, नीतिमत्त्वं प्रकाशितम्। सर्वं वामनम्। मेदुरात्पु-

के सम्पर्क से सर्वथा पृथक् रहने वाले, बहुत प्रकार के उपायों से परीक्षित, पवित्र, विनम्र, विक्रम अर्थात् शौर्य से युक्त, सुन्दर, मालवराज के पुत्र कुमार गुप्त एवं माधव गुप्त नामक दो भाई, जो मेरी दोनों भुजाओं के समान मुझसे अलग नहीं हैं, तुम्हारे अनुचर के रूप में मैंने नियुक्त किये हैं। इन दोनों के साथ आप दोनों भी सामान्य परिजनों जैसा बर्ताव नहीं करेंगे।" यह कहकर राजा ने उन दोनो को बुला लाने के लिए द्वारपाल को आदेश दिया।

कुछ ही देर में दरवाजे की ओर आँखें लगाये राज्यवर्ध एवं हर्ष ने प्रतीहार के साथ प्रवेश करते हुए, आगे-आगे जेठे, अठारह वर्ष की उम्र के, न अधिक

पदन्यासैरनेकनरपतिसंचरणचलां निश्चलीकुर्वाणमिवोर्वीम्, अनवरताभ्यस्तलङ्घनघनोपचयकठिनमांसमेदुरादूरुद्वयान्निष्पततेवानुल्वणजानुग्रन्थिप्रसूतेन तनुतरजङ्घाकाण्डयुगलेन भासमानम्, उल्लिखितपार्श्वप्रकाशितकार्श्येन मध्येन सुरासुररभसभ्रमितवासुकिकषणक्षीणेन मन्दरमिव लक्ष्यमाणम् अतिविस्तीर्णेनोरसा स्वामिसम्भावनानामपरिमितानामवकाशमिव प्रयच्छन्तम्, प्रलम्बमानस्य भुजयुगलस्य निभृतललितैर्विक्षेपैरतिदुस्तरं तरन्तमिव यौवनोदधिम्, वामकरकटमाणिक्यमरीचिमञ्जरीजालिन्या समुद्भिद्यमानप्रतापानलशिखापल्लवयेव चापगुणकिणलेखयाङ्कितपीवरप्रकोष्ठम्, आलोहिनीमुच्चांसतटावलम्बिनीमस्त्रग्रहणव्रतविधृतां रौरवीमिव त्वचं कर्णाभरणमणेः प्रभां बिभ्राणम्, उत्कोटिकेयूरपत्रभङ्गपुत्रिकाप्रतिबिम्बगर्भकपोलं मुखं चन्द्रमसमिव हृदयस्थितरोहिणीकमुद्वहन्तम्, अचपलास्त-

---

ष्टात् । अनुल्बणोऽनुद्धतः । उल्लिखितमिवोल्लिखितं तनूकृतम् । रुरुर्मृगभेदस्तस्येयं

ऊँचे और न अधिक नाटे, अनेक राजाओं के चलने के कारण हिलती हुई पृथिवी को मानो अपने भारी चरणन्यासों से स्थिर करते हुए, लगातार चलने के अभ्यास से बहुत कड़े हो गये मांस के कारण पुष्ट अपने दोनों उरुकण्डों से निकले हुए के समान सुन्दर घुटनों से उत्पन्न क्षीणतर दोनों जङ्घाकाण्डों से सुशोभित होते हुए, खरादे गये पार्श्वों के कारण स्पष्ट कृश अपने मध्य भाग से देवता एवं असुरों द्वारा वेग से घुमाये गये वासुकि नाग के दबाव से क्षीण हुए मन्दराचल के समान प्रतीत होते हुए, अत्यन्त चौड़ी छाती से मानो स्वामी के अपरिमित स्नेह-सद्भावों को रहने के लिए अवकाश देते हुए, लम्बी-लम्बी अपनी दोनों भुजाओं के सुघड़ एवं सुन्दर विक्षेपों से मानों उत्पन्न दुस्तर यौवन-समुद्र को तैरते हुए, बायें हाथ के बेरवे के माणिक्य की किरणों से युक्त, धनुष की डोरी की रगड़ से उत्पन्न दाग की लेखा से मानो प्रतापाग्नि का शिखा-पल्लव प्रकट हो रहा हो इस प्रकार अङ्कित मोटी कलाई वाले, अपने ऊँचे कन्धे से लटकती हुई कान के आभूषण के मणि की लाल प्रभा को अस्त्र ग्रहण व्रत करने के लिए धारण की गई रुरुमृग के चमड़े की पेटी के समान धारण किये हुए, किनारेदार केयूर की पत्रभङ्ग पुत्रिका की छाया से युक्त गालों वाले मुख को, जिसके हृदय में रोहिणी विराजमान है ऐसे चन्द्रमा के समान धारण करते हुए, अपनी झुकी हुई एवं स्थिर पुतलियों

मिततारकेणाधोमुखेन चक्षुषा शिक्षयन्तमिव लक्ष्मीलाभोत्तानितमुखानि पङ्कजवनानि विनयम्, स्वाम्यनुरागमिवाम्लातकमुत्तंसीकृतं शिरसा धारयन्तम्, निर्दयया कङ्कणभङ्गभीतसकलकार्मुकार्पितामिव नम्रतां प्रकाशयन्तम्, शैशव एव निर्जितैरिन्द्रियैरिरिभिरिव संयतैः शोभमानम्, प्रणयिनीमिव विश्वासभूमिं कुलपुत्रतामनुवर्तमानम्, तेजस्विनमपि शीलेनाह्लादकेन सवितारमिव शशिनान्तर्गतेन विराजमानम्, अचलानामपि कायकार्कश्येन गन्धनमिवाचरन्तम्, दर्शनक्रीतमानन्दहस्ते विक्रीणानमिव जनसौभाग्येन कुमारगुप्तम्, पृष्ठतस्तस्य कनीयांसमतिप्रांशुतया गौरतया च मनः शिलाशैलमिव संचरन्तम्, अनुल्बणमालतीकुसुमशेखरनिभेन निर्जिगमिषता गुरुणा शिरसि चुम्बितमिव यशसा, परस्पर-

---

नौरवीं ताम्। अम्लातकं पुष्पभेदम्, कुरण्टकापुष्पभेदं वा। उत्तंसीकृतं शेखरतां नीतम्। शीलेनाप्यन्तर्गतेन। एतेन चास्या दाम्भिकत्वमुक्तम्। गन्धनं मर्दनम्; उद्वाहनं वा। दृष्टमेव जनं वश्यमेवं सर्वं करोतीति दर्शनक्रीतता। क्रीतमावर्जितम्। पुनश्चानन्दोत्पादनद्वारेणानन्दवन्तं तच्छरणं करोतीति। तत्र विक्रियोत्प्रेक्षा-यत्तु वस्तु केनचिदर्थेन क्रीतं तदप्यन्यस्य विक्रीयत इत्युक्तम्। विक्रीणानमिति। गौरतयेतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया। शेखरस्यानुल्बणत्वं विनयं वक्ति। गुरुणा भूयिष्ठेन। चुम्बितमधिष्ठितम्। गुरुणा च पित्रा निर्गच्छता पुनः शिरसि चुम्ब्यते।

वाली आँखों से मानो लक्ष्मी की प्राप्ति के कारण सिर ऊँचा किये हुए कमलवनों को विनम्रता की शिक्षा देते हुए, स्वामी के प्रति अनुराग के समान ही अम्लातक नामक लाल फूल को उत्तंस बनाकर मस्तक पर धारण किये हुए, दया न होने के कारण (बाण सञ्चालन के समय) कङ्कण के टूट जाने के भय से मानो सभी धनुषों द्वारा अर्पित नम्रता को प्रकाशित करते हुए, बचपन में ही शत्रुओं के समान जीते जाने पर संयत हुई इन्द्रियों से सुशोभित होते हुए, प्रेयसी के समान विश्वास करने योग्य अपनी कुलीनता का अनुगमन करते हुए, अन्तर्गत चन्द्रमा से सूर्य के समान तेजस्वी होकर भी अपने आह्लादक शीलगुण से सुशोभित होते हुए, अपने शरीर के कड़े पन से मानो पर्वतों का भी मर्दन करते हुए, दर्शन देकर खरीदे गये लोगों को सौभाग्य से आनन्द के हाथ बेचते हुए से कुमार गुप्त को तथा उसके पीछे-पीछे आयु में छोटे, अत्यन्त लम्बे एवं गौरवर्ण के होने के कारण मैनसिल के पहाड़ के समान चलते हुए, सुन्दर मालती पुष्प की मौलिमाला के

विरुद्धयोर्विनययौवनयोश्चिरात् प्रथमसंगमचिह्नमिव भ्रूसंगतकेन कथयन्तम्, अतिधीरतया हृदयनिहितां स्वामिभक्तिमिव निश्चलां दृष्टिं धारयन्तम्, अच्छाच्छचन्दनरसानुलेपशीतलं सन्निहितहारोपधानं वक्षःस्थलमनन्तसामन्तसंक्रान्ति श्रान्तायाः श्रियो विशालं शशिमणिशिलापट्टशयनमिव बिभ्राणम्, चक्षुः कुरङ्गैर्घोणावंशं वराहैः स्कन्धपीठं माहिषैः प्रकोष्ठबन्धं व्याघ्रैः पराक्रमं केसरिभिर्गमनं मतङ्गजैर्मृगयाक्षपितशेषैर्भीतैरुत्कोचमिव दत्तं दर्शयन्तं माधवगुप्तं ददृशतुः।

प्रविश्य च तौ दूरादेव चतुर्भिरङ्गैरुत्तमाङ्गेन च गां स्पृशन्तौ नमश्चक्रतुः। स्निग्धनरेन्द्रदृष्टिनिर्दिष्टामुचितां भूमिं भेजाते। मुहूर्तं च स्थित्वा भूपतिरादिदेश तौ—'अद्यप्रभृति भवद्भ्यां कुमारावनुवर्तनीयौ' इति।

भ्रूसंगतकं विनयम्, उपधानं गण्डकम्। विशालं प्रशस्तम्। विशाले चाङ्गानि प्रसार्यन्ते। शीतलत्वाच्चाङ्गनिर्वृतिः। घोणा नासिका एव स्पष्टत्वाद्वंशस्तम्। उत्कोचमिवेति। दण्डमित्यर्थः।

चतुर्भिरङ्गैरिति। जानुभ्यां हस्ताभ्यां चोत्तमाङ्गेन मूर्ध्ना। भूमिं तौ च।

रूप में जिसके मस्तक पर निकलना चाहते हुए गुरु के यश ने मानो चुम्बन किया हो ऐसे, परस्पर विरुद्ध विनम्रता एवं युवावस्था के चिरकाल के प्रथम संगम चिह्न को जो अपनी भौंहों की चाल से सूचित कर रहा था ऐसे, अत्यन्त धैर्यशाली होने के कारण हृदय में अवस्थित स्वामिभक्ति के समान स्थिर दृष्टि को धारण करते हुए, स्वच्छ चन्दन रस के लेप से शीतल तथा हार एवं उपधान (तकिये) से युक्त वक्षःस्थल को इस प्रकार धारण किये हुए मानो अनेक सामन्तों के पास पहुँचने के कारण थकी हुई लक्ष्मी का विशाल चन्द्रकान्तमणि निर्मित शिलापट्टशयन हो, आखेट के समय मारे जाने से बचे हुए तथा भयभीत मृगों द्वारा मानों घूस के रूप में दी गई आँखों को, शूकरों द्वारा दी गई नाक को, भैंसों द्वारा दिये गये स्कन्ध पीठ को, बाघों द्वारा दी गई कलाई को, सिंहों द्वारा दिये गये पराक्रम को तथा हाथियों द्वारा दी गई चाल को जो दिखा रहा था ऐसे माधव गुप्त को देखा।

प्रवेश करके उन दोनों ने दूर से ही अपने चार अङ्गों से तथा मस्तक से पृथिवी का स्पर्श करते हुए प्रणाम किया। फिर राजा की स्नेहपूर्ण दृष्टि से दिखाये

'यथाज्ञापयति देवः' इति मेदिनीदोलायमानमौलिभ्यामुत्थाय राज्यवर्धनहर्षौ प्रणेमतुः। तौ च पितरम्। ततश्चारभ्य क्षणमपि निमेषोन्मेषाविव चक्षुर्गोचरादनपयान्तावुच्छ्वासनिःश्वासाविव नक्तंदिवमभिमुखस्थितौ भुजाविव सततपार्श्ववर्तिनौ कुमारयोस्तौ बभूवतुः।

अथ राज्यश्रीरपि नृत्तगीतादिषु विदग्धासु सखीषु सकलासु कलासु च प्रतिदिवससमुपचीयमानपरिचया शनैः शनैरवर्धत। परिमितैरेव दिवसैर्यौवनमारुरोह। निपेतुरेकस्यां तस्यां शरा इव लक्ष्यभुवि भूभुजां सर्वेषां दृष्टयः। दूतसंप्रेषणादिभिश्च तां ययाचिरे राजानः।

कदाचित्तु राजान्तःपुरप्रासादस्थितो बाह्यकक्ष्यावस्थितेन पुरुषेण स्वप्रस्तावागतां गीयमानामार्यामश्रृणोत्—

पितरमिति। तौ च राज्यवर्धनहर्षौ लब्धानुचरावभिवन्दनाय पितरं प्रणेमतुरित्यर्थः।

विदग्धासु प्रवीणासु, ग्राम्यासु च।

गये उचित स्थान पर वे दोनों बैठ गये। क्षण-भर ठहर कर राजा ने उन दोनों को आदेश दिया—"आज से आप दोनों राजकुमारों का अनुवर्तन करें।" "महाराज की जो आज्ञा" यह कहकर पृथिवी की ओर सिर झुकाते हुए दोनों ने उठकर राज्यवर्धन एवं हर्ष को प्रणाम किया। उन दोनों (राज्यवर्धन एवं हर्ष) ने भी पिता को प्रणाम किया। तब से लेकर पलक के गिरने-उठने के समान क्षण-भर भी वे दोनों राजकुमारों की आँखों से ओझल नहीं होते, उच्छ्वास और निःश्वास के समान रात-दिन अभिमुख रहते और भुजाओं के समान निरन्तर अगल-बगल में निवास करते।

इधर राज्य-श्री भी नृत्य एवं गीत आदि में निपुण अपनी सखियों के बीच सम्पूर्ण कलाओं में प्रतिदिन अपना परिचय बढ़ाती हुई धीरे-धीरे बढ़ने लगी। थोड़े ही दिनों में वह युवावस्था को प्राप्त हुई। जिस प्रकार बाण एक ही निशाने पर गिरते हैं उसी प्रकार सभी राजाओं की दृष्टि उस एक ही (राज्यश्री) पर पड़ने लगी। दूत आदि भेजकर राजा लोग उसकी याचना करने लगे।

एक समय जब राजा प्रभाकर वर्धन अपने अन्तःपुर के कोठे पर बैठे थे, तभी उन्होंने बाहरी ड्योढ़ी पर नियुक्त किसी पुरुष के द्वारा अपनी बातचीत के क्रम में गायी गयी आर्या को सुना—जिस प्रकार वर्षाकाल में मेघों के ऊपर

'उद्वेगमहावर्ते पातयति पयोधरोन्नमनकाले।
सरिदिव तटमनुवर्षं विवर्धमाना सुता पितरम् ॥ ५ ॥

तां च श्रुत्वा पार्श्वस्थितां महादेवीमुत्सारितपरिजनो जगाद—'देवि! तरुणीभूता वत्सा राज्यश्रीः। एतदीया गुणवत्तेव क्षणमपि हृदयान्नापयाति मे चिन्ता। यौवनारम्भ एव च कन्यकानामिन्धनोभवन्ति पितरः संतापानलस्य। हृदयमन्धकारयति मे दिवसमिव पयोधरोन्नतिरस्याः। केनापि कृता धर्म्या नाभिमता मे स्थितिरियं यदङ्गसंभूतान्यङ्कलालितान्यपरित्याज्यान्यपत्यकान्यकाण्ड एवागत्यासंस्तुतैर्नीयन्ते। एतानि तानि खलवङ्कनस्थानानि संसारस्य। सेयं सर्वाभिभाविनी शोकाग्नेर्दाहशक्तिर्यदपत्यत्वे समानेऽपि जातायां दुहितरि दूयन्ते सन्तः। एतदर्थं जन्मकाल एव कन्यकाभ्यः प्रयच्छन्ति सलिलमश्रुभिः साधवः। एतद्भयाद-

उद्वेगो मानसी पीड़ा तस्यावर्त्तनमावर्तो जलभ्रमणम्। तत्र पयोधरशब्दः स्तनमेघयोः। अनुवर्षं वर्षे, प्रावृषि च। असंस्तुतैरपरिचितैः। दौःशील्यं चिह्नम्।

उठने के समय बढ़ती हुई नदी अपने तट को बड़ी-बड़ी भँवरियों में डाल देती है उसी प्रकार बढ़ती हुई कन्या स्तनों के उठान के समय पिता को चिन्ता में डाल देती है।

उस आर्या को सुनकर राजा ने परिजनों को हटा दिया तथा बगल में बैठी हुई महारानी से कहा—"देवि! वत्सा राज्यश्री अब युवावस्था को प्राप्त हुई है। उसकी गुणवत्ता के समान इसकी चिन्ता मेरे हृदय से क्षण-भर भी नहीं जा पा रही है। कन्याओं के यौवन का प्रारम्भ होते ही पिता लोग सन्ताप रूपी अग्नि के ईन्धन बन जाते हैं। जिस प्रकार मेघ आकाश में उठकर दिन को अन्धकार पूरित कर देता है उसी प्रकार इसके स्तनों की उठान मेरे हृदय को अन्धकाराच्छन्न कर देती है। जिस किसी के द्वारा की गई धार्मिक मर्यादा मुझे अच्छी नहीं लगती क्योंकि असमय में आकर ही इस प्रकार के अपरिचित लोग अपने अङ्ग से उत्पन्न, गोद में रखकर पाली-पोसी हुई तथा न त्यागने योग्य सन्तानों को उठाकर ले जाते हैं। ये सब कुरीतियाँ निश्चय ही संसार के कलङ्क स्वरूप हैं। इसीलिए सबको अभिभूत कर देनेवाली यह शोकाग्नि की दाहशक्ति है जो कि सन्तान की दृष्टि से बराबर होने पर भी सज्जन लोग पुत्री के उत्पन्न होने पर दुखी होते हैं। इसीलिए जन्म के समय ही कन्याओं को सज्जन लोग

कृतदारपरिग्रहाः परिहृतगृहवसतयः शून्यान्यरण्यान्यधिशेरते मुनयः। को हि नाम सहेत सचेतनो विरहमपत्यानाम्। यथा यथा समापतन्ति दूता वराणां वराकी लज्जमानेव चिन्ता तथा तथा नितरां प्रविशति मे हृदयम्। किं क्रियते। तथापि गृहगतैरनुगन्तव्या एव लोकवृत्तयः। प्रायेण च सत्स्वप्यन्येषु वरगुणेष्वभिजनमेवानुरुध्यन्ते धीमन्तः। धरणीधराणां च मूर्ध्नि स्थितो माहेश्वरा पादन्यास इव सकलभुवननमस्कृतो मौखरो वंशः। तत्रापि तिलकभूतस्यावन्तिवर्मणः सूनुरग्रजो ग्रहवर्मा नाम ग्रहपतिरिव गां गतः पितुरन्यूनो गुणैरेनां प्रार्थयते। यदि भवत्या अपि मतिरनुमन्यते ततस्तस्मै दातुमिच्छामि' इत्युक्तवति भर्तरि दुहितृस्नेह-कातरतरहृदया साश्रुलोचना महादेवी प्रत्युवाच—आर्यपुत्र! संवर्धन-मात्रोपयोगिन्यो धात्रीनिर्विशेषा भवन्ति खलु मातरः कन्यकानाम्।

वराकी तपस्विनी। अभिजनं कुलम्। सकलेत्यादि साधारणम्।

आँसुओं के जल देते हैं। इसी डर से स्त्री का पाणिग्रहण किये बिना ही घर-द्वार छोड़कर मुनि लोग सुनसान जङ्गलों में शयन करते हैं। कौन ऐसा चेतनावान् प्राणी है जो अपनी सन्तानों का वियोग सह सके? जैसे-जैसे वरों के दूत पर दूत आते जा रहे हैं यह बेचारी चिन्ता वैसे-वैसे ही लजाती हुई के समान मेरे हृदय में प्रवेश करती जा रही है। क्या किया जाय। तो भी गृहस्थ होने के कारण लोक-व्यवहारों का अनुसरण तो करना ही पड़ता है। बुद्धिमान लोग वर के अन्य गुणों के रहने पर भी उनमें से कुलीनता को प्रायः पसन्द करते हैं। महेश्वर अर्थात् भगवान् शङ्कर के चरणन्यास के समान राजाओं के मस्तक पर स्थित अर्थात् सिरमौर तथा सम्पूर्ण संसार द्वारा वन्दित मौखरि क्षत्रियों का वंश है। उसमें भी तिलकस्वरूप अवन्ति वर्मा हैं जिनके बड़े पुत्र ग्रहवर्मा हैं जो पृथिवी पर आये हुए ग्रहपति अर्थात् सूर्य के समान हैं तथा गुणों में अपने पिता से थोड़ा भी कम नहीं हैं, ऐसे ग्रहवर्मा भी इस (राज्यश्री) के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। यदि आप भी सहमति दें तो मैं उसे ही राज्यश्री को सौंपना चाहता हूँ।" पति के ऐसा कहने पर पुत्री के प्रति स्नेह से कातर हृदय वाली महारानी आँखों में आँसू भर कर बोली—"आर्यपुत्र! माताएँ केवल धाय के समान कन्याओं को बढ़ाने मात्र के उपयोग मे आती हैं। कन्यादान मे तो पिता लोग

दाने तु प्रमाणमासां पितरः। केवलं कृपाकृतविशेषः सुदूरेण तनयस्नेहादतिरिच्यते दुहितृस्नेहः। यथा नेयं यावज्जीवमावयोरार्तितां प्रतिपद्यते तथायंपुत्र एव जानाति' इति।

राजा तु जातनिश्चयो दुहितृदानं प्रति समाहूय सुतावपि विदितार्थावकार्षीत्। शोभते च दिवसे ग्रहवर्मणा कन्यां प्रार्थयितुं प्रेषितस्य पूर्वागतस्यैव प्रधानदूतपुरुषस्य करे सर्वराजकुलसमक्षं दुहितदानजलमपातयत्।

जातमुदि कृतार्थे गते च तस्मिन्नासन्नेषु च विवाहदिवसेषूद्दामदीयमानताम्बूलपटवासकुसुमप्रसाधितसर्वलोकम् सकलदेशादिश्यमानशिल्पिसार्थागमनम्, अवनिपालपुरुषगृहीतसमग्रग्रामीणानीयमानोपकरणसम्भारम्, राजदौवारिकोपनीयमानानेकनृपोपायनम्, उपनिमन्त्रि-

---

आर्तिता मनःपीडात्वम्।

जातमुदीत्यादौ। एवं राजकुलमासीदिति संबन्धः। ग्रामीणा ग्राम्याः राजदौवारिका दूताः। संवर्गणमावर्तनम्। पिष्टमातर्पणम्। चारणाः कुशीलवाः। प्रकोष्ठ

ही कन्याओं के प्रमाण होते हैं। केवल बिछुड़ जाने की दया के कारण पुत्र स्नेह से कन्यास्नेह दूर बढ़ जाता है। हम दोनों के जीते जी जिस उपाय से मानसिक पीड़ा न बनने पाये वह उपाय आर्यपुत्र ही जानते हैं।"

राजा ने निश्चय करके कन्यादान के सम्बन्ध में अपने पुत्रों को भी बुलाकर उन्हें अपने अभिप्राय से अवगत करा दिया। शुभ दिन में ग्रहवर्मा द्वारा कन्या की याचना के लिए भेजे गये तथा पहले से ही आये हुए प्रधान दूत के हाथ पर उन्होंने सम्पूर्ण राजवंश के समक्ष कन्यादान का जल गिराया।

उस दूत के प्रसन्न एवं कृतकृत्य होकर लौट जाने पर तथा विवाह के दिनों के समीप आ जाने पर, जहाँ सजे-सँवरे लोगों को पान के बीड़े, कपड़े की सुगन्ध और फूल दिये जाने लगे, जहाँ सभी देशों से आदेश पाकर कारीगर लोग आकर जुटने लगे, जहाँ राज-पुरुष लोग गाँव वालों को पकड़कर उनसे सब सामग्री उठाकर लाने लगे, जहाँ राजा के दौवारिक लोग अनेक राजाओं द्वारा प्रस्तुत किये गये उपहारों को लाने लगे, जहाँ निमन्त्रण पाकर आये हुए बन्धुओं (सम्बन्धियों) को आदरपूर्वक राजा के प्रिय लोग ठहराने के काम में व्यस्त थे, जहाँ मदिरा के नशे में चूर होकर ढोल बजाने वाला चमार हाथ में डंका लिए

तागतबन्धुवर्गसंवर्गणव्यग्रराजवल्लभम्, लब्धमधुमदप्रचण्डचर्मकारकरपुटोल्लालितकोणपटुविघट्टनरणन्मङ्गलपटहम्, पिष्टपञ्चाङ्गुलमण्ड्यमानोलूखलमुसलशिलाद्युपकरणम्, अशेषाशामुखाविर्भूतचारणपरम्परापूर्यमाणप्रकोष्ठप्रतिष्ठाप्यमानेन्द्राणीदैवतम्, सितकुसुमविलेपनवसनसत्कृतैः सूत्रधारैरादीयमानविवाहवेदीसूत्रपातम्, उत्कूर्चककरैश्च सुधाकर्परस्कन्धैरधिरोहिणीसमारूढैर्धवैर्धवलीक्रियमाणप्रसादप्रतोलीप्राकारशिखरम्, क्षुण्णक्षाल्यमानकुसुम्भसंभाराम्भःप्लवपूररज्यमानजनपादपल्लवम्, निरूप्यमाणयौतकयोग्यमातङ्गतुरङ्गतरङ्गिताङ्गनम् गणनाभियुक्तगणकगणगृह्यमाणलग्नगुणम्, गन्धोदकवाहिमकरमुखप्रणालीपूर्यमाणक्रीडावापीसमूहम्, हेमकारचक्रप्रक्रान्तहाटकघटनटाङ्कारवाचालितालिन्दकम्, उत्थापिताभिनवभित्तिपात्यमानबहलवालुकाकण्ठकालेपाकुलालेपकलोकम्, चतुरचित्रकरचक्रवाललिख्यमानमाङ्गल्यालेख्यम्, लेप्यकारकदम्बकक्रियमाण-

बहिर्द्वारम्। सूत्रधारैः स्थपतिभिः अधिरोहिणी निःश्रेणिः। धवैः पुरुषैः। क्षुण्णश्चूर्णितः। कुसुम्भकं पद्मकम्। प्लवः पूरः। यौतकं सुदायः। प्रणालं वाप्यादिपूरणार्थं मकरमुखं कुर्वन्ति। लग्नो मेषादिः। अलिन्दो बहिर्द्वारप्रकोष्ठः। कण्ठकाः

धमाधम मङ्गल-पटह बजा रहा था, जहाँ ऊखल, मूसल एवं सिल आदि पत्थर की सामग्री जुटाकर उन पर पिठार से पाँचों उँगलियों के थापे दिये जाने लगे, जहाँ सभी दिशाओं से आये हुए चारण लोग जिस कोठरी में इकट्ठे थे इन्द्राणी के रूप में दई दैवता प्रतिष्ठापित किये गए थे, जहाँ उजले फूल, चन्दन एवं वस्त्र से सत्कार प्राप्त किये हुए सूत्रधार अर्थात् मिस्त्री लोग विवाह की वेदी बनाने में सूत से नाप-जोख करने लगे, जहाँ पोतनेवाले मजदूर हाथ में कूँची उठाये, कंधों से चूने की हंडी लटकाये, सीढ़ी पर चढ़कर राजमहल, पौरी, चहारदीवारी और शिखरों पर सफेदी कर रहे थे, जहाँ पीसे जाते हुए कुंकुम को धोने से बहते हुए जल में आने-जाने वालों के पैर रंग रहे थे, जहाँ के आङ्गन में दहेज में दिये जाने योग्य हाथी, घोड़े भरे हुए थे तथा जिन्हें लोग जाँच-परख रहे थे, जहाँ गणना में लगे हुए ज्योतिषी लोग सुन्दर लग्न शोध रहे थे, जहाँ मकर के मुख की नाली से गन्धजल बहकर क्रीडा की बौलियों में भर रहा था, जहाँ राजद्वार की ड्यौढ़ी के बाहर सोना गढ़ने में जुटे हुए सुनारों की ठक-ठक की आवाज भर रही थी, जहाँ उठाई जाती हुई नई दीवारों से गिरते हुए बहुत बालू के कणों से पलस्तर करने वाले लोग व्याकुल हो गये, जहाँ कुशल चित्रकार लोग

मृन्मयमीनकूर्ममकरनारिकेलकदलीपूगवृक्षकम्, क्षितिपालैश्च स्वयमाबद्धकक्ष्यैः स्वाम्यर्पितकर्मशोभासंपादनाकुलैः सिन्दूरकुट्टिमभूमीश्च मसृणयद्भिर्विनिहितसरसातर्पणहस्तान्विन्यस्तालक्तकपाटलांश्च चूताशोकपल्लवलाञ्छितशिखरानुद्वाहवितर्दिकास्तम्भानुत्तम्भयद्भिः प्रारब्धविविधव्यापारम्, आसूर्योदयाच्च प्रविष्टाभिः सतीभिः सुभगाभिः सुरूपाभिः सुवेशाभिरविधवाभिः सिन्दूररजोराजिराजितललाटाभिर्वधूवरगोत्रग्रहणगर्भाणि श्रुतसुभगानि मङ्गलानि गायन्तीभिर्बहुविधवर्णकादिग्धाङ्गुलीभिर्ग्रीवासूत्राणि च चित्रयन्तीभिश्चित्रलतालेख्यकुशलाभिः कलशांश्च धवलितान्शीतलशाराजिरश्रेणीश्च मण्डयन्तीभिरभिन्नपुटकर्पासतूलपल्लवांश्च वैवाहिककङ्कणोर्णा-

---

कणाः। आबद्धकक्ष्यैः कृतोद्योगैः। मसृणयद्भिश्चिक्कणीकुर्वद्भिः। आतर्पणं पिष्टम्। उत्तम्भयद्भिरूर्ध्वीकुर्वद्भिः। गोत्रं नाम। दिग्धा उपलिप्ताः। शीतलमपक्वम्। शाराजिरं शरावम्। अभिन्नपुटो वंशादिमयश्चतुष्कोणः पाटलाकृतिर्जालकैः क्रियते। तच्छिद्रान्तरपूरणाय कर्पासतूलपल्लवा रच्यन्ते। कङ्कणः प्रतिसरः। बलाशना पुष्पा-

---

माङ्गलिक चित्र बना रहे थे, जहाँ खिलौने बनाने वाले कुम्हार मिट्टी से मछली, कछुआ, मगर, नारियल, केला और सुपारी के पेड़ बना रहे थे, जहाँ राजा लोग स्वयं कच्छा बाँधकर मालिक के द्वारा प्राप्त हुए कामों में आकुल थे, जैसे कुछ सिन्दूरी रंग के फर्श को माँजकर चमका रहे थे, कुछ विवाह की वेदी के खम्भों को अपने हाथ से खड़ा कर रहे थे, उन खम्भों को गीले ऐपन के थापों, आलता के रंग में रंगे लाल कपड़ों और आम एवं अशोक के पल्लवों से सजाया था, इस प्रकार वे अनेक कामों में लगे थे, जहाँ सूर्योदय से लेकर ही पहुँची हुई सती, सुन्दरी, रूपवती तथा सुन्दर वेश धारण की हुई सधवा स्त्रियाँ जिनके ललाट प्रदेश में सिन्दूर कण सुशोभित हो रहे थे तथा जो सामन्तों की पत्नियाँ थीं, चारों ओर व्याप्त थीं जिनमें से कुछ वर-वधू के गोत्रों का नाम ले-लेकर गाये जाने वाले तथा कानों को सुख पहुँचाने वाले गीतों को गा रही थीं, कुछ बहुत प्रकार के रंगों में उँगलियाँ डुबोकर कण्ठियों की डोरों को रंग रही थीं, चित्र-विचित्र फूल-पत्तियों के काम में निपुण कुछ स्त्रियाँ सफेदी किये हुए कलशों पर और कच्ची सरइयों पर चित्र लिख रही थीं, कुछ कपास के छोटे-छोटे गुल्ले और विवाह के कंगनों के लिए ऊनी और सूती लच्छियों को रंग रही थीं, कुछ

सूत्रसनाहांश्च रञ्जयन्तीभिर्बलाशनाघृतघनीकृतकुङ्कुमकल्कमिश्रितांश्चाङ्गरागांल्लावण्यविशेषकृन्ति च मुखालेपनानि कल्पयन्तीभिः कक्कोलमिश्राः सजातीफलाः स्फुरत्स्फीतस्फाटिककर्पूरशकलखचितान्तराला लवङ्गमाला रचयन्तीभिः समन्तात्सामन्तसीमन्तिनीभिर्व्याप्तम्, बहुविधभक्तिनिर्माणनिपुणपुराणपौरपुरंध्रिबध्यमानैर्बद्धैश्चाचारचतुरान्तःपुरजरतीजनितपूजाराजमानरजकरज्यमानै रक्तैश्चोभयपटान्तलग्नपरिजनप्रेङ्खोलितैश्छायासु शोष्यमाणैः शुष्कैश्च कुटिलक्रमरूपक्रियमाणपल्लवपरभागैरपरैरारब्धकुङ्कुमपङ्कस्थासकच्छुरणैरपरैरुद्भुजभुजिष्यभज्यमानभङ्गुरोत्तरीयैः क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैरकठोररम्भागर्भकोमलैर्निःश्वासहार्यैः स्पर्शानुमेयैर्वासोभिः सर्वतः स्फुरद्भिरिन्द्रायुधस-

---

ख्यौषधिः तत्पक्वं घृतं रक्षार्थं क्रियते। स्फाटिककर्पूराख्यः कर्पूरभेदः। भक्तिर्विच्छित्तिः। कुटिलः क्रमो येषां तैः। भुजिष्यैश्चेटैः। भज्यमानत्वं मुष्टिदानम्। क्षौमैः क्षुमाविकारैः। बादरैः कार्पासैः। लालातन्तुजैः कौशेयैः। नेत्रैः पृङ्गैः (?)।

बलाशना नामक औषधि, घी एवं कुङ्कुम मिलाकर उबटन एवं सौन्दर्य को बढ़ाने वाले मुखालेपन तैयार कर रही थीं, कुछ कक्कोल, जायफल एवं लौंग की मालाएँ बीच-बीच में स्फटिक जैसे श्वेतकपूर की चमकदार बड़ी डलियाँ पिरोकर बना रही थीं। जहाँ बहुत प्रकार की भक्तियों के निर्माण में निपुण नगर की बूढ़ी स्त्रियाँ या पुरखिनें (बाँधनू की रंगाई के लिए) कपड़ों को बाँध रही थीं, कुछ कपड़े बाँधे जा चुके थे, आचार में चतुर अन्तःपुर की वृद्धाओं से पूजा प्राप्त कर सुशोभित होते हुए रजक कपड़े रंग रहे थे एवं कुछ कपड़े रंगे जा चुके थे, दोनों छोरों को पकड़कर परिजन लोग झकझोर कर छाया में सुखा रहे थे और कुछ (कपड़े) सूख चुके थे, कुछ कपड़ों पर टेढ़े क्रम से पल्लव के सुन्दर चिह्न बनाये जा रहे थे, कुछ पर गीले कुङ्कुम की थापियों का काम जारी था, कुल सिमटे हुए उत्तरीयों को नौकर ऊपर उठाकर झाड़ रहे थे, क्षौम, बादर (कपास के बने कपड़े), दुकूल, लालातुन्तुज (रेशमी) अंशुक और नेत्र आदि कई प्रकार के वस्त्र थे जो साँप कैचुली के सदृशहल्के, केले के खम्भे की भीतरी पात के सदृश कोमल, साँस की हवा से भी उड़ जाने वाले एवं केवल छूकर भी अनुमान करने योग्य थे, मानो हजारों इन्द्रायुध के समान वस्त्रों से राजकुल ढँका

हस्तैरिव संछादितम्, उज्ज्वलनिचोलकावगुण्ठ्यमानहंसकुलैश्च शयनीयै-स्तारामुक्ताफलोपचीयमानैश्च कञ्चुकैरनेकोपायोगपाट्यमानैश्चापरिमितैः पट्टतटीसहस्रैरभिनवरागकोमलदुकूलराजमानैश्च पटवितानैः स्तवरकनिवहनिरन्तरच्छाद्यमानसमस्तपटलैश्च मण्डपैरुच्चित्रनेत्रपटवेष्ट्यमानैश्च स्तम्भैरुज्ज्वलं रमणीयं चौत्सुक्यदं च मङ्गल्यं चासीद्राजकुलम् ।

देवी तु यशोमती विवाहोत्सवपर्याकुलहृदया हृदयेन भर्तरि, कुतूहलेन जामातरि, स्नेहेन दुहितरि, उपचारेण निमन्त्रितस्त्रीषु, आदेशेन परिजने, शरीरेण संचरणे, चक्षुषा कृताकृतप्रत्यवेक्षणेषु, आनन्देन महोत्सवे, एकापि बहुधा विभक्तेवाभवत् । भूपतिरप्युपर्युपरि विसर्जितोष्ट्रवामीजनितजामातृजोषः सत्यप्याज्ञासंपादनदक्षे मुखेक्षणपरे परिजने समं पुत्राभ्यां दुहितृस्नेहविक्लवः सर्वं स्वयमकरोत् ।

निचोलकैर्वस्तुरूपकविशेषैः । स्तवरकं वस्त्रभेदः । वितानकं करकम् पटलं छादनम् । उज्ज्वलं भ्राजिष्णु ।

उष्ट्रवाम्युष्ट्रधार्या । केचिद्वामींद्वयमन्ये वेसरीमन्ये गुर्वीमाहुः । जोषः सुखम् ।

हुआ था, जहाँ पलंगों के बने हुए हंसों को सफेद पहनावे पहनाये गये थे, कञ्चुकों पर मोतियों का कसीदा किया गया था, अनेक उपयोग के लिए हजारों प्रकार के छोटे-छोटे पट्ट फाड़े जा रहे थे,नये रंगे कोमल दुकूलों से पट-वितान सुशोभित हो रहे थे, स्तबरक नामक वस्त्रों से मण्डप अच्छी तरह ढँके जा रहे थे, चित्रों वाले नेत्र वस्त्रों से खम्भे लपेटे जा रहा था, इस प्रकार राजकुल उज्वल,रमणीय, उत्सुकता प्रदान करने वाला तथा मङ्गलमय हो गया था ।

विवाहोत्सव के कारण आकुल चित्तवाली रानी यशोमती पति में हृदय से, जामाता में कुतूहल से, पुत्री में स्नेह से, नियन्त्रित स्त्रियों के उपचार से, परिजन में आदेश से, चलने-फिरने में शरीर से, किये गये तथा न किये गये कार्यों की देखभाल में आँख से, महोत्सव में आनन्द से एक होती हुई भी वह मानो बहुत रूपों में विभक्त हो गई थीं । राजा भी जामाता की प्रसन्नता के लिए एक पर एक ऊँटों एवं घोड़ियों की ढेर लगाकर आज्ञा पालन में निपुण तथा मुख ताकते हुए खड़े रहने वाले नौकर-चाकर के होने पर भी अपने दोनों पुत्रों के साथ अपनी पुत्री के प्रति स्नेह से व्याकुल होकर सारे कार्य स्वयं ही किया करते थे ।

एवं च तस्मिन्नविधवामय इव भवति राजकुले, मङ्गलमय इव जायमाने जीवलोके, चारणमयेष्विव लक्ष्यमाणेषु दिङ्मुखेषु, पटहरवमय इव कृतेऽन्तरिक्षे, भूषणमय इव भ्रमति परिजने, बान्धवमय इव दृश्यमाने सर्गे, निर्वृतिमय इवोपलक्ष्यमाणे काले, लक्ष्मीमय इव विजृम्भमाणे महोत्सवे निधान इव सुखस्य फल इव जन्मनः परिणाम इव पुण्यस्य, यौवन इव विभूतेः, यौवराज्य इव प्रीतेः सिद्धिकाल इव मनोरथस्य वर्तमाने, गण्यमान इव जनाङ्गुलीभिः, आलोक्यमान इव मार्गध्वजैः प्रत्युद्गम्यमान इव मङ्गल्यवाद्यप्रतिशब्दकैः, आहूयमान इव मौहूर्तिकैः, आकृष्यमाण इव मनोरथैः, परिष्वज्यमान इव वधूसखीहृदयैराजगाम विवाहदिवसः। प्रातरेव प्रतीहारैः समुत्सारितनिखिलानिबद्धलोकं विविक्तमक्रियत राजकुलम्।

एवमित्यादौ। अस्मिन्नत्याजगाम विवाहदिवस इति संबन्धः। निधान इव सुखस्येत्यादौ वर्तमान इत्यनेन संगतिः। मौहूर्तिकैर्गणकैः। अनिबद्धो बाह्यः।
यथा न भवति दोष इत्यत्र यथा कार्यमित्यर्थलभ्यम्।

इस प्रकार उस राजकुल के मानो सुहागिन स्त्रियों से युक्त होने पर, सम्पूर्ण प्राणिलोक के मानो मङ्गलमय हो जाने पर, दिशाओं के मानों चारणों से युक्त हुए रूप में दिखाई पड़ने पर, आकाश के पटहशब्द से मानो युक्त हो जाने पर, गहनों से लदे हुए परिजन के घूमते रहने पर, सृष्टि के मानो बान्धवमय रूप में दिखाई पड़ने पर, समय के परमानन्दमय जैसे दिखाई पड़ने पर, महोत्सव के लक्ष्मीमय जैसे बढ़ने पर, सुख के भण्डार के समान, जन्म के फल के समान, पुण्य के परिणाम के समान, वैभव के यौवन के समान, प्रेम के यौवराज्य के समान, मनोरथ के सिद्धि समय के समान, लोगों द्वारा उँगलियों पर मानो गिना जाता हुआ, मार्ग की पताकाओं द्वारा मानो देखा जाता हुआ, मङ्गलवाद्यों की प्रतिध्वनियों द्वारा मानो अगवानी किया जाता हुआ, ज्यौतिषियों द्वारा मानो बुलाया जाता हुआ, मनोरथों द्वारा मानो खींचा जाता हुआ एवं वधू की सखियों द्वारा मानो आलिङ्गित किया जाता हुआ विवाह-दिवस आ पहुँचा। प्रातःकाल ही प्रतीहारों द्वारा सभी फालतू लोगों को हटाकर राजकुल खाली करवा दिया गया।

अथ महाप्रतीहारः प्रविश्य नृपसमीपम् 'देव! जामातुरन्तिकात्ताम्बूलदायकः पारिजातकनामा संप्राप्तः' इत्यभिधाय स्वाकारं युवानमदर्शयत्। राजा तु तं दूरादेव जामातृबहुमानाद्दर्शितादरः 'बालक! कच्चित्कुशली ग्रहवर्मा?' इति पप्रच्छ। असौ तु समाकर्णितनराधिपध्वनिर्धावमानः कतिचित्पदान्युपसृत्य प्रसार्य च बाहू सेवाचतुरश्चिरं वसुंधरायां निधाय मूर्धानमुत्थाय 'देव! कुशली यथाज्ञापयस्यर्चयति च देवं नमस्कारेण' इति व्यज्ञापयत्। आगतजमातृनिवेदनागतं च तं ज्ञात्वा कृतसत्कारं राजा 'यामिन्याः प्रथमे यामे विवाहकालात्ययकृतो यथा न भवति दोषः' इति संदिश्य प्रतीपं प्राहिणोत्।

अथ सकलकमलवनलक्ष्मीं वधूमुख इव संचार्य समवसिते वासरे, विवाहदिवसश्रियः पादपल्लव इव रज्यमाने सवितरि, वधूवरानुरागलघूकृतप्रेमलज्जितेष्विव विघटमानेषु चक्रवाकमिथुनेषु, सौभाग्यध्वज इव रक्तां-

---

इसके बाद महाप्रतीहार ने राजा के समीप आकर निवेदन किया—"देव! जामाता के समीप से पारिजातक नामक तम्बोली (ताम्बूलदायक) आया है।" यह कहकर अपने ही आकार के एक युवक को उसने दिखाया। राजा ने जामाता के प्रति अत्यधिक सम्मान होने के कारण दूर से ही उसके प्रति आदर प्रकट करते हुए पूछा—"बालक! ग्रहवर्मा सकुशल तो हैं?" सेवा में निपुण उसने राजा की आवाज सुनते ही दौड़ते हुए कुछ कदम आगे बढ़कर, राजा के पास जाकर, दोनो हाथों को फैलाकर, देर तक पृथिवी में मस्तक झुकाकर एवं उठकर "महाराज! जो आज्ञा! वे सकुशल और प्रणयपूर्वक आपकी अर्चना करते हैं।" इस प्रकार निवेदन किया। राजा ने यह जानकर कि जामाता विवाह के लिए आये हैं, उसका सत्कार करके कहा—"रात्रि के पहले पहर में विवाह-लग्न बीतने का जिसमें दोष न हो।" इस प्रकार उसे सन्देश देकर वापस भेज दिया।

तत्पश्चात् समस्त कमलवन की लक्ष्मी अर्थात् शोभा को मानो वधू (राज्यश्री) के मुख में संचारित करके दिन जब ढल गया, विवाह-दिवस की श्री के चरण-पल्लव के समान जब सूर्य लाल हो गया, वर एवं बधू के पारस्परिक अनुराग के सामने प्रेम-भाव के हल्के होने के कारण लज्जित होकर चक्रवाक के जोड़े जब

शुकसुकुमारवपुषि नभसि स्फुरति सन्ध्यारागे, कपोतकण्ठकर्वुरे वरयात्रागमनरजसीव कलुषयति दिङ्मुखानि तिमिरे, लग्नसंपादनसज्ज इवोज्जिहाने ज्योतिर्गणे विवाहमङ्गलकलश इवोदयशिखरिणा समुत्क्षिप्यमाणे वर्धमानधवलच्छाये ताराधिपमण्डले, वधूवदनलावण्यज्योत्स्नापरिपीततमसि प्रदोषे, वृथोदितमुपहसत्स्विव रजनिकरमुत्तानितमुखेषु कुमुदवनेष्वाजगाम मुहुर्मुहुरुल्लासितस्फारस्फुरितारुणचामरैर्मनोरथैरिवोत्थितरागाग्रपल्लवैः पुरोधावमानैः पादातैरुत्कर्णकटकहयप्रतिहेषितदीयमानस्वागतैरिव वाजिनां वृन्दैरापूरितदिग्विभागः, चलकर्णचामराणां चामीकरमयसर्वोपकरणानां वर्णकलम्बिनां बक्षिनां घण्टाटङ्कारिणां करिणां घटाभिः,

---

अथेत्यादौ । एतस्मिन्नेतस्मिन्सत्याजगामेति संबन्धः । कपोतेत्यसाधारणम् । कर्बुरे आपाण्डुरे । रजसीवेति । रजोऽपि मुखानि कलुषयति । लग्नेत्यादि साधारणम् । उज्जिहाने उद्गच्छति । ज्योतिर्गणैस्तारानिकरैः, गणकैश्च । वर्धमानेत्यादि संध्यारागहितत्वात् । वर्धमानं शरावः तेन च धवलच्छायम् । तद्धि मक्कोललिप्तं विवाहे क्रियते इत्याचारः । स्फारः स्फोटकः । पुरोधावमानैरिति साधारणम् । पादातैः पदातिसमूहैः ।

वियुक्त होने लगे, सौभाग्य की पताका के समान सायंकाल की कोमल लाली लालवस्त्र के सदृश आकाश में जब स्फुरित होने लगी, कबूतर के कण्ठ के समान धुँआ जैसा अन्धकार जब आकाश को इस प्रकार मलिन करने लगा मानो बारात के चलने के कारण धूल उड़कर भरने लगी हो, शुभ लग्न को ठीक करने में तारे मानो निकलकर जब तैयार होने लगे, मानो उदयाचल ने विवाह का मङ्गलकलश उठाया हो इस प्रकार चन्द्रमण्डल जब कसोरे की भाँति स्वच्छ हो गया, वधू के मुख के लावण्य की ज्योत्स्ना द्वारा माना प्रदोष के अन्धकार के पी लिये जाने पर व्यर्थ उदित हुए चन्द्रमा का जब ऊपर की ओर मुँह किये कुमुदवन उपहास करने लगे, तभी मानो राग के अग्रपल्लव को उठाये मनोरथ हो इस प्रकार बारम्बार लाल-लाल चमकदार चँबर उठाये पैदल चलने वाले एवं आगे-आगे दौड़ते जाने वाले लोगों से तथा कान उठाकर अपनी हिनहिनाहट से मानो स्वागत कर रहे हों इस प्रकार के घोड़ों के समूहों से दिग्भागों को भरकर, चञ्चल कर्ण-चामरों वाले, सोने के सभी साजों से युक्त एवं रंगीन लटकते वस्त्रों

घटयन्निव पुनरिन्दूदयविलीनमन्धकारम्, नक्षत्रमालामण्डितमुखीं करिणीं निशाकर इव पौरंदरीं दिशमारूढः, प्रकटितविविधविहगविरुतैस्तालावचरचारणैः पुरःसरैर्बालो वसन्त इवोपवनैः क्रियमाणकोलाहलः, गन्धतैलावसेकसुगन्धिना दीपिकाचक्रवालालोकेन कुङ्कुमपटवासधूलिपटलेनेव पिञ्जरीकुर्वन्सकलं लोकम्, उत्फुल्लमल्लिकामुण्डमालामध्याध्यासितकुसुमशेखरेण शिरसा हसन्निव सपरिवेषक्षपाकरं कौमुदीप्रदोषम्, आत्मरूपनिर्जितमकरकेतुकरापहृतेन कार्मुकेणेव कौसुमेन दाम्ना विरचितवैकक्षकविलासः, कुसुमसौरभगर्वभ्रान्तभ्रमरकुलकलकलप्रलापसुभगः पारिजात इव जातः श्रिया सह पुनरवतारितो मेदिनीम्, नववधूवदनावलोकनकुतूहलेनेव कृष्यमाणहृदयः पतन्निव मुखेन प्रत्यासन्नलग्नो ग्रहवर्मा।

राजा तु तमपद्वारमागतं चरणाभ्यामेव राजचक्रानुगम्यमानः समुतः

वाले हाथियों के समूह से मानो चन्द्रोदय के कारण विलीन हुए अन्धकार को फिर से घटित करता हुआ, नक्षत्रमाला नामक आभूषण से जिसका मुख अलङ्कृत था ऐसी हथिनी पर इस प्रकार चढ़ा हुआ मानो ताराओं से सुशोभित पूर्वदिशा में चन्द्रमा ऊपर की ओर चढ़ा हुआ हो, बिभिन्न प्रकार के पक्षियों की आवाज के समान तालयुक्त गान करते हुए आगे-आगे चलने वाले चारणों से जो उस बाल वसन्त के समान प्रतीत हो रहा था जिसमें उपवनों द्वारा कोलाहल किया जाता है, गन्ध-तैल के सुगन्धित दीपकों के प्रकाश से मानो कुंकुम के पलवास की धूल से सम्पूर्ण संसार को पिञ्जरित करता हुआ, खिली हुई मल्लिका की मुण्डमाला के बीच कुसुम-शेखर को सिर पर धारण करने के कारण मानो परिधि युक्त चन्द्रवाले शुक्ल पक्ष के प्रदोष की खिल्ली उड़ाता हुआ, अपने सौन्दर्य से जीते गये कामदेव के हाथ से छीन लिये गये धनुष के समान पुष्पदाम से बने वैकक्षक से सुशोभित होता हुआ, फूलों की सुगन्धि के प्रयोजन से मँडराते हुए भौंरों के मधुर गुञ्जारों से मनोहर उस पारिजात वृक्ष के समान जो लक्ष्मी के साथ-साथ उत्पन्न हुआ है तथा जिसे मानो फिर से पृथिवी पर उतार लाया गया हैं, नई वधू के मुखावलोकन के कुतूहल से मानो खिंचे हुए हृदयवाला, मुँह की ओर से मानो गिरता हुआ ग्रहवर्मा लग्न के समय आ उपस्थित हुआ।

राजा (प्रभाकरवर्धन) राजाओं और दोनों पुत्रों के साथ पैदल ही चलकर द्वार के समीप पहुँचे हुए उस (ग्रहवर्मा) का स्वागत किया। उतरे हुए तथा

प्रत्युज्जगाम। अवतीर्णं च तं कृतनमस्कारं मन्मथमिव माधवः प्रसारित- भ्यन्तरं निन्ये। स्वनिर्विशेषासनदानादिना चैनमुपचारेणोपचचार।

न चिराच्च गम्भीरनामा नृपतेः प्रणयी विद्वान्द्विजन्मा ग्रहवर्माणमु- वाच—'तात! त्वां प्राप्य चिरात्खलु राज्यश्रिया घटितौ तेजोमयौ सकल- जगद्गीयमानबुधकर्णानन्दकारिगुणगणौ सोमसूर्यवंशाविव पुष्यभूतिमुखर- वंशौ। प्रथममेव कौस्तुभमणिरिवि गुणैः स्थितोऽसि हृदये देवस्य। इदानीं तु शशीव शिरसा परमेश्वरेणासि वोढव्यो जातः' इति।

एवं वदत्येव तस्मिन्नृपमुपसृत्य मौहूर्तिकाः 'देव! समासीदति लग्न-

---

राज्यश्रिया नृपतिलक्ष्म्यापि। घटितौ योजितौ, मुक्तौ च। बुधकर्णौ पण्डित- श्रोत्रे, सोमसूर्यसूनू च। गुणैरुत्कर्षैः, तन्तुभिश्च। हृदये चेतसि, वक्षसि च। देवस्य राज्ञः, विष्णोश्च। परमेश्वरेण राजा, हरेण च।

नमस्कार करते ग्रहवर्मा को राजा ने अपनी भुजाएँ फैलाकर जोर से उसी प्रकार आलिङ्गन किया जिस प्रकार वसन्त ऋतु कामदेव का आलिङ्गन करता है। क्रम से जब राज्यवर्धन तथा हर्ष भी गले मिले तो राजा उसे हाथ पकड़कर अन्दर ले गये। अपने समान आसन आदि उपचार से उसका सत्कार किया।

थोड़ी ही देर में गम्भीर नामक राजा के प्रेमी विद्वान् ब्राह्मण ने ग्रहवर्मा से कहा—"हे तात! तुम्हें पाकर आज पुष्पभूति एवं मुखर—दोनों वंशचन्द्र एवं सूर्य वंशों के सदृश तेजस्वी एवं सम्पूर्ण संसार द्वारा गान किये जाते हुए तथा बुधजनों के आनन्दकारी गुणों वाले (पक्ष में—जिन सोम और सूर्यवंश में उत्पन्न बुध और कर्ण के गुण सम्पूर्ण संसार को आनन्दित करते हैं), राज्यश्री (वधू, पक्ष में—राज्य की श्री अर्थात् लक्ष्मी या शोभा) से घटित हो गये। तुम अपने गुणों के कारण महाराज के हृदय में पहले से ही कौस्तुभ मणि के सदृश अवस्थित हो। भगवान् शङ्कर द्वारा मस्तक पर धारण किये गये चन्द्रमा के सदृश सम्प्रति तुम भी उनके अर्थात् महाराज प्रभाकर वर्धन के शिरोधार्य हो चुके हो।"

गम्भीर नामक ब्राह्मण ऐसा कह ही रहे थे कि ज्योतिषियों ने समीप

वेला। व्रजतु जामाता 'कौतुकगृहम्' इत्यूचुः। अथ नरेन्द्रेण 'उत्तिष्ठ, गच्छ' इति गदितो ग्रहवर्मा प्रविश्यान्तःपुरं जामातृदर्शनकुतूहलिनीनां स्त्रीणां पतितानि लोचनसहस्राणि विकचनीलकुवलयवनानीव लङ्घयन्नाससाद कौतुकगृहद्वारम्। निवारितपरिजनश्च प्रविवेश।

अथ तत्र कतिपयाप्तप्रियसखीस्वजनप्रमदाप्रायपरिवाराम्, अरुणांशुकावगुण्ठितमुखीं प्रभातसंध्यामिव स्वप्रभया निष्प्रभान्प्रदीपकान्कुर्वाणाम्, अतिसौकुमार्यशङ्कितेनेव यौवनेन नातिनिर्भरमुपगूढाम्, साध्वसनिरुध्यमानहृदयदेशदुःखमुक्तैर्निभृतायतैः श्वसितैरपयान्तं कुमारभावमिवानुशोचन्तीम्, अत्युत्कम्पिनीं पतनभियेव त्रपया निष्पन्दं धार्यमाणाम्, हस्ततामरसप्रतिपक्षमासन्नग्रहणं शशिनमिवं रोहिणीं भयवेपमानमानसामव-

---

कौतुकगृहं विवाहमङ्गलवेश्म।

अथेत्यादौ। तत्र वधूमपश्यदिति संबन्धः। अरुणांशुकं लोहितं वस्त्रम्। अरुणस्थाल्पांशवोऽशुकाः। निभृतैः। प्रतिपक्षस्तुल्यः, शत्रुश्च। ग्रहणं हस्तस्य स्वीकारः शशिनश्च ग्रहणं समासन्नं भवति। उद्गमनं सौरभमित्यन्ये। प्रभादीनां

आकर—"देव! लग्न का समय निकट आ रहा है। जामाता कौतुक ग्रह (कोहबर) में चलें।" ऐसा कहा। इसके बाद राजा के "उठो, जाओ" ऐसा कहने पर ग्रहवर्मा ने अन्तःपुर में प्रवेश किया तथा वर को देखने की उत्सुकता से भरी हुई स्त्रियों की खिले हुए कुवलयवनों के सदृश गिरती हुई हजारों आँखों को लाँघते हुए कौतुक गृह के द्वार पर वह जा पहुचा। परिजनों को वहीं रोक दिया गया तथा उसने प्रवेश किया।

उसके बाद वहाँ कितनी ही प्रिय सखियों एवं स्वजन स्त्रियों से घिरी हुई, लाल वस्त्र का घूंघट मुख पर डाले जो प्रभातकालीन सन्ध्या की भाँति अपनी प्रभा से दीपों को प्रभारहित कर रही थी, जिसे मानो अत्यन्त सुकुमार समझकर यौवन ने कसकर आलिङ्गन नहीं किया था, भय के कारण रुँधे हुए हृत्प्रदेश से जो कठिनाई के साथ लम्बी साँस ले पाती थी, मानो अब छोड़कर जाते हुए कुमार भाव के सम्बन्ध में चिन्ता कर रही हो, जो अत्यन्त काँप रही थी फिर भी गिर जाने के भय से मानो लज्जा ने जिसे पकड़ रखा था, जिस प्रकार ग्रहण-काल निकट होने पर कातर होकर रोहिणी चन्द्रमा को देखती है उसी

लोकयन्तीम्, चन्दनधवलतनुलताम्, ज्योत्स्नादानसंचितलावण्यात्कुमुदिनीगर्भादिव प्रसूताम्, कुसुमामोदनिर्हारिणीं वसन्तहृदयादिव निर्गताम्, निःश्वासपरिमलाकृष्टमधुरकुलां मलयमारुतादिवोत्पन्नाम्, कृतकंदर्पानुसरणां रतिमिव पुनर्जाताम्, प्रभालावण्यमदसौरभमाधुर्यैः कौस्तुभशशिमदिरापारिजातामृतप्रभवैः सर्वरत्नगुणैरपरामिव सुरासुररुषा रत्नाकरेण कल्पितां श्रियम्, स्निग्धेन बालिकालोकेन सितसिन्दुवारकुसुममञ्जरीभिरिव मुक्तादीधितिभिः कल्पितकर्णावतंसाम्, कर्णाभरणमरकतप्रभाहरितशाद्वलेन कपोलस्थलीतलेन विनोदयन्तीमिव हारिणीं लोचनच्छायाम्, अधोमुखं वरकौतुकालोकनाकुलं मुहुर्मुहुः कृतमुखोन्नमनप्रयत्नं सखीजनं हृदयं च निर्भर्त्सयन्ती वधूमपश्यत् ।

कौस्तुभादिभिर्यथासंख्यम् । बालिका ऊर्मिका, कौमारी च । विनोदयन्तीं प्रथयन्तीम् । हारिणीं रम्याम्, मार्गी च ।

मृगलोचनच्छायां नीलशाद्वलेन स्थलीतले क्रीडति । कौतुकालोकनाकुलं द्वयमपि साधारणम् ।

प्रकार जो भय से काँपते हुए मनवाली थी तथा कमल के प्रति पक्षी अपने हाथ को देख रही थी, चन्दन का लेप करने से जो स्वच्छ शरीर वाली थी, मानो चन्द्रमा द्वारा दी गई ज्योत्स्ना के लावण्य से भरे हुए कुमुदिनी-गर्भ से पैदा हुई हो, फूलों की गन्ध से जो इस प्रकार मनोहर थी मानो वसन्त के हृदय से निकली हो, जिसके निःश्वास के परिमल में भौंरे खिचते जा रहे थे मानो वह मलयवायु से उत्पन्न हुए हो, मानो रति ने पुनः जन्म लिया हो इस प्रकार जो कामदेव का अनुसरण कर रही थी, जो अपनी प्रभा, लावण्य, मद, सौरभ एवं माधुर्य के कारण कौस्तुभमणि, चन्द्रमा, मदिरा, पारिजात एवं अमृत से उत्पन्न सम्पूर्ण रत्नों के गुणों द्वारा देवताओं एवं असुरों के प्रति क्रोध होने के कारण मानो समुद्र द्वारा मानो दूसरी लक्ष्मी के सदृश उत्पन्न की गई थी, कानों में मोती की बालियों की किरणें उजले सिन्धुवार फूल की मञ्जरी के समान जिसके कर्णाभूषण बन रही थीं, कर्णाभरण में जड़े हुए पन्ने की हरी प्रभा के गालों पर पड़ने से जो आँखों की मनोहर कान्ति को दूर करती हुई सी लग रही थी, दिखाने के लिए प्रयास मे लगी सखियाँ जिसके झुके मुख को बार-बार उठाने का प्रयत्न कर रही थीं तथा जो उन्हें (अर्थात् सखियों को) एवं अपने हृदय को कोस रही थी ऐसी वधू अर्थात् राज्यश्री को (ग्रहवर्मा ने) देखा ।

प्रविशन्तवेव तं हृदयचौरं बध्वा समर्पितं जग्राह: कंदर्पः । परिहास-स्मेरसखीभिश्च नारीभिः कौतुकगृहे यद्यत्कार्यते जामाता तत्तत्सर्वमति-पेशलं चकार । कृतपरिणयानुरूपवेशपरिग्रहां गृहीत्वा करे वधूं निर्जगाम जगाम च नवसुधाधवलां निमन्त्रितागतैस्तुषारशैलोपत्यकामिव त्र्यम्ब-काम्बिकाविवाहाहूतैर्भूभृद्भिः परिवृताम्, सेकसुकुमारयवाङ्कुरदन्तुरैः पञ्चा-स्यैः कलशैः कोमलवर्णिकाविचित्रैरमित्रमुखैश्च मङ्गल्यफलहस्ताभिरञ्ज-लिकारिकाभिरुद्भासितपर्यन्ताम्, उपाध्यायोपधीयमानेन्धनधूमायमाना-ग्निसंधुक्षणाक्षणिकोपद्रष्टृद्विजाम्, उपकुशानुनिहितानुपलहरितकुशाम्, संनिहितदृषदजिनाज्यस्रुक्समित्पूलीनिवहाम्, नूतनशूर्पार्पितश्यामलश-मीपलाशमिश्रलाजहासिनीं वेदीम् । आरुरोह च तां दिवमिव सज्योत्स्नः

वध्वा राज्यश्रिया । अथ वेदीं जगामेति संबन्धः । उपत्यका अद्रेः समासन्ना भूः । भूभृन्नृपः, गिरिश्च । वर्णिका खटिका । अमित्रमुखै रूप्यमयैः, शत्रुमुखैश्च । अञ्ज-लिकारिकाभिर्मृन्मयप्रतिमाभिः, सालभञ्जिकाभिर्वा । अक्षणिको व्यग्रः । उपद्रष्टा

हृदय को चुराने वाले तथा वधू द्वारा समर्पित उसके प्रवेश करते ही कामदेव ने उसे पकड़ लिया । हँसी-मजाक करने वाली नवेलियों ने कोहवर में जो-जो करने के लिए कहा, उसने बिना जिद के सब किया । विवाह के अनुकूल वेश-भूषा में सुसज्जित वधू का हाथ पकड़ कर वह निकला और अभी-अभी चूने से पोते जाने के कारण उजली, निमन्त्रण पाकर आये हुए राजाओं से इस प्रकार घिरी हुई मानों शङ्कर एवं पार्वती के विवाह में बुलाये गये पर्वतों से हिमालय की उपत्यका घिर गई हो, जिसके चारों ओर पास में पाँच मुखों वाले ऐसे कल से सुशोभित थे जिन पर सिञ्चन करने के कारण नये यवाङ्कुर उग आये थे, जिन पर हलकी बनी की खरिया पुती हुई थी तथा जो चाँदी के बने हुए थे, इसके साथ ही माङ्गलिक फलों को हाथों में लिए मिट्टी की मूरतें खड़ी थीं, जहाँ उपाध्याय द्वारा इन्धन देने के कारण धुआँ उगलती हुई अग्नि को प्रज्वलित करने में साक्षी रूप में बैठे हुए ब्राह्मण लोग व्यग्र हो रहे थे, जहाँ अग्नि के समीप ही हरे-हरे लम्बे कुश रखे हुए थे, जहाँ अश्मारोहण के लिए, कृष्ण मृगचर्म, घृत, स्रुवा, समिधाएँ एवं पुलियाँ रखी थीं तथा नये सूपों में रखे शमी के हरे पत्तों से मिले लावे से जो मानो हँस रही थी, ऐसी वेदी के पास पहुँचा । अग्नि में

शशी। समुत्ससर्प च वेल्लितारुणशिखापल्लवस्य शिखिनः कुसुमायुध इव रतिद्वितीयो रक्ताशोकस्य समीपम्। हुते च हुतभुजि प्रदक्षिणावर्तप्रवृत्ताभिर्वधूवदनविलोकनकुतूहलिनीभिरिव ज्वालाभिरेव सह प्रदक्षिणं बभ्राम। पात्यमाने च लाजाञ्जलौ नखमयूखधवलिततनुरदृष्टपूर्ववधूवररूपविस्मयस्मेर इवादृश्यत विभावसुः।

अत्रान्तरे स्वच्छकपोलोदरसंक्रान्तमनलप्रतिबिम्बमिव निर्वापयन्ती स्थूलमुक्ताफलविकलबाष्पबिन्दुसंदोहदर्शितदुर्दिना निर्वेदनविकार रुरोद वधूः। उदश्रुविलोचनानां च बान्धववधूनामुदपादि महानाक्रन्दः। परिसमापितवैवाहिकक्रियाकलापस्तु जामाता वध्वा समं प्रणनाम श्वशुरौ। प्रविवेश च द्वारपक्षलिखितरतिप्रतिदैवतं, प्रणयिभिरिव प्रथमप्रविष्टैरलिकुलैः कृतकोलाहलम्, अलिकुलपक्षपवनप्रेङ्खोलितैः कर्णोत्पलप्रहारभय-

साक्षी उपदेश्य इति केचित्। मुग्धोमपात्रम्। वेल्लिता वलिताः। शिखा ज्वाला, शिखाग्राणि च पल्लवाः प्रान्ताः, किसलयानि च। शिखिनो वृक्षस्यापि। उक्तं च—'अग्नि- शिखीति च प्रोक्तः शिखी वृक्षो निगद्यते। बर्हिणश्च शिखी प्रोक्तः क्वचित्स्यात्कुक्कुटः शिखी॥' इति च।

हवन कर लेने पर माना वधू का मुख देखने के कुतूहल से युक्त हो इस प्रकार की दक्षिण की ओर मुड़ती हुई ज्वालाओं के साथ ही उसने भी अग्नि की प्रदक्षिणा की अर्थात् भाँवरें ली और लाजाञ्जलियाँ छोड़ने पर वर एवं वधू की नखकिरणों से और भी प्रकाशमान अग्निदेव मानो पहले कभी नहीं देखे हुए ऐसे वर-वधू के रूप को देखकर आश्चर्य के साथ प्रसन्न दिखाई पड़े।

इसी समय अपने स्वच्छ कपोलों पर पड़ती हुई अग्नि की छाया को मानो बुझाती हुई एवं मोटे-मोटे मोतियों जैसे निर्मल आँसुओं की बूंदों से दुर्दिन का दृश्य उपस्थित करती हुई वधू राज्यश्री मुख के विकार के बिना ही रोने लगी। बान्धव-वधुओं की आँखें भी आँसुओं से छलछला उठीं और तब महान् शोरगुल होने लगा। वैवाहिक कार्यों को समाप्त कर जामाता ने वधू के साथ सास-ससुर को प्रणाम किया तथा जिसके दरवाजे के दोनों पक्खों पर एक ओर रति तथा दूसरी ओर प्रीति (कामदेव की दोनों पत्नियाँ) के चित्र बनाये गये थे, प्रेमी के समान पहले ही प्रविष्ट होकर भौंरों ने जहाँ कोलाहल करना प्रारम्भ

प्रकम्पितैरिव मङ्गलप्रदीपैः प्रकाशितम्, एकदेशलिखितस्तबकितरक्ताशोकतरुतलभाजाधिज्यचापेन तिर्यक्कूणितनेत्रत्रिभागेण शरमृजूकुर्वता कामदेवेनाधिष्ठितम्, एकपार्श्वन्यस्तेन काञ्चनाचामरुकेणेतरपार्श्ववर्तिन्या च दान्तशफरुकधारिण्या कनकपुत्रिकया साक्षाल्लक्ष्म्येवोद्दण्डपुण्डरीकहस्तया सनाथेन सोपधानेन स्वास्तीर्णेन शयनेन शोभमानम्, शयनशिरोभागस्थितेन च कृतकुमुदशोभेन कुसुमायुधसाहायकायागतेन शशिनेव निद्राकलशेन राजतेन विराजमानं वासगृहम् ।

तत्र च ह्रीताया नववधूकायाः पराङ्मुखप्रसुप्ताया मणिभित्तिदर्पणेषु मुखप्रतिबिम्बानि प्रथमालापाकर्णनकौतुकागतगृहदेवताननानीव मणिग-

निर्वापयन्ती गमयन्ती । प्रविवेशेत्यादौ । जमाता वासगृहमिति संबन्धः । पक्षः पार्श्वम् । कूणितः सङ्कोचितः ।

कर दिया था, भौरों के पंखों की हवा से हिलते हुए मानो कर्णोत्पल के प्रहार के भय से काँपते हुए मङ्गलदीपों से जो आलोकित था, जहाँ एक ओर फूलों से लदे रक्ताशोक के नीचे धनुष पर बाण रखकर तिरछी ऐंची हुई मिचमिचाती आँख से निशाना साधते हुए कामदेव का चित्र बना था, जहाँ एक ओर सफेद चादर से ढँका हुआ पलङ्ग बिछा था जिसके सिरहाने तकिया रखा हुआ था, उसके एक पार्श्व में सोने की एक झरी रखी थी तथा दूसरी ओर हाथी दाँत का डिब्बा लिए हुए सोने की पुतली खड़ी थी, नीचे पलङ्ग के सिरहाने कुमुदों से शोभित मानो कामदेव की सहायता के लिए पहुँचे हुए चन्द्रमा के सदृश चाँदी का निद्रा कलश रखा हुआ था, ऐसे वासगृह में उसने प्रवेश किया ।

वहाँ लज्जायुक्त होकर पराङ्मुख सोई हुई नववधू राज्यश्री के मुखड़े के प्रतिबिम्बों को जो मानो पहली मुलाकात की बात-चीत सुनने की उत्सुकता से

वाक्षकेषु वीक्षमाणः क्षणदां निन्ये । स्थित्वा च श्वशुरकुले शीलेनामृतमिव श्वश्रूहृदये वर्षन्नभिनवाभिनवोपचारैरपुनरुक्तान्यानन्दमयानि दश दिनानि, दत्त्वा च राजदौवारिकमिव राजकुले रणरणकं यौतकनिवेदितानीव शम्बलान्यादाय हृदयानि सर्वलोकस्य कथंकथमपि विसर्जितो नृपेण वध्वा सह स्वदेशमगमदिति ।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते चक्रवर्तिजन्मवर्णनं नाम चतुर्थ उच्छ्वासः ।

क्षणदां रात्रिम् । दश दिनानि स्थित्वेति संगतिः । यौतकं सुदायः ।

इति श्रीशंकरविरचिते हर्षचरितसंकेते चतुर्थ उच्छ्वासः ।



मणिगवाक्षों में खड़ी होकर ताक-झाँक करती हुई गृहदेवताओं के मुखों के समान प्रतीत हो रहे थे, देखते हुए उसने रात बिताई । श्वशुर-कुल में अपने शील से सास के हृदय में मानो अमृत की वर्षा करता हुआ ग्रहवर्मा नित्य नये-नये उपचारों से दस दिनों तक आनन्दपूर्वक रहा तथा द्वारपाल के समान राजकुल में अपना विच्छेदजनित उद्वेग देकर दहेज में मिले हुए सामान के साथ सब लोगों के हृदय को भी लेते हुए बहुत कठिनाई से राजा द्वारा विसर्जित हुआ, वधू राज्यश्री के साथ अपने देश को चला गया ।

महाकवि बाणभट्ट विरचित हर्षचरित में "चक्रवर्तिजन्मवर्णन" नामक चतुर्थ उच्छ्वास समाप्त हुआ ।



पञ्चम उच्छ्वासः

नियतिर्विधाय पुंसां प्रथमं सुखमुपरि दारुणं दुःखम् ।
कृत्वा लोकं तरला तडिदिव वज्रं निपातयति ॥ १ ॥
पातयति महापुरुषान्समेव बहूननादरेणैव ।
परिवर्तमान एकः कालः शैलानिवानन्तः ॥ २ ॥

अथ कदाचिद्राजा राज्यवर्धनं कवचहरमाहूय हूणान्हन्तुं हरिणानिव हरिर्हरिणेशकिशोरमपारमितबलानुयातं चिरंतनैरमात्यैरनुरक्तैश्च महासामन्तैः कृत्वा साभिसरमुत्तरापथं प्राहिणोत् ।

प्रयान्तं च तं देवो हर्षः कतिचित्प्रयाणकानि तुरङ्गमैरनुवव्राज । प्रविष्टे च कैलासप्रभाभासिनीं ककुभं भ्रातार वर्तमानो नवे वयसि विक्रम-

---

नियतीत्यादि । नियतिर्दैवम् । लोकं जनम् । तडिद्विद्युत् । तडिदपि तरलाऽऽलोकं कृत्वा वज्रम् निपातयति ॥ १ ॥

अनन्तः पर्यन्तरहितः, शेषभट्टारकश्च ॥ २ ॥

आर्यायुगलेनानेन भाविनी राजविपत्तिः सूचिता ।

कवचहर इति वयसि नित्यम् । बलं सैन्यम्, सामर्थ्यं च । साभिसरं ससहायम् ।

नियति (अर्थात् भाग्य) पहले-पहल लोगों को सुख पहुँचा कर बाद में उसी प्रकार भीषण दुःख पहुँचाने लगता है जिस प्रकार चञ्चल बिजली क्षण भर अपनी चमक दिखाकर वज्र गिराने लगती है ॥ १ ॥

जिस प्रकार प्रलयकाल में पृथिवी को सहस्र फणों पर धारण करने वाला शेषनाग सुस्ताने के लिए जब बोझ को बदलता है तो बड़े-बड़े पहाड़ उलट-पुलट जाते हैं उसी प्रकार करवट बदलता हुआ यह कालचक्र बहुत से महापुरुषों को आनन्दपूर्वक एक साथ गिरा डालता है ॥ २ ॥

किसी समय राजा (प्रभाकरवर्धन) ने कवच पहनने की आयु वाले अपने पुत्र राज्यवर्धन को बुलाकर हूणों का विनाश करने के लिए पुराने मंत्रियों एवं अनुरक्त महासामन्तों को सहायक बनाकर तथा अपरिमित सेना को साथ लगाकर उत्तरापथ की ओर उसी प्रकार भेजा जिस प्रकार हरिणों को मारने के लिए सिंह अपने किशोर-वय के पुत्र (अर्थात् बालसिंह) को भेजता है ।

प्रस्थान करते हुए उस (राज्यवर्धन) के पीछे-पीछे देव हर्ष भी कुछ पड़ावों तक घोड़ों से गये । कैलास पर्वत की प्रभा से चमकने वाली उत्तर दिशा

मरसानुरोधिनि केसरिशरभशार्दूलवराहबहुलेषु तुषारशैलोपकण्ठेषूत्कण्ठमानवनदेवताकटाक्षांशुशारितशरीरकान्तिः क्रीडन्मृगयां मृगलोचनः कतिपयान्यहानि बहिरेव व्यलम्बत। चकार चाकर्णान्ताकृष्टकार्मुकनिर्गतभासुरभल्लवर्षी स्वल्पीयोभिरेव दिवसैर्निःश्वापदान्यरण्यानि।

एकदा तु वासतेय्यास्तुरीये यामे प्रत्युषस्येव स्वप्ने चटुलज्वालापुञ्जपिञ्जरीकृतसकलककुभा दुर्निवारेण दवहुतभुजा दह्यमानं केसरिणमद्राक्षीत्। तस्मिन्नेव दावदहने समुत्सृज्य शावकानुप्लुत्य चात्मानं पातयन्तीं सिंहीमपश्यत्। आसीच्चास्य चेतसि—'लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः, यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति' इति। प्रबुद्धस्य चास्य मुहुर्मुहुर्दक्षिणेतरमक्षि पस्पन्दे। गात्रेषु

केसरिणः सिंहाः। अष्टपादाः प्राणिविशेषाः शरभाः। शार्दूला व्याघ्राः। वराहाः सूकराः। क्रीडन्मृगयामिति। 'कालभावाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्' इति भावार्थरूपाया मृगयायाः कर्मभावः।

वासतेयी रात्रिः। तुरीये चतुर्थेऽहनि। संवाह्यमानं भ्राम्यमाणम्। लुलितं व्याप्तम्।

में भाई (राज्यवर्धन) के प्रविष्ट हो जाने पर, पराक्रम के रस का अनुरोध करने वाली नई उम्र को प्राप्त हुए, उत्कण्ठित वनदेवताओं के कटाक्षों से रंगीन शरीर कान्ति वाले तथा हरिण के समान नेत्रों वाले हर्ष, सिंह, शरभ, व्याघ्र, वराह आदि पशु जहाँ बहुत संख्या में थे ऐसी हिमालय की तराइयों में शिकार खेलते हुए कुछ दिनों तक बाहर में ही रुक गये। कान तक डोरी खींचकर धनुष से छोड़े गये तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने वाले हर्ष ने थोड़े ही दिनों में जंगलों को हिंस्र पशुओं से विहीन कर दिया।

एक समय रात्रि के चतुर्थ प्रहर में सबेरे ही हर्ष ने स्वप्न में अपनी धधकती हुई ज्वालाओं से सम्पूर्ण दिशाओं को पिञ्जरित करते हुए दुर्निवार (बेकाबू) दावानल द्वारा जलते हुए एक सिंह को देखा। उसी वनाग्नि में अपने बच्चों को झोंककर तथा छलांग लगाकर स्वयं को भी उसमें डालती हुई सिंही को उसने देखा। हर्ष के मन में हुआ—"संसार में स्नेह के बन्धन-पाश वस्तुतः लोहे से भी अधिक कड़े होते हैं जिनसे खिचकर तिर्यक् प्राणी भी ऐसा आचरण करते हैं।"

चाकस्मादेव वेपथुर्विपप्रथे। निर्निमित्तमेवान्तर्बन्धनस्थानाच्चचालेव हृदयम्। अकारणादेव चाजायत गरीयसी दुःखासिका। किमिदमिति च समुत्पन्नविविधविकल्पविमथितमतिरपगतधृतिश्चिन्तावनमितवदनः स्तिमिततारकेण चक्षुषा समुद्भिद्यमानस्थलकमलिनीवनामिव चकार चकोरेक्षणः क्षणं क्षोणीम्। अह्नि च तस्मिञ्शून्येनैव च चेतसा चिक्रीड मृगयाम्। आरोहति च हरितहये मध्यमह्नो भवनमागत्योभयतो मन्द-मन्दं संवाह्यमानतनुतालवृन्तः क्षितितलवितताम‍तिशिशिरमलयजरसलव-लुलितवपुषमिन्दुधवलोपधानधारिणीं वेत्रपट्टिकामधिशयानः साशङ्क एव तस्थौ।

अथ दूरादेव लेखगर्भया नीलीरागमेचकरुचा चीरचीरिकया रचित-मुण्डमालकम्, श्रमातपाभ्यामारोप्यमाणकायकालिमानम्, अन्तर्गतेन

अथेत्यादौ। दूरादेव कुरङ्गकनामानमध्वगमापतन्तमद्राक्षीदिति संबन्धः। नीलीनामौषधिः। बर्हिकण्ठसमानो मेचकः। आरोप्यमाणः क्रियमाणः।

जग जाने के बाद उसकी बायीं आँख बार-बार फड़कने लगी। अङ्गों में अचानक कम्पन होने लगा। अकारण ही हृदय भीतरी बन्धन के स्थान से बाहर निकलता सा प्रतीत होने लगा। बिना कारण के ही दुःख का वेग बहुत बढ़ गया। यह क्या है, इस प्रकार विभिन्न प्रकार के विकल्पों से मथित बुद्धि वाले, धैर्य से रहित होकर, चिन्ता के कारण झुके हुए मुख मण्डल वाले हर्ष, स्थिर पुतलियों वाले नेत्रों से पृथिवी की ओर चकोर के समान क्षण-भर देखने लगे मानो जमीन से निकलती हुई स्थलकमलिनियों को निहार रहे हों। उस दिन शून्य (उदास) हृदय से ही उन्होंने शिकार खेला। जब दिन चढ़ गया तब लौट कर वे निवास स्थान पर आये तथा जमीन पर बिछी हुई बैत की शीतलपाटी पर, जो अत्यन्त शीतल चन्दन-रस के छिड़काव के कारण भीगी हुई थी और जिसके सिरहाने सफेद तकिया रखा हुआ था, चिन्तित होकर बैठ गये, तथा उनके दोनों ओर ताड़ के पंखे धीरे-धीरे (सेवकों द्वारा) झले जाने लगे।

इसके बाद दूर से ही, जिसके मस्तक पर भील में रंगी पट्टी माला के समान बंधी थी जिसमें कि लेख (पत्र) रखा हुआ था, थकावट एवं धूप के कारण जिसका शरीर स्याह पड़ गया था, अन्दर की अर्थात् हृदयस्थ शोकाग्नि

शोकशिखिनाऽङ्गारतामिव नीयमानम्, अनितवरागमनद्रुततरपदोद्धूयमानधूलिराजिव्याजेन राजवार्ताश्रवणकुतूहलिन्या मेदिन्यैवानुगम्यमानम्, अभिमुखपवनप्रेङ्खत्प्रविततोत्तरीयपटप्रान्तवीज्यमानोभयपार्श्वमतित्वरया कृतपक्षमिवाशु परापतन्तम्, प्रेर्यमाणमिव पृष्ठतः स्वाम्यादेशेनाकृष्यमाणमिव पुरस्तादायतैः श्रमश्वासमोक्षैः स्विद्यल्ललाटतटघटमानप्रतिबिम्बकेन कार्यकौतुकादपह्रियमाणलेखमिव भास्वता संभ्रमभ्रष्टैरिवेन्द्रियैः शून्यीकृतशरीरम्, लेखार्पितप्रयोजनगौरवादिव समेऽपि वर्त्मनि शून्यहृदयतया स्खलन्तम्, कालमेघशकलमिव पतिष्यतो दुर्वार्तावज्रस्य, धूमपल्लवमिव ज्वलिष्यतः शोकज्वलनस्य, बीजमिव फलिष्यतो दुष्कृतशालेरनिमित्तभूतदीर्घाध्वगं कुरङ्गकनामानमायान्तमद्राक्षीत् ।

इन्द्रीयैरिति । शून्यत्वं तेषां जडत्वाप्तेः शकलं खण्डम् ।

के कारण जलकर जो मानो अङ्गारा बन रहा था, शीघ्रता से चलने के कारण जिसके पैर से लगकर इस प्रकार धूल उड़ रही थी मानो राजा का समाचार सुनने के कुतूहल से पृथिवी ही पीछे-पीछे चली आ रही हो, सामने की ओर से बहती हुई हवा से जिसके उत्तरीय के छोर दोनों पार्श्वों में इस प्रकार लहरा रहे थे मानों पंख लगाकर वह शीघ्र दौड़ता हुआ चला आ रहा हो, जिसे मानो मालिक का आदेश पीछे से प्रेरित कर रहा था, थकावट के कारण लम्बी साँसें छोड़ने से जो मानो आगे की ओर खिचता जा रहा था, पसीने से तर जिसके ललाट प्रदेश पर सूर्य का प्रतिबिम्ब इस प्रकार पड़ रहा था मानो "किस काम से जा रहा है" यह जानने की उत्सुकता से सूर्य (उसके मस्तक की पट्टी में स्थित) लेख को चुरा रहा हो, घबड़ाहट के कारण इन्द्रियों ने जिसके शरीर को मानो सूना कर दिया था (अर्थात् इन्द्रियाँ मानो उसके शरीर से अलग हो चुकी थीं), लेख की बात की गम्भीरता के कारण ही मानो समतल मार्ग पर हृदय शून्य होकर जो गिर रहा था, जो थोड़ी ही देर में गिरने वाले दुस्समाचाररूपी वज्र के लिए मानो कालमेघ के टुकड़े के समान था, जो ज्वलित होने वाली शोकाग्नि का मानो धुआँ था, तथा फलने वाले दुःख रूपी धान के लिए जो बीज सदृश था ऐसे अनिमित्त की सूचना देने वाले तथा लम्बे मार्ग को तय करने वाले कुरंगक नामक लेखहारक (पत्रवाहक) को आते हुए उन्होंने देखा ।

दृष्ट्वा च पूर्वनिमित्तपरम्पराविभावितभीतिरभिद्यत हृदयेन । कुरङ्गकस्तु कृतप्रणामः समुपसृत्य प्रथममाननलग्नं विषादमुपानिन्ये, पश्चाल्लेखम् । तं च देवो हर्षः स्वयमेवादायावाचयत् । लेखार्थेनैव च समं गृहीत्वा हृदयेन संतापमवग्रहरूपोऽभ्यधात्––'कुरङ्गक, किं मान्द्यं तातस्य ?' इति । च चक्षुषा बाष्पजलबिन्दुभिर्मुखेन च खञ्जाक्षरैः क्षरद्भिर्युगपदाचचक्षे––'देव ! दाहज्वरो महान्' इति । तच्चाकर्ण्य सहसा सहस्रधेवास्य हृदयं पफाल । कृताचमनश्च जनयितुरायुष्कामोऽपरिमितमणिकनकरजतजातमात्मपरिबर्हमशेषं ब्राह्मणसादकरोत् । अभुक्त एवोच्चाल । 'दापय वाजिनः पर्याणम्' इति च पुरःस्थितं शिरःकृपाणं बिभ्राणं बभाण युवानम् । वेपमानहृदयश्च ससंभ्रमप्रधावितपरिवर्धकोपनीतमारुह्य तुरङ्गमेकाक्येव प्रावर्तत ।

पफाल पुस्फोट । जातेति शब्दः प्रकारे । परिबर्हो भोजनादिपरिच्छदः । ब्राह्मणसाद् ब्राह्मणाधीनम् । न भुक्तमस्येत्यभुक्तः । शिरोदेशे स्थापितः कृपाणः । परिवर्धकोऽश्वपालः । प्रावर्ततेत्यर्थाद्गन्तुम् ।

स्वप्न की बात से उत्पन्न भय के कारण उसे देखकर हर्ष का हृदय जैसे फट गया । कुरङ्गक ने प्रणाम करके उसके पास जाकर पहले अपने मुख में लग्न विषाद को अर्पित किया, बाद में पत्रलेख (पत्र) को । हर्ष ने स्वयं उस लेख को लेकर बाँचा । लेख की बात के साथ ही संताप को ग्रहण कर उदास होकर कहा––"कुरङ्ग का पिताजी को कौन सी बीमारी है ?" वह (कुरङ्गक) एक ही साथ आँखों से आँसुओं की बूंदे तथा मुख से टूटे शब्दों को टपकाता हुआ बोला––"देव ! महान् दाहज्वर है ।" यह सुनकर सहसा उनका हृदय मानो हजारों टुकड़ों में टूट गया । उन्होंने आचमन करके पिताजी की आयु की कामना से अपरिमित मणि, सोना, एवं चाँदी तथा अपने खाने-पहनने की सारी चीजें ब्राह्मणों को अर्पित कर दीं । स्वयं बिना भोजन किये ही उठ खड़े हुए ।" घोड़ों पर जीन कसवाओ" यह अपने सामने खड़े सिर से कृपाण लिये हुए युवक से कहा । घबड़ाहट के साथ दौड़े अश्वपाल द्वारा लाये गये घोड़े पर काँपते हृदय से चढ़कर अकेले ही वे चल पड़े ।

अकाण्डप्रयाणसंज्ञाशङ्खक्षुभितं तु संभ्रमात्सज्जीभूतमुद्भूतमुखरखुर-रवभरितसकलभुवनविवरमागत्यागत्य सर्वाभ्यो दिग्भ्यो धावमानमश्वीय-ममढौकत । प्रस्थितस्य चास्य प्रदक्षिणेतरं प्रयान्तो विनाशमुपस्थितं राज-सिंहस्य हरिणाः प्रकटयांबभूवुः । अशिशिररश्मिमण्डलाभिमुखश्च हृदयम-वदारयन्निव दावशुष्के दारुणि दारुणं रराण वायसः । कज्जलमय इव बहु-दिवसमुपचितबहलमलपटलमलिनिततनुराभमुखमाजगाम शिखिपिच्छ-लाञ्छनो नग्नाटकः । दुर्निमित्तैरनभिनन्द्यमानगमनश्च नितरामशङ्कत । हृदयेन पितृस्नेहाहितम्रदिम्ना च तत्तदुपेक्षमाणस्तुरङ्गमस्कन्धबद्धलक्ष्यं चक्षुरविचलं दधानो दुःखमवसितहसितसंकथस्तूष्णीभूतेन भूपाललोके-नानुगम्यमानो बहुयोजनसंपिण्डितमध्वानमेकेनैवाह्ना समलङ्घयत् ।

अश्वीयमश्वसमूहः । सिंहशब्दः प्रशंसायाम् । हरिणा इति । मृगा हि स्वैरं चरन्तः सिंहस्य विनाशमभावं सूचयन्ति नग्नाटको नग्नक्षपणकः । तुरङ्गमेति चक्षुर्विशेषणम् । दुःखेन समवसिता निवृत्ता संकथा कथनं यस्य सः । संपिण्डितं संकलितम् ।

अचानक कूच करने की सूचना देनेवाले शङ्ख की आवाज सुनते ही घबड़ाकर घोड़े कस दिये गये और उनकी टापों की आवाज से संसार को भरते हुए सभी दिशाओं से दौड़ते हुए आ-आकर भर गए । हर्ष के प्रस्थान करने पर उनके बायीं ओर से चलते हुए हरिण ने राजसिंह अर्थात् महाराज प्रभाकरवर्धन के उपस्थित विनाश को प्रकट करने लगे । गर्म सूर्यमण्डल की ओर मुख करके हृदय को मानो फाड़ता हुआ कौआ दावानल के कारण सूखे हुए पेड़ पर बैठकर काँव-काँव करने लगा । मानो काजल के बने हों इस प्रकार बहुत दिनों से इकट्ठे हुए बहुत मैल के कारण काला-कलूटा नंगा संन्यासी हाथ में मोरछल लिए सामने आ गया । (इस प्रकार) अपशकुनों से यात्रा को विघ्नयुक्त जानकर वे बहुत शङ्कित हुए । पिता के प्रति स्नेह होने के कारण कोमल हृदय से, उन-उन (अपशकुनों) की उपेक्षा करते हुए केवल घोड़े के कन्धे पर दृष्टि गड़ाकर दुःख के कारण सारी हँसी और गप शप को भूलकर चुप्पी साधे हुए राजाओं से अनुगत हो कई योजन के मार्ग को एक हि दिन में उन्होंने तय कर लिया ।

उपलब्धनरेन्द्रमान्द्यवार्ताविषण्ण इव नष्टतेजस्यधोमुखीभवति भगवति भानुमति भण्डिप्रमुखेन प्रणयिना राजपुत्रलोकेन बहुशो विज्ञाप्यमानोऽपि नाहारमकरोत् । पुरःप्रवृत्तप्रतीहारगृह्यमाणग्रामीणपरम्पराप्रकटिप्रगुणवर्त्मा च वहन्नेव निन्ये निशाम् ।

अन्यस्मिन्नहनि मध्यंदिने विगतजयशब्दम्, अस्तमिततूर्यनादम्, उपसंहृतगीतम्, उत्सारितोत्सवम्, अप्रगीतचारणम्, अप्रसारितापणपण्यम्, स्थानस्थानेषु पवनबलकुटिलाभिः कोटिहोमधूमलेखाभिरुल्लसन्तीभिर्यममहिषविषाणकोटिभिरिवोल्लिख्यमानम्, कृतान्तपाशवागुराभिरिव वेष्ट्यमानम्, उपरि कालमहिषालंकारकालायसकिङ्किणीभिरिव कटु क्वणन्तीभिर्दिवसं वायसमण्डलीभिर्भ्रमन्तीभिरावेद्यमानप्रत्यास-

---

प्रगुणं स्पष्टम् । वहन्नविश्रान्ति गच्छन् ।

अन्यस्मिन्नित्यादौ । स्कन्धावारं समाससादेति संबन्धः । आपणेषु हट्टेषु । पण्यं विक्रेयं वस्तु । कालो यमः । कालायसं लोहजातिभेदः । किङ्किण्यः सूक्ष्मघण्टिकाः ।

मानो राजा की अस्वस्थता का समाचार पाकर खिन्न हो उठा हो इस प्रकार नष्ट हुए तेज वाले भगवान् सूर्य जब अधोमुख होने लगे तो भण्डि आदि स्नेही राजकुमारों द्वारा बहुतों बार कहने पर भी हर्ष ने भोजन नहीं किया । केवल आगे चलते हुए प्रतीहार द्वारा पकड़े गए गाँववालों से सही रास्ता मालूम कर चलते हुए ही उन्होंने रात बिताई ।

दूसरे दिन मध्याह्न काल में, जहाँ जय-जयकार की ध्वनि बिलकुल बन्द थी, जहाँ तूर्य की आवाज नहीं हो पा रही थी, जहाँ गीत नहीं हो रहा था, जहाँ उत्सव बन्द करा दिये गये थे, जहाँ चारण लोग गान नहीं कर रहे थे, जहाँ बाजारों में खरीदी जाने वाली वस्तुएँ नहीं फैलाई गई थीं, जहाँ जगह-जगह पर यज्ञों की करोड़ों धूमलेखाएँ हवा के कारण टेढ़ी-मेढ़ी निकल रही थीं मानो यमराज के भैंसे की सींगों के अग्रभागों से कुरेदा जा रहा हो, जो मानो यमराज के फाँस से घिरा हुआ था, जहाँ दिन में यमराज के भैंसे की काले लोहे की किङ्किणी के समान कौओं की मण्डली काँव-काँव की आवाज करती हुई ऊपर उड़ रही थी तथा निकट में होने वाले अशुभ को सूचित कर रही थीं, कहीं

स्नाशुभम्, क्वचित्प्रतिशायितस्निग्धबान्धवाराध्यमानाहिर्बुध्नम्, क्वचिद्दीपिकादह्यमानकुलपुत्रकप्रसाद्यमानमातृमण्डलम्, क्वचिन्मुण्डोपहारहरणोद्यतद्रविडप्रार्थ्यमानामर्दकम्, क्वचिदान्ध्रोद्ध्रियमाणबाहुवप्रोपयाच्यमानचण्डिकम्, अन्यत्र शिरोविधृतविलीयमानगलद्गुग्गुलुविकलनवसेवकानुनीयमानमहाकालम् अपरत्र निशितशस्त्रीनिकृत्तात्ममांसहोमप्रसक्तातवर्गम्, अपरत्र प्रकाशनरपतिकुमारकक्रियमाणमहामांसविक्रयप्रक्रमम्, उपहतमिव श्मशानपांशुभिः, अमङ्गलैरिव परिगृहीतम्, यातुधानैरिव विध्वस्तम्, कलिकालेनेव कवलितम्, पापपटलैरिवसंछादितम्, अधर्मविक्षेपैरिव लुण्ठितम्, अनित्यताधिकारैरिवक्रान्तम्, नियतिविलासैरिवात्मीकृतम्, शून्यमिव सुप्तमिव मुषितमिव विलक्षितमिव छलितमिव मूर्च्छितमिव स्कन्धावारं समाससाद ।

प्रतिशायिता उपोषिताः । अहिर्बुध्नो हरः । मुण्डं शिरः । द्रविडा आन्ध्राश्च जनपदभेदाः । आमर्दको वेतालः । रौद्रदेवताभेद इत्यन्ये ।

राजा के स्नेही बान्धव लोग उपवास में रहकर भगवान् शिव की आराधना कर रहे थे, कहीं दीपिकाएँ जलाकर राजघराने के कुलपुत्र लोग सप्त मातृकाओं को प्रसन्न कर रहे थे, कहीं (पाशुपतमतानुयायी) द्रविड लोग मुण्डोपहार चढ़ाकर बेताल को प्रसन्न करने की तैयारी में लगे थे, कहीं आन्ध्र प्रदेश का पुजारी अपनी भुजा उठाकर चण्डिका के लिए मनौती मान रहा था, एक ओर नये सेवक अपने मस्तक पर गुग्गुल जलाकर उसके गलने से पीड़ा की बेचैनी में महाकाल का अनुनय कर रहे थे, एक ओर तेज धारवाली छुरी से अपना मांस काट-काटकर आप्तवर्ग के लोग होम कर रहे थे, एक ओर राजकुमार लोग खुले रूप में महामांस बेचने की तैयारी में लगे थे, जो मानो श्मशान की धूल से दूषित हो चुका था, जो मानों चारों ओर से अमङ्गलों से घिर चुका था, जो मानो राक्षसों द्वारा विध्वस्त कर दिया गया था, जो मानो कलिकाल द्वारा निगल लिया गया था, जो मानो पापों से ढँका हुआ था, जो मानो अधर्म के कार्यों से लुट चुका था, जो मानो अनित्यता के अधिकारों द्वारा आक्रान्त हो चुका था, जो मानो नियति के विलासों द्वारा स्वायत्तीकृत कर लिया गया था, जो बिलकुल सुनसान की तरह, सुप्त की तरह, लुटे हुए की तरह, छले हुए की तरह, बेहोशी को प्राप्त हुँए की तरह था ऐसे स्कन्धावार नामक राजधानी में हर्ष पहुँचा ।

प्रविशन्नेव विपणिवर्त्मनि कुतूहलाकुलबहलबालकपरिवृतमूर्ध्वयष्टिविष्कम्भविततेवामहस्तवर्तिनि भीषणमहिषाधिरूढप्रेतनाथसनाथे चित्रवति पटे परलोकव्यतिकरमितरकरकलितेन शरकाण्डेन कथयन्तं यमपट्टिकं ददर्श। तेनैव च गीयमानं श्लोकमशृणोत्—

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
युगे युगे व्यतीतानि कस्य ते कस्य वा भवान् ॥३॥ इति।

तेन चाधिकतरमवदीर्यमाणहृदयः क्रमेण राजद्वारं प्रतिषिद्धसकललोकप्रवेशं ययौ। तुरगादवतीर्णश्चाभ्यन्तरान्निष्क्रामन्तमप्रसन्नमुखरागमुन्मुक्तमिवेन्द्रियैः सुषेणनामानं वैद्यकुमारकमद्राक्षीत्। कृतनमस्कारं च तमप्राक्षीत्—'सुषेण! अस्ति तातस्य विशेषो न वा?' इति सोऽब्रवीत्—

विष्कम्भोऽवष्टम्भः। वितताः प्रसारिताः। व्यतिकरो वृत्तान्तः। यमपट्टेन जीवति यमपट्टिकः।

(स्कन्धावार में) प्रवेश करते ही उसने, तमाशा देखने के कुतूहल के कारण बहुँत से लड़कों से घिरे हूए, जिस ऊँची लाठी के ऊपरी सिरे पर फैले हुए चित्र पट पर भयानक भैंसे पर सवार यमराज का चित्र बना हुआ था उसे बायें में लिये हुए तथा दूसरे अर्थात् दायें हाथ में सरकण्डा लेकर लोगों को चित्र दिखाते हुए तथा परलोक में मिलने वाली नारकीय यातनाओं का वर्णन करते हुए यमपटिक को देखा।

उसी (यमपट्टिका) द्वारा गाये गये गीत को उसने कहा—"हजारों माता-पिता तथा सैकड़ों पुत्र-कलत्र युग-युग में हुँए और गुजर गये। वे किसके हुँए और आप किसके हैं?' (अर्थात् कोई किसी का नहीं होता।) ॥ ३ ॥

उस गीत को सुनने से और अधिक विदीर्ण हुए हृदय वाले वे क्रम से राजद्वार पर पहुँचे जहाँ अन्य सारे लोगों का प्रवेश रोक दिया था। घोड़े से उतरते ही अन्दर से निकलते हुँए, अप्रसन्न मुखराग वाले तथा जिसे मानो इन्द्रियों ने छोड़ दिया हो ऐसे सुषेण नामक वैद्यकुमार को उन्होंने देखा। वैद्य ने जब नमस्कार किया तो उससे उन्होंने पूछा—"सुषेण! पिताजी की हालत में सुजार है या नही? वह बोला—"अभी तो नहीं है, कुमार को देखकर कदाचित् हो जाय।''

'नास्तीदानीं यदि भवेत्कुमार दृष्ट्वा' इति । मन्दं मन्दं द्वारपालैः प्रणम्यमानश्च दीयमानसर्वस्वम्, पूज्यमानकुलदेवनम्, प्रारब्धामृतचरुपचनक्रियम्, क्रियमाणषडाहुतिहोमम्, हूयमानपृषदाज्यलवलिप्तप्रचलदूर्वापल्लवम्, पठ्यमानमहामायूरीप्रवर्त्यमानगृहशान्तिनिर्वर्त्यमानभूतरक्षाबलिविधानम्, प्रयतविप्रप्रस्तुतसंहिताजपं जप्यमानरुद्रैकादशीशब्दायमानशिवगृहम्, अतिशुचिशैवसंपाद्यमानविरूपाक्षक्षीरकलशसहस्रस्नपनम्, अजिरोपविष्टैश्चानासादितस्वामिदर्शनदूयमानमानसैरभ्यन्तरनिष्पतितनिकटवर्तिपरिजननिवेद्यमानवार्तैर्वार्तीभूतस्नानभोजनशयनैरुज्झितात्मसंस्कारमलिनवेशलिखितैरिव निश्चलैर्नरपतिभिर्नीयमाननक्तंदिव दुःखदीनवदनेन च

मन्द मन्दमित्यादौ राजकुलं विवेशेति संबन्धः । अमृतचरुः शान्त्यर्थं चरुः । 'प्रजापतये स्वाहा' इति षण्णां देवतानां नाम गृहीत्वा षण्णामेवाहुतीनां प्रक्षेपः षडाहुतिहोम उच्यते । दधिघृते एकीकृत्य पृषदाज्यम् । 'पृषदाज्यं सदध्याज्ये' इति कोशः । महामायूरी बौद्धविद्या । शैवमन्त्र इति केचित् संहिता संहितारूपो वेदपाठः । रुद्रैकादशी शिवमन्त्रः । वार्तेति आगतं वार्तीभूतम् ।

"द्वारपाल उन्हें प्रणाम करने लगे और धीरे-धीरे उन्होंने, जहाँ सब कुछ दान में दिया जा रहा था, कुल देवताओं की पूजा हो रही थी, शान्ति के लिए अमृत चरु पकाने का काम शुरु किया जा रहा था, छः आहुतियों वाला हवन किया जा रहा था जिसके छींटे चंचल दूबों के पत्तों पर पड़ गये थे, महामायूरी नामक बौद्धविद्या का पाठ चल रहा था, ग्रहशान्ति का विधान हो रहा था तथा भूतों से रक्षा के लिए बलि दी जा रही थी, पवित्र ब्राह्मणों द्वारा संहिता मन्त्रों का जप किया जा रहा था, जपी जाती हुई रुद्र-एकादशी के कारण शिवमन्दिर शब्दायमान हो रहे थे, अत्यन्त पवित्र शैव लोगों द्वारा भगवान् शङ्कर का हजारों घड़े दूध से स्नान किया जा रहा था, राजकुल के बाहर प्राङ्गण में बैठे हुए, स्वामी के दर्शन न प्राप्त होने के कारण दुःखी हृदयवाले, अन्दर से निकलते हुए निकटवर्ती परिजनों द्वारा महाराज का समाचार पानेवाले, जिनका नहाना, खाना, सोना आदि केवल बात बनकर रह गये थे तथा इन आत्मसंस्कारों के छूट जाने के कारण जिनका वेग मलिन पड़ गया था एवं जो चित्रलिखित से थे, ऐसे निश्चल राजाओं द्वारा जहाँ रात-दिन बिताया जा रहा था, दुःख से कातर

प्रघणेषु बद्धमण्डलेनोपांशुव्याहृतैः केनचिच्चिकित्सकदोषानुद्भावयता, केनचिदसाध्यव्याधिलक्षणपदानि पठता, केनचिद्दुस्वप्नानावेदयता, केनचित्पिशाचवार्ता विवृण्वता, केनचित्कार्तान्तिकादेशान्प्रकाशयता, केनचिदुपलिङ्गानि गायता, अन्येनानित्यतां भावयता, संसारं चापवदता, कलिकाकालविलसितानि च निन्दता, दैवं चोपालभमानेनापरेण धर्माय कुप्यता, राजकुलदेवताश्चाधिक्षिपता, अपरेण क्लिष्टकुलपुत्रकभाग्यानि गर्हयता, बाह्यपरिजनेन कथ्यमानकष्टपार्थिवावस्थं राजकुलं विवेश।

अविरलबाष्पपयः परिप्लुतलोचनेन पितृपरिजनेन वीक्ष्यमाणो विविधौषधिद्रव्यद्रवगन्धरार्भमुत्क्वथतां क्वाथानां सर्पिषां तैलानां च प्रपच्यमानानां गन्धमाजिघ्रन्नवाप तृतीयं कक्ष्यान्तरम्।

प्रघणो बहिर्द्वारैकदेशः। कार्तान्तिको दैवज्ञः। उपलिङ्गान्युत्पाताः। अपवदता निन्दता।

द्रवो रसः।

मुखमण्डल वाले नौकर बाहरी दरवाजे के एक भाग में इकट्ठे होकर कष्ट में पड़े हुँए राजा की हालत के बारे में कानाफूसी कर रहे थे जिसमें से कई वैद्यों के दोष कहता, कोई असाध्य रोगों के लक्षणों को पढ़ता, कोई अपने द्वारा देखे गये दुःस्वप्नों की चर्चा करता, कोई पिशाच की बात का बखान करता अर्थात् यह बतलाता कि महाराज को पिशाच ने धर दबोचा है, कोई दैवज्ञों (भविष्यवाणी करने वाले ज्योतिषियों) द्वारा कही गई बातों को सुनाता, कोई उत्पातों की चर्चा करता, कोई जीवन की अनित्यता की बात करता, कोई संसार को कोसता, कोई कलिकाल के कार्यो को निन्दा करता, कोई नियति को उलाहना देता, कोई धर्म पर ही क्रुद्ध हो जाता, कोई राजकुल के देवताओं की निन्दा करता, कोई कष्ट में पड़े हुए कुल पुत्रों के भाग्य की निन्दा करता, इस प्रकार बाहरी परिजन द्वारा महाराज की कष्टावस्था का जहाँ वर्णन किया जा रहा था, ऐसे राजकुल में प्रवेश किया।

लगातार बहनेवाले अश्रु-जल से भरे नेत्रों वाले पिता के परिजनों द्वारा देखे जाते हुए, अनेक प्रकार की औषधियों के द्रव की गन्ध से सूँघते हुँए वे (हर्ष) तीसरी ड्योढी में जा पहुँचे।

तत्र चातिनिःशब्दे गृहावग्रहणीग्राहिबहुवेत्रिणि, त्रिगुणतिरस्करिणीतिरोहितसुवीथीपथे, पिहितपक्षद्वारके, परिहृतकवाटरटिते, घटितगवाक्षरक्षितमरुति, दूयमानपरिचारके, चरणताडनस्वनत्सोपानप्रकुपितप्रतीहारे, निभृतसंज्ञानिर्दिश्यमानसकलकर्मणि, नातिनिकटोपविष्टकञ्चुकिनि, कोणस्थिताह्वानचकिताचमनकवाहिनि, चंद्रशालिकालीनमूकमौललोके, महाधिविधुरबान्धबाङ्गनावर्गगृहीतप्रच्छन्नप्रग्रीवके, संजवनपुञ्जितोद्विग्नपरिजने, प्रविष्टकतिपयप्रणयिनि, गम्भीरज्वरारम्भभीतभिषजि, दुर्मनायमानमन्त्रिणि, मन्दायमानपुरोधसि, सीदत्सुहृदि, विद्राणविपश्चिति, संतप्ता-

---

तत्रेत्यादौ। तत्र चैवंविधे धवलगृहे स्थितमीदृशं पितरमद्राक्षीदिति संबन्धः। गृहावग्रहणी देहलीद्वारारम्भदेशः। वेत्रिणो द्वाःस्थाः। तिरस्करिणी जवनिका। सुवीथी धवलगृहस्याभ्यन्तरीकृता। 'प्रच्छन्नमन्तर्द्वारं यत्पक्षद्वारं तदुच्यते'। घटितो रक्षितः। निभृतं गुप्तम्। आचमनवाही पानीयहारकः। चन्द्रशालिका धवलगृहस्योपरि प्रासादिका। 'आधिर्ना मानसी पीडा'। 'संजवनं चतुःशाला'। विपश्चित्पण्डितः। आप्ता आश्वस्ताः। प्रसादेन वित्ताः प्रख्याता; प्रसादवित्ताः। जागरूका

वहाँ अत्यन्त निःशब्द तथा जिसकी देहली पर अनेक बेंतधारी पुरुष पहरा दे रहे थे, जिसके अन्दर की सुन्दर गलियाँ तिहरे पर्दे से पीछे छिपी थीं, जिसका (अन्दर प्रवेश करने का) पक्षद्वार बन्द था, किवाड़ लगाने-खोलने की आवाज से जो मुक्त था, हवा से रक्षा के लिए जिसकी खिड़कियाँ बन्द थीं, जहाँ परिचारक लोग दुःखी हो रहे थे, जहाँ सीढ़ियों पर किसी के पैरों के आघात से उत्पन्न आवाज पर प्रतीहार लोग क्रुद्ध हो जाते, जहाँ सारे काम-काज केवल संकेत के द्वारा किया जा रहा था, जहाँ कवचधारी लोग कुछ हट कर बैठे थे, जहाँ आचमन का पात्र लिये हुए सेवक पुकारने से चकित होकर कोने में खड़ा था, जहाँ पुराने लोग धवलगृह के कोठे पर चुप्पी साधे बैठे हुए थे, जहाँ बान्धव स्त्रियाँ अत्यन्त विषादयुक्त अवस्था में सुरक्षित प्रग्रीवक (मुखशाला = उठने-बैठने का कमरा) में बैठी थीं, जहाँ उद्विग्न परिजन लोग चौसाल में इकट्ठे थे, जहाँ कितने ही प्रेमी लोग प्रवेश कर चुके थे, जहाँ (महाराज के) गम्भीर ज्वर के प्रारम्भ हो जाने से वैद्य लोग भयभीत हो गये थे, जहाँ मन्त्री लोग उदास हो रहे थे, जहाँ पुरोहित लोग फीके पड़ गये थे, जहाँ मित्र लोग व्यथित हो रहे थे, जहाँ विद्वान् लोग व्यथित हो रहे थे, जहाँ आप्त सामन्त लोग संतप्त थे,

ससामन्ते, विचित्तचामरग्राहिणि, दुःखक्षामशिरोरक्षिणि, क्षीयमाणप्रसादवित्तकमनोरथसंपदि, स्वामिभक्तपरित्यक्ताहारहीयमानबलविकलवल्लभभूभृति, क्षितितलपतितसकलरजनीजागरूकराजपुत्रकुमारके, कुलक्रमागतकुलपुत्रनिवहोह्यमानशुचि, शोकसंकुचितकञ्चुकिनि, निरानन्दनन्दिनि निःश्वसन्निराशासन्नसेवके, निःसृततान्बूलधूसराधरवारयोषिति, विलक्षवैद्योपदिश्यमानपथ्याहरणावहितपौरोगवे अनुजीविपीयमानोच्चचषकधारावारिविनोद्यमानस्य शोषरुजि, राजाभिलाषभोज्यमानबहुभुजि, भेषजसामग्रीसंपादनव्यग्रसमग्रव्यवहारिणि, मुहुर्मुहुराहूयमानतोयकर्मान्तिकानुमितघोरातुरतृषि, तुषारपरिकरितकरकशिशिरीक्रियमाणोदश्विति, श्वेतार्द्रकर्पटार्पितकर्पूरपरागशीतलीकृतशलाके, नाश्यानपङ्कलिप्यमाननवं-

जागरणशीलाः। विलक्षो लज्जितः। पौरोगवो महानसाध्यक्षः। उच्चचषकमवगतपानभाजनम्। भेषजमौषधम्। तोयकर्मान्तिका तोयकर्मशाला। करको जलभाण्डम्। शलाकाः पाषाणकणिकाः। मुखपूरणं गण्डूषः। निर्वाप्यमाणं शीतलीक्रियमाणम्।

जहाँ चँवर डुलाने वाले सेवक व्यग्र थे, जहाँ प्रधान रक्षक भी दुःख से कृश हो रहे थे, जहाँ राजा की प्रसन्नता से धन कमाने वालों के मनोरथ भी क्षीण पड़ रहे थे, जहाँ स्वामिभक्ति के कारण प्रिय राजा लोग भोजन का परित्याग कर देने से दुर्बल हो चुके थे, जहाँ पूरी रात तक जाग कर रहने वाले राजकुमार लोग भूमि पर पड़े हुए थे, जहाँ पुश्तैनी कुलपुत्र भी शोक धारण किये हुए थे, जहाँ कंचुकी शोक के कारण सकुचाया हुआ था, जहाँ बन्दी लोग भी आनन्द-विहीन थे और निकटवर्ती सेवक निराश होकर साँस ले रहे थे, जहाँ वर-बधूओं के होठ ताम्बूल छोड़ देने के कारण धूसर हो चुके थे, जहाँ लजाए हुए वैद्यों द्वारा बताये गये पथ्य की बात को प्रधान रसोइए ध्यानपूर्वक सुन रहे थे, जहाँ नौकर लोग राजा की प्यास मिटाने के लिए मुँह में गिलास ऊँची करके पानी की धार पीते थे, जहाँ राजा की तृप्ति के लिए उनके समक्ष बहुत भोजन करने वालों को दिखाया जा रहा था, जहाँ सभी दूकानदार अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ जुटाने में व्यग्र थे, जहाँ पीने के लिए पानी लाने वाले की बार-बार पुकार होने से रोगी को घोर प्यास का अनुमान कराया जाता था, जहाँ मटकियों को बर्फ में लपेट कर ठण्ढा किया जा रहा था, जहाँ गीले एवं उजले कपड़े में कपूर का चूरा रख कर सलाइयाँ ठण्ढी की जा रही थीं, जहाँ नये

भाण्डगतगण्डूषग्रहणमस्तुनि, तिम्यत्कोमलकमलिनीपलाशप्रावृतमृदुमृणालके, सनालनीलोत्पलपूलोसनाथसलिलपानभाजनभुवि, धारानिपातनिर्वाप्यमाणक्वथिताम्भसि, पटुपाटलशर्करामोदमुचि, मञ्चकाश्रितसिकतिलकर्करीविश्रान्तान्तरचक्षुषि, सरलशैवलवलयितगलद्गोलयन्त्रके, गल्वर्कशालाजिरोल्लासितलाजसक्तुनिपीतमसारपात्रीपरिगृहीतकर्कशर्करे शिशिरौषधरसचूर्णावकीर्णस्फटिकशक्तिशङ्खसंचये, सञ्चितप्रचुरप्राचीनामलकमातुलुङ्गद्राक्षादाडिमादिफले प्रतिग्राहितविप्रविप्रकीर्यमाणशान्त्युदकलवप्रुषि, प्रेष्याप्रेष्यमाणललाटलेपापादिग्धदृषदि धवलगृहे स्थितम्, परलोकविजयाय नीराज्यमानमिव ज्वरज्वलनेन अनवरतपरिवर्तनैस्तरङ्गिणि शयनीये शेषमिव विषोष्मणा क्षीरोदन्वति विचेष्टमानम्। मुक्ताफलवालुकाधूलि-

पाटला शर्कराविशेषः। मञ्चक आधारभेदः। कर्करी वारिधानी। गोलयन्त्रकं बहुच्छिद्रं जलभाण्डम्। उल्लासिता विस्तारिताः। प्रतिग्राहिताः प्रतिग्रहं ग्राहिताः।

बर्तनों के चारों ओर गीली मिट्टी थोप कर उसमें कुल्ला करने के लिए दही की पिलोर रखी हुई थी, जहाँ कमलिनी के सूखते हुए पत्तों से बाँध कर कोमल मृणाल रखे गए थे, जहाँ पानी पीने के बर्त्तन के पास डण्ठल के साथ नीले कमलों की आँटियाँ रखी गई थीं, जहाँ पानी के छोटे देकर खौल कर उबलते हुए पानी को शान्त किया जा रहा था, जहाँ लाल रंग की कच्ची शक्कर की गन्ध उड़ रही थी, जहाँ घड़ौंचो पर पानी से भरी हुई सुराही रखी हुई था जिस पर रोगी की दृष्टि पड़ने से उसे कुछ शान्ति मिलती थी, जहाँ गल्वर्क के शालाजिर (एक प्रकार का रत्नपात्र) में भुजिया के सत्तू भरे हुए थे और पीले मसार की पारी (यह भी एक प्रकार का रत्नपात्र) में सफेद शक्कर रखी हुई थी, जहाँ शीतलता पहुँचाने वाली औषधियों का रस और चूर्ण स्फटिक की शुक्तियों और शंखों से भर दिया गया था, जहाँ पुराने आँवले, नीबू और द्राक्षा के फल काफी मात्रा में इकट्ठे कर दिये गये थे, जहाँ दक्षिणा लेने के बाद ब्राह्मण लोग शान्ति के जल छिड़क रहे थे, जहाँ दासियाँ ललाट पर लगाने वाले लेप को सिल-बट्टे पर रगड़ कर तैयार कर रही थी, ऐसे धवलगृह में पड़े हुए, परलोक पर विजय प्राप्त करने हेतु ज्वराग्नि से जिनकी मानो आरती उतारी जा रही थी ऐसे, निरन्तर करवट फेरते रहने से सिकुड़न से भरे पलङ्ग पर तरङ्गित क्षीर समुद्र में विष की गर्मी से छटपटाते हुए शेषनाग की भाँति तड़पते हुए मुक्ता की धूल

धवलितं जलधिमिव क्षयकाले शुष्यन्तम्, कालेन कैलासमिव दशाननेनोद्ध्रियमाणम्, अविरतचन्दनचर्चापराणां परिचारकाणामत्युष्णावयवस्पर्शभस्मीभूतोदरैरिव धवलैः करैः स्पृश्यमानं, लोकान्तरप्रस्थितं स्थास्नुना स्वयशसेव चन्दनानुलेपनच्छलेनापृच्छ्यमानम्, अविच्छिन्नदीयमानकमलकुमुदेन्दीवरदलं कालकटाक्षपतनशबलमिव शरीरमुद्वहन्तम्, निबिडदुकूलपट्टनिपीडितकेशान्तकथ्यमानकष्टवेदनानुबन्धं मूर्धानं धारयन्तम्, दुर्धरवेदनोन्नमन्नीलशिराजालकक्करालेन च कालाङ्गुलिलिख्यमानलेखाख्यातमरणावधिदिवससंख्यानेनेव ललाटफलकेन भयमुपजनयन्तम्, आसन्नयमदर्शनोद्वेगादिव च किञ्चिदन्तं-प्रविष्टतारकं चक्षुर्दधानम्, शुष्यद्दशनपङ्क्तिप्रसृतधूसरदीधितितरङ्गिणी मृगतृष्णिकामिवो-

प्रेष्या दासी। कालेन यमेन, कृष्णेन च। दशाननो व्याधिः, राक्षसश्च। आपृच्छ्य-

से धवल होकर प्रलयकाल में समुद्र के समान सूखते हुए, जिस प्रकार रावण ने कैलास पर्वत को उठा लिया था उसी प्रकार काल अर्थात् मृत्यु द्वारा उठा लिये जाते हुए, निरन्तर चन्दन का लेप लगाने में संलग्न परिचारकों के सफेद हाथों से—जिनके मध्यभाग अत्यन्त गर्म अङ्गों के स्पर्श से मानो भस्मीभूत हो गये—स्पर्श किये जाते हुए, परलोक को प्रस्थान करने वाले (राजा को) उनका स्थायी यश चन्दन लेप के बहाने मानो विदा दे रहा हो ऐसे, हमेशा लाल कमल, कुमुद और नीलकमल जिन पर इस प्रकार डाले जा रहे थे मानो यम के कटाक्षों के गिरने से भिन्न-भिन्न वर्णों वाला शरीर धारण कर रहे हों ऐसे, दुपट्टे से कस कर बाँधा गया जिनका सिर शिरोवेदना को प्रकट कर रहा था तथा ऐसे सिर को धारण करते हुए, दुःसह वेदना के कारण जिनके ललाट पर की काली काली नसें उभर जातीं, जिन्हें यह जानकर भय होता कि मृत्यु के दिन के समाप्त होने की गिनती की जा रही है जिससे अङ्गुलि की काली-काली रेखा पड़ रही है, निकटवर्ती यम के दर्शन-जन्य उद्वेग के कारण ही मानो जिनकी आँखें भीतर की ओर धँसती जा रही थीं ऐसे, जिनके सूखते हुए दाँतों की धूसर किरणें नदी के रूप में मृग-तृष्णा के समान गर्म निःश्वासों की परम्परा को धारण कर रही थीं ऐसे, अत्यधिक गर्म निश्वास से मानो जल कर काली पड़

ष्णां निःश्वासपरम्परामुद्वहन्तम्, अत्युष्णनिःश्वासदग्धयेव श्यामायमानया रसनया निवेद्यमानदारुणसन्निपातारम्भम्, उरःस्थलस्थापितमणिमौक्तिकहारचन्दनचन्द्रकान्तं कृतान्तदूतदर्शनयोग्यमिवात्मानं कुर्वाणम्, अङ्गभङ्गवलनोत्क्षिप्तभुजयुगलं पर्यस्तहस्तनखमयूखैर्धारागृहमिव तापशान्तये रचयन्तम्, नेदिष्ठसलिलमणिकुट्टिमादर्शोदरेषु निपतद्भिः प्रतिबिम्बैरपि संतापातिशयमिव कथयन्तम्, स्पृशन्तीं प्रणयिनीमिव विश्वासभूमिं मूर्च्छामपि बहु मन्यमानम्, अन्तकाह्वानाक्षरैरिव सभयभिषग्दृष्टैररिष्टैराविष्टम्, महाप्रस्थानकाले स्वसंतापसंतानमाप्तहृदयेषु सञ्चारयन्तम्, अरतिपरिगृहीतमीर्ष्ययेव छायया विमुच्यमानम्, उद्योगमिवोपद्रवाणाम् सर्वास्त्रमोक्षमिव क्षामतायाः, हस्तीकृतं विहस्ततया विषयीकृतं वैषम्येण,

मानं ज्योतिक्रियमाणम् । रसना जिह्वा । नेदिष्ठमन्तिकतमम् ।

अरिष्टैर्दुर्लक्षणैः । अरतिरेकत्रानवस्थितिः । छाया कान्तिः । विहस्तोऽक्षमः ।

गई जिह्वा से जिनके कठोर सन्निपात के प्रारम्भ की सूचना मिल रही थी ऐसे, जिनके वक्षःस्थल पर मणि और मुक्ता के हार, चन्दन और चन्द्रकान्त रखे गये थे मानो अपने आपको यमदूत के देखने योग्य बना रहे हों ऐसे, जो अङ्गों को तोड़-मरोड़ करते थे, भुजाओं को ऊपर की ओर फेंकते थे तथा जिनके हाथों के नखों की किरणें निकल कर फैल रही थीं मानो अपने कष्ट की शान्ति के लिए धारागृह का निर्माण कर रहे हों ऐसे, समीप में जल से भीगे हुए मणि कुट्टिमों के दर्पणों में पड़ती हुई जिनकी परछाइयाँ भी मानो अतिशय सन्ताप को व्यक्त कर रही थीं ऐसे, प्रेयसी के समान विश्वास के पात्र स्पर्श करती हुई मूर्च्छा को भी बहुत मान रहे थे ऐसे, जो जटायुक्त वैद्य लोगों द्वारा यमराज के आह्वान (बुलाने) के अक्षरों के समान मृत्यु चिह्नों से आविष्ट थे ऐसे, महाप्रयाण के समय अपने सन्ताप-समूह को स्वजनों के हृदय में जो सञ्चारित कर रहे थे ऐसे, अरति ग्रस्त हो जाने के कारण ईर्ष्या से कान्ति के द्वारा जो परित्यक्त किये जा रहे थे ऐसे, जो मानो उपद्रवों के उपक्रम हो रहे थे ऐसे, जिन पर क्षीणता ने माना सभी अस्त्रों का प्रहार किया ऐसे, जिन्हें मानो व्याकुलता ने अपने हाथ में ले लिया था ऐसे, विषमता ने जिन्हें अपना विषय बना लिया था ऐसे, क्षय ने जिन्हें अपना

क्षेत्रीकृतं क्षयेण, गोचरीकृतं ग्लान्या, दष्टं दुःखासिकया आत्मीकृतमस्वास्थ्येन, विधेयीकृतं व्याधिना, क्रोडीकृतं कालेन, लक्ष्यीकृतं दक्षिणाशया, पीतमिव पीडाभिः, जग्धमिव जागरेण, निगीर्णमिव वैवर्ण्येन ग्रासीकृतमिव गात्रभङ्गेन, ह्रियमाणमिव विपद्भिः, वण्टयमानमिव वेदनाभिः लुण्ठ्यमानमिव दुःखैः, आदिदिक्षतं दैवेन, निरूपितं नियत्या, समाघ्रातमनित्यत्वेन, अभिभूयमानमभावेन, परिकलितं परासुतया, दत्तावकाशं क्लेशस्य, निवासं वैमनस्यस्य, समीपे कालस्य, अन्तिकेऽन्त्योच्छ्वासस्य, मुखे महाप्रवासस्य द्वारि दीर्घनिद्रायाः, जिह्वाग्रे जीवितेशस्य वर्तमानम्, विरलं वाचि, चलितं चेतसि, विह्वलं वपुषि क्षीणमायुषि, प्रचुरं प्रलापे, सततं श्वसिते; जितं जृम्भिकाभिः, पराधीनमाधिभिः

लक्ष्यीकृतम् । आघ्रातमित्यर्थः । वण्ट्यमानं भागीक्रियमाणम् । जीवितेशो यमः । अनुबन्धिका गात्रसन्धिपीडा ।

क्षेत्र बना लिया था ऐसे, ग्लानि ने जिन्हें अपना विषय बना लिया था ऐसे, जो दुःखानुभूति से दष्ट थे ऐसे, जिन्हें व्याधि ने अपने अधीन कर रखा था ऐसे, जिन्हें काल ने अपनी गोद में ले लिया था ऐसे, यमराज की दक्षिण दिशा ने जिन्हें अपना लक्ष्य बना लिया था ऐसे, जो मानो पीड़ाओं द्वारा पी लिये गये थे, जागरण द्वारा मानो खा लिये गये थे, विवर्णता द्वारा मानो निगल लिये गये थे, अङ्गों की ऐंठन द्वारा मानो कौर बना लिये गये थे, विपत्तियों द्वारा मानों हृत किये जा रहे थे, वेदनाओं द्वारा मानो ठगे जा रहे थे, दुःखों द्वारा लुट रहे थे, भाग्य द्वारा पकड़े गये, नियति द्वारा देखे गये, अनित्यता द्वारा सूँघे गये, अभाव द्वारा अभिभूत किये जाते हुए मृत्यु द्वारा ग्रास बना लिये गये थे ऐसे, जो क्लेश को अवसर दिये हुए थे, जो वैमनस्य के निवास बन गये थे तथा जो मृत्यु के समीप में अन्तिम साँस के निकट में महाप्रवास के मुख में दीर्घनिद्रा के दरवाजे पर तथा यमराज की जीभ के अग्रभाग पर पहुँच चुके थे, जिनकी आवाज टूट चुकी थी, हृदय अस्थिर हो उठा था, शरीर बेचैन हो रहा था, आयु क्षीण हो चुकी थी, बड़बड़ाहट बढ़ गई थी, लगातार साँस निकल रही थी ऐसे, जो जँभाइयों द्वारा जीत लिये गए थे, जो मनोव्यथाओं द्वारा पराधीन कर लिये गए थे, जिनके

अनुबद्धमनुबन्धिकाभिः, पार्श्वोपविष्टया चानवरतरोदनोच्छूननयनया गृहीतचामरिकयापि निःश्वसितैरेव वीजयन्त्या विविधौषधिधूलिधूसरित-शरीरया मुहुर्मुहुः 'आर्यपुत्र ! स्वपिषि' इति व्याहरन्त्या देव्या यशमित्या शिरसि वक्षसि च स्पृश्यमानं पितरमद्राक्षीत् ।

दृष्ट्वा च प्रथमदुःखसंपातमथ्यमानमतिराशङ्कित इव भागधेयेभ्यः समभवत् । अन्तकपुरवर्तिनमेव च पितरममन्यत । निराकृत इव चान्तः-करणेन क्षणमासीत् । अवधूतश्च धैर्येण, क्षेत्रीकृतः क्षोभेण, रिक्तीकृतो-रत्या, विषयीकृतो विषादेन, पावकमयमिव हृदयमुद्वहन्, विषमविषदूषि-तानीव मुह्यन्तीन्द्रियाणि बिभ्राणः तमसा रसातलमपि विशेषयन्, शून्यत्वेनाकाशमप्यतिशयानो नाविन्दत कर्तव्यम् । पस्पर्श च हृदयेन भियमुत्तमाङ्गेन च गाम् ।

भागधेयेभ्यो देवेभ्यः । अन्तःकरणेन मनसा ।

अङ्गों की जाड़ों में पीड़ा व्याप्त हो चुकी थी ऐसे, पास बैठी हुई, निरन्तर रोते रहने के कारण उबल आई आँखों वाली, चँवर लिये रहने पर भी केवल निःश्वासों से हवा करती हुई, अनेक प्रकार के औषधि की धूल से धूसरित शरीर वाली तथा बार-बार "आर्यपुत्र ! क्या आप सो रहे हैं ।" ऐसा पूछती हुई रानी यशोमती जिनके सिर एवं छाती का स्पर्श कर रही थी ऐसे अपने पिता को देव हर्ष ने देखा ।

(ऐसी स्थिति में पड़े अपने पिता को) देख कर पहले-पहल दुःख के आ पड़ने के कारण देव हर्ष की बुद्धिमथी जाने लगी तथा वे अपने भाग्यों के प्रति भी सशङ्क जैसे हो गए । वे अपने पिता को यमपुर में पहुँचे हुए ही समझने लगे । क्षण-भर के लिए वे अन्तःकरण शून्य हो गये । धैर्य उन्हें छोड़ कर हट गया, क्षोभ ने उन्हें अपना क्षेत्र बना लिया । राग ने उन्हें खाली कर दिया, विषय ने उन्हें अपना विषय बना लिया, इस प्रकार मानो आग से भरे हुए हृदय को धारण करते हुए, मानो दारुण विष को पीने के कारण मूर्च्छित हुई इन्द्रियों को धारण करते हुए, (मोहरूपी) अन्धकार से रसातल को भी पीछे छोड़ते हुए, सूनेपन के कारण आकाश से भी आगे बढ़ जाते हुए वे अपने कर्त्तव्य को भी भुला बैठे । उन्होंने हृदय से भय का तथा मस्तक से पृथिवी का स्पर्श किया ।

अवनिपतिस्तु दूरादेव दृष्ट्वातिदयितं तनयं तदवस्थोऽपि निर्भरस्नेहावर्जितः प्रधावमानो मनसा प्रसार्य भुजौ 'एह्येहि' इत्याह्वयन् शरीरार्धेन शयनादुदगात्। ससंभ्रममुपसृतं चैनं विनयावनम्रमनमय्य बलादुरसि निवेश्य, विशन्निव प्रेम्णा निशाकरमण्डलमध्यम्, मज्जन्निवामृतमये महासरसि, स्नापयन्निव महति हरिचन्दनरसप्रस्रवणे, अभिषिच्यमान इव तुषाराद्रिद्रवेण, पीडयन्नङ्गैरङ्गानि, कपोलेन कपोलमवघट्टयन्, निमीलयन्पक्ष्माग्रग्रथिताजस्रास्रबिन्दुस्राविणी विलोचने विस्मृतज्वरसंज्वरः सुचिरमालिलिङ्ग। कथं कथमपि चिराद्विमुक्तमपसृत्य कृतनमस्कारं प्रणतजननीकमुपागतमासीनं च शयनान्तिके पिबन्निव विगतनिमेषनिश्चलेन चक्षुषा व्यलोकयत्। पस्पर्श च पुनःपुनर्वेपथुमता पाणितलेन क्षयाक्षामकण्ठश्च कृच्छ्रादिवावादीत्—'वत्स! कृशोऽसि' इति। भण्डिस्त्वकथयत्—'देव! तृतीयमहः कृताहारस्यास्याद्य' इति।

प्रस्रवणे निम्ने। द्रवो रसः। संज्वरः संतापः।

राजा दूर से ही अपने अतिप्रिय पुत्र को देख कर इस हालत में होते हुए भी अत्यधिक स्नेह से भरकर मन से ही दौड़ पड़े तथा बाहें फैलाकर "आओ, आओ" इस प्रकार पुकारते हुए आधे शरीर से बिस्तर से उठ गये। घबड़ाहट के साथ पास आये हुए तथा नम्रता के कारण झुके हुए उन्हें (अर्थात् हर्ष को) उठा कर तथा जोर से छाती से लगा कर मानो चन्द्रमण्डल के बीच प्रवेश करते हुए, मानो अमृतमय महासरोवर में डुबकी लगाते हुए, मानो, हरिचन्दन के सोते में स्नान करते हुए, मानो, हिमालय के धुले जल में अभिषेक करते हुए, अपने अङ्गों से उनके (पुत्र के) अङ्गों को दबाते हुए, अपने कपोल से उनके कपोल रगड़ते हुए, लगातार पपनियों में गुँथी हुई अश्रु-बिन्दुओं से भरी हुई आँखों को (आनन्द के कारण) मूँदते हुए, ज्वर के ताप को भूल कर बहुत देर तक हर्ष का उन्होंने आलिङ्गन किया।

किसी किसी प्रकार बहुत देर तक जब राजा ने हर्ष को छोड़ा तब उन्होंने खिसककर माता को प्रणाम किया और शय्या के समीप में आकर बैठ गये। राजा निर्निमेष आँखों से मानो पीते हुए उन्हें निहारने लगे। साथ ही काँपते हुए हाथ से उन्होंने बार-बार उनका स्पर्श किया एवं कमजोरी के कारण बँधे हुए कण्ठ से बहुत कठिनाई से वे बोले—"वत्स! दुबले हो गये हो।" तब भण्डि ने कहा—"देव! इन्हें भोजन किये हुए आज तीसरा दिन ही रहा है।"

तच्छ्रुत्वा बाष्पवेगगृह्यमाणाक्षरं कथंकथमप्यायतं निःश्वस्योवाच—"वत्स ! जानामि त्वां पितृप्रियमतिमृदुहृदयम्। ईदृशेषु विधुरयति धीमतोऽपि धियम्। अतिदुर्धरो बान्धवस्नेहः सर्वप्रमाथी। यतो नार्हस्यात्मानं शुचे दातुम्। तीव्रमहादाहज्वरदग्धोऽपि दह्ये खल्वहमधिकतरमनेनायुष्मदाधिना। निशितमिव शस्त्रं तक्ष्णोति मां त्वदीयस्तनिमा। सुखं च राज्यं च वंशश्च प्राणाश्च परलोकश्च त्वयि मे स्थिताः। यथा मम तथा सर्वासां प्रजानाम्। त्वद्विधानां पीडाः पीडयन्ति सकलमेव भुवनतलम्। न ह्यल्पपुण्यभाजां वंशमलं कुर्वन्ति भवादृशाः। फलमस्यानेकजन्मान्तरोपार्जितस्याकलुषस्य कर्मणः। करतलगतमिव कथयन्ति चतुर्णामप्यर्णवानामाधिपत्यं ते लक्षणानि। त्वज्जन्मनैव कृतार्थोऽस्मि। निरभिलाषोऽस्मि जीवितव्ये। भिषगनुरोधः पाययति मामौषधम्। अपि च वत्स ! सर्वप्रजापुण्यैः सकलभुवनतलपरिपालनार्थमुत्पत्स्यमानानां भवादृशां

यह सुनकर आँसुओं के वेग से रुँधते हुए शब्द से किसी-किसी प्रकार लम्बी साँस लेकर राजा बोले—"वत्स ! पिता के प्रिय तथा अत्यन्त कोमल हृदयवाले तुझे मैं जानता हूँ। इस प्रकार के विपत्ति काल में बुद्धिमान् लोगों की बुद्धि भी विकल हो जाती है। बान्धव का स्नेह अत्यन्त दुःखदायी तथा सबको मथ डालने वाला होता है। इसलिए तुम्हें अपने आपको शोक के अधीन नहीं करना चाहिए। तीव्र महादाहज्वर से जला हुआ भी मैं तुम्हारी इस मनोव्यथा से अत्यधिक जल रहा हूँ। तुम्हारा यह दुबलापन तीखे शस्त्र के समान मुझे खौर रहा है। मेरे सुख, राज्य, वंश, प्राण एवं परलोक सब तुम्हीं पर टिके हैं। जिस प्रकार मेरे, वैसे ही सारी प्रजाओं के भी। तुम जैसे लोगों की पीडा सम्पूर्ण संसार को पीडित कर डालती है। तुम्हारे जैसे लोग थोड़े पुण्यवाले वंश को अलंकृत नहीं करते। तुम अनेक जन्मान्तरों में उपार्जित किये गये पुण्यकर्मों के फल हो। तुम्हारे लक्षण कहते हैं कि चारों समुद्रों का आधिपत्य तुम्हारी हथेली पर होगा। मैं तुम्हारे जन्म से ही कृतार्थ हो गया हूँ। अब मुझे जीने की अभिलाषा नहीं है। वैद्यों का अनुरोध ही मुझे औषधि पिलाता है। और भी वत्स, सभी प्रजाओं के पुण्यों से समस्त संसार के परिपालन के लिए उत्पन्न

जन्मग्रहणोपायः पितरौ। प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजानः, न ज्ञातिभिः। तदुत्तिष्ठ। कुरु पुनरेव सर्वाः क्रियाः। कृताहारे च त्वय्यहमपि स्वयमुपयोक्ष्ये पथ्यम्' इत्येवमभिहितस्य चास्य धक्ष्यन्निव हृदयमतितरां शोकानलः संदुधुक्षे। क्षणमात्रं च स्थित्वा पित्रा पुनराहारार्थमादिश्यमानो धवलगृहादवततार। चकार च चेतसि—'अकाण्डे खल्वयं समुपस्थितो महाप्रलयो व्यभ्र इव वज्रपातः। सामान्योऽपि तावच्छोकः सोच्छ्वासं मरणम्, अनुदिष्टौषधो महाव्याधिः, अभस्मीकरणोऽग्निप्रवेशः, अनुपरतस्यैव नरकवासः, निर्ज्योतिरङ्गारवर्षमशकलीकरण क्रकचदारणमव्रणो वज्रसूचीपातः। किमुत विशेषश्रितः। किमत्र करवाणि' इति।

राजपुरुषेणाधिष्ठितश्च गत्वा स्वधाम धूममयानिव कृताश्रुपातान्, अग्निमयानिव जनितहृदयदाहान्, विषमयानिव दत्तमूर्च्छावेगान्, महा-

सूची शलाका।

धूममयानिवेति। धूमः किलाश्रु मोचयति। घृणा जगुप्सा। उपह्वरे रहसि।

होने वाले तुम जैसों के लिए माता-पिता तो जन्म के उपायमात्र होते हैं। राजा लोग तो वस्तुतः प्रजाजनों से ही बन्धुमान् होते हैं न कि सगोत्र (गोतिया) लोगों से। इसलिए उठो। फिर से सारे कार्य करो। तुम्हारे भोजन कर लेने पर ही मैं भी स्वयं पथ्य ग्रहण करूँगा।'' राजा द्वारा जब इस प्रकार कहा गया तो हर्ष की शोकाग्नि उसके हृदय को मानो भस्म करती हुई अत्यधिक उद्दीप्त हो उठी। क्षण भर ठहर कर पिता के द्वारा पुनः भोजन के लिए आदेश देने पर वे धवलगृह से उतरे और मन में सोचने लगे—"निश्चय ही असमय में यह महाप्रलय बिना मेघ के वज्रपात समान उपस्थित हुआ है। साधारण भी शोक वह मृत्यु है जिसमें उच्छ्वास होता है, वह महाव्याधि है जिसकी कोई औषधि नहीं, वह अग्नि प्रवेश है जिसमें कोई जलता हुआ भस्म नहीं होता, वह नरकवास है जो बिना मरे ही प्राप्त होता है, वह अङ्गार-वृष्टि है जिसमें प्रकाश नहीं होता, वह आरे से फाड़ना है जिसमें खण्ड-खण्ड नहीं होते, वह वज्रसूचीपात है जिससे कोई घाव नहीं होता। यदि वही शोकाग्नि किसी विशिष्ट व्यक्ति को पकड़ ले तो फिर कहना ही क्या? यहाँ मैं क्या करूँ?

राजपुरुष के साथ अपने स्थान पर पहुँचकर, अश्रुपात कराने के कारण मानो धुएँ से भरे हों, हृदय की जलन को पैदा करने के कारण मानो अग्निमय हों, मूर्च्छा के वेग को प्रदान करने के कारण मानो जहर से भरे हों, घृणा को

पातकमयानिवोत्पादितघृणान्, क्षारमयानिवानीतवेदनान्, कतिचित्कवलानगृह्णात्। आचामंश्च चामरग्राहिणमादिदेश–'विज्ञायागच्छ कथामास्ते तातः' इति। आगत्य च तेन 'देव! तथैव' इति विज्ञापिते नागृहीतताम्बूल एवोत्ताम्यता मनसास्ताभिलाषिणि सवितरि सर्वानाहूयोपह्वरे वैद्यान्, किमस्मिन्नेवं विधे विधेयमधुना?' इति विषण्णहृदयः पप्रच्छ। ते तु व्यज्ञापयन्—'देव! धैर्यमवलम्बस्व। कतिपयैरेव वासरैः पुनः स्वां प्रकृतिमापन्नं स्वस्थं श्रोष्यसि पितरम्' इति।

तेषां तु भिषजां मध्ये पौनर्वसवो युवाऽष्टादशवर्षदेशीयस्तस्मिन्नेव राजकुले कुलक्रमागतो गतः परम्पारमष्टाङ्गस्यायुर्वेदस्य भूभुजा सुतनिर्विशेषं लालितः प्रकृत्यैवातिपटीयस्या प्रज्ञया यथावद्विज्ञाता व्याधिस्वरू-

स्वां प्रकृतिममन्दत्वम्, अव्यक्तरूपत्वं च पृथिव्यादिषु वा लीनम्। स्वस्थं व्याधिविनिर्मुक्तं स्वर्गस्थं च। यतः—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥' इत्युक्तम्।

पुनर्वसोरपत्यं पौनर्वसवः। पुनर्वसुना मुनिना प्रोक्तमायुर्वेदमधीते पौनर्वसव इति। अष्टाङ्गमिति। उक्तं च—'कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्रजरावृषान्। अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा तेषु संश्रिता ॥' इति। आयुर्वेदस्य वैद्यशास्त्रस्य।

पैदा करने के कारण मानो महापातकमय हों, वेदनाओं को प्रकट करने के कारण मानो क्षारमय हों, इस प्रकार के कुछ कौर उन्होंने चामर ग्राही पुरुष को आदेश दिया—"पता लगाकर आओ कि पिताजी कैसे हैं? वह जाकर लौटा और निवेदन किया—"देव! वैसे ही हैं।" यह सुनकर बिना ताम्बूल लिये ही उद्विग्न होते हुए मन से सूर्यास्त के समय सभी वैद्यों को एकान्त में बुलाकर "अब ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिए" इस प्रकार विषादयुक्त हृदय से पूछा। उन वैद्यों ने निवेदन किया—"देव! धैर्य धारण करें। कुछ ही दिनों में फिर से अपने पिता को प्रकृतिस्थ (स्वाभाविक दशा में अवस्थित) एवं स्वस्थ सुनेंगे।"

उन्हीं वैद्यों के बीच पुनर्वसु मुनि द्वारा विरचित आयुर्वेद का अध्येता, अट्ठारह वर्ष की आयु वाला, उसी राजकुल मे कुलक्रम से आगत, अष्टाङ्ग आयुर्वेद का पारङ्गत विद्वान्, राजा के पुत्र के समान लालित, स्वभाव से ही अत्यन्त

पाणां रसायनो नाम वैद्यकुमारकः सास्रस्तूष्णीमधोमुखोऽभूत्। पृष्टश्च राजसुनुना—'सखे रसायन! कथय तथ्यं यद्यसाध्विव पश्यसि' इति सोऽब्रवीत्—'देव! श्वः प्रभाते यथावस्थितमावेदयितास्मि' इति।

अत्रैव चान्तरे भवनकमलिनीपालः कोकमाश्वासयन्नपरवक्त्रमुच्चैरपठत्।

विहग! कुरु दृढं मनः स्वयं त्यज शुचमास्स्व विवेकवर्त्मनि।
सह कमलसरोजिनीश्रिया श्रयति सुमेरुशिरो विरोचनः॥ ४॥

तच्चाकर्ण्य वाङ्निमित्तज्ञः पितरि सुतरां जीविताशां शिथिलीचकार। गतेषु च भिषक्षु क्षतधृतिः क्षपामुखे क्षितिपालसमीपमेव पुनरारुरोह। तत्र च—'दाहो महान्। आहर हारान् हरिणि मणिदर्पणान्मे देहि देहि वैदेहि! हिमलवैर्लिम्प ललाटं लीलावति! घनसारक्षोदधूलीनिधेहि धवलाक्षि! निक्षिप चक्षुषि चन्द्रकान्तं कान्तिमति! कपोले कलय

कोकश्चक्रवाकः। विरोचनो रविः। तत्र चेत्यादौ। तत्र च क्षितिपालसमीपइत्यादीन्भृत्यकलापालापानाकर्णयन्निशामनैषीदिति संबन्धः। घनसारः कर्पूरः।

निपुण बुद्धि से ठीक-ठीक निदान के द्वारा रोगों के स्वरूप को जान लेनेवाला रसायन नामक वैद्य कुमार ने आँसुओं से डबडबाये नेत्रों के साथ चुपचाप अपना मूँह नीचा कर लिया। राजकुमार हर्ष ने उससे पूछा—"मित्र रसायन! सही-सही बताओ, क्या गड़बड़ी देखते हो?" वह बोला—"देव! कल सुबह सही-सही बताऊँगा।"

इसी बीच भवन की कमलिनियों के रक्षक पुरुष ने चक्रवाक पक्षी को आश्वस्त करते हुए ऊँचे स्वर में अपरवक्त्र को पढ़ा—"हे पक्षी (चक्रवाक)! तू अपने मन को स्वयं मजबूत कर शोक को छोड़ तथा विवेक के मार्ग पर आ। इस समय कमल एवं सरोजिनी की श्री के साथ सूर्य सुमेरु के मस्तक का आश्रय ले रहा है" ॥ ४ ॥

यह सुनकर तथा कथन के अभिप्राय को समझकर हर्ष ने पिता के और अधिक जीवित रहने की (अपने मन की) आशा को शिथिल कर दिया। वैद्यों के चले जाने पर सायंकाल अधीर होकर हर्ष पिता के समीप ही पुनः गये। वहाँ पर—"बहुत जलन है। हारिणी, हारों को ला। वैदेही, मेरे शरीर पर मणिदर्पणों को रख। लीलावती, मेरे ललाट पर बर्फ का लेप कर। धवलाक्षी, कपूर के चूर्ण की धूल डाल। कान्तिमती, मेरी आँखों पर चन्द्रकान्तमणि रख।

कुवलयं कलावति ! चन्दनचर्चां रचय चारुमति ! पाटय पटमारुतं पाटलिके ! मन्दय दाहमिन्दुमति ! अरविन्दैर्जनय जलार्द्रैया मुदं मदिरावति ! समुपनय मृणालानि मालति ! तरलय तालवृन्तमावन्तिके ! मूर्धानं धावमानं वधान बन्धुमति ! कन्धरां धारय धारणिके ! उरसि सशीकरं करं कुरु कुरङ्गवति ! संवाहय बाहू बलाहिके ! पीडय पादौ पद्मावति ! गृहाण गाढमङ्गमनङ्गसेने ! का वेला वर्तते विलासवति ! नैति निद्रा, कथाः कथय कुमुद्वति !' इत्येवं प्रायान् पितुरालापननवरतमाकर्णयन् दूयमानहृदयो दुःखदीर्घां जाग्रदेव निशामनैषीत् ।

उषसि चावतीर्य राजद्वारदेशोपसर्पिणा परिवधकेनोपस्थापितेऽपि तुरङ्गे चरणाभ्यामेवाजगाम स्वमन्दिरम् । तत्र च त्वरमाणो भ्रातुरागमनार्थमुपर्युपरि क्षिप्रपातिनो दीर्घाध्वगानतिजविनश्चोपाकान् प्राहिणोत् । प्रक्षालितवदनश्च परिजनेनोपनीतमपि प्रातकर्म नाग्रहीत् । अग्रतः स्थितानां राजपुत्रयूनां विमनसां 'रसायनो रसायनः' इति जल्पितमव्य-

---

पाटय पटू कुरु । कन्धरां ग्रीवाम् । संवाहय मर्दय । कुमुद्वतीत्यादयः सुशब्दत्वात् साधवः ।

परिवर्धकोऽश्वपालः । प्रतिकर्म प्रसाधनम् । कार्तस्वरं हेम । तदपि ज्वलन-

---

कलावती, मेरे गाल पर कुवलय फैला । चारुमती, चन्दन लगा । पाटलिका, कपड़े की हवा कर । इन्दुमती, जलन को कम कर । मदिरावती, कमलों को ठंढा पंखा झलकर आनन्द दे । मालती, मृणालो को जुटा । आवन्तिका, ताड़ का पंखा झल । बन्धुमती, दौड़े जाते हुँए मेरे माथे को पकड़ । धारणिका, मेरे कन्धे को सम्हाल । कुरङ्ग सेना, अपना भीगा हाथ मेरी छाती पर रख । बलाहिका, मेरी भुजाओं को दबा । पद्मावती, मेरे पाँवों को दबा । अनङ्ग सना, मेरे अङ्गों को पकड़ । बिलासवती, क्या समय हो रहा है ? कुमुद्वती, नींद नहीं आ रही है, कहानियाँ सुना ।" कुछ इस प्रकार के पिता के निरन्तर आलापों (बड़बड़ाहट) को सुनते हुए पोड़ित होते हुए हृदय वाले हर्ष ने दुःख के कारण लम्बी रात को जाग कर बिता दिया ।

सुबह में धवल गृह से उतर कर राज द्वार देश पर पहुँचे हुए परिवर्धक द्वारा घोड़ा लाये जाने पर भी पैरों से ही चल कर अपने मन्दिर तक आए । वहाँ उन्होंने अपने भाई राज्यवर्धन को जल्दी बुलाने के लिए तेज दौड़ने वाले दीर्घाध्वग (लम्बा रास्ता तय करने वाले) दूतों को तथा अत्यन्त वेग वाले उष्ट्रपालों को भेजा । मुँह धोने के बाद परिजनों द्वारा लाये गये भी प्रसाधन को ग्रहण नहीं किया । आगे खड़े हुए उदास युवक राजकुमारों की "रसायन-

क्तमश्रौषीत्। पर्यपृच्छच्च तान्—'भद्राः! किं रसायन' इति। पृष्टाश्च ते सर्वे सममेव तूष्णीं बभूवुः। भूयोभूयश्चानुबध्यमाना दुःखेन कथं कथमप्याचचक्षिरे—'देव! पावकं प्रविष्टः' इति। तच्च श्रुत्वा प्लुष्ट इवान्तस्तापेन सद्यो विवर्णतामगात्। उत्पाटयमानमिव च न शशाक शोकान्धं धारयितुं हृदयम्। आसीच्चास्य चेतसि—कामं स्वयं न भवति न तु श्रावयत्यप्रियं वचनमरतिकरमितर इवाभिजातो जनः। कृच्छ्रे च यथानेनानुष्ठितमुज्ज्वलीकृतमधिकतरं ज्वलनप्रवेशेन कल्याणप्रकृति कार्तस्वरमिव कौलपुत्रमस्येति। पुनश्चाचिन्तयत्—'समुचितमेवाथवा स्नेहस्येदम्। किमस्य तातो न तातः, किं वाऽम्बा न जननी, वयं न भ्रातरः। अन्यस्मिन्नपि तावत्स्वामिनि दुर्लभीभवति भवन्त्यसवो ध्रियमाणा ह्रीहेतवो लोके किमुतामृतमयेऽनुजीविनां निर्व्याजबान्धवेऽबन्ध्यप्रसादे सुगृहीतनाम्नि

रसायन" इस प्रकार की अस्फुट बातचीत उन्होंने सुनी एवं उनसे पूछा—"भद्र! रसायन की क्या बात है?" उनके द्वारा ऐसा पूछे जाने पर वे सब के सब चुप हो गए। बार-बार आग्रह किये जाने पर दुःख से किसी-किसी प्रकार उन लोगों ने कहा—"देव! रसायन अग्नि में प्रविष्ट हो गया है।" यह सुनते ही मानसिक ताप से मानो वे जल गए तथा तत्काल उनके चेहरे का रंग उड़ गया। शोक से अन्धीभूत तथा उखड़े हुए से अपने हृदय को वे वश में न रख सके। उनके मन में हुआ—"कुलीन व्यक्ति भले ही नहीं रहता पर इतर व्यक्ति के समान अप्रिय एवं अरति उत्पन्न करने वाली बात नहीं सुनाता।

कठिन समय में जैसा कि इसने किया है इससे इसकी कल्याण करने के स्वभाव वाली कुल पुत्रता स्वर्ण के समान अग्नि में प्रवेश करने से और अधिक उज्ज्वल हो चुकी है। उन्होंने फिर सोचा—"अथवा यह स्नेहोचित ही है। पिताजी क्या इसके पिता नहीं? अथवा मेरी माँ क्या उसकी माँ नहीं? अथवा हम लोग क्या उसके भाई नहीं? दूसरे भी मालिक जब दुर्लभ होने लगते हैं तो उनके अनुजीवियों के द्वारा धारण किये गये प्राण संसार में लज्जा पैदा करते हैं तो फिर अमृत के सदृश, अपने अनुजीवियों के निश्छल बान्धव, व्यर्थ न जाने

ताते। संप्रति सांप्रतमाचपितमनेनात्मानं दहता। किं वास्याकल्पमवस्थितस्य स्थेयसो यशोमयस्य दह्यते पतितः स केवलं दहने। दग्धास्तु वयम्। धन्यः खल्वसावग्रणीः पुण्यभाजाम्। अपुण्यभाक्त्विदमेव राजकुलं कुलपुत्रेण यत्तादृशा वियुक्तम्। अपि च ममापि कः खल्वेतेषां प्राणानां कार्यातिभारः कृत्यशेषो वा, का वा व्यापृतता येन नाद्यापि निष्ठुराः प्राणाः प्रतिष्ठन्ते। को वान्तरायो हृदयस्य येन सहस्रधा न दलती'ति। दुःखार्तश्च न जगाम राजसद्म। समुत्ससर्ज च सर्वकार्याणि। शयनीये निश्त्योत्तरीयवाससा सोत्तमाङ्गमात्मानमवगुण्ठ्यातिष्ठत्।

इत्थ भूते च देवे हर्षे राजनि च तदवस्थे सर्वस्यैव लोकस्य कपोलेषु कीलिता इव कराः, लोचनेषु लेप्यमय्य इवाश्रुस्रुतयः, नासाग्रेषु ग्रथिता इव दृष्टयः, कर्णोत्कीर्णा इव रुदितध्वनयः, जिह्वासु सहजानीव हा कष्टानि, लपनेषु पल्लवितानीव श्वसितानि, अधरेषु लिखितानीव परिदेवि-

---

प्रवेशेनाधिकतरमुज्ज्वलम्। सांप्रतं युक्तम्। अतिशयेन स्थिरः स्थेयस्तस्य व्यापृतता व्यग्रता। प्रष्ठा अग्रगामिनः। प्रतिष्ठन्ते प्रतिष्ठां कुर्वते।

वाली प्रसन्नता करने वाले सुगृहीत नामा पिताजी की बात ही क्या? इस समय अपने आप को जला कर उसने बहुत ही उचित किया क्या वह केवल अग्नि में गिर गया तो उसके कल्पान्त तक रहने वाले स्थायी यशोमय शरीर का क्या हुआ? जले तो हम लोग। पुण्यवानों में अग्रणी वह निश्चय ही धन्य है। पुण्यहीन तो यह राजकुल ही है जो वैसे कुलपुत्र से वियुक्त हो गया। मेरे इन प्राणों को अब कौन-सा काम का बोझ आ पड़ा है या कौन काम बच रहा है या कौन-सी व्यग्रता है जिससे आज भी ये निष्ठुर प्राण प्रयाण नहीं करते। कौन-सा विघ्न आ पड़ा है जिससे मेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े नहीं हो रहे हैं?''इस प्रकार दुःख से पीड़ित होकर हर्ष राजभवन में नहीं गए। सारे काम त्याग बैठे। केवल उत्तरीय वस्त्र से अपने को सिर तक ढँक कर पलङ्ग पर पड़ गए।

देव हर्ष के इस प्रकार हो जाने पर तथा राजा की वैसी अवस्था में होने पर लोगों के हाथ उनके गालों में मानों कीलित हो गए। आँखों में आँसुओं की धारा लेप के समान लग गई, नाक के अग्रभाग में नजरें मानों गुँथ गई, रोने की आवाजें कानों में मानो उकेर दी गई, "हा कष्ट" के शब्द जिह्वाओं

तपदानि, हृदयेषु निधानीकृतानीव दुःखान्यभवन्। उष्णाश्रुदाहभीतेव नाभजत नेत्रोदराणि निद्रा। निःश्वासवातविधूता इव व्यलीयन्त हासाः। निरवशेषदग्धेव च संतापेन न प्रावर्तत वाणी। कथास्वपि नाश्रूयन्त परिहासाः। क्वाप्यगमन्निति नाज्ञायन्त गीतगोष्ठ्यः। जन्मान्तरातीतानीव नास्मर्यन्त लास्यानि। स्वप्नेऽपि नागृह्यन्त प्रसाधनानि। वार्ताऽपि नालभ्यतोपभोगानाम्। नामापि नाकीर्त्यताहारस्य। खपुष्पप्रतिमान्यासन्नापानमण्डलानि लोकान्तरमिवानीयन्त वन्दिवाचः। युगान्तर इवावर्तन्त निर्वृतयः। पुनरिवादह्यत शोकाग्निना मकरकेतुः। दिवापि नामुच्यन्त शयनानि। शनैः शनैश्च महापुरुषविनिपातपिशुनाः समं समन्तात् समुदभवत्भुवने भूयांसो भूपतेरभावाय भयमुत्पादयन्तो भूतानां महोत्पाताः।

पर मानो सहज हो गए, मुखों में श्वास मानो पल्लवित हो गए, होठों पर व्यथा क पद मानो लिख दिये गये तथा हृदयों मे दुःखों के मानो भण्डार लगा दिये गये। निद्रा मानो गर्म आँसुओं में जल जाने के भय से (उनकी) आँखों में नहीं आई। (उनकी) हँसी साँस की हवा से मानो उड़कर गायब हो गई। संताप से मानो बिल्कुल जल जाने के कारण (उनकी) वाणी प्रवृत्त नहीं हुई। बातचीत में भी परिहास नहीं सुनाई पड़े। गीत की गोष्ठियाँ कहाँ गई यह पता नहीं चला। नृत्य के प्रसंग अन्य जन्म की बीती हुई बात के समान स्मृति पर नहीं आ पाये। स्वप्न में भी प्रसाधन नहीं ग्रहण किये गए। उपभोगों की बात तक नहीं चलती। भोजन का नाम भी नहीं लिया जाता। निकट के पानागार आकाश-कुसुम के समान (असंभव) हो गए तथा बन्दी लोगों की बातें मानो परलोक पहुँचा दी गई। आनन्द मानो युगान्तर में पहुँच गए। मानो कामदेव शोकानल द्वारा फिर से जला दिया गया। दिन में भी पलङ्ग नहीं छोड़े जाते थे। और धीरे-धीरे महापुरुष के विनाश के सूचक भयङ्कर महाभूतों के अनेक उपद्रव राजा के अभाव के लिए भय को पैदा करते हुए एक साथ ही चारों ओर उत्पन्न हो गये।

तथा हि दोलायमानसकलकुलाचलचक्रवाला पत्या सार्धं गन्तुकामेव प्रथममचलद्धरित्री। धन्वन्तरेरिवान्तरे तस्मिन् स्मरन्तः परस्परास्फालनवाचालवीचयो विजुघूर्णिरेऽर्णवाः। भूभृदभावभीतानां विततशिखिकलापविकटकुटिलाः केशपाशा इवोदर्वीद्भूवुर्धूमकेतवः ककुभाम्। धूमकेतुकरालितदिङ्मुखं दिक्पालारब्धायुष्कामहोमधूमधूम्रमिवाभवद्भुवनम्। भ्रष्टभासि तप्तकालायसकुम्भबभ्रुणि भानुमण्डले भयंकरकबन्धकायव्याजेन कोऽपि पार्थिवप्राणितार्थी पुरुषोपहारमिवोपजहार। ज्वलितपरिवेषमंडलाभोगभास्वरो जिघृक्षाजृम्भमाणस्वर्भानुभयादुपरचिताग्निप्राकार इव प्रत्यदृश्यत श्वेतभानुः। अवनिपतिप्रतापप्रसाधिताः प्रथमतरकृतपावकप्रवेशा इवादह्यन्तानुरक्ता दिशः। स्रुतशोणितशीकरासारारुणिततनुमरणाय पर्याकुला प्रावृतपाटलांशुकपटेवादृश्यन्त वसुधावधूः। नराधिपविनाश-

शिखी मयूरोऽपि। धूमकेतव उत्पातशंसिनः,अग्नयश्च। करालितानि भीषणीकृतानि, व्याप्तानि च। बभ्रु कपिलम्। श्वेतभानुश्चन्द्रः। प्रसाधिता आवर्जिताः,

जैसे कि पहले सम्पूर्ण कुल पर्वतों को कम्पित करती हुई पृथिवी मानो पति के साथ जाने की इच्छा से डोलने लगी। परस्पर टकराने के कारण शब्दायमान तरङ्गों वाले समुद्र मानो धन्वन्तरि का स्मरण करते हुँए घूर्णित होने लगे। राजा के अभाव से डरी हुँई दिशाओं के मोर-पंख के समान फैले हुँए कुटिल केशपाश के रूप में धूमकेतु तारे आकाश में उठ गए। धूमकेतुओं से दिशाएँ इस प्रकार भीषण हो गई मानो राजा की आयु की कामना से दिक्पालों द्वारा प्रारम्भ किये गये होमों का धुआँ संसार में व्याप्त हो गया हो। सूर्य का मण्डल प्रभाहीन तथा तपे हुँए लोहे के घड़े के समान कपिल वर्ण का हो गया, मानो किसी ने सिर कट जाने पर छटपटाते हुँए शरीर के बहाने राजा के जीवन की कामना से पुरुष की बलि चढ़ाई हो। चन्द्रमण्डल का घेरा चारों ओर से जलने लगा, मानो चन्द्रमा ने ग्रहण की इच्छा से जँभाई लेते हुँए राहुँ के डर से अपनी रक्षा के लिए आग की दीवार खड़ी कर दी हो। अनुरागयुक्त (लाल) दिशाएँ राजा के प्रताप से अपने को प्रसाधित करके मानो पहले ही अग्नि में प्रविष्ट हो चुकी हो इस प्रकार जलने लगी। पृथिवी रूपी वधू बहते हुँए रुधिर के फुहारे से लाल होकर अनुभरण के लिए लालवस्त्र पहने हुँई सी दिखाई पड़ने लगी। राजा के विनाश-

संभ्रमभीतैर्लोकपालैरिव कालायसकवाटपुटैरकालकामेघपटलैररुध्यन्त दिग्द्वाराणि। प्रेतपतिप्रयाणप्रहताः पटवः पटहा इवारटन्तो हृदयस्फोटनाः पस्फायिरे निपततां निर्घातानां घोरा घननिर्घोषाः। निकटीभवद्यम-महिषखुरपुटोद्भूता इव द्युमणिधाम धूसराचक्रुः क्रमेलककचकपिलाः पांशु-वृष्टयः। विरसविराविणीनामुन्मुखीनां शिखिनो ज्वालाः प्रतीच्छन्त्य इव पतन्तीरुल्का नभसो ववाशिरे शिवानां राजयः। राजधामनि धूमायमान-कबरीविभागविभावितविकाराः प्रकीर्णकेशपाशप्रकाशितशोका इव प्राका-शन्त प्रतिभाः कुलदेवतानाम्। उपसिंहासनमाकुलं कालरात्रिविधूयमान-वृजिनवेणीबन्धविभ्रमं बिभ्राणं बभ्राम भ्रामरं पटलम्। अटतामन्तःपुर-स्योपरि क्षणमपि न शशाम व्याक्रोशी वायसानाम्। श्वेतातपत्रमण्डल-मध्याज्जीवितमिव राज्यस्य सरसपिशितपिण्डलोहितं चञ्चच्चञ्चुरुच्चैरुच्च-

मूषिताश्च। कचाः केशाः। शिवानां मृगादीनाम्। कबरीशब्देनात्र कचा लक्ष्यन्ते। व्याक्रोशी परस्पराह्वानशब्दः। वायसानां काकानाम्।

से अकस्मात् डरे हुँए लोकपालों के समान लोहे के किवाड़ जैसे असामयिक काल-मेघों से दिशाओं के द्वार बन्द हो गए। मानो राजा को लेने के लिए यमराज के प्रस्थान काल में जोर-जोर से पटह बजाये जा रहे हों इसी प्रकार हृदय को फोड़ देने वाले अन्तरिक्ष से उत्पन्न वायु के घोर आघातजन्य शब्द बढ़ने लगे। मानो राजा के निकट आते हुँए यमराज के भैंसे के खुरों से उड़ायी गई हो इसी प्रकार आकाश में ऊँट के रोंगटे के समान कपिलवर्ण वाली धूल सूर्यमण्डल को धूसर करने लगी। शृङ्गालियाँ आकाश की ओर मुँह करके जोर-जोर से चिल्लाने लगीं, मानो वे अग्नि की ज्वाला के रूप में आकाश में गिरती हुँई उल्काओं की प्रतीक्षा कर रही हों। राजमहल में कुल देवताओं की प्रतिमाएँ केश भार के बिखर जाने के कारण मानो अपना शोक प्रकट कर रही थीं। भौंरे राजसिंहासन के समीप इस प्रकार मँडराने लगे मानो कालरात्रि चँवर झलने लगी हो। अन्तःपुर के ऊपर-ऊपर उड़ते हुँए कौओं की काँव-काँव क्षण भर के लिए भी बन्द न हुँई। कर्राता हुँआ चंचल चोंच वाला बूढ़ा गीध राज्य के प्राणों के समान तथा गीले मांस-पिण्ड के समान लाल माणिक्य के टुकड़े को उजले छाते के बीच से

खान खण्डं माणिक्यस्य कूजज्जरद्गृध्रः। महोत्पातदूयमानश्च कथमपि निनाय निशाम्।

अन्यस्मिन्नहनि समीपमस्य राजकुलाद् द्रुतगतिवशविशीर्यमाणा-तवाचालिताभिरुग्रीवाभिः किं किमेतदिति पृच्छ्यमानेव दूरादेव भव-नहंसीभिः, स्खलितविशालश्रोणिशिञ्जानरशनानुराविणीभिश्च बाष्पान्धा समुदिश्यमानमार्गेव गृहसारसीभिः अदृष्टकवाटपट्टसंघट्टस्फुटितललाट-पट्टरुधिरपटलेन पटान्तेनेव रक्तांशुकस्य मुखमाच्छाद्य प्ररुदती, संताप-बलविलीनकनकवलयरसधारामिव वेत्रलतामुत्सृजन्ती, मुखमरुत्तरङ्गिता-मुत्तरीयांशुकपटीं स्फुरन्तीं फणिनीव निर्मोकमञ्जरीमाकर्षन्ती, नम्रांसस्रं-सिनानिलविलोलेन नीलतमेन तमालपल्लवचीरचीवरेणेव शोकोचितेन

अन्यस्मिन्नित्यादौ। समीपस्था यशोमत्याः प्रतीहार्याजगामेति संबन्धः। तुलाकोटिर्नूपुरम्। चीरचीवरं वृक्षत्वक्। चीरवासः।

उखाड़ ले गया। इस प्रकार के बड़े-बड़े उत्पातों से दुःखी होकर हर्ष ने किसी प्रकार रात बिताई।

दूसरे दिन हर्ष के पास राजकुल से, तेज गति से दौड़ने के कारण जिसके अलङ्कार टूट टूटकर इस प्रकार झनझना रहे थे मानो विषाद की विजय-घोषणा हो, जिसके अस्तव्यस्त चरण के चंचल नूपुरों की आवाज सुनकर महल की हँसियाँ गर्दन उठाकर इस प्रकार टर्राने लगी मानो उससे "क्या बात है ? क्या बात है" इस प्रकार दूर से ही पूछ रही हो, (आँखों में आँसू भर जाने के कारण) गिर जाने पर जिसके विशाल कटि प्रदेश में लगी हुई करधनी बज उठती तथा उस आवाज से गृहसारसियाँ चिल्ला पड़ती मानो आँखों में आँसुओं के भर जाने के कारण अंधी हुई उसे रास्ता बतला रही हो, अनदेखे किवाड़ से टकरा जाने के कारण जिसके ललाट प्रदेश से रुधिर की धारा बह रही थी मानो लाल वस्त्र के छोर से मुख को ढँककर रो रही हो, संताप के कारण हाथ के स्वर्णनिर्मित कंगन की रसधारा के समान ही जो अपने हाथ की वेत्रलता को छोड़ती जा रही थी, मुख की हवा से फहराते हुए अपने दुपट्टे को जो इस प्रकार समेटती जा रही थी मानो सर्पिणी अपने केंचुल को सम्हालती है, झुके कन्धे से खिसके हुए, हवा से चंचल, गहरे नीले, तमाल वृक्ष के बने चीकर के समान शोक के उचित तथा

धम्मिल्लरचनारहितेन शिरोरुहसंचयेन चञ्चता प्रावृतकुचा, कुचताडनपीडया समुच्छूनाताम्रश्यामतल मुहुर्मुहुरत्युष्णाश्रुप्रमाजनप्रदग्धमिव करकिसलयं धुनाना, चक्षुर्निर्झरे शीर्यति स्नपयन्तीव शोकाग्निप्रवेशायस्वकपोलतलप्रतिबिम्बितमासन्नलोकं लोललोचनप्रवृत्तैस्तरलैस्तारकांशुभिः श्यामायमानमात्मदुःखेन दिवसमपि दहन्तीव 'क्व कुमारः क्व कुमारः ?' इति प्रतिपुरुषं पृच्छन्ती, वेलेति नाम्ना यशोमतः प्रतीहार्याजगाम। विषण्णलोकलोचनप्रत्युद्गता चोपसृत्य कुट्टिमन्यस्तहस्तयुगला गलन्तीभिः सिञ्चन्तीव शुष्यन्तं दशनदीधितिधाराभिराधूसरमधरमधःमुखी विज्ञापितवती—'देव ! परित्रायस्व परित्रायस्व। जीवत्येव भर्तरिकिमप्यध्यवसितं देव्या' इति।

ततस्तदपरमाकर्ण्य च्युत इव सत्त्वेन, द्रुत इव दुःखेन, आचान्त इव चिन्तया, तुलित इव तापेन,अङ्गीकृत इवातङ्केनाप्रतिपत्तिरासीत। आसी-

अप्रतिपत्तिः किंकर्तव्यतामूर्खः। हृतयेऽतिकठिने।

धम्मिल्ल रचना से रहित (अर्थात् बिना सँवारे गये) चञ्चल केशपाश से जिसके स्तन ढँके हुँए थे, स्तनों को ताडन करने की पीडा से जिसका तलभाग फूल गया एवं लाल तथा साँवला पड़ गया ऐसे तथा बार-बार गर्म आँसुओं को पोंछने के कारण जो मानो जल गया था ऐसे हस्तपल्लव को कँपाती हुँई, शोकानल में प्रवेश करने के लिए अपने गालों पर प्रतिबिम्बित होते हुँए समीपस्थ लोगों को मानो अपने बहते हुँए आँसुओं की धारा में स्नान कराती हुँई, चंचल आँखों के तारों से निकलती हुँई किरणों से श्याम वर्ण के दिन को भी मानो अपने दुःख से जलाती हुँई, "कुमार कहाँ हैं ? कुमार कहाँ हैं ?" इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति से जो पूछती जा रही थी ऐसी वेला नाम की रानी यशोमती की प्रतीहारी (द्वारपालिका) आई। विषाद से भरे हुँए लोगों की आँखें जिसकी ओर उठ गई ऐसी वह समीप आकर एवं कुटिम पर दोनों हाथ रखकर अपने दाँतों की बहती हुई किरण धारा से सूखते हुँए तथा झुर्राये हुँए अधर को मानो सींचती हुई मुँह नीचा करके बोली—"देव ! बचाओ-बचाओ। पति के जीते जी ही देवी (यशोमती) कुछ करने जा रही हैं।"

शोक के इस दूसरे कारण को सुन कर देव हर्ष मानो सत्त्व से गिर गये, मानो दुःख से पिघल गये, मानो चिन्ता द्वारा पी लिये गए, मानो ताप द्वारा

च्चास्य चेतसि—'प्रतिपन्नसंज्ञस्य बहुशोऽपि हृदये दुःखाभिषङ्गो निपतन्न-श्मनीव लोहप्रहारः कठिने हुतभुजमुत्थापयति न तु भस्मसात्करोति मे निरनुक्रोशस्य कायम्' इति। उत्थाय च त्वरमाणोऽन्तः पुरमगात्। तत्र च मर्तुमुद्यतानां राजमहिषीणामश्रृणोद् दूरादेव 'तात चूत! चिन्त-यात्मानं प्रवसति ते जननी। वत्स जातीगुच्छ! गच्छाम्यापृच्छस्व माम्। मया विनाद्यानाथा भवसि भगिनि भवनदाडिमलते! रक्ताशोक! मर्षणीयाः पादप्रहाराः कर्णपूरवल्लभङ्गापराधाश्च। पुत्रक! अन्तःपुरबाल-बकुलक वारुणीगण्डूषग्रहणदुर्ललित! दृष्टोऽसि। वत्से प्रियङ्गुलतिके! गाढमालिङ्ग मां दुर्लभा भवामि ते। भद्र भवनद्वारसहकारक! दातव्यो

अनुक्रोशो दया। तत्रेत्यादौ राजमहिषीणामित्येवं प्रायानालापानश्रृणोदिति संबन्धः। आपृच्छस्व ज्योत्कुरु। वारुणी सुरा निवापो मृतमुद्दिश्य दीयते जलादिकम्।

तौल लिये (अर्थात् छोटे बना दिये) गए तथा मानों आतङ्क ने उन्हें अपना अङ्ग बना लिया (इस प्रकार के किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गए)। उनके मन में हुआ—"जिस प्रकार कठोर पर लोहे का प्रहार आग को पैदा करता है उसी प्रकार मुझ चेतनावान् के कठिन हृदय पर बहुत प्रकार के दुःखों का आघात आग उत्पन्न कर देता हैं किन्तु निष्ठुर मेरे शरीर को जला कर राख नहीं करता।" वे उठ कर शीघ्रता से अन्तपुर में पहुँचे और वहाँ मरने लिए उद्यत राजमहिषियों की बाते उन्होंने दूर से ही सुनी—"तात चूत! तू अपनी चिन्ता कर, तेरी माता प्रवास पर है। वत्स जाती गुच्छ! जा रही हूँ, (मुझे) बिदा दो। बहन महल की दाडिमलता! मेरे बिना तू आज अनाथ हो रही है। रक्ताशोक! मेरे चरण-प्रहारों को तथा कर्णपुर बनाने के लिए तुम्हारे पल्लवों को तोड़ने के जो अपराध मैंने किये हैं उन्हें क्षमा करना। बेटा, अन्तःपुर के छोटे बकुल! मदिरा के गण्डूष लेने में दुर्ललित! अब तेरा अन्तिम दर्शन है। बेटी प्रियङ्गु लतिका! कस कर मेरा आलिङ्गन कर, मैं तेरे लिए अब दुर्लभ होने जा रही हूँ। भद्र भवन द्वार के सहकार! तू मुझे जलाञ्जलि देना क्योंकि

निपापतोयाञ्जलिरपत्यमसि। भ्रातः पञ्जरशुक ! यथा न विस्मरसि माम्, किं व्याहरसि दूरीभूतास्मि ते ? शारिके ! स्वप्ने नः समागमः पुनर्भूयात्। मातः ! मार्गलग्नं कस्य समर्पयामि गृहमयूरकम् ? अम्ब ! सुतवल्लालनीयमिदं हंसमिथुनम्, मन्दपुण्यया मया न संभावितोऽस्य चक्रवाकयुगलस्य विवाहोत्सवः। मातृवत्सले ! निवर्तस्व गृहहरिणिके ! समुपनय सौविदल्ल ! वल्लभवल्लकीं परिष्वजे तावदेनाम्। चन्द्रसेने ! सुदृष्टः क्रियतामयं जनः। विन्दुमति ! इयं तेऽन्त्या वन्दना। चेटि ! मुञ्च चरणौ। आर्ये कात्यायनिके ! किं रोदिषि नीतास्मि दैवेन ! तात कञ्चुकिन् ! किं मामलक्षणां प्रदक्षिणीकरोषि। धात्रेयि ! धारयात्मानं किं पादयोः पतसि। भगिनि। गृहाण मामपश्चिमां कण्ठे। कष्टं न दृष्टा प्रियसखी मलयवती कुरङ्गवति ! अयमामन्त्रणाञ्जलिः। सानुमति ! अयमन्त्यः प्रणामः। कुवलयवति ! एष तेऽवसानपरिष्वङ्गः। सख्यः ! क्षन्तव्याः प्रणयकलहाः', इत्येवं प्रायानालापान्।

तू मेरी सन्तान है। भैया पिंजड़े का तोता ! मुझे भूल मत जाना, क्या कहते हो ? मैं तुमसे दूर हो रही हूँ। शारिके ! स्वप्न में हमारा तुम्हारा मिलन फिर हो। हाय माता ! रास्ता रोके हुए गृह-मयूर को किसे सौंपू ? अम्बे ! पुत्र के समान हंस के इस जोड़े को पालना। मन्द पुण्यवाली मेरे द्वारा चकवा-चकवी के इस जोड़े का विवाहोत्सव न रचाया जा सका। माता के प्रति प्रेम रखने वाली अरी घर की हिरनी। लौट जा। हे कंचुकी ! प्यारी वीणा को लाओ, तब तक उसे आलिङ्गन कर लूं। चन्द्रसेना। इस जन (अर्थात् मुझे) को अच्छी तरह देख ले। बिन्दुमती ! यह मेरे प्रति आखिरी वन्दना है। चेटी ! मेरे पैर छोड़ दे। आर्या कात्यायनिका ! क्यों रो रही हो ? दैव द्वारा मैं ले जायी जा रही हूँ। तात कञ्चुकी ! क्यों मुझ कुलच्छनी को घेर रहे हो ? धात्रेयी ! अपने को सम्हाल। क्यों मेरे पैर पड़ती है ? भगिनी ! फिर लौट कर न आने वाली मेरे गले से लग जा। हाय, प्रिय सखी मलयवती को नहीं देखा। कुरङ्गवती ! यह प्रस्थान की हथजोरी है। सानुमती ! यह आखिरी प्रणाम है।" कुवलयवती ! यह अन्त का आलिङ्गन है ! सखियों ! प्रेम के झगड़ों को क्षमा करना।

दह्यमानश्रवणश्च तैः प्रविशन्नेव निर्यान्तीं दत्तसर्वस्वापतेयां गृहीतमरणप्रसाधनाम्, जानकीमिव जातवेदसं पत्युः पुरः प्रवेक्ष्यन्तीम्, प्रत्यग्रस्नानार्द्रदेहतया श्रियमिव भगवतीं सद्यः समुद्रादुत्थिताम्, कुसुम्भबभ्रुणी वाससी दिवमिव तेजसी सांध्ये दधानाम्, ताम्बूलदिग्धरागान्धकाराधरप्रभापटपाटलं पट्टांशुकमिव विधवामरणचिह्नमङ्गलग्नमुद्वहन्तीम् रक्तकण्ठसूत्रेण कुचान्तरावलम्बिना स्फुटितहृदयविगलितरुधिरधाराशङ्कां कुर्वन्तीम्, निर्यक्कुटिलकुण्डलकोटककण्टिकाकृष्टतन्तुना हारेण वलितेन सितांशुकपाशेनेव कण्ठमुत्पीडयन्तीम्, सरसकुङ्कुमाङ्गरागतया कवलितामिव दिधक्षता चिताचिष्मता, चितानलार्चनकुसुमैरिव धवलधवलैरश्रुबिन्दुभिरंशुकोत्सङ्गमापूरयन्तीम्, गृहदेवतामन्त्रणबलिमिव वलयैर्विगलद्भिः पदे पदे विकिरन्तीम् आप्रपदीनां कण्ठ गुणकुसुममालां यम-

---

उन (उपर्युक्त बातों से) हर्ष के कान जलने लगे तथा प्रवेश करते ही उन्होंने निकलती हुई, जो सुहाग के चिह्न अर्पित कर चुकी थी तथा मृत्यु के प्रसाधन ग्रहण कर चुकी थी ऐसी, जो सीता के समान पति के समक्ष अग्नि में प्रवेश करने को तैयार थी ऐसी, जो अभी-अभी स्नान करने के कारण गीले शरीर वाली थी, मानो समुद्र से तुरत निकली हुई भगवती लक्ष्मी हो ऐसी, आकाश जैसे सन्ध्या काल में तेज को धारण करता है उसी प्रकार जो कुसुम्भी रंग के दो कपड़ों को धारण किये हुए थी ऐसी, पान की गाढ़ी लाली से युक्त अधर की प्रभा से लाल पट्टांशुक के समान जिसने अङ्ग में लगे हुए विधवा के मरने के चिह्न को धारण किया था ऐसी, स्तनों के बीच लटकते हुऐ लाल रंग के कण्ठसूत्र से जो अपने फटे हुए हृदय से प्रवाहित रक्तधारा की शङ्का उत्पन्न कर रही थी ऐसी, तिरछे-टेढ़े कुण्डल के अग्रभाग के काँटों में फँसे सूत्र वाले घिरे हार से कण्ठ को उजले अंशुक के फाँस से मानो जो दबा रही थी ऐसी, शरीर में लगे हुऐ कुङ्कुम के सरस अङ्गराग के कारण जो ऐसी लग रही थी मानो चिन्ता की अग्नि जलाने के लिए उसे अपना कौर बना चुकी हो ऐसी, मानो चिन्ताग्नि-पूजन के फूल हों ऐसी अपनी उजली-उजली अश्रु-बिन्दुओं से जो अपने आँचल को भर रही थी ऐसी, गृह देवता के आमन्त्रण की बलि के समान जो कदम-कदम पर गिरते हुए, बलयों को बिखेर रही थी ऐसी, पैर तक लटकती

दोलामिवारूढाम्, अन्तर्गुञ्जन्मधुकरमुखरेणामन्त्र्यमाणलोचनोत्पलामिव कर्णोत्पलेन प्रदक्षिणीक्रियमाणामिव मणिनूपुरबन्धुभिर्बद्धमण्डलं भ्रमद्भिर्भवनहंसैः, संनिहितप्राणसमं मरणाय चित्तमिव चित्रफलकमाविचलं धारयन्तीम्, अर्चाबद्धोद्धूयमानधवलपुष्पदामकां, पतिव्रतापताकामिव पतिप्रासयष्टिमिष्टामुपगूहमानाम्, बन्धोरिव निजचारित्रस्य धवलस्य नृपातपत्रस्य पुरो नेत्रोदकमुत्सृजन्तीम्, पत्युः पादपतनसमुद्गमदभ्याधिकबाष्पाम्भः प्रवाहप्रतिरुद्धदृशः कथमपि प्रतिपन्नादेशान् सचिवान् संविशन्तीम्, अनुनयनिर्वर्तितविधुरवृद्धबन्धुवर्गवर्धमानध्वनिभिर्गृहाक्रन्दैराकृष्यमाणश्रवणाम् भर्तृभाषितनिभैः पञ्जरसिंहबृंहितैर्ह्रियमाणहृदयाम्, धात्र्या भर्तृभक्त्या च निजया प्रसाधिताम्, मूर्च्छया जरत्या च संस्तुतया धार्यमाणाम्, सख्या पीडया च व्यसनसंगतया समालिङ्गिताम् पार-

---

हुई कण्ठमाला के कारण जो यमराज की दोला पर चढ़ी हुई सी लग रही थी ऐसी, कर्णोत्पल के भीतर गुञ्जार करते हुऐ भौंरों के कारण जो मानो लोचनोत्पल से विदा ले रही थी ऐसी, मणिनूपुर के बन्धुभूत भवन के हंस घेरा बाँध कर मानो जिसकी प्रदक्षिणा कर रहे थे ऐसी (जिसमें पति का चित्र बना हुआ था ऐसे) चित्रफलक को मरने के लिए चित्त के रूप में जो अपनी छाती से जोर से चिपकाये हुए थी ऐसी, पति की प्रासयष्टि (कुन्त नामक अस्त्र) को, जिसमें पूजा के लिए बँधी हुई उजले फूल की माला लहरा रही थी, को पतिव्रता की पताका के समान जो धारण कर ह्री थी ऐसी, अपने स्वच्छ चारित्र्य के बन्धु के समान राजा के छाते के आगे जो आँसुओं के जल टपका रही थी ऐसी, पति के पैरों पर गिरने से निकलते हुए अश्रुजल के प्रवाह से भरी आँखों वाले अपने आज्ञाकारी मन्त्रियों को जो किसी प्रकार सन्देश दे रही थी ऐसी अनुनय-विनय करके लौटाये गये, वियोग से व्यथित अपने बड़े-बूढ़े बान्धव जनों के रोने से बढ़ी हुई घर की कराह भरी आवाज से जिसके कान खिचे जा रहे थे ऐसी, पति की आवाज के समान दहाड़ते हुए पिंजड़े के सिंहों का गर्जन सुनने में जिसका हृदय मुग्ध हो रहा था ऐसी, जो धाय तथा अपनी पति भक्ति द्वारा प्रसाधित थी ऐसी मूर्च्छा तथा परिचित वृद्धा जिसे सम्हाल रही थी ऐसी, दुःख सहायता के लिए आई सखी तथा पीड़ा, दोनों ने जिसका आलिङ्गन किया था

अनेन संतापेन च गृहीतसर्वावयवेन परीताम्, कुलपुत्रोच्छ्वसितैश्च महत्तरैरधिष्ठिताम्, कञ्चुकिभिर्दुःखैश्चातिवृद्धैरनुगताम्, भूपालवल्लभान् कौलेयकानपि सास्रमालोकयन्तीम्, सपत्नीनामपि पादयोः पतन्तीम्, चित्रपुत्रिकामप्यामन्त्रयमाणाम्, गृहपतत्रिणामप्यञ्जलिं पुरस्तादुपरचयन्तीम्, पशूनप्यापृच्छयमानाम्, भवनपादपानपि परिष्वजमानां मातरं ददर्श।

दूरादेव च बाष्पायमाणदृष्टिरभ्यधात्—'अम्ब! त्वमपि मां मन्दपुण्यं त्यजसि? प्रसीद, निवर्तस्व' इत्यभिदधान एव च सस्नेहमिव नूपुरमणिमरीचिभिश्चुम्ब्यमानचूडश्चरणयोर्न्यपतत्। देवी तु यशोमती तथा तिष्ठति पादनिहितशिरसि विमनसि कनीयसि प्रेयसि तनये गुरुणा गिरिणेवोद्वेगावेगेनाक्रम्यमाणा, मूर्च्छान्धतमसं रसातलमिव प्रविशन्ती, बाष्पप्रवा-

आपृच्छयमाना ज्योत्कारयन्ती।

बाष्पायमाणा बाष्पमुद्वमन्ती। देवी बाष्पोत्पतनं धारयितुं न शशाकेति।

ऐसी, परिजन तथा सन्ताप दोनों ने जिसके समस्त अङ्गों को पकड़ कर घेर लिया था ऐसी, कुल पुत्रों के उच्छ्वासों तथा बड़े-बड़े लोगों से जो अधिष्ठित थी ऐसी, जो कञ्चुकियों तथा अत्यन्त बढ़े हुए दुःखों से अनुगत थी ऐसी, राजा के प्रिय कुत्तों को भी जो डबडबायी आँखों से देख रही थी ऐसी, जो सौतों के भी पैर पड़ रही थी ऐसी, जो भवन के पक्षियों के भी आगे हाथ जोड़ रही थी ऐसी, जो पशुओं से भी बिदा ले रही थी ऐसी तथा जो भवन के वृक्षों का भी आलिङ्गन कर रही थी ऐसी अपनी माता को देखा।

दूर से ही आँसुओं से युक्त आँखों वाले हर्ष ने कहा—"माँ! तुम भी मुझ मन्दपुण्य को छोड़ रही हो? कृपा करो और इस (आत्महत्या के विचार) से निवृत्त होओ।" यह कहते हुए स्नेहपूर्वक नूपुर मणियों से मस्तक में चुम्बित होते हुए माता के पैरों पर गिर गये। देवी यशोमती उस प्रकार पैरों पर माथा टेके व्याकुल अपने छोटे प्रिय पुत्र के होने पर पर्वत के समान भारी उद्वेग के आवेग से अभिभूत होती हुई, पाताल के समान मूर्च्छा के घोर अन्धकार में प्रवेश करती हुई, आँसुओं के प्रवाह के समान देर तक रोक रखने के कारण

हेणेव चिरनिरोधसंपिण्डितेन स्नेहसंभारेण निर्भराविर्भूतेनाभिभूयमाना, कृतप्रयत्नापि निवारयितुं न शशाक बाष्पोत्पतनम्। उत्कटकुचोत्कम्पप्रकटितासह्यशोकाकूता च गद्गदिकागृह्यमाणगलविकला निःसामान्यमन्युतरलीक्रियमाणाधरोद्देशा पुनरुक्तस्फुरणनिबिडितनासापुटा निमील्य नयने नयनाम्भःसेकप्लवेन प्लावयन्ती विमलौ कपोलौ संच्छाद्य करनखमयूखमालाखचिततनुना तन्वन्तरनिर्गच्छदच्छास्रस्रोतसेवांशुकपटान्तेन किंचिदुत्तानितं वदनेन्दुं दूयमानमानसा स्मरन्ती प्रस्नुतस्तनी प्रसवदिवसादारभ्य सकलमङ्कशायिनः शैशवमस्य ज्ञातिगृहगतहृदया 'अम्ब, तात! न पश्यतं पापां परलोकप्रस्थितां मामेवमतिदुःखिताम्' इति मुहुर्मुहुराक्रन्दती पितरौ, 'हा वत्स! विश्रान्तभागधेया न दृष्टाऽसि' इति प्रेष्ठं ज्येष्ठं तनयमसंनिहितं क्रोशन्ती, 'अनाथा जाता' इति श्वशुरकुलवर्तिनी

संबन्धः। बाष्पोत्पतनमश्रुप्रवाहम्।

इकट्ठे हुए और अत्यन्त प्रकट अपने स्नेह-सम्भार से दबती हुई, प्रयत्न करने पर भी अपने आँसुओं के पतन को न रोक सकी। बुरी तरह स्तनों के काँपने के कारण जिसका असह्य शोक प्रकट हो रहा था, गले में हिचकी बँध जाने के जो व्याकुल हो उठी थी, असामान्य शोक के कारण जिसका अधर फड़-फड़ा रहा था, बार-बार फड़कती हुई जिसकी नाक जकड़ रही थी, आँखें मूँद कर नेत्र-जल की धार से जो अपने दोनों स्वच्छ गालों को सींच रही थी, कुछ उतान किये हुए अपने मुखचन्द्र को हाथ के नखों की किरणों से से खचित, शरीर के अन्दर से निकलते हुए स्वच्छ आँसुओं के स्रोत के समान अंशुक वस्त्र के पल्ले से ढँक कर स्तन से दूध बहाती हुई, दुःखी मन से जन्मदिन से लेकर गोद में सोने वाले कुमार के शैशव का जो स्मरण करने लगी, जिसका हृदय अपने ज्ञातिगृह अर्थात् अपने पिता के घर चला गया तथा "हा अम्ब! हा तात! परलोक प्रस्थान करती हुई इस प्रकार अत्यन्त दुःखी मुझ पापिन को आप लोग नहीं देख रहे हैं?" इस प्रकार बार-बार अपने माँ-बाप के प्रति चिल्ला कर जो कहने लगी, "हाँ वत्स! मैं अभागी तुझे देख न सकी" इस प्रकार दूर गये हुए अपने अत्यन्त प्रिय बड़े बेटे (राज्य वर्धन) को सम्बोधन करके जो चिल्लाने लगी, "तू अनाथ हो गई" इस प्रकार श्वशुर कुल में गई अपनी पुत्री

दुहितरमनुशोचन्ती, निष्करुण! किमपराद्धं तवामुना जनेन?' इति दैवमुपालभमाना, 'नास्ति मत्समा सीमन्तिनी दुःखभागिनी' इति निन्दन्ती बहुविधमात्मानम्, मुषितास्मि कृतान्त नृशंस! त्वया' इत्यकाण्डे कृतान्तं गर्हमाणा मुक्तकण्ठमतिचिरं प्राकृतप्रमदेव प्रारोदीत्।

प्रशान्ते च मन्युवेगे सस्नेहमुत्थापयामास सुतम्। हस्तेन चास्य प्ररुदितस्य पक्ष्मपालीपुञ्जचमानाश्रुकणनिवहां द्रुतामिवाधिकतरं क्षरन्तीं दृष्टिमुन्ममार्ज। स्वयमपि कठोररागपरिपीयमानेन धवलिम्ना मुच्यमानोदरे क्वथदश्रुस्रवत्पर्यन्ते शुक्लशीकरतारतारकितपक्ष्मणी सूक्ष्मतराश्रुबिन्दुपरिपाटीपतनानुबन्धविधुरे लोचने पुनःपुनरापूर्यमाणे प्रमृज्य बाष्पार्द्रगण्डगृहीतां च श्रवणशिखरमारोप्य शोकलम्बामलकलतामधःस्रस्तविलोलबालिकाव्याकुलितां च समुत्सार्य तिरश्चीं चिकुरसटामश्रुप्रवाहपूरित-

---

(राज्यश्री) के बारे में सोच कर जो कहने लगी, "निर्दय! इस जन (अर्थात् मैं) ने तेरा क्या बिगाड़ा था" इस प्रकार जो दैव को उलाहना देने लगी, "मेरे समान दुःखिया नारी कोई नहीं" ऐसा कहकर बहुत प्रकार से जो अपने आपको कोसने लगी, "अरे क्रूर यमराज ने मुझे लूट लिया" इस प्रकार असमय में जो यमराज की निन्दा करने लगी ऐसी वह (रानी यशोमती) सामान्य स्त्री की भाँति बहुत देर तक फूट-फूट कर रोती रही।

जब शोक का वेग कम हुआ तो अपने पुत्र को स्नेहपूर्वक उसने उठा लिया और अपने हाथ से रो पड़े हुए उसकी पपनियों में इकट्ठे होते हुए आँसुओं की बूँदों के कारण मानो पिघल कर और अधिक बहती हुई आंखों को पोंछा। स्वयं भी, जिनके उदर भाग को कठोर लाली द्वारा पी लिये जाने के कारण सफेदी छोड़ रही थी, जिनके दोनों ओर खौलते हुए आंसू बह रहे थे, जिनकी पपनियां उजली बूंदों के तारों से भर गई थी, जो सूक्ष्मतर अश्रु बिन्दुओं के लगातार गिरने से परेशान थे तथा जो बार-बार आंसुओं से भर जाते थे ऐसे अपने नेत्रों को पोछकर तारों के समान उजले-उजले फुहारों से भरी पपनी वाले, आँसुओं से भीगे गालों में चिपकी हुई तथा शोक के कारण खुलकर लम्बी लटकती हुई लटों को कान के ऊपर चढ़ाकर नीचे खिसकी हुई बालिका (कान में पहनी जाने वाली "बाली") से व्याकुल अपने कुटिल केशों को समेट कर

मार्द्रं च किंचिच्चच्युतमुत्क्षिप्य हस्तेन स्तनोत्तरीयं तरङ्गितमिव नखांशुपटलेन भग्नांशुकपटान्ततनुताम्रलेखालाञ्छितलावण्यकुब्जिकावर्जितराजतराजहंसास्यसमुद्गीर्णेन पयसा प्रक्षाल्य मुखकमलं कलमूकलोकविधृते वासःशकले शुचिनि समुन्मृज्य पाणी सुतवदनविनिहितनिभृतनयनयुगला चिरं स्थित्वा पुनः पुनरायतं निःश्वस्यावादीत्—'वत्स ! नासि न प्रियो निर्गुणो वा परित्यागार्हो वा। स्तन्येनैव सह त्वया पीतं मे हृदयम् ! अस्मिंश्च समये प्रभूतप्रभुप्रसादान्तरिता त्वां न पश्यति दृष्टिः। अपि च पुत्रक ! पुरुषान्तरविलोकनव्यसनिनी राज्योपकरणमकरुणा वा नास्मि लक्ष्मीः क्षमा वा। कुलकलत्रमस्मि चारित्रमात्रधना धर्मधवले कुले जाता। किं विस्मृतोऽसि मां समरशतशौण्डस्य पुरुषप्रकाण्डस्य केसरिण इव केसरिणीं गृहिणीम् ? वीरजा वीरजाया वीरजननी च मादृशी पराक्रमक्रयक्रीता कथमन्यथा कुर्यात्। एवंविधेन पित्रा ते भरत-

---

आँसुओं के प्रवाह से भरे हुए भीगे, कुछ खिसके हुए स्तनोत्तरीय को, जो उसके नखों की किरणों से तरङ्गित हो रहा था, हाथ से ऊपर उठाकर देह से चिपके हुए अंशुक वस्त्र के छोर पर डाली गई पतली तांबे की धारी से जिसका सौन्दर्य बढ़ रहा था ऐसी कुब्जिका पुतली से झुकाकर पकड़ हुई चाँदी के बने राजहंस की आकृति के पात्र के मुख से निकलते हुए जल से अपने मुखकमल को धोकर गूंगे द्वारा लिये हुए पवित्र कपड़े के टुकड़े से दोनों हाथ पोंछकर पुत्र के मुखड़े में एकटक दोनों आँखें गड़ाकर देर तक ठहरने के बाद बार-बार लम्बी साँस लेती हुई बोली—"वत्स ! ऐसा नहीं है कि तुम मेरे प्रिय नहीं हो और ऐसा भी नहीं है कि तुम गुणहीन या परित्याग के योग्य हो।

मेरे दूध के साथ ही तुम मेरे हृदय को भी पी गये हो। इस समय अत्यन्त पतिभक्ति के कारण अन्तरित हो जाने से तुम्हें मेरी दृष्टि नहीं देख पाती है। और भी हे प्यारे पुत्र ! अन्य पुरुष द्वारा देखे जाने के व्यसन से युक्त, राज्य का उपकरण मात्र तथा निष्करण लक्ष्मी या पृथिवी मैं नहीं हूँ। मैं कुलस्त्री हूँ, चारित्र्य ही हमारा धन है तथा धर्म से उज्ज्वल कुल में मैं उत्पन्न हुई हूँ। क्या तुम भूल गये कि मैं सैकड़ों युद्धों में मद करने वाले शेर के समान उन पुरुष प्रकाण्ड की शेरनी जैसी धरनी हूँ। वीर पिता की पुत्री, वीर पुरुष की पत्नी एवं वीर पुत्र को जन्म देनेवाली, पराक्रम रूपी द्रव्य से खरीदी गई मुक्त जैसी

भगीरथनाभागनिभेन नरेन्द्रवृन्दारकेण गृहीतः पाणिः। आसेवितः सेवा-संभ्रान्तानन्तसामन्तसीमन्तिनीसमावर्जितजाम्बूनदघटाभिषेकः शिरसा। लब्धो मनोरथदुर्लभो महादेवीपट्टबन्धसत्कारलाभो ललाटेन। आपीतौ युष्मद्विधैः पुत्रैरमित्रकलत्रबन्दिवृन्दविधूयमानचामरमरुच्चलचीनांशुकधरौ पयोधरौ। सपत्नीनां शिरःसु निहितं नमन्निखिलकटककुटुम्बिनीकिरीट-माणिक्यमालार्चितं चरणयुगलकम्। एवं कृतार्थसर्वावयवा किमपरमपेक्षे क्षीणपुण्या? भर्तुर्मविधवैव वाञ्छामि। न च शक्नोमि दग्धस्य स्वभर्तु-रार्यपुत्रविरहिता रतिरिव निरर्थकात् प्रलापान् कर्तुम्। पितुश्च ते पादधूलि-रिव प्रथमं गगनगमनमावेदयन्ती बहुमता भविष्यामि शूरानुरागिणीनां सुराङ्गनानाम्। प्रत्यग्रदृष्टदारुणदुःखदग्धायाश्च मे किं धक्ष्यति धूमध्वजः।

जाम्बूनदं सुवर्णम्। पादधूलिरिवेति। सापि प्रथमगगनगमनमावेदयति। धक्ष्यति भस्मीकरिष्यति। धूमध्वजोऽग्निः।

(स्त्री) कुछ और कैसे कर सकती है? भरत, भगीरथ तथा नाभाग तुल्य राजाओं में श्रेष्ठ तुम्हारे पिता ने मेरा पाणिग्रहण किया है। सेवापरायण अनेक सामन्तों की पत्नियों ने स्वर्ण-कलश उठाकर मेरे सिर पर अभिषेक किया है। मनोरथ द्वारा भी दुर्लभ महादेवी पद के पट्टबन्ध-सम्मान को मैंने अपने ललाट से प्राप्त कर लिया है। तुम्हारे जैसे वीरों ने शत्रु की पत्नियों द्वारा झले गये चँवर की हवा से चंचल चीनांशुक धारण करने वाले स्तनों का पान किया है। झुकती हुई सम्पूर्ण कटक (स्कन्धवार) की कुटुम्बिनियों के किरीट में खचित माणिक्य की माला से पूजित मेरे दोनों पैर सौतों के मस्तकों पर रह चुके हैं। इस प्रकार जब कि मेरे सारे अङ्ग कृतकृत्य हो चुके हैं तो क्षीण पुण्योंवाली मैं अब और क्या चाहूँ? इसलिए अविधवा रहकर ही मैं मरना चाहती हूँ। विधवा रति (कामदेव पत्नी) के सदृश मैं जले हुए अपने पति के शोक में व्यर्थ प्रलाप नहीं कर सकती। तुम्हारे पिता के पैरों की धूल से सदृश आकाश में अपने गमन को पहले ही सूचित करती हुई मैं शूरों के प्रति अनुराग रखने वाली देवताओं के सम्मान का पात्र बनूँगी। अभी-अभी देखे गये भीषण दुःख से जली हुई मुझे अग्नि क्या जलाएगी? मरने से अधिक साहस का काम इस समय मेरा जीवित

मरणाच्च मे जीवितमेवास्मिन्समये साहसम् । अतिशीतलः पतिशोकानलादक्षयस्नेहेन्धनादस्मादनलः । कैलासकल्पे प्रवसति जीवेश्वरे जरत्तृणकर्णिकालघीयसि जीविते लोभ इति क्व घटते । अपि च जीवन्तीमपि मां नरपतिमरणावधीरणमहापातकिनीं न स्प्रक्ष्यन्ति पुत्र ! पुत्रराज्यसुखानि । दुःखदग्धानां च भूतिरमङ्गला चाप्रशस्ता च निरुपयोगा च भवति । वत्स ! विश्वस्तानां यशसा स्थातुमिच्छामि लोके न वपुषा । तदहमेव त्वां तावत्तात ! प्रसादयामि न पुनर्मनोरथप्रातिकूल्येन कदर्थनीयास्मि । इत्युक्त्वा पादयोरपतत् ।

स तु ससंभ्रममपनीय चरणयुगलमवनमिततनुरुभयकरविधृतवपुषमवनितलगतशिरसमुदनमयन्मातरम् । दुर्निवारतां च शुचः सम्मवधार्य कुलयोषिदुचितां च तामेव श्रेयसीं मन्यमानः क्रियां कृतनिश्चयां च तां ज्ञात्वा तूष्णीमधोऽभवत् ।

भूतिः समृद्धिः, भस्म च । विश्वस्तानां विधवानाम् ।

रहना है । स्नेह रूपी इन्धन वाली पति की शोकाग्नि की अपेक्षा यह (चिता की) अग्नि अत्यधिक ठण्ढी है । कैलास के समान प्राणनाथ जब प्रवास कर रहे हैं तो पुराने तिनके के टुकड़े के समान तुच्छ जीवन के लिए लोभ की बात कहाँ घटती है ? और भी, हे पुत्र ! पुत्र के राज्य सुख, राजा की मृत्यु से तिरस्कार जन्य पापवाली जीवित रहती हुई भी मुझे नहीं छू पायेंगे । दुःख से जले हुए व्यक्तियों के लिए ऐश्वर्य अमङ्गल, अप्रशस्त तथा अनुपयोगी हुआ करता है । हे वत्स ! मैं विश्वस्तजनों के यश से इस संसार में रहना चाहता हूँ न कि शरीर से। इसलिए हे तात ! मैं ही तुम्हें मनाती हूँ कि तुम मुझे मेरी इच्छा की प्रतिकूलता द्वारा मुझे कष्ट न पहुँचाना ।'' यह कहकर (हर्ष के) पैर पर गिर गई ।

देव हर्ष ने हड़बड़ाकर अपने दोनों पैर हटा लिए तथा झुककर एवं दोनों हाथों से पकड़कर जमीन पर माथा टेकी हुई अपनी माँ को उठा लिया । शोक को हटाना कठिन समझकर कुल स्त्रियों के लिए उचित उसी क्रिया को उन्होंने श्रेयस्कर माना तथा माता को कृत निश्चय जानकर चुपचाप अपना मुँह नीचा कर लिया ।

अभिनन्दति हि स्नेहकातरापि कुलीनता देशकालानुरूपम्। देव्यपि यशोमती परिष्वज्य समाघ्राय च शिरसि निर्गत्य चरणाभ्यामेव चान्तःपुरात्पौराक्रन्दप्रतिशब्दनिर्भराभिरुपरुध्यमानेव दिग्भिः सरस्वतीतीरं ययौ। तत्र च स्त्रीस्वभावकातरैर्दृष्टिपातैः प्रविकसितरक्तपङ्कजपुञ्जैरिवार्चयित्वा भगवन्तं भानुमन्तमिव मूर्तिरैन्दवी चित्रभानुं प्राविशत्। इतरोऽपि मातृमरणविह्वलो बन्धुवर्गपरिवृतः पितुः पार्श्वं प्रायात्। अपश्यच्च स्वल्पावशेषप्राणवृत्तिं परिवर्त्यमानतारकं तारकराजमिवास्तमभिलषन्तं जनयितारम्। असह्यशोकोद्रेकाभिद्रुतश्च त्याजितः स्नेहेन धैर्यम्। आश्लिष्यास्य सकलदुर्मदमहीपालमौलिमालोलालितौ पादपद्मावन्तस्तापान्मुखचन्द्रमिव द्रवीभवन्तं दशनज्योत्स्नाजालमिव जलतामापद्यमानं लोचनलावण्यमिव विलीयमानं मुखसुधारसमिव स्यन्दमानम्, अच्छाच्छमश्रुस्रोतसां संतानं महामेघमयविलोचन इव वर्षन्नितरवद्विमुक्तारावश्चिरं रुरोद।

अमावास्यायामिन्दुर्भानुमन्तं प्रविशतीति प्रसिद्धम्। चित्रभानुमग्निम्। तारकराजं चन्द्रम्। असह्येत्यादौ चिरं रुरोदेति संबन्धः। उद्रेक आधिक्यम्।

स्नेह से कातर होकर भी कुलीनता देश एवं काल के अनुरूप आचरण का अभिनन्दन करती है। देवी यशोमती ने पुत्र का आलिङ्गन कर और उसका माथा सूँघकर अन्तःपुर से पैदल ही निकलकर पुरवासियों के रोने-कलपने की आवाज से प्रतिध्वनित दिशाओं द्वारा मानो रोकी जाने पर भी सरस्वती (नदी) के तट पर पहुँच गई। वहाँ स्त्री-स्वभाव के कारण कातर एवं खिले हुए रक्त कमल के समूहों के समान अपने दृष्टिपातों से पूजा करके अग्नि में उसी प्रकार प्रविष्ट हो गई जिस प्रकार भगवान् सूर्य में चन्द्रमा की मूर्ति प्रवेश करती है। माता की मृत्यु से विह्वल हर्ष भी बन्धुओं के बीच घिरकर पिता के पास पहुँचे और जिनके प्राण कुछ-कुछ बच रहे थे तथा जो आँखें तरेरते जा रहे थे ऐसे पिता को उन्होंने अस्त होना ही चाहते हुए चन्द्रमा के समान देखा। असहनीय शोक के आवेग से अभिभूत हो जाने से स्नेह के कारण उनका धैर्य जाता रहा। सम्पूर्ण दुर्मद राजाओं के मस्तकों द्वारा लालित अपने पिता के चरण कमलों को पकड़ कर आन्तरिक ताप के कारण मानो उनका मुखचन्द्र पिघल रहा था या दाँतों की किरणें ही पानी बनती जा रही थी या आँखों का सौन्दर्य पिघल रहा था या मुख का अमृतरस ही चू रहा था, इस प्रकार महामेघ के सदृश अपने नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लगाने लगे तथा दहाड़े मारकर देर तक रोते रहे।

राजा तु तमुपरुध्यमानदृष्टिरविरतरुदितशब्दाश्रितश्रवणः प्रत्यभिज्ञाय शनैः शनैरवादीत्—"पुत्र ! नार्हस्येवं भवितुम् । भवद्विधा न ह्यमहासत्त्वाः । महासत्त्वता हि प्रथममवलम्बनं लोकस्य पश्चाद्राजबीजिता । सत्त्ववतां चाग्रणीः सर्वातिशयाश्रितः क्व भवान्, क्व वैक्लव्यम् ? 'कुलप्रदीपोऽसि' इति दिवसकरसदृशतेजसस्ते लघूकरणमिव । 'पुरुषसिंहोऽसि' इति शौर्यपटुप्रज्ञोपबृंहितपराक्रमस्य निन्देव । 'क्षितिरियं तव' इति लक्षणाख्यातचक्रवर्तिपदस्य पुनरुक्तमिव । 'गृह्यतां श्रीः' इति स्वयमेव श्रिया परिगृहीतस्य विपरीतमिव । 'अध्यास्यतामयं लोकः' इत्युभयलोकविजिगीषोरपुष्कलमिव । 'स्वीक्रियतां कोशः' इति शशिकरनिकरनिर्मलयशःसंचयैकाभिनिवेशिनो निरुपयोगमिव । 'आत्मीक्रियतां राजकम्' इति गुणगणात्मीकृतजगतो गतार्थमिव । 'उह्यतां राज्यभारः' इति भुवन-

उपरुध्यमाना उपरोधवती दृष्टिर्बुद्धिर्यस्य सः । अवलम्बनमाश्रयः । राजबीजिता

मुर्दा हुई दृष्टि वाले राजा ने लगातार रोने की आवाज के कान में पहुँचने से पहचान कर हर्ष से धीरे-धीरे कहा—"बेटे ! तुम्हें ऐसा नहीं होना चाहिए। तुम्हारे जैसे लोग महासत्त्व हुआ करते हैं। महासत्त्व ही लोगों का पहला आश्रय है, राजपुत्रता बाद में। सत्त्ववान् व्यक्तियों के अग्रणी तथा सब में बढ़े-चढ़े कहाँ तुम और कहाँ यह व्याकुलता ? "तुम कुल के दीपक हो।" यह कहना सूर्य के समान तेजस्वी तुम्हें हलका करना जैसे है। "तुम पुरुषसिंह हो" यह कहना शूरता और प्रखर बुद्धि द्वारा बढ़े हुए पराक्रम वाले तुम्हारी निन्दा के समान है। "यह पृथिवी तुम्हारी है" यह कहना लक्षणों द्वारा ही कहे गए चक्रवर्ती पद वाले तुम्हारे लिए पुनरुक्त के समान है। "श्री को ग्रहण करो" यह कहना स्वयं ही श्री द्वारा स्वीकृत किये गये तुम्हारे लिए विपरीत जैसा है। "इस संसार में राज्य करो" यह कहना दोनों लोकों को जीतने के इच्छुक तुम्हारे लिए पर्याप्त नहीं है। "खजाने को स्वीकार करो" यह कहना चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ कीर्त्ति संग्रह मात्र में अभिनिवेश (इच्छा) रखने वाले तुम्हारे लिए अनुपयोगी जैसा है। "राजसमूह को अपना बना लो" यह कहना अपने गुणों से संसार को अपना बना लेने वाले तुम्हारे लिए कोई नई बात नहीं। "राज्य-भार को वहन करो" यह कहना तीनों लोकों के भार को वहन करने योग्य तुम्हारे

न्ययभारवहनोचितस्यानुचितनियोग इव। 'प्रजाः परिरक्ष्यन्ताम्' इति दीर्घदोर्दण्डार्गलितदिङ्मुखस्यानुवाद इव। 'परिजनः परिपाल्यताम्' इति लोकपालोपमस्यानुषङ्गिकमिव। 'सातत्येन शस्त्राभ्यासः कार्यः' इति धनुर्गुणकिणकलङ्ककालीकृतप्रकोष्ठस्य किमादिश्यते। 'निग्राह्यतां चापलजातम्' इति नूतनतरवयसि निगृहीतेन्द्रियस्य निरवकाशेव मे वाणी। 'निरवशेषतां शत्रवो नेयाः' इति सहजस्य तेजस एवेयं चिन्ता।" इत्थवं वदन्नेवापुनरुन्मीलनाय निमिमील राजसिंहो लोचने। प्रत्यपद्यत च पूषात्मजः।

अस्मिन्नेवान्तरे पूषाप्यायुषेव तेजसा व्ययुज्यत ततश्च लज्जमान इव नरपतिजीवितापहरणजनितादात्मजापराधादधोमुखः समभवत्। भूपा-

---

राजान्वयिता। कुलप्रदीपोऽसीत्यादौ पूर्ववदाक्षेपाभ्यूहः। आनुषङ्गिकं प्रस्तावागतम्। अपुनरुन्मीलनाय पुनरप्रबोधनाय। निमिमील न्यमीलयत्।

पूष्ण आत्मजो यमः। प्रत्यपद्यत प्राप्तः।

लिए अनुचित आज्ञा के समान है। "प्रजाजनों की रक्षा करो" यह कहना अपने विशाल भुजदण्डों द्वारा दिशाओं के मुखों को अर्गलित कर देने वाले तुम्हारे लिए अनुवाद जैसा है। "परिजन का परिपालन करो" यह कहना लोकपालों के सदृश तुम्हारे लिए आनुषङ्गिक जैसा है। "निरन्तर शस्त्रों का अभ्यास करना" यह कहना धनुष की डोरी की रगड़ खाने से काले पड़ गये प्रकोष्ठ वाले तुम्हारे लिए आदेश क्या देना है? "चञ्चलताओं पर नियन्त्रण रखना" यह बात नवानतर आयु में इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाले तुम्हारे लिए घटती सी नहीं।" अपने शत्रुओं को समाप्त कर देना" यह सहज तेज वाले तुम्हारे लिए अफसोस की बात है। इस प्रकार बोलते-बोलते ही फिर कभी न खोलने के लिए अर्थात् सदा के लिए राजा ने अपनी आँखें मूंद लीं और पूषा-पुत्र अर्थात् यम वहाँ आ पहुँचा।

इसी बीच सूर्य भी आयु की भाँति तेज से वियुक्त हो गया और मानो राजा के प्राणों को हरने से उत्पन्न अपने पुत्र यम के अपराध के कारण लज्जित सा होकर उसने अपना मुँह नीचा कर लिया। राजा के अभाव रूपी शोकानल से मानो अन्दर ही अन्दर संतप्त किया गया वह ताम्बे के रंग का हो गया। मानो

लाभावशोकशिखिनेवान्तस्ताप्यमानस्ताम्रतां प्रपेदे। मन्दं मन्दमप्रियप्रश्नार्थमिव लौकिकीं स्थितिमनुवर्तमानोऽवातरद्दिवः। दित्सुरिव जनेशाय जलाञ्जलिमपरजलनिधिसमीपमुपससर्प। सद्योदत्तजलाञ्जलिर्दुःखदहनदग्धमिव करसहस्रमालोहितमाधत्त।

एवं च महानराधिपनिधनधीयमानविपुलवैराग्य इव शान्तवपुषि, विशति गिरिगुहागह्वरं गभस्तिमालिनि, समुपोह्यमानमहाजनाश्रुदुर्दिनार्द्रीकृत इव निर्वात्यातपे, रोदनताम्रसकललोचनरुचेव लोहितायति जगति, उष्णायमानानेकनरनिःश्वाससंतापप्लुष्ट इव च नीलायमाने दिवसे, नृपानुगमनप्रचलितयेव लक्ष्म्या मुच्यमानासु कमलिनीषु, पतिशुचेव परिवृतच्छायायां श्यामायमानायां भुवि, कुलपुत्रेष्विव परित्यक्तकलत्रेषु कृतकरुणप्रलापेषु वनान्ताश्रयत्सु दुःखितेषु चक्रवाकेषु, छत्र-

एवं चेत्यादौ। अस्मिन्सति नरेन्द्रो हुताशनसत्क्रियया यशःशेषतामनीयतेति संबन्धः। गभस्तीन् रश्मीन् मलते धारयतीति गभस्तिमाली सूर्यस्तस्मिन्। समुपोह्यमान वर्धमानम्। निर्वाति शाम्यति सति। यश्चार्द्रीकृतः सोऽवश्यं निर्वाति

इस अप्रिय प्रश्न को पूछने के लिए (कि राजा की मृत्यु कैसे हुई) लोक मर्यादा का अनुसरण कर रहा हो, इस प्रकार सूर्य धीरे-धीरे आकाश से उतर गया। मानो मृत राजा को जलाञ्जलि देने की इच्छा से पश्चिम समुद्र के समीप पहुँच गया। तुरन्त जलाञ्जलि देकर मानो दुःख की आग से जले हुए अपने लाल-लाल हजारों करों (हाथों या किरणों) को उसने धारण किया।

इस प्रकार मानो महाराज की मृत्यु के कारण अत्यधिक वैराग्य को ग्रहण करके शान्त शरीर वाले भगवान् सूर्य के पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करने पर, बड़े लोगों द्वारा लगातार अश्रु-वृष्टि करने के कारण आतप के ढूँढ़े किये जाने पर, रुलाई के कारण लाल हुए सम्पूर्ण लोगों की आँखों की कान्ति से ही मानो संसार के लाल हो जाने पर, अनेक लोगों की गरम सांस के संताप से झुलसकर ही मानो दिन के नीले पड़ जाने पर, मानो राजा का अनुगमन करने के लिए चल पड़ी लक्ष्मी के द्वारा कमलिनियों के वियुक्त हो जाने पर, मानो पति के शोक में छाया से ढँकी हुई पृथिवी के श्याम हो जाने पर, कुलपुत्रों के समान चक्रवाकों द्वारा दुःखी होकर अपनी पत्नियों का परित्याग कर करुण क्रन्दन

भङ्गभीतेष्विव निगूढकोशेषु कुशेशयेषु, स्फुटितदिग्वधूहृदयरुधिरपटलप्लव इव गलिते रक्तातपे, क्रमेण च लोकान्तरमुपगतवत्यनुरागशेषे जाते तेजसामधीशे, गगनतलवितन्यमानबहलरागपाटलायां प्रेतपताकायामिव प्रवृत्तायां, संध्यायां शवशिबिकालङ्कारकृष्णचामरमालास्विव स्फुरन्तीषु दर्शनप्रतिकूलासु तिमिरलेखासु असितागुरुकालकाष्ठायां केनापि चितायामिव रचितायां रजन्यां, दन्तामलपत्रप्रसाधितकर्णिकासु केसरमालाकल्पितमुण्डमालिकासु, अनुमर्तुमिवोद्यतासु प्रहसितमुखीषु कुमुदलक्ष्मीषु, अवतरत् त्रिदशविमानकिङ्किणीक्वणित इव श्रूयमाणे शाखिशिखरकुलायलीयमानशकुनिकुलकूजिते, नाकपथप्रस्थितशाश्विवप्रत्युद्गतपुरुहूतातपत्र

शीतलीभवति । छायातपशीलपक्षजातिः, कान्तिश्च । श्यामा रात्रिः, नायिका च । वनं तोयम्, विपिनं च । छत्रभङ्गो राजदण्डः, पत्राणां च छत्राकारताभेदः । कोशो गञ्जः, कर्णिका च । अनुरागो भक्तिः, लौहित्यं च तेजसामधीशो राजापि । शवशिबिका मृतयानम् । चामरमाला अपि दर्शनप्रतिकूलाः । काष्ठा दिशः, दारु च । काष्ठदन्तपत्रस्य चामलं पत्रम् । कर्णिका कर्णाभरणं च । केसरशब्दः किंजल्कब-

करने पर तथा वन प्रदेश का आश्रय ले लेने पर, कमलों द्वारा मानो छत्र-भङ्ग के डर से अपने कोश (धनराशि या बीजकोश) को छिपा लेने पर, दिशारूपी बन्धुओं के फटे हुए हृदय की रक्त-धारा के समान रक्तातप के विगलित हो जाने पर, क्रम से अनुराग-शेष होकर सूर्य के लोकान्तर में पहुँच जाने पर, आकाश मंडल में खूब लाल रंग की संध्या के प्रेतों की पताका के समान फैल जाने पर, शवशिबिका (अरथी) में सजावट के लिए लगाये गये काले चँवरों की मालाओं के समान अदर्शनीय अन्धकार की लेखाओं के स्फुटित हो जाने पर, मानो किसी ने काले अगुरु नामक चिता का निर्माण किया हो इस प्रकार रात्रि हो जाने पर, कुमुदलक्ष्मियों द्वारा स्वच्छ पत्र रूपी दन्त पत्र और कर्णिका (बीजकोश रूपी कर्णाभरण) से श्रृङ्गार कर एवं केसर (पराग, वकुल की मुण्डमाला पहनकर मानो अनुमरण के लिए हँसते-हँसते तत्पर हो जाने पर, उतरते हुए देवविमान की किङ्किणियों की आवाज की भाँति पेड़ों की चोटियों पर बने घोंसलों में बैठते हुए पक्षियों की चहचहाट का सुनाई पड़ना प्रारम्भ होने पर, स्वर्ग मार्ग में

इव पूर्वस्यां दिशि दृश्यमाने चन्द्रमसि, नरेन्द्रः स्वयं समोपतस्कन्धै-र्गृहीत्वा शवशिबिकां शिबिसमः सामन्तैः पौरैश्च पुरोहितपुरःसरैः सरितं सरस्वतीं नीत्वा नरपतिसमुचितायां चितायां हुताशसत्क्रियया यशःशेषता-मनीयत ।

देवोऽपि हर्षः पुञ्जीभूतेन सकलेनेव जीवलोकेन लोकेन राजकुलसंब-द्धेनाशेषेण शोकमूकेन परिवृतोऽन्तर्वर्तिनापि शोकानलतप्तेन स्नेहद्रवेण बहिरिव सिच्यमानो निर्व्यवधानायां धरण्यामुपविष्ट एव तां निशीथिनीं भीमरथीभीमामखिलां सराजको जजागार । अजनि चास्य चेतसि—ताते धूरीधूते संप्रत्येतावान् खलु जीवलोकः, लोकस्य भग्नाः पन्थानः, मनो-रथानां खिलीभूतानि भूतिस्थानानि, स्थगितान्यानन्दस्य द्वाराणि, सुप्ता सत्यवादिता, लुप्ता लोकयात्रा, विलीना बाहुशालिता, प्रलीना प्रियाला-

---

कुलयोः । शिबिर्नाम राजर्षिरभूत् ।

निशीथिनीं रात्रिम् । भीमरथी नरकनदी; कालरात्रिर्वा । अन्ये तु सप्तसप्तत्या वर्षैस्तत्संख्यैश्च मासैर्दिनैश्च तावद्भिर्गतैरेका रात्रिर्भीमरथी भवति, तामतिक्रान्तो वर्षशतजीवी नरो भवतीति प्राहुः । जीवलोकः संसारः । खिलीभूतानि शून्यानि । लोकयात्रा व्यवहारः ।

प्रस्थान किये हुए राजा के स्वागत में सिंहासन से उठे हुए इन्द्र के छत्र के समान पूर्व दिशा में चन्द्रमा के दिखाई पड़ने पर, (राजा) शिब के समान राजा (प्रभाकरवर्धन) स्वयं कन्धा लगाकर और अरथी टेककर पुरोहितों को आगे करके, सामन्तों एवं नगरवासियों द्वारा सरस्वती नदी तक पहुँचाये गये एवं राजा के योग्य चिता में अग्नि-संस्कार द्वारा केवल कीर्ति शेष कर दिये गए ।

देवहर्ष ने भी मानो सम्पूर्ण संसार के इकट्ठे हुए राजकुल से सम्बद्ध शोक के कारण गूँगे बने हुए लोगों से घिरकर, मानो आन्तरिक भी शोकाग्नि से तप्त स्नेह के द्रव से बाहर सिंचे जाते हुए, बिना बिछावन के अर्थात् खाली जमीन पर ही बैठे-बैठे राजाओं के साथ भीमरथी (नरक की नदी) के सदृश भयानक उस पूरी रात को जागकर बिता दिया । उनके मन में हुआ—"तात (पिता जी) के चले जाने पर यह विशाल संसार अनाथ हो गया । लोक की मर्यादाएँ भग्न हो गईं । मनोरथों के उत्पन्न होने के स्थान शून्य हो गए । आनन्द के दरवाजे बन्द हो गए । सत्यवादिता सो गई । लोकयात्रा

र्पिता, प्रोषिताः पुरुषकारविहारविकाराः, समाप्ता समरशौण्डता, ध्वस्ता परगुणप्रीतिः, विश्रान्ता विश्वासभूमयः, अस्वदान्यपदानानि, निरुपयोगानि शास्त्राणि, निरवलम्बना विक्रमैकरसता, कथावशेषा विशेषज्ञता, ददातु जनो जलाञ्जलिर्जित्वाय, प्रतिपद्यता प्रव्रज्यां प्रजापालता, बध्नातु वैधव्यवेणीं वरमनुष्यता, समाश्रयतु राजश्रीराश्रमपदम्, परिधत्तां धवले वाससी वसुमती, वस्तु वल्कले विलासिता, तपस्तु, तपोवनेषु क्व पुत्रः प्राप्स्यति तादृशान् महापुरुषनिर्माणपरमाणून् परमेष्ठी, शून्याः संवृत्ता दश दिशो गुणानाम्, जगज्जातमन्धकारं धर्मस्य, निष्फलमधुना जन्म शास्त्रोपजीविनाम्। तातेन विना कुतस्त्यास्तादृश्यो दिवसमसम-समररसममारब्धकलहकथाकण्टकितसुभटकपोलभित्तयो वीरगोष्ठ्यः। अपि नाम स्वप्नेऽपि दृश्येत दीर्घरक्तनयनं पुनस्तन्मुखसरोजम्, जन्मा-

प्रावृणोतु परिदधातु। कलहो रणः।

(अर्थात् संसार के कामकाज) लुप्त हो गई। भुजाओं की वीरता गायब हो गई। प्रिय बातचीत समाप्त हो गई। पौरुष के भाव प्रवास कर गये। युद्ध कुशलता खतम हो गई। दूसरों के गुणों के प्रति प्रेम ध्वस्त हो गया। विश्वास-पात्र लोग न रहे। अपदानों (वीरता के विलक्षण कार्यों) के लिए कोई जगह न रही। शास्त्र निरुपयोगी हो गये। पराक्रम मात्र में आनन्द लेना निराश्रय हो गया। विशेषज्ञता की कहानी भर बची रह गई। अब लोग तेजस्विता को जलाञ्जलि दे दें। प्रजा पालन के कर्म संन्यास ग्रहण कर लें। श्रेष्ठ मानवता विधिवोचित वेणी बाँध ले। राजलक्ष्मी आश्रम में जाकर निवास करे। पृथिवी उजले वस्त्रों का जोड़ा पहन ले। विलासिता वल्कला का जोड़ा धारण कर ले। तेजस्विता तपोवनों में जाकर तपस्या करे। ब्रह्मा महापुरुषों के निर्माणार्थ वैसे परमाणुओं को कहाँ प्राप्त करेंगे? गुणों के लिए दसो दिशाएँ सूनी हो गईं। धर्म के लिए संसार अन्धकार मय बन गया। शास्त्रोपजीवियों का जन्म अब व्यर्थ हो गया। तात के बिना वैसी वीर गोष्ठियाँ, जिनमें दिन में विलक्षण युद्धानन्द के कारण कलह से सम्बद्ध वार्तालाप करने के कारण वीरों के गाल पुलकित हो जाते थे, कहाँ की रह गईं? काश, स्वप्न में भी विशाल और लाल नेत्रों वाला उनका मुख कमल फिर से दिखाई पड़ जाता। दूसरे जन्म में

न्तरेऽपि पुनः परिष्वज्येत तल्लोहस्तम्भाभ्यधिकगरिमगर्भं भुजयुगलम् । लोकान्तरेऽपि पुत्रेत्यालपतः पुनः पुनः श्रूयेत सा सुधारसमुद्गिरन्ती मथ्यमानक्षीरसागरोद्गारगम्भीरा भारतीति। एतानि चान्यानि च चिन्तयत एवास्य कथमपि सा क्षयमियाय ।

ततः शुचेव मुक्तकण्ठमारटत्सु कृकवाककुलेषु, गृहगिरितरुशिखरेभ्यः पातयत्स्वात्मानं मान्दरमयूरेषु, परित्यक्तनिजनिवासेषु च वनाय प्रस्थितेषु पत्ररथेषु, सद्यस्तनूभूते ताम्यति तमसि, मन्दीभूतात्मस्नेहेष्वभावमभिलपत्सु प्रदीपेषु, स्फुरदरुणकिरणवल्कलप्रावृतवपुषि प्रव्रज्यामिव प्रतिपन्ने नभसि, प्रभातसमयेन समुत्तीर्यमाणासु पार्थिवास्थिशकलास्विव कलविङ्ककंधराधूसरासु तारकासु, भूभृद्धातुगर्भकुम्भधारिषु विविधसरःसरित्तीर्थाभिमुखेषु प्रस्थितेषु वनकरिकुलेषु, शावशुचिसिक्थपटल-

---

ततः शुचेत्यादौ । चचाल स्नानाय देवो हर्ष इति संबन्धः । शुचेवेति । गृहे गिर्यादौ योज्यम् । स्नेहः प्रेम, तैलं च । अरुणो रविसारथिः, लोहितं चारुणम् । कलविङ्को ग्रामचटकः । भूभृद्गिरिः,राजा च । धातवो लघून्यस्थीनि,गैरिकाद्याश्च । कुम्भौ कपाटौ, घटश्च कुम्भः । शावे धूसरे शवसंबन्धिनि च । सिक्थं भक्तम्, मधू-

---

भी लोहे के खम्भे के सदृश उनका भुज युगल फिर से हमारा आलिङ्गन करता। दूसरे लोक में भी बार-बार "पुत्र-पुत्र" पुकारते हुए उनकी, अमृत रस को उगलती हुई, मथे जाते हुए समुद्र से निकले उद्गार के समान गम्भीर वाणी सुनाई पड़ जाती !" इस प्रकार और दूसरी-दूसरी चिन्ता करते-करते वह रात किसी प्रकार बीत गई ।

उसके बाद जब मानो शोक के कारण ही मुर्गे गला फाड़ कर "कुकरुकूँ" करने लगे, भवन के मयूर गृह के (बनावटी) पर्वतों के वृक्षों से अपने को गिराने लगे, हंस अपना-अपना स्थान छोड़ कर वन के लिए प्रस्थान करने लगे, अन्धकार तत्क्षण ही कृश होकर दुःखी होने लगा, अपने स्नेह (तेल या प्रेम) के कम पड़ जाने के कारण दीपक अपने अभाव की इच्छा करने लगे, आकाश फैलती हुई लाल किरणों के वल्कल से अपने शरीर को ढँक कर मानो संन्यास ग्रहण कर चुका प्रभातकाल में कलविक पक्षी की कन्धरा के सदृश धूसर वर्ण वाले तारे महाराज के अस्थि-खण्डों की भाँति उतरने लगे, राजा के फूल (अस्थिशेष) से युक्त कलश को लेकर विविध सरोवरों, नदियों और तीर्थों की ओर जङ्गली हाथी चल पड़े, चन्द्रमा प्रेत के लिए पवित्र भात के उजले पिण्डे के

पाण्डुरे पिण्ड इवापरपयोनिधिपुलिनपरिसरे पात्यमाने शशिनि क्रमेण च नृपचितानलधूमविसरधूसरीकृततेजसीव, नरपतिशोकपावकदाहकिरणकलङ्ककालीकृतचेतसीव, प्रोषितसमस्तान्तः पुरपुरंध्रिमुखचन्द्रवृन्दोद्वेगविद्राणवपुषीव, प्रथमास्तमितरोहिणीरणरणकविमनसीव चास्तमुपगते रजनिकरे, राजतीव देवे दिवमारूढे सवितरि, परिवृत्ते राज्य इव रजनीप्रबन्धे, प्रबुद्धराजहंसमण्डलप्रबोध्यमानः पङ्कजाकर इव चचाल स्नानाय देवो हर्षः। ततश्च नूपुररवविराममूकमंदमंदिरहंसेषु, शोकाकुलकतिपयकञ्चुकिमात्रावशेषेपु, शुद्धान्तेषु, पतितयूथप इव वनगजयूथे कक्ष्यान्तरवर्तिनि पितृपरिजने, विषादिन्युपरिरुदन्निषादिनि च स्तम्भनिषण्णे निष्पन्दमन्दे राजकुञ्जरे, मन्दुरापालकाक्रन्दव्यथिते वाजि-

च्छिष्टं च। 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः'। राजहंसा इव राजानः, हंसाश्च। ततश्चेत्यादौ। अस्मिन्सति दह्यमानदृष्टिर्निर्जगाम राजकुलादिति संबन्धः।

सदृश पश्चिम सागर के तट प्रदेश में लुढ़का दिया गया, क्रम से मानो राजा की चिताग्नि के धुएँ के फैलने से चन्द्रमा तेज धूसर (मलिन) पड़ गया अथवा मानो राजा की शोकाग्नि के दाह से कलङ्क के रूप में उसका हृदय काला पड़ गया अथवा स्वर्ग में गई अन्तःपुर की समस्त पुरन्ध्रियों के मुखचन्द्रों के उद्वेग से वह भागने लगा, अथवा पहले अस्त हो गई रोहिणी की उत्कण्ठा से वह मानो उदास हो गया, इस प्रकार चन्द्रमा डूब गया तथा जब सूर्य आकाश में उदित हो गया, रात का समय पलट गया, पहले जगे हुए राजहंसों द्वारा जगाए गए सरोवर के सदृश देव हर्ष (पहले जगे हुए राजाओं द्वारा जगाए जाने पर) स्नान के लिए पड़े। उसके बाद (अन्तःपुर में स्त्रियों के) नूपुरों की आवाज के बन्द हो जाने से भवन के हंसों के मूक एवं मन्द हो जाने पर, शोक से व्याकुल कुछ ही कञ्चुकियों के बचे रह जाने पर, जिनका सेठ (या मुखिया) मर गया हो ऐसे जङ्गली हाथियों के समान ड्योढ़ी में रहने वाले पिता के परिजन के रह जाने पर, विषादयुक्त तथा निस्तब्ध होकर आलान-स्तम्भ में टिक कर राजा के मुख्य हाथी के पड़े रहने पर तथा उसके महावत के रोते रहने पर, अश्वपाल के क्रन्दन से दुःखी होकर राजा के निजी घोड़े के आँगन में पड़े रहने पर तथा

रमाजि राजवाजिनि, विश्रान्तजयशब्दकलकले च शून्ये च महास्थान-मण्डपे दह्यमानदृष्टिर्निर्जगाम राजकुलात्। अगाच्च सरस्वतीतीरम्। तस्यां स्नात्वा पित्रे ददावुदकम्। अपस्नातश्चानिष्पीडितमौलिरेव परि-धायोद्गमनीयदुकूलवाससी निःश्वासपरो निरातपत्रो निरुत्सारणः समु-पनीतेऽपि सप्तौ चरणाभ्यामेव नासाग्रसक्तेन रक्ततामरसताम्रेण चक्षुषा हृदयावशेषस्यापि पितुर्दाहशङ्कया शोकाग्निमिव उद्गिरन्नताम्बूलस्यापि सुचिरप्रक्षालितस्य कल्पतरुकिसलयकोमलस्य स्वभावपाटलस्याधरस्या-धरपल्लवस्य प्रभया मांसरुधिरकवलानिव हृदयाभिघातादुद्वमन्नुष्णनि-श्वासमोक्षैर्भवनमाजगाम।

राजवल्लभास्तु भृत्याः सुहृदः सचिवाश्च तस्मिन्नेवाहनि निर्गत्य प्रियं

निषादी हस्तिपकः। अपस्नातेत्यादौ। भवनमाजगामेति संबन्धः। अपस्नातो मृतस्नातः। मौलयः केशाः। 'तत्स्यादुद्गमनीयं यद्धौतयोर्वस्त्रयोर्युगम्'। सप्तौ हये।

जो "जय-जय" शब्द के समाप्त हो जाने से सूना पड़ गया था ऐसे बहुत बड़े आस्थान मण्डप पर जलती हुई दृष्टि डालकर देव हर्ष राजकुल से निकल पड़े और सरस्वती नदी के तट पर जा पहुँचे। उस (सरस्वती नदी) में स्नान कर उन्होंने पिता को जलाञ्जलि दी। प्रेतकार्य के लिए स्नान करके माथे को बिना निचोड़े ही उन्होंने दुकूल वस्त्र के जोड़े पहन लिए तथा बार-बार निश्वास लेते हुए बिना छाते के ही एवं लोगों को हटाने वाले प्रतीहारों के बिना ही वे लाये गए भी घोड़े पर न सवार होकर पैदल ही, नासिका के अग्रभाग पर कमल के समान लाल-लाल आँखें टिकाए हुए, मानो हृदय के रूप में बचे हुए पिता के जल जाने की आशंका से शोकाग्नि को उगल रहे हों इस प्रकार तथा बिना ताम्बूल के ही खूब साफ-सुथरे, कल्पवृक्ष के पल्लव के समान कोमल एवं स्वभावतः लाल अपने अधर-पल्लव की प्रभा से हृदय पर पड़े हुए शोक रूपी बज्र के आघात से गर्म साँस लेते हुए मानो मांस और रक्त के कौरों को उगल रहे हों इस प्रकार महल में लौट आये।

राजा के अत्यन्त प्रिय नौकर, मित्र एवं मन्त्री लोग रोते हुए बन्धुओं द्वारा रोके जाने पर भी, राजा के अनेक गुणों द्वारा आकृष्ट हृदयवाले होकर अपने-

पुत्रदारमुत्सृज्योद्बाष्पैर्बन्धुभिर्वार्यमाणा अपि बहुनृपगुणगणहृतहृदयाः केचिदात्मानं भृगुषु बबन्धुः, केचित्तत्रैव तीर्थेषु तस्थुः, केचिदनशनैरास्तीर्णतृणकुशा व्यथमानमानसाः, शुचमसमामशमयन् केचिच्छलभा इव वैश्वानरं शोकावेगविवशा विविशुः, केचिद्दारुणदुःखदहनदह्यमानहृदया गृहीतवाचस्तुषारशिखरिणं शरणमुपाययुः, केचिद्विन्ध्यापत्यकासु वनकरिकुलकरशीकरासारसिच्यमानतनवः पल्लवशयनशायिनः संतापमशमयन्, केचित् संनिहितानपि विषयानुत्सृज्य सेवाविमुखाः परिच्छिन्नैः पिण्डकैरटवीभुवः शून्या जगृहुः, केचित्पवनाशना धर्मधना धमनिधमनयो मुनयो बभूवुः केचिद् गृहीतकषायाः कापिलं मतमधिजगिरे गिरिषु,

भृगुषु प्रपातेषु। कुशोऽत्र संध्या।
पिण्डकैः शरीरैः। धमनयो नाड्यः। अनेन कार्श्यं लक्ष्यते। अधिजगिरे

अपने प्रिय पुत्रों एवं पत्नियों को छोड़ उसी दिन निकल पड़े। (उनमें से) कुछ ने अपने को भृगु पतन स्थानों में समाप्त कर दिया या भृगुओं में अनुरक्त हो गए, कुछ तीर्थयात्रा को चल पड़े तथा वहीं रह गए (अथवा विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल में गए और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत लेकर वहीं रह गए), दुःखी मन वाले कुछ लोग कुश बिछाकर बैठ गये तथा भोजन त्याग कर भारी शोक मिटाने लगे (अथवा निराहार रहकर प्रायोपवेशन के द्वारा लम्बे-लम्बे उपवास करने लगे), कुछ शोकावेग के कारण विवश होकर फतिगों के समान आग में कूद पड़े (अथवा चारों ओर आग जलाकर पञ्चाग्नि तप करने लगे), घोर दुःख रूपी अग्नि से जलते हृदय वाले कुछ लोग मौन व्रत लेकर हिमालय की शरण में चले गए (या शब्द विद्या की साधना का व्रत लेकर हिमालय में तपस्या करने चले गए), कुछ लोग विन्ध्याचल की घाटियों में जंगली हाथियों की सूँड़ों के फुहारों में स्नान करते हुए और पत्तों पर सोते हुए अपना सन्ताप मिटाने लगे (अथवा विन्ध्याचल की घाटियों में जाकर पहनने या शयनादि के लिए पल्लव अर्थात् उज्ज्वल दुकूल वस्त्रों का प्रयोग करने लगे), कुछ संनिहित भी विषयों को त्याग कर तथा भोग-पराङ्मुख होकर नपे-तुले भोजन पर जंगल के सूने स्थानों में रहने लगे (अथवा जैन साधु होकर चान्द्रायण आदि अनेक प्रकार के व्रतों में नपा-तुला आहार लेने लगे), कुछ वायु-भक्षण करके धर्म को ही धन समझने वाले एवं कमजोर नाड़ियों वाले अर्थात् दुबले-पतले मुनि बन गये (अथवा

केचिदाचोटितचूडामणिषु शिरःसु शरणकृतधूर्जटयो जटा जघटिरे। अपरे परिपाटलप्रलम्बचीवराम्बरसंवीताः स्वाम्यनुरागमुज्ज्वलं चक्रुः। अन्ये तपोवनहरिणजिह्वाञ्चलोल्लिह्यमानमूर्तयो जरां ययुः। अपरे पुनः पाणिपल्लवप्रमृष्टैराताम्रारागैर्नयनपुटैः कमण्डलुभिश्च वारि वहन्तो गृहीतव्रता मुण्डा विचेरुः।

देवमपि हर्षं तदवस्थं पितृशोकविह्वलीकृतम्, श्रियं शाप इति, महीं महापातकमिति, राज्यं रोग इति, भोगान् भुजङ्ग इति, निलयं निरय इति, बन्धुं बन्धनमिति, जीवितमयश इति, देहं द्रोह इति, कल्यतां कलङ्क इति, आयुरपुण्यफलमिति, आहारं विषमिति, विषममृतमिति,

---

अध्यैषत। आचाटित उत्खातः। धूर्जटिः शिवः। वारि अश्रु, उदकं च।

देवमित्यादौ। देवमपि हर्षमेवंविधा जनाः पर्यवारयन्निति सम्बन्धः। कल्यता-

---

सब प्रकार का भोजन त्याग कर वायुभक्षण द्वारा तपस्या करते हुए शरीर को सुखाने वाले दिगम्बर जैन साधु हो गए), कुछ लोग काषाय वस्त्र धारण करके पर्वत की गुफाओं में रहकर कपिल मुनि के मत (सांख्य) का अध्ययन करने लगे, कुछ लोगों ने चूडामणि उतार कर तथा भगवान् शिव के शरणापन्न होकर मस्तकों पर जटाएँ बाँध लीं (या पाशुपत शैव सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए)। कुछ लोग लाल रंग का लम्बा चीवर पहनकर स्वामी के प्रति अपना प्रेम प्रकट करने लगे (अथवा लाल एवं लम्बा चीवर अर्थात् संघाटी पहनने वाले भिक्षु स्वामी अर्थात् भगवान् बुद्ध के प्रति अपना-अपना अनुराग प्रकट करने लगे)। कुछ लोग तपोवन में आश्रम-मृगों की जीभों से चाटे जाते हुए बुढ़ापे को प्राप्त हुए या गृहस्थ जीवन के बाद वैखानस होकर वानप्रस्थ आश्रम तपोवन में बिताने लगे तथा कुछ लोगों ने (अश्रु प्रवाह के कारण) लाल आँखों को अपने हस्त-पल्लवों से पोंछकर और कमण्डलुओं के जल से धोकर सिर मुँडवा लिए और विविध व्रत लेकर विचरण करने लगे (या पाराशरी भिक्षु हो गए)।

उस अवस्था में पड़े हुए तथा पिता के शोक के कारण विह्वल हुए देव हर्ष को भी, जो श्री को शाप, पृथिवी को महापातक, राज्य को रोग, भोगों को सर्प, घर को नरक, बन्धु को बन्धन जीवन को अपकीर्ति, शरीर को द्रोह, आरोग्य को कलङ्क, आयु को पुण्याभाव (अर्थात् पाप) का फल, आहार को विष, विष को अमृत, चन्दन को आग, काम को करपत्र तथा हृदय के फटने

चन्दनं दहन इति, कामं क्रकच इति, हृदयस्फोटनमभ्युदय इति च मन्यमानम्, सर्वासु क्रियासु विमुखम्, पितृपितामहपरिग्रहागताश्चिरन्तनाः कुलपुत्राः, वंशक्रमाहितगौरवाश्च ग्राह्यगिरो गुरवः, श्रुतिस्मृतीतिहासविशारदाश्च जरद्द्विजातयः, श्रुताभिजनशीलशालिनो मूर्धाभिषिक्ताश्चामात्या राजानो, यथावदधिगतात्मतत्त्वाश्च संस्तुता मस्करिणः, समदुःखसुखाश्च मुनयः संसारासारत्वकथनकुशला ब्रह्मवादिनः, शोकापनयननिपुणाश्च पौराणिकाः पर्यवारयन्।

अस्वतन्त्रीकृतश्च तैर्मनसापि नालभत शोकानुप्रवणमाचरितम्। प्रचुरमित्रानुनीयमानश्च सनाभिभिः कथं कथमप्याहारादिकासु क्रियास्वाभिमुखमभजत। भ्रातृगतहृदयश्चाचिन्तयत्—'अपि नाम तातस्य मरणं महाप्रलयसदृशमिदमुपश्रुत्य आर्यो बाष्पजलस्नातो न गृह्णीयाद्वल्कले।

मरोगिताम्। ग्राह्यगिर आदेयवाचः। अध्यात्ममात्मज्ञानम्। तत्त्वमितिकर्तव्यता। मस्करिणः परिव्राजकाः।

सनाभयः सगोत्राः। शौचानुप्रवणं शरीरबाधादि। बाष्पजलस्नातो न

को अभ्युदय मान बैठे थे, एवं जो सभी कार्यों से मुख मोड़ चुके थे, बाप-दादों की कुल परम्परा के पुराने कुल पुत्रों ने, कुल क्रम से सम्मान पाये हुए मान्य वचन वाले गुरुओं ने, वेद, स्मृति एवं इतिहास के प्रकाण्ड पण्डित बूढ़े ब्राह्मणों ने कुल एवं शील से युक्त अमात्य पद के अधिकारी राजाओं ने, आत्म तत्त्व को सम्यक् प्रकार से जानने वाले प्रसिद्ध मस्करी साधुओं ने, सुख-दुःख को समान समझने वाले मुनियों ने, संसार की निःसारता का उपदेश करने वाले ब्रह्मवादी वेदान्तियों ने तथा शोक को दूर करने में कुशल पुराण वेत्ताओं ने घेर लिया।

उन लोगों द्वारा स्वतन्त्र न छोड़े जाने से हर्ष को शोक का अनुभव नहीं हो पाया। बहुत से मित्रों से प्रार्थना करने पर वे सगोत्र लोगों के साथ किसी-किसी प्रकार भोजनादि कार्यों में प्रवृत्त हुए। भाई राज्यवर्धन की याद करके वे सोचने लगे—"पिता जी की इस महाप्रलय के समान मृत्यु का समाचार सुन कर तात (बड़े भैया राज्यवर्धन) कहीं आँसुओं में स्नान करके अर्थात् रोते हुए वल्कल के जोड़े को न धारण कर लें (अर्थात् विरक्त न बन जाँय)।

नाश्रयेद्वा राजर्षिराश्रमपदम् । न विशेद्वा पुरुषसिंहो गिरिगुहाम् । अश्रुसलिलनिर्भरभरितनयननलिनयुगलो वा पश्येदनाथां पृथिवीम् । प्रथमव्यसनविषमविह्वलः स्मरेदात्मानं वा पुरुषोत्तमः । अनित्यतया जनितवैराग्यो वा न निराकुर्यादुपसर्पन्तीं राज्यलक्ष्मीम् । दारुणदुःखदहनप्रज्वलितदेहो वा प्रतिपद्येताभिषेकम् । इहागतो वा राजभिरभिधीयमानो न पराचीनतानाचरेदिति । अतिपितृपक्षपाती खल्वार्यः । सर्वदा तातश्लाघया मामभिधत्ते—तात हर्ष ! कस्यचिदभूद्भविष्यति वा पुनः काञ्चनतालतरुप्रांशु कायप्रमाणमिदम् ? ईदृक्च दिवसकरप्रीत्या दिवसमुन्मुख-

गृह्णीयाद्वल्कले इति प्रतीयमानता बोद्धव्या । अत्र च सर्वत्र नेत्याकाङ्क्षायाम् । पुरुषोत्तमो हर्षः हरिरपि । पराचीनता पराङ्मुखत्वम्, अनानुकूल्यं वा ।

अथवा वे राजर्षि कहीं आश्रम का आश्रय न ले लें। अथवा वे पुरुष सिंह कहीं पर्वत को गुफा में (तपस्या करने के लिए) न प्रवेश कर जांय। अथवा अश्रु-जल से पूरी तरह भरे हुए नेत्र कमल वाले वे अनाथ हुई पृथिवी को न देख लें। अथवा दुःख के प्रथम आघात से विह्वल होकर कहीं श्रेष्ठ पुरुष वे आत्म चिन्तन में न लग जांय। अथवा संसार की अनित्यता से वैराग्य युक्त होकर समीप आती हुई राजलक्ष्मी को कहीं वे ठुकरा न दें। अथवा घोर दुःखरूपी अग्नि के कारण जलते हुए शरीर वाले वे कहीं पानी में डूबने न लग जांय। अथवा यहां आने पर राजाओं के द्वारा विनती पर भी सिंहासन पर आरूढ होने से कहीं वे विमुख न हो जांय।

आर्य पिता जी के अत्यन्त पक्षपाती हैं। हमेशा पिता जी की प्रशंसा करते हुए मुझसे कहा करते हे—"भाई हर्ष ! सुवर्ण के ताल वृक्ष के समान लम्बा शरीर किसी का (तब तक) हुआ है या फिर (आगे कभी) होगा ? सूर्य

विकसितं मुखमहाकमलम्। एतौ च वज्रस्तम्भभास्वरौ भुजकाण्डौ। एते च हसितमदालसहलधरविभ्रमा विलासाः। कोऽन्यो मानी विक्रान्तो वदान्यो वा ?' इति। एतानि चान्यानि च चिन्तयन् दर्शनोत्सुकहृदयो भ्रातुरागमनमुदीक्षमाणः कथं कथमप्यतिष्ठदिति।

इति महाकविश्रीबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते महाराजमरणवर्णनं नाम पञ्चम उच्छ्वासः।

मुखकमलस्य दिवसकरप्रीतिः प्रतापित्वम्। वदान्यो दाता॥

इति श्रीशंकरविरचिते हर्षचरितसंकेते पञ्चम उच्छ्वासः।

के प्रति अनुराग से विकसित होने वाला उनका मुखरूपी महाकमल, वज्रस्तम्भ के समान चमकने वाले उनके ये दोनों बाहुदण्ड और मद से अलसाये हुए तथा हँसते हुए बलराम के समान उनके विलास किसी के हुए हैं या फिर कभी होंगे ? इस प्रकार कौन दूसरा मानी, पराक्रमी या दानशील है ?" इस प्रकार की और दूसरी-दूसरी चिन्ता करते हुए बड़े भाई के दर्शन की उत्सुकता से भरे हृदय वाले हर्ष उनके आने की प्रतीक्षा करते हुए किसी-किसी प्रकार अवस्थित रहे।

महाकवि बाणभट्ट विरचित हर्षचरित में "महाराजमरण वर्णन" नामक पञ्चम उच्छ्वास समाप्त हुआ।

षष्ठ उच्छ्वासः

उच्चित्योच्चित्य भुवि प्रहितनिगूढात्मदूतनीतानाम् ।
विजिगीषुरिव कृतान्तः शूराणां संग्रहं कुरुते ॥ १ ॥

विस्रब्धघातदोषः स्ववधाय खलस्य वीरकोपकरः ।
नवतरुभङ्गध्वनिरिव हरिनिद्रातस्करः करिणः ॥ २ ॥

अथ प्रथमप्रेतपिण्डभुजि भुक्ते द्विजन्मनि, गतेषूद्वेजनीयेष्वशौचदिवसेषु, चक्षुर्दाहदायिनि दीयमाने द्विजेभ्यः शयनासनचामरातपत्रामत्र-

---

उच्चित्येति । कृतान्तोऽन्तकः शूराणां संग्रहं कुरुते । किं कृत्वा । उच्चित्योच्चित्य यथाप्रधानं प्रहितनिगूढाः स्वभावप्रच्छन्ना यमदूता यमकिंकरास्तैर्नीतानां विजिगीषुर्यथान्विष्यान्विष्यात्मदूतानां शूराणां संग्रहं कुरुते । अनेनोच्छ्वासार्थः संगृहीतः । तथा हि कृतोऽन्तो विनाशो येन स शशाङ्कनामा गौडाधिपतिः । शूराणां राज्यवर्धनानुचराणां प्रधानराजपुत्राणां तत्सहितानां संग्रहमकरोत् । कथम् ? उच्चित्योच्चित्यान्विष्य । कीदृशानाम् ? प्रहितनिगूढात्मदूतानाम् । तथा हि तेन शशांकेन विश्वासार्थं दूतमुखेन कन्याप्रदानमुक्त्वा प्रलोभितो राज्यवर्धनः स्वगेहे सानुचरो भुञ्जान एव छद्मना व्यापादितः ॥ १ ॥

अत एव चाह—**विस्रब्धेत्यादि** । खलोऽत्र गौडासपदः । निद्रातस्करः शशाङ्कः । वीरश्च हर्षः ॥ २ ॥

अथप्रथमेत्यादौ । अस्मिन्नस्मिन्सति देवो हर्षो मौलेन महाजनेनात्मानं सकलं

विजय के इच्छुक राजा की भाँति यमराज स्थान-स्थान पर भेजे गए अपने गुप्त दूतों द्वारा चुन-चुनकर लाये गए शूर-वीरों का संग्रह करता है ॥ १ ॥

विश्वास पात्र के वध का दोष अपने वध के लिए हो जाता है तथा वीर पुरुष के क्रोध का जनक हो जाता है, जिस प्रकार (हाथी द्वारा) नवीन पेड़ के तोड़े जाने की आवाज शेर की नींद चुरा लेने वाली है साथ ही वही आवाज हाथी के वध का भी कारण बन जाती है ॥ २ ॥

उसके बाद जब प्रथम पिण्ड खाने वाले (महापात्र) ब्राह्मण भोजन कर चुके, उद्वेग पैदा करने वाले अशौच के दिन जब बीत गए, आँखों में जलन पैदा करने वाली राजा के निजी उपयोग की—पलङ्ग, पीढ़ा, चँवर, छत्र, बर्तन,

पत्रशस्त्रादिके नृपनिकटोपकरणकलापे, नीतेषु तीर्थस्थानानि सह जनहृदयैः कीकसेषु, कल्पितशोकशल्ये सुधानिचयचिते चिताचैत्यचिह्ने, वनाय, विसर्जिते महाविजति राजगजेन्द्रे, क्रमेण च मन्देष्वाक्रन्देषु, विरलीभवत्सु च विलापेषु विश्राम्यत्यश्रुणि, शिथिलीभवत्सु श्वसितेषु, अविस्पष्टेष हाकष्टाक्षरेषु उत्सार्यमाणासु च व्यसनशय्यासु, उपदेशश्रवणक्षमेषु श्रोत्रेषु, अनुरोधावधानयोग्येषु हृदयेषु, गणनीयेषु नृपगुणेषु प्रदेशवृत्तितामाश्रयति शोके, कृतेषु कविरुदितकेषु, जाते च स्वप्नावशेषदर्शने हृदयावशेषावस्थाने चित्रावशेषाकृतौ काव्यावशेषनाम्नि नरनाथे, देवो हर्षः कदाचिदुत्सृष्टव्यापारः पुञ्जीभूतवृद्धबन्धुवर्गाग्रेसरेणावनतमूकमुखेन महा-

---

वेष्टयमानमद्राक्षीदिति संबन्धः। भोजनं भुक्तं तदस्यास्तीति। अर्श आदिभ्योऽच्'। अमत्राणि पात्राणि। पत्राणि वाहनानि कीकसेष्वस्थिषु। चितायां चैत्यचिह्न-

---

सवारी, हथियार आदि वस्तुएँ—ब्राह्मणों को जब दी जाने लगी, जनता के हृदय के साथ-साथ ही राजा की अस्थियाँ जब तीर्थ स्थानों में भेज दी गई, शोक का काँटा पैदा करने वाला चिता पर चैत्य का चिह्न चूने की गचकारी से जब बना दिया गया, जब महान् युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला राजा का श्रेष्ठ हाथी जंगल में जाने के लिए छोड़ दिया गया, रोने-कलपने की आवाज जब धीरे-धीरे मन्द पड़ गई, विलाप की आवाज जब कभी-कभार ही सुनाई पड़ने लगी, आँसुओं का बहना जब रुक गया, साँसें जब शिथिल पड़ गई, "हा कष्ट" के अक्षर जब अस्पष्ट हो गए, शोक के अवसर की शय्याएँ जब हटायी जाने लगी, कान जब उपदेश की बातों को सुनने में समर्थ हो गए, हृदय जब अनुरोध पर ध्यान देने योग्य हो गए, राजा के गुण जब गणना की वस्तु बन गए, शोक जब वस्तु-वस्तु पर ही आश्रय लेने लगा (अर्थात् राजा की किसी-किसी वस्तु को देख या सुनकर शोक उत्पन्न होता न कि हमेशा), कवियों ने जब राजा के शोक में रुलाने वाले काव्यों की रचना कर ली, राजा का दर्शन जब केवल स्वप्न के रूप में बचा रह गया, हृदय के रूप में ही वे जब अवशिष्ट रह गए, जब केवल चित्र में ही उनकी आकृति बची रह गई तथा जब उनका नाम केवल काव्यों में ही बचा रह गया तब देव हर्ष ने, जो किसी समय सभी कार्यों को त्याग बैठे थे, वृद्ध बन्धुवर्ग, झुके हुए एवं मौन धारण किये हुए महाजन एवं मौल (वंश

जनेन मौलेनाकाल आत्मानं वेष्ट्यमानमद्राक्षीत्। दृष्ट्वा चाकरोन्मनसि-'किमन्यदायमागतमावेदयत्ययं शोकपराभूतो लोकाकरः' इति। वेपमान-हृदयश्च पप्रच्छ प्रविशन्तमधिकतरप्रचारमन्यतमं पुरुषम् 'अङ्ग! कथय। किमार्यः प्राप्तः' इति। मन्दमब्रवीत्—'देव! यथादिशसि द्वारि' इति श्रुत्वा च सोदर्यस्नेहनिहितनिरतिशयमन्युमृदुकृतमनाः कथमपि न ववाम बाष्पवारिप्रवाहोत्पीडेन सह जीवितम्।

अनन्तरं च द्वारपालप्रमुक्तेन प्रथमप्रविष्टेन परिजनेनेवाक्रन्देन कथ्यमानम्, दूरद्रुतागमनमुषितबाहुल्येन विच्छिन्नच्छत्रधारेण लम्बिताम्बर-वाहिना भ्रष्टभृङ्गारग्राहिणा च्युताचमनधारिणा ताम्यत्ताम्बूलिकेन खड्ग-

---

स्तदाकारं चिह्नम्, श्मशानदेवगृहं वा। कविरुदितकेषु दुःखोद्दीपनकालेषु। लोकोत्तरो जनसमूहः। मन्युः शोकः।

अनन्तरमित्यादौ प्रविशन्तं ज्येष्ठं भ्रातरमद्राक्षीदिति संबन्धः। परिजनेनापि प्रथमप्रविष्टेन द्वारपालप्रमुक्तेन च। आचमनं पतद्ग्रहः। प्रकाशा अतुरङ्गत्वाधि-

---

परम्परागत) मंत्रियों से असमय में अपने को घिरते हुए देखा। देखकर उन्होंने मन में सोचा—"शोक से पराभूत ये लोग भाई (राज्यवर्धन) के आने के समाचार के अलावे और क्या निवेदन करेंगे?" काँपते हुए हृदय से उन्होंने भीतर प्रवेश करते हुए अधिक दूर चले हुए एक व्यक्ति से पूछा—"अङ्ग! कहो क्या आर्य पधार चुके हैं?" वह धीरे से बोला—"देव! हाँ, (वे) द्वार पर हैं।" यह सुनकर सहोदर भाई के स्नेह के कारण अत्यधिक शोक से आर्द्र मनवाले कुमार हर्ष ने अश्रुधार की पीडा के साथ किसी प्रकार अपने प्राणों को न निकलने दिया।

उसके बाद, द्वारपाल से छूटकर परिजन के समान पहले ही प्रविष्ट हुए आर्तनाद द्वारा जिनकी सूचना दी जा रही थी ऐसे, दूर से जल्दबाजी में आने के कारण बहुतों का साथ छोड़ देने वाले, छत्रधारी पुरुषों को (पीछे) छोड़ देने वाले, जिनके वस्त्र ढोने वालों ने देर कर दी थी ऐसे, जिनके भृङ्गार पात्र वहन करने वाले पुरुष भी (पीछे) छूट चुके थे, जिनके आचमन का जल लेकर साथ चलने वाले पुरुष भी (पीछे) छूट चुके थे, जिनके तम्बोली दुःखी

त्खड्गग्राहिणा कतिपयप्रकाशदासेरकप्रायेण बहुवासरान्तरितस्नानभोजशयनश्यामक्षामवपुषा परिजनेन परिवृतम्, अविरतमार्गधूलिधूसरितशरीरतया शरणीकृतमिवाशरणया क्रमागता वसुन्धरया, हूणनिर्जयसमरशरव्रणबद्धपट्टकैर्दीर्घधवलैः समासन्नराज्यलक्ष्मीकटाक्षपातैरिव शबलीकायम्, अवनिपातप्राणपरित्राणार्थमिव च शोकहुतभुजि हुतमांसैरतिकृशैरवयवैरावेद्यमानदुःखभारम्, अवगतचूडामणिनि मलिनाकुलकुन्तले शेखरशून्ये शिरसि शुचमारूढां मूर्तिमतीमिव दधानम्, आतपगलत्स्वेदराजिना रुदतेव पितृपादपतनोत्कण्ठितेन ललाटपट्टेन लक्ष्यमाणम्, प्रथीयसा बाष्पपयःप्रवाहेणाभिमतपतिमरणमूर्च्छितामिव महीमनवरतं सिञ्चन्तम्, अनन्तसंततास्रुप्रवाहनिपतननिम्नीकृताविव दुःखक्षामौ कपो-

श्रीयमाणाः। दासेरका दासीसुताः।

शेखर आपीडः। अश्रु बिम्बेनापीतीत्थं भूतलक्षणे तृतीया। अभिव्यञ्जनं श्मश्रु।

हो रहे थे, जिनके खड्गधारी पुरुष लँगड़ा कर चल रहे थे, कुछ पहचाने जाते हुए दासी-पुत्र भी जिनके साथ थे तथा बहुत दिनों से स्नान, भोजन एवं शयन का परित्याग कर देने के कारण जिनका शरीर काला पड़ गया एवं सूख गया था ऐसे परिजन से जो घिरे हुए थे ऐसे, निरन्तर रास्ते की धूल पड़ने से धूसर शरीर होने के कारण मानो शरण विहीन होकर क्रम से आई हुई पृथिवी को जिन्होंने (अपनी) शरण में ले लिया हो ऐसे, मानो पास आई राज्यश्री के (दीर्घ तथा उज्ज्वल) कटाक्षपात हों इस प्रकार हूणों को पराजित करने के युद्ध में बाणों से उत्पन्न हुए घावों पर बँधी हुई लम्बी एवं उजली पट्टियों से जिनका शरीर शबलित था ऐसे, मानो राजा के प्राणों की रक्षा के लिए शोकाग्नि में अपने मांस की आहुति डाली हो ऐसे अपने कृश अङ्गों से जो अपने दुःख के बोझ को सूचित कर रहे थे ऐसे, चूडामणि से विहीन, गन्दे एवं बिखरे बालों वाले तथा केशबन्ध से शून्य मस्तक पर मानो आरूढ हुए शरीरवान् शोक को जो धारण कर रहे थे ऐसे, गर्मी के कारण पसीने की बूँदें जिस पर चुह-चुहा आई थीं, मानो वह रो रहा हो तथा पिता के पैरों पर गिरने के लिए उत्कण्ठित हो रहा हो ऐसे ललाट प्रदेश से जो लक्षित हो रहे थे ऐसे, अपनी बढ़ी हुई अश्रुजलधारा से मानो अपने अभिमत स्वामी की मृत्यु से मूर्च्छित हुई पृथिवी को जो सींच (होश में लाने के लिए) लगातार सींच रहे थे ऐसे, अनन्त एवं लगातार

लाबुद्वहन्तम्, अत्युष्णमुखमारुतमार्गगतेन द्रवतेव गलितताम्बूलरागेणाधरबिम्बेनोपलक्षितम्, पविन्त्रिकामात्रावशेषेन्द्रनीलिकांशुश्यामायमानमचिरश्रुतपितृमरणजन्यमहाशोकाग्निदग्धमिव श्रवणप्रदेशमुद्वहन्तम्, अस्फुटाभिव्यक्तव्यञ्जनेनाप्यधोमुखस्तिमितनयननीलतारकमयूखमालाखचितेन शोकप्ररूढश्मश्रुश्यामलेनेव मुखशशिना लक्ष्यमाणम्, केसरिणमिव महाभूभृद्विनिपातविह्वलनिरवलम्बनम्, दिवसमिव तेजःपतिपतनपरिम्लानश्रियं श्यामीभूतम्, नन्दनमिव भग्नकल्पपादपं विच्छायम्, दिग्भागमिव प्रोषितदिक्कुञ्जरशून्यम्, गिरिमिव गुरुवज्रपातदारितं प्रकम्पमानम्, क्रीतमिव कृशिम्ना, किङ्करीकृतमिव कारुण्येन दासीकृतमिव दौर्मनस्येन,

---

भूभृद्राजा, गिरिश्च । तेजः पतिर्नृपतिः, सूर्यश्च । श्यामः कृष्णः, श्यामा च रात्रिः । कल्पपादपो राजापि । छाया कान्तिः, आतपाभावश्च । प्रत्याख्यातं त्यक्तम् । प्रति-

---

बहते हुए अश्रुप्रवाह के कारण मानो पिचक गए हों इस प्रकार दुःख से क्षीण अपने दोनों गालों को जो धारण कर रहे थे ऐसे, जिनके मुख से अत्यन्त गर्म श्वास के साथ पिघलकर मानो अधर का ताम्बूल राग निकल रहा था ऐसे, जिसमें पवित्रिका मात्र बच रही थी और जो इन्द्रनील मणि की किरणों से साँवला हो रहा था, मानो तुरन्त ही सुने हुए पिता के मरण से उत्पन्न महाशोक की आग में जल गया हो ऐसे अपने कर्ण प्रदेश को जो धारण कर रहे थे ऐसे, जिनके मुखचन्द्र में श्मश्रु के रूप में अभी पाम्ही पड़ ही रही थी फिर मुँह नीचा करने से जिनकी आँखों की नीली किरणें नीचे की ओर फैल रही थी मानो शोक के कारण क्षौर कर्म न कराने से दाढ़ी बढ़ आई हो इस प्रकार जो मुख चन्द्र से लक्षित हो रहे थे ऐसे, जो महापर्वत के गिर जाने से विह्वल एवं निराश्रय सिंह के समान राजा के मर जाने से विह्वल एवं निराश्रय हो गए थे ऐसे, जो तेजःपति (सूर्य या तेजस्वी व्यक्ति) के अस्त हो जाने से परिम्लान पड़ गई श्रीवाले दिन के समान श्याम हो गए थे ऐसे, कल्प वृक्ष के भग्न हो जाने से जिस प्रकार नन्दनवन छाया रहित हो जाता है उसी प्रकार जो छाया (कान्ति) से विहीन हो चुके थे ऐसे, दिग्गज के चले जाने से (सूने पड़ गए) दिग्भाग के समान जो सूने-सूने से लग रहे थे ऐसे, महान् वज्रपात से फाड़े हुए पहाड़ के सदृश जो प्रकम्पित हो रहे थे ऐसे, कृशता द्वारा जो खरीद लिये गए थे ऐसे, करुणा ने जिन्हें मानो अपना किङ्कर (सेवक) बना लिया था ऐसे, दौर्मनस्य ने जिन्हें

शिष्यीकृतमिव शोचितव्येन, अन्धीकृतमिवाधिना, मूकीकृतमिव मौनेन, पिष्टमिव पिडया, स्विन्नमिव संतापेन, उच्चितमिव चिन्तया, विलुप्तमिव विलापेन, धृतमिव वैराग्येण, प्रत्याख्यातमिव प्रतिसंख्यानेन, अवज्ञातमिव प्रज्ञया, दूरीकृतमिव दुरभिभवत्वेन, अबोध्येन वृद्धबुद्धीनाम्, असाध्येन साधुभाषितानाम्, अगम्येन गुरुगिराम्, अशक्येन शास्त्रशक्तीनाम्, अपथेन प्रज्ञाप्रयत्नानाम्, अगोचरेण सुहृदनुरोधानाम्, अविषयेण विषयोपभोगानाम्, अभूमिभूतेन कालक्रमोपचयानां शोकेन कवलीकृतं ज्येष्ठं भ्रातरमपश्यत्। आवेगोद्गतकृत्स्नस्नेहोत्कलिकाकलापोत्क्षिप्यमाणकाय इव च परवशः समुदगात्।

अथ तं दूरादेव दृष्ट्वा देवो राज्यवर्धनश्चिरकालकलितं वाष्पावेगं मुमुक्षुः सुदूरप्रसारितेन संकलपयन्निव सर्वदुःखानि दीर्घेण दोर्दण्डद्वयेन गृहीत्वा

संख्यानेन विवेककुशलया बुद्धया।

कलितं धृतम्। बन्धनं लाभम्। पर्जन्य इन्द्रः।

मानो अपना दास बना लिया था ऐसे, शोक ने जिन्हें मानो अपना शिष्य बना लिया था ऐसे, मनोव्यथा ने जिन्हें माना अन्धा कर दिया, मौन ने जिन्हें मानो गूंगा बना डाला, पीड़ा से जिन्हे मानो पीस दिया, संताप ने जिन्हे मानो पका डाला, चिन्ता ने जिन्हे मानो चुनकर उठा लिया, विलाप ने जिन्हे मानो विलुप्त कर दिया, वैराग्य ने जिन्हें मानो धर लिया, बुद्धि ने जिन्हें मानो छोड़ दिया, प्रज्ञा ने जिन्हें तिरस्कृत कर दिया, दुरभिमवता ने जिन्हें मानो अपने से दूर कर दिया ऐसे, बूढ़े लोगों द्वारा भी जो न समझाने योग्य था, सज्जनों की भी उक्तियों (सदुपदेशों) के लिए जो असाध्य था, गुरुजनो की बातों के लिए भी जो अगम्य था, शास्त्रों की शक्तियों के लिए जो अशक्य था, बुद्धि के प्रयत्नों के लिए जो अपथ था, मित्रों के अनुरोधों के लिए भी जो अगोचर था, विषयों के उपभोगों के लिए जो अविषय था, सामयिक उपचार के लिए भी जो योग्य स्नान नहीं था ऐसे शोक के द्वारा ग्रास बनाए गए अपने बड़े भाई (राज्यवर्धन) को हर्ष ने देखा। आवेग से उत्पन्न स्नेह के उत्कण्ठा-समूह ने हर्ष के शरीर को मानो झकझोर दिया तथा वे परवश होकर उठ खड़े हुए।

कुमार हर्ष को देव राज्यवर्धन ने दूर से ही देखकर बहुत समय से रोके हुए आँसुओं के आवेग को छोड़ने की इच्छा से समस्त दुःखों का चिन्तन करते हुए

कण्ठे मुक्तकण्ठं पुनः पतितक्षौमे क्षामे वक्षसि पुनः, कण्ठे पुनः स्कन्ध-भागे पुनः कपोलोदरे निधाय तथा तथा रुरोद यथा सम्बन्धनामीवोदघाटयन्न हृदयानि। अश्रुस्रोतःशिरा इवामुच्यन्त लोचनेषु लोकेनास्मृत-नृपतिना राजवल्लभेनापि प्रतिशब्दकनिभेन निर्भरमिवारुद्यत। सुचिराच्च कथं कथमपि निवृष्टनयनजलः पर्जन्य इव शरदि स्वयमेवोपशशाम। उपविष्टश्च परिजनोपनीतेन तोयेन तरत्करनखमयूखपुञ्जमया महाजलप्ल-वजायमानफेनलेखमिव पुनः पुनः प्रमृष्टमपि पक्ष्माग्रसगलद्बाष्पबिन्दुवृन्द-मन्दोन्मेषमुषितदर्शनं कथं कथमपि चक्षुरक्षालयत्। ताम्बूलिकोपस्या-पितेन च वाससा चन्द्रातपशकलेनेवोष्णोष्णबाष्पदग्धं वदनमुन्ममार्ज। तूष्णीमेव च चिरं स्थित्वोत्थाय स्नानभूमिमगात्। तस्यां च स्थित्वा विभूषं विस्रस्तव्यस्तकुन्तलं मौलिमनादरान्निष्पीड्य सावशेषमन्युस्फुरितेन

'पर्जन्यौ रसदब्देन्द्रौ' इत्युक्तेः। स हि मेघान्वर्षति। विस्रस्ता ऊर्ध्वं क्षिप्ताः।

दूर तक फैलाई हुई अपनी दोनों लम्बी भुजाओं से हर्ष को गले से लगाया एवं फिर गिरे वस्त्र वाले क्षीण उसके वक्ष में, फिर गले में, फिर कन्धे में एवं फिर कपोल में लग-लगकर वे गला फाड़कर उस तरह रोने लगे मानो हृदय की परतें उत्पाटित की जा रही हों। लोगों ने शिरा की भाँति आँसुओं की धार बहाई तथा राजा का स्मरण करके राजा के प्रिय लोगों ने भी राज्यवर्धन के रोने की प्रतिध्वनि के समान जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। बहुत देर तक आँसुओं की वर्षा करने के बाद शरत्कालीन मेघ के समान वे लोग स्वयं ही शान्त हो गए। वे (राज्यवर्धन) बैठ गए तथा परिजन द्वारा लाये गए जल से, जिसमें चञ्चल हाथ के नाखून के किरण-समूह के कारण जल के प्रवाह से फेन की लेखा सी पैदा हो गई थी ऐसे तथा बार बार पोंछे जाने पर भी पपनियों के अग्रभाग से गिरते हुए अश्रु बिन्दुओं के कारण उन्मेष के मन्द पड़ जाने से जिसके द्वारा दिखाई नहीं पड़ता था ऐसे अपने नेत्रों को उन्होंने धोया। ताम्बूलिक द्वारा लाये गए चाँदनी के टुकड़े के समान कपड़े (रूमाल) से गर्म-गर्म आँसुओं से जले हुए अपने मुख को उन्होने पोंछा। चुपचाप ही बहुत देर तक ठहरकर फिर वे उठे और स्नान-भूमि में पहुँचे। वहाँ ठहरकर अलङ्कार-रहित तथा अस्त-व्यस्त बालों वाले अपने सिर को अनादर से पोंछकर बचे हुए शोक के कारण जो इस प्रकार

जिजीविषतेव कलधौतसुभगमात्मानमपि चुचुम्बिषतेवाधरेण क्षालितस्य चक्षुषः श्वेतिम्ना च शारदशशिकरविकसितविशदकुमुदवनदलावलिबलिविक्षेपैरिव दिग्देवतार्चनकर्म कुर्वाणश्चतुःशालवितर्दिकाविनिवेशितायामप्रतिपादिकायां चापाश्रयविनिहितैकोपबर्हणायां पर्यङ्किकायां निपत्य जोषमस्थात्।

देवोऽपि हर्षस्तथैव स्नात्वा धरणितलनिहितकुथाप्रसारितमूर्तिरदूर एवास्य तूष्णीमेव समवातिष्ठत। दृष्ट्वा दृष्ट्वा दूयमानसमग्रजन्मानं समस्फुटदिवास्य सहस्रधा हृदयम्। औरसदर्शनं हि यौवनं शोकस्य। लोकस्य तु नरपतिमरणदिवसादपि दारुणतरः स बभूव दिवसः। सर्वस्मिन्नेव च नगरे न केनचिदपाचि न केनचिदस्नायि नाभोजि। सर्वत्र

निर्गता इत्यन्ये। व्यवस्ता विक्षिप्ताः। कुन्तलाः केशाः उक्तं च—'चिकुरःकुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः।' इति। 'चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः' इत्युक्तम्। अत्र तूपचारान्मौलिशब्देन शिर उच्यते। वितर्दिका वेदिका। उपबर्हणमुपधानम्। जोषं तूष्णीम्।

कुथो वर्णकम्बलः। औरसो भ्राता। त्वष्टा विश्वकर्मा तस्य टङ्कश्छेदनशस्त्रम्

फड़फड़ा रहा था मानो उसमें जान आ रही थी तथा पानी से धुलने के कारण जो सुन्दर होकर अपने आपको ही मानो चूमना चाहता था ऐसे अधर से एवं धुली हुई अपनी आँखों की सफेदी से उन्होंने मानो शरत् कालीन चन्द्रमा की किरणों से खिले हुए कुमुदों के दलों की बलि के विक्षेपों से दिग्देवताओं की अर्चना करते हुए चतुःशाल की वितर्दिका में रखी हुई बड़े-बड़े पायेवाली, तथा सिरहाने रखे हुए एक तकिये से युक्त चौकी पर चुपचाप पड़ गए।

देव हर्ष भी उसी प्रकार स्नान करके जमीन पर बिछे हुए कम्बल पर फैलकर उनसे कुछ ही दूरी पर चुप चाप ही बैठे रहे। दुःख से भरे हुए अपने बड़े भाई को देख-देखकर उनका हृदय मानो हजारों टुकड़ों में टूटकर बिखर गया। भाई को देखने से शोक और भी जवान हो जाता है अर्थात् गहरा जाता है। लोगों के लिए वह दिन राजा के मृत्यु-दिवस से भी अधिक दुःखद हो गया। पूरे नगर में न किसी ने पकाया, न किसी ने स्नान किया और न किसी ने भोजन

सर्वेणारोदि। केवलमनेन च क्रमेणातिचक्राम दिवसः। स च प्रत्यग्रत्वष्टुटङ्कतष्टतनुरिव वमद्बहलरुधिररसमांसच्छेदलोहितच्छविरपरपारावारपयसि ममज्ज मञ्जिष्ठारुणोऽरुणसारथिः। मुकुलायमानकमलिनीकोशविकलं चकाण चञ्चरीककुलं कमलसरसि। सावधिविरहव्याधिविधुरवधूबाध्यमानं बबन्ध बन्धाविव विबुद्धबन्धूकभासि भास्वति सास्रां दृशं चक्रवाकचक्रवालम्। संचरन्त्याः समधुकररवं कैरवाकरं कलहंसरमणीरमणीयं माणिक्यकाञ्चीकिङ्किणीजालमिवाचकाण श्रियः। प्रकटकलङ्कमुदमानं विशङ्कटविषाणोत्कीर्णपङ्कसंकरशंकरबर्करशक्वरककुटसंकाशमकाशताकाशे शशाङ्कमण्डलम्।

तेन तनूकृता तनुर्यस्य सः। पुरास्वभर्तृतेजोविसरोद्विग्नया सूर्यभार्ययावमानितः सूर्यस्त्वष्टारमवोचन्मम तेजस्तनु कुरु। तेनाप्यारोप्य चक्रभ्रमं टंकेनासौ तष्ट इति वार्ता। अपरः पश्चिमः। पारावारः समुद्रः। चकाण जुगुञ्ज। चञ्चरीका भ्रमराः। 'कादम्बः कलहंसः स्यात्'। आचकाण चुकूज। कैरवाकरं संचरन्त्याः श्रियः किङ्किणीजालमिव चुकूजेत्युत्प्रेक्षा। विशङ्कटो विशालः। बर्करस्तरुणः। शक्वरो दान्तः।

किया। सब जगह सब (लोग) रोये। केवल इसी क्रम से वह सारा दिन बीत गया। मानो विश्वकर्मा की टाँकी से अभी-अभी छाँटे गए शरीर वाला, वमन के रूप में निकलते हुए अत्यधिक रक्त एवं मांस से लाल कान्ति वाला तथा मजीठ के सदृश लाल सूर्य पश्चिम के समुद्र-जल में डूब गया। कमल के सरोवर में, बन्द होती हुई कमलिनियों के कोशों में (बन्द हो जाने के कारण) विकल भ्रमर-समूह गुञ्जार करने लगा। समीप में होने वाली विरह रूपी व्याधि से पीड़ित अपनी पत्नियों के कारण दुःखी होते हुए चक्रवाक पक्षियों ने खिले हुए बन्धूक पुष्प के समान लाल वर्ण वाले, बन्धु सदृश सूर्य पर अपनी आँसुओं से भरी दृष्टि डाल दी। भौरों की गुञ्जार से युक्त तथा कलहंसियों की आवाज से रमणीय कुमुद का सरोवर ऐसा शब्द कर रहा था मानो सञ्चरण करती हुई लक्ष्मी की माणिक्य निर्मित करधनी की छोटी-छोटी घंटियाँ बज रही हों। स्पष्ट कलङ्कवाला उदित होता हुआ चन्द्रमण्डल, विशाल सींग से कोड़ी हुई मिट्टी से सने हुए तगड़े शंकर-वृषभ की पीठ पर के ककुद (टाट) के समान आकाश में चमकने लगा।

अस्यां च वेलायामनतिक्रमणीयवचनैरुपसृत्य प्रधानसामन्तैर्विज्ञाप्यमानः कथं कथमप्यभुक्त। प्रभातायां च शर्वर्यां सर्वेषु प्रविष्टेषु राजसु समीपस्थितं हर्षदेवमुवाच—'तात! भूमिरसि गुरुनियोगानाम्। शैशव एवाग्राहि गुणवत्पताकेव भवता तातस्य चित्तवृत्तिः। यतो भवन्तमेवविधं विधेयं विधिविधानोपनतनैर्घृण्यमिदं किमपि विभणिषति मे हृदयम्। नावलम्बनीया बालभावसुलभा प्रेमविलोमा वामता। वैधेय इव मा कृथाः प्रत्यूहमीहितेऽस्मिन्। शृणु, न खलु न जानासि लोकवृत्तम्। लोकत्रयत्रातरि मान्धातरि मृते किं न कृतं पुरुकुत्सेन? भ्रूलतादिष्टाष्टादशद्वीपे दिलीपे वा रघुणा। महासुरसमरमध्याध्यासितत्रिदशरथे दशरथे वा रामेण? गोष्पदीकृतचतुरुदन्वदन्ते दुष्यन्ते वा भरतेन? तिष्ठन्तु तावत्तो तातेनैव

भाता प्रवृत्ता प्रभाता तस्याम्। नियोग आदेशः। विधेयमायत्तम्। विभणिषति कथयितुमिच्छति। विलोमाऽननुकूला। वामता प्रतिकूलता। वैधेयो मूर्खः।

इसी समय, जिनकी बातों का उल्लङ्घन नहीं किया जाता था ऐसे प्रधान सामन्तों द्वारा समझाये-बुझाये जाने पर देव राज्यवर्धन ने किसी-किसी प्रकार भोजन किया। जब रात बीत चुकी तथा सभी राजा लोग जुट आए तो निकट में वर्तमान हर्षदेव से उन्होंने कहा—"तात! तुम भारी आदेशों के योग्य हो। शैशवकाल में ही तुमने गुणवान् जनों की पताका के समान तात (पिताजी) की चित्तवृत्ति को प्रभावित कर लिया था। इसीलिए इस प्रकार के आयत्त रहने वाले तुमसे विधाता के विधान के कारण प्राप्त वैराग्य वाला मेरा हृदय कुछ कहना चाहता है। बालभाव में सुलभ प्रेम के अनुकूल प्रतिकूलता का तुम आश्रय न लेना। मेरी इस चाह में मूर्ख के समान विघ्न मत डालना। सुनो, क्या तुम लोक-व्यवहार नहीं जानते? तीनों लोकों की रक्षा करने वाले मान्धाता (नामक राजा) के मरने पर पुरुकुत्स ने क्या नहीं किया? या भ्रूलता द्वारा अट्ठारह द्वीपों के आदेश देने वाले दिलीप के बाद रघु ने क्या नहीं किया? या दैत्यों के साथ विशाल युद्ध के बीच देवताओं का रथ स्थापित करने वाले दशरथ के बाद राम ने क्या नहीं किया? चारों समुद्रों के छोर को गाय का खुर बनाने वाले दुष्यन्त के बाद भरत ने क्या नहीं किया? उन लोगों की बात रहने दो,

शतसमधिकाधिगताध्वरधूमविसरधूसरितवासववयसि सुगृहीतनाम्नि तत्रभवति परासुतां गते पितरि किं नाकारि राज्यम् ? यं च किल शोकः समभिभवति तं कापुरुषमाचक्षते शास्त्रविदः। स्त्रियो हि विषयः शुचाम्। तथापि किं करोमि। स्वभावस्य सेयं कापुरुषता वा स्त्रैणं वा यदेवमास्पदं पितृशोकहुतभुजो जातोऽस्मि। मम हि भूभृति पर्यस्ते निरवशेषतः प्रस्रवणानीव स्रुतान्यश्रूण्यस्तमिते महति तेजस्यन्धकारीभूतदशाशस्य प्रनष्टः प्रज्ञालोकः, प्रज्वलितं हृदयम्, आत्मदाहभीत इव स्वप्नेऽपि नोपसर्पति विवेकः, बलीयसा संतापेन जातुषमिव विलीनमखिलं धैर्यम्, पदे पदे दिग्धशरोपाहतेव हरिणी मुह्यति मतिः, पुरुषद्वेषिणीव दूरत एव भ्रमति परिहरन्ती स्मृतिः, अम्बेव तातेनैव सह गता धृतिः, वार्धुषिकप्रयुक्तानीव

धूमेन मलिनीक्रियते। स्त्रैणे स्त्रीत्वे। परासुता मरणम्। मम हीत्यादिवाक्यद्वये श्लेषो व्याख्येयः। प्रस्रवणानि निर्झराः। जतुनो विकारो जातुषम्। 'त्रपुजतुनोः षुक्'। पदे शब्दे, क्रमे च। दिग्धो विषलिप्तः शरः। उक्तं च—'बाणे विषाक्ते दिग्धलिप्तकौ' इति। मेरुर्महीधरवद्रोपशब्दः प्रशंसार्थः। वृद्ध्या जीवति वार्धुषिकः

सैकड़ों यज्ञों के धुएँ से इन्द्र की आयु को धूसरित कर देने वाले सुगृहीतनामा अपने पूज्य पिताजी के मरने के बाद हमारे पिताजी ने क्या राज्य नहीं किया ?

जिस व्यक्ति को शोक अभिभूत कर देता है उसे शास्त्रज्ञ लोग कायर कहते हैं। स्त्रियाँ ही शोकों का विषय हुआ करती हैं। फिर भी मैं क्या करूँ ? मेरे स्वभाव की यह कायरता हो या मेरा स्त्री-भाव हो जो कि मैं इस प्रकार पिताजी की शोकाग्नि का स्थान बन चुका हूँ। राजा के अस्त हो जाने पर मेरे आसू झरने की भाँति झरते रहे, (राजा रूपी) महान् तेज के अस्त हो जाने पर मेरे लिए दिशाओं में अँधेरा छा गया तथा मेरी बुद्धि का प्रकाश विनष्ट हो गया। हृदय जल गया। मानो स्वयं भी जल जाने के भय से स्वप्न में भी विवेक पास नहीं फटकता। प्रबल संताप से मेरा सम्पूर्ण धैर्य लाह के समान गल गया। मेरी बुद्धि पग-पग पर विष-बुझे बाण से मारी गई हरिणी के सदृश मोहग्रस्त हो रही है। मानो पुरुष से वैर रखनी हो ऐसी मेरी स्मृति दूर-ही-दूर चक्कर मारती है। माँ की ही भाँति मेरी धृति पिता के साथ ही चली गई।

धनानीव प्रतिदिवसं वर्धन्ते, दुःखानि, शोकानलधूमसंभारसंभूताम्भोधरभरितमिव वर्षति नयनवारिधाराविसरं शरीरम्। सर्वः पञ्चजनः पञ्चत्वमुपनतः प्रयाति। वितथमेतद्वदति बालो लोकः। तातो हुताशनतामेव केवलामापन्नोऽपि नैवं दहति माम्। अन्तस्तदेवमिदमसांपरायिकमिव हृदयमवष्टभ्य व्युत्थितः शोको दुर्निवारो वाडव इव वारिराशिम् पविरिव पर्वतम्, क्षय इव क्षपाकरम्, राहुरिव रविम्, दहति दारयति तनूकरोति कवलति च माम्। कामं न शक्नोति मे हृदयं तादृशस्य सुमेरुकल्पस्य कल्पमहापुरुषस्य विनिपातमश्रुबिन्दुभिरेव केवलैरतिवाहयितुम्। राज्ये विष इव चकोरस्य मे विरक्तं चक्षुः। बहुमृतपटावगुण्ठना रञ्जितरङ्का

वणिक्। वृद्धेर्वृधुषीभावः। पञ्चजनः पञ्चमहाभूतानि, मनुष्यश्च। उक्तं च—'स्युः पुमांसः पञ्चजनाः पुरुषाः पूरुषा नराः' इति। पञ्चत्वं मरणम्। वितथमिति। पञ्चसु पृथिव्यादिषु लयात्पुरुषस्ताद्रूप्यं प्रतिपद्यत इत्यलीकम्। यतस्तत इत्याद्यग्निमात्रप्रतिबद्धकार्यदर्शनादित्यर्थः। आपत्कष्टम्। क्लेश इत्यर्थः। संपरायः सङ्ग्रामः। तस्मै यन्न भवति तदसांपरायिकम्। सभयं यः किल भीतः स कथं व्युत्थितं निवारयेत्। वाडव इत्यादयो दहतीत्यादिभिर्यथाक्रमं योज्याः। पविर्वज्रः। कल्पतेऽस्मादभीष्टार्थइति कल्पः। चकोरः क्रकचः। तस्य विषे दृष्टे अक्षिणी विरज्येते। मृतस्य पटः।

मुनाफाखोर बनिया के धन के सदृश मेरे दुःख प्रतिदिन बढ़ते ही जाते हैं। शोकाग्नि के धुएँ के सम्भार से उत्पन्न मेघ से व्याप्त सा शरीर आँखों से पानी की धारा (अश्रुधारा) बरसा रहा है। सारे महाभूत (मनुष्य) अपने-अपने भाग में मिलने (पञ्चत्व प्राप्त करते) जा रहे हैं। यह बाल स्वभाव के लोग झूठ बोलते हैं। तात (पिताजी) केवल अग्नि में मिलकर ही मुझे नहीं जला रहे हैं (अपितु) अन्दर ही अन्दर लड़ने में असमर्थ की भाँति मेरे हृदय को दबाकर उठा हुआ दुर्निवार शोक उस प्रकार जला रहा है जैसे बडवाग्नि समुद्र को, उस प्रकार विदीर्ण कर रहा है जैसे वज्र पर्वत को, उस प्रकार कृश रहा है जैसे क्षय चन्द्रमा को, उस प्रकार निढाल रहा हैं जैसे राहु सूर्य को। निश्चय ही मेरा हृदय उस प्रकार के सुमेरु सदृश तथा इस युग के महापुरुष के मरणजन्य शोक को केवल आँसुओं की बूँदों से कम नहीं कर सकता। चकोर के समान मेरी आँखें विषसदृश राज्य से विरत हो गई। बहुत से मरे लोगों के कपड़ों के

जनंगमानामिव वंशबाह्यामनार्यां श्रियं त्यक्तुमभिलषति मे मनः। क्षणमपि दग्धगृहे शकुनिरिव न पारयामि स्थातुम्। सोऽहमिच्छामि मनसि वाससीव सुलग्नं स्नेहमलमिदममलैः शिखरिशिखरप्रस्रवणैः स्वच्छस्रोतोम्बुभिः प्रक्षालयितुमाश्रमपदे। यतस्त्वमन्तरितयौवनसुखामनभिमतामपि जरामिव पुरुराज्ञया गुरोर्गृहाण मे राज्यचिन्ताम्। त्यक्तसकलबालक्रीडेन हरिणेव दीयतामुरो लक्ष्म्यै। परित्यक्तं मया शस्त्रम्।' इत्यभिधाय च खड्गग्राहिणो हस्तादादाय निजं निस्त्रिंशमुत्ससर्ज धरण्याम्।

अथ तच्छ्रुत्वा निशितशिखेन शूलेनेवाहतः प्रविदीर्णहृदयो देवो

अवगुण्ठनं मस्तकाच्छादनम्। रङ्गः समाजः। जनंगमश्चण्डालः। उक्तं च—'चण्डालप्लवमातङ्गदिवाकीर्तिजनङ्गमाः। निषादश्वपचावन्तेवासिचण्डालपुक्कसाः॥' इति। वंशोऽभिजननं प्रबन्धो वेणुश्च। बाह्या बहिर्भूता, वहनीया च। शकुनिर्गृहचटका। गृहशारिकेत्यन्ये। स्नेहः प्रेम, तैलादिश्च। यतस्त्वमिति। पुरा ययातिः शुक्रदुहितरं देवयानीमवमन्य देवयान्या दासीभूतां शर्मिष्ठामसकृन्मिथ्याकामयानेन शुक्रेण जरां यास्यसीति शप्तः, प्राप्तजरादुःखो विषयलम्पटोऽन्यपुत्रैरगृहीतां जरां पूरौ स्वपुत्रैः कृताभ्युपगमे संक्रमयांबभूवेति वार्ता। जराप्यन्तरितयौवनसुखा, ऽनभिमता च। गुरोर्ययातेरपि। मामन्तरेण मां विना, मय्यसंनिहित इत्यर्थः।

घूंघट वाली, लोगों के मन को बहलाने वाली, चण्डालों के बाँस पर ढोने योग्य-सी नीच (वंश क्रमागत) लक्ष्मी को मेरा मन छोड़ देना चाहता है। जले हुए घर में पक्षी के समान मैं क्षण भर भी नहीं ठहर सकता। मैं आश्रम में रहकर वस्त्र जैसे मन पर लगे हुए स्नेहरूपी मैल को पहाड़ों की चोटियों पर से प्रवाहित होने वाले स्वच्छ झरनों के निर्मल जल से धो डालना चाहता हूँ। जिस प्रकार पुरु ने पिता की आज्ञा से यौवन सुख से रहित तथा अप्रिय बुढ़ापे को स्वीकार किया था उसी प्रकार तुम मेरी राज्य-चिन्ता को ग्रहण कर लो। वृष्ण के सदृश समस्त बालक्रीडाओं को अब छोड़कर लक्ष्मी को अपना वक्ष दो। मैंने शस्त्र का परित्याग कर दिया है।" यह कहकर खड्गधारी पुरुष के हाथ से अपना खड्ग लेकर उसे जमीन पर रख दिया।

यह सुन कर तीखे शूल से मानो घायल हुए तथा विदीर्ण हृदय वाले देव

हर्षः समचिन्तयत्—'किं न खलु मामन्तरेणार्यः केनचिदसहिष्णुना किंचिद्ग्राहितः कुपितः स्यात्। उतानया दिशा परीक्षितुकामो माम्। उत तातशोकजन्मा चेतसः समाक्षेपोऽयमस्य। आहोस्विदार्य एवायं न भवति, किं वार्येणान्यदेवाभिहितमन्यदेवाश्रावि मया शोकशून्येन श्रवणेन्द्रियेण। आर्यस्य चान्याद्विवक्षितमन्यदेवापतितं मुखेन। अथवा सकलवंशविनाशाय निपातनोपायोऽयं विधेः। मम वा निखिलपुण्यपरिक्षयोपक्षेपः। कर्मणामननुकूलसमग्रग्रहचक्रवालविलसितं वा। अथवा तातविनाशनिःशङ्ककलिकालक्रीडितं येनायं यः कश्चिदिव यत्किंचनकारिणं मामपुष्यभूतिवंशसंभूतमिव, अताततनयमिव, अनात्मानुजमिव, अभक्तमिव, अदृष्टदोषमपि श्रोत्रियमिव सुरापाने, सद्भृत्यमिव स्वामिद्रोहे सज्जनमिव नीचोपसर्पणे, सुकलत्रमिव व्यभिचारे, अतिदुष्करे कर्मणि

श्रोत्रियो वेदपारगः। धन्वनि मरौ। धन्वन्यपि दग्धे राजाज्ञापि दाहकारिणी।

हर्ष ने सोचा—"क्या मेरी अनुपस्थिति में किसी असहिष्णु ने आर्य से कुछ कह दिया जिससे ये क्रुद्ध हैं? अथवा इस तरह से (ये) मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं? अथवा तात के शोक से उत्पन्न इनके हृदय की यह बेचैनी है? अथवा आर्य यह नहीं हो सकते, क्या आर्य ने कुछ दूसरा ही कहा और शोक के कारण सूने कर्णेन्द्रिय से मैंने कुछ दूसरा ही सुन लिया? आर्य का विवक्षित कुछ दूसरा ही था पर उनके मुख से कुछ दूसरा ही निकल गया (अर्थात् वे कहना चाहते थे कुछ और पर कह गये कुछ और) अथवा सम्पूर्ण वंश के विनाश के लिए विधाता द्वारा रचा गया यह ध्वंस का उपाय है। अथवा मेरे समस्त पुण्यों के क्षीण हो जाने का यह प्रसंग है। अथवा प्रतिकूल होकर एकत्र हुए समस्त ग्रहों का यह काम है? अथवा तात के विनाश से निःशङ्क होकर कलिकाल क्रीडा कर रहा है? जिससे जिस किसी के समान आर्य ने स्वेच्छा से आचरण करने वाले मुझे अत्यन्त दुष्कर कार्य करने के लिए उस प्रकार आदेश दिया है जैसे मैं पुष्यभूति के वंश में उत्पन्न ही नहीं, तात का पुत्र ही नहीं, अपना छोटा भाई ही नहीं, सेवक ही नहीं, जिसका कोई दोष न देखा गया हो ऐसे श्रोत्रिय की भाँति मद्यपान में, अच्छे नौकर के समान मालिक के साथ वैर करने में, सज्जन के समान नीचों के पास जाने में, कुलाङ्गना के समान व्यभिचार में,

समादिष्टवान् । तदेतत्तावदनुरूपं यच्छौर्योन्मादमदिरोन्मत्तसमस्तसामन्तमण्डलसमुद्रमथनमन्दरे तादृशि पितरि मृते तपोवनं वा गम्यते वल्कलानि वा गृह्यन्ते तपांसि वा सेव्यन्ते । या तु मयि राजाज्ञा सा दग्धोऽपि दाहकारिणी मय्यवग्रहग्लपिते धन्वनीवाङ्गारवृष्टिः । तदसदृशमिदमार्यस्य । यद्यपि च विभुरनभिमानः । द्विजातिरनेषणः, मुनिररोषणः, कपिरचपलः । कविरमत्सरः, वणिगतस्करः प्रियजानिरकुहनः, साधुरदरिद्रः, द्रविणवानखलः, कीनाशोऽनक्षिगतः, मृगयुरहिंस्रः, पाराशरो ब्राह्मण्यः, सेवकः सुखी, कितवः कृतज्ञः, परिव्राडबुभुक्षुः, नृशंसः प्रियवाक्, अमात्यः सत्यवादीः, राजसूनुर्दुर्विनीतश्च जगति दुर्लभः, तथापि

अनेषणो निरभिलाषः । प्रिया जाया यस्य । 'जायाया निङ्' । कुहना ईर्ष्या,शङ्का वा । कीनाशः क्षुद्रः । उक्तं च—'कृतान्ते पुंसि कीनाशः क्षुद्रकार्षिकयोस्त्रिपु' । अनक्षिगतः प्रियः । मृगयुर्व्याधः । पाराशरी भिक्षुः । कितवो द्यूतकृत् । गोष्यो

जैसे मुझे लगा दिया है । यह तो अच्छा ही है जो शूरता के उन्माद की मदिरा से उन्मत्त हुए समस्त मण्डल रूपी समुद्र का मन्दराचल के समान मन्थन करने वाले तात की मृत्यु के बाद तपोवन में रहा जाय, या वल्कल धारण कर लिये जाँय या तपस्या की जाय । जो मुझ पर राज्य करने की आज्ञा है वह अनावृष्टि के कारण सूखा पड़े हुए मरु के समान स्वयं जले हुए एवं विघ्नों से क्षीण मुझ पर जलन पैदा करने वाली, अङ्गारों की वर्षा है । इसलिए यह (अर्थात् ऐसा कहना) आर्य के अनुरूप न था । यद्यपि, जिसमें अभिमान न हो ऐसा अधिकारी, जिसमें एषणा (अभिलाषा) न हो ऐसा ब्राह्मण, जिसमें क्रोध न हो ऐसा मुनि, जिसमें चञ्चलता न हो ऐसा बन्दर, जिसमें मत्सर (दूसरे के उत्कर्ष को सहन न करने का भाव) न हो ऐसा कवि, जो चोर न हो ऐसा बनिया, जो ईर्ष्यालु या शङ्कालु न हो ऐसा प्रियतम, जो दरिद्र न हो ऐसा सज्जन, जो दुष्ट न हो ऐसा धनवान् व्यक्ति, जो नजरों पर न चढ़ गया हो ऐसा क्षुद्र व्यक्ति, जो हिंसा न करता हो ऐसा शिकारी, जो ब्राह्मणों का भक्त हो ऐसा पाराशरी भिक्षु जो सुखी हो ऐसा सेवक जो कृतज्ञ हो ऐसा धूर्त, जो भूखा न हो ऐसा सन्यासी, जो प्रिय बोलने वाला हो ऐसा क्रूर व्यक्ति, जो सत्यवादी हो ऐसा (कूटनीतिज्ञ) मन्त्री, जो उद्दण्ड न हो ऐसा राजकुमार संसार में दुर्लभ है तथापि मेरे आचार्य

ममार्य एवाचार्यः। को हि नाम तद्विधे निपतिते राजगन्धकुञ्जरे जनयितरि चेदृशे विफलीकृतविशालशिलास्तम्भोरुभुजे भूभुजि भ्रातरि त्यक्तराज्ये ज्यायसि नववयसि तपोवनं गच्छति सकललोकलोचनजलपातापवित्रं मृद्गोलकं वसुधाभिधानं घनमदखेलनिखिलखलमुखविकारलक्षणाख्यायमाननीचाचरणां श्रीसंज्ञिकां सुभटकुटुम्बकर्मकुम्भदासीं चण्डालोऽपि कामयेत। कथमिव संभावितमत्यन्तमनुचितमिदमार्येण। किमुपलक्षितमनवदातमिदं मयि। किं वास्य चेतसश्च्युतः सौमित्रिर्विस्मृता वा वृकोदरप्रभृतयः। अनपेक्षितभक्तजना स्वार्थैकनिष्पादननिष्ठुरा नासीदियमार्यस्येदृशी प्रभविष्णुता। अपि चार्ये तपोवनं गते जिजीविषुः को मनसापि महीं ध्यायेत्। कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातङ्गोत्तमाङ्गमदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभास्वरमुखे केसरिणि

दासः। राजसूनुर्दुर्विनीतश्चेत्येतत्प्रस्तावेन तदुक्तम्। खेलाः सविलासाः। अवदातं निर्मलम्। सौमित्रिर्लक्ष्मणः वृकोदरो भीमसेनः। प्रचयः समूहः। चपेटा करतला-

(उपदेशक गुरु) तो आर्य ही हैं। कौन ऐसा है जो उन गन्धगज के समान महाराज पिता जी के चले जाने पर और शिलास्तम्भ के सदृश विशाल भुजा को विफल करके राज्य छोड़ कर बड़े भाई के तपोवन चले जाते समय लोगों के आँसुओं से अपुनीत पृथिवी नामक मिट्टी के गोले को एवं धन के नशे के खेल में सम्पूर्ण दुष्ट व्यक्तियों के मुख को विकृत कर देने से विख्यात नीच आचरण वाली लक्ष्मी नामक सुभटों के परिवार का काम करने वाली (कुम्भदासी) की चांडाल होकर भी कामना करे। कैसे इस अनुचित विचार को आर्य ने स्वीकार कर लिया ? क्या उन्होंने मुझमें कालुष्य देखा ? क्या उनके हृदय में लक्ष्मण नहीं रहे या भीमसेन आदि छोटे भाई विस्मृत हो गए ? अपने भक्तजनों की उपेक्षा करने वाली तथा केवल अपने ही स्वार्थ का निष्पादन करने में निष्ठुर यह आर्य की प्रभुता पहले न थी। यदि आर्य तपोवन को चले गए तो जीने की इच्छा रखने वाला कौन व्यक्ति मन से भी पृथिवी का चिन्तन करे ? वज्र के अग्रभाग के समान अपने नखों के प्रचण्ड चाँटे से मतवाले हाथी के मस्तक को विदीर्ण कर देने से उत्पन्न मदधारा से भीगे हुए केसर के कारण भास्वर मुख वाले सिंह के

वनविहाराय विनिर्गते निवास गिरिगुहां कः पाति पृष्ठतः। प्रतापसहाया हि सत्त्ववन्तः। कश्चपलां राजलक्ष्मीं प्रत्यनुरोधोऽयमार्यस्य यदियमपि न चीवरान्तरितकुचा कुशकुसुमसमित्पलाशपूलिकां वहन्ती तत्रैव तपोवने वनमृगीव नीयते जराजालिनी। किंवा ममानेन वृथा बहुधा विकल्पितेन तूष्णीमेवार्यमनुगमिष्यामि। गुरुवचनातिक्रमकृतं च किल्बिषमेतत्तपोवने तप एवापास्यति।' इत्यवधार्य मनसा प्रथमतरं गतस्तपोवनमधोमुखस्तूष्णीमेवातिष्ठत।

अत्रान्तरे पूर्वादिष्टेनैव रुदता वस्त्रकर्मान्तिकेन समुपस्थापितेषु वल्कलेषु, निर्दयकरतलताडनभियेव क्वापि गते हृदये, रटति राजस्त्रैणे, तारमब्रह्मण्यमूर्ध्वदोष्णि विरुवति विप्रजने, पादप्रणतिपरे फूत्कुर्वति पौरवृन्दे,

---

घातः। वनमृग्यपि कुशादि वहति। जालिनी मायिनी।

अत्रेत्यादौ। संवादको नाम सदस्यात्मानमपातयदिति सम्बन्धः। कर्मान्तिकोऽधिकृतः। करतलताडनेति। करतलताडनं हृदये वा। स्त्रैणे स्त्रीसमूहे। 'अब्रह्म-

---

वन विहार के लिए निकल जाने पर पीछे कौन उसके निवास स्थान गुफा की रक्षा करे? सत्त्ववान् अर्थात् महानुभाव लोग प्रताप की सहायता लेते हैं। चञ्चल स्वभाव वाली राजलक्ष्मी के प्रति आर्य का यह कैसा आग्रह है जो चीवर से ढँके स्तनों वाली, कुश, पुष्प, समिधा एवं पलाश की पूली ढोने वाली वनमृगी के समान अति जर्जर इसे वहीं तपोवन में साथ नहीं ले जाते? मेरे इस प्रकार के विकल्प से क्या? मैं तो चुपचाप ही आर्य के पीछे चल दूँगा। गुरुजनों की बातों का उल्लङ्घन करने के कारण जो यह पाप होगा। उसे तपोवन में तप ही दूर करेगा।" ऐसा निश्चय करके मन से तपोवन में पहले ही पहुँचे हुए हर्ष मुँह नीचा करके चुपचाप बैठे रहे।

इसी बीच पहले से आदेश प्राप्त किये हुए तथा रोते हुए वस्त्र कर्मान्तिक (सरकारी तोशेखाने का अधिकारी) द्वारा वल्कल उपस्थापित करने पर मानो निष्करुण करतल के ताडन के भय से हृदय के कहीं चले जाने पर, राजकुल की स्त्रियों के चिल्लाना प्रारम्भ करने पर, ब्राह्मण लोगों द्वारा भुजा उठाकर "अब्रह्मण्य" ऐसा उच्चस्वर से कहना प्रारम्भ करने पर, नागरिक लोगों द्वारा

विद्राति विद्रुतचेतसि चिरंतने परिजने, परिजनावलम्बिते गते वर्षीयसि, वेपमानवपुषि, पर्याकुलवाससि, शोकगद्गदवचसि, विगलितनयनपयसि, निवारणोद्यतमनसि; विशति बन्धुवर्गे, निराशेषु नखलिखितमणिकुट्टिमेष्ववाङ्मुखेन निःश्वसत्सु सामन्तेषु, सबालवृद्धासु तपोवनाय प्रस्थितासु सर्वासु प्रजासु सहसैव प्रविश्य शोकविक्लवः प्रक्षरितनयनसलिलो राज्यश्रियः परिचारकः संवादको नाम प्रज्ञाततमो विमुक्ताक्रन्दः सदस्यात्मानमपातयत् ।

अथ संभ्रान्तो भ्रात्रा सह स्वयं देवो राज्यवर्धनस्तं पर्यपृच्छत्–'भद्र ! भण भण किमस्मद्व्यसनव्यवसायवर्धनबद्धधृतिः, अवनिपतिमरणमुदितमतिः, अधृतिकरमपरमधिकतरमितो दुःखातिशयं समुपनयति विधिः इति। स कथं कथमप्यकथयत्—'देव ! पिशाचानामिव नीचात्मनां

व्यसनवध्योक्तौ ।' फूत्करणमुद्दामरोदनध्वनिः । विद्रातिः कुत्सितः । गते प्राप्ते । वर्षीयसि वृद्धतरे ।

पाँव पर गिरकर घिघयाना प्रारम्भ करने पर, विचलित मनवाले पुराने सेवक द्वारा दौड़ पड़ने पर, जो परिजनों का सहारा लिये हुए थे, जिनके शरीर काँप रहे थे, जिनके वस्त्र अस्त व्यस्त थे, जिनकी वाणी शोक के कारण गद्गद थी, जिनके नेत्रों से आँसू गिर रहे थे, जो (राज्यवर्धन को) रोकने के लिए मन से तैयार थे ऐसे बड़े-बूढ़े बांधव लोगों द्वारा भीतर प्रवेश करना प्रारम्भ करने पर, नख से मणिकुट्टिम पर कुछ लिखते हुए निराश सामन्तों द्वारा बिना वाणी के मुख से निःश्वास लेना (या आहें भरना) प्रारम्भ करने पर, बच्चों एवं बूढ़ों के साथ तपोवन के लिए सभी प्रजा के प्रस्थान करने पर, अचानक शोक से व्याकुल, नेत्रजल बहाता हुआ, संवादक नाम का राज्यश्री का अत्यन्त परिचित परिचारक रोता-कलपता सभा में आकर गिर पड़ा ।

तब भाई के साथ घबड़ाकर स्वयं देव राज्यवर्धन ने उससे पूछा—"भद्र ! कहो, कहो, हमारे दुःख के व्यवसाय को बढ़ाने में निश्चल धैर्यवाला, राजा की मृत्यु से प्रसन्न बुद्धिवाला तथा अधीर करने वाला विधाता इससे बढ़कर भी क्या दुःखातिशय उपस्थित कर रहा है ?" उसने किसी-किसी प्रकार कहा—"देव !

चरितानि छिद्रप्रहारीणि प्रायशो भवन्ति। यतो यस्मिन्नहन्यवनिपति-रुपरत इत्यभूद्वार्ता तस्मिन्नेव देवो ग्रहवर्मा दुरात्मना मालवराजेन जीव-लोकमात्मानः सुकृतेन सह त्याजितः। भर्तृदारिकापि राज्यश्रीः कालायस-निगडयुगलचुम्बितचरणा चौराङ्गनेव संयता कान्यकुब्जे कारायां निक्षिप्ता। किंवदन्ती च यथा किलाऽनायकं साधनं मत्वा जिघृक्षुः सुदु-र्मतिरेतामपि भुवमाजिगमिषति। इति विज्ञापिते प्रभुः प्रभवतीति।

ततश्च तादृशमनुपेक्षणीयमसंभावितमाकस्मिकमुपरि व्यतिकरमाकर्ण्या-श्रुतपूर्वत्वात्परिभवस्य, परपरिभवासहिष्णुतया च स्वभावस्य, दर्पबहुलत-या च नवयौवनस्य, वीरक्षेत्रसंभवत्वाच्च जन्मनः, कृपाभूमिभूतायाश्च स्वसुः स्नेहात्स तादृशोऽपि बद्धमूलोऽप्यत्यन्तगुरुरेकपद एवास्य ननाश शोकावेगः। विवेश च सहसा केसरीव गिरिगुहागृहं गभीरहृदयं भयङ्करः कोपावेगः।

कारायां बन्धने। किंवदन्ती लोकवार्ता।

पिशाचों के समान नीच आत्मावालों के चरित प्रायः छिद्र देखकर प्रहार करने वाले होते हैं। क्योंकि जिस दिन "महाराज शान्त हुए" (अर्थात् महाराज की मृत्यु हुई) यह समाचार फैला उसी दिन देव ग्रहवर्मा अपने पुण्य के साथ दुष्ट मालवराज के द्वारा जीवलोक से हटा दिये गए (अर्थात् मालवराज द्वारा ग्रहवर्मा मार डाले गए)। महाराज की पुत्री राज्यश्री को भी लोहे की बेड़ियों में जकड़कर चोर स्त्री के सदृश कान्यकुब्ज के कारागार में डाल दिया गया है। यह खबर उड़ रही है कि सेना को नायक हीन जानकर वह दुर्बुद्धि (मालवराज) आक्रमण करने के लिए इस ओर भी आना चाहता है। मेरे इस निवेदन में स्वामी ही समर्थ हैं।"

तब उस प्रकार के अपने ऊपर उपेक्षा न करने योग्य, जिसकी कोई सम्भावना न थी ऐसे आकस्मिक दुःख को सुनकर, अपने परिभव के पहले कभी नहीं सुनने के कारण, दूसरे द्वारा परिभव को सहन न करने के कारण, नवीन यौवन के दर्पबहुल होने के कारण, वीरकुल में जन्म होने के कारण तथा कृपा के योग्य बनी हुई बहन के प्रति स्नेह के कारण, उन (राज्यवर्धन) की बद्धमूल भी अत्यन्त विशाल उस प्रकार का शोका वेग एक ही क्षण में समाप्त हो गया। जिस प्रकार सिंह पर्वत की गुफा रूपी अपने घर में प्रवेश करता है उसी प्रकार

केशिनिषूदनशङ्काकुलकालियभङ्गुरभ्रूभङ्गतरङ्गिणी श्यामायमाना यमस्वसेव प्रथीयसी ललाटपट्टे भीषणा भ्रुकुटिरुदभिद्यत। दर्पात्परामृशन्नखकिरणसलिलनिर्झरैः समरभारसंभावनाभिषेकमिव चकार दिङ्नागकुम्भकूटविकटस्य बाहुशिखरकोशस्य वामः पाणिपल्लवः। संगलत्स्वेदसलिलपूरितोदरो निर्मूलं मालवोन्मूलनाय गृहीतकेश इव दुर्मदश्रीकचग्रहोत्कण्ठयेव च कम्पमानः पुनरपि समुत्ससर्प भीषणं कृपाणं पाणिरपरः। शस्त्र-

केशिनिषूदनः कृष्णः। यमस्वसा यमुना। सापि कालियाकुला सतरङ्गा, श्यामायमाना च। परामृशन्नित्यर्थाद् बाहुशिखरमेव। कोशो दिव्यम्। उक्तं च—

सहसा उनके गम्भीर हृदय में भयानक को पावेग प्रविष्ट हुआ। केशी को मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के भय से व्याकुल कालियनाग के रूप में भङ्गुर भ्रूभङ्ग रूपी तरङ्गों वाली यम-भगिनी अर्थात् यमुना (नदी) के सदृश भीषण विशाल भ्रुकुटि ललाट-पट्ट पर उद्भिन्न हो गई। दर्प से उनका बायाँ हस्तपल्लव दिग्गज के कुम्भकूट के सदृश विकट स्कन्ध देश के खड्ग कोश को स्पर्श करता हुआ युद्ध-भार के ग्रहण से पूर्व नख किरणों की जलधार से मानो अभिषेक करने लगा। चूते हुए पसीने से भरा उनका दायाँ हाथ मालव के निर्मूल विनाश के लिए मानो दुर्मद श्री के बालों को पकड़ने की उत्कण्ठा से काँपता हुआ भीषण

श्री अग्रवालजी ने इस कूट लेख के तीन अर्थ किये हैं—(१) म्यान के पक्ष में—राज्यवर्धन का बायाँ हाथ दाहिनी ओर कमर में खोंसी हुई भुजाली की मूँठ पर गया जो गजमस्तक के अलङ्करण से सुशोभित थी। इस प्रकार उस हाथ की नख किरणों ने युद्ध का बोझ उठाने में समर्थ उस म्यानबद्ध भुजाली का मानो जलधाराओं से सम्मान पूर्वक अभिषेक किया।

(२) दिव्य परीक्षा के पक्ष में—गजमस्तक की तरह निकट मुट्ठी बँधा हुआ बायाँ हाथ दिव्य परीक्षा के समय दाहिनी मुट्ठी को अपनी नख किरणों से मानो मृत्यु पर्यन्त दण्ड की सम्भावना का अभिषेक करा रहा था।

(३) अभिधर्मकोश ग्रन्थ के पक्ष में—दिङ्नाग के मस्तक को कूट कल्पनाओं से विकट बना हुआ जो वसुबन्धु का अभिधर्मकोश ग्रन्थ का भावनामय (विचारों के द्वारा) ऐसा स्नान कराती थी जिससे शास्त्रार्थरूपी युद्धों के छिड़ने से रसहीनता आ जाती थी। (हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन—पृ० १२१-१२३)

ग्रहणमुदितराजलक्ष्मीक्रियमाणदिष्टवृद्धिविधुतसिन्दूरधूलिरिव कपिलः कपोलयोरदृश्यत रोषरागः। समासन्नसकलमहीपालचूडामणिचक्राक्रमणजाताहङ्कार इव च समारुरोह वाममुरुदण्डमुत्तानितश्चरणो दक्षिणः। निष्ठुराङ्गुष्ठकषणनिष्ठ्यूतधूमलेखो निर्वीरोर्वीकरणाय विमुक्तशिख इव लिलेख मणिकुट्टिममितरः पादपद्मः। दर्पस्फुटितसरसव्रणोच्छलितरुधिरच्छटासेकैः शोकविषप्रसुप्तं प्रबोधयन्निव पराक्रममनुजमवादीत्—'आयुष्मन्! इदं राजकुलम्, अमी बान्धवाः, परिजनोऽयम्, इयं भूमिः, भूपतिभुजपरिघपालिताश्चैताः प्रजाः, गतोऽहमद्यैव मालवराजकुलप्रलयाय। इदमेव तावद्वल्कलग्रहणमिदमेव तपः शोकापगमोपायश्चायमेव यदत्यन्ताविनो-

'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः' इति कोशकारः। पाणिः सलिलपूरितोदरो भवति। कचाः केशाः। यश्च कामी कामिनीकचग्रहणं प्रत्युत्कण्ठते स कम्पते स्वेदवांश्च भवति दिष्टमानन्दः। विमुक्तेति। वीराः किल रोषेण केशसंयम-

कृपाण की ओर बार-बार बढ़ने लगा। मानो (राज्यवर्धन द्वारा) शस्त्र ग्रहण करने से प्रसन्न होकर राजलक्ष्मी अपनी भाग्य वृद्धि मानकर सिन्दूर की धूल उड़ाने लगी हो इस प्रकार उसके कपोलों पर कपिल वर्ण का क्रोधराग दिखाई पड़ने लगा।

उनका दायाँ पैर समीपवर्ती राजाओं की चूड़ामणियों पर प्रतिबिम्ब के रूप में आक्रमण करने से मानो उत्पन्न अहङ्कार के कारण बायें ऊरुदण्ड पर उत्तान होकर चढ़ गया। बायाँ चरणकमल अंगूठे को जोर से दबाकर रगड़ने से धुआँ उगलकर मानो पृथिवी को वीर शून्य करने के लिए धूमशिखा उत्पन्न करता हुआ मणिकुट्टिम को कुरेदने लगा। मानो दर्प के स्फोट से उत्पन्न ताजा घाव से उछाल मारते हुए रक्त की छटा के छींटों से शोकरूपी विष से मूर्च्छित पड़े हुए अपने पराक्रम को होश में लाते हुए वे छोटे भाई हर्ष से बोल उठे—"आयुष्मन्! यह रहा राजकुल; ये रहे बान्धव; यह रहा परिजन; यह रही पृथिवी; महाराज के बाहुदण्ड से पालित ये रही प्रजाएँ; मैं आज ही मालवराज के कुल का विनाश करने के लिए चला। मेरे लिए यही वल्कल का धारण है, यही तपस्या है और यही शोक को दूर करने का उपाय है कि अत्यन्त अविनीत

तारिनिग्रहः। सोऽयं कुरङ्गकैः कचग्रहः केसरिणः, भेकैः करपातः कालसर्पस्य, वत्सकैर्बन्दिग्रहो व्याघ्रस्य, अलगर्दैर्गलग्रहो गरुडस्य, दारुभिर्दाहादेशो दहनस्य, तिमिरैस्तिरस्कारो रवेः, यो मालवैः परिभवः पुष्यभूतिवंशस्य। अन्तरितस्तापो मे महीयसा मन्युना। तिष्ठन्तु सर्व एव राजानः करिणश्च त्वयैव सार्धम्। अयमेको भण्डिरयुतमात्रेण तुरङ्गमाणामनुयातु माम्।' इत्यभिधाय चानन्तरमेव प्रयाणपटहमादिदेश।

तं च तथा समादिशन्तमाकर्ण्य जामिजामातृवृत्तान्तविज्ञानप्रकोपाधानदूयमाने मनसि निवर्तनादेशेन दूरप्ररूढप्रणयपीड इव प्रोवाच देवो हर्षः—'किमिव हि दोषं पश्यत्यार्यो ममानुगमनेन? यदि बाल इति नितरां तर्हि न परित्याज्योऽस्मि। रक्षणीय इति भवद्भुजपञ्जरो रक्षास्थानम्, अशक्त इति क्व परीक्षितोऽस्मि, संवर्धनीय इति वियोगस्तनूकरोति,

नमरातिपरिभवप्रतीकारं न कुर्वते। भेको मण्डूकः। करपातश्चपेटादानम्। अलगर्दैर्जलसर्पैः।

शत्रु का दमन हो। हरिणों द्वारा सिंह के बाल पकड़ने के समान, मेढकों द्वारा काले सर्प को तमाचा मारने के समान, बछड़ों द्वारा बाघ को बन्दी बनाने के समान, ढोंड़ साँपों द्वारा गरुड़ की गर्दन पकड़ने के समान, लकड़ियों द्वारा आग को जलाने के आदेश के समान तथा अन्धकारों द्वारा सूर्य के तिरस्कार के समान यह जो मालवों द्वारा पुष्यभूति वंश का अपमान है, इस महान् क्रोध के कारण मेरा ताप अब मिट चुका है। सभी राजा लोग तथा हाथी तुम्हारे साथ ही रहें। अकेला यह भण्डि दस हजार घोड़ों की सेना लेकर मेरे साथ चले।" यह कहकर उन्होंने तुरन्त ही कूच का डंका बजाने का आदेश दिया।

उन्हें उस प्रकार आदेश देते हुए सुनकर बहन और बहनोई के वृत्तान्त के ज्ञान से प्रचण्ड क्रोध द्वारा आविष्ट, अपने रुक जाने के आदेश से बढ़ी हुई प्रेम-पीडा से मानो युक्त देव हर्ष ने कहा—"आर्य मेरे अनुगमन से क्या दोष देखते हैं? यदि मैं बच्चा हूँ फिर भी परित्याग के योग्य नहीं हूँ। यदि रक्षणीय हूँ तो आर्य की भुजाओं का पिंजड़ा ही (मेरे लिए) रक्षा का स्थान है। यदि अक्षम हूँ तो आर्य ने मेरी परीक्षा ही कहाँ ली? यदि संवर्धन के योग्य हूँ तो आपका (अर्थात् आर्य का) विरह मुझे क्षीण कर डालता है। यदि मुझे क्लेस को न

अक्लेशसह इति स्त्रीपक्षे निक्षिप्तोऽस्मि, सुखमनुभवत्विति त्वयैव सह तत्प्रयाति, महानध्वनः क्लेश इति विरहाग्निविषह्यतरः, कलत्रं रक्षात्विति श्रीस्ते निस्त्रिंशेऽधिवसति, पृष्ठनः शून्यमिति तिष्ठत्येव प्रतापः, राजकमनधिष्ठितमिति तत्सुबद्धमार्यगुणैः, न बाह्यः सहायो महत इति व्यतिरिक्तमेव मां गणयति, प्रलघुपरिकरः प्रयामीति पादरजसि कोऽतिभारः, द्वयोर्गमनमसांप्रतमिति मामनुगृहाण गमनाज्ञया, कातरो भ्रातृस्नेह इति सदृशो दोषः। का चेयमात्मंभरिता भुजस्य ते यदेकाकी क्षीरादफेनपटलपाण्डुरममृतमिव यशः पिपासति। अवञ्चितपूर्वोऽस्मि प्रसादेषु। तत्प्रसीदत्वार्यो नयतु मामपि'—इत्यभिधाय क्षितितलविनिहितमौलिः पादयोरपतत्।

जामिर्भगिनी। न बाह्य इति। किल य एव त्वं स एवाहमिति। कोऽसौ सहायोऽस्य। आत्मंभरिता स्वार्थमात्रपरता।

सहनेवाला समझा जा रहा है तो फिर मुझे स्त्रियों की श्रेणी में ही रख दिया गया है। "तुम सुख से रहो" यदि यह चाहते हैं तो वह भी (अर्थात् मेरा सुख भी) आपके साथ ही जाने को तत्पर है।

"मार्ग का कष्ट महान् है" यह कहें तो आपके विरह की अग्नि उससे भी अधिक असह्य है।" स्त्रियों की रक्षा करो" यह कहें तो आपकी तलवार में ही वह श्री निवास करती है। "पीछे कुछ नहीं" यह कहें तो आपका प्रताप पीछे-पीछे है ही। "राजसमूह नायकहीन है" यह कहें तो आर्य के गुणों से ही वह अपने अधीन बना रहेगा।" कोई बाहरी व्यक्ति महान् लोगों का सहायक नहीं होता" यह कहे तो मुझे अपने से अलग समझ रहे हैं।" कुछ थोड़े से ही लोगों को साथ लेकर जा रहा हूँ" यह कहें तो पाँव की धूल का क्या अधिक भार है? "दो भाइयों का साथ जाना उचित नहीं" तो मुझे ही जाने की आज्ञा देकर अनुगृहीत करें। "भाई का स्नेह भय उत्पन्न कर रहा है" यह तो हम दोनों के लिए ही समान दोष है। आप के भुजदण्ड की यह कौन सी स्वार्थपरता है जो अकेले ही क्षीर सागर के फेनसमूह के समान उज्ज्वल अमृतरूप यश को पी लेना चाहता है। पहले कभी भी आपने अपनी प्रसन्नताओं से मुझे वञ्चित नहीं किया। इसलिए आर्य प्रसन्न हों तथा मुझे भी साथ ले चलें।" यह कहकर जमीन पर माथा टेकते हुए उनके चरणों पर गिर गए।

तमुत्थाप्य पुनरग्रजो जगाद—'तात ! किमेवमतिमहारम्भपरिग्रहणेन गरिमाणमारोप्यते बलादतिलघीयानप्यहितः। हरिणार्थमतिह्रेपणः सिंहसंभारः। तृणानामुपरि कति कवचयन्त्याशुशुक्षणयः। अपि च तवाष्टादशद्वीपाष्टमङ्गलकमालिनी मेदिन्यस्त्येव विक्रमस्य विषयः। नहि कुलशैलनिवहवाहिनो वायवः संनह्यन्त्यतितरले तूलराशौ। न सुमेरुवप्रप्रणयप्रगल्भा वा दिक्करिणः परिणमन्त्यणीयसि वल्मीके। ग्रहीष्यसि सकलपृथ्वीपतिप्रलयोत्पातमहाधूमकेतुं मान्धातेव चारुचामीकरपङ्कपत्रलतालंकाराङ्कितायं कार्मुकं ककुभां विजये। मम तु दुर्निवारायामस्यां विपक्षक्षपणक्षुधि क्षुभितायां क्षम्यतामयमेकाकिनः कोपकवल एकः। तिष्ठतु भवान्।' इत्यभिधाय च तस्मिन्नेव वासरे निर्जगामाभ्यमित्रम्।

अतिह्रेपणोऽत्यन्तलज्जाकारी। कवचयन्ति संनह्यन्ति। आशुशुक्षणयोऽग्नयः। अष्टमङ्गलकं कङ्कणमित्यन्ये। तूलं कार्पासः। परिणमन्ति तटाघातक्रीडां न कुर्वन्ति। अणीयस्यतिस्वल्पे। वल्मीके पिपीलिकोत्खाते मृत्स्थले। अभ्यमित्रं शत्रुसंमुखम्।

बड़े भाई (राज्यवर्धन) ने उन्हें उठाकर फिर कहा—"तात ! बल की दृष्टि से अत्यन्त तुच्छ उस शत्रु को इस प्रकार बहुत बड़ी तैयारी करके क्यों बड़प्पन दे रहे हो ? हिरन मारने के लिए सिंहों का झुण्ड ले जाना अत्यन्त लज्जाजनक है। तिनकों को जलाने के लिए कितनी अग्नियाँ कवच धारण करेंगी ? और फिर, तुम्हारे पराक्रम के लिए अट्ठारह द्वीपों की अष्ट मङ्गलक माला पहनने वाली पृथिवी विषय है ही। कुल पर्वतों को उड़ा ले जाने वाले वायु थोड़ी सी रूई की ढेर लिए तैयार नहीं करते। सुमेरु से टक्कर लेने वाले दिग्गज कभी बाम्बी से नहीं भिड़ते। मान्धाता की भाँति दिशाओं की विजय में सम्पूर्ण राजाओं के संहार के लिए उत्पात की सम्भावना करनेवाला धूमकेतु रूप और सुवर्ण की पत्रलताओं से रचित धनुष अपने हाथ से पकड़ोगे ? शत्रु के संहार की इस दुर्निवार भूख के क्षुभित होने पर अकेले मेरे इस क्रोध के एक कौर पर क्षमा करो। तुम रुको।' यह कहकर राज्यवर्धन उसी दिन शत्रु की ओर निकल पड़े।

अथ तथागते भ्रातरि, उपरते च पितरि, प्रोषितजीविते च जामातरि, मृतायां च मातरि, संयतायां च स्वसरि, स्वयूथभ्रष्ट इव वन्यः करी देवो हर्षः कथं कथमप्येकाकी कालं तमनैषीत्। अतिक्रान्तेषु बहुषु वासरेषु कदाचित्तयैव भ्रातृगमनदुःखासिकया दत्तप्रजागरस्त्रिभागमेषायां त्रियामायां मामिकेन गीयमानामिमामार्या शुश्राव—

द्वीपोपगीतगुणमपि समुपार्जितरत्नराशिसारमपि।
पोतं पवन इव विधिः पुरुषमकाण्डे निपातयति॥ ३॥

तां च श्रुत्वा सुतरामनित्यताभावनया दूयमानहृदयः प्रक्षीणभूयिष्ठायां क्षपायां क्षणमिव निद्रामलभत। स्वप्ने चाभ्रंलिहं लोहस्तम्भं भज्यमानमपश्यत्। उत्कम्पमानहृदयश्च पुनः प्रत्यबुध्यत। अचिन्तयच्च—'किं नु खलु मामेवममी सततमनुबध्नन्ति दुःस्वप्नाः। स्फुरति च दिवानिशमकल्याणाख्यानेविचक्षणमदक्षिणमक्षि। सुदारुणाश्चाक्षुद्रक्षितिपक्षयमाच-

---

यामिकेन जागरानियुक्तेन। रत्नराशिर्मणिसमूहः, अब्धिश्च। तस्य साराः श्रेष्ठरत्नानि। पोतं यानपात्रम्। निपातयति व्यापादयति। अत्युन्नतमभ्रंलिहं

इस प्रकार भाई के चले जाने पर, पिता के मर जाने पर, बहनोई ग्रहवर्मा के भी जीवित रहने पर, माता के मर जाने पर तथा बहन के बन्दी बना लिये जाने पर, अपने झुण्ड से भटके हुए बनैले हाथी के समान हर्ष ने किसी-किसी प्रकार वह समय बिताया। जब बहुत दिन बीत गये तो किसी समय भाई के चले जाने के दुःख की चिन्ता में जगे-जगे उन्होंने रात के तीसरे पहर में पहरुवे द्वारा गाई हुई इस आर्या को सुना—"समस्त द्वीपों में जिसका गुणगान किया जाता है तथा जो रत्नसमूह का उपार्जन कर लेता है ऐसे पुरुष को भी विधि असमय में उस प्रकार पटक देता है जैसे वायु जहाज को ॥३॥"

उस आर्या को सुनकर हर्ष का हृदय अनित्यता की भावना से बेहद दुःखी होने लगा तथा रात जब कुछ ही बच रही थी तब उन्हें क्षण भर नींद आ गई। स्वप्न में उन्होंने एक गगनचुम्बी लौहस्तम्भ को टूटते हुए देखा। काँपते हृदय से वे पुनः जाग पड़े और सोचने लगे—"ये दुःस्वप्न हमेशा मेरे ही पीछे क्यों लगे रहते हैं?" अशुभ की सूचना देने में निपुण मेरा बायाँ नेत्र दिन रात फड़कता रहता है। किसी बड़े राजा के नाश को सूचित करने वाले ये दारुण

क्षाणाः क्षणमपि न शाम्यन्ति पुनरुत्पाताः। प्रत्यहं राहुरविकलकायबन्ध इव कबन्धवति ब्रध्नबिम्बे घटमानो विभाव्यते। तपःकरणकालकवलितानिव धूसरितसमग्रग्रहानुद्‌गिरन्ति धूमोद्गारान् सप्तर्षयः। दिने दिने दारुणा दिशां दाहा दृश्यन्ते। दिग्दाहभस्मकणनिकर इव निपतति नभस्तलात्तारागणः। तारापातशुचेव निष्प्रभः शशी। निशि निशि इतस्ततः प्रज्वलिताभिरुल्काभिरुग्रं ग्रहयुद्धमिव वियति विलोकयन्ति विलोलतारकाः ककुभः। राज्यसंचारसूचकः संचारयतीव क्ष्मां क्वापि बहद्बहलरजःपटलकलिलशर्कराशकलसूत्कारी मारुतः। न कुशलमिव पश्यामि लग्नस्य। अस्मिन्नस्मद्वंशे करिण इव करीरं कोमलमपि कलयतः कृतान्तस्य कः परिपन्थी ? सर्वथा स्वस्ति भवत्वार्याय।' इति चिन्त-

---

नभः स्पृशन्। अक्षुद्रः प्रधानभूतः। राहोरविकलकायबन्धनं कबन्धयोगात्। कबन्धदर्शनं चोत्पातसूचकम्। विलोलतारका इति। स्त्रीणां च युद्धदर्शनवशादक्ष्णोश्च लोलत्वं भवति। कलिलानि व्याप्तानि। वंशो वेणुरपि। करीरो वंशाङ्कुरः। अपिशब्दः कृतान्तस्येत्यतः परं योज्यः। परिपन्थी रोधकः। परिपूर्वपर्याय: परिपन्थशब्दोऽस्तीति ज्ञापितम्।

उत्पात क्षण भर भी शान्त नहीं हो रहे हैं। प्रतिदिन कबन्ध (शिरविहीन शरीर) युक्त सूर्य बिम्ब में कायबन्ध से जुड़ता हुआ राहु दिखाई देता है। सप्तर्षि तारे तपस्या करने के समय में कौर बनाये गए धुएँ को उगल रहे हैं जिससे आकाश के सारे तारे धुँधले हो रहे हैं। प्रतिदिन दारुण दिग्दाह दिखाई पड़ते हैं। दिग्दाहों के भस्मकणों के रूप में तारे आकाश से टूट कर गिरते हैं। मानो तारों के गिरने के शोक से चन्द्रमा प्रभाहीन लगता है। हर रात इधर-उधर जलती हुई उल्काओं के कारण चञ्चल तारों वाली दिशाएँ मानो आकाश में ग्रहों के चल रहे पारस्परिक युद्ध को देखा करती हैं। धूल और कंकड़ पत्थर से भरा हुआ, सांय-सांय की आवाज से युक्त एवं राज्य के विलयन की सूचना देने वाला वायु पृथिवी को मानो कहीं उड़ाये लिए जा रहा है। शुभ लग्न को भी उपस्थित नहीं देखता हूँ। हमारे इस वंश में कोमल वंशाङ्कुर को नष्ट करते हुए हाथी के सदृश यमराज का शत्रु कौन है ? सब प्रकार से आर्य का कल्याण

यित्वा च अन्तर्भिन्नं भ्रातृस्नेहकातरं द्रवदिव हृदयं कथं कथमपि संस्तभ्योत्थाय यथाक्रियमाणं क्रियाकलापमकरोत् ।

आस्थानगतश्च सहसैव प्रविशन्तम्, अनुप्रविशता विषण्णवदनेन लोकेनानुगम्यमानम् असह्यदुःखोष्णनिःश्वासधूमरक्ततन्तुनेव मलिनेन पटेन प्रावृतवपुषम्, जीवितधारणलज्जयेवावनतमुखम्, नासावंशस्याग्रे ग्रथितदृष्टिम्, दुःखदूरप्ररूढरोम्णा मूकेनापि मुखेन स्वामिव्यसनमविच्छिन्नैरश्रुबिन्दुभिर्विज्ञापयन्तं कुन्तलं नाम बृहदश्ववारम्, राज्यवर्धनस्य प्रसादभूमिमभिज्ञाततमं ददर्श । दृष्ट्वा च जाताशङ्कश्चक्षुषि सलिलेन, मुखशशिनि श्वसितेन, हृदये हुताशनेन, उत्सङ्गे भुवा, दारुणाप्रियश्रवणसमये सममिव सर्वेष्वङ्गेष्वगृह्यत लोकपालैः । तस्माच्च हेलानिर्जितमाल-

अप्रियेति । अप्रियग्रहणकाले च दुःखं सर्वाङ्गेषु गृह्यते ।

हो ।" वह सोचकर भ्रातृ-प्रेम के कारण कातर मानो पिघलते हुए अपने हृदय को किसी-किसी प्रकार रोककर हर्ष ने अपने नित्यकार्य किये ।

अस्थान मण्डप में पहुँचते ही हर्ष ने अचानक, प्रवेश करते हुए, विषाद युक्त लोग जिसके पीछे-पीछे प्रवेश कर रहे थे ऐसे, मानो असह्य दुःख के कारण गर्म निःश्वास के धुएँ से लाल तन्तुवाले गन्दे कपड़े से जिसका शरीर ढँका था ऐसे, मानो प्राण धारण की लज्जा से जो मुँह झुकाये हुए था ऐसे, अपनी नाक के अग्रभाग पर जो दृष्टि गड़ाए हुए था इसे, दुःख के कारण रोमाञ्च से भरे हुए जिसके मुख से आवाज नहीं निकल रही थी फिर भी अपने ढलकते हुए अश्रु बिन्दुओं से जो अपने स्वामी के आकस्मिक व्यसन को सूचित कर रहा था ऐसे कुन्तल नामक प्रधान घुड़सवार को, जो राज्यवर्धन का कृपापात्र था तथा अपना भी अति परिचित था, देखा । उसे देखकर वे शंकित हो गए, तभी उनकी आँख में जल (जलदेवता वरुण), मुख में श्वास (वायु देवता), हृदय में अग्नि (अग्नि देवता), गोद में पृथिवी (भूदेवता), इन लोकपाल देवताओं ने दारुण अप्रिय समाचार के सुनने के समय में उन्हे मिलकर सभी अङ्गों में सम्हाल लिया । (हर्ष ने) उस (कुन्तल नामक अश्वपाल) से सुना कि राज्यवर्धन ने खेल ही खेल में मालव की सेना को परास्त कर दिया था किन्तु गौडाधिपति की

चानीकमपि गौडाधिपेन मिथ्योपचारोपचितविश्वासं मुक्तशस्त्रमेकाकिनं विश्रब्धं स्वभवन एव भ्रातरं व्यापादितमश्रौषीत् ।

श्रुत्वा च महातेजस्वी प्रचण्डकोपपावकप्रसरपरिचीयमानशोकावेगः सहसैव प्रजज्वाल । ततश्चामर्षविधुतशिरःशीर्यमाणशिखामणिशकलाङ्गारकिताङ्गमिव रोषाग्निमुद्वमन्ननवरतस्फुरितेन पिबन्निव सर्वतेजस्विनामायूंषि रोषनिर्भुग्नेन दशनच्छदेन, लोहितायमानलोचनालोकविक्षेपैर्दिग्दाहानिव दर्शयन्, रोषानलेनाप्यसह्यसहजशौर्योष्मदहनदह्यमानेनेव वितन्यमानस्वेदसलिलशीकरासारदुर्दिनः, स्वावयवैरप्यदृष्टपूर्वप्रकोपभीतैरिव कम्पमानैरुपेतः, हर इव कृतभैरवाकारः, हरिरिव प्रकटितनरसिंहरूपः सूर्यकान्तशैल इवापरतेजःप्रसरदर्शनप्रज्वलितः, क्षयदिवस इवोदितद्वादश-

तत इत्यादौ । परां भीषणतामयासीदिति संबन्धः ।

निर्भुग्नेन वक्रीकृतेन । दह्यमानेनेति । दाहभीतेन च सलिलकणा वितन्यन्ते । भैरवो भीषणोऽपि । प्रशस्तो नरो नरसिंहः । इत्थं च—'स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुंगवर्षभकुंजराः । सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः ॥' इति । नृसिंहरूपी च

दिखावटी आवभगत का विश्वास करके वह अकेला शस्त्रहीन अवस्था में अपने ही भवन में मारा गया ।

यह सुनकर हर्ष का महातेजस्वी शोक वेग प्रचण्ड क्रोधाग्नि के धधकने से बढ़कर सहसा प्रज्वलित हो उठा । उसके बाद क्रोध से काँपते हुए उसके मस्तक की शिखामणियाँ टुकड़े-टुकड़े होकर अङ्गार के रूप में छिटकने लगीं, मानो वे क्रोधाग्नि को उगल रहे हों, क्रोध के कारण उनके होंठ इस प्रकार लगातार फड़कने लगे मानो समस्त तेजस्वियों की आयु को पी रहे हों, अपनी लाल हुई जाती हुई आँखों के विक्षेपों से मानो दिग्दाहों को दिखा रहे हों, उनके अपने कोपानल से भी कहीं अधिक तापवाला स्वाभाविक शौर्य इस प्रकार उद्दीप्त हो उठा कि उनके शरीर से स्वेद जल की वर्षा होने लगी, मानो उनके अपने अङ्गों ने ही कभी ऐसा क्रोध नहीं देखा था इसलिए डर कर काँपने लगे, उनकी आकृति महादेव के समान भैरव (भीषण) हो गई, विष्णु के समान उन्होंने नरसिंह का रूप धारण कर लिया, सूर्यकान्त मणि के पर्वत के समान दूसरे के तेज के फैलाव को देखते ही वे प्रज्वलित हो उठे, प्रलय दिवस के समान बारह सूर्यों के

दिनकरदुर्निरीक्ष्यमूर्तिः, महोत्पातमारुत इव सकलनभूभृत्प्रकम्पकारी, विन्ध्य इव वर्धमानविग्रहोत्सेधः, महाशीविष इव दुर्नरेन्द्राभिभवरोपितः, परीक्षित इव सर्वभोगिदहनोद्यतः, वृकोदर इव रिपुरुधिरतृषितः सुरगजः इव प्रतिपक्षवारणप्रधावितः, पूर्वागम इव पौरुषस्य, उन्माद इव मदस्य, आवेग इवावलेपस्य, तारुण्यावतार इव तेजसः, सर्वोद्योग इव दर्पस्य, युगागम इव यौवनोष्मणः, राज्याभिषेक इव रणरसस्य, नीराजनदिवस इवासहिष्णुतायाः परां भीषणतामयासीत् ।

अवादीच्च गौडाधिपाधममपहाय कस्तादृशं महापुरुषं तत्क्षण एव निर्व्याजभुजवीर्यनिर्जितसमस्तराजकं मुक्तशस्त्रं कलशयोनिमिव कृष्णवर्म-

---

हरिरिति । तेजः,क्षमता, आतपश्च,दिनकरवत्तैश्च दुर्निरीक्षणः । भूभृतो राजानोऽपि गिरयश्च । वर्धमानेन देहेन उत्सेध औन्नत्यं यस्य । नरेन्द्रो मन्त्रज्ञः, राजापि । परीक्षिति दग्धे जनमेजयः पितृपरिभवेन सर्पसत्रे भोगिनां क्षयार्थम् इयाजेति वार्ता । भोगिनो राजानः । वृकोदरो भीमसेनः । वारणं निषेधः, हस्ती च वारणः । अवलेपस्य दर्पस्य । नीराजनं शान्तिकर्मविशेषः ।

कलशयोनिं द्रोणाचार्यम् । कृष्णवर्मप्रसूतिः पापमार्गप्रवर्तकः । धृष्टद्युम्नश्चा-

---

उदित होने से उन्हें देख पाना कठिन था, महोत्पात के समय सम्पूर्ण पर्वतों को कम्पित करने वाले पवन के सदृश उन्होंने सम्पूर्ण राजाओं को कँपा दिया, विन्ध्याचल के शरीर की ऊँचाई के समान उनका विग्रह मद अर्थात् युद्धमद बढ़ने लगा, दुष्ट सँपेरे (नरेन्द्र) द्वारा कोपित महासर्प के समान दुष्ट राजा के द्वारा किये गए अपने अपमान से क्रुद्ध थे, राजा परिक्षित के पुत्र जनमेजय के समान सभी भोगियों (राजाओं या सर्पों) को जला डालने पर तत्पर थे, भीमसेन के समान शत्रु के रक्त के प्यासे हो गए थे, शत्रुगज को देखकर दौड़ पड़ने वाले ऐरावत के समान शत्रु के विनाश के लिए चल पड़े, मानो पराक्रम इस रूप में पहली बार उपस्थित हुआ । मद के उन्माद के समान, दर्प के आवेग के समान, तेज की युवावस्था के अवतरण के समान, दर्प के समस्त उद्योग के समान, जवानी की गर्मी के युगागम के समान, युद्धरस के राज्याभिषेक के समान तथा असहिष्णुता के नीराजन दिवस के समान वे अत्यन्त भयानक हो गए ।

वे बोले—"नीच गौड़ाधिपति को छोड़कर कौन है जो निष्कपट भुज-पराक्रम से समस्त राजसमूह को जीत लेने वाले वैसे महापुरुष को द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न

प्रसूतिरीदृशेन सर्ववीरलोकविमर्दितेन मृत्युना शमयेदेवमार्यम्। अनार्यं च तं मुक्त्वा भागीरथीफेनपटलपाण्डुराः केषां मनःसु सरःसु राजहंसा इव परशुरामपराक्रमस्मृतिकृतो न कुर्युरार्यशौर्यगुणाः पक्षपातम्। कथमिवात्युग्रस्यास्यार्यजीविमहरणे निदाघरवेरिव कमलाकरसलिलशोषणेऽनपेक्षितप्रीतयः प्रसृताः कराः। कां नु गतिं गमिष्यति, कां वा योनिं प्रवेक्ष्यति, कस्मिन्वा नरके निपतिष्यति। श्वपाकोऽपि क इदमाचरेत्। नामापि च गृह्णतोऽस्य पापकारिणः पापमलेन लिप्यत इव मे जिह्वा। किं वाङ्गीकृत्य कार्यमार्यस्तेन क्षुद्रेणानुप्रविश्य विगतघृणेन घुणेनेव सकलभुवनाह्लादनचतुरश्चन्दनस्तम्भः क्षयमुपनीतः। नूनं नानेन मूढेन मधु-

गिनजातः, कृष्णवर्त्मा वह्निः। भागीरथीत्यादि परशुराम इत्यादि च हंसानामपि विशेषणम्। रामेण हि हंसमार्गः कैलासे कृत इति हंसास्तत्कीर्तिं स्मारयन्ति। पक्षपात स्नेहम्, पक्षैर्गमनं च। अत्युग्रस्यातिक्रूरस्य, अतिचण्डस्य च। अत्रार्यस्य कमलाकरेणोपमा। लक्ष्मीयात्रादिगुणयुक्तत्वात्। करा हस्ताः, रश्मयश्च। क्षुद्रेण क्रूरेण, परिचितपरिषणेन च। अनुप्रविश्य विश्वासं नीत्वान्तर्भूय दीपयति यस्तेन

की भाँति शस्त्रहीन अवस्था में ऐसी मृत्यु से मार सके जो समस्त वीरों द्वारा निन्दित है। उस अनार्य को छोड़कर गङ्गा के फेनपटल के समान उज्ज्वल और परशुराम के पराक्रम का स्मरण कराने वाले आर्य के शौर्यगुण, सरोवर में राजहंसों के समान किनके मन में पक्षपात नहीं करते? जिस प्रकार ग्रीष्मकाल में प्रचण्ड सूर्य सरोवर के जल को सुखाने के लिए प्रेम का तिरस्कार करके अपनी किरणें फैलाता है उसी प्रकार अत्यन्त उग्र आर्य के प्राणों को हरने में गौड़ाधिप के प्रेम की परवाह न करने वाले हाथ कैसे फैल गए? उसकी क्या गति होगी, या वह किस योनि में प्रवेश करेगा अथवा किस नरक में वह गिरेगा? चाण्डाल भी कौन है जो ऐसा करे? उस पापी का नाम भी लेने से मेरी जीभ मानो पाप की गन्दगी से लिप्त हो जाती है। अथवा जैसे छोटा सा घुन प्रवेश करके चन्दन के खम्भे को समाप्त कर डालता है उसी प्रकार उस घृणाहीन क्षुद्र ने समस्त संसार को आह्लादित करने वाले आर्य को क्या सोचकर उनके भवन में प्रवेश करके मार डाला। निश्चय ही मधुरस के चखने के लोलुप उस मूर्ख ने मधु के

रसास्वादलुब्धेन मधिव्रवार्यजीवितमाकर्षता भावी दृष्टः शिलीमुखसंपातोपद्रवः। निजगृहदूषणं जालमार्गप्रदीपकेन कज्जलमिवातिमलिनं केवलमयशः संचितं गौडाधमेन। नत्वाश्वेवास्तमुपगतवत्यपि त्रिभुवनचूडामणौ सवितरि वेधसादिष्टः सत्पथशत्रोरन्धकारस्य निग्रहाय ग्रहषण्डविहारैकहरिणाधिपः शशी। विनयविधायिनि भग्नेऽपि चाङ्कुशे विद्यत एव व्यालवारणस्य विनयाय सकलमत्तमातङ्गकुम्भस्थलस्थिरशिरोभागभिदुरः खरतरः केसरिनखरः। तादृशाः कुवैकटिका इव तेजस्विरत्नविनाशकाः कस्य न वध्याः। क्वेदानीं यास्यति दुर्बुद्धिः? इत्येवमभिदधत एवास्य पितुरपि मित्रं सेनापतिः समग्रविग्रहप्राग्रहरो हरितालशैलावदातदेह परिणतप्रगुण-

---

कृमिणा। शिलीमुखाः शराः भ्रमराश्च। जालस्य कुसृतेर्मार्गं दीपयति यस्तेन गवाक्षमार्गेण यः प्रदीपः स यथा कज्जलं सञ्चिनुते न त्वाशु इत्यप्रस्तुतप्रशंसा बोद्धव्या। विशेषेण हरणं विहारो,निच्छायीकरणं गमनं च। पण्डे हि सिंहो गमनं करोति। व्यालवारणस्य दुष्टदन्तिनः। स्थिरो दृढः शिरोभागो यस्य। यं प्राप्यैव तस्य स्वयं विदारणं भवतीत्यर्थः। वैकटिको रत्नबन्धकः।

इत्येवमादौ। सेनापतिः सिंहनादनामा संनिधावेव समुपविष्टो विज्ञापितवानिति

समान आर्य के प्राणों को चूसते हुए यह नहीं सोचा कि शिलीमुख (बाण या भौंरे) उस पर टूट पड़ेंगे।

जैसे झरोखे में रखा हुआ चिराग कालिख से घर को दूषित कर देता है उसी प्रकार अपने ही दोष के रूप में उस गौडाधम ने अत्यन्त मलिन अपनी अपकीर्ति का ही संग्रह किया है। इस प्रकार शीघ्र तीनों लोकों के चूडामणि सा सूर्य (राज्यवर्धन) के अस्त हो जाने पर क्या विधाता ने सन्मार्ग के शत्रुरूप अन्धकार (गौडाधिप) के दमन के लिए ग्रहों के वनखण्ड में विचरण करने वाले सिंह के रूप में चन्द्र (हर्षवर्धन) को आदेश नहीं दिया है? हाथी को विनम्रता की शिक्षा देनेवाले अङ्कुश के टूट जाने पर भी सम्पूर्ण मतवाले हाथियों के कुम्भस्थल के भेदन में समर्थ अत्यन्त तीक्ष्ण सिंह का नाखून तो विद्यमान है ही। तेजस्वी रत्नों को विनष्ट करने वाले उस प्रकार के रत्न के निकृष्ट पारखी किसके लिए वध्य नहीं है? वह दुर्बुद्धि (गौडाधिपति) अब कहाँ जायेगा?'' यह कह ही रहे थे कि उनके पिता का मित्र सेनापति, जो समस्त युद्धों में सबसे आगे रहा करता था, हरिताल के समान जिसका शरीर उज्ज्वल वर्ण का था, जो बड़े

सालप्रकाण्डप्रकाशः, प्रांशुः, अतिशौर्योष्मणेव परिपाकमागतो गतभूयिष्ठे वयसि वर्तमानः, बहुशरशयनसुप्तोत्थितोऽपि हसन्निव शान्तनवमतिदीर्घेणायुषा, दुरभिभवशरीरतया जरयापि भीतभीतयेव प्रकटितप्रकम्पया परामृष्टः, कथमपि सारमयेषु शिरोरुहेषु शशिकरनिकरसितसरलशिरोरुहसटालां सैंहीमिव निष्कपटपराक्रमरसरचितां संक्रान्तो जीवन्नेव जातिम्, परस्वामिमुखदर्शनमहापातकपरिजिहीर्षयेव भ्रूयुगलेन वलितशिथिलप्रलम्बचर्मणा स्थगितदृष्टिः धवलस्थूलगुञ्जापिच्छप्रच्छादितकपोलभागभास्वरेण वमन्निव विक्रमकालमकालेऽपि विकाशिकाशकाननविशदं शरदारम्भं भीमेन मुखेन, मृतमपि हृदयस्थितं स्वामिनमिव सितचामरेण वीजयन्नाभिलम्बेन कूर्चकलापेन, परिणामेऽपि धौतासिधा-

---

संबन्धः। विग्रहाः संभ्रमास्तेषु प्राग्रहरोऽग्रेसरः। प्रगुणं स्पष्टम्। काण्डं स्कन्धः। शान्तनवं भीष्मम्। वलयोऽस्य सन्ति वलिनम्। गुञ्जोत्तरोष्ठोपरि रोमराजिः। विक्रमकालमिति। शरदारम्भविशेषणम्। तत्र शत्रुषु जययात्रा विधेयेति। कूर्चकलापः श्मश्रुः। परिणामे वृद्धत्वे। तृषितोऽपि जलं पातुं विवृतवदनो भवति।

हुए सालवृक्ष के सदृश लम्बा था, अत्यधिक शूरता की गर्मी से जो मानो पक गया था तथा जिसकी अधिकांश आयु बीत चुकी थी, मानो बहुतों बाणों की शय्या पर सोकर जो उठा था तथा अपनी अधिक लम्बी आयु के कारण जो भीष्म पर भी हँस रहा था, जिसका शरीर अभिभव प्राप्त करने वाला नहीं था इसलिए जरा (बुढ़ापा) भी मानो डरी-डरी काँपती हुई जिसे स्पर्श किये हुई थी, चन्द्रमा के समान उजले सरल एवं मजबूत जिसके बाल ऐसे लग रहे थे कि मानो वह अपने निश्चल पराक्रम रूपी रस के कारण जीते जी सिंह की जाति को प्राप्त कर चुका था, जिसकी नाक पर चमड़ी शिथिल होकर इस प्रकार नीचे लटक रही थी कि भौंहों से उसकी मानो दूसरे स्वामी के मुखदर्शन के महापाप को छोड़ने की इच्छा से ढँक गई थी, जिसके भीमाकार मुख के उजले स्थूल गुलगुच्छे गालों पर छाये हुए थे, मानो असमय में भी युद्ध के लिए उचित, फूले हुए काशवनों से उज्ज्वल शरत्काल के आरम्भ को उगल रहा हो, मानो मरने पर भी हृदय में वर्त्तमान अपने स्वामी (प्रभाकरवर्धन) को उज्ज्वल चमर से झलकर हवा कर रहा हो इस प्रकार नाभि तक लटकने वाली अपनी लम्बी घनी दाढ़ी से जो युक्त था, ऊबड़-खाबड़ छाती पर मुँह बाये घावों के बड़े-बड़े

राजलपानतृषितैरिव विवृतवदनैर्बृहद्भिर्व्रणविदारैर्विषमितविशालवक्षाः, निशितशस्त्रटङ्ककोटिकुट्टितबहुबृहद्व्रणाक्षरपङ्क्तिनिरन्तरतया च सकलसमरविजयपर्वगणनामिव कुर्वन्पूर्वपर्वत इव पादचारी, विविधवीररसवृत्तान्तरामणीयकेन महाभारतमपि लघयन्निव, प्रतिपक्षक्षपणातिनिर्बन्धेन परशुराममपि शिक्षयन्निव, अब्भ्रमणेनानादरश्रीसमाकर्षणविभ्रमेण मन्दरमपि मन्दयन्निव, वाहिनीनायकमर्यादानुवर्तनेनाम्भोधिमप्यभिभवन्निव, स्थैर्यकार्कश्योन्नतिभिरचलानपि ह्रेपयन्निव, सहजप्रचण्डतेजः प्रसरपरिस्फुरणेन सवितारमपि तृणीकुर्वन्निव, ईश्वरभारोद्वहनघृष्टपृष्ठतया हरवृषभमपि हसन्निव, अरणिरमर्षाग्नेः, ऐश्वर्यं शौर्यस्य, मदो मदस्य, त्रिसर्पो

विदारैः स्फोटैः। शस्त्राण्येव टङ्काः छेदनभाण्डानि कुट्टितानि छिन्नानि। पूर्ववृत्तान्तः पूर्वप्रशस्तिः। अब्भ्रमणं समुद्रयात्रा, जले परिवर्तनमपि। ताभ्याऽनादरेण यल्लक्ष्मीसमाकर्षणं तदर्थं यो विविधो भ्रमस्तेन। वाहिनी सेना, नदी च। स्थैर्यं व्यवसायादचलनमपि। कार्कश्यं परिविषयं निर्दयत्वमपि। उन्नतिरभिमानोऽपि। तेन उन्नतिः, क्षमा, धर्मश्च। ईश्वरो देवो हरोऽपि। कार्येषु क्षुण्णो लोकेषु घृष्टपृष्ठ

निशानों से जो मानो बुढ़ापे में भी तलवार के धाराजल को पीने के लिए तृषायुक्त था, जिसके शरीर पर शस्त्र की तीक्ष्ण टाँकियों से व्रणरश्मियाँ टङ्कित थीं, मानो सभी युद्धों के विजय पर्व की गणना कर रहा हो, जो पैरों से चलता-फिरता उदयाचल के सदृश था, जो वीररस के अनेक वृत्तान्तों की मनोहरता से महाभारत को भी लघु बना रहा था, शत्रुओं के संहार की प्रकृति से जो मानो परशुराम को भी सीख दे रहा था, समुद्र भ्रमण के द्वारा श्री (लक्ष्मी या वैभव, सम्पत्ति) को खींच लाने की अद्भुत क्षमता से मानो मन्दराचल को भी कमकर रहा था, वाहिनी नायक अर्थात् सेनापति की मर्यादा का अनुसरण करने से जो (वाहिनीनायक अर्थात् सरित्पति) समुद्र को भी अभिभूत कर रहा था, जो अपनी स्थिरता, कर्कशता तथा ऊँचाई से पर्वतों को भी मानो लज्जित कर रहा था, जो अपने स्वाभाविक प्रचण्ड तेज के स्फुरण से सूर्य को भी मानो अपने आगे तिनके के समान मान रहा था, ईश्वर (स्वामी) का बोझ ढोने से घिसी पीठवाला होने के कारण जो मानो भगवान् शङ्कर के बसहे पर भी हँस रहा था, जो क्रोध रूपी अग्नि का अरणि, शौर्य का ऐश्वर्य, मद का मद, दर्प का प्रसर, हठ का

दर्पस्य, हृदयं हठस्य, जीवितं जिगीषुतायाः, समुच्छ्वसितमुत्साहस्य, अङ्कुशो दुर्मदानाम्, नागदमनो दुष्टभोगिनाम्, विरामो वरमनुष्यतायाः, कुलगुरुर्वीरगोष्ठीनाम्, तुला शौर्यशालिनाम्, सीमान्तदृश्वा शस्त्रग्रामस्य, निर्वोढा प्रौढवादानाम्, संस्तम्भयिता भग्नानाम्, पारगः प्रतिज्ञायाः, मर्मज्ञो महाविग्रहाणाम्, आघोषणापटहः समरार्थिनाम्, संनिधावेव समुपविष्टः सिंहनादनामा स्वरेणैव दुन्दुभिघोषगम्भीरेण सुभटानां समररसमानयन्विज्ञापितवान्—

'देव ! क्वचित्कृताश्रयया मलिनया मलिनतराः कोकिलया काका इव कापुरुषा हतलक्ष्म्या विप्रलभ्यमानमात्मानं न चेतयन्ते । श्रियो हि दोषा अन्धतादयः कामला विकाराः । छत्रच्छायान्तरितरवयो विस्मर-

---

लक्ष्यते । नागदमनो गजमर्दनो, गरुडश्च । भोगिनो राजानः, सर्पाश्च । यथा आघोषणापटहः समरार्थिनामुत्साहं जनयति तथाऽसावपीत्यर्थः ।

देवेत्यादौ । कापुरुषाः हतलक्ष्म्या विप्रलभ्यमानं वञ्चयमानमात्मानं न चेतयन्ते इति योजना । न क्वचित्कृताश्रयया सर्वत्र चाञ्चल्यात्कस्मात्तान्हतलक्ष्मीविप्रलभत इत्याह—श्रियो हि दोषा अन्धतादयः । कामलाविकारा इति । हि यस्माच्छ्रियो ये

हृदय, विजयेच्छा का जीवन, उत्साह का उच्छ्वसित, दुर्मदों का अङ्कुश दुष्ट भोगियों (राजाओं या सर्पों) का दमन करने वाला (या सर्प पक्ष में गरुड़), श्रेष्ठ मनुष्यता का विराम, वीरगोष्ठियों का कुल गुरु, शौर्यशालियों की उपमा शस्त्रों का पारदर्शी, उद्धृत विवादों का समुचित उत्तर देने वाला, शत्रु के भय से भागने वालों को रोक रखने वाला, प्रतिज्ञा पूरी करने वाला, महायुद्धों का मर्मज्ञ तथा युद्धेच्छुकों का घोषणा पटह था ऐसा तथा जिसका नाम सिंहनाद था, वह समीप में ही बैठ गया एवं दुन्दुभि की आवाज के समान गम्भीर स्वर में योद्धाओं के मन में युद्ध का कुतूहल उत्पन्न करते हुए उसने निवेदन किया—

"देव ! जिस प्रकार मलिन कोयल किसी एक स्थान पर निवास नहीं करती एवं उससे भी अधिक मलिन कौवे उससे प्रतारित होते हैं उसी प्रकार किसी एक स्थान पर निवास न करने वाली मलिन एवं दुष्ट लक्ष्मी द्वारा मलिन प्रकृति के कायर पुरुष अपने आपको नहीं समझ पाते ।

कामला आदि आँखों के विकार के समान अन्धापन आदि श्री (लक्ष्मी) के दोष हैं । छत्र की छाया में सूर्य को आन्तरिककर देनेवाले मूर्ख लोग दूसरे तेजस्वी

न्त्यन्यं तेजस्विनं जडधियः। किं वा करोतु वराकः येनातिभीरुतया नित्यपराङ्मुखेन ननु दृष्टान्येव सर्वातिशायिशौर्यातिशयश्ववथुकपिलकपोलपुलकपल्लवितकोपानलानि कुपितानां तेजस्विनां मुखानि। नासौ तपस्वी जानात्येवं यथाभिचारा इव विप्रकृताः सद्यः सकलकुलप्रलयमुपाहरन्ति मनस्विन इति। जलेऽपि ज्वलन्ति ताडितास्तेजस्विनः। सकलवीरगोष्ठीब्राह्यस्य तस्यैवेदमुचितमनुत्तारनिरयनिपातनिपुण कर्म। मनस्विनां हि प्रधनप्रधानधने धनुषि भ्रियमाणे सति च कमलाकलहंसीकेलिनस्य किं पुनरीदृशाः। येषां च धात्रा धरित्रीं त्रातुं नियुक्ताः स्वयमसमर्था-

---

दोषा अन्धतादयो विकारास्ते हि कामलाः कमलसंबन्धिनः। कमलानां दोषायां रात्रौ अन्धता संकोचः। तन्निवासश्च लक्ष्म्या अपि। स विकारश्चान्यं विप्रलभते। रागादयस्तैरन्धतेवान्धता सत्कार्यानालोचनम्। अथ च पाण्डू रोगभेदः। तेन शङ्खादौ पीतत्वादिज्ञानं तद्विकाराश्च रात्र्यन्धतादयो दोषा भवन्ति। सर्वातिशायिना शौर्यातिशयेन श्वयथुर्येषां तानि। ततो विशेषणसमासः। विप्रकृता उपद्रुताः। विप्रैर्द्विजैः कृताः। जले तेऽपि ताडिता आहता वैद्युताश्च तेजस्विनोऽग्नयोऽपि। गोष्ठीबाह्यश्च न जानाति धर्मं वृद्धासेवितत्वात्। प्रधनं रणः। गिरयो लोहान्युद्गि-

---

को सर्वथा भूल जाते हैं। वह वराक (गौडाधिप) क्या करे ? अत्यन्त डरपोक स्वभाव के कारण हमेशा मुँह फेरे रहने वाले जिसने सबको अभिभूत कर देनेवाले शौर्यातिशय के संवर्धन से लाल कपोलों पर रोमाञ्च के रूप में उत्पन्न होते हुए कोपानल वाले कुपित तेजस्वी व्यक्तियों के मुख देखे ही नहीं। वह बेचारा जानता ही नहीं कि मारण मन्त्र की भाँति मनस्वी व्यक्ति तिरस्कृत होने पर शीघ्र ही सारे वंश का उच्चाटन कर डालते हैं। तेजस्वी लोग चोट खाकर पानी में भी (बिजली के समान) प्रज्वलित हो उठते हैं। समस्त वीर गोष्ठियों से बाहर रहने वाले उसके लिए उद्धार न पाने वाले नरक में गिरा देने वाला यह कर्म उचित ही है। मनस्वी लोगों के द्वारा युद्ध के प्रमुख धनवाले धनुष और लक्ष्मी रूपी कलहंसी की क्रीडा के लिए कुवलय वनरूपी कृपाण के धारण किये जाने पर भी श्री को प्राप्त करने के लिए समुद्र मन्थन आदि उपाय भी तुच्छ हो जाते हैं तो ऐसे उपायों का कहना ही क्या ? ब्रह्मा द्वारा पृथिवी की रक्षा के

इव कुलिशकर्कशभुजपरिघप्रहरणहेतोरुद्गिरन्ति गिरयोऽपि लोहानि ते कथमिव बाहुशालिनो मनसापि विमलयशोबान्धवा ध्यायेयुरकार्यम्। सर्वग्रहाभिभवभास्वराणां हि सुभटकाराणामग्रतो दिग्ग्रहणे पङ्गवः पतङ्गकराः। महामहिषशृङ्गतरङ्गभङ्गभङ्गुरभीषणान्तराला लोकप्रवादमात्रेण च दक्षिणाशा परमार्थतो भटभ्रुकुटिरधिवासो यमस्य। चित्रं च यदुन्मुक्तसिंहनादानां सहसा साहसरभसरसरोमाञ्चकण्टकनिकरेण सह न निर्यान्ति सटाः शूराणां रणेषु। द्वयमेव च चतुःसागरसंभृतस्य भूतिसंभारस्य भाजनं प्रतिपक्षदाहि दारुणं वडवामुखं वा महापुरुषहृदयं वा। तेजस्विनः सकलाननवाप्य पयोराशिसहजस्य कुतो निवृत्तिरूष्मणः। वृथावितलविपुलफणाभारो भुजङ्गानां भर्ता बिभर्ति यो भोगेन भूतिपण्डमेव केवलम्।

रन्ति गिरिभ्य एव लोहोत्पत्तेः। सर्वस्य वस्तुनो ग्रहोपहरणम्। ग्रहाश्चन्द्राद्याः। पतङ्गः सूर्यः। महामहिषशृङ्गयोस्तरङ्गवद्भङ्गुरा ये भङ्गास्तैर्भीषणमन्तरालं यस्याः

लिए नियुक्त किन्तु स्वयं असमर्थ पर्वत जिनके वज्र सदृश कठोर बाहु के लिए परिघ नामक शस्त्र के (निर्माण) हेतु लोहा उत्पन्न करते हैं वे बाहुवीर्यशाली तथा स्वच्छ कीर्ति के बान्धव किस प्रकार मन से भी अकृत्य का ध्यान कर सकते हैं ? सभी ग्रहों के अभिभव करने में समर्थ (या सबका अपहरण करने वाले) सुभट लोगों के हाथों के आगे दिशाओं के ग्रहण में सूर्य के कर (किरणें) पङ्गु हो जाते हैं। विशाल भैंसे की सींगों की भङ्गी के समान भयानक अन्तरालवाली भट्ट लोगों की भृकुटि परमार्थ रूप से यम का निवासस्थान है, दक्षिण दिशा तो केवल लोक प्रवाद के कारण यम का निवास स्थान माना जाता है। आश्चर्य है कि युद्धों में सिंहनाद करने वाले शूर-वीरों के साहस-रस के कारण उत्पन्न रोमाञ्च-समूह के साथ (सिंहों जैसी) सटाएँ नहीं निकल जातीं। चारों समुद्रों से उत्पन्न होनेवाले भूति संभार (अर्थात् ऐश्वर्य समूह अथवा भस्मसमूह) के योग्यस्थान दो ही हैं—एक अपने प्रतिपक्ष (जल) को भस्म कर देनेवाला (भस्म समूह का योग्य स्थान) बड़वानल और दूसरा (ऐश्वर्य समूह का योग्यस्थान) महापुरुष का हृदय। समुद्र में सहज उत्पन्न तेजस्वी बड़वानल की तीव्र ऊष्मा का निवारण बिना सबको जलाये कैसे सम्भव है ? अपने विशाल फणों का बेकार ही भार फैलाए हुए सर्पस्वामी अर्थात् शेषनाग

अप्रतिहतशासनाक्रान्त्युपभोगसुखरसं तु रसानां दिक्कुञ्जरभारभास्वर-प्रकोष्ठवीरबाहव एव जानन्ति। रविरिवोन्मुखपद्माकरगृहीतपादपल्लवः सुखेनाखण्डिततेजा दिवसान्नयति शूरः। कातरस्य तु शशिन इव हरिण-हृदयस्य पाण्डुरपृष्ठस्य कुतो द्विरात्रमपि निश्चला लक्ष्मीः। अपरिमिति-यशःप्रकरवर्षी विकासी वीररसः। पुरःप्रवृत्तप्रतापप्रहताः पन्थानः पौरुषस्य। शब्दविद्रुतविद्विषन्ति भवन्ति द्वाराणि दर्पस्य। शस्त्रालोक-प्रकाशिताः शून्या दिशः शौर्यस्य। रिपुरुधिरशीकरासारेण भूरिव श्री-रप्यनुरज्यते। बहुनरपतिमुकुटमणिशिलाशाणकोणकषणेन चरणनखरा-जिरिव राजताप्युज्ज्वलीभवति। अनवरतशस्त्राभ्यासेन करतलानीव रिपु-

सा। अन्यत्र,—महामहिषशृङ्गतुल्या। मूर्तिर्भस्मापि। तेजस्विनो वडवाग्नेरपि। मुखेन शोभनाकाशेनापि। शूरो रविरपि। हरिणहृदयस्याल्पसत्त्वस्यापि पाण्डुर-पृष्ठस्य देशभाषया निर्लज्जस्यापि। द्विरात्रमपीति। पौर्णमास्यामेव शशिनः सातिशयं शोभायुक्तत्वात्। लक्ष्मीः श्रीः कान्तिश्च। शून्या अनावृताः। अनुरज्यतेऽनुरक्ता

केवल मिट्टी के लोंदे ही को धारण कर रहे हैं। दिग्गज की सूँड़ के समान प्रकोष्ठ भागवाले वीरों की भुजाएँ ही निर्विघ्न शासन द्वारा पृथिवी के उपभोग जन्य सुख का अनुभव करती हैं। जिस प्रकार कमल (पद्माकर) सूर्य के किरण-रूपी चरण-पल्लव को उन्मुख होकर पकड़ते हैं उसी प्रकार पद्मा अर्थात् लक्ष्मी जिनके पैर अपने हाथों से दबाती है ऐसा अखण्डित तेजवाला वीर पुरुष सुखपूर्वक दिन बिताता है। हरिण के समान भीरु हृदय वाला (हिरण से युक्त मण्डलवाला) और ऊपर से देखने में उज्ज्वल चन्द्रमा के समान कायर पुरुष की लक्ष्मी (शोभा या सम्पत्ति) दो रात भी नहीं ठहरती। वीररस अपरिमित कीर्तिसमूह बरसाने वाला एवं विकासशील हुआ करता है। पौरुष के मार्ग आगे-आगे चलने वाले प्रताप के अभ्यस्त हुआ करते हैं। दर्प के द्वार, शब्द से शत्रु को भगा देनेवाले हुआ करते हैं। शौर्य के शस्त्र के आलोक से प्रकाशित दिशाएँ सूनी (जनरहित) हो जाती हैं। शत्रुओं के रक्त की बूँदों की वर्षा से पृथिवी की भाँति श्री भी अनुरक्त (लालिमा से युक्त या प्रेमयुक्त) हो जाती है। अनेक राजाओं के मुकुटों की मणिशिलाओं के घर्षण से चरणनख के समान साम्राज्य भी उज्ज्वल हो जाता है। निरन्तर शस्त्रों के अभ्यास से करतल के समान शत्रुओं के मुख भी काले

मुखान्यपि श्यामीभवन्ति। विविधव्रणबद्धपट्टकशतैः शरीरमिव यशोऽपि धवलीभवति। कवचिषु रिपूरःकवाटेषु पात्यमानाः, पावकशिखामिव श्रियमपि वमन्ति निष्ठुरा निस्त्रिंशप्रहाराः। यश्चाहितहतस्वजनो मनस्विजनो द्विषद्योषिदुरस्ताडनेन कथयति हृदयदुःखम् परुषासिलतानिपातपवनेनोच्छ्वसिति निरुच्छ्वसितशत्रुधारापातेन रोदिति विपक्षवनिताचक्षुषा ददाति जलं स श्रेयान्नेतरः। न च स्वप्नदृष्टनष्टेष्विव क्षणिकेषु शरीरेषु निबध्नन्ति बन्धुबुद्धिं प्रबुद्धाः। स्थायिनि यशसीव शरीरधीर्वीराणाम्। अनवरतप्रज्वलिततेजः प्रसरभास्वरस्वभावं च मणिप्रदीपमिव कलुषः कज्जलमलो न स्पृशत्येवातितेजस्विनं शोकः। स त्वं सत्त्ववतामग्रणीः प्राग्रहरः प्राज्ञानां प्रथमः समर्थानां प्रष्ठोऽभिजातानामग्रेसरस्तेजस्विनामादिरसहिष्णूनाम्। एताश्च सततसंनिहितधूमायमानकोपाग्नयः

भवति, उपलिप्ता च भवति। उज्ज्वला रम्या, निर्मला च। श्यामानि कृष्णानि विच्छायानि च। श्रेयान्प्रशंसनीयः। शिखिरभूमयोऽप्यग्नितोयच्छायायुक्ता भवन्ति।

पड़ जाते हैं। अनेक घावों के ऊपर बँधी हुई सैकड़ों पट्टियों से शरीर की भाँति यश भी उजाला हो जाता है। कवच युक्त शत्रु के चौड़े वक्ष पर पड़ते हुए कठोर खड्ग प्रहार आग की ज्वाला के समान श्री (सम्पत्ति) को भी उगलते हैं। जो मनस्वी वीर पुरुष शत्रुओं द्वारा स्वजनों के मारे जाने पर अपने हृदय का दुःख शत्रुओं की पत्नियों के छाती पीटने से व्यक्त करता है, कठोर खड्गलता के चलने से उत्पन्न हवा के रूप में उच्छ्वास लेता है; दम तोड़ते हुए शत्रु के नेत्र से बहती हुई अश्रुधारा के रूप में रोता है और शत्रु पत्नियों की आँखों से जलदान करता है वही सब से श्रेष्ठ है दूसरा नहीं। जिस प्रकार स्वप्न में देखी गई बात तुरन्त नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार क्षण भङ्गुर शरीरों में समझदार लोग आत्मीयभावना नही रखते हैं। वीर लोग स्थायी कीर्त्ति में ही शरीर बुद्धि रखते हैं। मणिप्रदीप की भाँति निरन्तर प्रज्वलित रहनेवाले अपने तेज से भास्वर स्वभाव के अति तेजस्वी व्यक्ति को काजल के समान मलिन शोक नहीं छू पाता। वह (ऐसे) तुम बलवानों में अग्रणी, बुद्धिमानों में प्रधान, सामर्थ्यवानों में प्रथम, कुलीनों में श्रेष्ठ, तेजस्वियों में अग्रसर (शत्रुओं के पराक्रम को)

सुलभासिधारातोयतृप्तयो विकटबाहुवनच्छायोपगूढा धीरतया निवास-शिशिरभूमयः स्वायत्ताः सुभटानामुरःकवाटभित्तयः। यतः किं गौडाधिपाधमैकेन। तथा कुरु यथा नान्योऽपि कश्चिदाचरत्येवं भूयः। सर्वोर्वीश्रद्धाकामुकानामलीकविजिगीषूणां संचारय चामराण्यन्तःपुरपुरन्ध्रिनिःश्वसितैः। उच्छिन्धि रुधिरगन्धान्धगृध्रमण्डलच्छादनैश्छत्रच्छायाव्यसनानि। अपाकुरु कदुष्णशोणितोदकस्वेदैः कुलक्ष्मीकुलटाकटाक्षचक्षुरागरोगान्। उपशमय निशितशरशिरावेधैरकार्यशौर्यश्वयथून्। उन्मूलय लोहनिगडापीडमालामलमहोषधैः पादपीठदोहददुर्ललितपादपटुमान्द्यानि। अपनय तीक्ष्णाज्ञाक्षरक्षारपातैर्जयशब्दश्रवणकर्णकण्डूः। अपनय चरणनखमरीचिचन्दनचर्चाललाटलेपैरनमितस्तिमितमस्तकस्तम्भविकारान्। उद्धर

स्वेदैश्च नयनव्याध्युपशमो जायते, एवं निशितशरसिरावेधैरित्यादि बोद्धव्यम्। संदेशः

न बर्दाश्त करने वालों में मुख्य हो। योद्धाओं के वक्षरूपी कपाट की दीवारें, जिनमें हमेशा जलती हुई कोपाग्नियाँ धूमायमान रहती हैं, जो असिधारा जल के सुलभ होने से तृप्त है, जिन पर उनके विशाल भुजवन की छाया पड़ती रहती है और जो धीरता के रहने से ठंढी है, अपने अधीन ही समझो। क्योंकि अकेले उस नीच गौडाधिप की क्या बात है? तुम ऐसा करो कि फिर कोई दूसरा ऐसा आचरण न करे। सम्पूर्ण पृथिवी की श्रद्धापूर्वक चाह रखनेवाले एवं मिथ्या विजय की इच्छा रखने वाले राजाओं के लिए उनके अन्तःपुर की नवेलियों के निःश्वास के चँवर संचारित करो। रक्त की दुर्गन्ध के लोलुप गीधों की छाया देकर आतपत्र की छाया में रहने का उनका शौक तोड़ डालो। कुत्सित लक्ष्मी रूपी कुलटा के कटाक्ष से उत्पन्न उनके नेत्र राग के रोगों को कुछ-कुछ गर्म रक्त की बूँदों से दूर कर दो। अन्याय के कार्यो में बढ़े हुए उनके शौर्यरूपी शोथ (सूजन) के तीखे बाणों से शिरावेधों (सूई अर्थात् इन्जेक्शन लगाने) से शान्त कर डालो। लोहे की बेड़ी रूपी महौषधों से पाद पीठों पर विराजमान होने में निपुण उनके पाँवों की बढ़ी हुई मन्दता को उखाड़ फेंको। अपने तीखे आदेश के खारे अक्षरों को डालकर 'जय' शब्द सुनने वाले उनके कानों की खुजली मिटा दो। चन्दन के समान अपने चरण-नख की किरणों का लेप लगाकर नहीं झुकने वाले तथा निश्चल उनके मस्तक के स्तम्भ रोग को दूर कर

करदानसंदेशसंदंशैद्र्विणदर्पोष्मायमाणदुःशीललीलाशल्यानि । भिन्धि मणिपादपीठदीधितिदीपप्रदीपिकाभिः शुष्कसुभटाटोपभ्रुकुटिबन्धान्धकारान् । जय चरणलङ्घनलाघवगलितशिरोगौरवारोग्यैर्मिथ्याभिमानमहासंनिपातान् । मृदय सततसेवाञ्जलिमुकुलितकरसंपुटोष्मभिरिष्वसनगुणकिणकार्कश्यानि । येनैव च ते गतः पिता पितामहः प्रपितामहो वा तमेव मा हासीस्त्रिभुवनस्पृहणीयं पन्थानम् । अवहाय कुपुरुषोचितां शुचं प्रतिपद्यस्व कुलक्रमागतां केसरीव करङ्कीं राजलक्ष्मीम् । देव ! देवभूयं गते नरेन्द्रे दुष्टगौडभुजङ्गजग्धजीविते च राज्यवर्धने वृत्तेऽस्मिन्महाप्रलये धरणीधारणायाधुना त्वं शेषः । समाश्वासय अशरणाः प्रजाः । क्ष्मापतीनां शिरःसु शरत्सवितेव ललाटंतपान् प्रयच्छ पादन्यासान् । अहितानामभिनव-

---

शल्याञ्चनम् । सतताञ्जलिबन्धात्करयोरूष्मसंभवः इष्वसनं धनुः । देवभूयं देवत्वम् । शेषोऽवशिष्टः, शेषभट्टारकश्च । ललाटं तपानिति प्रचण्डतोक्ता । कल्माष-

---

दो । कर चुकाने के संदेश रूपी संड़सी से धनमद से गर्म होते हुए उनके दुराचरण रूपी काँटों को निकाल डालो । अपने मणिमय पीठ की दीपिकाओं से योद्धाओं के नीरस आटोपजनित भ्रूभङ्ग के अन्धकार को भेद डालो । चरण के द्वारा लंघन करने से (अथवा भोजन नहीं करने से) उनके मस्तक की गुरुता (अथवा भार) को दूर करने वाली दवा के प्रयोग से उनके मिथ्याभिमानरूपी महासन्निपात को जीत लो । हमेशा तुम्हारी सेवा में हाथ जोड़कर खड़े रहने के कारण धनुर्गुणों की रगड़ से पड़े हुए व्रणचिह्न करसम्पुट की गर्मी से मुलायम हो जायँ, ऐसा करो । जिस मार्ग से तुम्हारे पिता, पितामह या प्रपितामह गये हैं, तीनों लोकों में प्रशंसनीय उस मार्ग का उपहास मत कराओ । कुत्सित पुरुषों के लिए उचित शोक का परित्याग कर वंश परम्परा से प्राप्त राजलक्ष्मी को वैसे ही प्राप्त करो जैसे सिंह शेरनी को (प्राप्त करता है) । देव ! महाराज के देवत्व प्राप्त करने पर, दुष्ट गौडाधिपति रूप सर्प के द्वारा राज्यवर्धन के डँस लिए जाने पर तथा इस महाप्रलय के आ जाने से पृथ्वी को धारण करने के लिए अब तुम ही बच रहे हो । निराश्रय प्रजजनों को आश्वस्त करो ।

राजाओं के मस्तकों पर शरत्कालीन सूर्य को भाँति लिलार तपाने वाले अपने कदमों को रखो । शत्रुओं को सेवा की नवीन दीक्षा देने वाले दुःख के

सेवादीक्षादुःखसंतप्तश्वासधूममण्डलैर्नखपचैः प्रचलितचूडामणिचक्रवाल-बालातपैश्छायाहि कल्माषपादताम्। अपि च हते पितर्येकाकी तपस्वी मृगैः सह संवर्धितः सहजब्राह्मण्यमार्दवसुकुमारमनाः कृतनिश्चयश्चण्डचापवनाटनिटांकारनादनिर्मदीकृतदिग्गजं गुञ्जज्ज्याजालजनितजगज्ज्वरं समग्रमुद्यतमेकविंशतिकृत्वः कृतवंशमुत्खातवान् राजन्यकं परशुरामः, किं पुनर्नैसर्गिककायकार्कश्यकुलिशायमानमानसो मानिनां मूर्धन्यो देवः। तदद्यैव कृतप्रतिज्ञो गृहाण गौडाधिपाधमजीवितध्वस्तये जीवितसंकलनाकुलकालाकाण्डदण्डयात्राचिह्नध्वजं धनुः। न ह्ययमरातिरक्तचन्दनचर्चाशिशिरोपचारमन्तरेण शाम्यति परिभवानलपच्यमानदेहस्य देवस्य दुःखदाहज्वरः सुदारुणः। निकारसंतापशान्त्युपायपरिक्षये हि हिडिम्बाचुम्बनास्वादितमिव रिपुरुधिरामृतममन्दरोपायमपायि पवनात्मजेन। जामद-

पादतां चित्रचरणत्वम्। राजन्यकं क्षत्रियसमूहः। रामो भार्गवः। नैसर्गिकः स्वाभाविकः। मूर्धन्यो मुख्यः। परिभवो निकारः। हिडिम्बा राक्षसी। पवनात्मजेन भीमसेनेन। क्षतजह्रदेषु रक्ततडागेषु।

कारण गर्म साँस के धूम-मण्डल से एवं नाखून को कष्ट पहुँचाने वाले चूड़ामणियों के बालातपों से अपने पैरों को चित्रित करो। पिता के मारे जाने पर, अकेले हरिणों के साथ पले हुए, स्वामी ब्राह्मणत्व के कारण कोमलता से सुकुमार हृदयवाले तपस्वी परशुराम ने प्रण करके प्रचंड बाण समूह के टंकार करने की ध्वनि से दिग्गजों को मदरहित बना देनेवाले, धनुर्गुणों की गूँजती हुई आवाज से संसार को ज्वरित कर देने वाले, पूरी तरह तत्पर सम्पूर्ण राजाओं के वंश के वंश को काटकर इक्कीस बार जड़ से उखाड़ फेंका था फिर तो अपने शरीर की स्वाभाविक कठोरता तथा वज्र के समान हृदय वाले, मानियों के मूर्धन्य देव की क्या बात है? तो प्रतिज्ञा करके आज ही उस नीच गौडाधिप के प्राणों का संहार करने के लिए प्राणों के संग्रह में लगे यमराज की आकस्मिक सैन्ययात्रा की सूचक झंडी के साथ धनुष धारण कर लीजिए। तिरस्कार की आग में जलते हुए शरीर वाले देव का भयंकर दुःखाग्निरूपी ज्वर शत्रु के रुधिर की चन्दन चर्चा के शिशिरोपचार के बिना शान्त नहीं हो सकता। परिभव जन्य सन्ताप की शान्ति के लिए भीम ने हिडिम्बा नामक राक्षसी के चुम्बन के साथ शोणि-स्वाद के समान मन्दराचल द्वारा मथन के बिना ही प्राप्त (दुःशासन रूपी) शत्रु

न्येन च शाम्यन्मन्युशिखिशिखासंज्वरसुखायमानस्पर्शशीतलेषु क्षत्रियक्षतजह्रदेष्वस्नासि ।' इत्युक्त्वा व्यरंसीत् ।

देवस्तु हर्षस्तं प्रत्यवादीत्—'करणीयमेवेदमभिहितं मान्येन । इतरथा हि मे गृहीतभुवि भोगिनाथेऽपि दायादहष्टिरीर्ष्यालोर्भुजस्य । उपरि गच्छतीच्छति निग्रहाय ग्रहगणेऽपि भ्रूलता चलितुम् । अनमत्सु शैलेष्वपि कचग्रहमभिलषति दातुं करः । तेजोदुर्विदग्धानर्ककरानपि चामराणि ग्राहयितुमीहते हृदयम् । राजशब्दरूषा मृगराजानामपि शिरांसि वाञ्छति पादः पादपीठीकर्तुम् । स्वच्छन्दलोकपालस्वेच्छागृहीतानामाक्षेपादेशाय दिशामपि स्फुरत्यधरः । किं पुनरीदृशे दुर्जाते जाते जातामर्षनिर्भरे च मनसि नास्त्येवावकाशः शोकक्रियाकरणस्य ? अपि च हृदयविषमशल्ये

इतरथापीत्यन्यथा यदीदृशं दुर्जातं जातं नाभूत्तदादावेवमद्भुतं भुजस्य भोगिनाथेऽपि दायादहष्टिः । किं पुनरीदृशे दुर्जाते व्यसने जाते संपन्ने शत्रुवृद्धिर्भवेदिति योजना । एवमुपरि गच्छतीत्यादौ बोद्धव्यम् । आक्षेपोऽपहरणम् ।

के शोणित रूपी अमृत को पान करके प्राप्त किया था । परशुराम ने शान्त होती हुई क्रोधाग्नि की लपटों की गर्मी के कारण स्पर्श से सुख पहुँचाने वाले क्षत्रियों के रक्त सरोवरों में स्नान किया था ।'' यह कहकर (सेनापति सिंहनाद) चुप हो गया ।

देव हर्ष ने उत्तर दिया—"माननीय आपने करने योग्य बातें ही कही हैं । क्योंकि अन्यथा पृथिवी का बोझ धारण करते हुए सर्पराज के प्रति भी मेरी ईर्ष्यालु भुजा की दायाद दृष्टि (हिस्सेदार की नजर) है । मेरी भ्रूलता ऊपर में चलते हुए तारों को पकड़ने के लिए चल पड़ने की इच्छा करती है । मेरा हाथ न झुकने वाले पहाड़ों के भी बाल पकड़ लेना चाहता है । मेरा हृदय तेज के कारण दुर्विनीत सूर्य की किरणों या उसके हाथों में चँवर पकड़वाना चाहता है ।

मेरा पैर मृगराज कहलाने वाले सिंहों के मस्तकों को अपना पादपीठ बनाना चाहता है क्योंकि मृगराज के राज शब्द से वह मानो क्रुद्ध है । स्वतन्त्र लोकपालों ने जिन दिशाओं को अपनी इच्छा से अपने अधीन कर लिया है उन्हें भी छीन लेने का आदेश देने के लिए मेरा अधर फड़कने लगता है । इतना बड़ा व्यसन जब आ पड़ा है तो कहना ही क्या जब कि क्रोध से भरे हुए मन में शोक-

मुसल्ये जीवति जाल्मे जगद्विगर्हिते गौडाधिपाधमचण्डाले जिह्लेमि शुष्काधरपुटः पीडेव प्रतिकारशून्यं शुचा शूत्कर्तुम्। अकृतरिपुबलाबलाविलोललोचनोदकदुर्दिनस्य मे कुतः करयुगलस्य जलाञ्जलिदानम्, अदृष्टगौडाधमचिताधूममण्डलस्य वा चक्षुषः स्वल्पमप्यश्रुसलिलम्। श्रूयतां मे प्रतिज्ञा—शपाम्यार्यस्यैव पादपांसुस्पर्शेन, यदि परिगणितैरेव वासरैः सकलचापलदुर्ललितनरपतिचरणरणरणायमाननिगडां निर्गौडां गां न करोमि ततस्तनूनपाति पीतसर्पिषि पतङ्ग इव पातकी पातयाम्यात्मानम्' इत्युक्त्वा च महासन्धिविग्रहाधिकृतमवन्तिकमन्तिकस्थमादिदेश—'लिख्यताम्। आ रविरथचक्रचीत्कारचकितचारणमिथुनमुक्तसानोरुदयाचलात्, आ त्रिकूटकटककुट्टाकटङ्कलिखितकाकुत्स्थलङ्कालुण्ठनव्य-

मुसलेन वध्या मुसल्यः। तस्मिन् जाल्मे पापिष्ठे। पोटा नपुंसकम्। निगडो बन्धन-

कार्य करने का स्थान ही नहीं रहा। जब तक अधम, चांडाल, दुष्ट, पापी, संसार में निन्दा का पात्र तथा मुसल प्रहार के योग्य गौडाधिपति जीवित रहकर मेरे हृदय में विषम काँटे की तरह चुभता रहा है तब तक सूखे हुए अधर पुट वाले मेरे लिए प्रतिशोध न लेने के कारण हिजड़े के समान रोना-धोना लज्जाजनक है। जब तक शत्रु की अबलाओं की चंचल आँखों के जल से दुर्दिन न कर लूँ तब तक मेरे हाथों से जलाञ्जलि कैसे दी जा सकती है? और जब तक नीच गौडाधिपति की चिता से उठता हुआ धुआँ मैं नहीं देख लूँ तब तक मेरी आँखों में थोड़ा भी अश्रुजल कहाँ? तो सुनिये मेरी प्रतिज्ञा—"आप के ही चरणों की धूल छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि थोड़े ही दिनों में धनुष चलाने की चञ्चलता के कारण दुर्बिनीत राजाओं के पैरों की बेड़ियों की झनकार से पूर्णकरके पृथिवी को गौड़विहीन न कर दूँ तो घी से धधकती हुई आग में पतंगे की भाँति पापी अपने आप को झोंक दूँगा।" यह कहकर उन्होंने अपने समीप बैठे हुए महासन्धि विग्रहाधिकृत अवन्तिक को आदेश दिया—"लिखिए, पूरब में सूर्य के रथ के चक्कों की घर्घर ध्वनि से विस्मित हुए गन्धर्व युगलों द्वारा व्यक्त शिखरवाले उदयाचल पर, दक्षिण में त्रिकूट पर्वत तक जिसके मध्यभाग में कुट्टाक की टाँकी से राम के द्वारा लंकापुरी के लूटे जाने की घटना उल्लिखित है, पश्चिम में

तिकरात्सुवेलात् आ वारुणीमदस्खलितवरुणवरनारीनूपुररवमुखरकुहर-कुक्षेरस्तगिरेः, आ गुह्यकगेहिनीपरिमलसुगन्धिगन्धपाषाणवासितगुहा-गृहाच्च गन्धमादनात् सर्वेषां राज्ञां सज्जीक्रियन्तां कराः करदानाय शस्त्रग्रहणाय वा, गृह्यन्तां दिशश्चामराणि वा नमन्तु शिरांसि धनूंषि वा, कर्णपूरीक्रियन्तामाज्ञा मौर्व्यो वा, शेखरीभवन्तु पादरजांसि शिर-स्त्राणि वा, घटन्तामञ्जलयः करिघटाबन्धा वा, मुच्यन्तां, भूमय इषवो वा, समालम्ब्यन्तां वेत्रयष्टयः कुन्तयष्टयो वा, सुदृश्यः क्रियतामात्मा मच्च-रणनखेषु कृपाणदर्पणेषु वा। परागतोऽहम्। पङ्गोरिव मे कुतो निवृत्ति-स्तावद्यावन्न कृतः सर्वद्वीपान्तरसंचारी सकलनरपतिमुकुटमणिशिला-लोकमयः पादलेपः।' इति कृतनिश्चयश्च मुक्तास्थानो विसर्जितराजलोकः स्नानारम्भाकाङ्क्षी सभामत्याक्षीत्। उत्थाय च स्वस्थवन्निः शेषमाह्नि-

---

मदिरा के नशे से मतवाली श्रेष्ठ वरुणाङ्गनाओं के नूपुर की आवाज से जिसकी गुफाएँ पूरीत हो रही हैं ऐसे अस्ताचल तक, उत्तर में यक्षिणियों के शरीर की सुगन्ध से सुवासित पत्थरों से युक्त गुफाओं वाले गन्धमादक तक सब राजा हाथ से करदान के लिए तैयार हों अथवा शस्त्र ग्रहण के लिए, दिशाओं का ग्रहण करें या सेवा-चामरों का, अपने मस्तक को झुकावें या धनुष को, आज्ञा को कानों तक ले जाँय या धनुष की डोरियों को, अपने मस्तक पर (मेरे) चरण की धूल को धारण करें या शिरस्त्र (युद्ध के लिए टोप) को, (मुझे) प्रणाम करने के लिए हाथों को छोड़े या युद्ध के लिए हाथियों को जुटावें, या तो भूमि को छोड़े या बाणों को, वेत्रयष्टि धारण करें या बर्छियाँ लें, झुककर मेरे पैर के नाखूनों में अपना प्रतिबिम्ब देखें (अर्थात् मुझे प्रणाम करने के लिए मेरे चरणों में झुकने को तैयार हो जाँय) अथवा कृपाण के दर्पणों में अपना रूप देखें। मैं अब आ गया हूँ। लंगड़े व्यक्ति के सदृश मुझे तब तक कहाँ सुख मिलेगा जब तक (मैं) उस प्रकार का अपने पैरों में लेप नही लगा लेता जिसे लगाते ही सभी द्वीपान्तरों में विचरण करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है और जो सब राजाओं की मुकुटमणियों में प्रकाश छिटकाता है। इस प्रकार निश्चय करके बाह्य आस्थान मण्डप से, उठकर सभी राजाओं को बिदा करके स्नान करने की इच्छा से उन्होंने सभा छोड़ दी। वहाँ से उठकर स्वस्थ व्यक्ति के समान उन्होंने

कमकार्षीत् । अगलच्च दर्पप्रसर इव श्रुतप्रतिज्ञस्य शाम्यदूष्मा दिवसस्त्रिभुवनस्य ।

ततश्च निजाधिकारापहारभीत इव भगवत्यपि क्वापि गते गततेजस्यहिमभासि, तामरसवनेष्वपि निगूढशिलीमुखालापेषु त्रासादिव संकुचत्सु, विहगगणेष्वपि समुपसंहृतनिजपक्षविक्षेपनिश्चलेषु भियेवाप्रकटीभवत्सु, भुवनव्यापिनीं सन्ध्यां प्रतिज्ञामिव मानयति नतशिरसि घटिताञ्जलिवने जने सकले, स्वपदच्युतिचकितदिक्पालदीयमानाभ्रलिहलोहप्राकारवलयकलितास्विव बहलतिमिरमालातिरोधीयमानासु दिक्षु प्रदोषास्थाने नातिचिरं तस्थौ । नमन्नृपलोकलोलांशुकपवनकम्पितशिखैर्दीपिकाचक्रवालैरपि प्रणम्यमान इव प्राहिणोल्लोकं प्रतिषिद्धपरिजनप्रवेशश्च शयनगृहं प्राविशत् । उत्ता-

श्रृङ्खला । तनूनपाद्वह्निः । चारणा गन्धर्वाः । काकुत्स्थो रामः । वारुणी सुरा । कुक्षिर्वेदिः । गुह्यका यक्षाः । पङ्गोर्गतिविकलस्य । ऊष्मा औष्ण्यम् ।

ततश्चेत्यादौ । प्रदोषास्थाने नातिचिरं तस्थाविति संबन्धः । शरा अपि शिली-

सम्पूर्ण दैनिक कृत्य किये । मानो हर्ष की प्रतिज्ञा को सुनकर तीनों लोकों का अहंकार विगलित हो गया हो इस प्रकार दिन का तेज शान्त होने लगा ।

उसके बाद मानो अपने अधिकार के छिन जाने के डर से भगवान् सूर्य भी शिथिल तेज होकर कहीं चले गये । भ्रमरों की आवाज जिनमें भरी हुई है ऐसे तामरसवनों के भी मानों भय के कारण संकुचित हो जाने पर, पक्षियों के भी मानो डर के मारे अपने पंखों को सिकोड़कर स्थिरभाव से छिप जाने पर, भुवन को व्याप्त करने वाली संध्या को ही प्रतिज्ञा के सदृश समझ कर सभी लोगों के मस्तक नवाकर तथा हाथ जोड़ लेने पर, मानो दिक्पालों ने अपनी पदच्युति के भय से लोहे के गगनचुम्बी प्राकार खड़े कर दिये हों इस प्रकार चारों ओर अंधकार के कारण दिशाओं के अन्तर्हित हो जाने पर देव हर्ष प्रदोषास्थान में कुछ देर तक बैठे । झुकते हुए राजाओं के चञ्चल वस्त्रों की हवा से कम्पित शिखाओं वाले दीपों के समूह भी मानो उन्हें प्रणाम कर रहे हों इस प्रकार सब लोगों को भेजकर स्वयं परिजनों के प्रवेश को रोककर (वे) शयन कक्ष में प्रविष्ट हुए । वहाँ शयनतल पर चित लेटकर अङ्गों को ढीले छोड़ दिये ।

नश्च मुमोचाङ्गानि शयनतले। दीपद्वितीयं च तमभिसर इव लब्धावसरस्तरसा भ्रातृशोको जग्राह। जीवन्तमिव हृदये निमीलितलोचनो ददर्शाग्रजम्। उपर्युपरि भ्रातृजीवितान्वेषिण इव प्रसस्रुः श्वासाः। धवलांशुकपटान्तेनेव चाश्रुजलप्लवेन मुखमाच्छाद्य निःशब्दमतिचिरं रुरोद। चकार चेतसि—'कथं नामाकृतेस्तादृश्या युक्तः परिणामोऽयमीदृशः। पृथुशिलासंघातकर्कशकायबन्धात्ताताद्चलादिव लोहधातुः कठिनतर आसीदार्यः। कथं चास्य मे हतहृदयस्यार्यविरहे सकृदपि युक्तं समुच्छ्वसितुम्। इयं सा प्रीतिर्भक्तिरनुवृत्तिर्वा। बालिशोऽपि कः संभावयेदार्यमरणे मज्जीवितम्। तत्तादृशमैक्यमेकपद एव क्वापि गतम्। अयत्नेनैव हतविधिना पृथक्कृतोऽस्मि। दग्धरोषान्तरितशुचा सुचिरं रुदितमपि न मुक्तकण्ठं गतघृणेन मया। सर्वथा लूतातन्तुच्छटाच्छिद्दुरास्तुच्छाः प्रीतयः प्राणिनाम्। लोकयात्रामात्रनिबन्धना बान्धवता यत्रा-

---

मुखाः। सहाया अपि पक्षाः अभिसराश्चौराः

वहाँ एक दीपक तथा दूसरे वे थे, तभी भाई के शोक ने अवसर पाकर चोर की भाँति वेग पूर्वक उन्हें जकड़ लिया। नेत्र बन्द कर उन्होंने अपने हृदय में मानो जी रहे अपने बड़े भाई (राज्यवर्धन) को देखा। मानो भाई को खोजने के लिए उनके श्वास ऊपर-ऊपर बढ़ने लगे। उजले अंशुक के किनारे से आँसुओं से डबडबाये हुए अपने मुख को ढँककर बहुत देर तक वे सिसकते रहे। उन्होंने मन में सोचा—"उस प्रकार की आकृति का भी ऐसा परिणाम कैसे ठीक हुआ? पिता जी के शरीर की बनावट शिलासंघात जैसी थी एवं जिस प्रकार पहाड़ से लोहा अधिक कठोर होता है उसी प्रकार आर्य थे। आर्य के वियोग में मेरे इस मुरा हृदय का एक बार भी साँस लेना कैसे ठीक है? यही क्या प्रेम है या भक्ति है या अनुवर्त्तन है? मूर्ख भी कौन होंगे जो आर्य के मरने पर मेरे जीवित रहने की सम्भावना कर सके? उस प्रकार की वह एकता तत्काल ही कहीं चली गई। दुष्ट विधाता द्वारा अनायास ही मैं (भाई से) अलग कर दिया गया हूँ। क्रोध के कारण शोक के दब जाने से निष्ठुर मैं देर तक मुक्त कण्ठ से रो भी न पाया। सर्वथा मकड़ी के जाले के सदृश प्राणियों का तुच्छ प्रेम थोड़े ही में टूट जाता है।

हमपि नाम पर इवार्ये स्वर्गस्थे स्वस्थ इवासे। दैवहतकेन फलमासादितमीदृशि परस्परप्रीतिबन्धनिर्वृतहृदये सुखभाजि भ्रातृमिथुने विघटिते। तथा च चन्द्रमया इव जगदाह्लादिनो लोकान्तरीभूतस्य लग्नचिताग्नय इवार्यस्य त एव दहन्ति गुणाः इत्येतानि चान्यानि च हृदयेन पर्यदेवत। प्रभातायां च शर्वर्यां प्रतीहारमादिदेशाशेषगजसाधनाधिकृतं स्कन्दगुप्तं द्रष्टुमिच्छामीति।

अथ युगपत्प्रधावितबहुपुरुषपरम्पराहूयमानः, स्वमन्दिरादप्रतिपालितकरेणुश्चरणाभ्यामेव संभ्रान्तः, ससंभ्रमैर्दण्डिभिरुत्सार्यमाणजनपदः, पदे पदे प्रणमतः प्रतिदिशमिभभिषग्वरान्वरवारणानां विभावरीवार्ताः पृच्छन्नुच्छ्रितशिखिपिच्छलाञ्छितवंशलतावनगहनगृहीतदिगायामैर्विन्ध्यवनैरिव वारणबन्धविमर्दोद्योगागतैः, पुरःप्रधावद्भिरनायत्तमण्डलैराधोरणगणैश्च

लूता तन्तुच्छटा जालकारसूत्रजालम्। लोकात्रा लोकाचारः। किं फलमासादितम्, न किंचिदित्यर्थः। पर्यदेवत शुशोच।

अथेत्यादौ। स्कन्दगुप्त एतैरेतैः क्रियमाणकोलाहलो राजकुलं विवेशेति सम्बन्धः। भिषग्वरान्वैद्योत्तमान्। बन्धो रोधनमपि। अनायत्ता हस्तिपार्श्वरक्षिणः।

वस्तुतः भाई-बन्धु का नाता लोक व्यवहार मात्र के लिए है जहाँ आर्य के स्वर्ग चले जाने पर भी मैं पराये की तरह स्वस्थ होकर पड़ा हुआ हूँ। परस्पर प्रेम-भरे सुख पूर्वक रहने वाले भ्रातृयुगल के अलग हो जाने से दुष्ट दैव को क्या फल मिला? चन्द्रकिरणों के सदृश संसार को आह्लादित करने वाले आर्य के ही गुण, अब उनके परलोक चले जाने से चिता में लगी हुई आग की तरह जला रहे हैं" इस प्रकार और दूसरी बातें करके मन ही मन दुःखी होते रहे। रात बीतने पर प्रातः काल ही उन्होंने प्रतीहार को आदेश दिया—"मैं सम्पूर्ण गजसाधनादिकृत स्कन्दगुप्त को देखना चाहता हूँ।"

उसके बाद एक ही साथ दौड़ पड़े बहुत से लोगों द्वारा जिसे बुलाया गया ऐसे, अपने भवन से अपनी हथिनी की प्रतीक्षा किये बिना तथा पैदल चलकर ही घबड़ाये हुए, घबड़ाहट से भरे दण्डधारी सैनिक जिनके सामने से लोगों को हटाते जा रहे थे ऐसे, पग-पग पर प्रणाम करते हुए हस्तिचिकित्सक जिन्हें श्रेष्ठ हाथियों के बारे में पूछते थे कि पिछली रात उनका क्या हाल रहा ऐसे, विन्ध्याचल के वनों के सदृश ऊँचे बाँस के सिर पर मोर के पङ्ख बाँधे दिशाओं में

मरकतहरितभासमुष्टीश्च दर्शयद्भिर्नवग्रहगजपतींश्च प्रार्थयमानैश्च लब्धाभिमतमातङ्गमुदितमानसैश्च सुदूरमुपसृत्य नमस्यद्भिरात्मीयमातङ्गमदागमांश्च निवेदयद्भिः, डिण्डिमाधिरोहणाय च विज्ञापयद्भिः, प्रमादपतितापराधापहृतद्विरददुःखधृतदीर्घश्मश्रुभिरग्रतो गच्छद्भिः, अभिनवोपसृतैश्च कर्पटिभिर्वारणाप्तिसुखप्रत्याशया धावमानैः, गणिकाधिकारिगणैश्चिरलब्धान्तरैरुच्छ्रितकरैः, कर्मण्यकरेणुकासंकथानाकुलैरुल्लासितपल्लवचिह्नाभिररण्यपालपङ्क्तिभिश्च, निष्पादितनवग्रहनागनिवहनिवेदनोद्यताभिरुत्तम्भिततुङ्गतोत्रवनाभिर्महामात्रपेटकैश्च प्रकटितकरिकर्मचर्मपुटैः, अभिनवगजसाधनसंचरणवार्तानिवेदनविसर्जितैश्च नागवनवीथीपालदूतवृन्दैः, प्रतिक्षणप्रत्यवेक्षितकरिकवलकूटैश्च, कटभङ्गसंग्रहं

आधोरणा गजारोहाः। डिण्डिमः पटहः। गणिका गजानां प्रतिलोभनार्था हस्तिनी। कर्मण्यकरेणुका करिग्रहकुशला करिणी। तदन्त्यनेनेति तोत्रं प्रेषणकम्। महामात्राः प्रधानहस्त्यारोहाः तेषां पेटकैः समूहैः। करिणां कर्मार्थे युद्ध-

व्याप्त होने वाले हाथियों को (हौका देकर) पकड़ने के लिए दूर-दूर से बुलाये गये, आगे दौड़ते हुए हाथियों के पार्श्वरक्षक लोग और महावत, जो मरकत मणि के सदृश हरी-हरी घास की मूठ देकर नये पकड़ कर लाये गये हाथियों को दिखा रहे थे और प्रार्थना कर रहे थे, मतवाले हाथियों द्वारा बात मान लेने पर हर्षित हो रहे थे जो दूर से दौड़कर प्रणाम कर रहे थे, अपने-अपने हाथियों के यौवन के कारण मद फूट कर बहने की जो सूचना देने लगे। जो हाथियों के डिण्डिमाधिरोहण के लिए निवेदन करने लगे, जिनमें से कुछ असावधानी के कारण गिर जाने के अपराध के कारण हाथी के छिन जाने के दुःख से लम्बी दाढ़ी बढ़ाये उसके आगे-आगे चल रहे थे, बाहर से नये आये हुए तथा मस्तक पर चीरा बाँधे हुए हाथियों के परिचारक हाथियों की सेवा के काम मिलने की प्रत्याशा में हर्ष से दौड़ रहे थे, (हाथियों को फँसाने के काम में फुसलावा देने वाली) गणिकासंज्ञक हथिनियों के अधिकारी बहुत दिनों से आकर प्रतीक्षा कर रहे थे और अवसर पाकर काम में सिद्ध हथिनियों के करतल हाथ उठाकर सुनने लगे, पल्लव के चिह्न वाले अरण्यपाल लोग नये पकड़े हुए गजयूथों को लेकर हाथ में ऊँचे अङ्कुश लिए कटक में उपस्थित थे, महामात्र लोग चमड़े का भरे हुए हाथी का पुतला तैयार कर उसके द्वारा हाथियों को युद्ध की शिक्षा देते थे, नागवीथी

ग्रामनगरनिगमेषु निवेदयमानैः, कटककदम्बकैः क्रियमाणकोलाहलः, स्वामिप्रसादसंभृतेन महाधिकाराविष्कारेण स्वाभाविकेन चावष्टम्भाभोगेनोदासीनोऽप्याdिशन्निव, असंख्यकरिकर्णशङ्खसम्पत्सम्पादनाय समुद्रानाज्ञापयन्निव, शृङ्गारगैरिकपङ्काङ्गरागसंग्रहाय गिरीन् मुष्णन्निव, दिग्गजाधिकारं ककुभामैरावतमिवापहरन् हरेर्हरवदमरनमितकैलासगिरिगुरुभिः, पादन्यासैर्गुरुभारग्रहणगर्वमुर्व्याः संहरन्निव, गतिवशविलोलस्य चाजानुलम्बस्य बाहुदण्डद्वयस्य विक्षेपैरालानशिलास्तम्भमालामिवोभयतो निखनन्नीषदुत्तुङ्गलम्बेनाधरबिम्बेनामृतरसस्वादुना नवपल्लवकोमलेन कवलेनेव श्रीकरेणुकां विलोभयन्निजनृपाशदाम

शिक्षार्थी। चर्मपुटः चर्मकृतो हस्त्याकारः। कटभङ्गः प्रत्यग्र गोधूमादियवसम्, घास इत्यर्थः। निगमा वणिक्पथाः। कटका हस्तिपनियुक्ताः अग्रेसरा वेत्रिण इत्यन्ये। गुणाः शौर्याद्याः, मौर्वी च गुणः।

वालों के भेजे हुए दूत अभिनव राजयूथ के संचरण का समाचार देने के लिए भेजे गये थे, कटक में एक-एक क्षण हाथियों के लिए चारे की बाट देखने में नियुक्त झुण्ड के झुण्ड प्यादे प्रत्येक गाँव, शहर तथा मंडी में चारा संग्रह करके सूचने देते थे, ऐसे लोगों द्वारा जिसके चारों ओर कोलाहल हो रहा था ऐसे, स्वामी की कृपा से प्राप्त गजसाधनाधिकृत के अधिकार के प्रकाश से एवं स्वाभाविक गर्वजनित गम्भीरता से जो चुपचाप होने पर मानो आदेश दे रहा था, जो मानो समुद्रों को यह आदेश दे रहा था कि गिनती से परे हाथियों के कान में आभूषण के रूप में लटकने के लिए शङ्ख उत्पन्न करो। हाथियों के शृङ्गार के लिए गैरिकपंक के अंगराग के सञ्चय के लिए जो पर्वतों को मानो लूट रहा था, जो दिशाओं के दिग्गजों एवं पर इन्द्र के ऐरावत का अधिकार मानो छीन रहा था, भगवान् शङ्कर के चरणों के बोझ से झुके हुए कैलाश पर्वत के सदृश भारी भगवान् विष्णु के कदमों से पृथ्वी के भारी बोझ ढोने के अभिमान को मानो जो शिथिल कर रहा था, जिसके लम्बे हाथ चलने के कारण हिल रहे थे जिनके विक्षेप से मानो अपने दोनों ओर हाथियों को मारने के लिए पत्थर के आलानस्तम्भ गाड़ रहा था, अमृततुल्य स्वादिष्ट, नवपल्लव तुल्य कोमल तथा कुछ ऊँचे और लटके हुए अपने अधर से लटके हुए अपने अधर से मानो जो श्रीकरेणु (सिंगर-पिटार से सजायी हुई हथिनी) को कवल से लुभा रहा था, जिसका

नासावंशं दधानः, अतिस्निग्धमधुरधवलविशालतया पीतक्षीरोदेनेव पिबन्नीक्षणयुग्मायामेन दिशामायामं मेरुतटादपि विकटविपुलालिकः, सततविच्छिन्नच्छत्रच्छायाप्ररूढिवशादिव नितान्तयतनीलकोमलच्छविसुभगेन स्वभावभङ्गुरेण कुन्तलबालवल्लरीवेल्लितविलासिना लुनन्निव लुप्तालोकानर्ककरान् वर्वरकेणारिपक्षपरिक्षयपरित्यक्तकार्मुककर्मापि सकलदिगन्तश्रूयमाणगुणध्वनिः, आत्मस्थसमस्तमत्तमातङ्गसाधनोऽप्यस्पृष्टो मदेन भूतिमानपि स्नेहमयः पार्थिवोऽपि गुणमयः करिणामिव दानवतामुपरि स्थितः, स्वामितामिव स्पृहणीयां भृत्यतामप्यपरिभू-

मदो गर्वोऽपि। भूतिः संपत्, भस्म च। पार्थिवो राजा, पृथिव्यारब्धश्च। गुणास्तन्तवोऽपि। नहि घटः पटो भवतीति विरोधः। दानं मदः, वितरणं च।

नासिका वंश अपने राजा के वंश के सदृश ही था, मानो क्षीर समुद्र को ही पी लेने के कारण जिसकी आँखें अत्यन्त स्निग्ध, मधुर, उज्ज्वल तथा बड़ी थी जिनसे दिशाओं के विस्तार को भी मानो जो पान करता आ रहा था, जिसका लिलार मेरु के तट से भी कहीं अधिक विकट एवं विस्तृत था, जिसकी बबरी सदा छत्र की छाया में ही बढ़ते रहने से मानो अत्यन्त लम्बी, नील, मुलायम तथा सुन्दर थी, जो मंजरी के सदृश स्वाभाविक रूप से घुंघराली थी, मानो वह उनसे सूर्य किरणों के प्रकाश को भी मलिन कर रहा था, जो शत्रुओं के संहार के लिए धनुष का धारण करने का काम छोड़ चुका था पर फिर भी सम्पूर्ण दिशाओं में जिसके गुणों की गम्भीर ध्वनि सुन पड़ती थी। (विरोध पक्ष यह कि धनुष कर्म छोड़ देने पर दिशाओं में गुणों अर्थात् धनुष की प्रत्यञ्चाओं की टंकार कैसे सुनायी देगी ? परिहार पक्ष यह है कि उसके विनय आदि गुणों की सर्वत्र ख्याति हो गई थी।) मतवाले हाथियों की सेना अधीन थी पर फिर भी जिस मद को छू नहीं पाया था। (अभिप्राय यह है कि वह गर्व से रहित था), ऐश्वर्य सम्पन्न होने पर भी जो स्नेह से भरा था (यह भूति का अर्थ भस्म न होकर ऐश्वर्य है इसीलिए स्नेह शब्द संगत हो जाता है।), जो पार्थिव (राजा) होकर भी गुणमय था, दान से भरे हुए हाथियों पर जिस प्रकार शासन करता था उसी प्रकार दानियों में भी सबसे ऊपर जो स्थित था, अपने स्वामित्व के सदृश स्पृहणीय

तामुद्वहन्नेकभर्तृभक्तिनिश्चलां कुलाङ्गनामिवानन्यगम्यां प्रभुप्रसादभूमिमारूढः, निष्कारणबान्धवो विदग्धानाम्, अभृतभृत्यो भजताम्, अक्रीतदासो विदुषाम्, स्कन्दगुप्तो विवेश राजकुलम्। दूरादेव चोभयकरकमलावलम्बितं स्पृशन्मौलिना महीतलं नमस्कारमकरोत्।

उपविष्टं च नातिनिकटे तं तदा जगाद देवो हर्षः—'श्रुतो विस्तर एवास्यार्यव्यतिकरस्यास्मच्चिकीर्षितस्य च। अतः शीघ्रं प्रवेश्यन्तां प्रचारनिर्गतानि गजसाधनानि। न क्षाम्यत्यतिस्वल्पमप्यार्यपरिभवपीडापावकः प्रयाणविलम्बम्।' इत्येवमभिहितश्च प्रणम्य व्यज्ञापयत्—'कृतमवधारयतु स्वामी समादिष्टं किंतु स्वल्पं विज्ञप्यमस्ति भर्तृभक्तेः। तदाकर्णयतु देवः। देवेन हि पुष्यभूतिवंशसंभूतस्याभिजनस्याभिजात्यस्य सहजस्य तेजसो

प्रचारो भक्षणम्। गजसाधनानि करिसैन्यानि। अभिषङ्गा अभिभवाः।

तथा कभी अभिभूत न होने वाले भृत्यत्व अर्थात् सेवकत्व को जो धारण कर रहा था, कुलवधू के सदृश एक ही पति में निश्चल भक्ति रखने वाली और किसी दूसरे का गमन न करने वाली अपने स्वामी की प्रसन्नता जिसे प्राप्त थी, जो विदग्धजनों का अकारण बन्धु था जो सेवा करने वालों का अवैतनिक भृत्य था तथा जो विद्वानों का बिना खरीदा हुआ ही दास था ऐसे वह स्कन्द गुप्त ने राजकुल में प्रवेश किया। दूर से ही उसने अपने दोन कर-कमलों का आश्रय लेकर मस्तक से पृथिवी का स्पर्श करते हुए प्रणाम किया।

थोड़ो दूर पर बैठे हुए उससे देव हर्ष ने कहा—"आर्य के हत्याकाण्ड के विषय में तथा हमने जो करने की इच्छा की है उसके बारे में आपने विस्तार पूर्वक सुना ही होगा। इसलिए चरने के लिए बाहर गयी हुई गजसेना को जल्दी ही स्कन्धावार में लौट आने का आदेश दिया जाय। आर्य का हुआ अपमान (शत्रु पर आक्रमण करने के लिए) प्रस्थान में होने वाली थोड़ी सी देर को भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। हर्ष के ऐसा कहने पर स्कन्दगुप्त ने उन्हे प्रणाम करके निवेदन किया—"महाराज ने जैसा आदेश दिया है उसे किया हुआ ही समझें किन्तु स्वामिभक्ति के कारण (मुझे) कुछ निवेदन करना है। महाराज उसे सुनें। देव ने जो यह उपक्रम किया है वह पुष्पभूति के कुल में उत्पन्न होने वाले आपके, परम्परा से प्राप्त आपके तेज के, दिग्गज की सूंड़ के सदृश लम्बी आपकी

दिक्करिकरप्रलम्बस्य बाहुयुगलस्यासाधारणस्य च सोदरस्नेहस्य सर्वं सदृशमुपक्रान्तम्। काकोदराभिधानाः कृपणाः कृमयोऽपि न मृष्यन्ति निकारं किमुत भवादृशास्तेजसां राशयः। केवलं देवराज्यवर्धनोदन्तेन कियदपि दृष्टमेव देवेन दुर्जनदौरात्म्यम्। ईदृशाः खलु लोकस्वभावाः प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिदेशं प्रतिद्वीपं प्रतिदिशं च भिन्ना वेशाश्चाकाराश्चाहाराश्च व्याहाराश्च व्यवहाराश्च जनपदानाम्। तद्वियतात्मदेशाचारोचिता स्वभावसरलहृदयजा त्यज्यतां सर्वविश्वासिता। प्रमाददोषाभिषङ्गेषु श्रुतबहुवार्त एव प्रतिदिनं देवः। यथा नागकुलजन्मनः सारिकाश्रावितमन्त्रस्यासीन्नाशो नागसेनस्य पद्मावत्याम्। शुकश्रुतरहस्यस्य च श्रीरशीर्यत श्रुतवर्मणः

कार्यो भृत्य इत्युक्तम्। यवनेश्वरः केनचिच्छत्रुणासाद्य व्यापादितुमिष्टः। स्वसुहृदा शत्रुप्रहितलेखेन बोधितः। लेखपृष्ठे च तेन लिखितम् 'स्वयं वाचयितव्यो लेख' इति। ततो यवनेश्वरस्य स्वयं वाचयतश्चूडामणिप्रतिबिम्बितान्यक्षराणि वाचयित्वा तत्प्रहिता चामरग्राहिणी प्रभवे निवेद्य तदाज्ञया तं जघानेति। अनेन सूक्ष्मोऽपि रहस्यभेदहेतू रक्षणीय इत्युक्तम्। विदूरथप्रयुक्तेन नरेन्द्रवृन्दप्रतारित्तो प्रतिग्राममिति। उपक्रान्तं निदर्शयितुमाह—यथेति। अत्र कथा—नागसेननामा पद्मावत्यां राजा मन्त्रिणमर्धराज्यहरमपाकर्तुं शारिकासमक्षं मन्त्रमकरोत्। स

भुजाओं तथा सहोदर भ्राता के प्रति आपके असामान्य प्रेम के सर्वथा अनुरूप है। बेचारे साँप जैसे कीड़े भी जब अपना तिरस्कार नहीं सहन कर पाते तो भला आप जैसे तेजस्वियों का क्या कहना! केवल देव राज्यवर्धन के वृत्तान्त से दुर्जनों की दुष्टता आपने कितनी देखी ही है। आजकल निश्चय ही लोकों के ऐसे स्वभाव हैं जो कि प्रत्येक गाँव, प्रत्येक शहर, प्रत्येक द्वीप तथा प्रत्येक दिशा में सारे जनपदों के भिन्न-भिन्न आकार, भिन्न-भिन्न आहार, भिन्न-भिन्न बातचीत तथा व्यवहार हो गये हैं। इसलिए अपने देश के आचारों के अनुकूल, स्वभावतः सरलहृदय होने के कारण उत्पन्न यह सबों पर विश्वास करने की आदत को छोड़ दिया जाय। प्रतिदिन देव ने लापरवाही रूपी दोष की स्थितियों में राजाओं पर आने वाली विपत्तियों के विषय में बहुत सी बातें सुन ही रक्खी हैं। जैसा कि पद्मावती नगरी में नागवंशी राजा नागसेन का नाश सारिका के गुप्त विचार देने पर (उसी का आधा राज्य हड़प कर बैठे हुए मंत्री द्वारा) हो गया। श्रावस्ती में राजा श्रुतवर्मा की श्री भी तोते के द्वारा रहस्य की बात जान लेने

श्रावस्त्याम्। स्वप्नायमानस्य च मन्त्रभेदोऽभून्मृत्यवे मृत्तिकावत्यां सुवर्णचूडस्य। चूडामणिलग्नलेखप्रतिबिम्बवाचिताक्षरा च चारुचामीकरचामरग्राहिणी यमतां ययौ यवनेश्वरस्य। लोभबहुलं च बहुलनिशि निधानमुत्खनन्तमुत्खातखड्गप्रमाथिनी ममन्थ माथुरं बृहद्रथं विदूरथवरूथिनी। नागवनविहारशीलं च मायामातङ्गाङ्गान्निर्गता महासेनसैनिका वत्सपतिं न्ययंसिषुः। अतिदयितलास्यस्य च शैलूषमध्यमध्यास्य मूर्धानमसिलतया मृणालमिवालुनादग्निमित्रात्मजस्य सुमित्रस्य मित्रदेवः। प्रियतन्त्रीवाद्यस्यालाबुवीणाभ्यन्तरशुषिरनिहितनिशितनरवारयो गान्धर्वच्छात्रच्छद्मानः चिच्छिदुरश्मकेश्वरस्य शरभस्य शिरो रिपुपुरुषाः। प्रज्ञादुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेषसैन्यः, सेनानीरनार्यो मौर्यं बृहद्रथं पिपेष पुष्य-

---

चादि मन्त्री शारिकामुखाद्विज्ञाय विस्रम्भपूर्वकं तं दण्डेनावधीदिति। श्रावस्त्यां च श्रुतवर्मा पूर्ववच्छुकश्रावितमन्त्रो राज्याच्चुच्याव। अनेन च गूढमन्त्रेण यत्नाद्भाव्यमित्युक्तम्। मृत्तिकावत्यां सुवर्णचूडो नाम राजा कश्चिद्विस्रम्भपूर्वकं जिघृक्षन्मन्त्रितवांस्तदेव तस्मै विललास। ततस्तत्पूर्वं तत्प्रयुक्तेन विश्वासिना शिरोरक्षकेण स्वस्वामिप्रयुक्तेन व्यापादित इति। अनेन च कुलस्वभावाद्यपरीक्ष्य न बृहद्रथो नाम राजा लोभवशात्तन्यवादे कृष्णनिशि प्रवृत्तस्ततसेनया प्रहृत इति। अतः प्रवर्तितव्यमित्युक्तम्। महासेनो नामोज्जयिनीपतिः स्वदुहितरं वासवदत्ताख्यामुदयनाय दित्सुः कपटजं नागं वीथ्यां प्रसज्य लब्धप्रतीतिः शरैर्नामगुणान्प्रख्या-

---

पर हाथ से चली गयी। मृत्तिकावती में राजा सुवर्णचूड का निद्रावस्था में बड़बड़ाने से हुआ मन्त्र भेद ही उसकी मृत्यु का कारण बना। सुन्दर सुवर्ण का चँवर डुलाने वाली बाँचते समय चूडामणि में प्रतिबिम्बित मित्र का गुप्त लेख पढ़कर यम के रूप में यवनेश्वर की हत्या का हेतु बन गई। अँधेरी रात में भूमि से रत्न का खजाना उखाड़ते हुए अत्यन्त लोभी मथुरा के राजा बृहद्रथ को विदूरथ की सेना ने खडग खींचकर मार डाला। नागवन में विहार करने वाले वत्सराज को मायाहस्ती के अङ्ग से निकल कर महासेन के सैनिकों ने पकड़ लिया।

नृत्य के अत्यन्त प्रेमी अग्नि मित्र-पुत्र सुमित्र के सिर को मित्रदेव ने नट का भेष धारण कर तलवार से मृणाल के सदृश कतर दिया। शत्रु के आदमियों ने संगीत के छात्र का कपट करके तन्त्रीवाद्य के प्रेमी अश्मकेश्वर शरभ का सिर वीणा के विवर में छिपाकर रखी हुई तलवार से काट डाला। आश्चर्य की

मित्रः स्वामिनम् । आश्चर्यकुतूहली च दण्डोपनतयवननिर्मितेन नभस्तलयायिना यन्त्रयानेनानीयत क्वापि काकवर्णः शैशुनागिश्च नगरोपकण्ठे कण्ठे निकृत्ते निस्त्रिंशेन । अतिस्त्रीसङ्गरतमनङ्गपरवशं शुङ्गममात्यो वसुदेवो देवभूतिदासीदुहित्रा देवीव्यञ्जनया वीतजीवितमकारयत् । असुरविवरव्यसनिनं, चापजहरपरिमितरमणीमणिनूपुरझणझणाह्लादरम्यया मागधं गोवर्धनगिरिसुरुङ्गया स्वविषयं मेकलाधिपमन्त्रिणः । महाकाल-

प्योदयनं लाभितवान् । सोऽप्यविचार्यैव गजग्रहग्राहकया कतिपयाप्तपरिवारो घोषवतीं वीणामादाय तत्र गतः कपटकुञ्जरान्तर्गतैर्महासेनसैनिकैः संयत इति । अतो नाल्पपरिवारैः संवीक्ष्य च विस्रब्धैर्भाव्यमित्युक्तम् । सुमित्रो राजा मित्रव्यसनी स्त्रीजनपरिवार इव नटजने विस्रब्धो मित्रदेवेन नटत्वमाश्रित्य हतः । स च योगचूर्णविचूर्णितस्तिरोहितो बभूवेति । अतो व्यसनिभिः प्रकृतलोकविश्वासिभिश्च न भाव्यमित्युक्तम् । शरभोऽतिशयितान्वाद्यवतः प्रवेशमदादिति गूढायुधै रिपुपुरुषैर्हत इति । अतो मनागपि व्यसनं वर्जनीयमित्युक्तम् । अकार्यमत्र परदारगमनादि । तरवारिरेकधारः खड्गः । प्रज्ञेत्यादि स्पष्टा कथा । अनेन च भृत्यबलदर्शनमसंनद्धैर्न कार्यमित्युक्तम् । मौर्यमिति गोत्रनाम । काकवर्णो यवनान्विजित्य तैश्च स्वपुरुषानुपायनीकृत्य यन्त्रयानैस्तद्वत्तः परदारानीग्नच्छन्यवनरात्मदेशं प्रापय्य निहत इति । अतः शत्रुप्राभृतेषु भृत्येषु न विश्वसनीयमित्युक्तम् । देवीव्यञ्जनया महिषीव्याजया मेकलाधिपमन्त्रिभिर्वातिकच्छद्मभिराहविवरं साधितम् । तपसास्माभिरित्युक्त्वा मागधो गुहाद्वारप्रतिद्वारैर्बद्धोऽभूत् । गोवर्धनगिरिः सूर्याख्यः

वस्तुओं के प्रति उत्सुकता रखने वाला शिशु नाग-पुत्र काकवर्ण दण्ड के लिए (पकड़कर) लाये गये (पराजित) यवनों द्वारा निर्मित आकाशचारी यन्त्रयान से कहीं नगर के नजदीक ले जाया गया तथा कण्ठ में तलवार से काट दिया गया । अत्यधिक स्त्रीसङ्ग करने वाले कामुक राजा शुंग को अमात्य वसुदेव ने दासी की बेटी को रानी के भेष में भेजकर मरवा डाला । असुर विवरव्यसनी अर्थात् पातालदर्शन के शौकीन मगधराज को मेकलाधिप के मन्त्री अगणित सुन्दरियों के मणिनूपुरों की ध्वनि से गूँजते हुए गोवर्धन पहाड़ की सुरङ्ग के रास्ते से अपने देश में हरकर ले गये । महाकाल के उत्सव में महामांस-विक्रय

महे च मनामांसविक्रयवादवातूलं वेतालस्तालजङ्घो जघान जघन्यजं प्रद्योतस्य पौर्णिकं कुमारं कुमारसेनम्। रसायनरसाभिनिवेशिनश्च वैद्यव्यञ्जनाः सुबहुपुरुषान्तरप्रकाशितौषधिगुणा गणपतेर्विदेहराजसूतस्य राजयक्ष्माणमजनयन्। स्त्रीविश्वासिनश्च महादेवीगृहगूढभित्तिभाग्भूत्वा भ्राता भद्रसेनस्याभवन्मृत्यवे कालिङ्गस्य वीरसेनः। मातृशयनीयतूलिकातलनिषण्णश्च तनयोऽन्यं तनयमभिषेक्तुकामस्य दध्रस्य करूषाधिपतेरभवन्मृत्यवे। उत्सारकरुचिं च रहसि ससचिवमेव दूरीचकार चकोरनाथं शूद्रकदूतश्चन्द्रकेतुं जीवितात्। मृगयासक्तस्य च मथ्नतो गण्डकानुद्दण्डनड्वलनलवननिलीनाश्च चम्पाधिपचमूचरभटाश्चामुण्डीपतेराचेमुः प्राणान् पुष्करस्य। बन्दिरागपरं च परप्रयुक्ता जयशब्दमुखरमुखा मङ्खा मौखरिं

पर्वतः। सुरुगा विवरम्। मेकलो विन्ध्याद्रिः। मह उत्सवः। वातूलं व्यसनोन्मत्तप्रायम्। जघन्यजं कनीयांसम्। पुणको गोत्रविशेषः। तत्र भवः पौणकिः। वैद्यं व्यञ्जयन्ति प्रकाशयन्तीति वैद्यव्यञ्जनाः। राजयक्ष्माणं क्षयरोगम्। दध्राख्यस्य करूषाधिपतेः। पितुस्तनयो मृत्यवेऽभवदिति प्राक्तनक्रियया संगतिः गण्डकाः खड्गाद्याः प्राणिनः। चामुण्डीति नगरीनाम्। आचेमुर-

---

के विषय में बाद-विवाद करते हुए पुणिक वंशोत्पन्न एवं प्रद्योत के छोटे भाई कुमारसेन को किसी तालजंघवंश के पुरुष ने बेताल का भेष बनाकर मार डाला। रसायन के रसों के प्रेमी विदेहराज पुत्र गणपति की कपट के बने हुए वैद्यों ने मिले हुए बहुत लोगों द्वारा औषधि के लाभ को विख्यापित करके राजयक्ष्मा का रोगी बना दिया। स्त्री पर विश्वास करने वाले कलिङ्ग राज भद्रसेन का भाई उसकी पटरानी के घर में छिपकर उसकी (अर्थात् भद्रसेन की) मृत्यु का कारण बन माता की शय्या पर पहले से पहुँचे हुए पुत्र ने अन्य पुत्र का राज्याभिषेक करने की इच्छा रखने वाले करूषराज दध्र की मृत्यु का कारण बना। द्वारपाल से प्रेम रखने वाले चकोराधिपति चन्द्रकेतु को शूद्रक के दूत ने मन्त्रिसमेत प्राणों से अलग कर दिया। ऊँचे-ऊँचे डंठलों वाले बड़के जंगलों में छिपकर बैठे हुए चम्पानगरी के राजा के सैनिकों ने गैडों का शिकार करने में संलग्न चामुण्डापति पुष्कर के प्राण ले लिये। वैतालिकों से अपनी प्रशंसा सुनने के प्रेमी मूर्ख मौखरि क्षत्रवर्मा को शत्रु-प्रेषित मंख क्षत्रियों ने उसकी जय जयकार

मूर्खं क्षत्रवर्माणमुदखनत्। अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेशगुप्तश्च चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयदिति। प्रमत्तानां च प्रमदाकृता अपि प्रमादाः श्रुतिविषयमागता एव देवस्य। यथा मधुमोदितं मधुरकसंलिप्तैर्लाजैः सुप्रभा पुत्रराज्यार्थं महासेनं काशिराजं जघान। व्याजजनितकंदर्पदर्पा च दर्पणेन क्षुरधारापर्यन्तेनायोध्याधिपतिं परंतपं रत्नवती जारूथ्यम्, विषचूर्णचुम्बितमकरन्देन च कर्णेन्दीवरेण देवकी देवरानुरक्ता देवसेनं सौह्मचम्, योगपरागविरसवर्षिणा च मणिनूपुरेण वल्लभा सपत्नीरुषा वैरन्त्यं रन्तिदेवम्, वेणीविनिगूढेन च शस्त्रेण बिन्दुमती वृष्णिं विदूरथम्, रसदिग्धमध्येन च मेखलामणिना हंसवती सौवीरं वीरसेनम्, अदृश्यागदावलिप्तवदना च विषवारुणीगण्डूषपायनेन पौरवी

भक्षयन्। शकानामाचार्यः शकाधिपतिः। चन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानश्चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन रहसि व्यापादित इति मधुरक विषम्। परंतपं प्रतापवन्तम्। जारूथ्यमिति जघानेति प्राक्तन्येव क्रियोत्तरत्र च। चूर्णो विषक्षोदः। मकरन्दः पुष्परसः। देवरः कनीयान्भ्राता भर्तुः। योगपरागोऽभिचारचूर्णम्। वैरन्ती नाम नगरी। रसदिग्धं विषोपलिप्तम्। अगदो विषहरद्रव्यसमूहः। वारुणी सुरा।

करते हुए उखाड़ फेंका। शत्रु के नगर में दूसरे की पत्नी (रामगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी) की कामना करने वाले शकपति को चन्द्रगुप्त ने स्त्री के भेष में छिपकर मार डाला। प्रमादी राजाओं की स्त्रियों के द्वारा उत्पन्न की गई विपत्तियों के विषय में भी देव ने सुना ही है। जैसा कि मदिरा के साथ विष मिश्रित लावों से काशिराज महासेन को सुप्रभा ने पुत्र को राज्य प्राप्त कराने के लिए मार डाला। छल से कामदेव का दर्प उत्पन्न करके रत्नवती ने छुरे की धार के सदृश चोखे दर्पण से अयोध्या के प्रतापी राजा जारुथ्य को, कर्णोत्पल में मकरन्द के रूप में विष का चूर्ण मिलाकर देवर के प्रति अनुरक्त देवकी ने सुह्म के राजा देवसेन को, अपने मणि-नूपुर में जादू-टोना का चूर्ण मिलाकर सौत के प्रति क्रोध होने से अपनी ही प्रेयसी ने विरन्ति के राजा रन्तिदेव को, अपनी ही चोटी में छिपाकर रखे गये शस्त्र से बिन्दुमती ने वृष्णि विदूरथ को, मेखला की मणियों में विष का लेप चढ़ाकर रानी हंसवती ने अपने पति सौवीरराज वीरसेन को, पहले विष के प्रभाव को हर लेने वाले औषध को मुँह में लगाकर फिर अपने

पौरवेश्वरं सोमकम्।' इत्युक्त्वा विरराम स्वाम्यादेशसंपादनाथ च निर्जगाम।

देवोऽपि हर्षः सकलराज्यस्थितीश्चकार। ततश्च तथा कृतप्रतिज्ञे प्रयाणं विजयाय दिशां समादिशति देवे हर्षे गतायुषा प्रतिसामन्तानामुदवसितेषु बहुरूपाण्युपलिङ्गानि वितेनिरे। तथा ह्यविप्रकृष्टाः कालदूतदृष्टय इवेतस्ततश्चटुलाः कृष्णशारश्रेणयः। प्रचलितलक्ष्मीनूपुरप्रणादप्रतिमा मधुसरघासंघातझंकारा जह्लादिरे। चिरं विवृतविकृतवदनविवरविनिःसृतवह्निविसरा वासरेऽपि विरसं विरेसुशिवरमशिवार्थमशिवाः शिवाः। शवपिशितप्ररूढप्रसरा इव कपिपोतकपोलकपिलपक्षतयः काननकपोताः पेतुः। आमन्त्रयमाणा इव दधुरकालकुसुमानि समभूपवनतरवः। तरलकरतलप्रहारप्रहतपयोधरा रुरुदुः प्रसभं सभाशालभञ्जिकाः। ददृशुरासन्नकचग्रहभयोद्भ्रान्तोत्तमाङ्गमिवात्मानं कबन्धमादर्शोदरेषु योधाः।

उदवसितेषु गृहेषु। उपलिङ्गान्यनिमित्तानि। सरघा मधुमक्षिकाः। कानन-

---

मदिरा के जहरीले गण्डूष पिलाने से पुरुराज की पत्नी ने पुरुराज सोमक को मार डाला।' यह कहकर स्कन्दगुप्त चुप हो गया तथा स्वामी के आदेश को पूरा करने के लिए वहाँ से निकल पड़ा।

देव हर्ष ने भी राज्य की सारी स्थिति ठीक कर ली। उसके बाद उस प्रकार कृत प्रतिज्ञ होकर दिग्विजय के लिए सैनिक-प्रयाण का आदेश जब हर्ष ने दिया तभी से गतप्राण शत्रु-सामन्तों के घरों में विभिन्न प्रकार के अपशकुन होने लगे। यमराज के दूतों की दृष्टियों की भाँति काले-काले चंचल हिरन कुछ ही दूर पर इधर-उधर मँडराने लगे। चलायमान लक्ष्मी के नूपुर की ध्वनि के सदृश मधुमक्खियाँ भनभनाने लगीं। जिनके मुख फैलाने से आग की चिनगारी निकलती रहती थी ऐसी सियारिनें दिन में भी विरस लगने वाली तथा अमङ्गल के लिए अशुभ तथा कटु आवाज में चिक्कारने लगीं। बन्दर के कपोल के समान लाल पंखों वाले जंगली कबूतर मानो मुर्दे के मांस की चाह से घरों पर बैठने लगे। उपवन के वृक्ष मानो आपस में मंत्रणा करके असमय में पुष्पित होने लगे। सभास्थान के खम्भों पर बनी हुई सालभंजिकायें स्तनों पर हाथ पीट-पीटकर जोर से रोने लगीं। योद्धा लोग हर्ष के सैनिकों के द्वारा निकट भविष्य में होने वाले कचग्रह के डर से सिर में उत्पन्न चक्कर के कारण दर्पण में अपना ही धड़

चूडामणिषु चक्रशङ्खकमललक्ष्माणः प्रादुरभवन्पादन्यासा राजमहिषीणाम् । चेटीचामराण्यकस्मादधावन्त पाणिपल्लवात् । प्रणयकलहेऽपि दत्तपृष्ठाश्चिरमभवन्भटाः पराङ्मुखा भामिनीनाम् । करिकपोलेषु व्यघटन्त मधुलिहां मधुमदिरापानगोष्ठ्यः । समाघ्रातयममहिषगन्धा इव ताम्यन्तः स्तम्बकरिमपि हरयो हरितं नवयवसं न चेरुः । चलवलयावलीवाचालबालिकातालिकातोद्यलालिता अपि न ननृतुर्मन्दा मन्दिरमयूराः । निशि निशि रजनिकरहरिणनिहितनयन इवोन्मुखस्तारमुपतोरणमकारणमकाणीत्कौलेयकगणः । गणयन्तीव गतायुषस्तर्जनतरलया तर्जन्या दिवसमाट वाटकेषु कोटवी । कुट्टिमेषु कुटिलहरिणखुरवेणीतरङ्गिण्यश्च शष्पराजयोऽजायन्त । जानतवेणीबन्धानि निरञ्जनरोचनारोचींषि चषकमधुनि मुखकलप्रतिबिम्बान्यदृश्यन्त भटीनाम् । समासन्नात्मापहारचकिता इव

कपोता गृध्राः । व्यघटन्त आसन् । स्तम्बकरिं बद्धस्तम्बम्, पक्वं वा । हरयो हयाः । अकाणीद्‌ध्वान । कौलेयकाः श्वानः । आट बभ्राम । कोटवी नग्ना स्त्री ।

सिर से अलग होते हुए देखने लगे । राजमहिषियों की चूड़ामणियों में (हर्ष के) शङ्ख, चक्र और कमल के चिह्नों वाले पैर के निशान प्रकट होने लगे । दासियों के हाथों से चँवर अचानक छूटकर गिरने लगे । भट लोग प्रणय के कलह में भी भामिनियों के सामने पीठ दिखाकर देर तक पराङ्मुख हो गये । हाथियों के गण्डस्थल में भ्रमरो का मदपान बन्द हो गया । मानो यमराज के भैंसे की गन्ध को सूंघ चुके हों इस प्रकार दुःखी होकर घोड़ों ने हरे धान को खाना बन्द कर दिया । झन-झन कंकण पहनी हुई बच्चियों के ताल देकर मनाने पर भी गृह मयूरों ने नाचना छोड़ दिया । हर रात मुँह उठाकर मानो चन्द्रमा के मृग की ओर आँख लगाये कुत्ते तोरण के निकट अकारण ही जोर-जोर से रोने लगे । मार्गों में नंगी स्त्री चंचल तर्जनी से मरने वालों की मानो गिनती करती हुई चक्कर लगाती हुई दीख पड़ी । राजमहल के कुट्टिमों में टेढ़े हरिणों के खुरों के समान तरङ्ग भरी घास लहराने लगी । योद्धाओं की स्त्रियों के मुख का जो प्रतिबिम्ब मधुपात्र में पड़ता था उसमें विधवाओं जैसी एक वेणी और काजल से रहित गोरोचना के समान पीली आँखें दिखाई पड़ने लगी । निकट में होने वाले

चकम्पिरे भूमयः। वध्यालंकाररक्तचन्दनरसच्छटा इवालक्ष्यन्त शूराणां पतिताः शरीरेषु विकसितबन्धूककुसुमशोणितशोचिषः शोणितवृष्टयः। पर्यग्नीकुर्वाणा इव विनश्वरीं श्रियमविरलस्फुरत्स्फुलिङ्गाङ्गारोद्गारदग्धतारागणा गणशः पतन्तः प्रज्वलन्तो न व्यरंसिषुरुल्कादण्डाः प्रथममेव प्रतिहारीवापहरन्ती प्रतिभवनं चामरातपत्रव्यजनानि परुषा बभ्राम वात्येति।

इति श्रीबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते राजप्रतिज्ञावर्णनं नाम षष्ठ उच्छ्वासः।



शष्पं बालतृणम्। बन्धूकं बन्धुजीवः। अपरिगताग्नि पारिगताग्नि कुर्वाणाः। अग्नौ समन्तात्क्षिपन्तः। व्यरंसिषुर्निववृतिरे॥

इति श्रीशंकरकविविरचिते हर्षचरितसंकेते षष्ठ उच्छ्वासः।



अपने हरण से मानो भूमि काँपने लगी। वीरों के शरीरों पर पड़े हुए खिले हुए बन्धूक पुष्प के सदृश लाल रंग के शोणित के छीटे मृत्युदण्ड प्राप्त होने पर लगाये जाने वाले चन्दन की भाँति दिखाई पड़ने लगे। दिशाओं में चारों ओर मानो नाशावस्था को प्राप्त हुई श्री को घेर कर अनवरत निकलती हुई चिनगारियों से तारों को जलाती हुई उल्काएँ बार-बार गिरने लगीं। भयानक हवा प्रतीहारी के सदृश सबके चँवर, छत्र और व्यजन का अपहरण करती हुई प्रत्येक महल में घूमने लगी।

श्रीबाणभट्टरचित हर्षचरित में राजप्रतिज्ञावर्णन नामक छठा उच्छ्वास समाप्त हुआ।



सप्तम उच्छ्वासः

अङ्गनवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम् ।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य ॥ १ ॥
धृतधनुषि बाहुशालिनि शैला न नमन्ति यत्तदाश्चर्यम् ।
रिपुसंज्ञकेषु गणना कैव वराकेषु काकेषु ॥ २ ॥

अथ व्यतीतेषु च केषुचिद्दिवसे मौहूर्तिकमण्डलेन शतशः सुगणिते सुप्रशस्तेऽहनि दत्ते चतसृणामपि दिशां विजययाग्ये दण्डयात्रालग्ने सलिलमोक्षविशारदैः शारदैरिवाम्भोधरैः कालधौतैः शातकौम्भैश्च कुम्भैः स्नात्वा विरचय्य परमया भक्त्या भगवतो नीललोहितस्यार्चामुदर्चिषं हुत्वा प्रदक्षिणावर्तशिखाकलापमाशुशुक्षणिं, दत्त्वा द्विजेभ्यो रत्नवन्ति

अङ्गनेत्यादिनोद्योगितां सूचयति । शूरा हि स्वशौर्यमात्रेणावर्जितत्रिभुवनाधिपत्याः, न तु तेषां सामग्र्यन्तरप्रयोजनम् । तथा चाह—'कृतप्रयत्नस्य वीरस्य सर्वा भूरङ्गनवेदी'त्यनायासेनाक्रमणादनेनेदमपि प्रतिक्षिप्तम् । कदाचित्कश्चिद् ब्रूयादभिमानान्मोहाद्वेत्थं हर्षेण प्रतिज्ञातम् । अन्यथा गिरिगुहादौ पलायितं हर्षः कथं परिभवेत् । कथं च बहुपालितामुर्वीमेको जयेदिति । तन्न । यतोऽङ्गनवेदीत्यादि । नन्वेवमपि । तत्तुल्यो वीरो न भवेदित्याह— धृतेत्यादि ।

अथेत्यादौ । भवनान्निर्जगामेति सम्बन्धः । मौहूर्तिकाः गणकाः । दण्डश्चतुरङ्गबलम् । तस्य यात्रा गमनम् । तत्र लग्नो मेषादिस्तस्मिन् । विशारदैः प्रवीणैः, शुक्लैश्च । कालधौतैः कालवशेन धौतैश्च । शातकौम्भैः सौवर्णैः । नीललोहितोऽसितरक्तः । आशुशुक्षणिमग्निम् । राजतानि रौप्याणि । जातरूपं सुवर्णम् । पत्रलता

प्रतिज्ञा किये हुए वीर पुरुष के लिए पृथिवी आङ्गन की वेदी, समुद्र एक छोटी सी नहर, पाताल थाली के समान तथा सुमेरु पर्वत एक बाम्बी के समान हो जाते हैं ॥ १ ॥

भुजबलशाली वीर पुरुष जब धनुष उठा लेता है तो पहाड़ नहीं झुक जाते यही आश्चर्य है फिर तो शत्रुनामधारी बेचारे कौओं की क्या गिनती ? ॥२॥

इसके बाद कुछ दिन बीत जाने पर, ज्योतिषियों द्वारा सैकड़ों बार गणना करके शुभ दिन निकाले जाने पर, शरत्कालीन बादलों के सदृश जल बरसाने वाले चाँदी और सोने के घड़ों से स्नान करके, परम भक्ति के साथ भगवान् शंकर की पूजा करके, दक्षिणावर्त्त शिखाओं की प्रज्वलित अग्नि मे हवन करके,ब्राह्मणो को हजारों चाँदी एवं सोने से भरे तिलपात्र तथा सोने के पत्तरों में मढ़े हुए

राजतानि जातरूपमयानि च सहस्रशस्तिलपात्राणि कनकपत्रलतालंकृतशफश‍ृङ्गशिखरा गाश्चार्बुदशः, समुपविश्य विततव्याघ्रचर्मणि भद्रासने विलिप्य प्रथममलिप्तायुधो निजयशोधवलेनाचरणतश्चन्दनेन शरीरं परिधाय राजहंसमिथुनलक्ष्मणी सदृशे दुकूले, परमेश्वरचिह्नभूतां शशिकलामिव कल्पयित्वा सितकुसुममुण्डमालिकां शिरसि, नीत्वा कर्णाभरणमरकतमयूखमिव कर्णगोचरतां गोरोचनाच्छुरितमभिनवं दूर्वापल्लवं, विन्यस्य सह शासनबलयेन गमनमङ्गलप्रतिसरं प्रकोष्ठे, परिपूजितप्रहृष्टपुरोहितकरप्रकीर्यमाणशान्तिसलिलसीकरनिकराभ्युक्षितशिराः संप्रेष्य महार्हाणि वाहनानि बहुलरत्नालोकलिप्तककुभि च भूभुजां भूषणानि संविभज्य, क्लिष्टकार्पटिककुलपुत्रलोकमोचितैः प्रसाददानैश्च विमुच्य बन्धनानि सकलानि, नियुज्य तत्कालस्मरणस्फुरणेन कथितात्मानमिव चाष्टा-

पत्रभङ्गः। शफाः खुराः। अर्बुदं दशकोटयः। नृपासनं भद्रासनम्। उक्तं च—'नृपासनं भद्रासनं, सिंहासनं तु तद्धैम'मिति। परमेश्वरो राजा, हरश्च। शासनवलयेन मुद्राकटकेन। प्रतिसरं कङ्कणम्।

खुरों एवं सींगों वाली अरबों गौओं का दान करके, फैले व्याघ्र चर्म पर भद्रासन में बैठकर, पहले अपने आयुध पर लेप चढ़ाने के बाद पुनः अपनी कीर्त्ति की भाँति उज्ज्वल चन्दन को अपने मस्तक से लेकर पाँवों तक लेपकर, राजहंस के जोड़े से चिह्नित अपने अनुकूल दुपट्टों को धारण करके, शिव के चिह्न के रूप में चन्द्रकिरण के सदृश उजले फूलों की मुण्डमालिका को मस्तक पर रखकर, कानों में मरकत के कर्णाभरण तुल्य गोरोचनों से युक्त सुन्दर दूर्वा का पत्ता धारण करके, कलाई में यात्रा मे माङ्गलिक कङ्कण शासनवलय (मुद्राकटक अर्थात् राजकीय मुद्रा से युक्त कंगन या कड़ा) के साथ धारण करके, पूजा प्राप्त किये प्रसन्न पुरोहितों द्वारा जिनके मस्तक पर शान्त का जल छिड़का गया ऐसे, बहुमूल्य सवारियों को भेज कर तथा दिशाओं को अधिक प्रकाश से लिप्त करने वाले रत्नजटित आभूषण राजाओं को बाँटकर, क्लेश में पड़े (कैदी) कर्पटिकों (मस्तक पर चीरा बाँधने के अधिकारी कर्मचारियों), कुल पुत्रों का प्रसाद-दान करके उन्हें सारे बन्धनों से मुक्त करके देवहर्ष ने उसी समय अपने दायें भुजस्तम्भ को जो फड़क कर मानो अपना स्वरूप प्रकट कर रहा था, अट्ठारह द्वीपों

दशद्वीपजेतव्याधिकारे दक्षिणं भुजस्तम्भमहमहमिकया सेवकैरिव सन्निमित्तैरपि समग्रैरग्रतो भवद्भिः प्रमुदितप्रजाजन्यमानजयशब्दकोलाहलो हिरण्यगर्भ इव ब्रह्माण्डात्कृतयुगकरणाय भवनान्निर्जगाम ।

नातिदूरे च नगरादुपसरस्वति निर्मिते महति तृणमये, समुत्तम्भिततुङ्गतोरणे, वेदीविनिहितपल्लवललामहेमकलशे, बद्धवनमालादाम्नि धवलध्वजशालिनि, भ्रमच्छुक्लवाससि, पठद्द्विजन्मनि मन्दिरे प्रस्थानमकरोत् । तत्रस्थस्य चास्य ग्रामाक्षपटलिकः सकलकरणिपरिकरः 'करोतु देवो दिवसग्रहणमद्यैवावन्ध्यशासनः शासनानाम्' इत्यभिधाय वृषाङ्कमभिनवघटितां हाटकमयीं मुद्रां समुपनिन्ये । जग्राह च तां राजा । समुपस्थापिते च प्रथमत एव मृत्पिण्डे परिभ्रश्य करकमलादधोमुखी महीतले

ललामं चिह्नम् । 'ललामं पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्राधान्यकेतुषु' । वनमाला पुष्पपत्रप्रतियोजिता स्रक् । अक्षाणां भूतानां, पटले समूहे नियुक्तोऽक्षपटलिकः । ग्रामा-

पर विजय पाने के योग्य अधिकार में नियुक्त किया तथा उस समय "पहले मैं पहले मैं" इस अहमहमिका की भावना से युक्त सेवकों के समान सारे सन्निमित्त सामने होने लगे तथा प्रसन्न प्रजाजनों द्वारा किये गये जय-जयकार शब्द के शोर से युक्त एवं सतयुग की सृष्टि करने के लिए ब्रह्माण्ड से निकले हुए ब्रह्मा की भाँति वे राजमहल से बाहर निकले ।

नगर से कुछ ही दूर सरस्वती नदी के समीप घास-फूस बिछाकर बनाये गये बहुत बड़े जिसमें ऊँचे तोरण खड़े किये गये थे, जहाँ वेदी पर पल्लवसहित सुन्दर स्वर्ण कलश रखा हुआ था, जहाँ वनमालाएँ बाँधी गई थी, जहाँ उजली पताकाएँ फहरा दी गई थीं, जहाँ उजले वस्त्र को धारण किये हुए लोग घूम रहे थे और जहाँ ब्राह्मण लोग मङ्गल पाठ कर रहे थे ऐसे मन्दिर में हर्ष ने प्रस्थान किया । वहाँ उनके ग्रामाक्षपटलिक (गाँव का मुख्य वित्ताधिकारी अर्थात् पटवारी) ने अपने सभी लेखकों के साथ "अविफल शासन वाले देव आज ही शासनदान का आरम्भ करें" ऐसा कहकर उसने नयी बनी हुई एक स्वर्णनिर्मित मुद्रा, जिस पर बैल का चिह्न बना हुआ था, हर्ष के हाथ में दी । राजा ने उस मुद्रा को ग्रहण किया पहले से रखे हुए मिट्टी के पिण्डे पर उसे ज्योंही लगाना चाहा कि वह

पपात मुद्रा। मन्दाश्यानपङ्कपटले मृदुमृदि सरस्वतीतीरे परिस्फुटं व्यराजन्त राजयो वर्णानाम्। अमङ्गलाङ्किनि च विषीदति परिजने नरपतिरकरोन्मनस्येतत्—'अतत्त्वदर्शिन्यः हि भवन्त्यविदग्धानां धियः। तथा हि—एकशासनमुद्राङ्का भूर्भवतो भविष्यतीति निवेदितमपि निमित्तेनान्यथा गृह्णन्ति ग्राम्याः।' इत्यभिनन्द्य मनसा महानिमित्तं तत्सीरसहस्रसंमितसीम्नां ग्रामाणां शतमदाद् द्विजेभ्यः। निनाय च तत्र तं दिवसम्। प्रतिपन्नायां शर्वर्यां संमानितसर्वराजलोकः सुष्वाप।

अथ गलति तृतीये यामे सुप्तसमस्तसत्त्वनिःशब्दे दिक्कुञ्जरजृम्भमाणगम्भीरध्वनिरताड्यत प्रयाणपटहः। अप्रतः स्थित्वा च मुहूर्तमिव पुनः प्रयाणक्रोशसंख्यापकाः स्पष्टमष्टावदीयन्त प्रहाराः पटहे पटीयांसः।

णामक्षपटलिकः ग्रामाक्षपटलिकः। करणिर्लेख्यम्। कायस्थ इत्यन्ये। मुद्रा बालिका। मन्दाश्यानमीषच्छुष्कम्।

एकशासनमुद्रैवाङ्को यस्याः सा। सीरं हलम्। संमितं परिच्छिन्नम्। अष्टक्रोशा अद्य गन्तव्यमिति प्रायेण क्रोशसंख्यापकाः।

हाथ से छूटकर गिर गयी और सरस्वती नदी के किनारे की गीली मिट्टी पर उसके अक्षर स्पष्टतः उभर आये। अमङ्गल की आशङ्का से युक्त हुए परिजन के खिन्न होने पर राजा हर्ष ने मन में ऐसा कहा या विचार किया—"अचतुर अर्थात् भोले भाले लोगों की बुद्धि तत्त्व को नहीं पाती। यह पृथिवी आपके एक-छत्र शासन की मुद्रा से अंकित होगी, इस प्रकार निमित्त से सूचित होने पर भी ये ग्रामीण कुछ दूसरा अर्थ ही लगा रहे हैं।" इस महानिमित्त का मन ही मन अभिनन्दन करके हर्ष ने एक हजार हल से जिनमें से प्रत्येक का क्षेत्रफल नापा गया था ऐसे सौ गाँव ब्राह्मणों को दान में दिये। उन्होंने उस दिन को वहीं बिताया। रात होने पर सभी राजाओं का सम्मान करके उन्होंने शयन किया।

जब रात का तीसरा पहर बीत रहा था तथा सब के सोये रहने से चारों ओर निःशब्दता छायी थी तभी दिग्गज की जँभाई के समान गम्भीर आवाज में कूच का नगाड़ा बजाया गया। आगे कुछ ठहर कर फिर सेना के ठहराव के लिए कोसों की सूचना देने वाले आठ प्रहर नगाड़े पर जोर से दिये गये।

ततो रटत्पटहे, नदन्नान्दीके, गुञ्जद्गुञ्जे, कूजत्काहले, शब्दायमानशंखे, क्रमोपचीयमानकटककलकले, परिजनोत्थापनव्यापृतव्यवहारिणि, द्रुतद्रुघणघातघटयमानकोणिकाकीलकोलाहलकलिलककुभि, बलाधिकृतबध्यमानपाटीपतिपेटके, जनज्वलितोल्कासहस्रालोकलुप्यमानत्रियामातमसि, यामचेटीचरणचलनोत्थाप्यमानकामिमिथुने, कटुककटुकनिर्देशनश्यन्निद्रोन्मिषन्निषादिनि, प्रबुद्धहास्तिकशून्यीक्रियमाणशय्यागृहे, सुप्तोत्थिताश्वीयविधूयमानसटे, रटत्कटकमुखरखनित्रखन्यमानक्षोणीपाशे, समुत्कील्यमानकीलशिञ्जानहिञ्जीरे, उपनीयमाननिगडतालकलरवोत्तालतुरङ्ग-

तत इत्यादौ। एवं विधे प्रयाणसमये राजभिरापूरे राजद्वारमिति संबन्धः। नान्दी मङ्गलपटहः। गुञ्जासंज्ञः शङ्खभेदो यत्पृष्ठे जतु परिकलितं भवति। 'सन्ना' इति यस्य प्रसिद्धिः। शङ्खश्च मुण्डशख इति प्रसिद्धः। द्रुघणोऽयस्ताडनभाण्डम्। कोणिकाः पटहकुटयादिकेषु याः कीलिकाः। पाटी बहुपरिवारपुरुषगृहीतो निवासभूभागः, कुलपुत्रकसमूह इत्यन्ये। पेटकं तत्समूहः, 'पाठीपति' इति पाठे पाठोपलयः प्रतिनियतस्वस्थानपरिरक्षिकः। उल्का दीपिका। यामचेटो प्रहरजागरणनियुक्ता। तत्क्षणं चरणचलनं पादेषु स्पर्शः। कटुकानां हस्तिपकपत्राणाम्। यः कटुको रूक्षः। निर्देश आज्ञा। निषादिनां हस्त्यारोहाणाम्। हास्तिकं हस्तिसमूहः। अश्वीयमश्ववृन्दम्। क्षोणीपाशो भूम्या निबन्धनम्। समुत्कील्यमानान्युत्खन्यमानानि। हिञ्जीरं लौही शृङ्खला। निगडार्थं तालकं तालपत्रं निगडतालकम्। लोह एवाश्व-

उसके बाद जब नगाड़े बजने लगे, नान्दी की ध्वनि होने लगी, गूँजा गूँजने लगा, काहल बजने लगा, शंख निनादित होने लगे, क्रमशः सेना का शोरगुल बढ़ने लगा, झाड़ू देनेवाला जमादार आकर नौकरों को जगाने लगा, मुँगरी से तड़ातड़ पीटे जाने से नक्कारे का कोलाहल दिशाओं में भर गया, (सैनिक संगठन करने वाले) बलाधिकृतों ने पाटीपतियों को (सैन्यनिरीक्षकों) को इकट्ठा किया, लोगों द्वारा जलाई गयी हजारों मशालों के प्रकाश से रात का अँधेरा दूर हो गया, पहर पर जगाने वाली चेटियों के पावों की आहट के साथ साथ सोये हुए कामुक स्त्री-पुरुष उठ बैठे, प्यादों की कड़ी डाँट से उठकर हाथीवान आँखें मलने लगे, जगे हुए हाथी शयनगृह से बाहर आ गये, सोकर उठे हुए घोड़े अयाल झाड़ने लगे, हाँफने की आवाज करते हुए प्यादे कुदालों से धरती में गाड़े हुए फाँसेदार आँकुड़ों को खोदने लगे, कीलों के उखाड़ने से लोहे की सीकड़ें

तरङ्गयमाणखुरपुटे, लेशिकमुच्यमानमदस्यन्दिदन्तिसंदानशृङ्खलाखनखननिनादनिर्भरभरितदशदिशि, भासपूलकप्रहारप्रमृष्टपांसुलकरिपृष्ठप्रसार्यमाणप्रस्फोटितप्रमृष्टचर्मणि, गृहचिन्तकचेटकसंवेष्ट्यमानपटपुटीकाण्डपटमंडपपरिवस्त्रावितानके, कीलकलापापूर्यमाणचिपिटचर्मपुटे, संभाण्डायमानभाण्डागारिणि, भाण्डागारवहनसंवाह्यमानवहुनालीवाहिके, निषादिनिश्चलानेकानेकपारोप्यमाणकोशकलशपीडापीडसंकटायमानसामन्तीकासि, दूरगतदक्षदासेरकक्षिप्रप्रक्षिप्यमाणोपकरणसंभारभ्रियमाणदुष्टदन्तिनि, तिर्यगानमज्जाघनिकरकृच्छ्राकृष्टलम्बमानपरतन्त्रतुन्दिलचुन्दीजनजनितजनहासे,

---

बन्धनविशेष इत्यन्ये। तरङ्गयमाणाः कुटिलीक्रियमाणाः। लेशिकाः घासिकाः। संदानशृङ्खला बन्धनाद्याः। प्रस्फोटितं विपूरितम्। प्रमृष्टं शोधितम्। पटकुट्यादयः स्कन्धवारसरणिकाभेदाः। तथा च पटैः कुटी सूक्ष्मगृहम्। काण्डपटकं काण्डैः पटैश्च गृहम्। परिवस्त्रा तिरस्करिणी। वितानको रल्लकः। चिपिटी ह्रस्वः। चर्मपुटश्चर्मप्रसेवकः। संभाण्डायमानो भाण्डानि समाचिन्वन्। 'भाण्डात्समाचयने' इति णिच्। संवाह्यमानाः प्राप्यमाणाः। नालीवाहिकः करिणां घासग्रहणनियुक्तो हस्तिपको मेण्ठाख्यः। चुन्दी कुट्टनी। शारिर्मञ्जरी। हस्तिपर्याणमित्यर्थः।

आवाज करने लगीं, घोड़ों के पैरों में पड़े हुए खटकेदार कड़े जब खोले जाने लगे तो उन्होंने अपने खुर टेढ़े कर दिये, जब मतवाले हाथियों के पाँवों में बेडी बाँधने की जंजीरों को लेशिक (चारा देने वाले घसियारे) खोलने लगे तो खनखन की आवाज दसो दिशाओं में भर गई, घास के लम्बे मुट्ठों से धूल से भरी हाथियों की पीठों को झाड़कर साफ कर दिया गया तथा उन पर कमाये हुए चमड़े की खालें डाल दी गईं, घरों के बनने-उखाड़ने की चिन्ता रखने वाले (गृहचिन्तक) नौकर-चाकर, तम्बू, बड़े डेरे, कनात एवं शामियाने लपेटने में लग गये और खूँटों को चपटे चमड़े के थैलों में भरने लगे, हाथियों के घसियारे भण्डार ढोने के लिए बुलाये जाने लगे, हाथी वानों ने सीधे हाथियों को लाकर चुपचाप खड़ा कर दिया और उन पर सामन्तों के डेरों में भरा हुआ सामाम, प्याले और कलशों की पेटियों के समूह लादने लगे, जो दुष्ट हाथी थे उन पर सजे हुए ऊंट काठ-कवाड़, खाट-पीढ़े आदि सामग्री का बोझ दूर से फेंककर लदवाने लगे, दूसरे लोग मुटल्ली दासियों (कुट्टनियों) को, जो चल नहीं पा रही थी, टेढ़ा झुककर जोर से घसीटते ले जा रहे थे जिसे देखकर लोग हँसने

पीडयमानशारशारिवरत्रागुणग्राहितगात्रविहारबृंहद्बृहद्बृहदुन्मदकरिणि, करिघटाघट्टमानघण्टाटांकारक्रियमाणकर्णज्वरे, पृष्ठप्रतिष्ठाप्यमानकण्ठालककदर्थितकूजत्करभे, अभिजातराजपुत्रप्रष्यमाणकुप्ययुक्ताकुलकुलीनकुलपुत्रकलत्रवाहने, गमनवेलाविप्रलब्धवारणाधोरणान्विष्यमाणनवसेवके, प्रसादवित्तपत्तिनीयमाननरपतिवल्लभावारवाजिनि, चारुचारभटसैन्यन्यस्यमानासीरमण्डलाडम्बरस्थूलस्थासके, स्थानपालपर्याणलम्बमानलवणकलायीकिङ्किणीनालीसनाथसंकलिततलसारके, कुण्डलीकृतावरक्षणीजालजटिलवल्लभपालाश्वघटानिवेश्यमानशाखामृगे, पारवर्धकाकृष्यमाणार्ध-

तत्स्थैः पीडयमानदामभिर्ग्राहितेन गात्रविहारेण देहकम्पेन बृंहन्तः शब्दायमानाः करिणो यत्र तस्मिन्। प्रसादेन वित्ताः पत्तयः। वारोऽवसरः। 'निवहावसरौ वारः' इत्यमरसिंहः। तत्र वाजिनो ये सेवकानां प्रत्यवसरं विसृज्यन्ते। 'वर' इति पाठः। चारुचारभटसैन्येन न्यस्यमाना आत्मान एव क्रियमाणाः। नासीरेण कूर्परेण। मण्डलाडम्बरार्थाः स्थूलाः स्थासकाश्चन्द्रका यत्र। अन्ये नासीरमग्रेसरमाहुः। स्थानपालानां पर्याणेषु लम्बमाना लवणकलायी किङ्किणी। नालीसनाथा संकलिता तलसारिका यत्र। स्थानपाला अश्वपालाः। अश्वभाण्डागारिका इत्यन्ये। लवणकलायी मृगाकृतिरश्वानां दारुमयी क्रियते। किङ्किण्यः सूक्ष्मघण्टाः। नाली

लगे, रंग-बिरंगी रस्सियों से कसे जाने के कारण जिनके झूमने में बाधा पड़ रही थी ऐसे विशालकाय मनमौजी हाथी चिग्घाड़ रहे थे, हाथियों के घण्टे की टङ्कार से कान फटने लगे, पीठ पर लादी जाती हुई कण्डालों की पीड़ा से ऊँट बिलबिलाने लगे, कुलीन राजकुमारों के द्वारा भेजे गये पीतल जड़े वाहनों में कुलीन कुल पुत्रों की आकुल स्त्रियाँ जा रही थीं, चलते समय इधर-उधर भटके हुए नये सेवकों को हाथियों के महावत ढूँढ़ने लगे, (राजा की) प्रसन्नता प्राप्त किये हुए राजा के प्रिय लोग घोड़ों को पकड़ कर चलने लगे, सुन्दर चार भट सेना के हरावल दस्ते चौड़े छापे हुए निशानों वाले वेष से सजे हुए थे, स्थान पालों के घोड़ों की पलानें लटकती हुई लवण-कलायी, क्षुद्र घण्टिकाओं तथा नाली से सुशोभित थी एवं जेरबन्द (तलसारक) से बँधी हुई थी।

राजवल्लभ घोड़ों के परिचारक घोड़ों की अवरक्षणी रस्सी लपेटकर लिये हुए थे तथा साथ में (घोड़ों की रोग और भूत से बचाने के लिए) बन्दर लिये चल रहे थे, सवारों के घोड़े सुबह का भोजन अभी आधा ही समाप्त कर पाये थे कि

जग्धप्राभातिकयोग्याशनप्रारोहके, व्यक्रोशीविजृम्भमाणघासिकघोषे, गमनसंभ्रमभ्रमदुत्तुण्डतरुणतुरङ्गमतन्यमानानेकमन्दुराविमर्दे, सज्जीकृतकरेणुकारोहाह्वानसत्वरसुन्दरीदीयमानमुखालेपने, चाल्यमानकुतुरङ्गप्रधावितप्राकृतप्रातिवेशिकलोकलुण्ठ्यमाननिर्घाससस्यसंचये, संचरच्चेलचक्राक्रान्तचक्रीवति, चक्रचीत्कारिगन्त्रीगणगृह्यमाणप्रहतवर्त्मनि, अकाण्डकोड्डीयमानभाण्डभरितानडुहि, निकटघासलाभलुभ्यल्लम्बमानप्रथमप्रसार्यमाणसारसौरभेये, प्रमुखप्रवर्त्यमानमहासामन्तमहानसे, पर:प्रधावद्ध्रष्ट्र-

प्रधानार्थं वैणवी नाडिरुच्यते। तलसारकोऽश्वमुखपट्टिकाणादिसूक्ष्मयी। उर:-पट्टिकेत्यन्ये। कुण्डलीकृतैरवरक्षणीजालैर्जटिला वल्लभपाला यासु तास्वश्वघटासु निवेश्यमाना: शाखामृगा यासु। अवरक्षण्यश्वबन्धनरज्जु: वल्लभपालोऽश्वपाल:। अन्ये तु यो बलवान्। महाकारो ह्ययोपकरणम् यवसतण्डुलादि वहति स वल्लभपालोऽश्वपाल इत्याहु:। शाखामृगो वानर:। रक्षार्थमश्वानां परिवर्धकोऽश्वपाल:। प्रौढिको योग्याशनार्थी प्रसेवको यो 'बुकण' इति प्रसिद्ध:। व्याक्रोशी परस्पराह्वानम्। उत्तुण्डा उत्प्रोथा:। मुखालेपनं सिन्दूरादिना करेणुकार्थमेव। प्रातिवेशिकलोका: प्रत्यासन्ननिवासा जना:। निर्घासो भुक्तशेषो घास:। चेलं वस्त्रम्, बालको वा चेल:। चक्रीवान्गर्दभ:, उष्ट्रो वा। गन्त्री शकटिका। गृह्यमाणमधिष्ठीयमानम्। प्रहतं क्षुण्णम्। सर्वसेवितमित्यर्थ:। लम्बमानो गर्दभदास:, वणिजां कर्मकरो वा। सारसौरभेयो बलवाननड्वान्। प्रमुखेऽग्रे। महानसं

परिचारकों ने उनके तोबड़े उतार लिए, घसियारे आपस में चीख-चीख कर शोर मचा रहे थे, चलने की जल्दीबाजी में छूट कर भागे हुए जवान घोड़े मुँह उठाकर दौड़ मारने लगे जिससे घुड़साल में खलबली मच गई, हथिनियाँ इधर-उधर सवारी के लिए सजकर तैयार हो गई तो परिचारकों के द्वारा आवाज दिये जाने पर सुन्दरियाँ मुखालेपन (हाथियों के मुख पर माड़ने बनाने की वस्तु) लेकर आ गई, हाथी-घोड़े जब चल पड़े तो उनके पड़े हुए चारों को लूटने के लिए आस पास के छोटी जाति के लोग आ पहुँचे, धोबी गदहों पर सवार होकर चल पड़े, चलते हुए पहियों की चरर-मरर करती हुई गाड़ियाँ रास्ते में लीक बनाने लगीं, आँगन पर तुरन्त देने योग्य सामान बैलों पर लादा गया, रसद का सामान देने वाले बनियों के बैल पहले ही रवाना कर दिये गये थे किन्तु वे (या उन्हें हाँकने वाले नौकर) घास के लालच में बिलम्ब कर रहे थे, महासामन्तों के

जवाजिनि, अभिमतोपलभ्यमानसंकटकुटीरकान्तरालनिःसरणे, करिचरणदलितमठिकोत्थितलोकलोष्टहन्यमानमेण्ठाक्रियमाणाजनसाक्षिणि, संघट्टविघट्टमानव्याघ्रपल्लीपलायमानक्षुद्रकुटुम्बके, कलकलोपद्रवद्रवद्द्रविणबलीवर्दविद्राणवाणिजि, पुरःसरदीपिकालोकविरलायमानलोकोत्पीडाप्रस्थितान्तःपुरकरिणीकदम्बके, हयारोहाहूयमानलम्बितशुनि, खरभसञ्चरणनिपतननिश्चलगमनसुखायमानखक्खटस्तूयमानतुङ्गतङ्गणगुणे, त्रस्तवेसरविसरादसीदद्दाक्षिणात्यसादिनि, रजोजग्धजगति प्रयाणसमये, प्रतिदिशमागच्छद्भिर्गजवधूसमारूढैराधोरणैरूर्ध्वीध्रियमाणहेमपत्रभङ्गशारशार्ङ्गैः, अन्तरासनासीनान्तरङ्गगृहीतासिभिः, ताम्बूलिकावधूयमानचामरपल्लवैः,

सूपकारशाला। कुटीरं मठिका, स्वल्पगृहम्। मेण्ठो आगरिकः। व्याघ्रपल्ली तृणकुटीभेदः। क्षुद्रमल्पम्। कुटुम्बकं परिवारः। विद्राणाः सशोकाः। लम्बितः पश्चात्यचितः। खक्खटाः वृद्धाः। तुङ्गा उच्चाः, तङ्गणो देशः, तद्देशजोऽप्यश्वस्तङ्गणः। विपंवादः परिशीलनम्। दक्षिणापथे वेसरा न सन्तीत्यदृष्टदेशाः। सादिनो

रसोड़े आगे ही भेज दिये गये थे, ध्वजाएँ लिए हुए पुरुष आगे-आगे दौड़ रहे थे, भरे कुटीर के बीच से निकलते हुए सैनिक अपने प्रियजनों से मिल रहे थे, हाथियों ने मार्ग के छोटे-छोटे घरों को अपने पांवों से रौंद डाला तो लोग उठ उठकर हाथीवानों को ढेलों से मारने लगे और वे बेचारे पास के लोगों को गवाह बनाकर संतोष कर लेते थे, फूस की झोपड़ियाँ इसी धकमधक्के में तितर-बितर हो गई तथा उसमें निवास करने वाली छोटी गृहस्थियाँ जान लेकर भागीं, माल से लदे हुए बैल जब कोलाहल के कारण बिदकने लगे तो बनिये चिन्ता में पड़ गये, अन्तःपुर की महिलाएँ हथिनियों पर बैठकर निकलीं जिनके सामने मशाल लेकर लोग चल रहे थे तथा एवं उन लोगों के इशारे से लोग रास्ता छोड़कर अलग हो जाते थे, घुड़सवार पीछे छूटे हुए अपने कुत्तों को पुकारने लगे, तंगण देश के ऊँचे घोड़े इस प्रकार तेज चल रहे थे कि उनकी पीठ बिल्कुल नहीं हिल रही थी और उन पर आराम से सवार हुए खक्खट (वृद्ध) क्षत्रिय उनकी तारीफ कर रहे थे, खच्चरों पर कष्टपूर्वक बैठे हुए दक्खिनी सवार फिसल से रहे थे, चारों ओर धूल भर जाने से कुछ दिखाई नहीं पड़ता था, हथिनियों पर सवार होकर देश-देश के राजा आने लगे, हाथीवानों द्वारा रक्खे गये हौदा की सोने की पत्र रचनाओं से उनके धनुष विविध रंगों वाले हो रहे थे, उनके मध्य खड्ग धारण किये स्वजन लोग बैठे थे, ताम्बूलिक उन्हें चँवर झल रहे थे, हाथियों

पश्चिमासनिकार्पितभस्त्राभरणाभिन्दिपालपूलिकैः, पत्रलताकुटिलकलधौतनलकपल्लवितपर्याणैः, पर्याणपक्षपरिक्षेपपट्टिकाबन्धनिश्चलपट्टोपधानस्थिरावस्थानैः, प्रचलपादफलिकाफालनस्फायमानपदबन्धमणिशिलाशब्दैः, उच्चित्रनेत्रसुकुमारस्वस्थानस्थगितजङ्घाकाण्डैश्च कार्दमिकपटकल्माषितपिशङ्गपिङ्गैः, अलिनीलमसृणसतुलासमुत्पादितसितसमायोगपरभागैश्चावदातदेहवर्णविराजमानराजावर्तमेचकैः, कञ्चुकैश्चापचितचीनचोलकैश्च तारमुक्तास्तबकिनस्तवरकवारबाणैश्च नानाकषायकर्बुरकूर्पासकैश्च शुक-

ऽश्वारोहाः। भस्त्राभरणं तूणभेदः। भिन्दिपालः शरभेदः। तोमर इत्यन्ये। पक्षकः प्रान्तः, पार्श्वो वा। परिक्षेपो वेष्टनम्। पादफलिका उभयपार्श्वयोः पर्याणे या क्रियते। आगुल्फ पादत्राणमित्यन्ये। आस्फालनं चालनम्। स्फायमानो वर्धमानः। पादबन्धः पादकटकः। नेत्रं पटविशेषः। स्वस्थानं स्वस्थानेति यस्याः प्रसिद्धिः। कार्दमिकं कर्दमेन रक्तम्। कल्माषिताः शबलिताः। पिशङ्गा लोहिताः। पिङ्गा जङ्घिका। अन्ये जङ्घालेत्याहुः। सतुला अर्धजङ्घिका इत्यन्ये। अर्धजङ्घालेत्याहुः। समायोगो व्यापृतकेषु प्रसिद्धः। परभागो वर्णस्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः। राजावर्तः कृष्णपाषाणः। मेचको बर्हिकण्ठवर्णः। 'कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री'। अपचितं परिहि-

के पीछे की ओर बैठे हुए परिचारक चमड़े के बने हुए विशेष प्रकार के तरकशों में भरे हुए छोटे हल्के भालों के मुट्ठे लिए हुए थे घुड़सवारों के पलानों में आगे-पीछे उठे हुए सोने के नलकों में पत्रलता के कटाव बने हुए थे, पलान के पार्श्व भाग में लम्बी पट्टी से घुमाकर बंधे होने से निश्चल बिछे हुए पट्टे के तकियों का सहारा लिये हुए वे स्थिर होकर बैठे हुए थे, पलान के दोनों ओर लटक रही रकाबों में उनके पैर जब एक दूसरे से टकराते थे तो रकाबों की खनखन आवाज होने लगती थी, नेत्र-संज्ञक रेशमी कपड़े से निर्मित फूल पत्तीदार पायजामों से उनकी जङ्घाएँ ढँकी हुई थीं, कर्दम के रंग से रंगी हुई कथीह लिये लाल रंग की उनकी सलवार थी, भौंरे के समान गहरे नीले रंग के जाँघिये, जिनमें उजली पट्टियों का जोड डालने के कारण उनकी शोभा और बढ़ गई थी, पहने थे, कुछ अपने गोरे वर्ण वाले शरीर पर लाजबर्दी नीले रंग के कंचुक पहने थे, कुछ ने चीन देश का (रेशमी) कंचूक पहन रखा था, कुछ ने वारबाण नामक कंचुक जैसी पोशाक पहन रखी थी जो सितारों से टँके मोतियों के झुग्गों से सुशोभित हो रही थी, कुछ विविध रंगों से रंगे जाने के कारण चितकबरे कूर्पासक पहने

पिच्छच्छायाच्छादनैश्च व्यायामोल्लुप्तपार्श्वप्रविष्टचारुशस्त्रैश्च गतिवशवेल्लितहारलतागलल्लोलकुण्डलोन्मोचनप्रधावितपरिजनैः, चामीकरपत्राङ्कुरकर्णपूरकविघट्टमानवाचालबालपाशैश्चोष्णीषपट्टावष्टब्धकर्णोत्पलनालैश्च कुङ्कुमरागकोमलोत्तरीयान्तरितोत्तमाङ्गैश्च चूडामणिखण्डखचितक्षौमखोलैश्च मायूरातपत्रायमाणशेखरपट्पदपटलैश्च मार्गागतशारिकशारिवाहवेगदण्डैः, पुनश्च श्लक्ष्णचामरकिर्मीरकादरङ्गचर्ममण्डलमण्डनोड्डीयमानचटुलडामरचारभटभरितभुवनान्तरैः, आस्कन्दत्काम्बोजवाजिशतशिञ्जानजातरूपायानरवमुखरितदिङ्मुखैश्च निर्दयप्रहतलम्बा-

तम्, पूजितं वा । 'चायृपूजानिशामनयोः' इत्यस्यापचितश्चेति निपातना यूपम् । ताराः शुद्धाः । स्तबकिताः संजातपुष्पनिकुरम्बाकाराः । स्तवरको वस्त्रभेदः । वारबाणः कञ्चुकः । कर्बुरः कपोतकण्ठवर्णः । कूर्पासकाश्चोलकाः । पिच्छानि पक्षाः । आच्छादनमुत्तरीयम् । उल्लप्तस्तनूकृतः । शस्त्रं पट्टिकाडोरः । कटिसूत्रमित्यर्थः । वेल्लिताश्चालिताः । कर्णाभरणभेदा बालपाशः । कोमलं संछायम् । अन्तरितमाच्छादितम् । खोलः शिरस्त्रम् । मायूरातपत्रायमाणम् । वेगदण्डस्तरुणो हस्ती । किर्मीराणि शबलानि । कार्दरङ्गकानि कार्दरङ्गदेशोद्भवानि । बहुसुवर्णसूत्ररचितानि चर्माणि । स्फोटकाः स्निग्धवर्णमांसस्फाराणि कार्दरङ्गचर्माणि । डामरा उद्भटाः । चारभटाः शूराः । आस्कन्दन्तश्चलन्तः । काम्बोजा बाह्लीकदेशजाः । आयानमश्वभूषणम् । लम्बापटहाः पटहभेदाः । 'तथिला' इति प्रसिद्धाः ।

हुए थे,कुछ राजाओं के शरीर पर सुगा पंखी रंग का झलक देने वाले आच्छादनक नामक कपड़े थ, व्यायाम करने के कारण पतले उनक कटिप्रदेश में पेटियाँ बँधी हुई थीं, तेज चाल से चलने के कारण डोलती हुई उनकी हार लताओं में चञ्चल कुण्डल को फँसे देखकर छुड़ाने के लिए परिजन दौड़ पड़ते थे, सुवर्ण के पत्राङ्कुरों वाले उनके कर्णपूर से कानों की बालों टकरा कर आवाज करती थी, उन्होंने पगड़ियों म अपने कर्णोत्पल के नाल खोंस लिए थे, कुछ के सिर केसरिया रग के मुलायम उत्तरीयों से ढँके थे जिनमे चूड़ामणि के टुकड़े टँके हुए थे, मोरपङ्ख स बने उनके सिर के शेखर पर भौंरे मँड़रा रहे थे, रंग-बिरंगा फूलों से ढके हुए वरुण हाथी पर सवार होकर राजा लोग पहुंचे हुए थे, उद्भट शूर-वीर हाथों में चमचमाती हुई छोटी-छोटी चौरियों से युक्त कार्दरंग चमड़े से निर्मित ढाल लिये हुए भुवनभाग को पूरित करने लगे, सैंकड़ों कम्बोजदेशीय घोड़ों के झंकृत होते

पटहशतपटुरवबधिरीकृतश्रवणविवरैः, उद्घोष्यमाणनामभिः, उन्मुखपादातप्रतिपाल्यमानाज्ञप्तौ राजाभिरापूरे राजद्वारम्।

उदिते च भगवति दिनकृति राज्ञः समायोगग्रहणसमयशंसी सस्वान संज्ञाशङ्खो मुहुर्मुहुः। अथ न चिरादिव प्रथमप्रयाण एव दिग्विजयाय दिग्गजसमागममिव गमनविलोलकर्णतालदोलाविलासैः कुर्वाणया करेणुकया सिद्धयात्रयोह्यमानः, वैदूर्यदण्डविकटेनोपरि प्रत्युप्तपद्मरागखण्डमयूखखचिततया सूर्योदयदर्शनकोपादिव लोहितायतया ध्रियमाणेन मङ्गलातपत्रेण कदलीगर्भाभ्यधिकम्रदिम्ना नवनेत्रनिर्मितेन द्वितीय इव भोगिनाअधिपतिरङ्गलग्नेन कञ्चुकेनामृतमथनदिवस इव क्षीरोदफेनपटलधवलाम्बरवाही, बाल एव पारिजातपादप इवाखण्डलभूमिमारूढः, विधूयमानचामरमरुद्विधूतकर्णपूरकुसुममञ्जरीरजसा सकलभुवनवशीकरणचूर्णेनेव

संज्ञा संकेतः। अथेत्यादौ। दिग्विजाय निर्जगाम नरपतिरिति सम्बन्धः। मङ्गलातपत्रेण कञ्चुकेन। ननूत्प्रेक्ष्यते द्वितीय इव भोगिनामीश इति योजना। यद्वा

हुए आघान नामक आभूषण दिशाओं को शब्दायमान कर रहे थे, तड़ातड़ बजाये जाने वाले सैकड़ों नगाड़ों की कर्कश आवाज कानों को बहरा बनाये डाल रही थी, राजाओं के नाम पुकारे जा रहे थे, पैदल सैनिक (हाथी पर सवार) राजाओं की आज्ञा को उन्मुख हो सुनकर पालन में लग रहे थे, इस प्रकार राजाओं से राजद्वार भरा हुआ था।

भगवान् सूर्य के उदित होने पर समायोग-ग्रहण (सेनाओं के व्यूहबद्ध प्रदर्शन) के समय का सूचक संज्ञा शङ्ख बार-बार बज उठा। तब कुछ ही देर बाद दिग्विजय के लिए पहली बार सैनिक-कूच के समय ही यात्रा के लिए सिद्ध हथिनी पर, जो चलते हुए कर्णतालों के विलास से मानो दिग्गज के साथ समागम कर रही थी, सवार होकर जिनके मस्तक पर बिल्लौर के दण्डवाला जड़े हुए पद्मराग की किरणों से खचित मङ्गल छत्र ऐसा लग रहा था मानो सूर्य का उदय देखकर क्रोध से तमतमा उठा हो, केले के गाभे से भी अधिक मुलायम रेशम (नेत्र) से बने हुए कंचुक से जो दूसरे शेषनाग के समान प्रतीत हो रहे थे, क्षीरोदक नामक उजले कपड़े को धारण करने के कारण जो अमृतमन्थनदिवस के सदृश प्रतीत हो रहे थे, पारिजात नामक वृक्ष के सदृश जो कम आयु में ही मानो इन्द्र पदवी पर आरुढ़ हो चुके थे, समस्त संसार को वश में करने वाले

दिशश्छुरयन्नभिमुखचूडामणिघटमानपाटलप्रतिबिम्बमुदयमानं सवितारमपि पिबन्निव तेजसा बहलताम्बूलसिन्दूरच्छुरितया विलम्बमान इव द्वीपान्तराण्योष्ठमुद्रयानुरागस्य स्फुरन्महाहारमरीचिचक्रवालानि चामराणीव दिशोऽपि ग्राहयन्, राजकेक्षणोत्क्षिप्ताग्रभागया त्रीनपि लोकान् करदानाय्याज्ञापयन्निव सविभ्रमं भ्रूलतया द्राघीयसा बाहुप्राकारेण परिक्षिपन्निव रिरक्षया सप्तापि सागरमहाखातानखिलमिव क्षीरोदमाधुर्यमादायोद्गतया लक्ष्म्या समुपगूढः, गाढममृतमय इव पीयमानः कुतूहलोत्तानकटकलोकलोचनसहस्रैः स्नेहार्द्रेषु राज्ञां हृदयेषु गुणगौरवेण मज्जन्निव, लिम्पन्निव सौभाग्यद्रवेण द्रष्टॄणाममरपतिरिवाग्रजवधकलङ्कप्रक्षालनाकुलः, पृथु-

मञ्जुलातपत्रेणेति इत्थं भूतलक्षणे तृतीया। अम्बरं वस्त्रम्, नभश्च। विलम्बमानोऽभिसात्कुर्वन्। मुद्रया हि ससिन्दूरया विलम्ब्यते। परिक्षिपन्वेष्टयन्। अग्रजो

(वशीकरण) चूर्ण के सदृश कर्णपूर के रूप में जिनके कान में लगी हुई पुष्पमञ्जरी का पराग झले जाते हुए चँवर की हवा से दिशाओं में उड़ने लगा, जिसका लाल मण्डल सामने उनकी चूड़ामणि में प्रतिबिम्बित हो रहा था ऐसे उगते हुए सूर्य को जो मानो अपने तेज से पीते जा रहे थे, जो अधिक ताम्बूल की सिन्दूरी लाली से युक्त अपनी ओष्ठ-मुद्रा से मानो अन्य द्वीपों का अनुराग अर्पित कर रहे थे (प्राचीन काल में सिन्दूर से मुद्रित करके वस्तुएँ दी जाती थीं), जिनके लम्बे हार की किरणें इस प्रकार फैल रही थी मानो वे दिशाओं के हाथों में चँवर पकड़ा रहे थे, राजसमूह को देखने के लिए तिरछी हुई अपनी भौहों से जो मानो तीनों लोकों को करदान की आज्ञा दे रहे थे, अपने भुजदण्डों के विशाल प्राकार से जिन्होंने मानो सातों समुद्रों की रक्षा के लिए परकोटा खींच दिया था, क्षीरसागर की सम्पूर्ण माधुर्य लेकर प्रकट हुई लक्ष्मी जिनका मानो आलिङ्गन कर रही थी, कटक के लोगों की उत्सुकतावश उठी हुई हजारों आँखें जिनका इस प्रकार पान कर रही थी मानो वे अमृतमय हों, जो स्नेहपूर्वक अच्छे राजाओं के हृदय में अपने गुणों की गरिमा से मानो डुबकी लगा रहे थे, जो देखने वालों के अङ्गों के मानो सौभाग्य के द्रव का लेप कर रहे थे, जो बड़े भाई की हत्या के कारण उत्पन्न कलङ्क को मिटाने के लिए मानो इन्द्र के सदृश बेचैन थे (अग्रज अर्थात् ब्राह्मण का वध करने से इन्द्र भी कलङ्कित थे), पृथु के सदृश जिनके चारों ओर

रिव पृथिवीपरिशोधनावधानसंकलितसकलमहीभृत्समुत्सारणः, पुरःसरैरालोकाकारकैः सहस्रसंख्यैरर्क इव किरणैरधिकारचातुर्यचञ्चलचरणैर्व्यवस्थास्थापननिष्ठुरैः भयपलायमानलोकोत्पीडान्तरिता दशापि दिशो ग्राहयद्भिरिव, चलितकदलिकासंपातपीतप्रचारं पवनमपि विनये स्थापयद्भिरिव, द्रुतचरणोद्धूतधूलिपटलावधूतान् दिनकरकिरणानप्युत्सारयद्भिरिव, कनकवेत्रलतालोकविक्षिप्यमाणं दिनमपि दूरीकुर्वद्भिरिव, दण्डिभिरितस्ततः समुत्सार्यमाणजनसमूहो निर्जगाम नरपतिः।

अवनमति च विनयनमितवपुषि, भयचकितमनसि, चलनशिथिलमणिकनकमुकुटकिरणनिकरपरिकररुचिराशिरसि, विलुलितकुसुमशेखर-

ज्येष्ठः राज्यवर्धनः, द्विजश्च। पुरा ब्रह्मणः किल सुताऽसुरपक्षपाती त्रिशिरास्तद्भ्राता च वृत्रस्तौ तपस्यन्तौ शक्रेण हताविति प्रथा। महीभृतो राजानः, पर्वताश्च। पृथुना ह्यद्रयो भूमिमास्तीर्य स्थिताश्चापकोट्या समुत्सार्यन्ते प्रक्षिप्ताः। लोका इत्येवं ये वदन्ति ते आलोककारकाः, तैः, अन्यत्रालोकः प्रकाशः। पुरःसरैः सहस्रसंख्यैरिति च साधारणम्। दिशो ग्राहयद्भिः पर्यन्तेषु च विसर्जयद्भिः।

अवकाशमण्डल बनाने के काम में संलग्न राजा लोग भीड़ को हटा रहे थे (थिवी को छेककर पड़े हुए पर्वतों को राजा पृथु ने धनुष के किनारे से उठाकर दूर फेंक दिया था।), जैसे हजारों किरणें सूर्य के आगे-आगे चलती हैं उसी प्रकार जिनके आगे-आगे आलोक शब्द (जयशब्द) का उच्चारण करते हुए दण्डधारी पुरुष लोगों की भीड़ को हटाते हुए चल रहे थे जिन पुरुषों के पैर अधिकार मिलने से उत्पन्न चतुराई के कारण चंचल थे, जो व्यवस्था करने में कठोरता से काम लेते थे, भय के कारण भागे हुए लोगों से छिपी हुई दस दिशाओं को भी जो मानों पकड़वा लेते थे, जो फहराती हुई पताकाओं को गिरे देने से अवरुद्ध गतिवाले वायु को भी मानो विनम्रता की शिक्षा दे रहे थे, जो चंचल पैरों से धूल उड़ाकर मानो सूर्य की किरणों का भी उपेक्षा के साथ उत्सारण कर रहे थे तथा सोने की वेत्रलताओं के प्रकाश से मानो दिन को भी दूर फेंक रहे थे, ऐसे दण्डधारी पुरुष जिसके आगे-आगे चल रहे थे, ऐसे राजा हर्ष बाहर निकले।

उनके बाहर आते ही राजा लोग प्रणाम करने लगे। विनम्रता के कारण उनका शरीर झुक गया। उनके मन में भय तथा आश्चर्य दोनों ही समा गये। झुकने के कारण स्वर्णनिर्मित मुकुट की खिसकती हुई मणियों की किरणें उनके

रजसि राजचक्रे, प्रभामुचां चूडामणीनामवाञ्चस्तिर्यञ्च उदञ्चश्च चञ्चन्तो मरीचयश्चापराशय इव सुशकुनसंपादनाय चेलुः। मेघायमानरेणमेदुरं मन्दिरशिखण्डिन इव खमुड्डीयमानाः कोमलकल्पपादपपल्लववन्दनमालाः कलापा इवाबध्यन्त दिग्द्वारेषु दिक्पालैः। प्रणम्यमानश्च नेत्रविभागैश्च कटाक्षैश्च समग्रक्षितैर्भ्रूविक्षितैश्चार्धस्मितैश्च परिहासैश्च छेकालापैश्च कुशलप्रश्नैश्च प्रतिप्रणामैश्चोन्मत्तभ्रूवीक्षितैश्चाज्ञानदानैश्चाक्रीणन्निव मानमयान् प्राणान् प्रणयदानैः प्रवीराणां वीरो यथानुरूपं विबभाज राजकम्।

अथ प्रस्थिते राजनि बहलकलकलभयभीतदिङ्नागशूत्काररव इवेतस्ततस्तस्तार तारतरस्तूर्याणां प्रतिध्वनिराशातटेषु। दिग्गजेभ्यः प्रकुपितानां

उदञ्च ऊर्ध्वप्रसारिणः। चापराशय इवेत्याद्युत्प्रेक्षात्रयं समीचीनम्। उड्डीयन्तः प्रसृताः कटाक्षैरपाङ्गदृष्टैः। भ्रूवञ्चितैर्भ्रूचलितैः। 'भ्रुवाञ्चतैः' इति पाठे उन्नतैकभ्रूक्षिप्तैरित्यर्थः। छेकालापैर्वक्रोक्तिभिः छेकान्तरान्तरा वा।

तस्तारेति। विस्तृतोऽभवत्। त्रिप्रस्रुतानां त्रिषु गण्डादिषु मदमुचाम्।

मस्तक सुन्दर लगते थे। उनके मस्तक के कुसुमशेखर से पराग झड़ गया। चमकदार चूड़ामणियों के नीचे, आस-पास में तथा ऊपर की ओर फैलती हुई किरणें बाणों के समान शकुन करने के लिए चल पड़ीं। बादल के सदृश मँडराती हुई धूल से भरे आकाश में गृहमयूरों की तरह उड़ी हुई चूड़ामणियों की रश्मियाँ मानो दिशाओं के द्वारों पर कल्पवृक्ष की वन्दनवार के रूप में दिक्पालों द्वारा बाँध दी गईं। प्रणाम करते हुए किसी को तिहाई खुले हुए नेत्रों की दृष्टि से, किसी को कटाक्ष या अपांग दृष्टि से, किसी को पूरी दृष्टि या भरपूर नजरों से देखकर किसी को उससे भी अधिक ध्यानपूर्वक इस प्रकार देखते हुए जिसमें भौंहे खिंच जाती हैं, किसी को थोड़ी सी मुस्कराहट के साथ किसी को उससे अधिक सुख की प्रसन्नता के साथ, किसी को चातुर्यपूर्ण शब्दों के साथ, किसी को कुशलवार्त्ता पूछकर किसी को प्रणाम के उत्तर में स्वयं प्रणाम करके, किसी को उन्मत्त भ्रू-सहित दृष्टिपात से और किसी को आज्ञा देकर अपने प्रणय का दान करके उनके मानभरी प्राणों को मानो सम्राट मोल ले रहे थे, इस प्रकार वीरों के वीर सम्राट् ने राज-समूह को योग्यतानुसार विभक्त किया।

तब राजा हर्ष के प्रस्थान करने पर (सेना के) बहुत अधिक कोलाहल से मानो डरे हुए दिग्गजों की चिग्घाड़ हो ऐसी तूर्यनामक वाद्यों की ऊँची प्रतिध्वनि इधर-उधर दिशाओं में फैल गई। दिग्गजों पर क्रुद्ध तीन स्थानों (कुम्भ, कपोल

त्रिप्रस्रुतानां करिणां मदप्रस्रवणवीथीभिरलिकुलकालीभिः कालिन्दीवेणिकासहस्राणीव सस्यन्दिरे। सिन्दूररेणुराशिभिररुणायमानबिम्बे रवावस्तमयसमयं शशङ्किरे शकुनयः। करिणां षट्पदकोलाहलमांसलैः कर्णतालनिःस्वनैस्तिरोदधिरे दुन्दुभिध्वनयः। दोधूयमानश्च सचराचरमाचचाम चामरसंघातो विश्वम्। अश्वायश्वासनिक्षिप्तैः शिश्विन्दे सितसिन्धुवारदामशुचिभिर्निन्तरमन्तरिक्षं फेनपिण्डैः। पिण्डीभूततगरस्तवकपाण्डुराणि पपुरिव परस्परसंघट्टनष्टाष्टदिशं दिवसमुच्चचामीकरदण्डाण्यातपत्रवनानि। रजोरजनीनिमीलितो मुकुटमणिशिलाबालातपेन विचकास वासरः। राजतैर्हिरण्मयैश्च मण्डनकभाण्डमण्डलैर्ह्लादमानैर्हरितीकृताः परिह्लादा हरितो बधिरतां दधुः। अरिप्रतापानलनिर्मलनायेव मदोद्भमशीकरैः शिशेकिरे करिणः ककुभां चक्रम्। चक्षुषामुन्मेषं मुमुषुस्तडिच्चञ्चलानि चूडामणीनामर्चींषि। स्वयमपि विस्मयमये बलानां भूपालः सर्वतोविक्षिप्तचक्षुश्चाद्राक्षीदावासस्थानसकाशात् प्रतिष्ठमानं स्कन्धावारम्,

---

तथा सूंड़) से मद बहाने वाले हाथियों की भौंरों के कारण काले रंग की मद बहने की वीथिलों में मानो यमुना की हजारों धाराएँ फूट पड़ीं। (हाथियों के मस्तक की) सिन्दूर धूलि से मानो सूर्य का बिम्ब लाल हो गया जिससे पक्षी सायङ्काल की शङ्का करने लगे। भ्रमरों की गुंजार से युक्त हाथियों के कर्णतालों की फट-फट ध्वनि से दुन्दुभि की आवाज गायब हो गई। झले जाते हुए चामरों ने मानो चराचर के साथ सब को ढँक लिया हो। घोड़ों की श्वास से उड़े हुए, उजले सिन्धुवार पुष्प की मालाओं के सदृश मुख के फेन आकाश को उजला बनाने लगे। इकट्ठे किये गये तगगड़ के फूलों के समान उज्जवल, ऊँचे सुवर्ण दण्ड से शोभित छत्र-समूह एक में एक जुड़े हुए दिशाओं को इस प्रकार ढँक रहे थे मानो दिन को ही पी चुके हों। धूल की रात्रि के कारण छिपा हुआ दिन राजाओं के मुकुटों की मणियों के बाला तप से खिल उठा। घोड़ों के चाँदी तथा सोने से बने हुए आभूषणों की खनखनाहट से दिशाएँ भर गईं। हाथियों ने शत्रु की फैली हुई प्रतापाग्नि को माना बुझाने के लिए अपने मदजल के फुहारों दिशाओं को सींच दिया। बिजली की भाँति चञ्चल चूड़ामणियों की चकमक किरणें पलक उठाये नहीं देती थीं। स्वयं राजा ने अपनी सेना पर विस्मय

अधोक्षजकुक्षेरिव युगादौ निष्पतन्तं जीवलोकम्, अम्भोनिधिमिव कुम्भभुवो वदनात् प्लावितभुवनमुद्भवन्तम्, अर्जुनबाहुदण्डसहस्रसंपिण्डितोन्मुक्तमिव सहस्रधा प्रवर्तमानं प्रवाहं नर्मदायाः। 'प्रसर तात। भाव, किं विलम्बसे? लङ्घति तरङ्गमः। भद्र, भग्नचरण इव संचरसि यावदमी पुरःसराः सरभसमुपरि पतन्ति। वाहयसि किमुष्ट्रम्? न पश्यसि निर्दय, निःशूकशिशुकं शयानम्? वत्स रामिल, रजसि, यथा न नश्यसि तथा समीपे भव, किं न पश्यसि गलति शक्तुप्रसेवकः? किमेवमित्वर, त्वरसे। सौरभेय, सरणिमपहाय हयमध्यं धावसि? धीवरि, विशसि, गन्तुकामा मातङ्गि, मातङ्गमार्गम्। अङ्ग, गलति तिरश्चीना चणकगोणी। गणयसि न मामारटन्तम्? अवटमतटेनावतरसि। सुखमास्स्व स्वैरिणि। सौवी-

शकुनयोऽत्र चक्रवालाः। मण्डनकमायानम्। 'स्याद्भाण्डमश्वाभरणे'। अधोक्षजो हरिः कुम्भभवोऽगस्त्यश्च। प्लावितभुवनं स्कन्धवारम्, नर्मदाप्रवाहं च। पूर्वं कार्तवीर्येणान्तःपुरैः सह रेवातीरे विहरता तत्स्रोतो भुजसहस्रेणोभयतो वृत्वा त्यक्तमभूत्। प्रसरतेत्येवमादिप्रवर्तमानानेकसंलापनमिति स्कन्धावारविशेषणम्। तातेति। भावेति च। मान्यामन्त्रणम्। लसति गलति। प्रसेवको भस्त्राभरणमित्यन्ये। इत्वरो गमनशीलः। सौरभेयो दान्तः। अङ्गेति इष्टामन्त्रणम्। अवटं श्वभ्रम्। अतटेनामा-

किया और युगारम्भ में विष्णु की कुक्षि से निकलते हुए जीव लोक की भाँति, अगस्त्य के मुख से संसार को प्लावित करने वाले समुद्र की भाँति और सहस्रार्जुन की भुजाओं से छूटकर हजारों रूपों में बहते हुए नर्मदा के प्रवाह की भाँति राजद्वार के नजदीक से प्रस्थान करते हुए स्कन्धावार को देखा। "आगे बढ़ो! भाई देर क्यों कर रहे हो? घोड़ा भाग रहा है। भलेमानस, अभी टूटे हुए पाँववाले के समान रेंग रहे हो और ये आगे वाले लोग हमारे ऊपर गिरे पड़ते हैं। क्या ऊँट को चला रहे हो? अरे निर्दय, सोये हुए निरीह बच्चे को नहीं देख रहे हो? वत्स रामिल, धूल में कहीं गायब न हो जाओ इसलिए नजदीक ही रहो। देखते नहीं क्यों कि (फटे थैले से) सत्तू गिर रहा है? अरे चालू, ऐसी हड़बड़ी क्यों कर रहे हो? अबे बैल, लीक छोड़कर घोड़ों के बीच भागा जाता है? अरी धीवरी, कहाँ घुसी पड़ती है? अरी हथिनी की बच्ची, हाथियों में जाना चाहती है? वाह, चने की बोरी टेढ़ी होकर झर रही है, अरे मैं कब से चिल्ला रहा हूँ, तू नहीं सुनता, अरे गड्ढे में गिरेगा क्या? अरी मनमौजी

रकं, कुम्भो भग्नः। मन्थरक खादिष्यसि गतः सन्निक्षुम्। उक्षाणं प्रसादय। कियच्चिरमुच्चिनोषि चेट, बदराणि? दूरं गन्तव्यम्। किमद्यैव विद्रासि द्रोणक, द्राघीयसी दण्डयात्रा, विनैकेन निष्ठुरकेण निष्क्रेयमस्माकम्। अग्रतः पन्थाः स्थपुटक, स्थावर, यथा न भनक्षि फाणितस्थालीं, गरीयान् गण्डकतण्डुलभारको न निर्वहति दम्यः। दासक, माषीणाममुतो द्राग्दात्रेण मुखघासपूलकं लुनीहि। को जानाति यवसगतं गतानाम्। धव, वारय बलीवर्दान्। वाहीकरक्षितं क्षेत्रमिदम्। लम्बिता शकटी। शाक्वरं धुरंधरं धुरि धवलं नियुङ्क्ष्व। यक्षपालित, प्रमदाः पिनक्षि। अक्षिणी किं ते स्फुटिते। हत हास्तिपक, नेदीयसि करिकरदण्डे समदः संमर्दकर्दमे स्खलसि। भ्रातर्भावविधुरबन्धो, उद्धर पङ्कादनड्वाहम्। इत

गेण। स्वैरिणि स्वतन्त्रे। 'स्वादीरेरिणोः' इति वृद्धिः। सौवीरिकं काञ्जिकम्। विद्रासि लङ्घसि। निष्ठा श्लेषः। स्थपुटो निम्नोन्नतः, विषम इत्यन्ये। फाणितमक्षुविकारा गुड इति प्रसिद्धः। दम्यो दान्तः। माषाणां भवनं क्षेत्रम्। 'धन्यानां भवने क्षेत्रे खञ्'। किञ्चिन्मात्रं बुभुक्षानिवृत्तये। घासो मुखघासः। यवसं घासः। उक्तं च 'शष्पं बालतृणं घासो यवसम्' इति। धवः पुरुषः। वाहीकः काष्ठकः, परिपालक इत्यन्ये, गोरक्षक इति चान्ये। लम्बिता मार्गमाक्रान्तुं न शक्नोति। शाक्वरं शूरम्। तरुणं वा धवलं महोक्षम्। नेदीयसि करदण्डेऽन्य-

आराम से बैठ। अरे सौवीरक (तेरा) घड़ा तो फूट गया। अरे मन्थरक, पड़ाव पर पहुँच कर ही ईख खाना। बैल को सँभाल। अरे चेट, कब तक बेर चुनता रहेगा? दूर जाना है। अरे द्रोणक, आज ही क्यों ऊब गया? अभी तो सेना की यात्रा लम्बी पड़ी है। एक निष्ठुर व्यक्ति के बिना यह यात्रा स्थगित पड़ गई है। अरे स्थपुटक, आगे रास्ता है अरे स्थावर, खाँड़ की थाली को फोड़ मत देना, चावल का बोरा भारी है बैल का नहीं। अबे टहलुवे, सामने उड़द के खेत से एक घास की एक पूली दाँत से जल्दी काट ले। कौन जाने, यात्रा में चारे की क्या व्यवस्था होगी? यार, बैलों को अलगाए रहो, इस खेत के रखवाले हैं। सगड़, गाड़ी में ओलार पड़ता है, तगड़ा धौला बैल उसमें जोड़ो। अबे पगले, औरतों को पीस डालेगा क्या? तेरी आँखें फूटी हुई हैं क्या? धत्तेरे हस्ति पद की, मेरे हाथी की सूँड़ पर चढ़ा हुआ खिलवाड़ कर रहा है और धक्का मुक्की खाकर कीचड़ में गिर रहा है। रे भाई, दुखियों के साथी, कीचड़ में फँसे हुए

एहि माणवक, घनेभघटासंघट्टसंकटे नास्ति निस्तरणसरणिः।' इत्येवमादिप्रवर्तमानानेकसंलापं क्वचित् स्वेच्छामृदितोद्दामसस्यघासविघसमुखसंपन्नान्नपुष्टैः केलिकलैः किलकिलायमानैर्मेण्ठवण्ठवठरलम्बनलेशिकलुण्ठकचेटशाटचण्डालमण्डलैराण्डीरैः स्तूयमानम्, क्वचिदसहायैः क्लेशार्जितकुग्रामकटुम्बिसंपादितसीदत्सौरभेयशम्बलसंवाहनायासावेगागतसंयोगैः स्वयं गृहीतगृहोपस्करणैः 'इयमेका कथञ्चिद्दण्डयात्रा यातु। यातु पातालतलं तृष्णा भूतेरभवनिः। भवतु शिवम्। सेवां करोतु। स्वस्ति सर्वदुःखकूटाय

हस्तसम्बन्धिनि सति। कश्चिं समदोऽर्थात्संपन्नः। स्वेच्छयानायासेन। मृदितानि क्षुण्णानि। उद्दामानि प्रसूतानि सस्यानि। तथा घासो विघसं, तथा विघसो भृत्याद्युपभुक्तशेषमन्नम्, परस्परलुण्ठनं वा, तैः सुखेन संपन्नं यदन्नं तेन सुपुष्टैः। केलिकलाः प्रहसनाः बहुभाषिणो वा। मेण्ठा हस्तिजागरिकाः। वण्ठाः अकृतविवाहास्तरुणाः,ये दण्डमादाय हस्तिनां दर्पमाकर्षमाकर्षयन्ति पत्तय इत्यन्ये। वठरा मूर्खाः। लम्बना गर्दभदासाः। लेशिका जनपरिचारकाः। लुण्ठकाश्चौराः। चेटा दासाः। शाटा धूर्ताः। चण्डाला अश्वपालाः। आण्डीराः प्रगल्भाः। यद्वा राण्डीराः रण्डापुत्राः। संपादितो दत्तः। सीदन्नसमर्थो यः सौरभेयस्तेन शम्बलसंवाहनाय

बैल को निकाल लो। अरे छोकरे, इधर भाग आ, हाथियों के भीड़-भड़क्के में बच निकलने का उपाय नहीं। इस प्रकार शुरु से ही अनेक प्रकार की बीतचीत करते हुए, कहीं पर कटवा कर लायी गई ढेर की ढेर हरी घासों को मोड़कर मनचाहा आहार प्राप्त कर वे लोग सुख से फूल रहे थे तथा खूब हँसी मजाक करके खिलखिला रहे थे। ये लोग नौकर-चाकर थे, जैसे मेंठ (हाथियो की झाड़ पोंछ करने वाला) वंठ (खुँवारे जवान पट्ठे जो डंडा लिये हाथी से भिड़ जाते थे), वठर (उजड्ड), लम्बन (गदहे के समान काम लेने योग्य लद्दू नौकर), लेशिक (घोड़ों के घसियारे) लुंठक (लूटपाट करने वाले), चेट (छोटे नौकर-चाकर), शाट (धूर्त या शठ), चण्डाल (अश्वपाल), आण्डीर (प्रगल्भ)—ये सब यात्रा की प्रशंसा कर रहे थे। कहीं पर बेचारे असहाय बूढ़े कुलपुत्र, जो किसी प्रकार गाँवों से प्राप्त हुए मरियल बैलों पर समान लादकर और स्वयं अपने ऊपर लादकर घिसट रहे थे, बुरी तरह घबड़ा कर कोसने लगे—"बस, किसी प्रकार यह यात्रा पूरी हो जाय, तृष्णा पाताल को चली जाय, धन का सत्यानाश हो, भगवान् बचाये इस नौकरो से, सारी मुसीबतों की जड़

कटकाय' इति दुर्विधवृद्धकुलपुत्रकैर्निन्द्यमानम्, क्वचिदतितीक्ष्णसलिलस्रोतः-पातिनौगतैरिव ग्रथितैरिव पङ्क्तिभृतैर्जनैरतिद्रुतम्, द्रवद्भिः कृष्णकठिन-स्कन्धगुरुलगुडैर्गृहीतसौवर्णपादपीठीकरङ्ककलशपतद्ग्रहावग्राहैः प्रत्या-सन्नपार्थिवोपकरणग्रहणगर्वदुर्वारैः सर्वमेव बहिः कारयद्भिर्भूपतिभृतक-भारिकैर्महानसोपकरणवाहिभिश्च बद्धवराहवर्ध्रवार्ध्रीणसैलम्बमानहारण-चटुकचटकजूटजटिलैः शिशुशशकशाकवत्रवेत्राग्रसंसंग्रहसंग्राहिभिः शुक्लक-र्पटप्रावृतमुखैकदेशदत्तार्द्रमुद्रागुप्तगोरसभाण्डैस्तलककापकतापिकाहस्तकता-

य आयासो योगस्तेन । गतसंयोगैरुत्पन्नवित्तक्षोभैरिति समासः । अभवनिरिति 'आक्रोशे नञ्यनिः' । दुर्विधा दरिद्राः । वृद्धा; स्थविराः । कुलपुत्राः कुलक्रमागताः सेवकास्तैर्निन्द्यमानमिति स्कन्धावारविशेषणम् । क्वचिच्च भृभृद्भारिकैर्महानसोप-करणवाहिभिश्च समुत्सार्यमाणपुरोवर्तिजनमिति स्कन्धावारविशेषणम् । अतितीक्ष्णं वेगवत् । ग्रन्थिर्विद्यते येषां तैः । करकस्ताम्बूलाधारः । पतद्ग्रहो निष्ठीवनपात्रम् । अवग्राहः स्नानद्रोणी । बहिःकारयद्भिर्निरस्यद्भिः । महानसः सूपकारशाला । वराहवर्ध्रं सूकरचर्म । सूकरपाठेति प्रसिद्धम् । वार्ध्रीणसा पक्षियाक्छागविशेषाः । हरिणानां च चटुकाः पूर्वभागाः । जूटः संघः । वेत्राग्राणि वंशाङ्कुराः । तलको-ऽग्निशकटिका । तापकोऽपूपादिकरणस्थानम् । तापिका काकपालिका । यत्र

इस सेना का भला हो ।" कहीं तेजी से बहते हुए जल के प्रवाह में नावों के समान पंक्तिबद्ध होकर एक में एक गूँथे हुए से लोग चल रहे थे । राजाओं के अन्न-पान को ढोने वाले कर्मचारी बाहर निकल रहे थे जो अपने काले तथा मजबूत कंधों पर भारी लट्ठ रखे हुए थे तथा सोने का पादपीठ, पानदान, पानी का कलसा, पीकदान, नहाने की द्रोणी आदि राजाओं के सामान को हेंकड़ी में इठलाते हुए ले चल रहे थे । रसोई की सामग्री को ढोने वाले भारिक (बोझ ढोने वाले नौकर) भी आगे पड़ने वाले लोगों को हटाते हुए चल रहे थे, (जिसमें से कुछ) सूअर के चमड़े की बद्धियों में बकरों को लटकाये हुए, (कुछ) हिरनों के अगले हिस्सों को तथा पक्षियों के ठट्ट के ठट्ट लटकाये हुए, (कुछ) खरगोश के छोटे बच्चे, साग-पात, बाँस के नरम अंकुर संग्रह किये हुए, (कुछ) दूध-दही के वैसे हंडे लिए हुए जिनके मुख पर उजले कपड़े का ढक्कन था तथा एक ओर गीली मिट्टी लगाकर उस पर मुहर मार दी गई थी, चल रहे थे । वे सामान ढोने वाले अंगीठी, तवा, तई, सलाखें, रांधने के लिए तांबे के

अचरुककटाहसंकटपिटकभारिकैः समुत्सार्यमाणपुरोवर्तिजनम्, क्वचित् 'क्लेशोऽस्माकम्। फलकालेऽन्य एव विटाः समुपस्थास्यन्ते' इति मुखरैः पदे पदे पततां दुर्बलबलीवर्दानां नियुक्तैः स्खलने खलचेटकैः खेद्यमानासंविभक्तकुलपुत्रलोकम्, क्वचिन्नरपातदर्शनकुतूहलादुभयतः प्रजवितप्रधावितग्रामेयकजनपदम्, मार्गग्रामनिर्गतैराग्रहारिकजाल्मैश्च पुरःसरजरन्महत्तरोत्तम्भिताम्भःकुम्भैरुपायनीकृतदधिगुडखण्डकुसुमकरण्डकैर्घटितपेटकैः सरभसं समुत्सर्पद्भिः प्रकुपितप्रचण्डदण्डिवित्रासनविद्रुतैर्दूरगतैरपि स्खलद्भिरपि पतद्भिरपि नरेन्द्रनिहितदृष्टिभिरसतोऽपि पूर्वभोगपतिदोषानुद्भावयद्भिरधिकारिकायुक्तकशतानि च शंसद्भिश्चिरंतनचाटापराधाश्चाभिलक्षानैरुद्धूयमानधूलिपटलम्, क्वचिदेकान्तप्रवृत्ताश्ववारचक्रवर्त्य-

---

तैलादिना भक्ष्याः पच्यन्ते। हस्तकः शूलम्। पिटका भाण्डानि। विटा धूर्ताः। समुपस्थास्यन्ति ढौकयिष्यन्ति। पततां स्खलताम्। स्खलने प्रेरणे। नियुक्तैः स्थापितैः। असंविभक्ता अकृताविभागाः। ग्रामे भवा ग्रामेयकाः। 'ग्रामाद्यत्खञौ'। आग्रहारिकजाल्मैर्भुज्यमानसस्यसंरक्षणमिति संगतिः। जाल्मा मूर्खाः। उत्तम्भिता ऊर्ध्वीकृताः। अम्भःकुम्भा जलपूर्णकलशाः, खण्ड इक्षुविकारः, समुत्सर्पद्भिर्ढौकमानैः। वित्रासनं भयोत्पादनम्। आयुक्तका व्यापृतकाः। चाटा धूर्ताः। अपरैराग्रहारिक-

---

बर्तन, कड़ाहों आदि बर्तनों से भर टोकरे लेकर चल रहे थे। कमजोर बैलों को हाँकने के लिए देहाती नौकर कुलपुत्रों पर ताना कसते हुए कह रहे थे—"कष्ट तो हमें हो रहा है किन्तु फल प्राप्ति के समय मंडुए हाजिर हो जायेंगे।" कहीं राजा को देखने की उत्सुकता से गाँव के लोग दोनों ओर वेग से दौड़े आ रहे थे, मार्ग के गाँव से निकले हुए अनपढ़ अग्रहारिक लोग (खेतीबारी की देखभाल करने वाले) आगे-आगे मंगल के लिए गाँव के बड़े-बड़े बुड्ढों के हाथों में पानी के घड़े उठाए आ रहे थे। कुछ लोग दही, गुड़, शक्कर और फूलों की करंडियाँ थैलियों में बन्द करके जल्दी से ला रहे थे। कुछ लोग गुस्साये हुए कठोर लठैतों द्वारा डराये-धमकाये जाने से दूर भागने के कारण गिरते-पड़ते भी राजा पर ही नजर गड़ाये हुए थे, जो पहले के भोगपतियों की झूठी निन्दा कर रहे थे तथा पहले के कर्मचारियों की प्रशंसा कर रहे थे एवं धूर्तों के अपराधों को कह रहे थे, जिनकी दौड़ धूप से चारों ओर धूल भर रही थी, कहीं एकान्त

माणागामिगौडविमृग्यमाणसस्यसंरक्षणम्, अपरैरादिष्टपरिपालकपुरुष-परितुष्टैः 'धर्मः प्रत्यक्षो देवः' इति स्तुतीरातन्वद्भिः अपरैर्लूयमाननिष्पन्न-सस्यप्रकटितविषादैः क्षेत्रशुचा सकुटुम्बकैरेव निर्गतैः प्ररूढप्राणच्छेदैः परितापत्याजितभयैः 'क्व राजा, कुतो राजा ? कीदृशो वा राजा ?' इति प्रारब्धनरनाथनिन्दम्, शशकैश्च कैश्चित्पदे पदे प्रजविप्रचण्डदण्डपाणिपेटकानुबद्धैर्गिरिगुडकैरिव हन्यमानैरितस्ततः संचरद्भिः, अपरैर्युगपत्परापतितमहाजनग्रस्तैस्तिलशो विलुप्यमानैरनेकजन्तुजङ्घान्तरालनिःसरणकुशलिभिः कुटिलिकाव्यंसितसादिबहुश्वभिः पतल्लोष्टलगुडकोणकुठारकीलकुद्दालखनित्रदात्रयष्टिवृष्टिभिरपि निःसरद्भिरायुषो बलात्कृतकलकलम्, अन्यत्र संघशो घासिकैर्बुसधूलिधूसरितघासजालजालकितजघनैश्च पुरा-

जालमैरुपलक्षितमपरैः। प्रारब्धनरनाथनिन्दमिति योजना। निष्पन्नानि पक्वानि। सकुटुम्बैः सदारैः। शशकैः कृतकलकलमित्यन्वयः। अनुबद्धाः अनुसृताः। गिरिगुडकैर्लोष्टैः। कुटिलिकया वक्रगमनेन व्यंसिता वञ्चिताः सादिनामश्ववाराणां बहवः श्वानो यैः। कोणो वादनभाण्डम्। अन्यत्र घासिकैः उद्धूयमानधूलीपटलमिति संबन्धः। संघशो बहुशः। घासे नियुक्ता घासिकाः। घासजालं घासंघातः।

में घुड़सवार चर्चा कर रहे थे कि आने वाला गौडराज किस प्रकार फसल की रक्षा की देखभाल करेगा, दूसरे कुछ लोग सरकारी कर्मचारियों से सन्तुष्ट होकर "महाराज साक्षात् धर्म के अवतार हैं" इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, जिनकी तैयार फसल काट ली गयी थी ऐसे दूसरे कुछ लोग खिन्नता प्रकट करते हुए उसके शोक में अपने कुटम्ब के साथ बाहर निकलकर अपनी जान को हथेली पर रक्खे निर्भय होकर कह रहे थे—"कहाँ है राजा ? किसका राजा ? कैसा राजा ?" इस प्रकार राजा की निन्दा प्रारम्भ कर रहे थे, झाड़ियों में छिपे हुए झुण्ड के झुण्ड खरगोश सेना के कोलाहल के कारण इधर-उधर उचकने लगे तथा लोग तेजी से डंडा लिए हुए उस पर टूट पड़े एवं इस प्रकार उन्हें मारने लगे मानो खेत के ढेले तोड़े जाते हों, कुछ खरगोश अचानक टूट पड़े लोगों के बीच में पड़ जाने से बोटी-बोटी नुच गये, कुछ खरगोश जानवरों के पैरों के बीच से घुसकर भाग निकले और अपनी आड़ी-तिरछी चाल से दौड़कर घुड़सवारों के कुत्तों को धोखा देने लगे, यद्यपि उन पर चारों ओर से ढेले, डंडे, टेढी छड़ी, कुल्हाड़ी, कील, कुदाल, फड़ुआ, दराती तथा लाठी की वर्षा होती रहती थी तथापि आयु के बल से वे बच निकलते थे, एक ओर घसियारे धूल-धक्कड़ करते दौड़ रहे थे जिनकी जंघाओं पर भूसों की धूल से मिश्रित घास भर आयी थी; घोड़े पर

णपर्याणैकदेशदोलायमानदात्रैश्च शीर्णोर्णाशकलशिथिलमलिनमलकुथैः त्र प्रभुप्रसादीकृतपाटितपटच्चरचलच्चोलकधारिभिश्च धावमानैरुद्धूयमानधूलिपटलम्, क्वचिदेकान्तप्रवृत्ताश्वरवारचक्रचर्च्यमानागामिगौडविग्रहम्, क्वचित्पङ्किलप्रदेशपूरणादेशाकुलसकललोकलूयमानतृणपूलकम्, क्वचित्तलवर्तिवेत्रिवेत्रवित्रास्यमानशाखिशिखरगतविक्रोशद्विवादिब्राह्मणम्, क्वचित्कुलुण्ठकपाशविवेष्ट्यमानग्रामीणग्रामाकृष्टकौलेयकम्, क्वचिदन्योन्यविभवस्पर्धोद्धुरराजपुत्रवाह्यमानवाजिसंघट्टमण्डितम्, अनेकवृत्तान्ततया कौतुकजननम्, प्रलयजलधिमिव जगद्ग्रासग्रहणाय प्रवृद्धम्, पातालमिव महाभोगिनां गुप्तये समुत्पादितम्, कैलासमिव परमेश्वरवसतये सृष्टम्, दृश्यमानसकलप्राणिपर्यायं चतुर्युगसर्गकोशमिव प्रजापतीनां क्लेशबहु-

---

एकदेशः पश्चिमा दिक् । 'मलकुथैः' इति पाठः । मलकुथा मलपट्टी छवि(र)रित्यर्थः । अंसोपरिवास इत्यन्ये । पटच्चरं जीर्णवस्त्रम् । कुलुण्ठकाः शुनां बन्धनलगुडाः । उद्धुरा उद्दामप्रसराः । जगतो ग्रहणं स्वीकरणम्, प्लावनं च । भोगिनो भोगवन्तः, सर्पाश्च । परमेश्वरो हरोऽपि । परितः समन्तादायः । आगमनं पर्यायः ।

कसी हुई पुरानी काठी के पीछे की ओर उनके दरांत लटक रहे थे, रद्दी ऊन के टुकडों से जमाये हुए गुदगुदे और मैले नमदे उनके भोड़ों को पीठ पर पड़े हुए थे, महाराज की कृपा के रूप में फटे हुए कपड़े का फीता उनके सिर पर बँधा हुआ हिल रहा था, एक ओर सवारों की टुकड़ी आने वाले गौड़ युद्ध के सम्बन्ध में चर्चा कर रही थी, कहीं कीचड़ वाली भूमि पर पुआल की आँटियाँ बिछाने के आदेश से सारे लोग घास की पूली अलग करने में संलग्न थे; कहीं नीचे खड़े लाठीधारी सैनिकों की लाठियों के भय से उजड्डु ब्राह्मण तुरन्त वृक्षों पर चढ़कर गाली-गलौज कर रहे थे, कहीं ग्रामीण लोग कुत्तों को घसीट कर ला रहे थे जिन्हें कुलुण्ठक (कुत्ते पालने वाले) ने फाँसों में बाँध रखा था; कहीं परस्पर ऐश्वर्य की प्रतिस्पर्धा से राजकुमार लोग घुड़दौड़ मचा रहे थे; अनेक प्रकार के वृत्तान्तों से कौतुक उत्पन्न हो रहा था; मानो वह सेना प्रलयकालीन समुद्र की भाँति संसार को अपना कौर बनाने के लिए चल पड़ी हो; मानो वह महाभोगियों (धनिकों या सर्पों) की रक्षा के लिए पाताल के सदृश हो, मानो वह (सेना) परमेश्वर (महाराज अथवा भगवान् शंकर) के निवास के लिए कैलास की भाँति हो, प्रजापतियों के चारों युगों की सृष्टि के कोश के सदृश सारा प्राणि-

लमपि तपःकरणमिव क्रमकारिणं कल्याणानाम् एवं च वीक्ष्यमाणः कटकं जगाम ।

आसन्नवर्तिनां च 'तत्रभवता मांधात्रा प्रवर्तिताः पन्थानो दिग्विजयाय । अप्रतिहतरथरंहसा रघुणा लघुनैव कालेनाकारि ककुभां प्रसादनम् । शरासनद्वितीयः करदीचकार चक्रं क्रमागतभुजबलाभिजनघनमदावलिप्तानां भूभुजां पाण्डुः । पाण्डवः सव्यसाची चीनविषयमतिक्रम्य राजसूयसंपदे क्रुध्यद्गन्धर्वधनुष्कोटिटांकारकूजितकुञ्जं हेमकूटपर्वतं पराजैष्ट । संकल्पान्तरितो विजयस्तरस्विनाम् । सहिमहिमवद्व्यहितोऽप्युवाह । बाहुबलव्यतिकरकातरः करं कौरवेश्वरस्य किङ्कर इवाकृती द्रुमः । नातिजिगीषवः खलु पूर्वे येनाल्प एव भूभागे भूयांसो भगदत्तदन्तवक्रक्राथकर्णकौरवशिशुपालसल्वजरासंधसिन्धुराजप्रभृतयोऽभवन् भूपतयः ।

आसन्नेत्यादौ । पार्थिवसुतानामित्येवंप्रायानालापाञ्शृण्वन्नेवासमादावासमिति संबन्धः तत्रभवता पूज्येन । सव्यसाची अर्जुनः । पराजैष्ट जिगाय । तरस्विनां पराक्रमवताम् । कौरवेश्वरो दुर्योधनः । अकृती अकृतार्थः । द्रुमाख्यः किन्नरराजः ।

समूह उसमें दृष्टिगोचर हो रहा था, यद्यपि उसमें कष्ट ही कष्ट था किन्तु तपस्या की भाँति अन्त में कल्याण ही करने वाला था । इस प्रकार के कटक (सेना) को देखते हुए महाराज हर्षवर्धन चल पड़े ।

निकटवर्त्ती, बाहुशाली अर्थात् शूर-वीर राजकुमारों की उद्योग को सूचित करने वाली—"माननीय मान्धाता ने दिग्विजय के लिए मार्ग प्रवर्तित किये । अप्रतिहत रथवेग वाले रघु ने थोड़े ही समय में दिशाओं को शान्त कर दिया । धनुर्धारी पाण्डु ने कुल क्रमागत बाहुबल के मद में चूर गर्वीले राजाओं को अपना करदाता बना दिया । पाण्डुतनय अर्जुन ने राजसूययज्ञ की सम्पत्ति के लिए चीन देश पार करके, क्रुद्ध होते हुए गन्धर्वों के धनुष की टंकार से गूँजते हुए वनों वाले हेमकूट पर्वत को जीत लिया । बलवानों की विजय सङ्कल्पमात्र के अभाव में विलम्बित होती है । जैसे किन्नरराज द्रुम बर्फ से ढँका हिमालय जैसा रक्षक पाकर भी बाहुबल के अभाव में सफल न होकर कौरवाधिपति दुर्योधन का दास बन गया । निश्चय ही पहले के राजा अत्यन्त विजयेच्छुक न थे, क्योंकि थोड़ी ही भूमि के टुकड़े में एक साथ भगदत्त, दन्तवक्र, रुक्मि, कर्ण, दुर्योधन, शिशुपाल, साल्व, जरासंघ, जयद्रथ आदि बहुत से राजा राज्य करते थे । राजा युधिष्ठिर

संतुष्टो राजा युधिष्ठिरो यो ह्यसहत समीप एव धनञ्जयजयजनितजगत्कम्पः किंपुरुषाणां राज्यम्। अलसश्चण्डकोशो यो न प्राविक्षत् क्ष्मां जित्वा स्त्रीराज्यम्। ह्रसीय एवान्तरं तुषारगिरिगन्धमादनयोः उत्साहिनः। किष्कुः तुरुष्कविषयः। प्रादेशः पारसीकदेशः। शशपद शकस्थानम्। अदृश्यमानप्रतिहारे पारियात्रे यात्रैव शिथिला। शौर्यशुल्कः सुलभो दक्षिणापथः। दक्षिणार्णवकल्लोलानिलचलितचन्दनलतासौरभसुन्दरीकृतदरीमन्दिराहृर्दुराद्रेर्नेदीयसि मलयो मलयलग्न एव च महेन्द्रः।' इत्येवं प्रायानुद्योगद्योतकानामालापान् पार्थिवकुमाराणां बाहुशालिनां शृण्वन्नेवाससादावासम्। मन्दिरद्वारि चोभयतः सबहुमानं भ्रलताभ्यां विसर्जितराजलोकः प्रविश्य चावततार बाह्यास्थानमण्डपस्थापितमासनमाचक्राम। अपास्तसमायोगश्च क्षणमासिष्ट।

सिन्धुनाथो जयद्रथः। ह्रसीयो ह्रस्वतरम्। साङ्गुष्ठया प्रदेशिन्या प्रादेशः। 'प्रादेशतालगोकर्णास्तर्जन्यादियुते तते। अङ्गुष्ठे सकनिष्ठे स्याद्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः॥' इत्यमरसिंहः। शौर्यरूपः शुल्कः पणो यत्र स शौर्यशुल्कः। अतिशयेनान्तिकं नेदीयः। 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ' इति।

कैसे संतोषी थे जिन्होंने दिग्विजय द्वारा संसार को कम्पित कर देने वाले अर्जुन के रहते हुए भी समीप ही कायरों के राज्य को बर्दाश्त कर लिया। चण्डकोश कितना आलसी था जिसने पृथ्वी को जीत लेने पर भी स्त्री-राज्य में प्रवेश नहीं किया। उत्साही के लिए हिमालय एवं गन्धमादन पर्वतों में थोड़ा ही अन्तर होता है। तुरुष्कों के देश हाथ भर हैं। पारसी लोगों का प्रदेश एक बित्ता भर है। शकों का देश खरगोश के पैर भर है। पारियात्र में सेना की यात्रा ही बेकार है क्योंकि मुकाबले के लिए कोई दीखता नहीं। दक्षिणापथ शूरता के मूल्य से हिलती हुई चन्दन लताओं की सौरभ-सुगन्धि से भर जाते हैं, उसी के नजदीक ही तो मलयाचल से युक्त ही महेन्द्र पर्वत है।" इस प्रकार की बातचीत को सुनते हुए महाराज हर्ष अपने निवास-स्थान में पहुँचे।

महल के दरवाजे पर दोनों ओर राजाओं को सम्मानपूर्वक भौंह का संकेत करके विदा किया तथा अन्दर प्रवेश करके बाहरी आस्थानमण्डप में स्थापित आसन पर विराजमान हुए। वहाँ से समायोग (फौजी परेड) के बर्खास्त होने की सूचना देकर क्षण भर वहीं ठहरे।

अथ तत्र प्रतीहारः पृथिवीपृष्ठप्रतिष्ठापितपाणिपल्लवो विज्ञापितवान्—'देव ! प्राग्ज्योतिषेश्वरेण कुमारेण प्रहितो हंसवेगानामा दूतोऽन्तरङ्गस्तोरणमध्यास्ते' इति । राजा तु तमाशु प्रवेशय' इति सादरमादिदेश । अथ दक्षतया क्षितिपालादराच्च प्रतीहारः स्वयमेव निरगात् । अनन्तरं च हंसवेगः सविनयमाकृत्यैव नयनान्दसंपादनसुभगाभोगभद्रतया समुल्लङ्घ्यमानगुणगरिमा प्रभूतप्राभृतभृतां पुरुषाणां समूहेन महतानुगम्यमानः प्रविवेश राजमन्दिरम् । आरादेव पञ्चाङ्गालिङ्गिताङ्गनः प्रणाममकरोत् । 'एह्येहि' इति सबहुमानमाहूतश्च प्रधावितोऽवसृतः पादपीठलुठितललाटलेखो न्यस्तहस्तः पृष्ठे पार्थिवेनोपसृत्य भूयो नमश्चक्रे । स्निग्धनरेन्द्रदृष्ट्या निर्दिष्टमविप्रकृष्टं स प्रदेशमध्यास्ते । ततो राजा तिरश्चीं तनुमीषदिव दधानश्चामरग्राहिणीमन्तरालवर्तिनीं समुत्सार्य संमुखीनस्तं सप्रश्रयं पप्रच्छ—'हंसवेग ! श्रीमान्कच्चित्कुशली कुमारः ?' इति । स तमन्ववा-

---

प्राग्ज्योतिषं कामरूपाख्यो देशः । समुल्लङ्घ्यमानो नीयमानः । संमुखीनोऽभिमुखः । भोगः पालनम् ।

इसी समय वहाँ प्रतीहार ने भूमि पर हाथ टेककर सूचना दी—"देव ! प्राग्ज्योतिषेश्वर कुमार द्वारा भेजा हुआ हंसवेग नामक अन्तरंग दूत राजद्वार पर उपस्थित है ।" राजा ने 'उसे तुरन्त अन्दर ले आओ' इस प्रकार आदरपूर्वक आदेश दिया । तब स्वयं चतुर होने के कारण तथा राजा के प्रति सम्मान होने के कारण प्रतीहार वहाँ से निकट गया । तत्पश्चात् हंसवेग ने भेंट की सामग्री लाने वाले अनेक पुरुषों के साथ विनम्रता पूर्वक राजभवन में प्रवेश किया । नेत्रों को आनन्दित करने वाली वह अपनी मनोहर तथा भद्र आकृति से ही गुणों की गरिमा को प्राप्त कर रहा था । दूर ही से उसने अपने पाँच अंगों से आँगन को अँकवारते हुए राजा को प्रणाम किया । राजा ने "आओ-आओ" कहकर उसे सम्मान के साथ बुलाया । वह दौड़कर उनके पास आकर पादपीठ पर माथा रगड़ने लगे । तब राजा ने उसकी पीठ पर हाथ रखा । उसने पुनः राजा को प्रणाम किया । राजा की स्नेह भरी दृष्टि से निर्दिष्ट थोड़ी दूर पर स्थान ग्रहण किया । तब राजा ने कुछ तिरछे होकर शरीर को झुकाते हुए चामरग्राहिणी को बीच से हटाकर दूत की ओर मुँह करके प्रेमपूर्वक पूछा—"हंसवेग !

दीत्—'अद्य कुशली येनैवं स्नेहस्नपितया सौहार्दद्रवार्द्रया सगौरवं गिरा पृच्छति देवः' इति।

स्थित्वा च मुहूर्तमिव पुनः स चतुरमुवाच—'चतुरम्भोधिभोगभूति-भाजनभूतस्य देवस्य सद्भावगर्भमपहाय हृदयमेकमन्यदनुरूपं प्राभृत-मेव दुर्लभं लोके तथाप्यस्मत्स्वामिना संदेशमशून्यतां नयता पूर्वजो-पार्जितं वारुणातपत्रमाभोगाख्यमनुरूपस्थानन्यासेन कृतार्थीकृतमेतत्। अस्य च कुतूहलकृन्ति बहून्याश्चर्याणि दृश्यन्ते। तथा हि—प्रतिदिवसं प्रविशति शैत्यहेतोश्छायायाः किरणसहस्रादेकैकः सोमस्य रश्मिरस्मिन्। यस्मिन्प्रविष्टे प्रध्यानानन्तरं स्वादवो दन्तवीणोपदेशाचार्यश्च्योतन्ति चन्द्रभासामम्भसां मणिशलाकाभ्यो यावदिच्छमच्छा धाराः। प्रचेता इव यश्चतुर्णामर्णवानामधिपतिर्भूतो भावी वा तमिदमनुगृह्णाति च्छायया नेतरम्। इदं च न सप्तार्चिर्दहति, न पृषदश्वो हरति, नोदकमार्द्रयति, न रजांसि मलिनयन्ति, न जरा जर्जरयतीति। एतत्तावदनुगृह्णातु दृशा देवः

शीतोद्भवो दन्तानामन्योन्याघातो दन्तवीणा। सप्तार्चिरग्निः। पृषदश्वो वायुः।

श्रीमान् कुमार सकुशल तो हैं?" उसने उन्हें उत्तर दिया—"जब इतने स्नेह से स्नपित और सौहार्द से आर्द्र अपनी वाणी से गौरव के साथ महाराज पूछ रहे हैं तो आज सब प्रकार से सकुशल ही हुए।"

क्षण भर रुककर वह पुनः निपुणता के साथ बोला—"चारों समुद्रों की लक्ष्मी के भाजन देव को योग्य सद्भाव से भरे एक हृदय को छोड़कर लोक में और दूसरा उपहार क्या है? फिर भी हमारे स्वामी ने पूर्वजों द्वारा उपार्जित आभोग नामक यह वारुण आतपत्र सन्देश के साथ भेजकर योग्य स्थान में रखने से इसे कृतार्थ कर दिया। इसके अनेक कुतूहलोत्पादक आश्चर्य देखे गये हैं। जैसा कि छाया को ठण्ढक पाने के लिए प्रतिदिन चन्द्रमा की हजार किरणों से एक-एक किरण इसमें प्रविष्ट होती है। जिसके प्रविष्ट होने से चन्द्र के समान मणिशलाकाओं से मधुर, स्वच्छ और दाँतों को खटखटा देने वाली धारा निकलने लगती है। वरुण की भाँति जो चारों सागरों का स्वामी हुआ है अथवा होगा उसी पर इस आतपत्र की छाया पड़ेगी दूसरे पर नहीं। इस छत्र को आग नहीं जला सकती, हवा नहीं उड़ा सकती, पानी गीला नहीं कर सकता, धूल गन्दा नहीं कर सकती, एवं बुढ़ापा उसे जर्जर नहीं बना सकती। महाराज इस पर

संदेशमपि विस्रब्धं श्रोष्यति।' इत्येवमभिधाय विवृत्यात्मीयं पुरुषमभ्यधात्—'उत्तिष्ठ! दर्शय देवस्य' इति।

स च वचनानन्तरमुत्थाय पुमानूर्ध्वीचकार तद्धौतदुकूलकल्पिताच्च निचोलकादकोषीत्। आकृष्यमाण एव च यस्मिन्नतिसितमहसि सरभसमहासीव हरेण, रसातलादुदलासीव शेषफणिफणाफलकमण्डलेन, अस्थायीव चक्रीभूयान्तरिक्षे क्षीरोदेन, अघटीव गगनाङ्गने गोष्ठीबन्धः शारदेन बलाहककव्यूहेन, विश्रान्तमिव विततपक्षतिना वियति पितामहविमानहंसयूथेन, अत्रिनेत्रनिर्गतस्य धवलधाममण्डलमनोहरो दृष्ट इव जनेन जन्मदिवसः कुमुदबन्धोः प्रत्यक्षीकृत इवोद्गमनक्षणो नारायणनाभिपुण्डरीकस्य, आहितेव कौमुदीप्रदोषदर्शनानन्दतृप्तिरक्षणाम्, उदमाङ्क्षीदिव मन्दाकिनीपुलिनमण्डलं महदम्बरोदरे, परिवर्तित इव दिवसः पौर्णमासीनिशया

विवृत्य स्थित्वा।

निचोलकादाच्छादनप्रसेवकात्। अकोषीन्निष्कासितवान्। उदयास्युल्लसितम्। अस्थायि स्थितम्। अघटि घटितम्। विश्रान्तं व्यश्रमत। उद्गमनक्षण उत्पत्तिसमयः। उदमाङ्क्षीदुन्मग्नम्। परिवर्तितः स्वरूपः कृतः।

दृष्टिपात करने की कृपा करें फिर एकान्त में सन्देश भी सुनें।' यह कहकर वह पीछे मुड़कर अपने आदमी से बोला—"उठो! देव को दिखाओ।''

उसके कहने पर उस आदमी ने उठकर छत्र को ऊँचा किया तथा उजले दुपट्टे के बने हुए खोल में से उसे निकाला। अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाश वाले उस छत्र के बाहर निकलते ही मानो भगवान् शङ्कर ने जोर से अट्टहास किया हो, या पाताल से शेषनाग के फनों का समूह निकल आया हो, या क्षीसागर चक्र के आकार में आकाश में स्थिर हो गया हो, या शरत्कालीन मेघ समूह आकाश के प्राङ्गण में सभा करने बैठा हो, या ब्रह्माजी के विमान का हंससमूह आकाश में पङ्ख फैलाये विश्राम करने लगा हो, मानो लोगों ने अत्रि के नेत्र से निकले हुए चन्द्रमा के उज्ज्वल तेजोमण्डल से मनोहर जन्मदिवस देख लिया, मानो विष्णु के नाभिकमल का उत्पत्ति-समय प्रत्यक्ष-देखने में आ गया, नेत्रों को कौमुदी-महोत्सव की आनन्दपूर्ण तृप्ति मिल गयी हो, विशाल आकाश के बीच में मन्दाकिनी की रेत मानो ऊपर उठ आयी हो, दिन ही मानो पूर्णिमा की रात्रि

मन्दं मन्दमिन्दूदयसंदेहदूयमानमानसैर्विघटितं घटमानचञ्चुच्युतमृणालकोटिभिरालग्नकमलिनीचक्रवाकमिथुनैः शरज्जलधरपटलाशङ्कासंकोचितकेकारवमूकमुखपुटैः पराङ्मुखीभूतं भवनशिखण्डिमण्डलैः, प्रवृद्धभावबद्धचन्द्रानन्दोद्दामोद्दलद्दलपुटाट्टहासविशदं कुमुदषण्डैः।

चित्रीयमाणचेताश्च सराजको राजा दंडानुसाराधिरोहिण्या दृष्ट्या सादरमैक्षिष्ट तिलकमिव त्रिभुवनस्य, शैशवमिव श्वेतद्वीपस्य अंशावतारमिव शरदिन्दोः, हृदयमिव धर्मस्य, निवेशमिव शशिलोकस्य, दन्तमण्डलकद्युतिधवलं मुखमिव चक्रवर्तित्वस्य, मौक्तिकजालपरिकरसितं सीमन्तचक्रमिव दिवः, बहलज्योत्स्नाशुक्लोदरमैन्दवमिव परिवषवलयं शौक्ल्यापहसितशङ्खश्रीकं श्रवणमंडलमिव निश्चलतां गतमैरावतस्य,

निवेशं स्थानम्। दन्तमण्डलकं दशनकृतं चक्रवालम्, दशनसमूहश्च। मुखमारम्भः, वक्त्रं च। परिकरः परिवेष्टनम्। परिवेषवलयं परिधिकटकम्। 'स्यादा-

के रूप में परिवर्तित हो गया हो, समीप के कमलिनी-वनों में रहने वाले चक्रवाक युगल, जो परस्पर कमल की डंठल का आदान-प्रदान कर रहे थे, धीरे-धीरे उगते हुए चन्द्रमा के संशय से दुखी होकर परस्पर वियुक्त हो गये, उनके वियुक्त होते हुए उनकी चोंचों से मृणाल छूट कर गिर गये, महल के मयूरों ने उसे शरत्कालीन मेघ समूह समझकर केका (मयूरध्वनि) की आवाज बन्द कर दी तथा पराङ्मुख हो गये, कुमुद चन्द्र के प्रति स्नेह के कारण अपने दलों को विकसित करके अट्टहास के साथ जाग पड़े।

राजाओं के साथ आश्चर्यचकित होकर देव हर्ष ने दण्ड के अनुसार दृष्टि को ऊपर उठाते हुए आदरपूर्वक उस महान छत्र को, जो तीनों लोकों के तिलक की भाँति था, जो श्वेतदीप के शैशव के समान था, जो शरत् कालीन चन्द्रमा के अंशावतार सदृश था, जो धर्म के हृदय की भाँति, चन्द्रलोक के आयतन के सदृश, दाँतों के समूह की कान्ति से उज्ज्वल चक्रवर्तित्व के मुख के समान, चारों ओर लटक रहे मोतियों के झालर से जो स्वर्गलोक के केश विन्यास के सदृश था, मध्यभाग में चाँदनी छिटकने के कारण जो चन्द्रमण्डल के घेरे के समान था, अपने उजलेपन के कारण जो शङ्ख की शोभा का उपहास कर रहा था मानो ऐरावत का चञ्चलता से रहित श्रावणमण्डल हो, जो गंगा की भँवरियों के सदृश

श्वेतगङ्गावर्तपांडुरं पदमिव त्रिभुवनवन्दनीयं त्रिविक्रमस्य, प्रचेतसश्चूडामणिमरीचिशिखाभिरिव श्लिष्टाभिर्मानसबिसतन्तुमयाभिश्चामरिकावलीभिर्विरचितपरिवेषम्, उपरि चक्रवर्तिलक्ष्मीनूपुरस्वनश्रवणदोहदनिश्चलेनेव लक्ष्मणा विततपत्रेण हंसेन सनाथीकृतशिखरम्, स्पर्शवता च प्रभावस्तम्भितेन मन्दाकिनीमृणालेन मुकुलितफणेन वासुकिनेव नीतेन दंडतां द्योतमानम्, धवलिम्ना क्षालयदिव नक्षत्रपथम्, प्रभाप्रवाहप्रथिम्ना प्रावृण्वदिव दिवसम्, समुच्छ्रायेणाधः कुर्वदिव दिवम् उपरिस्थितमिव सर्वमङ्गलानाम्, श्वेतमण्डपमिव श्रियः, स्तबकमिव ब्रह्मास्तम्बस्य, नाभिमण्डलमिव ज्योत्स्नायाः, विशदहासमिव कीर्तेः, फेनराशिमिव खडगधाराजलानाम्, यशःपटलमिव शौर्यशालितायाः, त्रैलोक्यादद्भुतं महच्छत्रम्।

दृष्टे तस्मिन् राज्ञा प्रथमे शेषमपि प्राभृतं प्रकाशयांचक्रुः क्रमेण कार्माः। तद्यथा पराध्यर्यरत्नांशुशोणीकृतदिग्भागान्, भगदत्तप्रभृतिख्यात-

---

वर्तोऽम्भसां भ्रमः'। आवर्तनमावर्तः। प्रावृण्वदाच्छादयत्।

कार्मा भृतकाः। आहतलक्षणान्गुणैः प्रसिद्धान्। उक्तं च—'गुणैः प्रतीते तु

उज्ज्वल था मानो विष्णु त्रिलोक बन्ध चरण हो। मानसरोवर के बिसतन्तुओं से निर्मित छोटी-छोटी चौरियाँ जिसके चारों ओर इस प्रकार लटक रही थी मानो वे वरुण की चूडामणि की किरणें हों, जिसकी चोटी पर पंख फैलाये हंस का चिह्न इस प्रकार विनिर्मित था मानो वह चक्रवर्ती की लक्ष्मी के नूपुरों की ध्वनि को सुनने के आनन्द में निश्चल हो, स्पर्श से सुख देने वाला मन्दाकिनी का मृणाल या प्रभाव से स्तम्भित होकर फनों को सिकोड़ते हुए वासुकि नाग ही जिसका मानो दण्ड बन गया हो, जो अपने उजलेपन से मानो आकाश को धो रहा था, जो अपनी कान्ति के धारा के फैलाव से मानो दिन को आच्छादित कर रहा था, जो अपनी ऊँचाई से आकाश को नीचा कर रहा था, जो मानो सारे मङ्गलों के ऊपर में विराजमान था, जो लक्ष्मी का उज्ज्वलमण्डप (चांदनी में विहार करने के लिए श्वेतवर्ण की सजावट से युक्त मण्डप), श्वेतदीप का बालरूप, ज्योत्स्ना का नाभिमण्डल, कीर्त्ति का विशदहास, खड्ग के धाराजल का फेनसमूह, शूरता का यशः समूह तथा तीनों लोकों में विचित्र था, देखा।

राजा ने जब उस छत्र को देख लिया तो नौकरों ने शेष उपहारों को भी क्रमशः उघाड़ कर दिखाया। वे इस प्रकार थे—आभूषण, जो जड़े हुए बहुमूल्य रत्नों की किरणों से दिग्मान को रंगीन कर रहे थे, जो भगदत्त आदि विख्यात

पार्थिवपरागतानाहतलक्षणानलङ्कारान्, प्रभालेपिनां च चूडामणीनां समुत्कर्षान्, क्षीरोदधेर्धवलताहेतूनिव हारान्, अनेकरागरुचिरवेत्रकरण्ड-कुण्डलीकृतानि शरच्चन्द्रमरीचिरुञ्जि शौचक्षमाणि क्षौमाणि, कुशल-शिल्पिलोकोल्लिखितानां च शुक्तिशङ्खगल्वर्कप्रमुखानां पानभाजनानां निच-यान्, निचोलकरक्षितरुचां च रुचिरकाञ्चनपत्रभङ्गभङ्गुराणामतिबन्धुर-परिवेशानां कार्दरङ्गचर्मणां संभारान्, भूर्जत्वक्कोमलाः स्पर्शवतीर्जाती-पट्टिकाः, चित्रपटानां च म्रदीयसां समूरुकोपधानादीन् विकारान् प्रियङ्गु-प्रसवपिङ्गलत्वञ्चि चासनानि वेत्रमयान्यगुरुवल्कलकल्पितसञ्चयानि च सुभाषितभाञ्जि पुस्तकानि, परिणतपाटलपटोलत्विषि च तरुणहारीतह-रिन्ति क्षीरक्षारीणि च पूगानां पल्लवलम्बीनि सरसानि फलानि सह-

कृतलक्षणाहतलक्षणौ' इति । समुत्कर्षानतिशयान् गल्वर्कौ मसाराख्यो मणिभेदः, चन्द्रकान्तः इत्यन्ये । शौचो धावनम् । कार्दरङ्गचर्मणां कार्दरङ्गदेशभवानां स्फोटका-नाम् । जातीपट्टिकाः श्रेष्ठानि जघनग्रन्थनानि । संचयाः पत्रसमूहाः । पटोलस्तित्तक

राजाओं के समय से कुल में चले आ रहे थे, जिन पर तरह-तरह के लक्षण या चिह्न ठप्पे से बनाये गए थे। चूड़ामणि या शिरोभूषण, जिनमें बहुत चमक थी। हार, जो क्षीरसागर की भी उज्ज्वलता के माने हेतुभूत थे। क्षौमवस्त्र, जो शरत्कालीन चन्द्रमा के समान चिट्टे रंग के थे तथा जो धुलाई को बर्दाश्त कर सकने वाले थे एवं अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी बेंत की करंडियों (झाँपियों) में कुण्डलित करके रखे गये थे। पान पात्र या मधुपान करने के चषक, जो निपुण कारीगरों द्वारा की गई नक्काशी वाले सीप, शङ्ख, गल्वर्क के बने हुए थे। कार्दरङ्ग द्वीप से आयी हुई ढालें, जिन पर आब की रक्षा के लिए खोल चढ़े थे, जिन पर स्वर्णिम फूल-पत्तियों के कटाव खचित थे तथा जिनकी गोलाई ऊँची-नीची थी। भोजपत्र के समान कोमल, स्पर्श से आनन्द देनेवाली जाती-पट्टिकाएँ नरम चित्रपटों (जामदानी) के बने हुए तकिये, जिनके अन्दर पत्ते या पक्षियों के बाल अथवा रोएँ भरे हुए थे। बेंत के बने हुए आसन, जिनका रंग प्रियंगु-मञ्जरी के सदृश ललछौंही पीली झलक का था। सुन्दर उक्तियों से भरी पुस्तकें, जिनके पन्ने (संचय) अगर की छाल पाटकर बनाये गये थे। हरी सुपारियों के झुग्गे, जो पल्लवों के साथ झूल रहे थे, इनका रङ्ग पके हुए लाल परवल के समान ललछौंह तथा हरियल पक्षी के समान हरियाली लिये हुए था, इनसे दूध

कारलतारसानां च कृष्णागुरुतैलस्य च कुपितकपिकपोलकपिलकापोति-कापलाशकोशीकवचिताङ्गीः स्थवीयसीर्वैणवीर्नाडीश्च पट्टसूत्रप्रसेवकापि-तांश्च भिन्नाञ्जनवर्णस्य कृष्णागुरुणो गुरुपरितापमुषश्च गोशीर्षचन्दनस्य, तुषारशिलाशकलशिशिरस्वच्छसितस्य च कर्पूरस्य, कस्तूरिकाकोशकानां च पक्वफलजूटजटिलानां च कक्कोलपल्लवानाम्, लवङ्गपुष्पमञ्जरीणां जातीफलस्तबकानां च राशीन्, अतिमधुरमधुरसामोदनिर्हारिणी-श्चोल्लककलशीः सितासितस्य च चामरजातस्य निचयान्, अवलम्बमान-तूलिकालाबुकांश्च लिखितानेकलेख्यफलकसंपुटान्, कुतूहलक्रान्ति च किन्नराणां च वनमानुषाणां च जीवञ्जीव-कनकशृङ्खलानियमितग्रीवाणां

औषधिभेदः। उक्तं च—'अथ कुलकं पटोलस्तिक्तकः पटुः' इति। कपोतिका औषधिभेदः। गोशीर्षचन्दनस्य चन्दनभेदस्य। कोशका नाभयः। अतिमधुरं मधुरसाया इवामोदानि हरन्ति मुञ्चन्ति यास्ताः। मधुरसा द्राक्षा। उक्तं च—'मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा माध्वी मधुरसेति च' इति। अन्ये मधुरसं मकरन्दं द्रव-माहुः। उल्लकः सुगन्धिफलविशेषरसः। आसवभेद इत्यन्ये। तूलिका ऊर्जिका।

भी टपक रहा था। सहकार की लताओं के रस से भरी हुई मोटे बाँस की नलियाँ, जिनके चारों ओर क्रुद्ध बन्दर के गाल के समान कपोतिका के लाल-पीले पत्ते बँधे हुए थे। काले अगुरु का तेल भी इसी प्रकार मोटे बाँस की नलियों में भर कर और पत्तों में लपेट कर लाया गया था, पटसन द्वारा निर्मित बोरियों में भरकर काले अगुरु की ढेर लगायी गयी थी जिनका रङ्ग छूटे हुए अंजन की भाँति था। गर्मी में शीतलता पहुँचाने वाले गोशीर्ष नामक चन्दन का समूह बर्फ के शिलाखण्ड के सदृश शीतल, उज्ज्वल तथा साफ कपूर की डलियाँ, कस्तूरी के नाफे (थैली), कक्कोल के पके फलों से युक्त कक्कोलपल्लव, लवंग पुष्पों की मंजरियाँ, जाफर के गुच्छे, जस्ते की कपड़े चढ़ी कलसियाँ या सुराहियाँ, जिनमें अत्यन्त मीठा मधुरस भरकर लाया गया था तथा जिनकी भीनी खुशबू बाहर फैल रही थी। चित्र फलकों के जोड़े, जिनके अन्दर चित्र लिखे थे तथा उनके एक ओर तूलिका (कूची) एवं रङ्ग रखने के लिए छोटी अलाबू की कुप्पियाँ लटक रही थीं। कुतूहल पैदा करने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्षी, जैसे सोने की जंजीरों से गर्दन में बँधे हुए किन्नर, वनमानुष, जीवजीवक,

कानां च जलमानुषाणां च मिथुनानि, परिमलामोदितककुभश्च कस्तूरिकाकुरङ्गान्, गेहपरिसरणपरिचिताश्च चमरीः चामीकररसचित्रवेत्रपञ्जरान्तर्गतांश्च बहुसुभाषितजल्पाकजिह्वांश्च शुकशारिकाप्रभृतीन्पक्षिणः प्रवालपञ्जरगतांश्च चकोरान् जलहस्तिनामुदग्रकुम्भमुक्ताफलदामदन्तुराणि च दन्तकाण्डकुण्डलानि।

राजा तु छत्रदर्शनात्प्रहृष्टहृदयः प्रथमप्रयाणे शोभननिमित्तमिति मनसा जग्राह। हंसवेगं च प्रीयमाणो बभाषे—'भद्र! सकलरत्नधाम्नः परमेश्वरशिरोधारणार्हस्यास्य महातपत्रस्य महार्णवादिव कुमुदबान्धवस्य कुमाराल्लाभो न विस्माय। बालविद्याः खलु महतामुपकृतयः' इति। अपनीते च तस्मात्प्रदेशात्प्राभृतसंभारे क्षणमिव स्थित्वा 'हंसवेग! विश्रम्यताम्' इति प्रतीहारभवनं विसर्जयांबभूव। स्वयमप्युत्थाय स्नात्वा मङ्गलाकाङ्क्षी प्राङ्मुखः प्राविशदाभोगस्य छायाम्।

यया चित्रं क्रियते। अलाब्वस्तुम्ब्यः। प्रवालो विद्रुमः। उक्तं च—'अथ विद्रुमः पुंसि प्रवाल पुंनपुंसकम्' इति। 'नीहारो मिहिका चाथ'।

जलमानुषों के जोड़े, दिशाओं में खुशबू फैलाते कस्तूरीहिरण, घरों में विचरण करने के कारण विश्वास युक्त चँवरी गाय, सुनहले रंग से रंगे बेंत के पिंजड़ों में तरह-तरह के सुभाषितों का पाठ करने वाले शुकसारिका आदि पक्षी, मूँगे के पिंजड़ों में बैठे हुए चकोर, जलहस्तियों के ऊँचे मस्तकों से निकलने वाले मुक्ताफलों से जुड़े हुए दाँतों के कुण्डल।

छत्र देखते ही राजा का हृदय प्रसन्नता से भर गया तथा उन्होंने पहले प्रस्थान के समय मन में उसे शुभ शकुन मानकर स्वीकार किया। प्रसन्न होकर वे हंसवेग से बोले—"भद्र! सभी प्रकार के रत्नों से भरे हुए तथा सम्राट् के मस्तक पर धारण करने योग्य इस महाछत्र का कुमार से प्राप्त होना उसी प्रकार आश्चर्यजनक नहीं हैं जिस प्रकार क्षीर सागर से चन्द्रमा का उत्पन्न होना।

महान् लोगों के उपकार बालविद्या के समान (पूर्वतः ज्ञात) हुआ करते हैं। उपहार सामग्री के वहाँ से हटा लिये जाने पर क्षण भर ठहर कर "हंसवेग! तुम विश्राम करो।" ऐसा कहकर उसे प्रतीहरभवन में भेज दिया। स्वयं भी उठकर, नहाकर तथा मङ्गल की अभिलाषा से पूर्वाभिमुख होकर 'आभोग' नामक उस छत्र की छाया में बैठ गये।

अथ विशत एवास्य छायाजन्मना जडिम्ना चूडामणितामनीयतेव शशिबिम्बमम्बुबिन्दुमुचश्चुचुम्बुरिव चन्द्रकान्तमणयो ललाटतटं कर्पूररेणव इव व्यलीयन्त लोचनयुगले गले गलत्तुहिनकणनिकरकुलनोहारा हारा इवावबध्यन्त हरिचन्दनरसासारेणोवापाति संततमुरसि कुमुदमयमिव हृदयमभवदतिशिशिरमन्तर्हितहिमशिलेव विलीयमाना व्यालिम्पदङ्गानि। जातविस्मयश्चाकरोन्मनसि 'एकमर्थं संगतमपहाय काऽस्त्यन्या प्रतिकौशालिके'ति। आहारकाले च हंसवेगाय धवलकर्पटप्रावृतधौतनालिकेरपरिगृहीतं विलिप्तशेषं चन्दनमङ्गस्पृष्टे चवाससी शरत्तारकाकारतारमुक्तास्तबकितपदं परिवेशं नाम कटिसूत्रकम् अतिमहार्हपद्मरागालोकलोहितीकृतदिवसं च तरङ्गकं नाम कर्णाभरणं प्रभूतं च भोज्यजातं प्राहिणोत्। एवंप्रायेण च क्रमेण जगाम दिवसः।

ततः कटकस्थलबहलधूलिधूसरितवपुरंशुमाली मलीमसमङ्गमिव क्षालयितुमपरजलनिधिमवातरत्। आभोगातपत्रप्रदानवार्तामिव निवेद-

---

उस छत्र की छाया में हर्ष के बैठते ही उसी ठंढक से मानो चन्द्रमा की किरणें ही घनीभूत होकर उनकी चूडामणि बन गयी। चन्द्रकान्तमणि पिघलने लगे तथा जलकण उनके लिलार पर छा गये। उनके नेत्रों में कपूर का आँजन मानो लग गया। गले में बर्फ के छोटे-छोटे फुहारे हार के सदृश बँध गये। उनकी छाती पर मानो हरिचन्दन रस लगातार बरसने लगा। उनका हृदय मानो कुमुदों से पूरित होकर अतिशय ठण्ढा हो गया। मानो बर्फ की सील उनके अङ्गों के अन्दर पिघलने लगी। आश्चर्यित होकर उन्होंने मन में विचार किया—"कभी पुरानी न पड़ने वाली मित्रता के अलावा ऐसे सुन्दर उपहार का बदला क्या होता है?" भोजन के समय हंसवेग के लिए राजा हर्ष ने उजला कपड़ा लपेट कर नारियल के साथ अपने लगाने से बचा हुआ चन्दन, अपने अङ्ग से स्पर्श कराये हुए पहनने योग जोड़ा वस्त्र, शरत्कालीन तारों के आकार वाले मोतियों से निर्मित परिवेश नामक कटिसूत्र तथा बेशकीमती जड़े हुए पद्मराग की किरणों से दिन में लाली बिखेरता हुआ तरंगक नामक कर्णभूषण एवं बहुत सा भक्ष्य पदार्थ भेजा। इसी प्रकार क्रमशः वह दिन बीत गया।

उसके बाद सैन्यस्थल की सेना द्वारा उड़ायी गयी बहुत अधिक धूल से धूसरित शरीर वाला सूर्य अपने मलिन अङ्गों को मानो परवाने के लिए पश्चिमी-समुद्र में उतर पड़ा अथवा हर्ष द्वारा आभोग नामक छत्र को पाने का समाचार

यितुं वरुणाय वारुणीं दिशमयासीत् । मुकुलायमानसकलकमलवना प्रमुख एव बद्धसेवाञ्जलिपुटेव सद्वीपा भूरभूद् भूपतेः । भूपालानुरागमय इव निखिलजीवलोकलोकाञ्जलिबद्धबन्धुर्जगज्जग्राह संध्यारागः । गौडापराधशङ्किनीव श्यामतां प्रपेदे दिक्प्राची । प्रचिततिमिरनिवहा निर्वाणान्यनृपप्रतापानलकलापेव कालिमानमतानीन्मेदिनी । मेदिनीशप्रदोषास्थानपुष्पनिकरमिव विकचतगररुचिरमवचकरुडुनिकरमविरलं ककुभः । स्कन्धावारगन्धगजमदामोदधावितस्येव मार्गो वियति विरराज रजःपाण्डुरैरावतस्य । कुपितनृपव्याघ्राघ्रातामुपसृष्टामिव पौरुहूतीं विहाय विहायस्तलमारुरोह रोहिणीरमणः । प्रयाणवार्ता इव मानिनीनां हृदयभेदिन्यो ययुरिन्दुदीधितयो दश दिशः । नवनृपदण्डयात्राश्वासातुरा इव तरलित-

कटकं हस्त्यश्वादीनां सर्वेषां संनिवेशदेशः । तस्थं बलं सैन्यम् । तगरं पिण्डीभवनम् । नृपव्याघ्रो राजशार्दूलः, हर्षः । उपसृष्टां सोपद्रवाम् । पौरुहूतीं ऐन्द्रीम् । रोहिणीरमणश्चन्द्रः, वृषभश्च । रोहिणी गौः । उक्तं च—'माहेयी सौरभेयी गौरुस्रा माता च शृङ्गिणी । अर्जुन्यघ्न्या रोहिणी स्यादुत्तमा गोषु नैचिकी ॥' इति । वृष-

वरुण को प्राप्त कराने हेतु वारुणी दिशा अर्थात् पश्चिम दिशा में चला गया । कमलवन इस प्रकार मुकुलित होने लगे मानो द्वीपों के साथ पहले ही सेवा करने के लिए पृथिवी हाथ जोड़े खड़ी हो । मानो राजा के अनुराग से पूरित संध्या की लाली, जो सम्पूर्ण जीवलोक वासी लोगों के बँधे अञ्जलि पुट की बन्धु है संसार में भर गयी । मानो गौडेश्वर के अपराध की आशङ्का से पूर्व दिशा मलिन पड़ गयी । पृथिवी पर घना अन्धकार इस प्रकार छा गया मानो उसने अन्य राजाओं के प्रतापरूपी अग्नि के बुझ जाने से उसकी कालिमा को फैला दिया हो । राजा के सायङ्कालीन सभामण्डप पर दिशाओं ने पुष्पसमूह के सदृश विकसित तगड़ के फूलों के समान तारों को खूब विकीर्ण कर दिया । स्कन्धावार के गन्धगजों की मदगन्ध को सूँघकर मानो उनके साथ मुठभेड़ के लिए दौड़ने से ऐरावत का मार्ग धूल से भर गया । रोहिणीरमण अर्थात् रोहिणी का पति चन्द्रमा रूपी (रोहिणी अर्थात् गौ का पति) साँड़ क्रोधित राजा रूपी व्याघ्र से आक्रान्त पूर्वदिशा रूपी गाय को छोड़कर आकाश पर चढ़ आया । मानिनी स्त्रियों के हृदय को विदीर्ण करने वाली चन्द्रकिरणें सैनिकों के कूच करने के समाचार की भाँति दशों दिशाओं में फैल गयी । मानो राजा की नयी दण्ड

सत्त्ववृत्तयश्चुक्षुभुः पतयो वाहिनीनाम्। चिन्तेव भूभृतां हृदयानि विवेश गुहाविवराणि विमुक्तसर्वाशातिमिरसंततिः। प्रतिसामन्तचक्षुषामिव ननाश निद्रा कुमुदवनानाम्।

अस्यां च वेलायां विततवितानतलवर्ती नरेन्द्रो 'यात तावत्' इति विसर्ज्यानुजीविनो हंसवेगमादिष्टवान्—'कथय संदेशम्' इति। प्रणम्य स कथयितुं प्रास्तावीत्—'देव ! पुरा महावराहसंपर्कसंभूतगर्भया भगवत्या भुवा नरको नाम सूनुरसावि रसातले। वीरस्य यस्याभवन्बाल्य एव पादप्रणामप्रणयिनश्चूडामणयो लोकपालानाम्। यस्य च त्रिभुवनभुजो भुजशौण्डस्य भवनकमलिनीचक्रवाकीकोपकुटिलकटाक्षेक्षितोऽपि भयचकितारुणपरिवर्तितरथो नाज्ञया विना रविरस्तमव्राजीत्। यश्च वरुणस्य बहिर्वृत्ति हृदयमिदमातपत्रमहार्षीत्। महात्मनस्तस्यान्वये भगदत्तपुष्प-

---

भश्च कुपितव्याघ्राघ्रातामत एव सोपद्रवां दिशं विहाय स्थानान्तरमारोहति। मानः प्रियाविषये, अन्यत्र,—धीरविषये। सत्त्वानि प्राणिनः, धैर्यं च सत्त्वम्। वाहिनीनां सेनानाम्, नदीनां च। आशा दिशः, आस्था च। निद्रा संकोचः, स्वापश्च।

यात्रा के भय से आतुर, शत्रु की सेनानायकों की धीरता समाप्त हो गयी (वाहिनी पति समुद्री जलजन्तुओं के साथ खलबला उठे)। सम्पूर्ण दिशाओं को छोड़कर अन्धकार की सन्तान इस प्रकार गुहाविवरों में घुस गयी मानो राजाओं के हृदय में आशा से रहित चिन्ता समा गयी हो। कुमुदवनों की नींद उसी प्रकार चली गयी जिस प्रकार शत्रुसामन्तों की नींद उड़ जाती हो।

उसी समय फैले हुए वितान के नीचे लेटे हुए महाराज हर्ष ने 'जाओ' कह कर नौकरों को बाहर भेज दिया तथा हंस वेग को आज्ञा दी—"सन्देश कहो"। उसने प्रणाम करके कहना शुरू किया—"देव ! प्राचीन समय में महावराह के सम्पर्क से गर्भिणी होकर पृथिवी ने नरक नामक पुत्र को पाताल में उत्पन्न किया। जिस वीर की बचपन में ही चूड़ामणियाँ लोकपालों द्वारा चरण-प्रणाम में प्रीति रखने वाली थीं और तीनों लोकों पर शासन करने वाले भुज पराक्रमशाली जिसके भवन की कमलिनियों में रहने वाली चक्रवाक-वधुओं के तिरछे कटाक्षों द्वारा देखे जाने पर भी डर से चकित अरुण द्वारा रथ के लौटा लिए जाने पर (जिसके) आदेश के बिना सूर्य अस्त को नहीं जाते थे। जिसने वरुण के बाहरी हृदयरूप इसी आतपत्र का हरण कर लिया। उस श्रेष्ठ पुरुष के वंश

दत्तवज्रदत्तप्रभृतिषु व्यतीतेषु बहुषु मेरूपमेषु महत्सु महीपालेषु प्रपौत्रो महाराजभूतिवर्मणः पौत्रश्चन्द्रमुखवर्मणः पुत्रो देवस्य कैलासस्थिरस्थितेः स्थितिवर्मणः सुस्थिरवर्मा नाम महाराजाधिराजो जज्ञ तेजसां राशिमृगाङ्क इति यं जना जगुः। योऽयमग्रजेनेवाजायत सहैवाहंकारेण। यश्च बाल एव प्रीत्या द्विजातीनप्रीत्या चारातीन्समग्रान्प्रतिग्रहानग्राहयत्। यत्र चातिदुर्लभं लवणालयसंभूतायाः परं माधुर्यमभूल्लक्ष्म्याः। तथा च यो वाहिनीनाथानां शङ्खाञ्जहार न रत्नानि, पृथिव्याः स्थैर्यं जग्राह न करम्, अवनिभृतां गौरवमादत्त न नैष्ठर्यम्। तस्य च सुगृहीतनाम्नो देवस्य देव्यां श्यामादेव्यां भास्करद्युतिर्भास्करवर्मापरनामा तनयः शंतनोर्भागीरथ्यां भीष्म इव कुमारः समभवत्। अयमस्य च शैशवादारभ्य संकल्पः स्थेयान्स्थाणुपादारविन्दद्वयादृते नाहमन्यं नमस्कुर्यामिति ईदृशश्चायं मनोरथस्त्रिभुवनदुर्लभस्त्रयाणामन्यतमेन संपद्यते सकलभुवनविजयेन

प्रतिग्रहो द्विजदीयमानोऽर्थः, सैन्यपश्चाद्भागश्च।

में भगदत्त, पुष्पदत्त, वज्रदत्त आदि मेरु पर्वत सदृश अनेक राजाओं के बाद महाराज भूति वर्मा का प्रपौत्र चन्द्रमुख का पौत्र तथा कैलासवासी महाराज स्थिति वर्मा का पुत्र सुस्थिर वर्मा नाम का महाराजाधिराज उत्पन्न हुआ। उस तेजस्वी को लोग (मृगाङ्क) के नाम से गाया करते थे। वह मानो अपने अग्रज अहङ्कार के साथ ही उत्पन्न हुआ था। जिसने बचपन में ही ब्राह्मणों को प्रेम-पूर्वक दान दिये तथा शत्रुओं को अप्रीति अर्थात् तिरस्कार से पछाड़ डाला। जिसके यहाँ लवण राशि अर्थात् समुद्र से आविर्भूत लक्ष्मी की अत्यन्त उत्कृष्ट मधुरता (प्रकट) हुई। जिसने वाहिनी पतियों अर्थात् समुद्रों के शङ्खों को छीन लिया, रत्नों को नहीं, पृथिवी की स्थिरता को ग्रहण किया, कर को नहीं, पर्वतों की गुरुता को ले लिया उनकी निष्ठुरता को नहीं। उस सुगृहीतनामा राजा की रानी श्यामा देवी से भास्कर द्युति नामक पुत्र, जिसका दूसरा नाम भास्कर वर्मा था, कुमार उत्पन्न हुआ; जैसे गङ्गा से शान्तनु के पुत्र भीष्म हुए। शैशव काल से ही उसका यह सङ्कल्प था कि मैं भगवान् शङ्कर के चरण कमलों के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रणाम नहीं करूँगा। तीनों लोकों में दुर्लभ ऐसा मनोरथ तीन तरह से सिद्ध हो सकता है— सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त करने

वा मृत्युना वा यदि वा प्रचण्डप्रतापज्वलनजनितदिग्दाहेन जगत्येकवीरेण देवोपमेन मित्रेण। मैत्री च प्रायः कार्यव्यपेक्षिणी क्षोणीभृताम्। कार्यं च कीदृशं नाम तद्भवेद्यदुपन्यस्यमानमुपनयेन्मित्रतां देवम्। देवस्य हि यशांसि सञ्चिचीषतो बहिरङ्गभूतानि धनानि। बाहावेव च केवले निषण्णस्य शेषावयवानामपि साहायकसंपादनमनोरथो निरवकाशः किमुत बाह्यजनस्य। चतुःसागरग्रासग्रहणघस्मरस्य पृथिव्येकदेशदानोपन्यासेनापि का तुष्टिः। अभिरूपकन्याविश्राणनविलोभनमपि लक्ष्मीमुखारविन्ददर्शनदुर्ललितदृष्टेः किञ्चित्करम्। एवमघटमानसकलोपायसंपादितपदार्थेऽस्मिन्प्रार्थनामात्रकमेव केवलमनुरुध्यमानः शृणोतु देवः। प्राग्ज्योतिषेश्वरो हि देवेन सहैकपिङ्ग इवानङ्गद्विषा, दशरथ इव गोत्रभिदा, धनञ्जय इव पुष्कराक्षेण, वैकर्तन इव दुर्योधनेन, मलयानिल इव माधवेन, अजर्यं संगतमिच्छति। यदि च देवस्यापि मैत्रीयति हृदय-

---

से या मृत्यु से या प्रचण्ड प्रतापाग्नि द्वारा दिशाओं में जलन पैदा करने वाले आप जैसे अद्वितीय वीर के मित्र होने से। राजाओं की मित्रता तो प्रायः उपकार के कार्य से होती है। कार्य वह कैसा हो जिसे सम्पन्न करके आपको मित्र बनाया जाय? केवल यश का संग्रह करने की इच्छा वाले आपके लिए धन तो बहिरङ्ग हेय हैं। एकमात्र अपने बाहुबल पर निर्भर रहने वाले आपके दूसरे अङ्ग आपको सहायता देने की इच्छा प्रकट करते हैं तो उनकी इच्छा व्यर्थ है, ऐसी स्थिति में बाहरी व्यक्तियों की बात ही क्या? जो आप चारों समुद्रों को एक घूँट बना लेना चाहते हैं उसके आगे पृथिवी का एक हिस्सा रख देने से क्या सन्तोष होगा? सुन्दरी कन्या को अर्पित करने का लालच भी लक्ष्मी के मुखकमल को देखने से दुर्ललित दृष्टि वाले आपके लिए व्यर्थ है। इस प्रकार, किसी भी उपाय से प्रस्तुत किया गया पदार्थ चाहे वह कैसा भी हो, आपके लिए अनुकूल नहीं सिद्ध हो रहा तो केवल हमारी प्रार्थना मात्र के अनुरोध से ही देव सुनें— प्राग्ज्योतिषेश्वर देव के साथ एकपिङ्ग के साथ शिव की जैसी, इन्द्र के साथ दशरथ की जैसी, कृष्ण के साथ अर्जुन की जैसी, दुर्योधन के साथ कर्ण की जैसी तथा वसन्त के साथ मलय पवन की जैसी कभी न समाप्त होने वाली मैत्री चाहते हैं। यदि देव का हृदय मित्रता का इच्छुक हो और यह जानता हो कि मैत्री के

मवगच्छति च पर्याप्तान्तरितं दास्यमनुतिष्ठन्ति सुहृद इति ततः किमास्यते समाज्ञाप्यतामनुभवतु विष्णोर्मन्दरगिरिरिव विकटकेयूरकोटिमणिविघट्टन-क्वणितकटकमणिशिलाशकलानि गाढोपगूढानि देवस्य कामरूपाधिपतिः। अस्मिन्नातृप्तेरनवरतविमललावण्यसौभाग्यसुधानिर्झरिणि मुख-शशिनि चिराच्चक्षुषी लालयतु प्राग्ज्योतिषेश्वरश्रीः। नाभिनन्दति चेद्देवः प्रणयमाज्ञापयतु किं कथनीयं मया स्वामिन' इति।

विरतवचसि तस्मिन्भूपालः पूर्वोपलब्धैरेव गुरुभिर्गुणैरारोपितबहु-मानः कुमारे सुदूरमाभोगातपत्रव्यतिकरेण तु परां कोटिमारोपिते प्रेम्णि-लज्जमान इव सादरं जगाद—'हंसवेग! कथमिव तादृशि महात्मनि महाभिजने पुण्यराशौ गुणिनां प्राग्रहरे परोक्षसुहृदि स्निह्यति मद्विधस्या-न्यथा स्वप्नेऽपि प्रवर्तेत मनः। सकलजगत्तापनपटवोऽपि शिशिरायन्ते त्रिभुवननयनानन्दकरे कमलाकरे करास्तिग्मतेजसः। सुमहद्गुण-क्रीताश्च के वयं सख्यस्य। सज्जनमाधुर्याणामभृतदास्यो दश दिशः।

नाम पर मित्र लोग दासता का भी आचरण करते हैं तो बैठे रहने से क्या? आज्ञा दें तो कामरूप के स्वामी कुमार विष्णु के मन्दराचल सदृश आपके विशाल केयूर मणि के विघट्टन से कटकमणि के टुकड़ों की आवाज के साथ गाढ आलिङ्गन का अनुभव करें। प्राग्ज्योतिषेश्वर की लक्ष्मी जब तक तृप्त न हो तब तक सतत लावण्य और सौभाग्य के अमृत को झरने वाले आपके मुखचन्द्र में अपने नेत्रों को लगा दें। अगर देव कुमार के प्रेम का स्वागत नहीं करते तो आज्ञा दें, मैं जाकर स्वामी से क्या कहूँ?"

उस (हंसवेग) के चुप हो जाने पर कुमार के महान् गुणों के पहले ही मिले परिचय से हर्ष के मन में बहुत सम्मान का भाव उदित हो गया था और आभोग नामक छत्र को उपहार में देने के सम्पर्क से वे कुमार के प्रति अत्यन्त प्रेमासक्त हो चुके थे। उन्होंने लज्जित होते हुए से आदरपूर्वक कहा—"हंसवेग! इस प्रकार के महान् आत्मा, महाकुलीन, पुण्यराशि, गुणियों के अग्रणी, परोक्ष मित्र कुमार के स्नेहदर्शाने पर मेरे जैसे का मन स्वप्न में भी अन्यथा कैसे प्रवृत्त हो सकता है? सम्पूर्ण संसार को संतप्त कर देने में समर्थ सूर्य के तेज त्रिभुवन को आनन्दित करने वाले कमलसमूह में आकर ठण्डे पड़ जाते हैं। कुमार के अनेक गुणों से जब हम खरीद लिए गये तो हमें मित्रता का अधिकार क्या? दसोदिशाएँ सज्जनों के मधुर स्वभाव के कारण ही उनकी अवैतनिक दासियाँ बन

एकान्तावदातोत्तानस्वभावसंभृतसादृश्यस्य कुमुदस्य कृते केनाभिहितः शिशिररश्मिः। श्रेयांश्च संकल्पः कुमारस्य। स्वयं बाहुशाली मयि च समालम्बितशरासने सुहृदि हरादृते कमन्यं नमस्यति। संवर्धिता मे प्रीतिरमुना संकल्पेन। अवलेपिनि पशावपि केसरिणि बहुमानो हृदयस्य किं पुनः सुहृदि। तत्तथा यतेथाः यथा न चिरमियमस्मान्क्लेशयति कुमारदर्शनोत्कण्ठा' इति।

हंसवेगस्तु विज्ञापयांबभूव—'देव! किमपरमिदानीं क्लेशयत्यभिजातमभिहितं देवेव। सेवाभीरवो हि सन्तः, तत्रापि विशेषेणायमहङ्कारधनो वैष्णवो वंशः। आस्तां तावदस्मत्स्वामिवंशः। पश्यतु देवः पुरुषस्य हि सेवां प्रति दुर्जन्येवातिवृद्धया दुर्गत्या वाभिमुखीक्रियमाणस्य, कुटुम्बिन्येवासंतुष्टया तृष्णया वा प्रर्यमाणस्य, दुरपत्यैरिव यौवनजनितैर्नानाभिलाषिभिरसत्संकल्पैर्वाकुलीक्रियमाणस्य, जरत्कुमारीमिव परमार्गण-

---

जाती हैं। स्वच्छ हृदयवाले सज्जनों का सादृश्य प्राप्त किये हुए अत्यन्त स्वच्छ स्वभाववाले कुमुदों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा से किसने सिफारिश की है? कुमार का सङ्कल्प श्रेष्ठ है। वे स्वयं भुज पराक्रमशाली हैं फिर धनुष धारण करके जब मैं मित्र के रूप में हूँ तो शिव के अतिरिक्त किशी दूसरे के समक्ष वे क्यों झुकेंगे? इस सङ्कल्प से मेरा प्रेम और भी बढ़ गया है। अभिमानी सिंह जैसे पशु के प्रति भी जब हृदय में आदर है तो फिर मित्र की तो बात ही क्या? तो तुम जाकर वैसा प्रयत्न करना कि कुमार के दर्शन की व्यग्रता हमें बहुत समय तक न सताती रहे।"

हंसवेग ने निवेदन किया—"देव! अब दूसरा क्या कष्ट होगा? देव ने बहुत ठीक कहा है। सज्जन लोग अपनी सेवा से डरते हैं, उस पर भी अहङ्कार का धनी यह वैष्णव वंश! हमारे स्वामी के वंश को तो तब तक रहने दें। देव ही देखें कि, दुष्ट जननी की भाँति अत्यन्त बढ़ी हुई (अतिवृद्धा) दुर्गति मनुष्य को सेवा के प्रति अभिमुख करती है, अतृप्त तृष्णा पत्नी की भाँति उसे प्रेरित करती है। दुष्ट सन्ततियों के सदृश युवावस्थाजन्य अनेक प्रकार की अभिलाषाओं से भरे हुए असत् संकल्प उसे व्याकुल कर डालते हैं। अधिक आयु हो जाने पर भी कुंवारी रहने वाली कन्या के समान वैसी अवस्था को वह देखने लगता हैं

योग्यामतिमहतीं वा अवस्थां पश्यतः, स्वगृहे दुर्बन्धुभिरिव दुःस्थितैः समग्रैर्ग्रहैर्वा ग्राह्यमाणस्याभियोगं, पुरातनैरतिदुस्त्यजैर्भृत्यैरिव मलिनैः कर्मभिरनुवर्त्यमानस्य, सकलशरीरसंतापकरं करीषाग्निमिव दुष्कृतिनः कृतचित्तस्य संप्रवेष्टुं राजकुलमुपहतसकलेन्द्रियशक्तेरिव मिथ्यैव हृदयगतविषयग्रामग्रहणाभिलाषस्य, प्रथममेव तोरणतले वन्दनमालाकिसलयस्येव शुष्यतो द्वाररक्षिभिर्निरुद्धस्य, पीडितस्य प्रविशतो द्वारे हरिणस्येवापरैर्हन्यमानस्य, करिकर्मचर्मपुटस्येव मुहुर्मुहुः प्रतिहारमण्डलकरप्रहारैर्निरस्यमानस्य, निधिपादपप्ररोहस्येव द्रविणाभिलाषादधोमुखीभवतः दूरममार्गणस्याप्यतिविप्रकृष्टविवृतविसर्जितस्योद्वेगं व्रजतः, अकण्ट-

हस्तिनां युद्धशिक्षार्थं चर्ममयो हस्तो। प्रतीहारमण्डलेन दौवारिकसमूहेन। प्रतिसहारेण वेष्टनेन मण्डलं यस्य करस्य तत्प्रहारैश्च। निधिपादपप्ररोहो निधान-

जिसमें दूसरों (धनी लोगों या पति) की खोज की जाती है। दुष्ट बन्धुओं की भाँति समस्त ग्रह उसके घर से इकट्ठे होकर उसे धर लेते हैं। पुराने हो जाने के कारण जिनसे पिण्ड छुड़ाना नहीं बनता ऐसे नौकरों की भाँति गन्दे कर्म उसके पीछे पड़ जाते हैं। पाप का मारा वह सम्पूर्ण शरीर को जलाने वाले भूसे की आग के सदृश राजकुल में प्रवेश पाने के लिए निश्चय करता है। जिसकी इन्द्रियों की समस्त शक्ति शिथिल पड़ गयी हो ऐसे व्यक्ति के सदृश वह विषयों के उपभोग की झूठी साधना में पालता है। पहले ही जब वह तोरण द्वार के पास पहुँचता है तो द्वारपाल उसे रोक देते हैं और बन्दनवार के पत्तों के समान वह वहीं झूलता रहता है। वहाँ के दुखों को झेलकर किसी प्रकार राजकुल की ड्योढ़ी के अन्दर प्रविष्ट भी हो गया तो दूसरे लोग उस पर टूट पड़ते हैं तथा हिरन की भाँति कुटियाते हैं। (वह व्यक्ति) चमड़े के बने हुए हाथी की भाँति बार-बार घूँसे खाकर धकिया दिया जाता है। धनोपार्जन की अभिलाषा से राजकुल में प्रविष्ट हुआ वह इस प्रकार मुँह लटकाये रहता है जैसे जमीन के अन्दर गड़े हुए खजाने के ऊपर लगाये गये पौधे की डाल झुकी हुई हो। वह चाहे कुछ भी मांगे, फिर भी राजकुल में दूर तक प्रविष्ट हुआ वह वेगपूर्वक उसी प्रकार बाहर फेंक दिया जाता है जिस प्रकार बाण को धनुष खींच कर जोर से फेंक देता है। यद्यपि वह काँटे के समान चुभ कर किसी को

कस्यापि चरणतललग्नस्याकृष्य क्षेपीयः क्षिप्यमाणस्य, अमकरकेतोरप्यकालोपसर्पणाप्रकुपितेश्वरदृष्टिदग्धस्य, प्रलयमुपगच्छतः कपेरिव कोपनिर्भर्त्सितस्याप्यभिन्नमुखरागस्य, ब्रह्मघ्न इव प्रतिदिवसवन्दनोद्घृष्टशिरःकपालस्य, स्पर्शरहितस्याशुभकर्माणि निर्वहतः, त्रिशङ्कोरिवोभयलोकभ्रष्टस्य नक्तंदिनमधोमुखस्य तिष्ठतः, वाजिन इव कवलवशेन सुखवाह्यमात्मानं विदधानस्य, अनशनशायिन इव हृदयस्यापि जीवनाशस्य, शरीरं क्षपयतः श्वान इव भिन्नदारपराङ्मुखस्य, नष्टन्यकर्मकरनमात्मानं

पृष्ठजन्मा वृक्षाङ्कुरः। स च सर्वोनिधिप्रभावादधोमुखीभावः प्रणामः। अमार्गणस्यायाचकस्य च अतिविप्रकृष्टः प्राकृतैः। पूर्वं विवृतः स्वतश्च लब्धदर्शन एव। विसर्जितस्तस्मात् एवोद्वेगं मन्युं व्रजतः। मार्गणः शरश्चातिविप्रकृष्टं कर्णान्ते विवृतो विसर्जित उद्गतवेगं याति। अमकरकेतोरशृङ्गारिणोऽपि। अकालेऽप्रस्ताव उपसर्पणं यस्य सः। तथा। अप्रकुपितस्येश्वरस्य हर्षस्य दृष्ट्या दग्धः। ततो विशेषणसमासः। प्रलयः। प्रकृष्टो लयो भित्त्यादिश्लिष्टत्वम्, नाशश्च। कपिसदृशः कपेर्न्नोहितमुखत्वात्। प्रतिदिवसेत्यादि। ब्रह्मघ्नो हतब्राह्मणः कपालमहरत्वन्दते। त्रिशङ्कुर्नाम। चण्डालभावमास्थितोऽपि याजयित्वा विश्वामित्रेण स्वर्गमारोपितः कुपितेनेन्द्रेण हुङ्कारतर्जितः। स च निपतन्नेव विश्वामित्रप्रभावाद् भुवमनवाप्य तत्रैव पूर्वं लम्बमानोऽद्यापि स्थितः। कवलो ग्रासः। सुखेन वाह्यम्। अनयोरैक्यात्। सुखेभ्यो

कष्ट नहीं पहुँचाता फिर भी पैर में लगा हुआ वह निकाल कर फेंक दिया जाता है। कामदेव न होते हुए भी किसी तरह असमय में स्वामी के निकट पहुँच गया तो उस (स्वामी) की कुपित दृष्टि उसे जला कर नष्ट कर डालती है। विनाश के मुख में पैठे हुए उसे डाँट-फटकार सुनने पर भी बन्दर की भाँति अपने मुख पर लाली (प्रसन्नता) बनाये रखनी पड़ती है। मानो उसे ब्रह्म हत्या लगी हो इस प्रकार उसे प्रतिदिन सबके पाँवों पर माथा रगड़ना पड़ता है। मानों अशौच पड़ गया हो इस प्रकार उसे कोई छूना नहीं चाहता। दोनों लोकों से भ्रष्ट त्रिशङ्कु के समान वह रात-दिन मूड़ी लटकाये रहता है। घोड़े के समान वह थोड़े से टुकड़ों के लिए अपने को सुख से वहन करने योग्य बनाये रखता है। भूखे रह कर सोने वाले के समान उसके मन में मर जाने की अभिलाषा सदैव बनी रहती है। कुत्ते के समान अपनी पत्नी से विमुख होकर वह अपने शरीर को कँपाता रहता है तथा नीच कर्म में लगे हुए अपने आपको वह

ताडयतः, प्रेतस्येवानुचितभूमिक्षेप्यमाणान्नपिण्डस्य, बलिभुज इव जिह्वालौल्योपयुक्तपुरुषवर्चसो वृथा विहितायुषो जीवितः, श्मशानपादपानिव पिशाचस्य दग्धभूत्या परुषीकृतान्तराजवल्लभानुपसर्पतः, विपरीतजिह्वाजनितमाधुर्यैरोष्ठमात्रप्रकटितरागै राजशुकालापैः शिशोरिव मुग्धविलोभ्यमानस्य, वेतालस्येव नरेन्द्रप्रभावाविष्टस्य न किंचिन्नाचरतः, चित्रधनुष इवालीकगुणाध्यारोपणैकक्रियानियतनम्रस्य निर्वाणतेजसः, संमार्जनीसमपाजितरजसोऽवकूटस्येव निर्माल्यवाहिनः, कफविकारिण इव दिने दिने

बहिर्भूतम्, कृच्छ्रेण व्याप्यं च। हृदये स्थापिता जीवने वृत्त्युपाय आशा येन, जीवस्य नाशश्च। जघन्यं निकृष्टम्, जघने भवं जघन्यं च सुतम्। अनुचितायामयशस्यायां भूमौ। चितायाः पश्चादनुचितम्। बलिभुजः काकस्य। लौल्यं चापलम्, अभिलाषश्च। उपयुक्तं व्ययीकृतम्, भुक्तं च। वर्चस्तेजः विष्ठा च। वृथा विहितं कृतमायुर्यस्य, विभ्यः पक्षिभ्यो हितमायुर्यस्य, वृथा निष्फलं जीवतः पिशाचस्य मूर्खस्य। भूतिः संपत्, भस्म च। राजानः शुका इव, राजशुकाश्च। राजशुकभेदाः। नरेन्द्रो राजा, मन्त्रविच्च। गुण उत्कर्षः, ज्या च गुणः। निर्वाणं प्रशान्तम्, निर्गतबाणतेजश्च। अवकरकूटो मार्जनीक्षिप्तो रजस्तृणादिसंघातः। उक्तं

स्वयं पीटता रहता है। प्रेत की भाँति भोजन करने के लिए जहाँ तहाँ अर्थात् अनुचित स्थान में बैठा दिया जाता है। वह कौवे की तरह जीभ के चटोरेपन में अँकड़ कर अपनी शक्ति का उपयोग करता है और बेकार ही उम्र गँवाते हुए जीता है। जिस प्रकार श्मशान के पेड़ों पर पिशाच मँडराता रहता है उसी प्रकार वह नासपीटी सम्पत्ति पाकर बदमिजाज राजा के मुँह लगे लोगों के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता रहता है। चिकनी-चुपड़ी बातें करने वाले तथा केवल ओठों पर ही लाली (मुस्कान) दिखाने वाले शुक शावक की भाँति उसे भुलावे में डाले रखते हैं। मदारी के प्रभाव में पड़े बेताल के समान वह भी राजा के भय से अपने मन से कुछ भी नहीं कर सकता। जिस प्रकार चित्र लिखित धनुष चढ़ी प्रत्यञ्चा से झुका हुआ होने पर भी बाण चलाने की शक्ति नहीं रखता उसी प्रकार झूठ-मूठ किसी के गुणों की प्रशंसा करते हुए वह हमेशा नम्र रहता है तथा उसका तेज बुझा-बुझा सा रहता है। झाड़ू से बटोर कर इकट्ठे किये गये कूड़े-कचरे के समान वह शोभा-हीन हुआ करता है(अथवा कभी माला धारण नहीं करता है)। कफ के रोगियों के समान प्रतिदिन उसे प्रतीहार लोग तंग

कटुकैरुद्वेज्यमानस्य, सौगतस्येवार्थशून्यविज्ञप्तिजनितवैराग्यस्य काषाया-ण्यभिलषतः, निशास्वपि मातृबलिपिण्डस्येव दिक्षु विक्षिप्यमाणस्य, अशौचगतस्येव कुशयनजनितसमधिकतरदुःखवृत्तेः, तुलायन्त्रस्येव पश्चात्कृतगौरवस्य तोयार्थमपि नमतः, अतिकृपणस्य शिरसा केवलेना-संतुष्टस्य वचसापि पादौ स्पृशतः, निर्दयवेत्रिवेत्रताडनत्रस्तयेव त्रपयात्य-क्तस्य, दैन्यसंकोचितहृदयहृतावकाशयेवाहोपुरुषिकया परिवर्जितस्य, कु-त्सितकर्माङ्गीकरणकुपितयेवोन्नत्या वियुक्तस्य, धनश्रद्धया क्लेशानुपार्जयतः, स्वबुद्धिबुद्धयावमानं संवर्धयतो मूढस्य, सत्यपि विविधकुसुमाधिवाससुर-

च—'संमार्जनी शोधनी स्यात्संकरोऽवकरस्तथा। क्षिप्तः' इति। अमाल्यवाहित्वेन निःश्रीकत्वमुच्यते। कटुकैः प्रतीहारैः, तीक्ष्णैश्च। अर्थशून्यया निष्फलया। विज्ञप्त्या प्रार्थनया कृतोद्वेगस्य। बौद्धानामपि बाह्यवस्तुशून्यानि विज्ञानानि। अशौचं मृतकादि। कुशयनं कुत्सितशय्या, भूमिश्च कुः। पश्चात्कृतं वर्जितम्, पृष्ठतश्च कृतम्। गौरवं महत्त्वम्, गुरुत्वं च। तोयशब्दो जलोपलक्षणार्थः। तोयं जलं च पादस्पर्शनं पथोऽपि। त्रपया लज्जया। 'आहोपुरुषिका दर्पाद्या स्यात्संभावना-त्मनि'। स्वमात्मा, धनं च। उक्तं च—'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोऽ-

करते हैं। सेवा करने पर भी जब अर्थ-प्राप्ति नहीं होती तो मन में वैराग्य का उदय होने से बौद्ध के समान गेरुआ वस्त्र धारण कर लेने की अभिलाषा करने लगता है। रातों को भी मातृबलि के पिण्डे के समान दिशाओं में (इधर-उधर) वह फेंक दिया जाता है। अशौच में पड़े हुए व्यक्ति के समान ठीक स्थान एवं ठीक ढंग से नहीं सोने के कारण वह बहुत अधिक दुःख को प्राप्त किये रहता है। पीछे वजन बढ़ने से जैसे तराजू झुक जाता है उसी प्रकार आत्मसम्मान को पीछे डालकर वह पानी के लिए भी झुकता रहता है। अत्यन्त दीन हो जाने के कारण सिर से केवल पैर नहीं छूता अपितु असन्तुष्ट होकर बात-बात में पैर छूने के लिए तत्पर रहता है। निष्करुण प्रतीहारों की मार से मानों भयभीत होकर लज्जा उसका परित्याग कर देती है। आत्मसम्मान की भावना (आहो पुरुषिका) दीनता के कारण हृदय के संकुचित कर दिये जाने से मानो स्थान न मिलने के कारण उसे छोड़ देती है। हमेशा निन्दित कर्मों के ही करते रहने के कारण मानो कुपित होकर उन्नति उससे अलग हो जाती है। धन के प्रति श्रद्धा होने से वह केवल दुःखों का ही उपार्जन करता है। वह मूर्ख अपमानों को

भिणि वने तृष्णयाञ्जलिमुपरचयतः, कुलपुत्रस्यापि कृतागस इव भीतभीतस्य समीपमुपसर्पतः, दर्शनीयस्याप्यालेख्यकुसुमस्येव निष्फलजन्मनः, विदुषोऽपि वैधेयस्येवापशब्दमुखस्य, शक्तिमतोऽपि श्वित्रिण इव संकोचितकरयुगलस्य, समसमुत्कर्षेषु निरग्निपच्यमानस्य, नीचसमीकरणेषु निरुच्छ्वासं म्रियमाणस्य, परिभवैस्तृणीकृतस्य, दुःखानिलेनानिर्वृतेर्ज्वलतः, भक्तस्याप्यभक्तस्य, निरूष्मणः संतापयतो बन्धून्, विमानस्याप्यगतिकस्य, च्युतगौरवस्याप्यधस्ताद् गच्छतः, निःसत्त्वस्यापि महामांसविक्रयं कुर्वतः, निर्मदस्याप्यस्वतन्त्रवृत्तेः, अयोगिनोऽपि ध्यानवशीकृतात्मनः, शय्योत्थायं

स्त्रियां धने' इति। अधिवासः सौगन्ध्यम्, भावना च। वनं काननम्, जलं च। तृष्णा धनस्पृहा मृगतृष्णा च। विदुषो जानानस्य, पण्डितस्य च। वैधस्य मूर्खस्य अपगतशब्दं मुखं यस्य, लक्ष्यहीनश्च। शब्दोऽपशब्दः। श्वित्रं कुष्ठव्याधिभेदः। समास्तुल्यशीलाः। अनिर्वृतेरप्रतीतेः। अनिर्वृतेर्गमनत्यागाभावाच्च। भक्तस्य हितैषिणः। अभक्तस्यालब्धसंविभागस्य। विरोधः स्पष्टः सर्वत्र। ऊष्मा गर्वोऽपि। विमानस्य विगतमानस्य, व्योमयानस्य च। गतिरुपायोऽपि। गौरवमादरोऽपि। महामांसं स्वकायोऽपि। मदो गर्वः,क्षीबता च। अयोगिनो विपरीतदैववतः। दरि-

ही अपनी बढ़ोतरी मान बैठता है। विभिन्न प्रकार के फूलों की गन्ध से सुगन्धित वन के होने पर भी उसकी तृष्णाञ्जलि बनी ही रहती है। कुलीन व्यक्ति के समीप भी अपराधी की भाँति डरा-डरा सा जाता है। दर्शनीय होते हुए भी चित्रलिखित फूल के सदृश उसका जन्म लेना बेकार है। विद्वान् होते हुए भी मूर्ख के समान उसके मुख में शब्द नहीं होते। शक्तिशाली होने पर भी उसके दोनों हाथ कोढ़ी की तरह मुड़े रहते हैं। उसकी बरावरी के लोगों का उत्कर्ष होने पर वह बिना आग के ही पकने लगता है और निचले स्तर के व्यक्तियों के बराबरी में आ जाने पर वह बिना साँस के न निकले ही वह मर जाता है। तिरस्कारों के कारण वह तिनका बना दिया जाता है। दुःख की हवा का झोंका उसे हमेशा जलाता रहता है। राजभक्त होने पर भी उसे हिस्से में कुछ नहीं मिलता। उसकी ऊष्मा (गर्मी) दूर हो जाती है फिर भी बन्धुजनों को जलाता रहता है। सम्मानहीन होने पर भी वह अपने पद से नहीं डिगता है। गौरवविहीन होने पर भी वह नीचे की ओर गिरता जाता है। सत्त्वविहीन हो जाने पर भी वह महामांस का विक्रय करता है। मदविहीन हो जाने पर

प्रणमतो दग्धमुण्डस्य, गोत्रविदूषकस्य नक्तंदिनं नृत्यतो मनस्विजनं हासयतः, कुलाङ्गारस्य वंशं दहतः, नृपशोस्तृणेऽपि लब्धे कन्धरामवनमयतः, जठरपरिपूरणमात्रप्रयोजनजन्मनो मांसपिण्डस्य गर्भरोगस्य मातुः, अपुण्यानां कर्मणामाचरणाद् भृतकस्य किं प्रायश्चित्तम्, का प्रतिपत्तिक्रिया, क्व गतस्य शान्तिः, कीदृशं जीवितम्, कः पुरुषाभिमानः, किनामानो विलासाः, कीदृशी भोगश्रद्धा, प्रबलपङ्क इव सर्वमधस्तान्नयति दारुणो दासशब्दः। धिक्तदुच्छ्वसितमुपयातु निधनं धनम्, अभवनिर्भूतेरस्तु तस्या नमो भगवद्भ्यस्तेभ्यः सुखेभ्यस्तस्यायमञ्जलिरैश्वर्यस्य तिष्ठतु दूर एव सा श्रीः शिवं स परिच्छदः करोतु दयथमुत्त-

द्रस्येत्यन्ये, अप्राप्तबलस्येत्यन्ये, चित्तवृत्तिनिरोधाभाववतश्च। दग्धमुण्डस्यालपहृतशिरसः, व्रतिभेदश्च दग्धमुण्डः। विदूषको नायकश्च, नर्मसुहृच्च। वंशो वेणुः। दारुणो दुःसहः, काष्ठस्य च। सर्वमस्त्विति योजना। मुखप्रियेत्यादावेवंविधः सेवकोऽपि यदि मर्त्यमध्ये गण्यते तद्राजिलोऽपि भोगी कथं न भवति। पुलाको व्युतः कलमः कथं न स्यादिति संबन्धः। तपस्वी वराकोऽपि। सुखे विद्यमानस्य

भी वह पराधीन प्रवृत्ति का ही बना रहता है। योगी न होने पर भी उसका आत्मा ध्यान के वशीभूत ही रहा करता है। दग्धमुण्ड साधु के समान बिस्तर से उठते ही वह प्रणाम करने लगता है। खानदानी विदूषक के समान वह दिन रात नाच-कूद कर मनस्वी व्यक्ति को हँसाता रहता है। कुलाङ्गार के समान कुल को जला डालता है। मनुष्य के रूप में पशु वह तिनके के लिए भी कन्धा झुका देता है। उसका जन्म केवल पेट का गड्ढा भरने के लिए होता है। वस्तुतः वह तो मांसपिण्ड के रूप में निकला हुआ माता का गर्भ रोग है। पुण्यहीन कार्यों के सतत आचरण से वह सेवक कौन सा प्रायश्चित्त करे? कौन सा उपाय करे? कहाँ जाने पर उसे शान्ति मिले? उसका जीवन कैसा? अभिमान कैसा? विलास कैसे? सुख भोगने की अभिलाषा कैसी? उसके नाम के साथ जुड़ा हुआ 'दास' शब्द कीचड़ की ढाब के समान सबको नीचे पहुँचा देता है। उस जीवन को धिक्कार है। वह धन विनष्ट हो जाय, उस वैभव का सत्यानाश हो, उन सुखों को दण्डवत प्रणाम है, उस ऐश्वर्य को हथजोरी है वह लक्ष्मी दूर रहे, उस टीम-टाम से जान बचे, जिसके चलते पृथिवी पर माथा

माङ्गं मा गमिष्यत्यशापानुग्रहक्षमस्तपस्वी मुखप्रियरतः क्लीबो पूतिमांसमयः कृमिरगण्यमानो नरकः, पादरजोधूसरोत्तमाङ्गो जङ्गमः पादपीठः पुंस्कोकिलः काकुक्वणितेषु, शिखी मुखरकेकासु, स्थूलकूर्मः क्रोडकषणेषु, श्वा नीचचाटुकरणेषु, कृकलासः शिरोविडम्बनासु, जाहक आत्मसंकोचनेषु, वेणुर्मूर्च्छनासु, वेश्याकायः करणबन्धक्लेशेषु, पलालं सत्त्वशालिषु, प्रतिपादकः पादसंवाहनासु, कन्दुकः करतलताडनेषु, वीणादण्डः कोणाभिघातेषु, वराकः सेवकोऽपि मर्त्यमध्ये राजिलोऽपि वा भोगी, पुलाकोऽपि वा कलमो, वरं क्षणमपि कृता मानवता मानवता

सुखदायिनः रतः रक्तः। मुख आरम्भे, वदने च। प्रियं रतं मोहनं यस्य। क्लीबोऽशक्तः, शरण्यश्च। पूति दुष्टगन्धम्। अगण्यमानो न गणनार्हः। कुत्सितो नरो नरकः अगण्यश्च मानो यस्य सोऽगण्यमानो नरको भीमनामा। अवीच्यादिर्वा। काकुक्वणितम्, मधुरवचनम्। भिन्नध्वनिर्वक्रत्वकथनं निर्व्यापारत्वाच्छोकाद्वा। कृकलासोऽप्यनवरतं शिर उन्नमयन्नास्ते। जाहकः आखुतुल्यः प्राणिभेदः, कूर्म इत्यन्ये। मूर्च्छना मोहः,स्वराणां विशिष्टा स्थितिश्च। करणं शरीरम्, मन्त्रो वा। कामशास्त्रोदितकरणानि। कोणो लगुडश्च। यथा। शालिषु पलालमप्रयोजनं तद्वदसौ। राजिलो डिण्डिभाख्यो निर्विषः सर्पः। पुलाकः फलदरिद्रः। शालिः

रगड़ना पड़े। राजसेवक ऐसा तपस्वी है जो क्रोधित होकर शाप नहीं दे सकता और प्रसन्न होकर कृपा नहीं कर सकता। केवल मुख से मीठी बात करनेवाला हिजड़ा है। मवाद और मांस से भरा कीड़ा है। जिसकी कोई गणना नहीं ऐसा नर (मनुष्य या नरक) है। दूसरों के चरणों की धूल से धूसरित मस्तकवाला चलता-फिरता पाद पीठ है, लल्लो-चप्पो करने वाला पुरुष कोकिल है, मधुर ध्वनि करने वाला मयूर है, धरती पर छाती घिसटने वाला मोटा कछुआ है, चाटुकारिता करने वाला कुत्ता है, सिर हिलाने वाला गिरगिट है, अपने को सिकोड़ कर रखने वाला चूहा है, राग अलापने वाला वेणु है, शरीर के बन्धनजन्य दुःखों को सहने में (अथवा कामशास्त्रोक्त विविध बन्धों-मुद्राओं के क्लेश सहने में) वेश्या का शरीर है, सत्त्ववान् व्यक्तियों में घास-फूस है, दाबने में पैर का बोझ उठाने वाला पलंग का पावा है। हाथ की मार सहने में गेंद है और कोणाभिघात (अथवा छड़ी की मार) का अभ्यस्त वीणादण्ड है। बेचारे राजसेवक को यदि मनुष्यों में गिना जाय तो राजिल (पानी में रहने वाला

न मतो नमतस्त्रैलोक्याधिराज्योपभोगोऽपि मनस्विनः। तदेवमभिनन्दितास्मदीयप्रणयो देवोऽपि दिवसैः कतिपयैरेव परागतः प्राग्ज्योतिषेश्वर इति करोतु चेतसि' इत्युक्त्वा तूष्णीमभूत्। अचिराच्च नमस्कृत्य निर्जगाम।

राजापि रजनीं तां कुमारदर्शनौत्सुक्यस्वीकृतहृदयः समनैषीत्। आत्मार्पणं हि महताममूलमन्त्रमयं वशीकरणम्। प्रभाते च प्रभूतं प्रतिप्राभृतं प्रधानप्रतिदूताधिष्ठितं दत्त्वा हंसवेगं प्राहिणोत्। आत्मनापि ततः प्रभृति प्रयाणकैरनवरतैरभ्यमित्रं प्रावर्तत। कदाचित्तु राज्यवर्धनभुजबलोपार्जितमशेषं मालवराजसाधनमादायागतं समीप एवावासितं लेखहारकाद्भण्डिमश्रृणोत्। श्रुत्वा चाभिनवीभूतभ्रातृशोकहुताशनस्तद्दर्शनकातरहृदयो बभूव मूर्च्छान्धकारमिव विवेशातिष्ठच्च समुत्सृष्टसकलव्यापारः

श्यामाकप्रायः। मानवताऽहंकारिणा, मानवस्य कर्म मानवता पौरुषम्। न मतः नेष्टः, नमतः प्रणामं कुर्वतः।

मालान्योषधयः। साधनं हस्त्यादि। निभृतः सनयः।

ढोंढ़ा साँप) को भी साँप मानना होगा, पुआल को भी धान मानना होगा। मनस्वियों के लिए क्षण भर भी मानवता के गौरव के साथ जीना अच्छा है किन्तु यदि मस्तक नवाना पड़े तो त्रैलोक्य के राज्य का उपभोग भी उनके लिए अच्छा नहीं है। तो इस प्रकार हमारे प्रेम को स्वीकार करने वाले देव भी यह समझें कि कुछ ही दिनों में प्राग्ज्योतिषेश्वर आ रहे हैं।'' यह कहकर हंसवेग चुप हो गया। कुछ ही देर बाद प्रणाम करके वह वहाँ से चला गया।

राजा ने भी कुमार के दर्शन की उत्सुकता से पूर्ण हृदय से युक्त होकर वह रात बितायी। आत्मसमर्पण महापुरुषों का जड़ी-बूटी या मन्त्र-तन्त्र से रहित वशीकरण है। प्रातःकाल उन्होंने प्रधान दूत के साथ बदले में प्रचुर उपहार देकर हंसवेग को बिदा किया। तब से लेकर स्वयं भी सेना के कूच करने को अनवरतजारी रखा। एक दिन लेखहारक ने आकर यह सूचना दी कि राज्यवर्धन के बाहुबल से जीती गयी मालवराज की समस्त सेना को साथ लेकर भण्डि आ रहा है और निकट पहुँच गया है। सुनते ही उनके हृदय में भ्रातृशोक की अग्नि नयी हो गयी तथा भण्डि को देखने के लिए उनका हृदय कातर हो उठा। मानो बेहोशी के अंधेरे में डूब गये हों इस प्रकार सारे कार्यों को छोड़कर

वारः प्रतीहारनिवारणनिभृतनिःशब्दपरिजने निजमन्दिरे सराजकपरिवारस्तदागमनमुदीक्षमाणो मुहूर्तम् ।

अथ भण्डिरेकेनैव वाजिना कतिपयकुलपुत्रपरिवृतो मलिनवासा रिपुशरशल्यपूरितेन निखातबहुलोहकीलकपरिकररक्षितस्फुटनेनेव हृदयेन, हृदयलग्नैः स्वामिसत्कृतैरिव श्मश्रुभिः, शुचं समुपदर्शयन्दूरीकृतव्यायामशिथिलभुजदण्डदोलायमानमङ्गलवलयैकशेषालङ्कृतिरनादरोपयुक्तताम्बूलविरलरागेण शोकदहनदह्यमानस्य हृदयस्याङ्गारेणेव, दीर्घनिःश्वासवेगनिर्गतेनाधरेण शुष्यता स्वामिविरहविधृतजीवितापराधवैलक्ष्यादिव, बाष्पवारिपटलेन पटेनेव प्रावृतवदनः, विशन्निव दुर्बलीभूतैः स्वाङ्गमत्रपयाङ्गैर्वसन्निव च व्यर्थीभूतभुजोष्माणमायतैर्निःश्वसितैः, पातकीव, अपराधीव, द्रोहीव मुषित इव, छलित इव, यूथपतिपतनविषण्ण इव

अथेत्यादि । राजद्वारं भण्डिराजगामेति संबन्धः ।

श्मश्रुरिति । शोकवशेन ततो विक्षिप्तत्वाद्वा ।

राजसमूह तथा अन्तःपुर के लोगों के साथ भण्डि के आने की प्रतीक्षा करते हुए वे क्षण भर अपने महल में ठहरे । प्रतीहारों द्वारा रोक लगा देने के कारण महल के समस्त परिजन संकेत से काम करते थे ।

तब अकेले ही घोड़े पर सवार, कुछ कुलपुत्रों से घिरा हुआ, गन्दे कपड़े पहने हुए, शत्रु के बाणों के घावों से जिसकी छाती भरी हुई थी तथा लोहे की बहुत सी कीलों वाले परिकर को पहनने से जिसकी छाती सुरक्षित थी ऐसा, स्वामी के आदर से मानो जिसकी दाढ़ी छाती तक लटक रही थी, तथा जिससे उसके शोक का पता चल रहा था ऐसा, व्यायाम के छूट जाने से भुजदण्डों के शिथिल पढ़ जाने से जिसका मंगल कंगन खिसक कर नीचे कलाई तक आ गया था ऐसा, बेमन से चबाये हुए पान की लाली शोकाग्नि से जले हुए हृदय के अंगारे की भाँति लग रहा था, जिसका अधर लम्बी साँस के निकलते रहने से इस प्रकार सूख रहा था मानो स्वामी के वियोग के बाद भी स्वयं जीवित रहने के अपराध से लज्जित था ऐसा; जिसके आँसुओं की झड़ी ऐसी लग रही थी मानो उसके मुँह पर शोकवस्त्र ढँका हो ऐसा, लज्जा के कारण जिसके अङ्ग अपने आप में सिमटते जा रहे थे ऐसा, जो अपनी लम्बी साँसों से मानो बेकार पड़ गयी बाहुओं की उष्णता को छोड़ रहा था ऐसा, जो पापी, अपराधी, वैरी, लुटा हुआ

वेगदण्डवारणः सूर्यास्तमयनिःश्रीक इव कमलाकरः, दुर्योधननिधनदुर्मना इव द्रौणिः, अपहृतरत्न इव सागरो राजद्वारमाजगाम। अवतीर्य च तुरङ्गमादवनतमुखो विवेश राजमन्दिरम्। दूरादेव च विमुक्ताक्रन्दः पपात पादयोः।

अवनिपतिरपि दृष्ट्वा तमुत्थाय प्रविरलैः पदैः प्रत्युद्गम्योत्थाप्य च गाढमुपगूह्य कण्ठे करुणमतिचिरं रुरोद। शिथिलीभूतमन्युवेगश्च पुरेव पुनरागत्य निजासने निषसाद। प्रथमप्रक्षालितमुखे च भण्डी मुखमक्षालयत्। समतिक्रान्ते च कियत्यपि कालकालकलापे भ्रातृमरणवृत्तान्तमप्राक्षीत्। अथाकथयच्च यथावृत्तमखिलं भण्डिः। अथ नरपतिस्तमुवाच—'राज्यश्रीव्यतिकरः कः?' इति। स पुनरवादीत्—'देव! देवभूयं गते देवे राज्यवर्धने गुप्तनाम्ना च गृहीते कुशस्थले देवी राज्यश्रीः

तथा ठगा गया सा लग रहा था ऐसा, जिसकी ऐसी दीन दशा थी मानो यूथपति के गिरने से तरुण हाथी की हो जाती है ऐसा, जो उस सरोवर की भाँति था जो सूर्यास्त हो जाने पर शोभाविहीन हो जाता है ऐसा, जिस प्रकार दुर्योधन की मृत्यु से अश्वत्थामा दुःखी हुआ था उसी प्रकार राज्यवर्धन की मृत्यु से जो दुःखी था ऐसा, जो उस समुद्र के सदृश था जिसके सारे रत्न हर लिये गये हों ऐसा भण्डि राजद्वार पर आया। घोड़े से उतर कर मुँह झुकाये हुए ही वह राजभवन में प्रविष्ट हुआ। दूर से धाड़ मार कर रोते हुए वह (देवहर्ष के) पैरों पर जा गिरा।

राजा (हर्ष) भी उसे देख कर उठे तथा लड़खड़ाते कदमों से आगे बढ़ कर उसे उठाया तथा कस कर उसका आलिङ्गन किया फिर स्वयं भी देर तक फूट-फूट कर रोते रहे। शोक का वेग जब कुछ कम हुआ तो पूर्व की भाँति पुनः आसन पर आकर बैठ गये। जब भण्डि अपना मुख धो चुका तभी उन्होंने भी अपना मुख धोया। थोड़ा समय बीत जाने पर उन्होंने भाई की मृत्यु का वृत्तान्त पूछा। जैसा घटा था वैसा ही सारा का सारा वृत्तान्त भण्डि ने कह सुनाया। तब राजा ने उससे कहा—"राज्यश्री का क्या हुआ?" वह (भण्डी) फिर बोला—"देव राज्यवर्धन के दिवंगत हो जाने पर जब गुप्त नामक व्यक्ति ने कुश स्थल (कान्यकुब्ज) पर अधिकार कर लिया तो देवी राज्यश्री बन्धन से

परिभ्रश्य बन्धनाद्विन्ध्याटवीं सपरिवारा प्रविष्टेति लोकतो वार्तामश्रृण-वम्। अन्वेष्टारस्तु तां प्रति प्रभूताः प्रहिताः जना नाद्यापि निवर्तन्ते' इति। तच्चाकर्ण्य भूपतिरब्रवीत्—'किमन्यैरनुपदिभिः यत्र सा तत्र परित्यक्तान्यकृत्यः स्वयमेवाहं यास्यामि। भवानपि कटकमादाय प्रवर्ततां गौडाभिमुखम्।' इत्युक्त्वा चोत्थाय स्नानभुवमगात्। कारितशोकश्मश्रुवपनकर्मणा च महाप्रतीहारभवनस्नातेन, शारीरिकवसनकुसुमाङ्गरागालङ्कारप्रेषणप्रकटितप्रसादेन भण्डिना सार्धमभुक्त, निनाय च तेनैव सह वासरम्।

अथापरेद्युरुषस्येव भण्डिर्भूपालमुपसृत्य व्यज्ञापयत्—'पश्यतु देवः श्रीराज्यवर्धनभुजबलार्जितं साधनं सपरिबर्हं मालवराजस्य' इति। नरपतिना स 'एवं क्रियताम्' इत्यभ्यनुज्ञातो दर्शयां बभूव। तद्यथा—अनवरतगलितमदधारामोदमुखरमधुकरजूटजटिलकटपट्टपङ्किलगण्डान्, गण्ड-

---

छूट कर अपने परिवार के साथ विन्ध्याचल के जंगल में चली गयी। यह बात मैंने लोगों के मुह से सुनी है। खोज-बीन करने वाले बहुत से लोग भेजे गये हैं जो अभी तक नहीं लौटे हैं।" यह सुन कर राजा बोले—"अन्य ढूंढने वालों से क्या मतलब! जहाँ वह राज्यश्री है वहाँ दूसरे काम छोड़ कर स्वयं मैं जाऊँगा। तुम भी सेना लेकर गौड़ पर चढ़ाई करो।" ऐसा कह कर हर्ष उठे तथा नहाने के स्थान को वे चले गये। भण्डि ने शोक के कारण बढ़े हुए केशों का क्षौर कराया तथा महा प्रतीहार-भवन में स्नान किया। हर्ष ने उसके लिए शरीर पर पहने जाने वाले कपड़े, पुष्प अंगराग और आभूषण भेज कर उसके प्रति अपनी कृपा प्रकट की और उसी (भण्डि) के साथ भोजन किया। उसी के साथ देव हर्ष ने वह दिन भी बिताया।

"तब दूसरे दिन उषःकाल में ही भण्डि ने राजा के समीप आकर निवेदन किया—"श्री राज्यवर्धन के बाहुबल से मालवराज की जो सेना साज-सामान के साथ जीती गयी है उसे देव देखने की कृपा करे।" राजा ने "ऐसा ही किया जाय" जब ऐसा आदेश दिया तो उसने वह सब सामान दिखाया जैसे कि—लगातार चूने वाले मद जल की मादक गन्ध से आकृष्ट होकर जूझते हुए भौंरे जिनके गण्ड स्थलों को पंकिल बना रहे थे ऐसे, जो चलते-फिरते गण्डशैलों के समान

शैलानिव जङ्गमान्, गम्भीरगर्जितरवाञ्जलधरानिव महीमवतीर्णा-नुत्फुल्लसप्तच्छदवनामोदमुचः, शरद्दिवसानिव पुञ्जभूतान्, अनेकसहस्र-संख्यान्करिणः, चारुचामीकरचित्रचामरमण्डलमनोहरांश्च हरिणरंहसो हरीन्, बालातपविसरवर्षिणां च किरणैरनेकेन्द्रायुधीकृतदशदिशामलं-काराणां विशेषान्, विस्मयकृतः स्मरोन्मादितमालवीकुचपरिमलदुर्ललि-तांश्च निजज्योत्स्नापूरप्लावितगन्तानपि तारान्हारान्, उडुपतिपाद-संचयशुचीनि निजयशांसीव बालव्यजनानि, जातरूपमयनालं च निवास-पुण्डरीकमिव श्रियः श्वेतमातपत्रम्, अप्सरस इव बहुसमररससाहसा-नुरागावतीर्णा वारविलासिनीः सिंहासनशयनासन्दीप्रभृतीनि राज्योप-करणानि, कालायसनिश्चलीकृतचरणयुगलं च सकलं मालवराजलोकम्, अशेषांश्च ससंख्यालेख्यपत्रान्, सालङ्कारापीडग्रीडान् कोशकलशान्। अथालोच्य तत्सर्वमवनिपालः स्वीकर्तुं यथाधिकारमादिशदध्यक्षान् अन्य-

---

लग रहे थे ऐसे, जो पृथिवी पर उतरे हुए बादलों के समान चिग्घाड़ रहे थे ऐसे तथा जिनकी गन्ध खिले हुए तमाल वन के सदृश फैल रही थी ऐसे अनेक हजार हाथी, सुन्दर, सुनहरी तथा विचित्र चौरियों के कारण मनोहर एवं हरिण की तरह वेगवाले घोड़े, जिनकी किरणें बालातप की भाँति निकल रही थीं तथा जो रङ्ग-बिरङ्गी प्रभा से दिशाओं में अनेक इन्द्र धनुषों का निर्माण कर रहे थे ऐसे बहुत से आभूषण, आश्चर्य उत्पन्न करने वाले शुद्ध मोतियों से पीटे गये तारहार जिसमें कामोन्माद युक्त मालवी स्त्रियों के स्तनों के परिमल लगे हुए थे तथा जो अपनी ज्योत्स्ना के प्रभाव से दिशाओं को प्लावित कर रहे थे, चन्द्र-किरणों के सदृश धवल चँवर जो हर्ष की अपनी कीर्त्ति के सदृश थे, लक्ष्मी के निवास-कमल सदृश सुवर्ण के डण्डे से युक्त छत्र, अनेक युद्धों को देखने के साहस तथा अनुराग के कारण (स्वर्ग लोक से) पृथिवी पर उतर आयी हुई अप्सराओं के समान वेश्याएँ, सिंहासन शयन करने योग्य कुर्सी आदि राज्य के उपकरण, लोहे की बेड़ी से निश्चल किये गये दोनों पैरों वाले समस्त मालवीय राजा लोग, जिन पर बिवरण की पट्टियाँ लगी थी तथा जिनके गले में आभूषणों की बनी मालाएँ पड़ी थीं ऐसे कोष से भरे कलसे। सब सामान को देखकर राजा हर्ष ने उसे विधिपूर्वक स्वीकार करने के लिए अपने विभिन्न अधिकारी

स्मिश्चाहनि हयैरेव स्वसारमन्वेष्टुमुच्चचाल विन्ध्याटवीमवाप च परिमितैरेव प्रयाणकैस्ताम्।

अथ प्रविशन्दूरादेव दह्यमानषष्टिकबुसविसरविसारिविभावसूनां वन्यधान्यबीजधानीनां धूमेन धूसरिमाणमादधानैः शुष्कशाखासंचयरचितगोवाटवेष्टितविकटवटैः व्यापादितवत्सरूपकरोषाविष्टगोपालकल्पितव्याघ्रयन्त्रैः, अयन्त्रितवनपालहठह्रियमाणपरग्रामीणकाष्ठिककुठारैः, गहनतरुखण्डनिर्मितचामुण्डामण्डपैर्वनप्रदेशैः प्रकाश्यमानमटवीप्रायप्रान्ततया कुटुम्बभरणाकुलैः कुद्दालप्रायकृषिभिः कृषीवलैरबलवद्भिरुच्चभागभाषितेन भज्यमानभूरिशालिखलक्षेत्रखण्डलकमल्पावकाशैश्च कापिलैः, कालायसैरिव कृष्णमृत्तिकाकठिनैः, स्थानस्थानस्थापितस्थाणूत्थितस्थूल-

---

अध्यक्षों को आदेश दिया। दूसरे दिन बहन राज्यश्री को खोजने के लिए घोड़ों से विन्ध्याटवी की ओर उन्होंने प्रस्थान किया तथा कुछ ही पड़ावों के बाद वे वहाँ जा पहुँचे।

तत्र प्रवेश करते ही उन्होंने दूर ही से, जंगली धानों के खलिहानों की जलती हुई साठी के भूसे की आग के धूएं से धुमैले वन प्रदेश वाले, जहाँ कहीं पुराने खंखाड़ बरगद के चारों ओर सूखी लकड़ियों की ढेर लगा कर गायों का बाड़ा बना दिया गया था ऐसे, जहाँ पर कहीं बछड़ों पर बाघ द्वारा आक्रमण किये जाने से खीझ कर ग्वालों बाघ को फँसाने के लिए जाल लगा रखा था, जहाँ स्वतन्त्र वन पालों ने गाँवों से आकर लकड़ी काट ले जाने वाले लकड़हारों की कुल्हाड़ियाँ जबर्दस्ती छीन ली थी ऐसे, जहाँ पेड़ों के घने झुरमुठ में चामुण्डा देवी का मण्डप बना हुआ था ऐसे, जहाँ वनग्राम के चारों ओर जङ्गल के अतिरिक्त और कुछ नहीं था इसीलिए किसान अपने परिवार का पेट पालने के लिए बेचैन रहते थे तथा उसी चिन्ता में दुर्बल होकर जोर-जोर से आवाज करते हुए केवल कुदाल से कोड़ कर परती ज़मीन तोड़ते और खेत के टुकड़े निकाल लेते थे ऐसे, जहाँ के खेत छोटे-छोटे और कहीं कहीं पर थे ऐसे, जहाँ पर जमीन काश से भरी हुई थी ऐसे, जहाँ की काली मिट्टी लोहे की तरह कठोर थी तथा कुदाल ही उनका एक आसरा थी ऐसे, जहाँ स्थान-स्थान पर काटने से पेड़ों के पड़े हुए ठूंठों में फिर से पत्ते निकल गये थे ऐसे,

पल्लवैः दुरुपगमश्यामाकप्ररूढिभिरलम्बुषबहुलैः, अविरहितकोकिलाक्षक्षुपैर्विरलविरलैः केदारैः, कृच्छ्रात्कृष्यमाणैर्नातिप्रभूतप्रवृत्तगतागतप्रहतभुवमुपक्षेत्रमुपरचितैरुच्चैर्मञ्चैश्च सूच्यमानश्वापदोपद्रवं दिशि दिशि च प्रतिमार्गद्रुमकृतानां पथिकपादप्रस्फोटनधूलिधूसरैर्नवपल्लवैर्लाञ्छितच्छायानाम्, अटवीसुलभसालकुसुमस्तबकाङ्कितनवखातकूपकोपकण्ठप्रतिष्ठितनागस्फुटानामच्छिद्रकटकल्पितकुटीरकाणाम्, कुटिलकीटवेणीवेष्ट्यमानसक्तुशारशरावश्रेणीश्रितानाम्, अध्वगजनजग्धजम्बूफलास्थिशबलसमीपभुवाम्, उद्धूलधूलीकदम्बस्तबकप्रकरपङ्किलिनीनाम्, कण्टकिततर्करीचक्राक्रान्तकाष्ठमञ्चिकामुषिततृषाम्, तिम्यत्तलशीतलसिकतालकलशोशमितश्रमाणाम्, आश्यानशैवलश्यामलिततालिञ्जरजायमानजलजाडिमाम्,

---

जहाँ खेतों में घनासाँवा लहरा रहा था तथा छुईमुई भी खूब बढ़ आयी थी ऐसे, जहाँ पर तालमखाने के छोटे-छोटे पौधों से भी चलने में कठिनाई होती थी, खेत बहुत कठिनाई से जोते जाते थे, आने जाने वाले कम थे इसलिए पगडण्डियाँ साफ दिखायी नहीं पड़ती थीं, खेतों के पास ऊँचे बँधे मचानों से यह सूचित हो रहा था कि यहाँ वन्य पशु उपद्रव करते हैं ऐसे, जहाँ जङ्गल के प्रवेश मार्गों पर प्याउओं का विशेष प्रबन्ध था; मार्ग के पेड़ों के झुरमुट में प्याऊ की जगह बना ली गयी थी; राहगीर वहाँ आते और पल्लवों की टहनी तोड़ कर पाँवों की धूल झाड़ लेते तथा छाया में बैठ जाया करते थे, नयी खोदी गयी छोटी कुइयाँ (कूपिकाओं) पर जङ्गली साल के फूलों के गुच्छे टाँग दिये गये थे और निकट में ही नागफनी से घेर दिया गया था; वहीं पर प्याऊ की मड़इया घने घास-फूसों से छा ली गयी थी; सत्तू खाकर राहगीरों ने जो सिकोरे फेंक दिये थे उन पर बैठी जङ्गली मक्खियाँ भिनभिना रही थीं; प्याऊ के नजदीक की जमीन राहगीरों द्वारा खाये गये जामुन की गुठलियों से रंग-बिरंगी हो रही थी; कदम्बों के फूलों से लदी हुई टहनियाँ तोड़ कर धूल में फेंक दी गयी थीं काठ घड़ौचियों पर प्यास बुझाने के लिए मिट्टी की गगरियाँ, जिन पर काँटे जैसी बुन्दकियों की सजावट बनी थी, रखी हुई थीं; बालू की ठण्ढी कलसियों में पानी पड़ जाने से जब वे रिसती थीं तो उन्हें ही देखकर राहगीरों की थकावट दूर हो जाती थी, कुछ सिम-सिम सिरवालों के लपेट देने से नीले रङ्ग के नादों का पानी खूब ठण्ढा हो गया था, पानी निकालकर पानी के घड़ों में लाल रंग

उदकुम्भाकृष्टपाटलशर्कराशकलशिशिरीकृतदिशाम्, घटमुखघटितकटहार-पाटलपुष्पपुटानाम्, शीकरपुलकितपल्लवपूलीपाल्यमानकोष्यसरसशिशु-सहकारफलजूटीजटिलस्थाणूनाम्, विश्राम्यत्कार्पटिकपेटकपरिपाटीपीय-मानपयसामटवीप्रवेशप्रपाणां शैत्येन त्याजयन्तमिव ग्रैष्ममूष्मणां क्वचिद-न्यत्र ग्राहयन्तमिवाङ्गारीयदारुसंग्रहदाहिभिः व्योकारैः, सर्वतश्च प्रातिवेश्य-विषयवासिना सन्नासन्नग्रामगृहस्थगृहस्थापितस्थविरपरिपाल्यमानपाथेय-स्थगितेन कृतदारुणदारुव्यायामयोग्याङ्गाभ्यङ्गेन स्कन्धाध्यासितकठोर कुठारकण्ठलम्बमानप्रातराशपुटेन पाटच्चरप्रत्यवायप्रतिपन्नपटच्चरेण काल-वेत्रकत्रिगुणव्रततिवलयपाशग्रथितग्रीवाग्रथितैः पटवीटावृतमुखैः बोटकूटे-रूढशरीरिणा पुरःसरबलद्बलीवर्दयुगसरेण नैकटिककुटुम्बिकलोकेन काष्ठ-संग्रहार्थमटवीं प्रविशता श्वापदव्यधनव्यवधानबहलीसमारोपितकुटीकृत-

---

की शक्कर रखी गयी थी जो चारों ओर ठढक पहुँचा रही थी, घड़े में मुँह गेहूँ की नालियों या तिनके के ढक्कन से ढँके थे और उनके ऊपर पानी को सुगन्धित करने के लिए गुलाब के फूल रखे गये थे, भीतर थूनियों के सिरों पर बाल सहकार के फलों की डालें झूल रही थी और हरे पत्तों पर पानी की छींटा देकर उनके झुराते हुए फलों को ताजा रखा जा रहा था, झुण्ड के झुण्ड यात्री प्याऊ में आकर पानी पी रहे थे; प्रपाओं की शीतलता से ग्रीष्म की गर्मी कम पड़ रही थी; दूसरी ओर लकड़ी की ढेरों में आग लगाकर अङ्गार बनाने वाले लुहार फिर उतनी ही गर्मी पैदा कर रहे थे ऐसे, जहाँ पडोसी प्रदेश में रहने वाले निकटवासी कुणबी (कुटुम्बिक) जाति के लोग लकड़ियाँ इकट्ठी करने के लिए जङ्गल में आ रहे थे; निकट के गाँवों में रहने वाले गृहस्थों के घर पर अपने भोजन के सामान रख आये थे; वृद्धजनों की रखवाली के लिए बैठा आये थे; लकड़ियों के साथ कुल्हाड़ा भाजने के व्यायाम को सहने के लिए उन्होंने शरीर में तेल की मालिश कर रखी थी; चोरों के भय से फटे-पुराने कपड़े पहन रखे थे, उनके गले में काली बेंत की तीन लड़ों वाली माला लपेटी हुई थी और उसी से पानी की लम्बोतरी घड़ियाँ, जिनके मुँह में डाट लगी थी, लटकी हुई थीं; उनके आगे लकड़ी लादने के लिए बैलों की जोड़ी चल रही थी; आधे गाँव के बाहर वाले जङ्गल में विचर रहे थे; जङ्गल के खूँख्वार जानवरों के आखेट में घुसने के लिए टट्टियाँ लगायी गयी थी और शिकारी कुटपासी की गेडुरी बनाकर साथ में लिये हुए थे; उनके हाथ में पशुओं

कूटपाशैश्च गृहीतमृगतन्तुतन्त्रीजालवलयवागुरैः, बहिर्व्याधैर्विचरद्भिरंसावसक्तवीतंसव्यालम्बमानवालपाशिकैश्च संगृहीतग्राहककर्करकपिञ्जलादिपञ्जरकैः शाकुनिकैः, संचरद्भिश्च्युतलासकलेशलिप्तलताबधूलट्वालम्पटानां चपेटकैः, पाशकशिशूनामटद्भिः तृणस्तम्बान्तरिततित्तिरिलायमानकौलेयककुलचाटुकारैश्चलाद्रहगमृगयां मृगयुयुवभिः क्रीडद्भिः, परिणतचक्रवाककण्ठकषायरुचां शीधव्यानां वल्कलानां कलापान्, नातिचिरोद्धृतानां च धातुत्विषां धातकीकुसुमानां गोणीरगणिताः पिचव्यानां चातसीगणपट्टमूलकानां पुष्कलान्संभारान्, भारांश्च मधुनो माक्षिकस्य मयूराङ्गजस्याविलष्टमधूच्छिष्टचक्रमालानां लम्बमानलामज्जकमुञ्जजूटजटानामपत्वचां खदिरकाष्ठानां कुष्ठस्य कठोरकेसरिसटाभारबभ्रुणश्च रोध्रस्य भूयसो भारकान्, लोकेनादाय व्रजता प्रविचितविविधवनफलपूरितपिटकमस्त-

मधुनः क्षौद्रस्य । मयूराङ्गजस्य बर्हिपिच्छस्य । मधूच्छिष्टं सिक्थकम् । लामज्जकेति । 'लामज्जकं लघुलयम्' इत्यमरः । उशीरभेद इत्यन्ये बभ्रुणः कपिलस्य । रोध्रस्येति । रोध्रो लोध्रः । धावरकः 'शिल्लकः शिल्कुकस्तरः' । तिरीटः कान-

के नसों की डोरियाँ, जाल और फन्दे थे; कुछ दूसरे प्रकार के शिकारी, चिड़ियाँ फँसाने वाले शाकुनिक विचर रहे थे जो कन्धे पर वीतंसक जाल या डला लटकाये थे जो उनके बाल पाशिक आभूषण में उलझ-उलझ जाते थे; उनके हाथों में बाज, तीतर और भुजंगा आदि के पिंजड़े थे; चिड़ीमारों के लड़के बेलों पर लासा लगाकर गौरैया पकड़ने के उद्देश्य से इधर-उधर कूद-फांद रहे थे; चिड़ियों के आखेट के प्रेमी नौजवान लोग शिकारी कुत्तों को, जो बीच-बीच में झाड़ी में उड़ते हुए तीतरों की फड़फड़ाहट से व्याकुल हो उठते थे, पुचकार रहे थे ऐसे, जहाँ गाँव के लोग बन की उपज के बोझ को सिर पर उठाये जा रहे थे जिनमें से कुछ पुराने चक्रवाक के गले के समान लाल-पीली सेंहुल छाल का गट्टा लिये हुए थे, कुछ के पास तुरन्त तोड़े गये गेरु के समान लाल रंग वाले धाय के फूलों की बोरियाँ थीं, कुछ लोग रुई, अलसी, सन के मूट्ठों का बोझा लिये हुए थे; मधुमक्खी का शहद, मोर के पिच्छ, छाल उधेड़ी हुई कत्थे की लकड़ी, जिस पर खस की जटाएँ लटक रही थीं, कूठ (एक प्रकार का पौधा) पुराने सिंह के केसर की तरह पीले-पीले लोध के बोझ को सिरों पर लादे बोझ ढोने वाले जा रहे थे, देहाती औरतें अनेक प्रकार के जंगली फूलों को बीन-बीन

काभिश्चाभ्यर्णग्रामगत्वरीभिस्त्वरमाणाभिर्विक्रयचिन्ताव्यग्राभिर्ग्रामेयकाभि-र्व्याप्तदिगन्तरमितस्ततश्च युक्तशूरशकुरशाक्वराणां पुराणपांसुत्किरकरीष-कूटवाहिनीनां धूर्गतधूलिधूसरसैरिभसरोषस्वरसार्यमाणानां संक्रीडच्चटुल-चक्रचीत्कारिणीनां शकटश्रेणीनां संपातैः, संपाद्यमानदुर्बलोर्वीविरूक्षक्षेत्र-संस्कारमारक्षक्षिप्तदान्तवाहकदण्डोड्डीयमानहरिणहेलालङ्घिततुङ्गवैणववृति-भिश्च निखातगौरकरङ्कशङ्कुशङ्कितशशकशकलिततुङ्गशुङ्गैः, प्रयत्नप्रभृत-विशङ्कटविटपैर्वाटैरैक्षवैः सुबहुभिः श्यामायमानोपकण्ठमतिविप्रकृष्टान्तरैर्म-रकतस्निग्धस्नुहावाटवेष्टितैः, कार्मुककर्मण्यवंशविटपसंकटैः, कण्टकितकर-

---

हीरश्च शिल्लो शाबरपादपः।' शकुरास्तरुणाः। शाक्वरा बलीवर्दाः। करीषं शुष्कगोमयम्। उक्तं च—'गोविड्गोमयमस्त्रियाम्। तत्तु शुष्कं करीषोऽस्त्री' इति। सैरिको हालिकः। संक्रीडत्कूजत्। वृतिर्वाटोपान्ते लताकृतः प्राकारमयः। करङ्कः कङ्कालः। तदुपलक्षिताः शङ्कवः। शुङ्गोऽग्रभागः। वृतिरित्यन्ये। प्रभृताः पोषिताः। विशङ्कटा विस्तीर्णाः। विटपाः शाखाः। अतिविप्रकृष्टेत्यादि। अटवीकुटुम्बिनां गृहैरुपेतमिति वनग्रामविशेषणम्। स्नुहा सुधावृक्षः। उक्तं च—'स्नुक्स्नुहा च सुधा-

---

कर टोकरे भर लिये थी और उन्हें बेचने की चिन्ता में उतावली होकर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती हुई समीप के गाँवों में चली जा रही थी; एक ओर छोटी-छोटी गाड़ियाँ इधर-उधर चली जा रहीं थीं जिन्हें हट्टे-कट्टे तथा जवान बैल जुड़े हुए थें; ये पुरानी खाद तथा कूड़े-कचरे को ढो रही थी; उनमें जुते हुए बैल धूल से लिपटे थे तथा उन्हें चलने के लिए ललकारा जा रहा था; डगमग पहिये घिसटते हुए चूँ-चूँकर रहे थे ऐसे, जहाँ उन खेतों में लादकर कूड़ा-कर्कट डाले जा रहे थे जिनकी उपजाऊ शक्ति कम पड़ गयी थी; गन्नों के खूब लहलहाते हुए बहुत से खेतों के बाड़े गाँव की हरियाली बढ़ा रहे थे; खेतों के रखवाले जब गन्नों में छिपे हुए हिरनों को ताककर बैलों को हाँकने का डण्डा उनकी ओर चलाते तो हिरन छलांग मार कर ऊँची बाँसों की बाड़ से उस पार निकल जाते थे; जंगली भैंसों के कंकाल खेत में काँटे की तरह गाड़े गये थे जिनसे भयभीत हुए खरहे गन्ने के ऊँचे अंकुरों को ही कुतर डालते थे; गन्नों के पौधे बड़े प्रयास से बढ़ाये गये थे ऐसे, जहाँ वनग्राम के घर एक दूसरे से काफी दूरी पर थे जिनके चारों ओर मरकत जैसी चिकनी हरे रङ्ग वाली सेहुड़ की बाड़ बनी थी ऐसे, जहाँ धनुष बनाने के काम में लाने योग्य बाँसों की बँसवारी पास में उगी हुई

ङ्गराजिदुष्प्रवेश्यैः, उरुबूकवचावङ्गकसुरससूरणशिग्रुग्रन्थिपर्णगवेधुकागर्मुद्गुल्मगहनगृहवाटिकैः, निखातोच्चकाष्ठारोपितकाष्ठालुककलताप्रतानविहितच्छायैः, परिमण्डलबदरीमण्डपकतलनिखातखादिरकीलबद्धवत्सरूपैः, कथमपि कुक्कुटरटितानुमीयमानसंनिवेशैः, अङ्गनागस्तिस्तम्भतलविरचितपक्षिपूपिकावापिकैर्विकीर्णबदरपाटलपटलैः, वेणुपोटनलनलकलितशरमयवृतिविहितभित्तिभिः, किंशुकगोरोचनारचितमण्डलपवल्वजबद्धाङ्गार-

वृक्षः शुंभो विलिशात्रकः। मदनद्रुमी गण्डोरी सेहुण्डो वज्रकन्दकः' ॥ इति। कर्मणि साधुः कर्मण्यः। करञ्जो नक्तमालः। उक्तं च—'करञ्जो नक्तमालः। स्यात्प्रतीतश्चिरबिल्वकः' इति उरुबूक एरण्डः। उक्तं च—'उरुबकस्तथैरण्डो रुचको वातनाशनः। पञ्चाङ्गुलो वर्धमानश्चित्रो गन्धर्वपालथा ॥' वचा उग्रगन्धा। उक्तं च—'वचोग्रगन्धा गोलोमी जटिलोग्रा सलोमशा' इति। वङ्गको हरीतकविशेषः। सुरसा भूतघ्नी। उक्तं च—'सुरसा तुलसीपुःस्याद्रसो बहुमञ्जरी। अपेतो राक्षसो गौरी भूतघ्नी देवदुन्दुभिः ॥' इति। सूरणः कन्दविशेषः। शिग्रुः सोभाञ्जनः। उक्तं च—'सोभाञ्जनः कृष्णगन्धा मधुमञ्जोऽथ शिग्रुकः' इति। ग्रन्थिपर्णः मुस्ताकारः सुगन्धिकन्दविशेषः। उक्तं च—'ग्रन्थिपर्णोऽशुकं बर्हिपुष्पं स्थौणेयकुन्दुरे' इति। गवेधुका तृणधान्यभेदः। गर्मुत्स्तम्बगुल्मः। 'अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ' इति काष्ठालुकलता अलाबुवल्ली। स्वल्पा वत्सरूपा। संनिवेशो रचना। अगस्तिः मुनितरुः। पक्षिपूपिका पक्षाणां वेत्रवलानि भाण्डभेदः। पोटः शकलः। किंशुकानि

थी ऐसे, जहाँ करंजुए के काँटेदार वृक्षों की पंक्ति में रास्ता बना कर घुसना कठिन था; जहाँ एरंड (अंडी), बचा वंगक (बैंगन), तुलसी, सूरनकन्द, सोंहजन, मंठिनवन, गरवेरुआ और मरुआ धान के गुच्छे घरों के साथ लगी हुई बगीचियों में भरे हुए थे ऐसे; जहाँ गाड़ी गयी ऊँची बल्लियों पर चढ़ायी हुई लौकी की बेलें फैलकर छाया दे रही थीं ऐसे, जहाँ बेरों की गेल में मँडपों के नीचे खैर के खूँटे गाड़कर बछड़े बाँध दिये गये थे ऐसे, जहाँ मुर्गों की कुकरूँ-कूँ से पहचान मिलती थी कि घर कहाँ-कहाँ बसे हैं, आँगन में लगे अगस्त्य-वृक्ष के नीचे चिड़ियों का चुग्गा खिलाने और पानी पिलाने की हौदियाँ बनी हुयी थीं और लाल बैरों की चादर सी बिछी थी; जहाँ घरों की दीवारें बाँस के फट्टे, नरकुल और सरकंडों को जोड़ कर बना ली गयी थीं ऐसे, जहाँ कोयले के ढेरों पर बबई घास के मडवे छाये थे जिन पर पलाश के फूल और गोरोचना की

राशिभिः, शाल्मलीफलतूलसंचयबहुलैः, संनिहितनशालिशालूकखण्ड-
कुमुदबीजवेणुतण्डुलैः, संगृहीततमालबीजैः, भस्ममलिनम्लानकाश्मर्य-
कूटव्याधूतकटैराश्यानराजादनमदनफलस्फीतैर्मधूकासवमद्यप्रायैः, कुसुम्भ-
कुम्भगण्डकुसूलैरविरहितराजमाषत्रपुषकर्कटिकाकूष्मांडालाबुबीजैः, पोष्य-
माणवनबिडालमालुधानकुलशालिजातकादिभिरटवीकुटुम्बिनां गृहै-

पलाशवृक्षपुष्पाणि । बल्बजस्तृणभेदः । बन्धकाष्ठ इति प्रसिद्धः । शाल्मली रक्त-
पुष्पा । उक्तं च—'शाल्मली रक्तपुष्पा च कुर्कुटी स्थिरजीविता । पिच्छिला
तूलिनी मोचा कण्ठकाढ्या सुपूरिणी ॥' इति । तूलं कर्पासः । नलशालिः
शालिभेदः । शालूकं पद्ममूलम् । उक्तं च—'पद्ममूलं तु शालूकं सकिलं तत्किरात-
कम् । शालीनं पद्मकन्दं च जालालूकं निगद्यते ॥' इति । काश्मर्यः कश्मीरीहारः ।
'काश्मीरी मधुमत्यपि । श्रीपर्णी सर्वतोभद्रा गम्भीरी कृष्णमृत्तिका ॥' इति । कूटाः
कुनालानि । राजादनः कपीष्टः । उक्तं च—'क्षीरोदकस्तु राजन्यः क्षीरमृत्स्नः कपी-
नृपः । राजादनो दृढस्कन्धः कपीष्टः प्रियदर्शनः ॥' इति । मदनो रोध्रः । उक्तं च—
'मदनः शल्यको रोधो गालः पिण्डीतकः फलम् । भसरः करहाटश्च सुमनोऽति-
सुपुष्पकः ॥' इति । मधूको गुडपुष्पः । उक्तं च—'गुडपुष्पो रोध्रपुष्पो

सजावट थी ऐसे, जहाँ घरों में सेमल की रूई ढेर की ढेर पड़ी थी ऐसे; जहाँ
नलशालिकमल की जड़, खंड शर्करा, कमलबीज, बाँस, तंडुल और तमाल के बीज
आदि बटोर कर रखवा लिये गये थे ऐसे, जहाँ चटाइयों पर गंभीरी के ढेर के
ढेर सूख रहे थे और धूल पड़ने से कुछ मटमैले से लग रहे थे, खिरनी और
मैनफल सुखा कर रखे गये थे तथा महुए का आसव और चुआया हुआ मद प्रायः
प्रत्येक घर में था ऐसे, जहाँ प्रत्येक घरों में कुसुम्भ, कुम्भ और गंढकुसूल भी थे;
खांस, खीरा, ककड़ी,कोहड़ा और लौकियों के बीजों से जहाँ घर भरे हुए थे ऐसे,
घरों में वनबिलाव, नेवले, मालुधान और शालिजात नाम के जानवरों के बच्चे

रुत्तेतं वनग्रामकं ददर्श। तत्रैव च तं दिवसमत्यवाहयदिति।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते छत्रलब्धिर्नाम सप्तम उच्छ्वासः।



मालप्रस्थोऽथ माधवः' इति। राजमाषो निष्पावः। त्रपुसं लालुकः। कर्कटिकादयः प्रसिद्धाः। मालुधाना मालुकावधाख्याः प्राणिभेदाः, नकुलादयश्च।

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते सप्तम उच्छ्वासः।



पले हुए थे ऐसे; जंगली लोगों के घरों से युक्त ऐसे वनग्राम को हर्ष ने देखा। उन्होंने वह दिन वहीं पर बिताया।

सप्तम अध्याय समाप्त।

अष्टम उच्छ्वासः

सहसा संपादयता मनोरथप्रार्थितानि वस्तूनि ।
दैवेनापि क्रियते भव्यानां पूर्वसेवेव ॥ १ ॥
विद्वज्जनसंपर्को नष्टज्ञातिदर्शनाभ्युदयः ।
कस्य न सुखाय भवने भवति महारत्नलाभश्च ॥ २ ॥

अथापरेद्युरुत्थाय पार्थिवस्तस्माद् ग्रामकान्निर्गत्य विवेश विन्ध्याटवीम् । आट च तस्यामितश्चेतश्च सुबहून्दिवसान् । एकदा तु भूपतेर्भ्रमत एवाटविकसामन्तस्य शरभकेतोः सूनुर्व्याघ्रकेतुर्नाम कुतोऽपि कज्जलश्यामलश्यामलतावलयेनाधिललाटमुच्चैः कृतमौलिबन्धम्, अन्धकारिणीमकारणभुवा भ्रुकुटिभङ्गेन त्रिशाखेन त्रियामामिव साहससहचारिणीं ललाट-

सहसेत्यादियुगलकेन श्रीहर्षाभ्युदकदिवाकरमित्रराज्यश्रीप्राप्त्येकावलीलाभान्सुचयति । भव्यानां पूर्वसेवा दैवेन शुभसंवादनेन । शुभाभ्याससभावितचिन्ता भूयोऽपि क्रियत इति प्रतिपाद्यते ।

एकदा त्वित्यादौ । व्याघ्रकेतुर्नाम कुतोऽपि शबरयुवानमादाय भूपतेरर्थात्समीपमाजगामेति संबन्धः । अटव्यां भव आटविकः । श्यामा गन्धप्रियङ्गुः । मौलयः केशाः । अन्धकारिणीं कृष्णाम् । त्रिशाखेन त्रिलेखेन । पिनद्धो बद्धः । काचरस्य

अर्थात् उच्च या होनहार व्यक्ति जिन वस्तुओं की अभिलाषा करते हैं उन्हें दैव अचानक उसी प्रकार जुटा देता है मानो वह भी पहले से ही उनकी सेवा कर रहा हो ॥ १ ॥

विद्वान् व्यक्तियों का सम्पर्क, भूले हुए अपने प्रिय बन्धु का दर्शन तथा अपने ही भवन में बहुमूल्य रत्नों की प्राप्ति—ये तीनों किसे सुख नहीं पहुँचाते ? [अर्थात् इन तीनों को पाकर प्रत्येक व्यक्ति सुख का अनुभव करता है]

उसके बाद दूसरे दिन राजा (हर्ष) उठकर उस गाँव से निकल पड़े तथा विन्ध्याटवी में प्रविष्ट हुए । उसी में बहुत दिनों तक वे इधर-उधर भटकते रहे । एक दिन जब राजा भटक ही रहे थे कि जंगली लोगों के सरदार शरभकेतु का पुत्र व्याघ्रकेतु कहीं से, काजल के समान काली प्रियंगुलता द्वारा ललाट के ऊपर अपने बालों का जूड़ा बाँधे हुए, अकारण ही जिसकी भौंहे उस प्रकार तीन रेखाओं वाली हो गयी थीं मानो साहस करके निकट आयी हुई तीन पहरों वाली अँधेरी रात की तरह वह अपने ललाट प्रदेश को निरन्तर धारण कर रहा

स्थलीं गदा समुद्वहन्तम्, अवतंसितैकशुकपक्षाकप्रभाहरितायमानेन पिनद्धकाचरकाचमणिकर्णिकेन श्रवणेन शोभमानम्, किंचिच्चुल्लस्य प्रविरलपक्ष्मणश्चक्षुषः सहजेन रागरोचिषा रसायनरसोपयुक्तं तारक्षवं क्षतजमिव क्षरन्तम्, अवनाटनासिकम् चिपिटाधरम्, चिकिनचिबुकम्, अपीनहनूत्कटकपोलकूटास्थिपर्यन्तमीषदवाग्रग्रीवाबन्धम्, स्कन्नस्कन्धार्ध-भागम्, अनवरतकठिनकोदण्डकुण्डलीकरणकर्कशव्यायामविस्तारितेनांसलेनोरसा हसन्तमिव तटशिलाप्रथिमानं विन्ध्यगिरेः, अजगरगरीयसा च भुजयुगलेन लघयन्तं तुहिनशैलशालद्रुमाणां द्राघिमाणम्, वराहबाल-वल्गितबन्धनाभिर्नागदमनजूटिकावाटिकाभिर्जटिलीकृतपृष्ठे प्रकोष्ठे

कपिलस्य काचमणेः कर्णिका यत्र तत्तेन । चुल्लश्चिल्लः । उक्तं च—'स्युः क्लिन्नाक्षे चुल्लचिल्लपिल्लाः क्लिन्नेऽक्षिण चाप्यमी' इति । 'तरक्षुस्तु मृगादनः ।' आरण्य-श्वेत्यर्थः । तस्येदं तारक्षवम् । तच्च क्वचिद्रसायनेनोपयुज्यते । अवनाटो निम्नः । चिपिटः स्थूलः ईषल्लघुश्च । चिकिनं स्थूललेषद्ध्रस्वम् । चिबुकमधराधः । उक्तं च—'अधस्ताच्चिबुकं गण्डौ कपोलौ तत्परा हनुः' इति । अवाग्रावनता ग्रीवा कंधरा । स्कन्नः शुष्कः, लम्बमानो वा, उन्नतो वा । 'स्कन्धो भुजशिरोंऽसो' । असंलेन बलवता वक्षसा । अजगरः सर्पभेदः । द्राघिमाणं दीर्घत्वम् । वराहः सूकरः । नाग-

---

हो ऐसे, जिसके कान में तोते की पाँख का लगा हुआ कर्णाभूषण अपनी कान्ति से नीचे पाली में कच्चे शीशे के बाले को हरा बना रहा था ऐसे, जिसकी आँखें चिपचिपी और बरौनियाँ कम थी तथा रसायन बनाने के काम में आने वाले व्याघ्र शोणित के सदृश उनमें से स्वाभाविक लाली मानो ढरक रही थी ऐसे, जिसकी नाक कुछ झुकी हुई तथा निचला ओठ चिपटा था ऐसे, जिसकी ठुड्डी मोटी और कुछ छोटी थी ऐसे, जिसके गालों के ऊपर की हड्डी बढ़ी हुई तथा गाल चौड़े थे ऐसे, जिसकी गर्दन एक ओर को झुकी हुई थी, कन्धे का आधा भाग लटका हुआ था तथा निरन्तर धनुष खींचने के कठोर व्यायाम के कारण फैले हुए अपने सुदृढ़ बक्षस्थल से जो विन्ध्याचल की चट्टानों की चौड़ाई पर मानो हँस रहा था ऐसे, जो अजगर के सदृश बड़ी-बड़ी अपनी दोनों भुजाओं से हिमालय के सालवृक्षों की विशालता को मानो तुच्छ या छोटा बना रहा था ऐसे, कलाई में सूअर के बालों में लपेटी हुई नागदमन नामक विषहर औषधि की

प्रतिष्ठां गतं गोदन्तमणिचित्रं त्रापुषं वलयं बिभ्राणम्, अतुन्दिलमपि तुण्डिभम्, अहीरमणिचर्मनिर्मितपट्टिकयोभयचित्रकत्वक्त्कारकितपरिवारया संकुब्जाजिनजालकितया शृङ्गमयमसृणमुष्टिभागभास्वरया पारदरसलेशलिप्तसमस्तमास्तिकया कृपाण्या करालितविशंकटकटिप्रदेशम्, प्रथमयौवनोल्लिख्यमानमध्यभागभ्रष्टमांसभरिताविव स्थवीयसावूरुदण्डौ दधतम्, अच्छभल्लचर्ममयेन भल्लीप्रायप्रभूतशरभृता शबलशार्दूलचर्मपटपीडितेनालिकुलकालकम्बललोललोम्ना पृष्ठभागभाजा भस्त्राभरणेन पल्लवितमिव कार्श्यमुपदर्शयन्तम्, उत्तरविभागोत्तालितचाषपिच्छचारुशिखरे खदिरजटानिर्माणे खण्डप्राणे प्रचुरमयूरपित्तपत्रलताचित्रितत्वचि त्वचिसारगुणे

दमना विषहर ओषधिभेदः। जूटिका लघुमूलम्। वाटिकाः पूल्यः। गोदन्तः सर्पभेदः। त्रपुणो विकारस्त्रापुषम्। 'त्रपुजतुनोः षुक्'। अतुन्दिलं कृशोदरम्। तुण्डिभं बृहन्नाभिकम्। 'तुन्दिवल्लिवाटेर्भः'। स हि व्यायामवशात्क्षाममध्य उन्नतनाभिः तुण्डिभः। अहीरमणिनामा द्विवक्त्रः। चित्रकच्छायया गन्धतोऽप्यपरसर्पत्रासकः।

गुच्छियाँ जो बाँधे हुए था तथा वहीं पर गोदन्ती मणि से जटित राँगे का कड़ा जो पहने हुए था ऐसे, जिसकी तोंद नहीं निकली हुई थी फिर भी जिसकी नाभि बढ़ी हुई थी, जिसकी चौड़ी कमर में कटारी बँधी हुई थी, तथा वह दुमुँही साँप की खाल की दो पट्टियों से निर्मितम्यान में, जिस पर चीते के चमड़े के चकत्ते काटकर शोभा के लिए लगाये थे, रखी हुई थी, म्यान पर जिसने मृगचर्म को अधिक लटका दिया था, कटारी की मूठ चमकदार सींग द्वारा रचित थी तथा उसके मुँह पर पारा चढ़ा हुआ था ऐसे, प्रथम यौवन के कारण जिसकी जाँघे कटि प्रदेश से खिसके हुए मांस से मानो भरकर अधिक मोटी हो गयी थी ऐसे, भालू के चमड़े से निर्मित मल्लियों तथा बाणों से भरे हुए, चितकबरे बाघ के चमड़े से कसकर बँधे हुए भौंराले कम्बल के सदृश रोंएदार तथा पीठ से लटकते हुए तरकस से जो मानो अपनी बढ़ती हुई कृशता को दिखा रहा था ऐसे, जिसकी बाँह के ऊपरी तिहाई भाग में चाष नामक पक्षी के पंख सुशोभित थे, बाँह की नसें इस प्रकार लग रही थी मानो खैर की जटाएँ एक साथ बाँध दी गई हों तथा जिसकी भुजाओं में अधिक शक्ति थी, इस प्रकार बाँस के समान तगड़ी जिसकी बाँह पर मयूर पंख से फूल पत्तियों का गोदना गुदा हुआ था एवं

गुरुणि वामस्कन्धाध्यासितधनुषि दोषि लम्बमानेनावाक्शिरसा शितशर-कृत्तोकनलकविवरप्रवेशिते रजङ्घाजानतस्वस्तिकबन्धेन बन्धूकलोहितरु-धिरराजिरञ्जितघ्राणवर्त्मना वपुर्विततिव्यक्ताविभाव्यमानकोमलक्रोडरोम-शुक्लिम्ना शशेन शिताटनीशिखाग्रग्रथितग्रीवेण चाशावृतचञ्चूत्तानताम्रता-लुना तित्तिरिणा वर्णकमुष्टिमिव मृगयायाः, दर्शयन्तम्, विषमविषदूषित-वदनेन च विकर्णेन कृष्णाहिनेव मूलगृहीतेन व्यग्रदक्षिणकराग्रम्, जङ्गम-मिव गिरितटतमालपादपम्, यन्त्रोल्लिखितमश्मसारस्तम्भमिव भ्रमन्तम्, अञ्जनशिलाच्छेदमिव चलन्तम्, अयःसारमिव गिरेर्विन्ध्यस्य गलन्तम्, पाकलं करिकुलानाम्, कालपाशं कुरङ्गयूथानाम्, धूमकेतुं मृगराजचक्रा-णाम्, महानवमीमहं महीषमण्डलानाम्, हृदयमिव हिंसायाः, फलमिव पापस्य, कारणमिव कलिकालस्य, कामकमिव कालरात्रेः शबरयुवानमा-

---

जो अपने बाएँ कन्धे पर धनुष रखे हुए था, खरगोश की एक टांग की लम्बी हड्डी तेज बाण की धारा से घुटने के पास काटकर दूसरी टाँग की पिंडली पहले की नलकी में पिरो देने से तमञ्चा बना लिया गया था जिसमें अपनी बाँह का अगला हिस्सा डालकर जिसमें भुजा पर खरगोश को टांग लिया था, नाक से बहते हुए लाल शोणित से सना हुआ खरहे का सिर नीचे की ओर लटक रहा था तथा झूलते हुए शरीर के खिंचे जाने से सामने की ओर पेट पर के कोमल उजले रोओं की धारी स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी, धनुष के निचले कोर के निकले भाग द्वारा गला छेद कर उसमें एक तीतर लटकाया हुआ था जिसकी चोंच के अन्दर का ऊपरी तालु दिखाई पड़ रहा था, इस प्रकार खरगोश तथा तीतर जिसके शिकार की बानगी की मूँठ मालूम पड़ रहे थे, जिसके दायें हाथ में विष-बुझा नुकीला बाण था जो पूँछ से पकड़े हुए काले सर्प के सदृश था ऐसे, जो पहाड़ी इलाके के चलते-फिरते तमालवृक्ष के सदृश था ऐसे, जो खराद पर चढ़कर बनाये गये तथा घूमते हुए लोहे के खम्भे के सदृश था ऐसे, जो अञ्जन शिला के चलते हुए टुकड़े के सदृश था ऐसे, जो विन्ध्य पर्वत के ढलते हुए लोहे के सदृश था ऐसे, जो हाथियों के लिए ज्वर, जो हिरणों के लिए कालपाश, सिंहों के लिए धूमकेतु, भैंसों के लिए महानवमी का उत्सव (आश्विन शुक्ल पक्ष की नवमी दुर्गानवमी है जिसमें भैंसों की बलि दी जाती है।) मानो हिंसा का हृदय, मानो पाप का फल, मानो कलिकाल का कारण, मानो कालरात्रि का

दायाजगाम। दूरे च स्थापयित्वा विज्ञापयांबभूव—देव! सर्वस्यास्य विन्ध्यस्य स्वामी सर्वपल्लीपतीनां प्राग्रहरः शबरसेनापतिर्भूकम्पो नाम। तस्यायं निर्घातनामा स्वस्रीयः सकलस्यास्य विन्ध्यकान्ताराण्यस्य पर्णानामप्यभिज्ञः किमुत प्रदेशानाम्। एनं पृच्छतु देवो योग्योऽयमाज्ञां कर्तुम्।' इति कथिते च निर्घातस्तु क्षितितलनिहितमौलिः प्रणाममकरोत्। उपनिन्ये च तित्तिरिणा सह शशोपायनम्। अवनिपतिस्तु संमानयन्स्वयमेव तमप्राक्षीत्—'अङ्ग! अभिज्ञा यूयमस्य सर्वस्योद्देशस्य? विहारशीलाश्च दिवसष्वेतेषु भवन्तः? सेनापतेर्वान्यस्य वा तदनुजीविनः कस्यचिदुदाररूपा नारी न गता भवेद्दर्शनगोचरम्?' इति।

निर्घातस्तु भूपालालापनप्रसादेनात्मानं बहुमन्यमानः प्रणनाम, दर्शितादरं च व्यज्ञापयत्—'देव! प्रायेणात्र हरिण्योऽपि नापरिगताः संचरन्ति सेनापतेः, कुत एव नार्यः? नाप्येवं रूपा काचिदबला। तथापि देवादेशादिदानीमन्वेषणं प्रतिदिनमनन्यकृत्यैः क्रियते यत्नः। इतश्चार्धगव्यूति-

---

कामुक अर्थात् पति या प्रेमी था ऐसे शबर युवक को लेकर आया। उस युवक को दूर ही ठहरा कर व्याघ्रकेतु ने राजा हर्ष से निवेदन किया—"देव! इस सम्पूर्ण विन्ध्य प्रदेश का स्वामी और सभी पल्लीपतियों के अग्रणी भूकम्प नाम का शबर सेनापति है। उसी का यह निर्घात नाम का भाञ्जा है जो सम्पूर्ण विन्ध्याचल के जंगले के पत्ते-पत्ते खबर रखता है, प्रदेशों की तो बात ही क्या? देव! इससे जो पूछें, यह आज्ञापालन के योग्य है। उसके ऐसा कहने पर निर्घात ने पृथिवी पर मस्तक रखकर प्रणाम किया तथा तीतर के साथ खरगोश को उपहार स्वरूप समीप में रख दिया। राजा ने उसके द्वारा समर्पित उपहार का सम्मान करते हुए उससे स्वयं पूछा—"भाई, तुम इस पूरे स्थान की जानकारी रखते हो और इन दिनों यहीं विहार भी करते हो? क्या तुम्हारे सेनापति या उसके किसी दूसरे अनुचर को कोई सुन्दरी स्त्री दृष्टि गोचर हुई है।

निर्घात राजा के साथ वार्तालाप करने की प्रसन्नता से अपने को धन्य मानता हुआ प्रणाम करके तथा आदर दिखाते हुए बोला—"देव! जिनकी जानकारी न हो ऐसी हिरनियाँ भी यहाँ प्रायः नहीं घूमा करती हैं फिर तो स्त्रियों का कहना ही क्या? इस प्रकार की कोई स्त्री यहाँ नहीं है फिर भी देव की आज्ञा से अब सारे दूसरों कार्यों को छोड़कर उसी को ढूंढने का प्रयास

मात्र एव मुनिमहिते महति महीधरमालामूलरूढि महीरुहां षण्डेऽपि पिण्डपाती प्रभूतान्तेवासिपरिवृतः पाराशरी दिवाकरमित्रनामा गिरिनदीमाश्रित्य प्रतिवसति, स यदि विन्देद्वार्ताम्' इति। तच्छ्रुत्वा नरपतिरचिन्तयत्—'श्रूयते हि तत्रभवतः सुगृहीतनाम्नः स्वर्गतस्य ग्रहवर्मणो बालमित्रं मैत्रायणीयस्त्रयीं विहाय ब्राह्मणायनो विद्वानुत्पन्नसमाधिः सौगते मते युवैव काषायाणि गृहीतवान्' इति। प्रायश्च जनस्य जनयति सुहृदपि दृष्टो भृशमाश्वासम्। अभिगमनीयाश्च गुणाः सर्वस्य। कस्य न प्रतीक्ष्यो मुनिभावः। भगवती च वैधेयेऽपि धर्मगृहिणी गौरवमापादयति प्रव्रज्या, किं पुनः सकलजनमनोमुषि विदुषि जने। अतो नः कुतूहलि हृदयमभूततमस्य दर्शनं प्रति प्रासङ्गिकमेवेदमात्मनीनमतिकल्याणं पश्यामः प्रयत्नप्रार्थितदर्शनं जनमिति। प्रकाशं चाब्रवीत्—'अङ्ग! समुप-

पाराशरी भिक्षुः। विन्देल्लभेत। मैत्रायणीयः शाखाया अध्येता। 'ऋग्यजुःसामनामाथ त्रयी वेदास्त्रयः स्मृताः'। ब्राह्मणायनो द्विजश्रेष्ठः। समाधिरेकाग्रता। अभिगमनार्हा अभिगमनीयाः। प्रतीक्ष्यः पूज्यः। वैधेये मूर्खे, उक्तं च—'अज्ञमूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः' इति।

किया जायगा। यहाँ से अर्धगव्यूति अर्थात् एक कोस की दूरी पर ही पहाड़ की जड़ में वृक्षों के घने झुरमुट में भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाला, अपने अनेक शिष्यों के साथ दिवाकर मित्र नाम का पाराशरी भिक्षु गिरि नदी के किनारे रहता है। हो सकता है वह जानता हो।" यह सुनकर राजा ने सोचा—"मैंने भी सुना है कि आदरणीय सुगृहीतनामा दिवङ्गत ग्रहवर्मा का बालसखा, मैत्रायणीशाखा के अध्येता, ब्राह्मण श्रेष्ठ तथा विद्वान् चित्तवृत्ति की एकाग्रता प्राप्त कर लेने के कारण सन्यास धारण कर बौद्ध भिक्षुकों के कषाय वस्त्र को धारण कर लिया था।" मिलने पर मित्र भी प्रायः व्यक्ति को बहुत सान्त्वना देता है। सब के गुण अनुसरण के योग्य हुआ करते हैं। मुनि का वेष किसके लिए पूज्य नहीं है? धर्म की गृहिणी भगवती प्रव्रज्या जब मूर्ख व्यक्ति में भी गरिमा उत्पन्न कर देती है तब सम्पूर्ण लोगों के मन को चुराने वाले विद्वानों की तो बात ही क्या क्योंकि उनके दर्शनों के प्रति हमारा हृदय कुतूहल से भर उठा है। हम प्रयत्न से दर्शन देने वाले उन्हें (अर्थात् दिवाकर मित्र को) प्रसङ्गतः प्राप्त अपने कल्याण के रूप में देखते हैं। वे बोले—"भाई! वह स्थान

दिश तमुपदेशं यत्रास्ते स पिण्डपाती' इति। एवमुक्त्वा च तेनैवोपदिश्यमानवर्त्मा प्रावर्तत गन्तुम्।

अथ क्रमेण गच्छत एव तस्य अनवकेशिनः कुड्मलितकर्णिकाराः, प्रचुरचम्पकाः स्फीतफलेग्रह्यः, फलभरभरितनमेरवः नीलदलनलदनारिकेलनिकराः, हरिकेसरसरलपरिकराः कोरकनिकुरम्बरोमाञ्चितकुरबकराजयः, रक्ताशोकपल्लवलावण्यलिप्यमानदशादशः, प्रविकसितकेसररजोविसरवध्यमानचारुधूसरिमाणः स्वरजः सिकतिलतिलकतालाः, प्रविचलितहिङ्गवः प्रचुरपूगफलाः, प्रसवपूगपिङ्गलप्रियङ्गवः परागपिञ्जरितमञ्जरी-

अथ क्रमेण गच्छत एवास्यैवं विधास्तरवो दर्शनमवतेरुरिति संबन्धः। अवकेशी निष्फलतरुः। उक्तं च—'वन्ध्योऽफलोऽवकेशी च कर्णिकारो द्रुमोत्पलः। परिव्याधः' इति पर्यायः। 'स्यादबन्ध्यः फलेग्रहिः'। नमेरुस्तरुभेदः। 'नलदः सल्लकी मांसी नारिकेलस्तु लाङ्गली' इत्यमरः (?)। हरिकेसरः। उक्तं च—'चाम्पेयः केसरो नागकेसरः काञ्चनाह्वयः'। सरला देवदारवः। कोरकः कलिका। कुरबका ये योषितामालिङ्गनैः पुष्यन्ति। रक्ताशोका ये सालक्तककामिनीचरणहताः फुल्लन्ति। केसरा बकुलाः। ये कान्तागण्डूषशीधुसेकेन विकसन्ति। तिलकाः क्षुरकाः। ये प्रसाधितकामिनीदर्शनमात्रेण कुसुमिताः संपद्यन्ते। हिङ्गुः रामठम्। उक्तं च—'सहस्रवेधि जतुकं बाह्लीकं हिङ्गु रामठम्' इति। पूगः क्रमुकवृक्षः। प्रसवपूगः पूग-

बताओ जहाँ वे विराजते हों।" ऐसा कहकर उस (निघात) के द्वारा बताये गये रास्ते पर चलने लगे।

तब क्रमशः, फल-फूलों से युक्त मुकलित हुए कर्णिकार, फलों से लदे चम्पक, फलों के बोझ से झुके हुए नमेरु, साँवले पत्तों वाले सल्लकी नारियल के वृक्षों के झुण्ड, नागकेसर तथा सरल से छाये हुए तथा रोमाञ्च के सदृश निकली हुई कोढ़ियों से युक्त कुरबक वृक्षों का समूह, जहाँ रक्ताशोक के पल्लवों की लाली मानो दसों दिशाओं में पुती जा रही थी, जहाँ खिले हुए केसरवृक्षों के पराग उड़कर वन को धूसर बना रहे थे तथा तिलक वृक्षों के पराग बालू के समान भर गये थे, जहाँ हींग हवा से हिल रहे थे, जहाँ सुपारी के फल पर्याप्त काफी लगे हुए थे, जहाँ प्रियङ्गुलताएँ सुपारी के फूलों से पीली लग रही थीं, जहाँ पराग से भरी पीली मञ्जरियों पर लदे हुए भौरों की सुन्दर गुञ्जार सुनकर लोग

पुञ्जायमानमधुपमञ्जुशिञ्जाजनितजनमुदः, मदमलमेचकितमुचुकुन्दस्कन्धकाण्डकथ्यमाननिःशङ्ककरिकरटकण्डूतयः, उड्डीयमाननिःशङ्कचटुलकृष्णशारशावसकलशाद्वलसुभगभूमयः तमःकालतमतमालमालामीलितातपाः स्तबककन्दुरितदेवदारवः, तरलताम्बूलीस्तम्बजालकितजम्बूजम्भीरवीथयः, कुसुमरजोधवलधूलीकदम्बचक्रचुम्बितव्योमानः, बहलमधुमोक्षोक्षितक्षितयः, परिमलघटितघनघ्राणतृप्तयः, कतिपयदिवससूतकुक्कुटीकुटीकृतकुटजकोटराः चटकासंचार्यमाणवाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटवः, सहचरीचारणचञ्चुरचकोरचञ्चवः, निर्भयभूरिभुरुण्डभुज्यमानपाककपिल-

---

फलसमूहाः। प्रियङ्गु श्यामलता। 'श्यामा तु वनिताह्वया। लता गोवन्धनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली। विष्वक्सेना गन्धफली कारम्भः प्रियकश्च सः॥' पुञ्जमानः संह्रियमाणः। मुचुकुन्दाः पुष्पतरुभेदाः। करटौ गण्डौ। तमालस्तापिच्छः। उक्तं च—'शक्रपादपः पारिभद्रकः। भद्रदारु द्रुकिलिमं पीतदारु च दारु च। पूतिकाष्ठं च सप्त स्युर्देवदारुणि' इति। ताम्बूली नागवल्ली। जम्बू वृक्षभेदः। जम्भीरा दन्तशठाख्याः। उक्तं च—'स्युर्जम्बीरे दन्तशठजम्भजम्भीरजम्भलाः' इति। 'समी..णो मरुबकः प्रस्थपुष्पः फणिज्जकः। जम्भीरे' इति। धूलीकदम्बाख्या ग्रैष्मिका वृक्षभेदाः। कुटजो गिरिमल्लिका। उक्तं च—कुटजो गिरिमल्लिका' इति। चटकाया अपत्यानि चाटकैराः। चारणं भोजनम्। चञ्चुरा निपुणाः। भुरुण्डाः पक्षिभेदाः।

प्रसन्न हो रहे थे, जहाँ मुचकुन्द के वृक्षों में लगे हुए मद के मलिन चिह्न स्पष्ट बता रहे थे कि हाथियों ने निःशङ्क होकर अपने कुम्भस्थल की खुजली मिटायी है, जहाँ घास की हरियाली से भरी धरती पर चपल हिरन के बच्चे कुलाचें मार रहे थे, जहाँ अन्धकार के सदृश काले रंग के तमाल वृक्ष से आतप नष्ट हो चुका था, जहाँ देवदारु वृक्षों के गुच्छे निकल आये थे, जहाँ जामुन और जम्भीरी नीबू के वृक्षों पर नागवल्ली की लताएँ लहरा रही थीं, जहाँ धूली कदम्बों के फूलों का पराग उड़कर आकाश में छा रहा था, जहाँ फूलों के मकरन्द से जमीन सिंच गयी थी, जहाँ फूलों की सुगन्ध से नाक भर जाती थी, जहाँ कुछ ही दिनों की ब्याही हुई मुर्गी कुटज की खोह में बैठी थी, जहाँ गौरैया चूं-चूं करते हुए अपने चुड़कलों को उड़ाना सिखा रही थी, जहाँ चकोर अपनी सहचरी को चोंच से चुग्गा दे रहा था, जहाँ भुरुण्ड नामक पक्षी पके हुए पीलुओं को निर्भय होकर

पीलवः, सदाफलकट्फलविशसननिःशूकशुकशकुन्तशातितशलाटवः, शैलेयसुकुमारशिलातलसुखशायितशशशिशवः, शेफालिकाशिफाविवरविस्रब्धविवर्तमानगौधेरराशयः, निरातङ्करङ्कवः, निराकुलनकुलकुलकेलयः, कलकोकिलकुलकवलितकलिकोद्गमाः, सहकारारामरोमन्थायमानचमरयूथाः, यथासुखनिषण्णनीलाण्डजमण्डलाः, निर्विकारवृकविलोक्यमानपोतपीतगवयधेनवः, श्रवणहारिसनीडगिरिनितम्बनिर्झरनिनादनिद्रानन्दमन्दायमानकरिकुलकर्णतालदुन्दुभियः समासन्नकिन्नरीगीतरवरसमानरुरवः, प्रमुदिततरतरक्षवः, क्षतहरितहरिद्राद्रवरज्यमाननववराहपोतपोत्रवलयः,

---

पीलुफलं रसीकम् । कट्फलः श्रीपर्णाख्यो वृक्षः । उक्तं च—'श्रीपर्णिका कुमुदिका कुम्भी कैडर्यकट्फलौ' इति । विशसनं भेदनम् । निःशूको निर्दयः । शलाटून्यपक्वानि फलानि । उक्तं च—आमे फले शलाटुः स्यात्' इति । शिलासु भवै शैलेयम् । शेफालिका लताभेदः । 'स्त्रियां गौधेरगोधारगौधेया गोधिकात्मजाः' इति । रङ्कवो मृगभेदाः । सहकार आम्रः । उक्तं च—आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इति । रोमान्थायमाना उद्गीर्यं चर्वन्तः । चमरा मृगविशेषाः । नीलाण्डजा मृगभेदाः । वृका आरण्यश्वानः । पोतः शिशुः । 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । गवया गोसदृशाः प्राणिभेदाः । 'तरक्षुस्तु मृगादनः' । हरिद्रा पीतद्रुः । उक्तं च—'अथ पीतद्रुः कालेयकहरिद्रवाः । दार्वी पञ्चपचा दारु-

---

खा रहे थे, जहाँ सुग्गों के बच्चे शरीफा एवं कटहल के फलों को निर्ममता के साथ कुतर-कुतर कर गिरा रहे थे, जहाँ पहाड़ों की चिकनी चट्टानों पर खरगोशों के बच्चे आराम से सो रहे थे, जहाँ छिपकली के छोटे बच्चे शेफालिका की जड़ों के छेदों में प्रवेश कर रहे थे, जहाँ रङ्कु नामक हरिण निर्भय विचरण कर रहे थे, जहाँ नेवले आपस में निराकुल होकर कूद-फांद कर रहे थे, जहाँ कूक भरे कोकिल उत्पन्न होती हुई कौढ़ी को निगल जाते थे, जहाँ चमरहिरनों के झुण्ड आम के बगीचों में जुगाली कर रहे थे, जहाँ नीलाण्डज हरिण आराम से बैठे हुए थे, जहाँ दूध पीते हुए नीलगाय के बच्चों को समीप में बैठे भेड़िये कुछ कहे बिना देख रहे थे, जहाँ समीपवर्ती पहाड़ के झरते हुए झरने की कानों को सुख पहुँचाने वाली ध्वनि को सुनते हुए सुख से नींद आने पर हाथियों के कानों के फटफटाने की दुन्दुभि जैसी आवाज धीरे-धीरे मन्द पड़ती जा रही थी, जहाँ रुरु नामक हरिण कहीं पर पास ही में किन्नरियों के संगीत का आनन्द ले रहा था तथा तेन्दुए उन्हें देखकर खुश हो रहे थे, जहाँ बनैले सूअर के बच्चों की

गुञ्जाकुञ्जगुञ्जज्जाहकाः, जातीफलकुसुमशालिजातकवलयः, दशनकुपितकपिपोतपेटकपाटितपाटलमुखकीटपुटकाः, लकुचलम्पटगोलाङ्गूललङ्घ्यमानलवलयः, बद्धवालुकालवालवलयाः, कुटिलकुटावालवालवेगगिरिनदिकास्रोतसः, निबिडशाखाकाण्डलम्ब्यमानकमण्डलवः, सूत्रशिक्यासक्तरिक्तभिक्षाकपालपल्लवितलतामण्डपाः, निकटकटीकृतपाटलमुद्राचैत्यकमूर्तयः, चीवराम्बररागकषायोदकदूषितोद्देशाः, मेघमया इव कृतशिखण्डिकुलकोलाहलाः, वेदमया इवापरिमितशाखाभेदगहनाः, माणिक्यमया इव महानीलतनवः, तिमिरमया इव सकलजननयनमुषः, यमुना इवो-

हरिद्रा पर्जनीत्यपि ॥' वराहः सूकरः। पोत्रं सूकरमुखम्। गुञ्जा रक्तिका। जाहकाः शालिजातकाश्च प्राणिभेदाः। पाटलाः कीटाः। पुटका आलयाः। 'लकुचो लिकुचो डुहुः' इत्यमरः। गोलाङ्गूलाः कृष्णमुखवानराः। लवल्यो लताभेदाः। कमण्डलुर्मुनिजलभाण्डम्। शिक्यं भिक्षाभाजनम्। जालिका निकटकुटीषु कृताः। मुद्रया कृतानामल्पचैत्यानां मूर्तयो येषु। 'शाखा लताः कठाद्याश्च'। महानीला अत्यन्त-

थूथनियाँ खोदकर हल्दी कुटकुटाने से रंग गयी थी, जहाँ शाळ गुञ्जाबृक्षों की झाड़ियों में गुंजन कर रहे थे, जहाँ जायफल के नीचे शालिजातक नामक जानवर सोये हुए थे, जहाँ लाल ततैयों के डङ्क मारने से क्रुद्ध हुए बन्दरों ने उनके छत्ती को नोच डाला था, जहाँ लंगूर डहुआ (पीले रंग का फल विशेष जो थोड़ा खट्टा-मीठा होता है) के फल खाने के लिए लवली-लताओं के आर-पार छलांग लगा रहे थे, जहाँ पेड़ों के चारों ओर पानी डालने के लिए बालू के थल्हे बना दिये गये थे, जहाँ टेढ़े-मेढ़े वृक्षों के चारों ओर पहाड़ी नदियों के सोते तीव्रता से बह रहे थे, जहाँ मुनियों ने वृक्षों की मोटी टहनियों में अपने कमण्डलु लटका दिये थे, जहाँ लतामण्डपों में धागे की बनी हुई सिकहरों पर खाली भिक्षाकपाल रख दिये गये थे, जहाँ कुटियों के नजदीक स्तूप या चैत्य की बनी हुई आकृतियों वाली पक्की मिट्टी की लाल मुहरें थीं, जहाँ चीवर कपड़ों के धोने से दूर तक वहाँ का पानी उनके रस से दूषित हो गया था, जहाँ बादलों के समान मयूर कोलाहल कर रहे थे, जहाँ वेदों जैसी वृक्ष-शाखाएँ अपरिमित एवं गहन थीं, जो माणिक्य के समान अत्यन्त नीले (महानील अर्थात् मणिविशेष) रंग के थे, जो सम्पूर्ण लोगों की दृष्टि को अन्धकार के समान विफल कर देने वाले थे, महावृक्षों के रूप में मानो यमुना के बड़े-बड़े सरोवर उठा दिये हों इस प्रकार

र्वीकृतमहाह्रदाः, मरकतमणिश्यामलाः, क्रीडापर्वतका इव वसन्तस्य, अञ्जनाचला इव पल्लविताः, तनया इवाटवीजाता विन्ध्यस्याद्रेः, पातालान्धकारराशय इव भित्त्वा भुवमुत्थिताः, प्रतिप्रवेशिका इव वर्षावासराणाम्, अंशावतारा इव कृष्णार्धरात्रीणाम्, इन्द्रनीलमयाः प्रासादा इव वनदेवतानाम्, पुरस्ताद्दर्शनपथमवतेरुस्तरवः।

ततो नरपतेरभवन्मनस्यदूरवर्तिना खलु भवितव्यं भदन्तेनेति। अवतीर्य च गिरिसरिति समुपस्पृश्य युगपद्विश्रामसमयसमुन्मुक्तहेषाघोषबधिरीकृताटवीगहनामस्मिन्नेव प्रदेशे स्थापयित्वा वाजिसेनामवलम्ब्य च सपस्विजनदर्शनोचितं विनयं हृदयेन दक्षिणेन च हस्तेन माधवगुप्तमंसे विरलैरेव राजभिरनुगम्यमानश्चरणाभ्यामेव प्रावर्तत गन्तुम्।

अथ तेषां तरूणां मध्ये नानादेशीयैः स्थानस्थानेषु स्थाणूनाश्रितैः

कृष्णाः, महानीलाश्च प्राणिभेदाः। नयनमुषो रम्यत्वात्, प्रकाशनाच्च। प्रतिप्रसवकाः प्रतिच्छन्दकाः।

भदन्त इति सौगतप्रतिमानां पूजावचनम्। उद्यानमित्यन्ये।

अथेत्यादी। तरूणां मध्ये दिवाकरमद्राक्षीदिति संबन्धः। नानादेशीयैर्वीतरागै-

---

जो थे अथवा जो इस प्रकार थे मानो जड़ी हुई मरकत मणियों से श्यामवर्ण वाले वसन्त के क्रीडा पर्वत हों अथवा जो काले-काले अञ्जन पर्वतों के सदृश थे, जो इस प्रकार थे मानो वनों में विन्ध्य-पर्वत के उत्पन्न हुए पुत्र हों अथवा पृथिवी को फाड़कर ऊपर उठे हुए पातालीय अन्धकारों के सदृश जो थे, जो वर्षा के दिनों के पड़ोसी के समान थे अथवा जो कृष्णपक्ष की अर्धरात्रियों के अंशावतार के सदृश थे अथवा जो इन्द्रनील मणियों द्वारा विनिर्मित वनदेवताओं के महलों के समान थे, ऐसे वृक्ष जाते हुए राजा हर्ष की दृष्टि में आये।

तब राजा के मन में हुआ कि अब भदन्त (अर्थात् दिवाकर मित्र नामक भिक्षु) को पास ही होना चाहिए। उन्होंने गारिनदी में उतरकर आचमन किया तथा उसी प्रदेश में हिनहिनाहट से जंगल को भरने वाली अपनी अश्व सेना को विश्राम के लिए ठहरा कर स्वयं तपस्वियों के दर्शन के लिए उचित विनम्रता को धारण करते हुए माधव गुप्त के कन्धे पर दायाँ हाथ रखकर तथा साथ में कुछ राजाओं को लेकर वे पैदल ही चल पड़े।

उसके बाद उन वृक्षों के बीच में शिष्य भाव से विविध देशों से आये हुए

शिलातलेषूपविष्टैर्लताभवनान्यध्यावसद्भिररण्यानीनिकुञ्जेषु निलीनैर्विटपच्छायासु निषण्णैस्तरुमूलानि निषेवमाणैर्वीतरागैरार्हतैर्मस्करिभिः श्वेतपटैः पाण्डुरभिक्षुभिर्भागवतैर्वर्णिभिः केशलुञ्चनैः कापिलैर्जैनैर्लोकायतिकैः काणादैरौपनिषदैरैश्वरकारणिकैः कारन्धमिभिर्धर्मशास्त्रिभिः पौराणिकैः साप्ततन्तवैः शाब्दिकैः पाञ्चरात्रिकैरन्यैश्च स्वान्स्वान्सिद्धान्ताञ्शृण्वद्भिरभियुक्तैश्चिन्तयद्भिश्च प्रत्युच्चरद्भिश्च संशयानैश्च निश्चिन्वद्भिश्च

रिति चार्हतैरित्यादीनां सर्वेषां विशेषणम्। स्थाणूनाश्रितैरित्यादि तु केषाञ्चित्। 'स्थाणुरस्त्री ध्रुवः शङ्कुः' इत्यमरः। 'महारण्यमरण्यानी विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। 'मूलं बुध्नोऽङ्घ्रिनामकः'। अर्हन्देवता येषां ते आर्हतास्तैर्नग्नक्षपणकैः। मस्करिभिः परिव्राजकैः। श्वेतपटैः श्वेतोर्णाकम्बलिवासोभिः, नग्नक्षपणकभेदैः। पाण्डुरभिक्षुभिस्त्यक्तकाषायैः। भागवतैर्विष्णुभक्तैः। वर्णिभिर्ब्रह्मचारिभिः केशलुञ्चनैर्यथार्थनामभिः। लोकायतिकैश्चार्वाकैः। जैनैर्बौद्धैः। कपिलैः सांख्यैः। काणादैर्वैशेषिकतार्किकैः। औपनिषदैर्वेदान्तवादिभिः। ऐश्वरकारणिकैर्नैयायिकैः। कारन्धमिभिर्धातुवादिभिः। पाषण्डभेदैरित्यन्ये। धर्मशास्त्रिभिः स्मृतिज्ञैः। शाब्दिकै-

---

अनेक वीतराग लोगों को उन्होंने देखा जिनमें से कुछ लोग लकड़ी खूँटों पर जगह-जगह पर बैठे हुए थे, कुछ चट्टानों पर बैठे थे, कुछ लतावनों में बैठे हुए थे, कुछ जंगल के झुरमुटों में छिपकर बैठे हुए थे, कुछ वृक्षों की छाया में जम गये थे तथा कुछ वृक्षों की जड़ों पर आसन जमा चुके थे, वे वीतराग आर्हत (जैन साधु), मस्करी (पाशुपत मतानुयायी) श्वेतपट (सेवड़ा, श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के साधु), पाण्डुर भिक्षु (आजीवक), भागवत, वर्णी (नैष्ठिक ब्रह्मचारी साधु), केशलुञ्चक (केशों को लोंच करने वाले जैन साधु), कपिल के सांख्यमतानुयायी), जैन, लोकायतिक (चार्वाकमतानुयायी), काणाद (वैशेषिक दर्शन को मानने वाले), औपनिषद (उपनिषद् या वेदान्तदर्शन के ब्रह्मवादी दार्शनिक), ऐश्वरकारणिक (नैयायिक), कारन्धमी (धातुवादी या रसायन विशेषज्ञ), धर्मशास्त्री (मन्वादिस्मृतियों के अनुयायी), पौराणिक, साप्ततन्तव (यज्ञवादी मीमांसक), शाब्दिक (शब्दब्रह्म के अनुयायी वैयाकरण दार्शनिक), पाञ्चरात्रिक (पञ्चरात्रनामक प्राचीन वैष्णवमत के अनुयायी), और इनके अतिरिक्त अन्य भी लोग अपने-अपने आगमों का पूरी लगन के साथ

व्युत्पादयद्भिश्च विवदमानैश्चाभ्यसद्भिश्च व्याचक्षाणैश्च शिष्यतां प्रतिपन्नैर्दूरादेवावेद्यमानम्, अतिविनीतैः कपिभिरपि चैत्यकर्म कुर्वाणैस्त्रिसरणपरैः परमोपासकैः शुकैरपि शाक्यशासनकुशलैः कोशं समुपदिशद्भिः शिक्षापदोपदेशदोषोपशमशालिनीभिः शारिकाभिरपि धर्मदेशानां दर्शयन्तीभिरनवरतश्रवणगृहीतालोकैः कौशिकैरपि बोधिसत्त्वजातकानि जपद्भिर्जातसौगतशीलशीतलस्वभावैः शार्दूलैरण्यमांसाशिभिरुपास्यमानम्, आसनोपान्तोपविष्टविस्रब्धानेककेसरिशावकतया मुनिपरमेश्वरम्, अकृत्रिम इव सिंहासने निषण्णम्, उपशममिव पिबद्भिर्वनहरिणैर्जिह्वालताभिरुपलिह्यमानपादपल्लवम्, वामकरतलनिविष्टेन नीवारमश्नता पारावतपोतकेन कर्णोत्पलेनेव प्रियां मैत्रीं प्रसादयन्तम्,

---

वैयाकरणैः। पाञ्चरात्रिकैर्वैष्णवभेदैः। सिद्धान्तानागमान्। त्रिसरणेति। त्रयो बुद्धधर्मसंघाः। शाक्यो बुद्धः। कोशो बुद्धसिद्धान्तो वसुबन्धुकृतः। देशना कथनम्। बोधिः समाधिः। तत्प्रधानसत्त्वं बुद्धभट्टारकः। तदीयानि जातकानि जीमूतवाहनादिजन्मकथाः। मुनिपरमेश्वरम् मुनीश्वरं बुद्धम्। अपकारिण्यभिप्रीतिर्मैत्री।

श्रवण, मनन, आवृत्ति, संशय, निश्चय, व्युत्पत्ति, विवाद और अभ्यास के द्वारा व्याख्यान कर रहे थे। इन लोगों को देखकर दूर ही से जिनके निवासस्थान की प्रतीति हो जाती थी ऐसे, वहाँ अत्यन्त विनम्र शिष्य की भाँति चैत्यवन्दन कर्म में लगे हुए बन्दरों द्वारा, धर्म, वृद्ध एवं संघ इन तीन रत्नों की शरण मे गये, शाक्यशासन में कुशल होकर तथा वसुबन्धुकृत अभिधर्म कोश का उपदेश देने वाले परमोपासक तोतों द्वारा, भगवान् द्वारा बताये गये दस शीलों के शिक्षापदों के उपदेश द्वारा दोष का मार्जन करके धर्मदेशना (धर्मोपदेश) करती हुई सारिकाओं द्वारा, बोधिसत्व की जातक कथाओं को सुनते हुए उलूक पक्षियों द्वारा तथा भगवान् बुद्ध के शील का पालन करने के कारण ठण्डे स्वभाव वाले एवं मांस भक्षण का परित्याग करने वाले व्याघ्रों द्वारा जिनकी उपासना की जा रही थी ऐसे, आसन के समीप विश्वस्त भाव से बैठे हुए अनेक सिंह-शिशुओं के कारण सिंहासन पर मानो साक्षात् मुनि परमेश्वर अर्थात् भगवान् बुद्ध विराजमान हों इस प्रकार जो लग रहे थे ऐसे, वनहिरन अपनी जिह्वालताओं द्वारा जिनके चरण-पल्लव को इस प्रकार चाट रहे थे मानो उनके शमभाव को पी रहे हों ऐसे, जिनके बायें हाथ पर बैठा हुआ कबूतर का बच्चा धान कुतर रहा था, मानो अपने-अपने वर्णोत्पल के द्वारा प्रिय मैत्री भावना का प्रसादन

इतरकरकिसलयनखमयूखलेखाभिर्जनितजनव्यामोहम्, उद्ग्रीवं मयूरं मरकतमणिकरकमिव वारिधाराभिः पूरयन्तम्, इतस्ततः पिपीलकश्रेणीनां श्यामाकतण्डुलकणान्स्वयमेव किरन्तम्, अरुणेन चीवरपटलेन म्रदीयसा संवीतम्, बहलबालातपानुलिप्तमिव पौरन्दरं दिग्भागम्, उल्लिखितपद्मरागप्रभाप्रतिमया रक्तावदातया देहप्रभया पाटलीकृताशां काषायग्रहणमिव दिशामप्युपदिशन्तम्, अनौद्धत्यादधोमुखेन मन्दमुकुलितकुमुदाकरेण स्निग्धधवलप्रसन्नेन चक्षुषा जनक्षुण्णक्षुद्रजन्तुजीवनार्थममृतमिव वर्षन्तम्, सर्वशास्त्राक्षरपरमाणुभिरिव निर्मितम्, परमसौगतमप्यवलोकितेश्वरम्, अस्खलितमपि तपसि लग्नम्, आलोकमिव यथावस्थितसकलपदार्थप्रकाशकं दर्शनार्थिनाम्, सुगतस्याप्यभिगमनीयम्, अव-

---

पिपीलकः कीटभेदः । चीवरं मुनिवासः । संवीतमाच्छादितम् । उल्लिखितश्चरणोल्लीढः । क्षुद्राः स्वल्पाः । अवलोकितेश्वरनामा बुद्धविशेषोऽपि । अस्खलितमपीति । स्खलितो ह्यन्यत्र भग्नो भवति, सत्त्वभ्रष्टशीलस्तपःस्थश्च ।

कर रहे हों ऐसे, जिनके दूसरे अर्थात् दायें हाथ के नाखूनों की किरणें लोगों को चकाचौंध में डाल देती थीं ऐसे, मरकत के कमण्डलु की तरह ऊपर की ओर गर्दन उठाये हुए मयूर को जो जलधारा से नहला रहे थे ऐसे, जो इधर-उधर स्वयं जाकर चींटियों के लिए सावां की खुद्दी छींट रहे थे ऐसे, जो लाल और मुलायम मुनिवस्त्र (संघाटी) ओढ़े हुए थे, जिससे प्रातः कालीन सूर्य की लाली से युक्त इन्द्र के दिग्भाग अर्थात् पूर्व दिशा के समान जो प्रतीत हो रहे थे ऐसे, जो खराद पर चढ़े हुए पद्मराग के सदृश लाल एवं उजले अपने शरीर की चमक से दिशाओं को इस प्रकार पाटल बना रहे थे मानो उन्हें गेरुआवस्त्र धारण करने हेतु उपदेश दे रहे हों ऐसे, कुछ-कुछ मुकुलित कुमुद के सदृश जिनके स्निग्ध, धवल तथा प्रसन्न नेत्र अनौद्धत्य के कारण इस प्रकार झुके हुए थे मानो संसारी क्षुद्र जन्तुओं के जीवन के लिए सुधा-वृष्टि कर रहे हों ऐसे, जिनका विद्या-शरीर मानो सभी शास्त्रों के अक्षररूपी परमाणुओं से निर्मित हुआ था ऐसे, जो परम सौगत होते हुए भी अवलोकितेश्वर (शाक्यबोधिसत्व) थे ऐसे (विरोध पक्ष में—जो बौद्ध होते हुए भी अवलोकितेश्वर—"अवलोकितः ईश्वरो येन" अर्थात् ईश्वर को देखने वाले या ईश्वरवादी थे), जो स्खलित न होते हुए भी तपस्या में लगे हुए थे ऐसे, जो दर्शनार्थियों के लिए ठीक-ठीक रूप में सम्पूर्ण

धर्मस्याप्याराधनीयमिव, प्रसादस्यापि प्रसादनीयमिव, मानस्यापि माननीयमिव, वन्द्यत्वस्यापि वन्दनीयमिव, आत्मनोऽपि स्पृहणीयमिव, ध्यानस्यापि ध्येयमिव, ज्ञानस्यापि ज्ञेयमिव, जन्म जपस्य, नेमिं नियमस्य, तत्त्वं तपसः, शरीरं शौचस्य, कोशं कुशलस्य, वेश्म विश्वासस्य, सद्वृत्तं सद्वृत्ततायाः, सर्वस्वं सर्वज्ञतायाः, दाक्ष्यं दाक्षिण्यस्य, पारं परानुकम्पायाः, निर्वृतिं सुखस्य, मध्यमे वयसि वर्तमानं दिवाकरमित्रमद्राक्षीत्। अतिप्रशान्तगम्भीराकारारोपितबहुमानश्च सादरं दूरादेव शिरसा वचसा मनसा च ववन्दे ।

दिवाकरमित्रस्तु मैत्रीमय्या प्रकृत्या विशेषतस्तेनापरेणादृष्टपूर्वेणामानुषलोकोचितेन सर्वाभिभाविना महानुभावाभोगभ्राजा भ्राजिष्णुना भूपतेरप्राकृतेनाकारविशेषेण तेन चाभिजात्यप्रकाशकेन गरीयसा प्रश्रयेण

दिवाकरमित्रस्तु तेन भूपालाकारविशेषेण प्रश्रयेण च युगपच्चक्षुषि चेतसि

पदार्थों को प्रकाशित करने वाले आलोक के सदृश थे ऐसे, जो स्वयं बुद्ध के भी आदरणीय थे ऐसे, जो मानो धर्म के लिए भी आराधनीय थे, जो मानो प्रसन्नता के लिए भी प्रसन्नता के योग्य थे, जो मानो मान के लिए भी माननीय थे, जो मानो वन्दनीयत्व के लिए भी वन्दनीय थे, जो मानो आत्मा के लिए भी स्पृहणीय थे, जो मानो ध्यान के लिए भी ध्येय थे, जो मानो ज्ञान के लिए भी ज्ञेय थे, जो जप के जप, नियम की धुरी, तपस्या के तत्त्व, पवित्रता के शरीर, कुशल के कोश, विश्वास के घर, सदाचार के सच्चरित, सर्वज्ञता के सर्वस्व, दाक्षिण्य के दाक्ष्य, दूसरों पर कृपा करने में पारंगत तथा सुख के प्राप्ति साधन थे ऐसे, अधेड़ आयु के दिवाकर मित्र को देखा। उनके अत्यन्त शान्त एवं गम्भीर आकृति के प्रति अत्यधिक सम्मान युक्त होकर हर्ष ने दूर से ही आदर पूर्वक मस्तक, वाणी तथा मन से उनकी वन्दना की।

स्वभाव से ही मैत्री भावना से युक्त दिवाकर मित्र विशेषरूप से, जिसे पहले कभी नहीं देखा था, जो लोकोत्तर था, जो सबको अभिभूत कर देने वाला था, जो महानुभावता से ओतप्रोत, जो चमकने वाला था तथा जो अग्राम्य अर्थात् गंवई नहीं था ऐसे राजासम्बन्धी आकार से तथा उनकी कुलीनता को प्रकट

चाह्लादितश्चक्षुषि च चेतसि च युगपदमग्रहीत् । धीरस्वभावोऽपि च संपादितससंभ्रमाभ्युत्थानः संकलय्य किंचिदुद्गमनकेन विलोलं विलम्बमानं वामांसाच्चीवरपटान्तमुत्क्षिप्य चानेकाभयदानदीक्षादक्षिणो दक्षिणं महापुरुषलक्षणलेखाप्रशस्तं स्निग्धमधुरया वाचा सगौरवमारोग्यदानेन राजानमन्वग्रहीत् । अभ्यनन्दच्च स्वागतगिरा गुरुमिवाभ्यागतं बहु मन्यमानः स्वेनासनेनासद्ध्वमत्रेति निमन्त्रयांचकार । पार्श्वस्थितं च शिष्यमब्रवीत्—'आयुष्मन् ! उपानय कमण्डलुना पादोदकम्' इति । राजा त्वचिन्तयत्—'अलोहः खलु संयमनपाशः सौजन्यमभिजातानाम् । स्थाने खलु तत्रभवान्गुणानुरागी ग्रहवर्मा बहुशो वर्णितवानस्य गुणान्' इति । प्रकाशं चावभाषे—'भगवन् ! भवद्दर्शनपुण्यानुगृहीतस्य मम पुनरुक्त इवायमार्यप्रयुक्तः प्रतिभात्यनुग्रहः । चक्षुःप्रमाणप्रसादस्वीकृतस्य च परकरणमिवा-

च आह्लादितः आनन्दितः सन्नन्वग्रहीदिति संबन्धः । महानुभावानामुत्तमानाम् । आभोगं टङ्कं भजत इत्याकारविशेषणम् । संकलय्य । उद्गमनमुत्थापनम् । आगमनमागतम्, सुखेनागतं स्वागतम् । स्वागतप्रश्नार्थं गीस्तया अत्रोपविशेति ।

करने वाली श्रेष्ठ विनम्रता को देखकर प्रसन्न नेत्रों वाले तथा प्रसन्न चित्त हो उठे । धीर-प्रकृति के होने पर भी हड़बड़ाहट के साथ अपने आसन से उठकर अनेक प्राणियों को अभय-दान की दीक्षा देने वाले उन्होंने शीघ्रता पूर्वक उठने के कारण अपने बायें कन्धे से खिसककर लटकते हुए अपने चीवर को समेटा तथा महापुरुष के लक्षणों से युक्त राजा को अपनी स्नेहपूर्ण तथा मीठी वाणी से गौरवपूर्वक सर्वदा स्वस्थ रहने के आशीर्वाद से अनुगृहीत किया । अपनी स्वागत वाणी से राजा का अभिनन्दन कर पधारे हुए अभ्यागत के प्रति गुरु के सदृश अत्यधिक सम्मान प्रकट करते हुए "यहाँ विराजिये" ऐसा कहते हुए अपने आसन के साथ उन्होंने राजा को निमन्त्रित किया । बगल में स्थित एक शिष्य से वे बोले—"आयुष्मन् ! पाँव पखारने के लिए कमण्डल में पानी लाओ" । राजा सोचने लगे—"वस्तुतः कुलीन व्यक्तियों का सौजन्य बिना लोहा का बना हुआ बाँधने वाला पाश होता है । गुणानुरागी ग्रहवर्मा ने इनके गुणों का जो बहुत बखान किया था वह उचित ही था ।" प्रकट में वे बोले—"भगवन् ! आपके दर्शन जन्य पुण्य से अनुगृहीत हुए मेरे लिए आपके द्वारा प्रयुक्त मेरा यह सम्मान पुनरुक्त अनुग्रह जैसा लग रहा है । जब आपने मुझे नेत्र प्रसाद से

सनादिदानोपचारचेष्टितम् । अतिभूमिर्भूमिरेवासनं भवादृशां पुरः संभाषणामृताभिषेकप्रक्षालितसकलवपुषश्च मे प्रदेशवृत्तिः । पाद्यमप्यपार्थकम् । आसतां भवन्तो यथासुखम्। आसीनोऽहम् इत्याभिधाय क्षितावेवोपाविशत् ।

'अलंकारो हि परमार्थतः प्रभवतां प्रश्रयातिशयः, रत्नादिकस्तु शिलाभारः' इत्याकलय्य पुनः पुनरभ्यर्थ्यमानोऽपि यदा न प्रत्यपद्यत पार्थिवो वचनं तदा स्वमेवासनं पुनरपि भेजे भदन्तः । भूपतिमुखनलिननिहितनिभृतनयनयुगलनिगडनिश्चलीकृतहृदयश्च स्थित्वा कांचित्कालकलां कलिकालकल्मषकालुष्यमिव क्षालयन्नमलाभिर्दन्तमयूखमालाभिर्मूलफलाभ्यवहारसंभवमुद्वमन्निव च परिमलसुभगं विकचकुसुमपटलपाण्डुरं लतावनमवादीत्—'अद्यप्रभृति न केवलमयमनिन्द्यो वन्द्योऽपि प्रकाशितसत्सारः संसारः । किं नाम नालोक्यते जीवद्भिरद्भुतं येन रूपमचिन्तितोपनतमिदं दृक्पथमुपगतम् । एवंविधैरनुमीयन्ते जन्मान्तरावस्थितसुकृतानि हृदयो-

भूमिमतिक्रान्ताभूमिः । स्वर्गादिस्थानरूपः प्रदेशवृत्तिः एकदेशो वा ।

अङ्गीकार कर लिया तो आसनादि प्रदान करने का यह उपचार मुझे अलग करने जैसा प्रतीत हो रहा है । आप जैसे लोगों के समक्ष जमीन पर बैठना ही परस्पर बातचीत के अमृताभिषेक से पखारे गये शरीर वाले मेरे लिए सीमा से बाहर है । पादोदक भी व्यर्थ है । आप आराम से विराजे; मैं यह बैठ गया'' ऐसा कहकर धरती पर ही बैठ गये ।

"परमार्थतः बड़े लोगों का आभूषण अत्यधिक विनम्रता ही है, रत्नादि तो शिलाभार ही है'' यह सोचकर बार-बार आग्रह किये जाने पर भी जब राजा ने आसन पर बैठना स्वीकार नहीं किया तो भदन्त अपने ही आसन पर विराजमान हुए । कुछ देर तक वे राजा के मुखकमल पर अविचल भाव से दृष्टि गड़ाये रहे मानो उनका हृदय जंजीर में बँधकर निश्चल हो गया था एवं फिर अपने धवल दाँतों की किरणों से माने कलिकाल के पापजन्य कालुष्य को धोते हुए तथा फल-मूल का आहार करने से परिमल युक्त विकसित पुष्पों से उज्ज्वल लतावन का दृश्य उपस्थित करते हुए बोले—"आज तक सज्जनों के उत्कर्ष को प्रकाशित करने वाला यह संसार न केवल अनिन्द्य ही है अपितु वन्दनीय भी है । जीवित रहते हुए लोक कौन सा आश्चर्य नहीं देख लेते जैसे कि बिना सोचे ही यह रूप मेरे दृष्टिपथ पर अवतीर्ण हो गया है । हृदय के इन्हीं आनन्दों से लोग

त्सवैः। इहापि जन्मनि दत्तमेवास्माकममुना तपःक्लेशेन फलमसुलभ-दर्शनं दर्शयता देवानांप्रियम्। आ तृप्तेः पीतममृतमीक्षणाभ्याम्। जातं निरुत्कण्ठं मानसं निर्वृतिसुखस्य। महद्भिः पुण्यैर्विना न विश्राम्यन्ति सज्जने त्वादृशि दृशः। सुदिवसः स यस्मिञ्जातोऽसि। सा सुजाता जननी या सकलजीवलोकजीवितजननं जनितवत्यायुष्मन्तम्। पुण्यवन्ति पुण्यान्यपि तानि येषामसि परिणामः। सुकृततपसस्ते परमाणवो ये तव परिगृहीतस्वावयवाः। तत्सुभगं सौभाग्यं यत्राश्रितोऽसि येन। भव्यः स पुरुषभावो भवत्यवस्थितो यः। दत्तैव मुमुक्षोरपि मे पुण्यभाजमालोक्य पुनः श्रद्धा जाता मनुजजन्मनि। नेच्छद्भिरप्यस्माभिर्दृष्टः कुसुमायुधः। कृतार्थमद्य चक्षुर्वनदेवतानाम्। अद्य सफलं जन्म पादपानां येषामसि गतो गोचरम्। अमृतमयस्य भवतो वचसां माधुर्यं कार्यमेव। अस्य त्वीदृशे शैशवे विनयस्योपाध्यायं व्याख्यातुमपि न संभावयामि भुवि। सर्वथा

नयनयुगलमेव निगडो बन्धनशृङ्खला। निर्वृतिः चित्तविश्रमः। अमृतमयस्येति। यतोऽमृतमयस्त्वमतो भवद्वचसां। माधुर्यं कार्यं प्रयोज्यं कारणसदृशेन

अन्यजनों के पुण्यों का अनुमान करते हैं। इस जन्म मे भी हमारे इस तपोजन्य कष्ट ने दुर्लभ दर्शन देवानां प्रिय आपके दर्शन के रूप में फल दे दिया। मेरे नेत्रों ने तृप्ति पर्यन्त अमृत का पान किया। अब हृदय में निर्वाण सुख की व्यग्रता नहीं रही। महान् पुण्यों के बिना आप जैसे सज्जनों पर दृष्टि नहीं पड़ती। जिस दिन आप उत्पन्न हुए होंगे वह दिन निश्चय ही बहुत सुन्दर दिन रहा होगा। वह माता सच्चे अर्थ में जननी है जिसने सम्पूर्ण जीवलोक के जीवनभूत आप आयुष्मान् को जन्म दिया है। वे पुण्य भी पुण्यवान् हैं जिनके परिणाम-स्वरूप तुम हो। जिन परमाणुओं से तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग बनाये गये हैं उन्होंने भी निश्चय ही अच्छी प्रकार तपस्या की होगी। वह सौभाग्य मनोहर है जिसके आश्रय में तुम हो। वह पौरुष बहुत ही भव्य है जो तुममें अवस्थित है। तुम जैसे पुण्यवान् को देखकर मुझे मुमुक्षु की भी मनुष्यजन्म में पुनः श्रद्धा होने लगी है। न चाहते हुए भी हमने मानो आज कामदेव को देख लिया। वन देवताओं के नेत्र आज सफल हो गये। आज उन वृक्षों का जन्म सफल हो गया जिनके तुम दृष्टिगोचर हुए। अमृतमय आपकी बातों में मिठास का होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार के शैशवकाल में भी इस विनम्रता की शिक्षा देने वाले

शून्य आसीदजाते दीर्घायुषि गुणग्रामः। धन्यः स भूभृद्यस्य वंशे मणिरिव मुक्तामयः संभूतोऽसि। एवंविधस्य च पुण्यवतः कथंचित्प्राप्तस्य केन प्रियं समाचराम इति पारिप्लवं चेतो नः। सकलवनचरसार्थधारणस्य कन्दमूलफलस्य गिरिसरिदम्भसो वा के वयम्। अपरोपकरणीकृतस्तु कायकलिरयमस्माकम्। सर्वस्वमवशिष्टमिष्टातिथ्याय। स्वायत्ताश्च विद्यन्ते विद्याबिन्दवः कातिचित्। उपयोगं तु न प्रीतिर्विचारयति। यदि च नोपरुणद्धि कंचित्कार्यलवमरक्षणीयाक्षरं वा कथनीयं तत्कथयतु भवान् स श्रोतुमभिलषति हृदयं सर्वमिदं नः। केन कृत्यातिभारेण भव्यो भूषितवान्भूमिमेतामभ्रमणयोग्याम्? कियद्वाऽवधिर्वाऽयं शून्याटवीपर्यटनक्लेशः कल्याणराशेः? कस्माच्च संततरूपेव ते तनुरियमसंतापार्हा विभाव्यते?' इति।

कार्येण भवितव्यमित्युक्तः। शून्यः निराश्रयः। वंशो वेणुरपि। मुक्तामयस्त्यक्तदोषः, मौक्तिकरूपश्च। परिप्लवं दोलाधिरूढमित्यर्थः। अनेकदुःखहेतुत्वात्। काय एव कलिः। आरक्षणीयाक्षरमिति। यद्यस्माकमुपरि विश्वासोऽस्तीत्यर्थः।

आचार्य को पृथ्वी पर में ढँककर पा लेना कठिन है। आप दीर्घायु के उत्पन्न होने से पूर्व गुणों का समूह सर्वथा सूना-सा था। धन्य है वह राजा जिसके कुल में मणि के सदृश मुक्तामय (मोतियों से युक्त अथवा आमय अर्थात् रोग से रहित) आप उत्पन्न हुए हैं। किसी प्रकार पधारे हुए आप जैसे पुण्यवान् का किस प्रकार प्रिय किया जाय इस चिन्ता से हमारा हृदय व्याकुल हो रहा है। सम्पूर्ण वनेचरों के लिए सुलभ कन्द, मूल, फल तथा गिरिनदी अर्थात् झरने के जल को प्रदान करने वाले हम कौन होते हैं। केवल हमारा यह शरीर दूसरे के अधीन नहीं है। अभीष्ट आतिथ्य के लिए यही सर्वस्व हमारे पास बच रहा है। विद्या की कुछ बूंदें अपने अधीन रह गयी हैं। हमारा प्रेम उनका कोई उपयोग नहीं समझता। यदि कोई कार्य की बाधा न हो और बात कहने योग्य हो तो आप उसे कहें, हमारा हृदय वह सब कुछ सुनने की अभिलाषा रखता है। किस आवश्यक कार्य से भव्य आपने आकर भ्रमण के अयोग्य इस भूमि को अलंकृत किया है? कल्याण राशि आप इस वीरान जंगल में कब से पर्यटन का कष्ट झेल रहे हैं? सन्ताप को सहन न करने योग्य तुम्हारा यह शरीर किसलिए सन्तप्त हो रहा है?''

राजा तु सादरतरमब्रवीत्—'आर्य ! दर्शितसंभ्रमेणानेन मधुररसविसरममृतमिव हृदयधृतिकरमनवरतं वर्षता वचसैव ते सर्वमनुष्ठितम्। धन्योऽस्मि यदेवमभ्यर्हितमनुपचरणीयोऽपि मान्यो मन्यते साधु। अस्य च महावनभ्रमणपरिक्लेशस्य कारणमवधारयतु मतिमान्। मम हि विनष्टनिखिलेष्टबन्धोर्जीवितानुबन्धस्य निबन्धनमेकैव यवीयसी स्वसावशेषा। सापि भर्तृवियोगाद्वैरिपरिभवभयाद् भ्रमन्ती कथमपि विन्ध्यवनमिदम्, अशुभशबरबलबहुलम्, अगणितगजकुलकलिलम्, अपरिमितमृगपतिशरभभयम्, उरुमहिषमुषितपथिकगमनम्, अतिनिशितशरकुशपरुषम्, अवटशतविषममविशत्। अतस्तामन्वेष्टुं दिवानिशं निशि निशि च सततमिमामटवीमटामः। न चैनामासादयामः। कथयतु च गुरुरपि यदि कदाचित्कुतश्चिद्वने चरतः श्रुतिपथमुपगता तद्वार्ता' इति।

अतिशयेनाल्पा यवीयसी कनिष्ठा। अयोगाद्विरुद्धविधिवैधुर्यादिदं विन्ध्यवनमनिशं प्रविष्टेति पदयोजना। अनिशं सदा। अटवीमटामो गच्छामः।

राजा अत्यधिक आदर के साथ बोले—"आर्य ! अमृत के सदृश सतत मधुरस बरसाने वाले, मेरे प्रति सम्मान से भरे तथा हृदय को धैर्य दिलाने वाले आपके इस वचन ने ही सब कुछ कर दिया। मैं धन्य हूँ जो उपचार के योग्य न होते हुए भी मुझे आदरणीय आप इतना सम्मान दे रहे हैं। इस विशाल जंगल में भ्रमण करने के कष्ट का कारण आप बुद्धिमान् सुनें। सम्पूर्ण इष्ट बन्धुओं के नष्ट हो जाने के बाद मेरे जीवन का एकमात्र आसरा मेरी छोटी बहन बची थी। वह भी अपने पति के विरह तथा शत्रु द्वारा पकड़े जाने के डर से इधर-उधर भटकती हुई किसी प्रकार इस विन्ध्यवन में, जो अशुभ शबरों से भरा हुआ है, जो अगणित हाथियों से भरा है, जहाँ अपरिमित सिंहों तथा शरभों का डर बना रहता है, जहाँ खूँखार भैंसे पथिकों को चलने नहीं देते, अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों के सदृश कुशाओं से जो कर्कश बना हुआ है और जहाँ सैकड़ों खाइयाँ हैं, प्रविष्ट हुई है। इसलिए उसे ढूँढ़ने के लिए हम दिन-रात इस जंगल का चप्पा-चप्पा छान रहे हैं लेकिन उसे नहीं पा रहे हैं। आप गुरु यह बतावें कि कभी एवं कहीं से वन में विचरण करने वाले किसी व्यक्ति से इसके विषय में आपको कोई समाचार ज्ञात हुआ है।

अथ तच्छ्रुत्वा जातोद्वेग इव भदन्तः पुनरभ्यधात्—'धीमन्! न खलु कश्चिदेवंरूपो वृत्तान्तोऽस्मानुपागतवान्। अभाजनं हि वयमीदृशानां प्रियाख्यानोपायनानां भवताम्।' इत्येवं भाषमाण एव तस्मिन्नकस्मादागत्यापरः शमिनि वयसि वर्तमानः संभ्रान्तरूप इव पुरस्तादुपरचिताञ्जलि-जातकरुणः प्रक्षरितचक्षुर्भिक्षुरभाषत—'भगवन्भदन्त! महत्करुणं वर्तते। बालैव च बलवद्व्यसनाभिभूता भूतपूर्वापि कल्याणरूपा स्त्री शोकावेशविवशा वैश्वानरं विशति। संभावयतु तामप्रोषितप्राणां भगवान्। अभ्युपपद्यतां समुचितैः समाश्वासनैः। अनुपरतपूर्वं कृमिकीटप्रायमपि दुःखितं दयाराशेरार्यस्य गोचरगतम्' इति।

राजा तु जातानुजाशङ्कः सोदर्यस्नेहाच्चान्तर्द्रुत इव दुःखेन दोदूयमानहृदयः कथमपि गद्गदिकागृहीतकण्ठो विकलवाग्बाष्पायमाणदृष्टिः पप्रच्छ—'पाराशरिन्! कियद्दूरे सा योषिदेवंजातीया जीवेद्वा कालमेतावन्तमिति। पृष्टा वा त्वया भद्रे! कासि, कस्यासि, कुतोऽसि, किमर्थं वनमिदमभ्युपगतासि, विशसि च किंनिमित्तमनलम्? इत्यादितश्च

यह सुनकर उद्वेग-युक्त जैसे होकर भदन्त ने पुनः कहा—"बुद्धिमान्! ऐसा कोई भी समाचार मुझे नहीं मिला है। मैं इस प्रकार के प्रिय समाचार की भेंट आपको अर्पित करने का पात्र नहीं हूँ।" जब वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि अचानक एक दूसरा भिक्षु, जो शमभाव का उपासक था, घबड़ाहट के साथ दौड़ा-दौड़ा आया और हाथ जोड़कर करुणा से रोता हुआ बोला—"भगवन् भदन्त! अत्यन्त दुःख की बात है। कोई एक अत्यन्त सुन्दरी बाला महान संकट में पड़ी हुई शोकावेग के कारण अग्नि में प्रवेश करने जा रही है। जब तक वह अपने प्राणों का त्याग नहीं करती, कृपया चलकर उसे समझावें। उचित आश्वासनों से उसे कृपया अनुगृहीत करें। मृत्यु से पहले विपत्ति में पड़े हुए कीट-पतंगे भी दयाराशि आर्य की करुणा के पात्र हैं।"

छोटी बहन की शङ्का से युक्त, सहोदर प्रेम के कारण पिघले हुए से, दुःख के कारण पीड़ित-हृदय होकर, घिग्घी से युक्त कण्ठवाले, विकल वाणी तथा आश्रुपूरित नेत्रों वाले राजा ने किसी प्रकार पूछा—"हे पाराशरिन्! वह स्त्री कितनी दूरी पर है? क्या वह इतनी देर तक जीवित रह पायेगी? क्या तुमने उससे पूछा है कि भद्रे! तुम कौन हो? किसकी हो? कहाँ की हो? क्यों इस जंगल में आ पहुँची हो? किसलिए अग्नि में प्रवेश कर रही हो?" इस प्रकार

प्रभृति कार्त्स्न्येन कथ्यमानमिच्छामि श्रोतुं कथमार्यस्य गता दर्शनगोचरमाकारतो वा कीदृशी' इति।

तथाभिहितस्तु भूभुजा भिक्षुराचचक्षे—'महाभाग! श्रूयताम्—अहं हि प्रत्युषस्येवाद्य वन्दित्वा भगवन्तमनेनैव नदीरोधसा सैकतसुकुमारेण यदृच्छया विहृतवानतिदूरम्। एकस्मिंश्च वनलतागहने गिरिनदीसमीपभाजि भ्रमरीणामिव हिमहतकमलाकरकातराणां रसितं सार्यमाणानामतितारतानवर्तिनीनां वीणातन्त्रीणामिव झांकारमेकतानं नारीणां रुदितमधृतिकरमतिकरुणमाकर्णितवानस्मि। समुपजातकृपश्च गतोऽस्मि तं प्रदेशम्। दृष्टवानस्मि च दृषत्खण्डखण्डिताङ्गुलिगलल्लोहितेन च पार्ष्णिप्रविष्टखरशलाकाशल्यशूलसंकोचितचक्षुषा चाध्वनीनश्रमश्वयथुनिश्चल-

---

यदृच्छया स्वेच्छया। सार्यमाणानां श्रुतिरीत्या स्थाप्यमानानां स्वराणां विशिष्टमवस्थानमेकलोपे द्विलोपे वा। ताना मूर्च्छना वा। वर्णाः स्थायिसञ्चार्यारोह्यवरोहिणश्चत्वारस्तदुपलक्षिताः। तन्त्र्यो वर्णतन्त्र्यः। एकतानमेकरूपम्, अनवरतं वा। दृष्टवानित्यादौ। अस्मिंश्चैवं विधानामबलानां चक्रवालेन परिवृतां योषितं दृष्टवानिति संबन्धः। लोहितं रक्तम्। पार्ष्णिः पादाधोदेशः। 'स्थाणुरस्त्री ध्रुवः शङ्कुः।' स्थाणो-

---

शुरु से लेकर समूचा वृत्तान्त आपके द्वारा मैं सुनना चाहता हूँ। वह किस प्रकार आपको दृष्टिगोचर हुई और आकार से वह कैसी है?"

राजा द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर भिक्षु ने उत्तर दिया—"महाभाग! सुना जाय—मैं आज सवेरे ही भगवान् की वन्दना करके इस नदी के बालुकामय सुकुमार तट से स्वेच्छा से बहुत दूर टहलने लगा था। गिरिनदी के समीप एक लताओं के घने झुरमुट में मैंने बहुत-सी स्त्रियों के अधैर्य को पैदा करने वाला अतिकरुण क्रन्दन को सुना जो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो तुषारापात के कारण कमलवन के विनष्ट हो जाने से भ्रमरियाँ चीख रही हों या अनेक वीणाओं को कोई जोर से झनझना रहा हो। मेरे अन्तःकरण में करुणा उत्पन्न हो गयी और मैं उस स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ मैंने देखा कि एक स्त्री है जो बहुत सी स्त्रियों से घिरी हुई थी। उन स्त्रियों के चरणों की उँगलियाँ पत्थरों से ठेस लग जाने के कारण फूट गयीं थीं और उनसे खून बह रहा था। एंडी में जंगली काँटों के चुभने के कारण अत्यधिक पीड़ा से उनकी आँखें सिकुड़ गयी थीं। रास्ते में चलते-चलते उनके पैर सूज गये थे और चलने की शक्ति से वे विहीन हो गये

चरणेन च स्थाणव्रणव्यथितगुल्फबद्धभूर्जत्वचा च वातखुडखेदखञ्ज-खञ्जायातज्वरेण पांसुपाण्डुरपिच्छकेन च खर्जूरजूटजटाजर्जरितजानुना च शतावरीविदारितोरुणा च विदारीदारितनुदुकूलपल्लवेन चोत्कटवंश-विटपकण्टककोटिपाटितकञ्चुककर्पटेन च फललोभावलम्बितावनम्रबदरी-लताजालकीलकण्टककीलितसुकुमारकरोदरेण च कुरङ्गशृङ्गोत्खातैः कन्द-मूलफलैः कदर्थितबाहुना ताम्बूलविरहविरसमुखखण्डितकोमलामलकीफलेन कुशकुसुमाहतिलोहितानां श्वयथुमतामक्ष्णां लेपीकृतमनःशिलेन च कण्ट-किलतालूनालकलतेन च केनचित्किसलयोपपादितातपत्रकृत्येन केनचि-त्कदलीदलव्यजनवाहिना केनचित्कमलिनीपलाशपुटगृहीताम्भसा केनचि-

रिमे स्थाणवः। वातखुडो गतिप्रतिघातलक्षणो वातव्याधिः। पिच्छिकं केश-कलापः। शतावरी शतमूली। विदारी क्षीरशुक्ला। सरला देवदारवः। शाकिन

थे। लकड़ी की खूँटों से टकरा जाने के कारण उनके घुटनों में चोट आ गयी थी और उन्होंने उसे भोजपत्र से बाँध रखा था। उनकी जाँघें बोझिल हो गयी थी जिससे वे लँगड़ा रही थी। इस कारण से वे ज्वरग्रस्त भी हो गयी थी। उनके बाल धूल भर जाने के कारण उजले हो गये थे। खजूर के नुकीले कांटों से कहीं-कहीं उनके घुटने के हिस्से घिल गये थे। कांटेदार शतावरी के लग जाने से उनकी जाँघें फट गयी थी। विदारी नामक लताओं में फँस जाने के कारण उनके कपड़े फट गये थे। उनके कञ्चुक भी बांस की धरहरी शाखाओं में लगकर फट गये थे। जंगल में भूख लग जाने से फल खाने के लिए झुकायी हुई बेर की कँटीली टहनियों से उनके हाथ में छिछोटे पड़ गये थे। हिरन की सींगों से जंगली कन्दों को खोदते-खोदते उनके हाथों में छाले पड़ गये थे। पान न मिलने से उनके मुँह फीके पड़ गये थे तथा वे आँवले के कोमल फलों को निचोर कर काम चलाती थीं। कुश-कुसुमों की चोट से उनकी आँखें लाल हो चुकी थीं तथा सूजकर उबल आयी थीं जिन पर उन्होंने मैनसिल का लेप चढ़ाया था। कण्टकी नामक लताओं में उलझ जाने से उनके बाल उखड़ गये थे। कुछ ने धूप से बचने के लिए पत्तों को चुनकर छाता बना लिया था। कुछ पंखा के स्थान पर केले के पत्तों से झल रही थी। कुछ जल पीने के लिए कमलिनी के पत्तों को उपयोग में ला रही थी। कुछ ने खाने के लिए मृणाल की

त्पाथेयीकृतमृणालपूलिकेन केनचिच्चीनांशुकदशाशिक्यनिहितनालिकेर-कोशकलशीकलितसरलतैलेन, कतिपयावशेषशोकविकलमूककुब्जवामन-बधिरबर्बराविरलेनाबलानां चक्रवालेन परिवृताम्, आपत्कालेऽपि कुलोद्गतेनेवामुच्यमानां प्रभालेपिना लावण्येन, प्रतिबिम्बतैरासन्नवनलता-किसलयैः सरसैर्दुःखक्षतैरिवान्तःपटलीक्रियमाणकायाम्, कठोरदर्भाङ्कुरक्षत-क्षारिणा क्षतजेनानुसरणालक्तकेनेव रक्तचरणाम्, उन्नालेनान्यतरनारी-धृतेनारविन्दिनीदलेन कृतच्छायमपि विच्छायं मुखमुद्वहन्तीम्, आकाश-मपि शून्यतयातिशयानाम्, मृन्मयीमिव निश्चेतनतया मरुन्मयीमिव निःश्वाससंपदा पावकमयीमिव संतापसंतानेन सलिलमयीमिवाश्रुप्रस्रव-णेन वियन्मयीमिव निरवलम्बनतया तडिन्मयीमिव चापल्यवतया शब्द-

विकला विक्षिप्ताः। कलमूकाः पण्डकाः। एवमादयोऽतःपुररक्षिणः बर्बरा एतद्दे-शजाः। सरसैः। प्रत्यग्रैः सार्द्रैश्च। क्षतानि व्रणाः। अरविन्दिनी पद्मिनी। छाया आतपप्रतिपक्षजातिः, छाया च कान्ति। उक्तं च—'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रति-बिम्बमानतपः' इति। शून्यतेन्द्रियरहितत्वमपि। संतापसंतानो दुःखपरम्परा,

रोटियाँ बना ली थीं। अपने चीनांशुक (चीन देश निर्मित रेशमी वस्त्र) को फाड़कर उन्होंने छीके बना लिये थे तथा उन पर नारियल के कुप्पों में बहुत प्रयास से देवदार का तेल रख दिया था। राजभवन के कुछ अवशिष्ट शोकाकुल गूंगे, कुबड़े, बौने, बहरे और औंदे वहाँ उनके साथ रह गये थे। मुसीबत के समय भी उसके मुँह में झिलमिलाने वाला लावण्य छोड़ कर हटा नहीं, जैसे अपना ही वंशज हो। दर्पण के सदृश झलकते हुए अङ्गों में पड़ती हुई पास के लता-किसलयों की परछाई ऐसी लग रही थी मानो उसके शरीर के भीतर उत्पन्न घाव हों। कुशों के तीखे अग्रभाग के चुभ जाने से उसके चरण आलता के समान बहते हुए खून से लाल हो गये थे। नाल पकड़े कमलिनी का पत्ता उठाये कोई दूसरी स्त्री उसके मस्तक के ऊपर छाया कर रही थी फिर भी उसका मुख छायारहित अर्थात् कान्तिहीन प्रतीत हो रहा था। अपनी शून्यता से आकाश को भी पीछे छोड़ती हुई, निश्चेतनता से मानो मिट्टी की बनी हुई, साँसों की सम्पत्ति के कारण मानो वायुमयी, संतापवृद्धि के कारण मानो अग्निमयी' आसुओं को बहाने के कारण मानो जलमयी, आश्रयहीनता के कारण मानो आकाशमयी, चञ्चलता के कारण मानो विद्युन्मयी तथा करुण स्वर से

मयीमिव परिदेवितवाणीक हृदयेन मुक्तमुक्तांशुकरत्नकुसुमकनकपत्राभरणां कल्पलतामिव महावने पतिताम्, परमेश्वरोत्तमाङ्गपातदुर्ललिताङ्गीं गङ्गामिव गां गताम्, वनकुसुमधूलिधूसरितपादपल्लवाम्, प्रभातचन्द्रमूर्तिमिव लोकान्तरमभिलषन्तीम्, निजजलमोक्षकदर्थितदर्शितधवलायतनेत्रशोभां मन्दाकिनीमृणालिनीमिव परिम्लायमानाम्, दुःसहरविकिरणसंस्पर्शखेदनिमीलितां कुमुदिनीमिव दुःखेन दिवसं नयन्तीम्, दग्धदशाविसंवादितां प्रत्यूषप्रदीपशिखामिव क्षामक्षामा पाण्डुवपुषम्, पार्श्ववर्तिवारणाभियोगरक्षमाणां वनकारिणीमिव महाह्रदे निमग्नाम् प्रविष्टां वनगहनं ध्यानं च,

औष्ण्यप्रवन्धश्च : मुक्तावसमंशुकं मालवदेशजमुत्तरीयम् । मुक्ता मौक्तिकं च, अल्पा अंशवोऽशुकाश्च । महावनं विस्तीर्णारण्यम्, विपुलजलं च । परमेश्वरोत्तमाङ्गपातो राजशिरश्छेदो हरमूर्ध्नि पातश्च । इष्टानि ललितानीप्सितानि येषु तान्यङ्गानि यस्याः । दुर्ललितं च हेवाकः । गां गतामिति । वाहनाभावाद् भूमिमवतीर्णां च । वनकुसुमानि जलजातत्वात्कुमुदानि च, पादा रश्मयोऽपि । लोकान्तरं परलोकम्, मेरुद्वितीयपार्श्वं च । जलमश्रु च, नेत्रम् अक्षिमूलं च । दग्धदशा दुरवस्थाः, प्लुष्टदीपवर्तिकाश्च । प्रत्यूषः कल्यम् । वारणा निषेधः, हस्ती च वारणः । महाह्रदे निमग्नामनुसरणार्थं पुण्यजलाशयस्नातम्. विस्तीर्णसरस्यवरुग्णां च । स्थितां च

रुदन करने के कारण वह मानो शब्दमयी हो रही थी । मोतियों को पोहकर निर्मित उत्तरीय, रत्न, पुष्प और कनक पत्र के आभूषणों को छोड़कर वह कल्पलता के सदृश उस विशाल वन में गिर कर पड़ी हुई थी । वह महादेव के मस्तक से गिरकर अस्त व्यस्त हुई गङ्गा के समान पृथिवी पर उतर आयी थी । उसके चरण जंगली फूलों के पराग से धूसरित हो गये थे । वह प्रभातकालीन चन्द्रमूर्ति के सदृश इस लोक से दूर हो जाना चाहती थी । आँसू पोंछते-पोंछते उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की शोभा मन्द पड़ गयी थी और वह मन्दाकिनी की मृणालिनी के समान मुरझाती जा रही थी । वह सूर्य की दुःसह किरणों के स्पर्शजन्य खेद से मुकुलित होती हुई कुमुदिनी के समान अत्यन्त क्लेश के साथ दिन बिता रही थी । जिसकी बाती जल चुकी हो ऐसी प्रभातकालीन दीपशिखा के समान वह बेसहारा होकर अत्यन्त क्षीण और फीकी पड़ती जा रही थी । वह उस हथिनी की भाँति थी जो अपने पार्श्ववर्ती हाथी के बलात्कार से त्राण पाने के लिए किसी बड़े सरोवर में कूद पड़ी हो । वह घने जंगल और ध्यान

स्थिता तरुतले मरणे च पतितां धात्र्यङ्के महानर्थे च दूरीकृतां भर्त्रा सुखेन च, विरेचितां भ्रमणेनायुषा च, आकुलां केशकलापेन मरणोपायेन च, विवर्णितामध्वधूलिभिरङ्गवेदनाभिश्च, दग्धां चण्डातपेन वैधव्येन च, धृतमुखीं पाणिना मौनेन च, गृहीतां प्रियसखीजनेन मन्युना च, तथा च भ्रष्टैर्बन्धुभिर्विलासैश्च, मुक्तेन श्रवणयुगलेनात्मना च, परित्यक्तै-र्भूषणैः सर्वारम्भैश्च, भग्नैर्वलयैर्मनोरथैश्च, चरणलग्नाभिः परिचारिका-दर्भाङ्कुरसूचीभिश्च, हृदयविनिहितेन चक्षुषा प्रियेण च, दीर्घैः श्वसितैः केशैश्च, क्षीणेन वपुषा पुण्येन च, पादयोः पतन्तीभिर्वृद्धाभिरश्रुधाराभिश्च, स्वल्पावशेषेण परिजनेन, जीवितेन च, अलसामुन्मेषे, दक्षामश्रुमोक्षे,

कृतनिश्चयां च । विगतो धवो यस्यास्तद्भावो वैधव्यम् । धवो भर्ता । बन्धुभिरि-त्यादावित्थं भूतलक्षणे तृतीया । मुक्तेन निरलंकारेण । अलसां दक्षां चेत्यादौ

दोनों में प्रवेश कर चुकी थी । वह वृक्ष के तल तथा मृत्यु दोनों की ओर पहुँच चुकी थी । धाय की गोद तथा महान् अनर्थ दोनों में पड़ चुकी थी । पति एवं सुख दोनों से वह दूर कर दी गयी थी । भ्रमण तथा आयु दोनों के द्वारा वह परित्यक्त कर दी गयी थी केशकलाप तथा मृत्यु के उपाय दोनों से वह आकुल थी । मार्ग की धूल तथा अङ्गों की पीड़ा दोनों से वह विवर्ण पड़ गयी थी । प्रचण्ड धूप तथा वैधव्य दोनों से वह झुलस चुकी थी । हाथ और चुप्पी, दोनों ने उसके मुख को थाम लिया था । उसकी प्रिय सखियाँ तथा शोक दोनों ने उसे पकड़ रखा था । उसके परिवार के बन्धु नहीं रहे तथा विलास भी समाप्त हो गया । उसके कान अलङ्कार से सूने हो गये थे तथा वह स्वयं अपने आप में खोयी-खोयी थी । उसने अपने आभूषण उतार कर फेंके थे तथा सारे काम को त्याग बैठी थी । उसके हाथ का कंगन तथा उसका मनोरथ दोनों टूट चुके थे । उसके पैरों में परिचारिकायें और कुशों की नुकीली सूइयाँ लगी हुई थीं । उसकी आँखें, हृदय तथा प्रिय, दोनों ओर लगी थी । उसकी साँस तथा अलक (केश) दोनों लम्बी थीं । उसका शरीर तथा पुण्य, दोनों क्षीण हो गये थे । बूढ़ी औरत तथा अश्रु धाराएँ, दोनों ही उसके चरणों पर पड़ रही थीं । उसके परिजन तथा प्राण दोनों ही अब बहुत कम बच रहे थे । आँख खोलकर ताकने में उसे आलस्य हो रहा था । उसके आँसू ढलते जा रहे

संततां चिन्तासु, विच्छिन्नामाशासु, कृशां काये, स्थूलां श्वसिते, पूरितां दुःखेन, रिक्तां सत्त्वेन, अध्यासितामायासेन, शून्यां हृदयेन निश्चलां निश्चयेन, चलितां धैर्यात्, अपि च वसतिं व्यसनानाम्, आधानमाधीनाम्, अवस्थानमनवस्थानाम्, आधारमधृतीनाम्, आवासमवसादानाम्, आस्पदमापदाम्, अभियोगमभाग्यानाम्, उद्वेगमुद्वेगानाम्, कारणं करुणायाः, पारं परायत्ततायाः योषितम् । चिन्तितवानस्मि च चित्रमीदृशीमप्याकृतिमुपतापाः स्पृशन्तीति । सा तु समीपगते मयि तदवस्थापि सबहुमानमानतमौलिः प्रणतवती । अहं तु प्रबलकरुणाप्रेर्यमाणस्तामालपितुकामः पुनः कृतवान्मनसि—कथमिव महानुभावामेनामामन्त्रये । 'वत्से' इत्यतिप्रणयः, 'भ्रातः' इति चाटु, 'भगिनि' इत्यात्मसंभावना, 'देवि' इति परिजनालापः, 'राजपुत्रि' इत्यस्फुटम्, 'उपासिके' इति मनोरथः,

---

विरोधो बोद्धव्यः । अनवस्थानां दुःखरूपक्रियाणाम । अभियोगमुद्योगम् ! कथमिवेत्यादि समानः प्रश्न इत्यर्थः । महानुभावां मनस्विनीम् । अतिप्रणयो महती

थे; चिन्ता उसे खाये जा रही थी । उसकी आशाएँ टूट चुकी थीं । शरीर से बहुत दुबली थी, भारी साँस ले रही थी, दुःख से भरी थी, बल से हीन थी, थोड़े में थक जाती थी, हृदय से शून्य थी । उसका निश्चय अटल था, वह धैर्य से विचलित हो चुकी थी । वह दुःखों का निवास, मानसिक पीडाओं का अवलम्ब, दुरवस्था का स्थान, अधीरता का आधार, अवसादों का निवासस्थान, मुसीबतों की जगह, दुर्भाग्य का आक्रमण स्थान, उद्विग्नताओं की जन्मभूमि, करुणा का कारण एवं परतन्त्रता की सीमा थी । उसे देखकर मैं सोचने लगा कि आश्चर्य है ! ऐसी आकृति को भी सन्ताप नहीं छोड़ते । मेरे समीप जाने पर उस अवस्था में भी पड़ी हुई उसने बहुत सम्मान के साथ मुझे प्रणाम किया । मैं प्रबल करुणा से प्रेरित होता हुआ उसके साथ बात-चीत करने की इच्छा से पुनः मन में सोचने लगा—"किस प्रकार इस महानुभावा को मैं सम्बोधित करूँ ? यदि 'वत्से' कहता हूँ तो यह अत्यन्त प्रणय हो जाता है । यदि 'भ्रातः' ऐसा कहूँ तो चाटुकारिता होती है । यदि 'बहन' कहता हूँ तो आत्मगौरव जाग पड़ता है । यदि 'देवि' कहूँ तो परिजनों जैसी बात हो जाती है । यदि राजपुत्री कहता हूँ तो क्या यह स्पष्ट है कि यह राजपुत्री है ? यदि 'उपासिके' कहता हूँ तो अपने

'स्वामिनि' इति भृत्यभावाभ्युपगमः, 'भद्रे' इतीतरस्त्रीसमुचितम्, 'आयुष्मति' इत्यवस्थायामप्रियम्, 'कल्याणिनि' इति दशायां विरुद्धम्, 'चन्द्रमुखि' इत्यमुनिमतम्, 'बाले' इत्यगौरवोपेतम्, 'आर्ये' इति जरारोपणम्, 'पुण्यवति' इति फलविपरीतम्, 'भवति' इति सर्वसाधारणम्। अपि च 'कासि' इत्यनभिजातम्, 'किमर्थं रोदिषि' इति दुःखकारणस्मरणकारि, 'मा रोदीः' इति शोकहेतुमनपनीय न शोभते, 'समाश्वसिहि' इति किमाश्रित्य, 'स्वागतम्' इति यातयामम्, 'सुखमास्यते' इति मिथ्या। इत्येवं चिन्तयत्येव मयि तस्मात्स्त्रैणादुत्थायान्यतरा योषिदार्यरूपेव शोकविक्लवा समुपसृत्य कतिपयपलितशारं शिरो नीत्वा महीतलमतुलहृदयसंतापसूचकैरश्रुबिन्दुभिश्चरणयुगलं दहन्ती ममातिकृपणैरक्षरैश्च हृदयमभिहितवती-

प्रीतिः। अनभिजातमनुचितम्। यातयामं जीर्णप्रायम्। शासनं शास्त्रम्। सज्जनता

मन के अनुकूल बात होती है। यदि इसे 'स्वामिनि' कहूँ तो इससे स्वयं मैं दासभाव से ग्रस्त हो जाता हूँ। यदि 'भद्रे' ऐसा कहूँ तो यह अन्य स्त्रीसामान्य के लिए उचित सम्बोधन प्रतीत होता है। यदि इसे 'आयुष्मति' ऐसा कहूँ तो इसकी अवस्था को देखते हुए यह भी प्रिय नहीं है। यदि 'कल्याणिनि' कहूँ तो यह भी इसकी दशा के प्रतिकूल है, यदि 'चन्द्रमुखि' ऐसा कहूँ तो यह मुझ भिक्षु के लिए यह सम्मत नहीं है। यदि 'बाले' ऐसा कहूँ तो यह इसके गौरव के प्रतिकूल पड़ता है। यदि 'आर्ये' ऐसा कहूँ तो इस पर बुढ़ापा थोपना हो जाता है। यदि 'पुण्यवति' ऐसा कहूँ तो यह फल के विपरीत हो जाता है और यदि 'भवति' ऐसा कहूँ तो यह सर्वसाधारण के योग्य संबोधन हो जाता है। यदि इसे पूछूँ कि 'तुम कौन हो' तो यह उचित नहीं है? यदि पूछूँ कि 'तुम किसलिए रो रही हो' तो यह इसके दुःख के हेतु को स्मरण कराने वाली बात हो जायेगी। यदि इसे "मत रोओ" ऐसा कहूँ तो यह प्रश्न शोक के हेतु को हटाये बिना शोभा ही नहीं देता। 'धीरज धरो' ऐसा किस आधार पर कहा जाय? 'स्वागतम्' का तो जमाना लद गया। "क्या सुखी हो?" यह तो सरासर झूठ हुआ। मैं ऐसा सोच ही रहा था कि उन स्त्रियों के बीच से शोक से व्याकुल एक कुलीन स्त्री समीप आ गयी तथा जिसके कई बाल सफेद हो चुके थे ऐसे अपने मस्तक को पृथिवी पर टेक कर हृदय के अतुल सन्ताप को प्रकट करने वाले आँसुओं से भरे चरणों को और अत्यन्त करुण अक्षरों से मेरे चित्त

'भगवन् ! सर्वसत्त्वानुकम्पिनी प्रायः प्रव्रज्या। प्रतिपन्नदुःखक्षपणदीक्षादक्षाश्च भवन्ति सौगताः। करुणाकुलगृहं च भगवतः शाक्यमुनेः शासनम्। सकलजनोपकारसज्जा सज्जनता जैनी। परलोकसाधनं च धर्मो मुनीनाम्। प्राणरक्षणाच्च न परं पुण्यजातं जगति गीयते जनेन। अनुकम्पाभूमयः प्रकृत्यैव युवतयः किं पुनर्विपदभिभूताः? साधुजनश्च सिद्धक्षेत्रमार्तवचसाम्। यत इयं नः स्वामिनी मरणेन पितुरभावेन भर्तुः प्रवासेन च भ्रातुः भ्रंशेन च शेषस्य बान्धववर्गस्यातिमृदुहृदयतयानपत्यतया च निरवलम्बना, परिभवेन च नीचारातिकृतेन, प्रकृतिमनस्विनी अमुना च महाटवीपर्यटनक्लेशेन कदर्थितसौकुमार्या, दग्धदैवदत्तैरेवं विधैर्बहुभिरुपर्युपरि व्यसनैर्विक्लवीकृतहृदया, दारुणं दुःखमपारयन्ती सोढुं निवारयन्तमनाक्रान्तपूर्वं स्वप्नेऽप्यवगणय्य गुरुजनमनुनयन्तीरखण्डितप्रणया नर्म-

---

साधुजनसमूहः। सिद्धक्षेत्रं सिद्धायतनम्। यत इत्यादौ। यत इयं न स्वामिन्यग्नि

को दग्ध करती हुई बोली—"भगवन् ! प्रव्रज्या प्रायः सभी प्राणियों पर कृपा करने वाली होती है। सौगत लोग विपत्ति में पड़े हुए लोगों के दुखों को दूर करने की दीक्षा लिये रहते हैं। भगवान् शाक्य मुनि का शासन करुणा का स्थान है। बौद्ध साधु सब लोगों के उपकार के लिए तत्पर रहा करते हैं। मुनियों द्वारा अभिहित धर्म परलोक (उत्कृष्ट लोक) में पहुँचने का साधन है। लोग कहा करते हैं कि दूसरों की रक्षा से बढ़ कर दूसरा कोई भी पुण्य इस संसार में नहीं होता। युवतियाँ तो स्वभाव से ही अनुकम्पा के पात्र हैं फिर यदि वे विपत्ति में फँस जायँ तो कहना ही क्या ? साधु लोग तो दुःखियों की वाणी के सिद्धायतन हैं। यह स्वभाव से ही मनस्विनी हमारी स्वामिनी, पिता की मृत्यु पति के विनाश, भाई के प्रवास तथा अन्य सभी बान्धवों के बिछुड़ जाने से एवं हृदय के अत्यन्त कोमल एवं पुत्र के न होने से अनाथ हुई, नीच शत्रु द्वारा किये गये तिरस्कार के कारण अग्नि में प्रवेश कर रही है। इस विशाल जंगल में भटकने के कष्ट से इसकी सुकुमारता दूषित हो गयी है, जले भाग्य ने इस प्रकार बहुत से दुःख जो इसे दिये हैं उनसे यह व्याकुल हो उठी है। यह अब अपने दारुण दुःख को सहने में असमर्थ हो चुकी है। स्वप्न में भी जिन गुरुजनों की बातों का उल्लंघन इसने नहीं किया था, अग्नि में प्रवेश से रोकने वाले उन्हीं की बातों को अब यह नहीं सुन रही है। हँसी-मजाक

स्वपि समवधीर्य प्रियसखीर्विज्ञापयन्तमशरणमनाथमश्रुव्याकुलनयनमपरिभूतपूर्वं मनसापि परिभूय भृत्यवर्गमग्निं प्रविशति। परित्रायताम्। आर्योऽपि तावदसह्यशोकापनयनोपायोपदेशनिपुणां व्यापारयतु वाणीमस्याम्' इति चातिकृपणं व्याहरन्तीमहमुत्पन्नोद्विग्नतरः शनैरभिहितवान्—'आर्ये! यथा कथयसि तथा। अस्मद्गिरामगोचरोऽयमस्याः पुण्याशयायाः शोकः। शक्यते चेन्मुहूर्तमात्रमपि त्रातुमुपरिष्टान्न व्यर्थेयमभ्यर्थना भविष्यतीति। मम हि गुरुरपर इव भगवान्सुगतः समीपगत एव। कथिते मयास्मिन्वृत्तान्ते नियतमागमिष्यति परमदयालुः। दुःखान्धकारपटलभिदुरैश्च सौगतैः सुभाषितैः स्वकीयैश्च दर्शितनिदर्शनैर्नानागमगुरुभिर्गिरां कौशलैः कुशलशीलामेनां प्रबोधपदवीमारोपयिष्यति' इति। तच्च श्रुत्वा 'त्वरतामार्यः' इत्यभिदधाना सा पुनरपि पादयोः पतितवती। सोऽहमुपगत्य त्वरमाणो व्यतिकरमिममधृतिकरमशरणकृपणबहुयुवतिमरणमतिकरुणमत्रभवते गुरवे निवेदितवान्' इति।

प्रविशति तदार्योऽपि तावदस्यां वाणीं व्यापारयत्विति संबन्धः। निदर्शनं दृष्टान्तः।

के खेलों में भी जिनसे यह अपना प्रेमभाव बनाये रही, प्रार्थना करतीं हुई उन प्रिय सखियों की बात भी अब यह नहीं मान रही है। जिन सेवकों को इसने कभी भी डाँट नहीं सुनायी, अशरण और अनाथ होकर आँसू से भरे प्रार्थना करते हुए उन्हें भी अब यह फटकार देती है। इसकी रक्षा की जाय। आर्य भी इसके असहनीय शोक को दूर करने के उपायों का उपदेश करते इसे समझावें।" प्रकार अत्यन्त दीन भाव में कहती हुई उस स्त्री से दुःखी मैं उठ कर धीरे से बोला—"आर्ये! जैसा कहती हो सो ठीक है लेकिन इस पुण्य-आशय वाली का शोक हमारी वाणी के लिए अगोचर है। यदि मुहूर्त-भर के लिए भी तुम इसकी रक्षा कर सको तो यह प्रार्थना व्यर्थ नहीं जायेगी। द्वितीय भगवान् सुगत के सदृश मेरे गुरुदेव समीप में ही हैं। वे परम दयावान् हैं तथा मेरे द्वारा इस वृत्तान्त को सुनाने पर वे निश्चय ही यहाँ आ पहुँचेंगे। दुःखरूपी अन्धकार के निवारण में समर्थ भगवान् बुद्ध के अनेक सुभाषितों तथा दृष्टान्तों से भरी, अनेक आगमों से गौरवशाली अपने वचनों से कुशलशील वाली इसे समझायेंगे।" यह सुनकर "आर्य, शीघ्रता करें" यह कहती हुई वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी। सो मैंने शीघ्रता से आकर धैर्य को छुड़ाने वाले, अनाथ, दीन दुखिया अनेक युवतियों के मरने के इस अत्यन्त करुण वृत्तान्त को श्रीचरणो में सुना दिया।'

अथ भूभृद्भिक्षवं समवधार्य तद्भाषितमश्रुमिश्रितमश्रुतेऽपि स्वसुर्नाम्नि निम्नीकृतमना मन्युना सर्वाकारसंवादिन्या दशयैव दूरीकृतसंदेहो दग्ध इव सोदर्यावस्थाश्रवणेन श्रवणयोः श्रमणाचार्यमुवाच—'आर्य ! नियतं सैवेयमनार्यस्यास्य जनस्यातिकठिनहृदयस्यातिनृशंसस्य मन्दभाग्यस्य भगिनी भागधेयैरेतामवस्थां नीता निष्कारणवैरिभिर्वराकी विदीर्यमाणं मे हृदयमेव निवेदयति' इत्युक्त्वा तमपि श्रवणमभ्यधात्—'आर्य ! उत्तिष्ठ। दर्शय क्वासौ। यतस्व प्रभूतप्राणपरित्राणपुण्योपार्जनाय यामः, यदि कथंचिज्जीवन्तीं संभावयामः' इति भाषमाण एवोत्तस्थौ।

अथ समग्रशिष्यवर्गानुगतेनाचार्येण तुरगेभ्यश्चावतीर्य समस्तेन सामन्तलोकेन पश्चादाकृष्यमाणाश्वीयेनानुगम्यमानः पुरस्ताच्च तेन शाक्यपुत्रीयेण प्रदिश्यमानवर्त्मा पद्भ्यामेव तं प्रदेशमविरलैः पदैः पिबन्निव

निम्नं संकुचच्छक्ति।
यतस्व यत्नं कुरु।
अश्वीयमश्वसमूहः। शाक्यपुत्रीयेण दिवाकरमित्रशिष्येण। अविरलैर्दीर्घैः। पदै-

---

तब राजा भिक्षु की अश्रुमिश्रित बात को सुनते ही राज्यश्री का नाम न सुने जाने पर भी शोकाकुल होकर सब प्रकार की बातों से साम्य रखने वाली उस दशा से ही सन्देह रहित हो गये और अपनी बहन की इस दशा के श्रवण से मानो दग्ध हो गये। तब उन्होंने श्रमणाचार्य दिवाकर मित्र से कान में कहा—"आर्य ! विदीर्ण होता हुआ मेरा हृदय यह सूचित कर रहा है कि अनार्य, अत्यन्त कठोर हृदय वाले तथा मन्द भाग्य इस जन की अर्थात् मेरी वही यह वेचारी अकारण शत्रु, भाग्य की मारी बहन राज्यश्री है, जो इस दशा को पहुँच गयी है।" यह कहकर दूसरे भिक्षु से भी राजा ने कहा—"आर्य ! उठो और दिखाओ कि वह कहाँ है ? प्रयास करो, बहुत से प्राणों की रक्षा के पुण्य अर्जित करने के लिए हम चलें, जिससे किसी प्रकार जीवित अवस्था में ही उसे पा सकें।" ऐसा कहते हुए ही उठ खड़े हुए।

सम्पूर्ण शिष्य वर्ग के साथ आचार्य दिवाकर मित्र हर्ष के आगे चले, और उनके पीछे समस्त सामन्त लोग घोड़ों से उतर कर पैदल ही उन्हें खींचते हुए चलने लगे। राजा के आगे-आगे रास्ता दिखलाता हुआ दिवाकर मित्र का शिष्य चल रहा था। इस प्रकार वे पैदल ही उस प्रदेश को अपने नेत्रों से मानो पीते हुए अविरल चरणों से चल पड़े।

प्रावर्तत। क्रमेण च समीपमुपगतः शुश्राव लतावनान्तरितस्य मुमूर्षोर्म-हतः स्त्रैणस्य तत्कालोचितानेकप्रकारानालापान्—'भगवन्धर्म! धाव शीघ्रम्। क्वासि कुलदेवते। देवि धरणि, धीरयसि न दुःखितां दुहितरम्। क्व न खलु प्रोषिता पुष्पभूतिकुटुम्बिनी लक्ष्मीः। अनाथां नाथ मुखरवंश्य-विविधाविधुरां वधूं विधवां विबोधयसि किमिति नेमाम्। भगवन्, भक्तजने संज्वरिणि सुगत सुप्तोऽसि। राजधर्मपुष्पभूतिभवनपक्षपातिन्, उदासीनीभूतोऽसि कथम्। त्वयापि विपद्बान्धव विन्ध्य वन्ध्योऽयम-ञ्जलिबन्धः। मातर्महाटवि, रटन्तीं, न शृणोषीमामापत्पतिताम्। पतङ्ग, प्रसीद पाहि पतिव्रतामशरणाम्। प्रयत्नरक्षित कृतघ्न चारित्रचण्डाल, न रक्षसि राजपुत्रीम्। किमवधूतं लक्षणैः। हा देवि दुहितृस्नेहमयि यशोमति, मुषितासि दग्धदैवदस्युना। देव, दुहितरि दह्यमानायां नापतसि।

श्रवणक्रमैः। मुमूर्षोर्मरणोन्मुखस्य। स्त्रैणस्य स्त्रीसमूहस्यालापान् शुश्रावेत्यन्वयः। संज्वरिणि संतापवति। राजधर्मो बुद्धः।

क्रमशः जब नजदीक पहुँचे तो लतावन की ओट में मरने के लिए तत्पर बहुत सी स्त्रियों की उस अवसर के लिए उचित विविध प्रकार की बात-चीत सुने—"भगवन् धर्म! जल्दी दौड़ो। कहाँ हो कुलदेवते! देवी पृथिवी! अपनी दुखिया बेटी को क्यों नहीं धीरज बँधाती हो? पुष्पभूति की गृहिणी लक्ष्मी कहाँ चली गयी? हे मुखर वंशोत्पन्न स्वामी! विभिन्न मानसिक पीडाओं से दुखी अपनी विधवा वधू को क्यों नहीं समझाते? हे भगवान् सुगत! क्या तुम भी संतप्त भक्तजनों के लिए सो गये? पुष्पभूति के महलों के प्रति पक्षपात करने वाले राजधर्म! तुम क्यों उदासीन हो गये हो? हे विपत्ति के बान्धव विन्ध्य! क्या तुम्हारे प्रति यह हाथ जोड़ना बेकार हो जायगा? हे माता महाटवी! विपत्ति में पड़ी रट लगाती हुई इसके विलाप को नहीं सुन रही हो क्या? हे सूर्यदेव! प्रसन्न होओ तथा इस अशरण प्रतिव्रता की रक्षा करो। प्रयत्नपूर्वक जिसकी अब तक रक्षा की गयी ऐसे अरे कृतघ्न चारित्र चाण्डाल! तू राजकुमारी की रक्षा क्यों नहीं कर रहा? शुभ लक्षणों ने रहकर क्या किया? हाय, पुत्री के प्रति स्नेह रखनेवाली महारानी यशोमती! जले हुए भाग्यरूपी डाकू ने तुम्हें लूट लिया। महाराज! (आपकी) पुत्री जल रही है फिर भी आप नहीं

प्रतापशील, शिथिलीभूतमपत्यप्रेम। महाराज राज्यवर्धन, न धावसि मन्दीभूता भगिनीप्रीतिः। अहो निष्ठुरः प्रेतभावः। व्यपेहि पाप पावक स्त्रीघातनिर्घृण, ज्वलन्न लज्जसे। भ्रातर्वात, दासी तवास्मि। संवादय द्रुतं देवीदाहं देवाय दुःखितजनार्तिहराय हर्षाय। नितान्तनिःशूक शोकश्वपाक, सकामोऽसि। दुःखदायिन्वियोगराक्षस, संतुष्टोऽसि। विजने वने कमाक्रन्दामि कस्मै कथयामि, कमुपयामि शरणम्, कां दिशं प्रतिपद्ये, करोमि किमभागधेया। गान्धारिके, गृहीतोऽयं लतापाशः। पिशाचि मोचनिके, मुञ्च शाखाग्रहणकलहम्। कलहंसि हंसि, किमतः परमुत्तमाङ्गम्। मङ्गलिके मुक्तगलं किमद्यापि रुद्यते। सुन्दरि, दूरीभवति सखीसार्थः। स्थास्यसि कथमिवाशिवे शवशिबिरे शबरिके सुतनु तनूनपाति पतिष्यसि त्वमपि। मृणालकोमले मालति, म्लानासि। मातर्मातङ्गिके,

गान्धारिके मोचनिके कलहंसि इत्यादिना सहगतसखीनां संबोधनानि।

आ रहे ? हे प्रतापशील ! क्या सन्तान के प्रति आपका प्रेम शिथिल पड़ गया है। हे महाराज राज्यवर्धन ! क्यों नहीं दौड़कर आ रहे हो ? क्या बहन के प्रति प्रेम मन्दा पड़ चुका है ? आश्चर्य है ! मर जाने वाले निष्ठुर हो जाता है। अरे पापी आग ! भाग जा ! स्त्री को मार डालने में निर्दय ! तू जलता हुआ लज्जित नहीं होता ? हे भाई पवन ! तुम्हारी दासी हूँ। जल्दी से महारानी के जलने के समाचार को दुखियों के कष्टों को दूर करने वाले महाराज हर्ष तक पहुँचा दो। अरे अत्यन्त निर्दय चण्डाल शोक ! तेरी कामना पूरी हुई। अरे दुखदायी वियोग ! अब तू सन्तुष्ट है ! इस निर्जनवन में किसे पुकारूँ, किससे कहूँ, किसकी शरण गहूँ, किस ओर जाऊँ, अभागिन मैं क्या करूँ ? हे सखी गान्धारिका ! मैंने यह लता की डोरी उठा ली है। अरी पिशाचिन मोचनिका ! झूल जाने के लिए डाल पकड़ लेने दे, झगड़ मत। अरी कलहंसी, अब क्यों सिर फोड़ रही है ?

अरी मङ्गलिका ! आज भी क्यों गला फाड़ कर रो रही है ? अरी सुन्दरी ! अब सखियाँ दूर हो रही हैं। अरी शबरिका ! मुर्दों के इस अमङ्गल शिविर में तू कैसे ठहरेगी ? अरी सुन्दर अङ्गोवाली ! तू भी आग में गिरेगी ? अरी मृणाल के सदृश सुकुमार मालावती ! तू तो मुरझा गयी है। हे माता मातङ्गिका !

अङ्गीकृतस्त्वयापि मृत्युः। वत्से वत्सिक, वत्स्यसि कथमनभिप्रेते प्रेतनगरे। नागरिके, गरिमाणमापतास्यनया स्वामिभक्त्या। विराजिके, विराजितासि राजपुत्रीविपदि जीवितव्ययव्यवसायेन। भृगुपतनाभ्युद्यमभागाभिशे भृङ्गारधारिणि धन्यासि। केतकि, कुतः पुनरीदृशी स्वप्नेऽपि सुखासिनी। मेनके, जन्मनि जन्मनि देवीदास्यमेव ददातु देवो देवं दहन्दहनः। विजये, वीजय कृशानुम्। सानुमति, नमतीन्दीवरिका दिवं गन्तुकामा। कामदासि, देहि दहनप्रदक्षिणावकाशम्। विचारिके, विरचय वह्निम्। विकिर किरातिके, कुसुमप्रकरम्। कुररिके, कुरु कुरुबककोरकाचितां चिताम्। चामरं चामरग्राहिणि, गृहाण। पुनरपि कण्ठे मर्षयितव्यानि नर्मदे नर्मनिर्मितानि निर्मर्यादहसितानि। भद्रे सुभद्रे, भद्रमस्तु ते परलोकगमनम्। अग्रामीणगुणानुरागिणि ग्रामेयिके, गच्छ सुगतिम्।

तू ने भी मौत को स्वीकार कर लिया? अरी वत्से वत्सिका! अनभिप्रेत प्रेत नगर में तू कैसे वास करेगी? अरी नागरिका! स्वामी के प्रति इस भक्ति से मुझमें गुरुता आ गयी है। अरी विराजिका! राजकुमारी की इस मुसीबत में अपने प्राणों को न्यौछावर करने के इस प्रयास से तू सुशोभित है। अरी भृङ्गार (जलपात्र विशेष) धारण करने वाली! पर्वत-शिखर से गिरने के इस उद्योग से तू धन्य है। अरी केतकी! ऐसी अच्छी स्वामिनी स्वप्न में भी कहाँ मिलेगी? अरी मेनका! अग्निदेव शरीर को जलाकर जन्म-जन्म में देवी की ही दासी बनने का अवसर प्रदान करे। अरी विजया! आग को झल दे। अरी सानुमती! स्वर्ग जाने की इच्छा वाली इन्दीवरिका तुझे प्रणाम कर रही है। अरी कामदासी! अग्नि की परिक्रमा का अवसर दे। अरी विचारिका! आग लगाने की तैयारी कर। अरी किरातिका! फूल बिखेर दे। अरी कुररिका! कुरुबक की कलियों से चिता को सजा। अरी चामरग्राहिणी, चँवर उठा। अरी नर्मदा! हँसी-मजाक की गयी मर्यादाहीन हँसियों को फिर से माफ कर देना। भद्रे सुभद्रे! तेरा परलोक जाना मंगलमय हो। अग्रामीण गुणों के प्रति अनुराग रखने वाली अरी ग्रामेयिका, तू सद्गति को प्राप्त हो। अरी वसन्तिका! फुर्सत दे।

वसन्तिके, अन्तरं प्रयच्छ। आपृच्छते छत्रधारी देवि देहि दृष्टिम्। इष्टा तव जहाति जीवितं विजयसेना। सेथं मुक्तिका मुक्तकण्ठमारटति निकटे नाटकसूत्रधारी। पादयोः पतति ते ताम्बूलवाहिनी बहुमता राजपुत्रि, पत्रलता। कलिङ्गसेने,अयं पश्चिमः परिष्वङ्गः। पीडय निर्भरमुरसा माम्। असवः प्रवसन्ति वसन्तसेने। मञ्जुलिके, मार्जयसि कृतिकृत्वः सुदुःसह-दुःखसहस्रास्रदिग्धं चक्षुरिदं, रोदिषि कियदाश्लिष्य च माम्। निर्माण-मीदृशं प्रायशो यशोधने। धीरयस्यद्यापि किं मां माधविके। क्वेयमवस्था संस्थापनानाम्। गतः कालः कालिन्दि, सखीजनानुनयाञ्जलीनाम्। उन्म-त्तिके मत्तपालिके, कृताः पृष्ठतः प्रणयिनोप्रणिपातानुरोधाः। शिथिलय चकोरवति, चरणग्रहणं ग्रहिणि। कमलिनि, किमनेन पुनः पुनर्दैवोपा-लम्भेन। न प्राप्तं चिरं सखीजनसंगमसुखम्। आर्ये महत्तरिके तरङ्गसेने, नमस्कारः। सखि सौदामिनि, दृष्टासि। समुपनय हव्यवाहनार्चनकुसु-

तनूनपाति वह्नौ। वत्स्यस्यासिष्यसि। भृगुः प्रपातः। उक्तं च—'प्रपातस्त्वतटो भृगुः' इत्यमरः। निर्माणं विधानम्। अर्थात्संसारस्य।

संस्थापनानां सांत्वनानाम्। ग्रहोऽभिनिवेशः।

हे देवी! छत्रधारी बिदा माँग रही है, उस पर नजर डालिए। आपकी प्रिय सखी विजयसेना प्राणोत्सर्ग कर रही है। नाटक की सूत्रधारी यह मुक्तिका आपके नजदीक गला फाड़ कर चीख रही है। हे राजकुमारी! आप जिसे बहुत मानती थी वही ताम्बूल वाहिनी आपके चरणों पर गिर रही है। अरी कलिङ्ग सेना! यह अन्तिम आलिङ्गन है। कसकर मुझे छाती से दबा। अरी वसन्त सेना! अब तो प्राण जा रहे हैं। अरी मञ्जुलिका! दुःसह दुःखों के उत्पन्न आँसुओं से आँखों को कितनी बार साफ करेगी और कितनी बार मुझे आलिङ्गन में बाँधकर रोएगी? अरी यशोधना! विधाता का प्रायः ऐसा ही विधान है। अरी माधविका! आज भी मुझे क्यों धीरज बँधाती है? अब सान्त्वना देने की अवस्था कहाँ? अरी कालिन्दी! सखियों के अनुनय की अञ्जलि का अवसर चला गया। अरी पागल मत्तपालिका! प्रिय सखियों के प्रणिपात के अनुरोध पीछे कर दिये गये। अरी ढीठ चकोरवती! मेरे पाँव छोड़ दे। अरी कमलिनी! बार-बार दैव को कोसने से क्या फायदा? सखियों का मिलन-सुख देर तक नहीं प्राप्त हो सका। आर्या महत्तरिका तरंगसेना! यह मेरा नमस्कार है। सखी सौदामिनी! तुझे देख लिया। अरी कुमुदिका! अग्निदेव की पूजा के फूल ला।

मान्ति कुमुदिके। देहि चितारोहणाय रोहिणि, हस्तावलम्बनम्। अम्ब, धात्रि, धीरा भव। भवन्त्येवं विधा एव कर्मणां विपाकाः पापकारिणीनाम्। आर्यचरणानामयमञ्जलिः। परः परलोकप्रस्थानप्रणामोऽयं मातः। मरणसमये कस्माल्लवलिके, हलहलको बलीयानानन्दमयो हृदयस्य मे। हृष्यन्त्युच्चरोमाञ्चमुद्धि किमङ्गीकृत्याङ्गानि। वामनिके, वामेन मे स्फुरितमक्ष्णा। वृथा विरससि वयस्य वायस, वृक्ष क्षीरिणि क्षणे क्षणे क्षीणपुण्यायाः पुरः। हरिणि, हेषितमिव हयानामुत्तरतः। कस्येदमातपत्रमुच्चमन्तःपादपान्तरेण प्रभावति, विभाव्यते। कुरङ्गिके, केन सुगृहीतनाम्नो नाम गृहीतममृतमयमार्यस्य। देवि, दिष्ट्या वर्धसे देवस्य हर्षस्यागमनमहोत्सवेन।' इत्येतच्च श्रुत्वा सत्वरमुपससर्प। ददर्श च मुह्यन्तीमग्निप्रवेशायोद्यतां राजा राज्यश्रियम्। आललम्बे च मूर्च्छामीलितलोचनायाः ललाटं हस्तेन तस्याः ससंभ्रमम्।

हलहलक उत्कण्ठा। एवमादिना निहितेन हर्षागमनं सूच्यते।

अरी रोहिणी! चितारोहण के लिए हाथ का सहारा दे। माता पृथिवी, धीरज रख। पापिनियों के कर्मों के परिणाम ऐसे ही हुआ करते हैं। आर्य चरणों के लिए यह अञ्जलि है। हे माता! परलोक को प्रस्थान करने का यह अन्तिम प्रणाम है। अरी लवलिका! मरने के समय मेरे हृदय में यह आनन्द से भरी उत्कण्ठा क्यों उत्पन्न हो रही है? क्या सोचकर मेरे रोमाञ्चित अङ्ग प्रसन्न हो रहे हैं? अरी वामनिका! मेरा बायाँ नेत्र फड़क रहा है। मित्र वायस! क्षीण पुण्य मेरे समक्ष दुधारे पेड़ पर बैठकर बेकार ही काँव-काँव मचा रहे हो। अरी हरिणी! उत्तर की ओर घोड़ों की हिनहिनाहट-सी सुनायी पड़ रही है। अरी प्रभावती किसका यह ऊँचा छत्र वृक्षों की ओट में झलक रहा है? अरी कुरङ्गिका! सुगृहीतनाम आर्य का किसने अमृतमय नाम लिया? हे देवी! हर्ष के इस आगमन-महोत्सव से तुम्हारी भाग्यवृद्धि हो'' यह सुनकर हर्ष समीप पहुँच गये और मूर्च्छित-सी एवं अग्नि-प्रवेश के लिए तत्पर राज्यश्री को देखा। हड़बड़ाहट के साथ उन्होंने मूर्च्छा के कारण बन्द नेत्रों वाली इसके (अर्थात् राज्यश्री के) ललाट को अपने हाथ से ओड़ लिया।

अथ तेन भ्रातुः प्रेयसः प्रकोष्ठबद्धानामोषधीनां रसविरसमिव प्रत्यु-ज्जीवनक्षमं क्षरता वमतेव पारिहार्यमणीनामचिन्त्यं प्रभावममृतमिव नख-चन्द्ररश्मिभिरुद्गिरता बध्नतेव चन्द्रोदयच्युतशिशिरशीकरं चन्द्रकान्तचूडा-मणिं मूर्धनि मृणालमयाङ्गुलिनेवातिशीतलेन निर्वापयता दह्यमानं हृदय-प्रत्यानयतेव कुतोऽपि जीवितमाह्लादकेन हस्तसंस्पर्शेन सहसैव समुन्मि-मील राज्यश्रीः। तथा चासंभावितागमनस्याचिन्तितदर्शनस्य सहसा प्राप्तस्य भ्रातुः स्वप्नदृष्टदर्शनस्येव कण्ठे समाश्लिष्य तत्कालविभाविनि-र्भरेणाभिभूतसर्वात्मना दुःखसंभारेण निर्दयं नदीमुखप्रणालाभ्यामिव मुक्ताभ्यां स्थूलप्रवाहमुत्सृजन्ती बाष्पवारि विलोचनाभ्याम् 'हा तात, हा अम्ब, हा सख्यः' इति व्याहरन्ती मुहुर्मुहुरुच्चैस्तरां च समुद्भूतभगिनी-स्नेहसद्भावभारभावितमन्युना मुक्तकण्ठमतिचिरं विक्रुश्य 'वत्से, स्थिरा

अथेत्यादौ—भ्रातुर्हस्तसंस्पर्शेन राज्यश्रीः सहसैव समुन्मिमीलेति संबन्धः। पारिहार्यं कटकम्। तथा चेत्यादौ साकरोदिति संबन्धः। दुःखनिवहस्य निर्वहणं

इसके बाद प्रिय भाई के आह्लादित करने वाले कर-स्पर्श से राज्यश्री के नेत्र खुल गये। हर्ष के हाथ का स्पर्श ऐसा प्रतीत हुआ मानो पुनः जीवित कर देने में समर्थ कलाई में बँधी हुई औषधियों का रस ढकेल रहा हो, या मानो कंगन की मणियों का अचिन्त्य प्रभाव उगल रहा हो, या नखचन्द्र की किरणों से अमृत बरस रहा हो, या चन्द्रोदय होने से ठंढी बूँदों को बहाने वाले चन्द्रकान्त के चूडामणि को मस्तक पर बाँध रहा हो, या अत्यन्त ठण्ढी मृणालमय अंगुलि से जलते हुए हृदय को शीतल कर रहा हो या कहीं से प्राणों को लौटा रहा हो। और उस प्रकार असंभावित आगमन पुनः अचानक पहुँचे हुए, मानो स्वप्न में दिखाई दिये हुए भाई हर्ष के कण्ठ में आलिङ्गन करके तत्काल प्रकट होने से अधिक तथा सबको अभिभूत करने वाले दुःखसम्भार से राज्यश्री नदी के मुख से निकलने वाली नाली के समान आँसुओं के स्थूल प्रवाह को अपनी आँखों से बहाती हुई "हा पिता! हा माता! हा सखियाँ!" इस प्रकार विलाप करती हुई तथा बार-बार बहने के स्नेह से शोक उत्पन्न होने के कारण हर्ष द्वारा भी देर तक मुक्तकण्ठ से रोने के बाद "वत्से! अब तुम स्थिर होओ" इस प्रकार हाथ से मुँह को ढँकी हुई उसे सान्त्वना दी गयी। आचार्य ने भी "कल्याणी!

भव त्वम्' इति भ्रात्रा करस्थगितमुखी समाश्वास्यमानापि 'कल्याणिनि, कुरु वचनमग्रजस्य गुरोः' इत्याचार्येण याच्यमानापि, 'देवि, न पश्यसि देवस्यावस्थाम् । अलमतिरुदितेन' इति राजलोकेनाभ्यर्थ्यमानापि, 'स्वामिनि, भ्रातरमवेक्षस्व' इति परिजनेन विज्ञाप्यमानापि, 'दुहितः, विश्रम्य पुनरारटितव्यम्' इति निवार्यमाणापि बान्धववृद्धाभिः, 'प्रियसखि, कियद्रोदिषि, तूष्णीमास्स्व । दृढं दूयते देव' इति सखीभिरनुनीयमानापि, चिरं संभाविताानेकदुःसहदुःखनिवहनिर्वहणबाष्पोत्पीडपीड्यमानकण्ठभागा, प्रभूतमन्युभारभरितान्तःकरणा करुणं काहलेन स्वरेण कतिचित्कालमतिदीर्घं रुरोद । विगते च मन्युवेगे वह्नेः समीपादाक्षिप्य भ्राता नीता निकटवर्तिनि तरुतले निषसाद ।

शनैराचार्यस्तु तथा हर्ष इति विज्ञाय विवर्धितादरः सुतरां मुहूर्तमिवातिवाह्य निभृतसंज्ञाज्ञापितेन शिष्येणोपनीतं नलिनीदलैः स्वयमेवादाय नम्रो मुखप्रक्षालनीयोदकमुपनिन्ये । नरेन्द्रोऽपि सादरं गृहीत्वा प्रथममन-

---

प्रकटन यस्माद् बाष्पोत्पीडादिति समासः । काहलेन महता ।

अपने गुरुतुल्य बड़े भाई की बात मान जाओ'' इस प्रकार उससे याचना की । राजाओं ने भी "देवि ! महाराज की दशा को आप नहीं देखती ? कृपया रोइए मत'' इस प्रकार उससे अभ्यर्थना की । परिजनों ने भी "मालकिन ! अपने भाई को देखिए'' इस प्रकार उससे निवेदन किया । बान्धव वृद्धों द्वारा भी "बेटी ! थोड़ा रुक जाओ फिर रो लेना'' इस प्रकार उसे रोका गया । सखियों द्वारा भी'' "हे प्रियसखी ! कितना रोती हो? अब चुप हो जाओ ! देव बहुत दुःखी हो रहे हैं'' इस प्रकार उससे अनुनय किया गया फिर भी बहुत दिनों के अनुभूत दुःसह दुःख के कारण बाष्प से रुँधे हुए गले वाली एवं अत्यन्त शोक भार से भरे अन्तःकरण वाली राज्यश्री कुछ देर तक जोर-जोर से रोती रही । शोक का वेग जब थमा तो हर्ष उसे अग्नि के पास से दूर हटाकर समीप के पेड़ के नीचे ले गये तब वह बैठी ।

आचार्य (दिवाकर मित्र) ने हर्ष को उस प्रकार जान, क्षणभर ठहर, धीरे से अपने शिष्य को संकेत से आदेश दिया और उसके द्वारा लाये गये जल को कमलिनी के पत्ते के दोने में लेकर स्वयं आदर एवं नम्रता के साथ राजा को अर्पित किया । राजा ने भी आदरपूर्वक उसे ग्रहण कर पहले लगातार रोते

वरतरोदनाताम्रं चिरप्रवृत्ताश्रुजलजालं रक्तपङ्कजमिव स्वसुश्चक्षुरक्षालय-त्पश्चादात्मनः। प्रक्षालितमुखशशिनि च महीपाले सर्वतो निःशब्द संबभूव सकलो लिखित इव लोकः। ततो नरेन्द्रो मन्दमन्दमब्रवीत्स्वसारम्—'वत्से! वन्दस्वात्रभवन्तं भदन्तम्। एष ते भर्तुर्हृदयं द्वितीयमस्माकं च गुरुः' इति। राजवचनात्तु राजदुहितरि पतिपरिचयश्रवणोद्घातेन पुन-रानीतनेत्राम्भसि नमन्त्यामाचार्यः प्रयत्नरक्षितागमागतबाष्पाम्भःसंभार-भज्यमानधैर्यार्द्रलोचनः किंचित्परावृत्तनयनो दीर्घं निःशश्वासः। स्मित्वा च क्षणमेकं प्रदर्शितप्रश्रयो मृदुवादी मधुरया वाचा व्याजहर—'कल्याण-राशे! अलं रुदितमातिचिरम्। राजलोको नाद्यापि रोदनान्निवर्तते। क्रियतामवश्यकरणीयः स्नानविधिः। स्नात्वा च गम्यतां तामेव भूयो भुवम्' इति।

अथ भूपतिरनुवर्तमानो लौकिकमाचारमाचार्यवचनं चोत्थाय स्नात्वा गिरिसरिति सह स्वस्रा तामेव भूमिमयासीत्। तस्यां च सपरिजनां

उद्घातः प्रस्तावः। यतोऽयं राजलोकश्चिरं रुदित्वा नाद्यापि रोदनान्निवर्तते तत्स्नानविधिः क्रियतामिति।

रहने के कारण लाल-लाल तथा देर तक आँसू बहाने के कारण रक्त कमलों के सदृश राज्यश्री की आँखों को धोया तथा बाद में अपनी आँखों को भी। राजा द्वारा अपना मुखचन्द्र धो लेने पर सभी लोग चित्रलिखित के समान निःशब्द हो गये। तब राजा हर्ष ने धीरे-धीरे अपनी बहन राज्यश्री से कहा—"वत्से! आदरणीय भदन्त को प्रणाम करो। ये तुम्हारे पति के द्वितीय हृदय एवं हमारे गुरु हैं।" राजा की बात से राजकुमारी की आँखें पति का परिचय सुनने के प्रस्ताव से पुनः छलछला उठी तथा उसने प्रणाम किया। तब आचार्य ने भी उमड़ते हुए आँसुओं को प्रयास पूर्वक रोककर धैर्य टूटने से फिर भी गीली होती हुई आँखों को कुछ मोड़कर जोर से साँस ली।

मृदुभाषी वे एक क्षण ठहर कर विनम्रता प्रदर्शित करते हुए मधुर वाणी में बोले—"कल्याण राशे! अब अधिक रोने से बस करो! राजा लोग भी अभी तक रोने से बाज नहीं आ रहे हैं। अब स्नान करके पुनः उसी स्थान पर चलना चाहिए।"

इसके बाद लोकाचार तथा आचार्य की बात मानकर हर्ष उठे एवं राज्यश्री

प्रथममाहितावधानः पार्श्ववर्ती परवतीं शुचा पतिपिण्डप्रदर्शितप्रयत्नप्रतिपन्नाभ्यवहारकारणां भगिनीमभोजयत्। अनन्तरं च स्वयमाहारस्थितिमकरोत्। भुक्तवांश्च बन्धनात्प्रभृति विस्तरतः स्वसुः कान्यकुब्जाद् गौडसंभ्रमं गुप्तितो गुप्तनाम्ना कुलपुत्रेण निष्कासनं निर्गतायाश्च राज्यवर्धनमरणश्रवणं श्रुत्वा चाहारनिराकरणमनाहारपराहतायाश्च विन्ध्याटवीपर्यटनखेदं जातनिर्वेदायाः पावकप्रवेशोपक्रमणं यावत्सर्वमशृणोद्व्यतिकरं परिजनतः। ततः सुखासीनमेकत्र तरुतले विविक्तभुवि भगिनीद्वितीयं दूरस्थितानुजीविजनं राजानमाचार्यः समुपसृत्य शनैरासांचक्रे। स्थित्वा च कंचित्कालांशं लेशतो वक्तुमुपचक्रमे—'श्रीमन्! आकर्णयतु। आख्येयमस्ति नः किंचित्—

अयं हि यौवनोन्मादात्परिभूय भूयसीर्भार्या यौवनावतारतरलतरास्ताराराजो रजनीकर्णपूरः पुरा पुरुहूतपुरोधसो धिषणस्य पुरंध्रीं धर्मपत्नीं

परवतीं परायत्ताम्। गुप्तितो बन्धनात्।

धिषणस्य बृहस्पतेः। पत्नीयन्नात्मनः पत्नीमिच्छन्। कारोहो नितम्बः।

के साथ पहाड़ी नदी में स्नान करके उसी आश्रम में लौट आये। वहाँ बगल में बैठकर देखभाल करते हुए हर्ष ने शोक के परवश हुई तथा दिवंगत पति ग्रहवर्मा को पिण्ड अर्पित करने के लिए जीवित रहने का साधन भोजन करना स्वीकार करने वाली राज्यश्री को पहले भोजन कराया तथा बाद में स्वयं भी थोड़ा खाया। भोजनोपरान्त परिजन के द्वारा उन्होंने विस्तारपूर्वक सब समाचार सुना कि किस प्रकार राज्यश्री बन्धन में डाली गयी, किस प्रकार गुप्त नामक एक कुलपुत्र ने गौड़ से डरते-डरते कारागार से उसे बाहर निकाला, किस प्रकार बाहर आने पर उसने राज्यवर्धन का मृत्यु समाचार सुना, किस प्रकार भोजन का परित्याग कर देने से कमजोर होकर वह विन्ध्याटवी में भटकती रही और किस प्रकार निर्वेद उत्पन्न होने से आग में जलने की उसने तैयारी की। तब एक पेड़ के नीचे सुनसान जगह में परिजनों के दूर रहने पर राज्यश्री के साथ सुखपूर्वक बैठे हुए राजा के पास दिवाकर मित्र पहुँचे और धीरे से बैठ गये। क्षण भर रुककर वे कहने लगे—"श्रीमान्! सुनिये! हमें कुछ कहना है।"

रात्रि के कर्णपूर तारापति इस चन्द्रमा ने यौवनोन्माद से यौवनावतार से मतवाली अपनी बहुत सी पत्नियों की उपेक्षा कर इन्द्र के पुरोहित बृहस्पति की

पत्नीयन्नतितरलस्तारां नामापजहार। नाकतश्च पलायांचक्रे। चकित-चकोरलोचनया च तया सहातिकामया सर्वाकाराभिरामया रममाणो रमणीयेषु देशेषु चचार। चिराच्च कथंचित्सर्वगीर्वाणवाणीगौरवाद् गिरां पत्युः पुनरपि प्रत्यर्पयामास ताम्। हृदये त्वनिन्धनमदह्यत विरहाद्वरारोहायाः स्तस्याः सततम्।

एकदा तु शैलादुदयाददयमानो विमले वारिणि वरुणालयस्य संक्रान्तमात्मनः प्रतिबिम्बं विलोकितवान्। दृष्ट्वा च तत्तदा सस्मरः सस्मार स्मेरगण्डस्थलस्य तारायाः मुखस्य। मुमोच स मन्मथोन्मादमथ्यमानमानसः स्वःस्थोऽप्यस्वस्थः स्थवीयसः पीतसकलकुमुदवनप्रभाप्रवाहधवलताराभ्यमिव लोचनाभ्यां बाष्पवारिबिन्दून्। अथ पततस्तानुदन्वति समस्तानेवाचेमुर्मुक्ताशुक्तयः। तासां च कुक्षिकोषेषु मुक्ताफलीभूतानवाप तान्कथमपि रसातलनिवासी वासुकिर्नाम विषमुचामीशः। स च तैर्मुक्ताफलैः पातालतलेऽपि तारागणमिव दर्शयद्भिरेकावलीमकल्पयत्।

उन्मादः खेदः। स्वःस्थः स्वर्गस्थः। अस्वस्थः पीडितः। अपिर्विरोधस्य सूचकः।

धर्मपत्नी तारा को पत्नी बनाने की इच्छा से अपहृत किया था एवं स्वर्ग से भाग खड़ा हुआ था। चकित चकोर के सदृश आँखों वाली अत्यन्त कामुकी एवं सब प्रकार से सुन्दरी उस स्त्री के साथ रमणीय प्रदेशों में विहार करता हुआ वह घूमता रहा। बहुत समय के बाद सभी देवताओं के समझाने बुझाने पर किसी प्रकार पुनः उसे बृहस्पति को सौंप दिया किन्तु उस सुजघना के वियोग की ज्वाला उसके हृदय में सदैव सुलगती रही।

एक समय उदयाचल से उगते हुए उसने सागर के स्वच्छ जल में संक्रान्त अपने प्रतिबिम्बों को देखा और कामभाव से उसे तारा का हँसता हुआ मुखमण्डल याद आ गया। कामोन्माद द्वारा मथे गये हृदय से युक्त वह स्वस्थ (स्वर्गस्थ) होते हुए भी अस्वस्थ जैसा हो गया तथा समस्त कुमुदवनों के प्रभाप्रवाह के पी जाने से मानो उज्ज्वल हुए अपने नेत्रों से आँसू गिरने लगा। जो आँसू समुद्र में गिरे उन्हें सीपियाँ पी गयीं। उनके पेट में बने हुए वे मोती रसातल में वास करने वाले नागराज वासुकि के हाथ लगे। उन्होंने पाताल में भी तारों का दृश्य उपस्थित करने वाले उन मुक्ताफलों को गूँथ कर एक लड़ी माला बनायी,

चकार च मन्दाकिनीति नाम तस्याः। सा च भगवतः सोमस्य सर्वासामोषधीनामधिपतेः प्रभावादत्यन्तविषघ्नी हिमामृतसंभवत्वाच्च स्पर्शेन सर्वसत्त्वसंतापहारिणी बभूव। यतः स तां सर्वदा विषोष्मशान्तये वासुकिः पर्यधत्त।

समतिक्रामति च कियत्यपि काले कदाचित्तामेकावलीं तस्मान्नागराजान्नागार्जुनो नाम नागैरेवानीतः पातालतलं भिक्षुरभिक्षत लेभे च। निर्गत्य च रसातलात्त्रिसमुद्राधिपतये सातवाहननाम्ने नरेन्द्राय सुहृदे स ददौ ताम्। सा चास्माकं कालेन शिष्यपरम्परया कथमपि हस्तमुपगता। यद्यपि च परिभव इव भवति भवादृशां दत्त्रिम उपचारस्तथाप्योषधिबुद्धया बुद्धिमता सर्वसत्त्वराशिरक्षाप्रवृत्तेन रक्षणीयशरीरेणायुष्मता विषरक्षापेक्षया गृह्यताम्' इत्यभिधाय भिक्षोरभ्याशवर्तिनश्चीवरपटान्तसंयतां मुमोच तामेकावलीं मन्दाकिनीम्।

उन्मुच्यमानाया एव यस्याः प्रभालेपिनि लब्धावकाशे विशदमहसि

दानेन निर्वृत्तो दत्त्रिमः। अभ्यासो निकटः।

जिसका नाम मन्दाकिनी रखा। वह एक लड़ी माला सम्पूर्ण औषधियों के स्वामी भगवान् चन्द्रमा के प्रभाव से अत्यन्त विषहरण करने वाली तथा हिमरूपी षमृत से उत्पन्न होने के कारण समग्र प्राणियों के सन्ताप को दूर करने वाली हुई। इसलिए विष की लपटों को शान्त रखने के लिए वासुकि उसे हमेशा धारण करने लगा।

कुछ समय जब बीत गया तो किसी समय नागों द्वारा ही पाताल में लाये गये नागार्जुन नामक किसी भिक्षु ने उस नागराज वासुकि से माला को मांगकर प्राप्त किया। पाताल से निकलकर तीन समुद्रों के स्वामी अपने मित्र सातवाहन नामक राजा को उसने वह एकाबली माला दी। वही माला किसी प्रकार शिष्य परम्परा द्वारा हमारे हाथ आयी है। यद्यपि आपको कोई चीज देना अपमान है तथापि औषधि समझकर सभी जीवों की रक्षा के लिए प्रवृत्त, रक्षा के योग्य शरीरवाले, बुद्धिमान तथा आयुष्मान् आप विष से अपनी रक्षा के लिए इसे स्वीकार करें।'' यह कहकर उन्होंने समीपवर्ती शिष्य के चीवर वस्त्र में लिपटी हुई उस मन्दाकिनी नामक एकावली माला को निकाल दिया।

निकालते ही जिस माला की उज्ज्वल किरणें अवकाश पाकर फैल गयीं,

महीयसि विसर्पति रश्मिमण्डले युगपद्धवलायमानेषु दिङ्मुखेषु मुकुलितलतावधूत्कण्ठितैरामूलाद्विकसितमिव तरुभिः, अभिनवमृणाललुब्धैर्धावितमिव धुतपक्षपुटपटलधवलितगगनं वनसरसीहंसयूथैः, स्फुटितमिव भरवशविशीर्यमाणधूलिधवलैर्गर्भभेदसूचितसूचीसंचयशुचिभिः केतकीवाटैः, उद्दलितदन्तुराभिः प्रबुद्धमिव कुमुदिनीभिः, विधुतसितसटाभारभरितदिक्चक्रैश्चलितमिव केसरिकुलैः, प्रहसितमिव सितदशनांशुमालालोकलिप्यमानवनं वनदेवताभिः, विकसितमिव शिथिलतकुसुमकोशकेसराट्टहासनिरङ्कुशं काशकाननैः, भ्रान्तमिव संभ्रमभ्रमितबालपल्लवपरिवेषश्वेतायमानैश्चमरीकदम्बकैः, प्रसृतमिव स्फायमानफेनिलतरलतरतरङ्गोद्गारिणा गिरिनदीपूरेण, अपरतारागणलोभमुदितेनोदितमिव विकचमरीचिचक्रान्तककुभा पूर्णचन्द्रेण, प्रक्षालित इव दावानलधूलिधूसरितदिगन्तो दिवसः, पुनरिव धौतान्यश्रुजलक्लिष्टानि नारीणां मुखानि।

महत्सरः सरसी। केतक्यो वृक्षभेदाः। काशास्तृणभेदाः। परिवेषः परिवलनम्। स्फायमाना वर्धमानाः।

उसके प्रकाश से एक ही बार दिशायें धवलित हो गयीं। मुकुलित लताबधुओं के लिए उत्कण्ठित होकर वृक्ष मानो नीचे तक विकसित हो उठे। नये मृणालों के लोभी, वनसरसियों के हंस, झुण्ड के झुण्ड अपने पंखों से आकाश को उजाला बनाते हुए मानो दौड़ पड़े। भारवश झड़ती हुई धूल के उजले तथा गर्भ के भीतर से निकलती हुई सूचियों वाले केवड़े के समूह मानो फूट पड़े। खिले हुए पत्तों से झुकी एवं उठी हुई कुमुदिनियाँ मानों जग पड़ीं। अनेक सिंह अपनी गर्दन के उजले सटाभार को दिशाओं में झलते हुए मानों चल पड़े। वनदेवता अपने उजले दाँतों की किरणों से वन को उद्भासित करती हुई मानो हँस पड़ीं। काश के वनफूल-गुच्छों से अट्टहास के रूप में निकलते हुए परागों द्वारा मानो जोर से अट्टहास के साथ खिल उठे। चमरी गायें अपने हिलते हुए बालव्यजनों से वन को उजला बनाती हुई मानो घूम पड़ीं। बढ़ती हुई फेनिल एवं चंचल तरंगों के रूप में पहाड़ी नदी की धारा मानो फैल गयी। दूसरे तारों के लोभ से प्रसन्न पूर्णचन्द्र मानो किरणों से दिशाओं को आक्रान्त करता हुआ उग गया। दावानल की धूल में मटमैला दिगन्तवाला दिन मानो धुल गया। आँसुओं के जल से कलुषित स्त्रियों के मुख मानो फिर से धुल गये।

राजा तु मांसलैस्तस्याः संमुखैर्मयूखैराकुलीक्रियमाणं मुहुर्मुहुरुन्मीलयन्निमीलयंश्च चक्षुः कथमपि प्रयत्नेन ददर्श सर्वाशापूरणीं पङ्क्तीकृतामिव दिङ्नागकरशीकरसंहतिम्, घनमुक्तां शारदीमिव लेखीकृतां ज्योत्स्नाम्, प्रकटपदकचिह्नां संचारवीथीमिव बालेन्दोर्निश्चलीभूतां सप्तर्षिमालामिव हस्तमुक्ताम्, अभिभूतसकलभुवनभूषणभूतिप्रभावामिवैशानीं शशिकलाम्, धवलतागुणपरिगृहीतां कान्तिमिव निर्गतां क्षीरराशेः अनेकमहामहीभृत्परम्परागतां गङ्गामिव दुर्गतिहराम्, अनवरतस्फुरिततरलांशुकां पुरःसरपताकामिव महेश्वरभावागमस्य, घनसारशुक्लां दन्तपङ्क्तिमिवाभिमुखस्येश्वरस्य, वरमनोरथपूरणसमर्थां स्वयंवरस्रजमिव भुव-

आशा आस्थाः, दिशश्च। घनमुक्तां निरन्तरमौक्तिकाम्, मेघव्यक्तां च। पदकं मध्यमणिः। पदमेव च पदकम्। हस्तमुक्ताम्। परिवर्तुलत्वाद्धस्ते यः स्थितिं न बध्नाति। हस्तो हस्तसंज्ञा वा, नक्षत्रं च हस्तः। सकलभुवनभूषणं कौस्तुभादिः, हरश्च। भूतिः समृद्धिः, भस्म च। गुणो धर्मः, तन्तुश्च। महीभृतो राजानः, पर्वताश्च। दुर्गतिर्दारिद्र्यम्, नरकादिगतिश्च। तरलो हारमध्यगतो मणिः चञ्चलश्च। अंशुका रश्मयः, उत्तरीयं चांशुकम्। घनसारवच्छुक्लां कर्पूरवच्छुभ्राम्,

राजा के नेत्र उसकी सामने पड़ने वाली किरणों से चुँधिया गये और बन्द होने तथा खुलने लगे। उन्होंने किसी प्रकार बहुत प्रयत्न से उसे देखा। सब दिशाओं को भर देने वाली पंक्ति के रूप में एकत्रित की हुई वह मानो दिग्गजों की सूंड़ से निकली हुई शीकर-संहति हो, घने मोतियों को गूँथकर बनायी हुई वह मानो शरत्कालीन ज्योत्स्ना की मेघमय लेखा हो। वह मानो बालचन्द्रमा के संचरण करने की विधि हो, या हाथ से गिरकर (अथवा हस्तनक्षत्र से मुक्त होकर) स्थिर हुई सप्तर्षिमाला हो, अथवा सम्पूर्ण भुवन के भूषणों के ऐश्वर्य को अपने प्रभाव से तिरस्कृत कर देने वाली वह मानो भगवान् शङ्कर के मस्तक की चन्द्रकला हो, अथवा धवलता रूपी गुण को लेकर हुई क्षीरसमुद्र की वह मानो कान्ति हो। दुर्गति (दुर्दशा या दरिद्रता) को दूर करने वाली गङ्गा के सदृश वह अनेक महीभृतों (राजाओं या पर्वतों) की कुल परम्परा से आयी हुई थी। साम्राज्य लाभ के आगे-आगे चलने वाली सदैव फहराती हुई मानो पताका थी। सामने आते हुए शिव की कपूर सदृश उज्ज्वल मानो दन्त पंक्ति हो, भुवनलक्ष्मी को वर (श्रेष्ठ पुरुष या विवाह करने वाला दूल्हा) के मनोरथ को पूरा करने

नश्रियः, निजकरपल्लवावरणदुर्लक्ष्यां चक्षूरागविहसतिकामिव वसुधायाः, मन्त्रकोशसाधनप्रवृत्तस्याक्षमालामिव राजधर्मस्य, समुद्रालङ्कारभूतां संख्यालेख्यपट्टिकामिव कुबेरकोशस्य। पश्यंश्चेतां विस्मयमाजगाम मनसा सुचिरम्। आचार्यस्तु तामुद्धृत्य बबन्ध बन्धुरे स्कन्धभागे भूपतेः। अथ नरपतिरपि प्रतिप्रीतिमुपदर्शयन्प्रत्यवादीत्—'आर्य! रत्नानामीदृशानामनर्हाः प्रायेण पुरुषाः। तपःसिद्धिरियमार्यस्य देवताप्रसादो वा। के च वयमिदानीमात्मनोऽपि किमुत ग्रहणस्य प्रत्याख्यानस्य वा। दर्शनात्प्रभृति प्रभूतगुरुगुणगणहृतेन हृदयेन परवन्तो वयम्। संकल्पितमिदमामरणादार्योपयोगाय शरीरम्। अत्र कामचारो वः कर्तव्यानाम्' इति।

निरन्तरदृढप्रबलां च। अभिमुखस्य प्रतिमुखमागच्छतः, दन्तपङ्क्तिश्च मुखमभिमतो भवति। वरः श्रेष्ठः, जामाता च। निजाः कराः सहजाः रश्मयः, स्वकश्च हस्तो निजकरः। चक्षूरागः प्रीतिस्तया विहसतिका नर्महासः। मन्त्रः कर्तव्यावधारणम्। कोशो गञ्जः। साधनं हस्त्यश्वादि। तेन प्रकृष्टाचरितस्य मन्त्रसमूहाराधनप्रस्तुतस्य। समुद्रः सागरः, सह मुद्रया च यो वर्तते। बन्धुरे हृद्ये। प्रत्याख्यानस्य प्रतिषेधस्य। परवन्तोऽन्यायत्ताः।

में समर्थ मानो स्वयंवर की माला हो। अपनी ही किरणों के आवरण से वह कठिनाई से द्रष्टव्य हो रही थी, मानो वह पृथिवी का प्रीतिजन्य नर्महास हो। मन्त्र, कोश तथा साधन में प्रवृत्त राजधर्म की वह अक्षमाला थी। वह कुबेर के कोष की संख्या बताने वाली मानों लेख्य पट्टिका थी, जो मुद्रा तथा अलंकारों से सुशोभित थी। उसे देखते हुए राजा हर्ष बहुत देर तक आश्चर्य में डूबे रहे।

आचार्य ने उसे उठाकर राजा के निम्नोन्नत स्कन्ध भाग में बाँध दिया। तब राजा ने भी प्रत्यनुराग प्रदर्शित करते हुए कहा—"आर्य! ऐसे रत्न प्रायः मनुष्यों को नहीं प्राप्त होते, यह तो आर्य की तपःसिद्धि है या देवता का प्रसाद है। हम कौन हैं यह सम्प्रति अपने विषय में भी नहीं बतला सकते फिर ग्रहण या प्रतिषेध की तो बात ही क्या? जब से आपके दर्शन हुए हैं तभी से आपके पर्याप्त महान् गुणों द्वारा हमारा हृदय अपहृत कर लिया गया है जिससे हम परवश अर्थात् आपके वशीभूत हो चुके हैं। जीवन-भर आर्य के उपयोग के लिए इस शरीर का संकल्प करता हूँ। यथेष्ट कार्य के लिए आदेश करें।"

समतिक्रान्ते च कियत्यपि काले गते चैकावलीवर्णनालापे लोकस्यानन्तरं लब्धविश्रम्भा राज्यश्रीस्ताम्बूलवाहिनीं पत्रलतामाहूयोपांशु किमपि कर्णमूले शनैरादिदेश । दर्शितविनया च पत्रलता पार्थिवं व्यज्ञापयत्—'देव ! देवी विज्ञापयति न स्मराम्यार्यस्य पुरः कदाचिदुच्चैर्वचनमपि । कुतो विज्ञापनम् । इयं हि शुचामसह्यतां व्यापारयन्ती हतदैवदत्ता च दशा शिथिलयति विनयम् । अबलानां हि प्रायशः पतिरपत्यं वावलम्बनम् । उभयविकलानां तु दुःखानलेन्धनायमानं प्राणितमशालीनत्वमेव केवलम् । आर्यागमनेन च कृतोऽपि प्रतिहतो मरणप्रयत्नः । यतः काषायग्रहणाभ्यनुज्ञयानुगृह्यतामयमपुण्यभाजनं जनः' इति । जनाधिपस्तु तदा कर्ण्य तूष्णीमेवावतिष्ठत् ।

अथाचार्यः सुधीरमभ्यधात्—'आयुष्मति ! शोको हि नाम पर्यायः पिशाचस्य, रूपान्तरमाक्षेपस्य, तारुण्यं तमसः, विशेषणं विषस्य

उपांशु गुप्तम् ।

प्राणितं जीवितम् । अशालीनत्वं धाष्टर्यम् ।

कुछ समय बीत जाने पर जब एकावली विषयक लोगों की चर्चा समाप्त हुई एवं राज्यश्री कुछ आश्वस्त हुई तब उसने अपनी ताम्बूलवाहिका पत्रलता को बुलाकर कान में कुछ रहस्य कहा । विनम्रता प्रदर्शित करती हुई पत्रलता ने हर्ष से निवेदन किया—"देव ! देवी निवेदन करती है कि आर्य के समक्ष कभी भी मस्तक उठाकर बात करने का स्मरण मुझे नहीं है, विज्ञापन की बात का तो कहना हीं क्या ? शोकों को दुःसह बना देने वाली दुष्ट दैव के द्वारा की गई मेरी यह दशा विनम्रता को मन्द कर रही है । अबलाओं का सहारा अक्सर या तो पति होता है या फिर उसकी सन्तान । जो इन दोनों से रहित हैं उनके लिए दुःखाग्नि के ईंधन के रूप में जीवित रहना केवल धृष्टता ही है । आर्य के आने से मृत्यु का प्रयास सफल नहीं हो पाया, इसलिए इस पुण्यहीन जन को (अर्थात् मुझ राज्यश्री को) काषाय वस्त्र धारण करने की अनुज्ञा प्राप्त हो ।" सम्राट् यह सुनकर चुप ही रहे ।

तब आचार्य (दिवाकर मित्र) ने धीर स्वर में कहा—"आयुष्मति ! शोक पिशाच का ही दूसरा नाम है, वातव्याधि (अपस्मार) का ही दूसरा रूप है, अन्धकार का यौवन है विष का ही विशेषण है, प्राणों को अलग करने वाले

अनन्तकः प्रेतनगरनायकः, अयमनिर्वृतिधर्मा दहनः, अयमक्षयो राजयक्ष्मा, अयमलक्ष्मीनिवासो जनार्दनः, अयमपुण्यप्रवृत्तः क्षपणकः, अयमप्रतिबोधो निद्राप्रकारः, अयमनलसधर्मा संनिपातः, अयमशिवसहचरो विनायकः, अयमबुधसेवितो ग्रहवर्गः, अयमयोगसमुत्थो ज्योतिःप्रकारः, अयं स्नेहाद्वायुप्रकोपः, मानसादग्निसंभवः, आर्द्रभावाद्रजःक्षोभः, रसादभिशोषः, रागात् कालपरिणामः। तदस्याजस्रास्र-

---

आक्षेपस्यापस्मारस्य। अनन्तान्कायति रावयतीत्यन्तकः। अनिर्वृतिरस्वास्थ्यम्, निर्वाणाभावश्च। अक्षयश्चिरस्थायी, क्षयरहितश्च। जनानर्दयति पीडयतीति जनार्दनः, कृष्णश्च। अपुण्यप्रवृत्तः पापप्रवृत्तः। क्षपणको यः क्षपयति, नग्नाटकश्च। प्रतिबोधो विवेकः, स्वापादुत्थानं च। निद्रां प्रकिरति हिनस्ति निद्राप्रकारः। कर्मण्यण्। निद्राविशेषश्च मोहरूपः। अनलेनाग्निना। सधर्मा सदृशः। अलसंलक्षणो धर्म आलस्यं यस्य सोऽलसधर्मा, नालसधर्माऽनलसधर्मा। सम्यनिपातयति घातयति यः, त्रिदोषजो व्याधिश्च स संनिपातः। शिवः श्रेयः, हरश्च शिवः। विशेषेण नयति मारयतीति विनायकः, विनायको विघ्नो वा, गणपतिश्च विनायकः। बुधः पण्डितः, ग्रहभेदश्च बुधः। ग्रहो व्यसनम्, सूर्यादिश्च। अयोगोऽननुकूलं दैवम्, चित्तवृत्तिनिरोधाभावश्च। ज्योतिष्प्रकारोऽग्निर्भेदः, परं ज्ञानं च। स्नेहः प्रीतिः, पुष्टिहेतुश्च घृतादिः। वायुप्रकोप उन्मादोऽत्र। मानसं चेतः, देवसरश्च। आर्द्र-

---

प्रेतनगर का नायक अर्थात् यमराज है, यह कभी न बुझने वाली आग है, यह कभी समाप्त न होने वाला राजयक्ष्मा नामक रोग है, यह जन को पीड़ित करने वाला (जनार्दन, श्लेष से कृष्ण) है जो लक्ष्मी का निवास नहीं है, यह वह क्षपणक है (सबका नाश करने वाला या क्षपणक अर्थात् जैन साधु) है जो अपुण्य कार्यों में संलग्न है या किसी अपुण्य से पहुँच पड़ता है, यह ऐसी निद्रा है जिससे कोई जगता नहीं, यह ऐसा सन्निपात (त्रिदोषजन्य रोग या सबका नाश करने वाला) है जो आग के समान है, यह वह विनायक (गणेश या मार डालने वाला) है जो शिव (शंकर या कल्याण) के साथ नहीं रहता, यह वह ग्रहों का समूह है जिसमें बुध (ग्रहविशेष या पण्डित) नहीं रहता, यह दुर्भाग्य से (अथवा योग के अभाव में) उत्पन्न हुआ एक प्रकार का अग्नि है, यह स्नेह से उत्पन्न होने वाला वायु प्रकोप या उन्माद है, यह मन से अग्नि का जन्म है, यह वात्सल्य से उत्पन्न होने वाला रजोगुण का क्षोभ है (अथवा आर्द्रता के

स्राविणो हृदयमहाव्रणस्य बहलदोषान्धकारलब्धप्रवेशप्रसरस्य प्राणतस्करस्य शून्यताहेतोर्महाभूतग्रामघातकस्य सकलविग्रहक्षपणदक्षस्य दोषचक्रवर्तिनः कार्श्यश्वासप्रलापोपद्रवबहुलस्य दीर्घरोगस्यासद्ग्रहस्य सकललोकक्षयधूमकेतोर्जीवितापहारदक्षस्याक्षणरुचेरनभ्रवज्रपातस्य स्फुरदनवद्यविद्याविद्युद्विद्योतमानानि गहनग्रन्थगूढगर्भग्रहणगम्भीराणि भूरि-

भावो वत्सलत्वम्,सरसत्वं च । रजो गुणविशेषो धूलिश्च । रसः प्रीतिः, रसायनं च । रागोऽभिष्वङ्गः, लौहित्यं च । कालोऽन्तकः, कृष्णश्च । तदस्येत्यादौ । तत्तस्मादस्य शोकस्य पारं विदुषामपि हृदयानि सोढुं नालम्, किं पुनरबलानां हृदयमिति संबन्धः । अजस्रं सदा । अस्रं बाष्पः, रक्तं च । व्रणं च रक्तं स्रवति । एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् । बहलदोषा बह्वोऽपगुणाः, कृष्णपक्षरात्रयश्च । अन्धकारो मोहः, तमश्च । शून्यता किंकर्तव्यता मूढता । महाभूतग्रामो जन्तुसमूहः तद्घातकश्चायं, महान्तो भूताः प्राणिनो यस्मिन् । ग्रामे जनपदसमूहे तस्य यो घातकः स शून्यताया जनरहितस्य हेतुर्भवति । विग्रहः शरीरम् विरोधश्च । दोषचक्रे मुख्यतया वर्तते यः स दोषचक्रवर्ती, चक्रवर्ती च सार्वभौमः, उपद्रवो बाधा, व्याधेरुपर्यन्यो व्याधिश्च । उक्तं च—'व्याधेरुपरि यो व्याधिर्भवत्युत्तरकालजः । उपक्रमविरोधित्वात्स ह्युपद्रव उच्यते ॥' इति । दीर्घरोगः क्षयादि । असद्ग्रहोऽनर्थासक्तिः, धूमकेतुश्च । अशोभनो मूढः । न विद्यमाना क्षणमपि रुचिर्भोजनाभिलाषः,क्षणरुचिस्तडिच्च । स्फुरन्त्याः

कारण धूल का भर जाना है), यह अनुराग से होने वाला शोषण है (जो शरीर को क्षीण कर देता है) यह राग से उत्पन्न होने वाली परिणामस्वरूप मृत्यु है (अथवा लाली से होने वाला कृष्ण वर्ण का परिणाम है) । यह हृदय का वह बड़ा घाव है जो हमेशा आँसुओं को खून बहाता रहता है । यह प्राणों का वह चोर है जो घने अन्धेरे में प्रवेश करता है । यह (क्षिति, जल आदि पाँच) महाभुतों के ग्राम का घातक है जो शून्यता (निर्धनता या निश्चेतनता) की अवस्था का हेतु है । यह दोषों का सम्राट् है जो सभी विग्रहों (शरीर या कलहों) को नष्ट करने में निपुण है । यह एक बड़ा रोग है जो दुबलापन, सांस और बड़बड़ाहट पैदा करता है । यह समग्र लोकों का क्षय करने वाला दुष्ट ग्रह धूमकेतु है । यह प्राणों का अपहरण करनेवाला विद्युत् में मेघ से विहीन वज्रपात है । अनिन्द्य विद्याओं के प्रकाश से उद्भासित होने वाले, शास्त्रों के

काव्यकथाकठोराणि बहुशाखोद्वहनबृहन्ति विदुषामपि हृदयानि नालं सोढुमापातं किमुत नवमालिकाकुसुमकोमलानां सरसबिसतन्तुदुर्बलकमबलानां हृदयम् ।

एवं सति सत्यव्रते! वद किमत्र क्रियते, कतम उपालभ्यते, कस्य पुर उच्चैराक्रन्द्यते, हृदयदाहि दुःखं वा ख्याप्यते? सर्वमक्षिणी निमील्य सोढव्यमूढेन मर्त्यधर्मणा। पुण्यवति! पुरातन्यः स्थितय एताः केन शक्यन्तेऽन्यथाकर्तुम्। संसरन्त्यो नक्तंदिवं द्राघीयस्यो जन्मजरामरणघटनघटीयन्त्रराजिरज्जवः सर्वपञ्चजनानाम्। पञ्चमहाभूतपञ्चकुलाधिष्ठितान्तःकरणव्यवहारदर्शननिपुणाः सर्वंकषा विषमा धर्मराजस्थितयः।

प्रकाशमानायाः अनवद्यायाः विद्यायाः विद्युता किंचिन्मात्रज्ञानेन विद्युदपि सकृदेव स्फुरति। तथा गहनानां दुरवग्रहाणां ग्रन्थानां ये विषमतमाः प्रदेशास्तेषां गुप्तो यो गर्भः तद्ग्रहणेन गम्भीराणि।

पुण्यवति पुरातन्य इत्यादौ। ध्वनिच्छायाजन्मजरामरणघटनान्येव घटीयन्त्रराज्या रज्जवः। पञ्चजना मानुषाः। 'मनुष्या मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः। स्युः पुमांसः पञ्चजनाः पुरुषा पूरुषा नरः॥' इति। पञ्चकुलोऽध्यक्षः। अन्तःकरणं

गम्भीर तत्व को समझने के कारण गम्भीर, अनेक काव्यकथाओं को जानने से कठोर, बहुत से शास्त्रों का अभ्यास करने वाले विद्वानों के हृदय भी शोक के प्रहार को बर्दाश्त नहीं कर पाते, फिर नवमालिका-पुष्पों की भाँति सुकुमार, मृणालतन्तु के सदृश कमजोर, अबलाओं के हृदय की तो बात ही क्या?

इसलिए हे सत्यव्रते! तुम्हीं बतलाओ, अब क्या किया जाय? किसे उलाहना दी जाय? किसके समक्ष जोर-जोर से रोया जाय? अथवा हृदय को दग्ध करने वाले दुःख को किससे कहा जाय? मृत्यु धर्मा मनुष्य को सब कुछ आँखें मूँद कर बर्दाश्त कर लेना चाहिए। हे पुण्यवति! इन पुरानी स्थितियों को कौन अन्य प्रकार को बना सकता है? सभी मनुष्यों के लिए रात-दिन, जन्म, बुढ़ापा, मृत्युरूपी रहट की घड़ियों की लम्बी माला घूम रही है। पंच महाभूतों के द्वारा जितने मानस व्यवहार हो रहे हैं वे सब यमराज के विषम अनुशासन से नियन्त्रित होकर विलय को प्राप्त हो जाते हैं। घर-घर में उम्र को नापने वाली घड़ियाँ लगी हुई हैं, जो एक-एक क्षण का हिसाब रखती हैं। सब प्राणियों के प्राणों की भेंट लेने के लिए यमराज का भयानक आदेश चारों ओर घूम रहा

क्षणमपि क्षममाणा गलन्त्यायुष्कलाकलनकुशला निलये निलये कालनालिकाः। जगति सर्वजन्तुजीवितोपहारपातिनी संचरति झटिति चण्डिका यमाज्ञा। रटन्त्यनवरतमखिलप्राणिप्रयाणप्रकटनपटवः प्रेतपतिपटहाः। प्रतिदिशं पर्यटन्ति पेटकैः प्रतप्तलोहलोहिताक्षाः कालकूटकान्तिकालकायाः कालपाशपाणयः कालपुरुषाः। प्रतिभवनं भ्रमन्ति भीषणकिंकरकरघट्टितयमघण्टाटुटंकारभयंकराः सर्वसत्त्वसंघसंहरणाय घोराघातघोषणाः दिशि दिश वहन्ति बहुचिताधूमधूसरितप्रेतपतिपताकापटुपतितगृध्रदृष्टयः शोककृतकोलाहलकुलकुटुम्बिनीविकीर्णकेशकलापशबलशवशिबिकासहस्रसंकुलाः किलकिलायमानश्मशानाशिवरशिवाशावकाः परलोकावसथपथिकसार्थकप्रस्थानविशिखा वीथयः। सकललोककवलावलेहलम्पटा बहला वहंलिहा लेढि लोहिताचिता

मनः। कला भागाः, कलनं संख्यानम्। नालिका होराः। चण्टिका भीषणा, रौद्रदेवताभेदश्च। पेटकैः समूहैः। घोषणा राजाज्ञया पश्चादिसंबद्धः पटहादिशब्दो दिशि दिश्येवंविधा रीतिर्विधेयेति। विशिखा वीथयः रथ्या मार्गा वहन्तीति संगतिः। कुटुम्बिन्योऽपहेलाः। शिविका वाहनम्। श्मशानमेव शिबिरं येषां ते। बहला दीर्घा गौश्च। उक्तं च—'बहलाः कृत्तिका गावः' इति च। बहंलिहा

है। समस्त प्राणियों के प्रस्थान की सूचना देने वाले यमराज के नगाड़े लगातार बज रहे हैं। तप्त लोहे की भाँति लाल नेत्रों वाले, विष के समान काली देह वाले काल पुरुष हाथों में कालपाश लिये झुण्ड के झुण्ड चारों ओर प्रत्येक दिशा में घूम रहे हैं। हर घर में भयानक दूतों के हाथ से बजाये गये घण्टों की टङ्कार से भयंकर सभी प्राणियों के संहार के लिए घोर विनाश की घोषणाएँ घूम रही हैं। प्रत्येक दिशा में परलोक के यात्रियों की पगडंडियाँ बनी हुई हैं जहाँ चिता के निकलते हुए धुएँ से मलिन यमराज की ध्वजाओं पर गीध अपनी दृष्टि डाले हुए हैं, जिन पर शोक से रोती हुई व्याकुल विधवाओं के टूटकर बिखरे हुए बालों से शबलित अर्थियाँ जा रही हैं, जहाँ श्मशान की झाड़ियों में सियारिनों के बच्चे कोलाहल कर रहे हैं। कालरात्रि की चिता के कोयलों के सदृश खूनी कालजिह्वा प्राणियों के जीवन को चाट रही है जैसे गाय बछड़े को। समस्त प्राणियों को चटकर जाने वाले भगवान् मृत्युदेव की बुभुक्षा ने तृप्ति नहीं सीखी।

चिताङ्गारकाली कालरात्रिजिह्वा जीवितानि जीविनाम् । तृप्तिमशिक्षिता च भगवतः सर्वभूतभुजो बुभुक्षा मृत्योः । अतिद्रुतवाहिनी चानित्यतानदी । क्षणिकाश्च महाभूतग्रामगोष्ठ्यः । रात्रिषु भङ्गुराणि पात्रयन्त्रपञ्जरदारूणि देहिनाम् । अशुभशुभावेशविवशा विशरवः शरीरनिर्माणपरमाणवः । छिदुरा जीवबन्धनपाशतन्त्रीतन्तवः । सर्वमात्मनोऽनीश्वरं विश्वं नश्वरम् । एवमवधृत्य नात्यर्थमेवार्हसि मेधाविनि मृदुनि मनसि तमसः प्रसरं दातुम् । एकोऽपि प्रतिसंख्यानक्षण आधारीभवति धृतेः । अपि च दूरगते ऽपि हि शोके नन्विदानीमपेक्षणीय एवायं ज्येष्ठः पितृकल्पो भ्राता भवत्या गुरुः । इतरथा को न बहु मन्येत कल्याणरूपमीदृशं संकल्पमत्रभवत्याः काषायग्रहणकृतम् । अखिलमनोज्वरप्रशमनकारणं हि भगवती प्रव्रज्या ।

छिद्रान्वेषिणी, वहंलिहा च गौर्वत्सस्य भवति, देहिनां शरीरवतां जीवाः प्राणिन एव बन्धनपाशतन्त्रीतन्तवः,आत्मनोऽनीश्वरं न स्वायत्तम् । परतन्त्रमित्यर्थः । प्रतिसंख्यानं विवेककुशला मतिः । दूरगते परधरारूढे । ज्येष्ठो भ्रातेत्याद्युत्तरोत्तरं साभिप्रायं व्याख्येयम् ।

अनित्यता की नदी बहुत तेज गति से बह रही है । पंचमहाभूतों की पंचायतें क्षण भर ही रह पाती हैं । साधु जैसे दिन में कमण्डलु रखने के लिए लकड़ियों को जोड़ कर पिंजड़ा बनाते हैं और रात को उसे खोल डालते हैं । उसी प्रकार का यह शरीर का यन्त्र है । शरीर के परमाणु पुण्य एवं पाप के अनुसार लाचार होकर घात करते हैं । जीव को बन्धन में बाँधने वाले जाल की रस्सी के तन्तु एक दिन निश्चय ही टूटते हैं । सम्पूर्ण नाशवान् संसार पराधीन है । हे मेधाविनि ! ऐसा समझ कर अपने सुकोमल मन में अन्धकार को मत फैलाने दो । विवेक का एक क्षण भी धैर्य के लिए आधार का काम करता है । शोक के मन्द पड़ जाने पर भी अब यह पितृसदृश तुम्हारा बड़ा भाई ही तुम्हारा गुरु है । अन्यथा कौन ऐसा है जो गेरुआवस्त्र धारण करने के लिए तुम्हारे इस प्रकार के कल्याणस्वरूप संकल्प की सराहना करे ? भगवती प्रव्रज्या सब प्रकार के मनोज्वरों को शान्त करने वाली होती है । मनस्वी के लिए यह श्रेष्ठ पद है । इस समय महाभाग

ज्ञाय: खल्विदं परमात्मवताम् । महाभागस्तु भिनत्ति मनोरथमधुना । यदयमादिशति तदेवानुष्ठेयम् । यदि भ्रातेति यदि ज्येष्ठ इति यदि वत्स इति यदि गुणवानिति यदि राजेति सर्वथा स्थातव्यमस्य नियोगे' इत्युक्त्वा व्यरंसीत् ।

उपरतवचसि च तस्मिन्निजगाद नरपतिः—'आर्यमपहाय कोऽन्य एवमभिदध्यात् । अनभ्यर्थितदैवनिर्मिता हि विषमविपदवलम्बनस्तम्भा भवन्तो लोकस्य । स्नेहार्द्रमूर्तयो मोहान्धकारध्वंसिनश्च धर्मप्रदीपाः । किंतु प्रणयदानदुर्ललिता दुर्लभमपि मनोरथमतिप्रीतिरभिलषति । धीरस्यापि धाष्टर्यमारोपयति हृदयं लङ्घितलघिमातिवल्लभत्वम् । युक्तायुक्तविचारशून्यत्वाच्च शालीनमपि शिक्षयन्ति स्वार्थतृष्णाः प्रागल्भ्यम् । अभ्यर्थनाया रक्षन्ति च जलनिधय इव मर्यादामार्याः । दत्तमेव च

अनभ्यर्थितेत्यादौ ध्वनिच्छायावगन्तव्या । धीरस्य गम्भीरस्य । लङ्घितमाक्रान्तम् । शालीनमधृष्टत्वम् । भदन्तेति बौद्धकर्मविशेषपूजावचनम् । अवधीरणमुपे-

(हर्ष) तुम्हारे मनोरथ को विफल करते हैं । ये जैसा आदेश दें तुम्हें वैसा ही करना चाहिए । यदि इन्हे भाई, या ज्येष्ठ या वत्स या गुणी या राजा समझती हो तो तुम्हे इनकी बात माननी चाहिए ।'' इतना कहकर आचार्य दिवाकर मित्र चुप हो गये ।

आचार्य के चुप हो जाने पर राजा ने कहा—"आर्य को छोड़कर दूसरा कौन है जो ऐसा (कल्याणकारी वचन) कह सके । आप लोग विषम विपत्तियों में आश्रय प्रदान करने वाले वह स्तम्भ हैं जिन्हें दैव ने बिना मांगे लोगों के लिए निर्मित किया है । स्नेह से गीले तथा मोहरूपी अन्धकार को समाप्त करने वाले धर्म दीपक हैं किन्तु प्रणय के लाभ से बढ़ी हुई प्रीति दुर्लभ मनोरथ की भी कामना करने लगती है । हृदय के संकोच को लांघनेवाला अत्यधिक प्रेम धैर्यशाली व्यक्ति को भी ढीठ बना देता है । ठीक एवं गलत के विवेक से शून्य, स्वार्थ की तृष्णायें शीलवान् व्यक्ति को भी प्रगल्भ बना देती हैं । आर्य लोग सागर के समान अभ्यर्थना की मर्यादा रखते हैं । आदरणीय आर्य ने अभ्यर्थना के बिना

शरीरमिदमनभ्यर्थितेन प्रथममेवातिथ्याय माननीयेन भवता मह्यम्। अतः किंचिदर्थये भदन्तमियं नः स्वसा बाला च बहुदुःखखेदिता च सर्वकार्यविधीरणोपरोधेनापि यावल्लालनीया नित्यम्। अस्माभिश्च भ्रातृवधापकारिरिपुकुलप्रलयकरणोद्यतस्य बाहोर्विधेयैर्भूत्वा सकललोकप्रत्यक्षं प्रतिज्ञा कृता। पूर्वावमाननाभिभवसहमानैरर्पित आत्मा कोपस्य। अतो नियुङ्क्ष्व कियन्तमपि कालमात्मानमार्योऽपि कार्ये मदीये। दीयतामर्थिने शरीरमिदम्। अद्यप्रभृति यावदयं जनो लघयति प्रतिज्ञाभारम्, आश्वासयति च तातविनाशदुःखविक्लवाः प्रजाः, तावदिमामत्रभवतः कथाभिश्च धर्म्याभिः, कुशलप्रतिबोधविधायिभिरुपदेशैश्च दूरापसारितर-

क्षणम्। विधेयैरायत्तैः। नियुङ्क्ष्व स्वीकरोतु। देशनाभिः शिक्षाभिः। क्लेशा अविद्यादयस्तेषां प्रहाणम्। तथागतैर्बौद्धैरात्मास्थिभिरपि। यावदित्यत्र यावच्छब्दोऽवधारणे। मुनिनाथः सुगतः। वठरसत्त्वा जडप्राणिनः सिंहाद्याः। एवं किल श्रूयते— पुरा काचन सिंही प्रसवकाले बुभुक्षातुरा स्वशावकान्भक्षयितुं प्रवृत्ता, सौगतेन च समालोक्यातिकारुण्यात्स्वमांसप्रदानेन तस्मान्निवारितेति।

ही इस शरीर को आतिथ्य के लिए मुझे सौंपा है। इसलिए भदन्त से एक याचना करता हूँ कि 'यह मेरी बहन बच्ची है तथा बहुत दुःख के कारण खिन्न है अतः सभी कार्यों की उपेक्षा करके भी हमें सदैव इसका लालन करना चाहिए किन्तु हमने सभी लोगों के समक्ष भ्रातृवध का प्रतिशोध लेने के लिए शत्रुकुल के विनाश की प्रतिज्ञा कर रखी है। पहले शत्रुद्वारा किये गये अपने तिरस्कार के अभिभाव को न बर्दाश्त कर पाने के कारण हम अपने क्रोध के वशीभूत है। अतएव आप कुछ समय के लिए अपने को मेरे इस कार्य में लगावे। मुझ अतिथि के लिए अपने शरीर का दान दें। आज से लेकर जब तक मैं अपनी प्रतिज्ञा के बोझ को हलका न कर लूं, पिता की मृत्यु के दुःख से आकुल प्रजाजनों को आश्वस्त न कर लूं तब तक मेरी यही इच्छा है कि आप मेरे साथ ही रहनेवाली मेरी बहन को धार्मिक कथाओं से, रजोगुण रहित कुशलोत्पादक उपदेशों से,

जोभिः, शीलोपशमदायिनीभिश्च देशनाभिः, क्लेशप्रहाणहेतुभूतैश्च तथागतैर्दर्शनैः, अस्मात्पार्श्वोपयायिनीमेव प्रतिबोध्यमानामिच्छामि। इयं तु ग्रहीष्यति मयैव समं समाप्तकृत्येन काषायाणि। अर्थिजनै च किमिव नातिसृजन्ति महान्त। सुरनाथमात्मास्थिभिरपि यावत्कृतार्थमकरोद्धैर्योदधिर्दधीचः। मुनिनाथोऽप्यनपेक्षितात्मस्थितिरनुकम्पेति कृत्वा कृपावानात्मानं वठरसत्त्वेभ्यः कतिकृत्वो न दत्तवान्। अतः परं भवन्त एव बहुतरं जानन्ति—इत्युक्त्वा तूष्णीं बभूव भूपतिः।

भूयस्तु बभाषे भदन्तः—'भव्या न द्विरुच्चारयन्ति वाचम्। चेतसा प्रथममेव प्रतिग्राहिता गुणास्तावकाः कायबलिमिमाम्। अमुना जनेन उपयोगस्तु निरुपयोगस्यास्य लघुनि गुरुणि वा कृत्ये गुणवदायत्तः' इति। अथ तथा तस्मिन्नभिनन्दितप्रणये प्रीयमाणः पार्थिवस्तत्र तामुषित्वा विभावरीमुषसि च वसनालङ्कारादिप्रदानपरितोषितं विसर्ज्य निर्घातमा-

भव्या भाग्यवन्तः। काय एव बलिहेतुत्वात् बलिरिव कायबलिस्तम्।

शील तथा शान्ति प्रदान करने वाली शिक्षाओं से तथा कष्टों को विनष्ट करनेवाले भगवान् तथागत के सिद्धान्तों से समझाते रहे। अपना कार्य जब मैं समाप्त कर लूंगा तब मेरे साथ ही यह भी कषाय ग्रहण करेगी। महान् लोग याचकों के लिए क्या नहीं त्याग करते ? धैर्य सागर दधीचि ने अपनी अस्थियों से इन्द्र को कृतार्थ किया था। क्या मुनिनाथ बुद्ध ने शरीर की कुछ चिन्ता न करके अनुकम्पा के वशीभूत हो अपने आपको कितनी ही बार हिंसक पशुओं के लिए अर्पित नहीं किया था ? इससे अधिक तो आप स्वयं जानते हैं।'' यह कहकर राजा हर्ष चुप हो गये।

भदन्त पुनः बोले—"भाग्यवान् लोग बात दुबारा नहीं कहते। मैं पहले ही अपने हृदय में इस शरीर को आपके गुणों को सौंप चुका हूँ। किसी उपयोग में न आने वाला यह शरीर छोटे या बड़े जिस कार्य में इसका उपयोग हो सके, गुणवान् आपके अधीन हैं। इस प्रकार दिवाकर मित्र द्वारा अभिनन्दित होने से प्रसन्न राजा हर्ष उस रात वहीं रहकर दूसरे दिन सबेरे ही निर्घात को वस्त्रा-

चार्येण सह स्वसारमादाय प्रयाणकैः। कतिपयैरेव कटकमनुजाह्नवि निविष्टं प्रत्याजगाम।

तत्र च राज्यश्रीप्राप्तिव्यतिकरकथां कथयत एव प्रणयिभ्यो रविरपि ततार गगनतलम्। बहलमधुपङ्कपिङ्गलः पङ्कजाकर इव संचुकोच चक्रवाकवल्लभो वासरः। प्रकीर्णानि नवरुधिररसारुणवर्णानि लोकालोकजूषि-यजूंषीव कुपितयाज्ञवल्क्यनवत्रवान्तानिजवपुषि पूषा पापमूषि पुनरपि संजहार जालकानि रोचिषाम्। क्रमेण च समुपोह्यमानमांसलराग-

पद्मषण्डोऽपि चक्रवाकप्रियो मुकुलितो भवति। रुधिररसवत्तेन चारुणवर्णानीति यजूंषीति वेदोपलक्षणार्थः। याज्ञवल्क्यः शाकल्यस्य मुनेर्वेदानधीत्याज्ञामकुर्वन्गुरुणोपालब्धः 'वेदान् परित्यज' इति। ततस्तेन चत्वारोऽपि वेदा रक्तोपलिप्ता उद्वान्ताः। ते च शाकल्यमुनिना स्वे वपुषि संक्रान्ता इति श्रुतिः। क्रमेणेत्यादावुष्णांशुर्मुहूर्तमेवंविधो दृश्यत इति संबन्धः। समुपोह्यमानो वर्धमान इत्यर्थः। उष्णीषो बध्यते यत्र स उष्णीषबन्धो मस्तकः। वृकोदरो भीमसेनः। द्रौणायनोऽश्वत्थामा। अत्र कथा—अश्वत्थामा सौप्तिके हृतपुत्रया द्रौपद्या भीमसेनोऽभ्यधायि यद्यश्वत्थाम्नः शिरश्छित्त्वा नानीयते तदाहं जीवितं त्यजामीति। ततोऽहमेवं करो-

लङ्कारादि प्रदान कर बिदा किया तथा आचार्य एवं राज्यश्री को साथ लेकर कुछ पड़ाव करते हुए गंगा के किनारे अपनी सेना में लौट आये।

वहाँ पर राज्यश्री को पाने की कथा वह अपने प्रेमीजनों से कह ही रहे थे कि सूर्य आकाशतल को पार कर गये। चक्रवाकों को प्रिय लगने वाला दिन अधिक मधु के पंक के समान ललछहूँ रंग के कमल-समूह की भाँति सिकुड़ गया। सूर्य के नये रक्त के सदृश लाल रंग वाली, लोकालोक पर्वत तक फैली हुई, पाप का नाश करने वाली अपनी किरणों के जाल को फिर से अपने शरीर में सिकोड़ लिया, जैसे क्रुद्ध याज्ञवल्क्य के मुख वमन किये गये यजुषमन्त्रों को (शाकल्यने) पुनः पान कर लिया था। क्रमशः सूर्य के लाल मांस की लाली के सदृश और बढ़ी तथा क्षणभर के लिए वह इस प्रकार दिखाई देने लगा मानो भीमसेन के

रोचिष्णुरुष्णांशुरुष्णीषबन्धसहजचूडामणिरिव वृकोदरकरपुटोत्पाटितः, प्रत्यग्रशोणितशोणाङ्गरागरौद्रो द्रौणायनस्य, रुद्रभिक्षादानशौण्डपुरमथन-मुक्तमुण्डशिरानाडिरुधिरपूरणशोणितकपिलः कपालकर्पर इव च पितामहः, पितृवधरुषितरामरागरचितः पृथुविकटकार्तवीर्यांसकूटकुट्टाककुठारतुण्ड-तष्टदुष्टक्षत्रियकण्ठकुहररुधिरकुल्याप्रणालसहस्रपूरितो ह्रद इव दूररोधी रौधिरो भयनिगूढकरचरणमुण्डमण्डलाकृतिर्गरुडनखपञ्जराक्षेपण-क्षिप्तक्षतजोक्षितो व्यसुर्विभावसुः कमठ इव च लोठ्यमानः, नभस्यरुण-गर्भमांसपिण्ड इव च खण्डिमानमानीतः, नियतकालातिपातदूयमान-

---

मीति प्रतिज्ञायान्तं भीमं दृष्ट्वा व्यासाश्रमस्थो रणश्रान्तो घृताभ्यक्तोऽश्वत्थामा शस्त्राभावादिषीकाः संमन्त्र्य ब्राह्ममस्त्रं भीमवधाय ददौ। एकाकिनश्च भ्रातुर्गमना-द्भीतेनार्जुनेन कृष्णसहितेन तमेवानुसरता ब्रह्मशिरोऽस्त्रं मुमुचे। तदवसरागतैश्च नारदाद्यैर्मध्यस्थैर्भूवोक्तं द्रौणेरस्त्रमभिमन्त्र्य प्रियाया गर्भे पतिष्यतीति अर्जुनेनाप्या-त्मीयेऽस्त्रे संहृते भीमोऽश्वत्थाम्नः सहजं मूर्धमणिमुच्चीय नातिचिरेणाजगामेति। मुक्तं त्यक्तम्। मुण्डं शिरः। शिरा नाड्यः, रुधिरवाहिन्यो नाड्यः, कुट्टाकश्छेदन-शीलः। कुठारतुण्डं कुठारधारा। आक्षेपक्षपणमुत्क्षिप्य परित्यागः। क्षिप्तं

हाथों से उखाड़ी गयी नवीन रुधिर के अंगराग से रौद्र (अश्वत्थामा के) ललाट पर सहज उत्पन्न हुई चूड़ामणि हो। अथवा वह ब्रह्मा के मस्तक रूपी उस कपाल के सदृश कपिल रंग का था। जिसे भिक्षाटन के लिए महादेव ने काटकर बहती हुई शिराओं के रुधिर से भर दिया था। अथवा वह पिता की हत्या से क्रुद्ध हुए परशुराम द्वारा बनाये गये, दूर तक पसरे हुए रक्त का ह्रद था जो सहस्रार्जुन के चौड़े एवं विकट कन्धों के चीरने वाले कुठार की धार से काटे हुए दुष्ट क्षत्रियों के गले से निकलती हुई रक्त की हजारों पनालों से भर गया था। अथवा वह गरुड़ के भारी नखों वाले पंजों के प्रहार से निकले खून से सना हुआ, भय के मारे हाथ-पाँव सिर को सिकोड़े हुए गत-प्राण विभावसु कछुए के आकाश में लुढ़कते हुए लोथड़े की भाँति दृष्टिगोचर हो रहा था। अथवा विनता के द्वारा आकास में खण्डित करके फेंके गये उस अण्डे की भाँति प्रतीत हो रहा था जिसके

दाक्षायणीक्षिप्तः धातुतट इव च सुमेरोरसुरवधाभिचारचरुपचनपिशनः शोणितक्वाथकषायितकुक्षिरतिविसंकटः कटाह इव च बार्हस्पत्यः, सद्योगलितगजदानवदेहलोहितोपलेपभीषणः मुखमण्डलाभोग इव महाभैरवस्य मुहूर्तमदृश्यत। जलनिधिजलप्रतिबिम्बितरविबिम्बाराजिभास्वराभ्रावलम्बिनीं गृहीतार्द्रमांसभारेव चाबभासे वासरावसानवेला वेतालनिभा। ज्वलत्संध्यारागरज्यमानजलप्रवाहः पुनरिव पुराणपुरुषपीवरोरुसंपुटपिमधुकैटभरुधिरपटलपाटलवपुरभवदब्धिपतिरर्णसाम्। समवसिते च संध्यासमये समनन्तरमपरिमितयशःपानतृषिताय मुक्ताशैलशिलाचषक इव

निःसृतम्। लोठ्यमानः परिभ्रमन्। नियतकालातिपातः प्रलयागमः। दाक्षायणी काली। पिशुनः सूचकः। वेतालोऽपि गृहीतार्द्रमांसभरो भवति। पटलं समूहः। समवसिते निवृत्ते। संध्यासमये निशया। नरेन्द्राय। श्वेतभानुरुपानीयतोपायनीकृत इति संबन्धः। आदिराजस्य मनोः, वैन्यस्य वा। मुद्रानिवेशो राज्याधिकार-

अन्दर गर्भावस्था में अरुण का अपूर्ण मांसपिण्ड हो। अथवा वह सुमेरु का वह गैरिक तट था जिसे प्रलयकाल में काली ने तोड़ दिया था। अथवा वह बृहस्पति के उस विशाल कराह की भाँति था जिसमें दानवों के विनाशार्थ अभिचार क्रिया करते हुए रुधिर के क्वाथ में वे चरु पका रहे थे। अथवा वह महाभैरव के उस मुखमण्डल के सदृश था जो तत्काल मारे गये गजासुर के रिसते हुए शोणित के लेप से भयानक था। दिवस की समाप्ति की बेला, जो जल में प्रतिबिम्बित सूर्यमण्डल की किरणों से लाल मेघों में अवलम्बित थी, उस वैताल की भाँति शोभा पा रही थी जिसने अभी-अभी कच्चा मांस खाया हो। विष्णु की स्थूल जंघाओं के बीच कुचले गये मधु-कैटभ के रुधिर से जिस प्रकार पहले लाल हो गया था उसी प्रकार सन्ध्या की लाली से रञ्जित जल प्रवाह वाला समुद्र पुनः लाल हो उठा। ज्योंही सायंकाल बीता त्योंही रात्रि हर्ष के लिए चन्द्रमा की भेंट लिये उसी प्रकार उपस्थित हो गयी मानो अपने कुल की कीर्ति ही साक्षात्

निजकुलकीर्त्या, कृतयुगकरणोद्यतायादिराजराजतशासनमुद्रानिवेश इव राज्यश्रिया, सकलद्वीपजिगीषाचलिताय श्वेतद्वीपदूत इव चायत्या, श्वेतभानुरुपानीयत निशया नरेन्द्रायेति भद्रमोम् ॥

इति महाकविबाणभट्टकृतौ हर्षचरितेऽष्टम उच्छ्वासः ।

महामुद्रा । चलिताय निर्गताय । आयत्याऽऽगामिशुभदैवेनेति भद्रमोम् ॥

दुर्बोधे हर्षचरिते संप्रदायानुरोधतः । गूढार्थोन्मुद्रणं चक्रे शंकरो विदुषां कृते ॥

इति महाकविचूडामणिशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेतेऽष्टम उच्छ्वासः ।

अपरिमित यश के प्यासे उनके लिए संगमरमर का पान पात्र लायी हो, अथवा स्वयं राजलक्ष्मी सतयुग की स्थापना के लिए उद्यत उसके लिए चाँदी की गोल शासनमुद्रा लायी हो, अथवा उसके भाग्योदय की अधिष्ठात्री देवी (आयति) ने सब द्वीपों की दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते हुए उनकी सेवा में श्वेतद्वीप का प्रतिनिधि दूत भेजा हो । कल्याण हो । ओम् ।

महाकवि बाणभट्टविरचित हर्षचरित में अष्टम उच्छ्वास समाप्त ।